सूचना.

नीचे माफक यह पुस्तक तीन तरहसे प्रसिद्ध
किया गया है.

(१) मूलग्रंथ, प्रस्तावना, उपोद्‌घात जन्मचरित्र, छवीओं, वंशवृक्षवाला संपूर्ण ग्रंथ. (पृष्ठ संख्या–८८०)

(२) मात्र मूलग्रंथ और ग्रंथकर्त्ताकी तस्वीर. (पृष्ठ संख्या–७४४)

(३) प्रस्तावना, चरित्र, छवीओं, वंशवृक्ष वगैरहका न्यारा पुस्तक. (पृष्ठ संख्या–१३६)

ग्रंथ मिलनेका पत्ताः—अमरचंद पी. परमार, प्रसिद्धकर्त्ता, पायधुणी–मुंबई. शा. भीमशी माणेक मांडवी–मुंबई; मांगरोल जैनसभा, पायधुणी,–मुंबई. श्री आत्मानंद जैनसभा, लाहोर; जैनधर्म प्रसारक सभा, भावनगर; और तमाम पुस्तक वेचनेवालोंके पास, जैन पाठशालाओंमें वगैरह.

अनुक्रमणिका.

पृष्ठ.

॥ ॐ ॥

प्रसिद्धकर्त्ताकी प्रस्तावना.

इस सृष्टिमें प्राणीमात्रको धर्मका शरण है. जैसे सृष्टिमें हरेक प्रकारकी क्रियाका बंधन स्वभाव है, वैसे जन्मसें मरण पर्यंत धर्म प्राणीमात्रका संबंधी है. परंतु धर्मके दर्शन, धर्मकी शाखायें इतनी सारी हो गई है, कि सत्य धर्मसें दूसरेको पिछानना एक कठिन सवाल है. सब अपने २ धर्मकी तारीफ कर रहे हैं. कोई पुनर्जन्मको मानता है, कोई नहीं मानता, कोई पाप पुण्य कबूल करता है, कोई प्रकृतिके शिवाय सब बातोंका निषेध करता है. ऐसें अनेक प्रकारके धर्मको देखके जिज्ञासुको विभ्रमता होती है, कि किसको सच्चा और किसको जूठा माने.

सर्व दर्शनके स्वरूपको विस्तारपूर्वक देखा जाय तो जिसका तत्त्वज्ञान, निष्कलंक शंका रहित और सर्वथा मानने योग्य है, वैसा दर्शन केवल एक जिनदर्शन है. जैनमतके लिये कितनेक ईंग्रेजी शिक्षण पाये हुये (नई चमकवाले) आदमीने बहोत गोता खाया है. प्रायः अंग्रेजी ऐतिहासीकोने और आधुनिक पंडिताभासोंने कई कल्पना करके जैनधर्मको बौद्धकी शाखा बताई है, और एक नवाही धर्म बताया है. और अजितनाथ धर्मनाथ आदि तीर्थंकरोंके नाम भर्तृहरिके समयके मच्छंदरनाथ, गोरखनाथ जैसें नाथकुलके बतलाकर भर्तृहरिके समयसें जैनधर्म चला भी कह देते हैं. परंतु कितनेक बडे पाश्चात्य विद्वानोंने परिश्रम करके ऐतिहासिक पुरावे इकठे करके जैनधर्मको बहुत पुराना धर्म सबूत किया है. (देखो इस ग्रंथका पृष्ठ ५३५–५४०).

डा० मॅक्स् मुलर इस जमानेमें आर्यविद्याके एक बडे पंडित गिने जाते हैं. उन्होंने कहा है कि सारी दुनियाके पुस्तकोंमें सात पुस्तक श्रेष्ठ हैं. उसमें दूसरे नंबरमें जैनोंका कल्पसूत्र पुस्तक रखा है, और पहेले नंबरमें बाईबलको रखा है. धर्मांधपणाके वश होकर बाई-बलको प्रथम पंक्तिमें रखा होगा. धर्मकी परीक्षा, न्यायदृष्टीसें होनी चाहिये; अगर इस दृष्टिसें भट्ट मॅक्स् मुलर देखते तो कल्पसूत्रको अवश्य प्रथम पंक्तिमें रखते. यह कल्पसूत्र जैनोंका एक पुराना ग्रंथ है. पहिले यह रीवाज था कि सूत्र मुखपाठ रखते थे. श्री महावीर स्वामिके पाटधारी श्री भद्रबाहुस्वामी चतुर्दशपूर्वके पाठी वगैरहने नियमोंका अनुक्रम किया. बाद देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमणने पुस्तकके आकारमें लिखे. परंतु जैनधर्मका इतिहास नहीं जानने-वाले जैनपुस्तकको श्रीभद्रबाहुस्वामी वा देवर्द्धीगणिक्षमाश्रमणका बनाया हुवा लिखकर जैनधर्म थोडे कालसें चला है, ऐसी विभ्रमता करे उसमें क्या आश्चर्य है? धर्मके नियम अनादि हैं; सूत्रोंकी रचना तीर्थंकरोके वखतमें हुई है.

आधुनिक समयके कितनेक पाश्चिमात्य विद्वानोने यह जाहिर किया है कि वेदधर्म प्राचीन याने ई. स. पूर्वो ३००० सें लेके ७००० वर्षतकका है. बाद कहते हैं कि बौद्धधर्म ई. स.

पूर्वी ५०० सें १००० वर्षतकका पुराना है. बाद जैन धर्मकी उत्पत्ति इ. स. पूर्वी २०० सें ४०० वर्षकी मानते हैं. अभी प्रायः धर्मशिक्षणके अभावसें झट एसा मान देते हैं कि किसी यूरोपियनने लिखा मानु परमेश्वरने कहा.

जैनधर्मके प्राचीनपणेके असंख्य पुरावे पुस्तकोंद्वारा मिल सकते हैं. इतनाही नहीं परंतु इस धर्मके अर्वाचीनपणेके विरुद्धमें बहुत बातें प्रसिद्धीमें आने लगी है. इस ग्रंथके स्तंभ ३२ में ग्रंथकर्त्ताने बहुतसी सबूतें जैनधर्म प्राचीन होनेकी दि है. इ० स० १८९३ में मद्रास प्रेसिडेन्सी कालेजके संस्कृत और कंपेरेटीव फाईलोलोजी (भाषाशास्त्र) के प्रोफेसर मि० गुस्ताव ओपर्ट पी. एच. डी. ने शाकटायन व्याकरण प्रसिद्ध किया है. जिसपरसें जैनधर्मकी प्राचीनताकी सिद्धिमें बहुतसी ऐसी बातें जाहिरमें आई हैं कि, जैनधर्मको अर्वाचीन बतानेवाले बहुतसें पंडित चकित हो गये हैं. क्योंकि यह शाकटायन व्याकरणके कर्त्ता जैनधर्मानुयायी भये हैं. और उसका अनिवार्य कारण प्रो० मि० ओपर्टकी नीचे लिखी प्रीफेस * (उपोद्घात) देखनेसें मालुम पडेगा.

१. शाकटायन व्याकरणका प्रथम मंगलाचरण यह है.

नमः श्रीवर्धमानाय प्रबुद्धाशेषवस्तवे ॥

येन शब्दार्थसंबंधास्सार्वेण सुनिरूपिताः ॥ १ ॥

अर्थः—जिस सर्वज्ञ प्रभुने शब्द और अर्थका संबंध निरुपण किया है, जो सब वस्तुके स्वरूपके जानकार है, ऐसे श्री वर्धमान प्रभु (जैनोंके चोवीसमे तीर्थंकर श्री महावीरस्वामि) को नमस्कार हो.

२. शाकटायनाचार्य अपने व्याकरणके प्रत्येक पदांतमें,

"॥ महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य ॥"

ऐसा लिखते हैं. उसमें श्रमणसंघाधिपति और श्रुतकेवली शब्द ऐसें हैं, जो केवल जैनधर्मके सांकेतिक शब्द है; यह शब्द दूसरे धर्मपुस्तकमें नहीं मिलते हैं.

---

* PROFESSOR GUSTAV OPPERT, PH. D., WRITES :—

Panini refers to Sákatayana as a previous Grammarian and this supplies a reason why the latter makes no mention of the former. Sákatayana's name occurs also in the Pratisákhyas of the Rigveda and Sukla-Yajurveda, and in Yàskà's Nirukta.

The Colophon at the end of each Pàda of the Sábdanusasana names this Grammar as the work of Sáktayana Srutakevalidesiyacharya, the president of the great Jain assembly. महाश्रमणसंघाधिपतेः श्रुतकेवलिदेशीयाचार्यस्य शाकटायनस्य.

Panini repeatedly mentions Sáktayana and the places thus alluded to, are also found in the Sàbdanusasana. Panini III. 4, 111; VIII. 3, 18 ; and VIII. 450, correspond respectively to S'akatayana's आद द्विषो झेर्जुस्वा (pp. 35, 9 & 220, 290.) वाजुस्यात् (pp. 8. 12 and 14, 65), and न संयोगे (pp. 6, 18 and 9, 31).

३. इस व्याकरणकी बहोतसी टीकायें हाथ लगी है. उन टीकाकारोंने भी शाकटा-यनाचार्यको परम जैनी कहा है. उसका मात्र एक दृष्टांत यह है कि टीकाकार यक्षवर्मन कहते हैं किः—

स्वस्तिश्रीसकलज्ञानसाम्राज्यपदमाप्तवान् ॥
महाश्रमणसंघाधिपतिर्यश्शाकटायनः ॥

अर्थः—सब ज्ञान प्राप्त करके जिनोने विद्वानोंमें चक्रवर्त्ती पद प्राप्त किया है, ऐसे महान साधुओंके संघका अधिपति (जैनाचार्य) शाकटायनाचार्य भये हैं.

४. शाकटायनाचार्य जैनी सिद्ध हुये, अब मूल बातपर आके जैनधर्मका प्राचीन-पणा मुजको प्रसिद्ध करना चाहीये.

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनी ऋषिके पहिले शाकटायनाचार्य हुवे हैं, यह बात सिद्ध है, क्योंकि—

त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य ॥ लङः शाकटायनस्यैव ॥ व्योर्लघु-प्रयत्नतरः शाकटायनस्य ॥

इत्यादि सूत्र पाणिनी ऋषिने अपने व्याकरणमें दाखल किया है. परंतु शाकटायन व्याकरणमें पाणिनिका नाम भी नजर नही आता, इससें सिद्ध है कि शाकटायनाचार्य पाणिनि ऋषिके पहिले हुए हैं.

पाणिनि ऋषिने शाकटायनके कितनेही सूत्र कुछ भी फेरफार किये विना अपने व्याकरणमें दाखल किये हैं. जैसेकि—

त्वाहौ सौ ॥ यूयवयौ जसि ॥ तुभ्यमह्यौ ङयि ॥ इत्यादि.

पाणिनिव्याकरणके महाभाष्यका कर्त्ता पतंजली ऋषि भी शाकटायनको याद करते हैं कि—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् ।
वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

Patanjali in his Mahabhashya refers also to Sákatayana when he comments on Panini III. 4, 111 and III. 3, 1 (उणादयो बहुलम्) In the latter place he remarks:—

नामचधातुजमाह व्याकरणे शकटस्यचतोकम् । वैयाकरणानां च शाकटायन आह धातुजं नामेति ॥

In fact the Unadisutras of Sáktayana have found general admission among Grammarians and have been annotated by various commentators such as Ujjvaladatta, Mádhava and others.

कवि कल्पद्रुमका कर्त्ता बोपदेव भी शाकटायनको प्राचीन वैयाकरण गीनते हैं.

इंद्रश्चंद्रकाशकृत्स्नापिशली शाकटायनः ।
पाणिन्यमरजैनेंद्रा जयंत्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

अर्थः-इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, आपिशली, शाकटायन, पाणिनि, अमर और जैनेंद्र यह आठही वैयाकरण प्राचीन है.

उक्त प्राचीनाचार्य शाकटायनका नाम ऋग्वेद और शुक्ल यजुर्वेदकी प्रतिशाखा और यस्कराकी निरुक्तिमें भी आता है, इत्यादि लिखना प्रो० आपटेका है. विस्तारपूर्वक देखना होवे तो उक्त व्याकरणमें देख लेवें.

यह जैनधर्म कि जिसकी प्राचीनता महान विद्वानोंने पुरा खोज करनेके बाद कबूल किई है, उसका रहस्य क्या है? जैनी ईश्वरको कर्त्ता नही मानते हैं, जिस बातका खुलासा इस पुस्तकमें आवेगा. यह जैनधर्म कितना बडा दिलवाला है कि केवल एक धर्म, एक जाती, एक प्रजा गिनता है. देशाटनके लिये कितनी छूट! जैनी अनादि सदामुक्त जगत्का कर्त्ता हर्त्ता ऐसा एक ईश्वर नहीं मानते हैं. परंतु प्रजासत्ताक राज्य (समानकार्य करनेवाले एक सरिखे हकके भागी) के माफिक, तीर्थंकर जिनको जैनी ईश्वर मानते हैं, वे मनुष्य थे. आत्माको पिछानके उनोंने कर्मका त्याग किया. राग द्वेषरूप दुष्मनोंका क्षमारूप शस्त्रसें पराजय किया. केवलज्ञान पाकर सिद्धगतिको प्राप्त भये. इसी रस्ते जानेका मार्ग उन्होंने दूसरोंको दिखाया. और ऐसा मार्ग दिखाया कि दूसरोंको

Sáktayana is mentioned as one of the eight principal Grammarians in the well-known Sloka found in the Kavikalpadruma of Bopadeva and elsewhere. These eight Grammarians thus named are:—

Indra, Chandra, Kasakrtsana, Apisáli, Sáktayana, Panini, Amara, and Jainendra. The Slóka runs as follows:—

इन्द्रश्चद्रकाशकृत्स्नापिशली शकटायनः । पाणिन्यगर जैनेंद्रा जयंत्यष्टादिशाब्दिकाः ॥

Sáktayana mentions in his Sutras only Indra, pp. 11, 14 and 34, 92, Siddhanandin, pp. 47, 15 and 87, 34, and Aryavajra pp. 10, 11 and 12, 13 as previous Grammarians.

× × × × × × × × × ×

A striking feature of the Sábdanusasana is that it does not treat of the Svarvaidika while Panini pays particular attention to it. Vedic words, however, are otherwise much noticed by Sáktayana, and in this respect his work is not deficient to Panini.

The omission of the Svarvaidika accounts perhaps for the neglect Sáktayana has suffered at the hands of the Brahmans, while it explains the favour with which he is regarded by the Jainas. If Sáktayana was Jaina this omission must be regarded as intentional. &c. &c. &c. &c. &c. &c.

सरल रस्ता मिल सके. यदि दूसरें भी ईसी तरह वर्त्ते तो तीर्थंकर होना शक्य है. गत, वर्त्तमान और अनागत चोवीसीके सब तीर्थंकर चरित्र नीति और गुणमें श्रेष्ठ हैं. उन गुणोंके प्रकाश करनेवाले सूत्रोंको देखनेसें कोई विरुद्ध बात पाई नहीं जाती है. चक्रवर्त्तीकी याचना करनेसें वो दूसरेको समान नहीं कर सकता है; श्रीजिनदेवकी भक्ति वो जिनराजही कर देती है.

जैन धर्मका रहस्य यह है कि सब जिवोंका रक्षण करना (दया पालनी). सबकों समान समजना, भ्रातृभाव रखना, विद्याशाला, औषधालय, पशुशाला स्थापना, साथ मिलकर भक्ति करना, पापका पश्चात्ताप करना, पापकर्मसें छुटनेको धर्मका ज्ञान संपादन करना, पाप नहीं करनेको दृढ़ निश्चय करना, किसीसें राग द्वेष नहीं करना, अगर भूलसें वा प्रमादके वशसें होगया होवे तो मनमें पश्चात्ताप करके क्षमाका चाहना, सद्धर्मको फैलाना, प्रवृत्तिमार्गको त्यागके निवृत्तिमार्ग लेना, आत्मज्ञान प्राप्त करना, पापरहित उद्यममें प्रवर्त्तना, मन, वचन, काया, (कर्म)सें पवित्र होना, सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य पालना, क्रोध, मान, माया, लोभ, आदिका त्याग करना, संयम, मनोनिग्रह और तप करना. धर्ममार्गको पुष्टी देनेवाले येह तमाम कार्य है. इनको साध्य करनेको और आत्माके कल्याण करनेको निर्लोभी, निर्विकारी, शांत, दांत, संयमी विद्वान सद्गुरुके सदुपदेशकी अतीव आवश्यकता है.

जैनलोक दयाको मुख्यताकरके मानते हैं. उसका सबब यह है कि "दया" का अर्थ अंतरंग वृत्तिसें दूसरोंके हितके विषे द्रवित होना. "दया" शब्दके वाच्यार्थका अंगिकार आर्यप्रजाके सब दर्शनानुयायिको मान्य है. "दया" शब्दका लक्ष्यार्थ समजनेका दावा सब करते हैं, परंतु दयाका श्रेष्टोत्तम लक्ष्य तो जिस दर्शनशास्त्रमें सर्व आत्माको समान गिनकर स्थावर और जंगम जिवात्माओंका अनेकानेक भेद सूक्ष्मोत्तम प्रकारसें वर्णन किया हो, उस दर्शनके शिवाय कुशाग्रबुद्धिद्वारा अवलोकन करनेवालेको भी प्रायः नजर आता नही है.

नैयायिको अपनी शास्त्रीय परिभाषामें दयाका पालना सप्रेम स्वीकारता है. परंतु कौनसें कौनसें द्रव्य सचित्त है, किस प्रकारके वर्त्तनसें उनको संक्लिष्टता होगी, ऐसे भेदांतर सह भिन्न भिन्न प्रकारका विवेचन नैयायिकदर्शनमें दृष्टिगोचर होता नहीं है; तो उस दर्शनके संप्रदायिको तो कहांसे समज शके ? सांख्यदर्शनवेत्ता सूक्ष्म पर्यालोचनापूर्वक दयाका रहस्य दिखा सकते हैं, ऐसा कहना उनके शास्त्रशैलिके अनुभव करते हुए, निष्पक्षपाति शास्त्राभ्यासिको मान्य नहि है. पूर्वमीमांसको यज्ञादिक कर्मोंकरके पंचेंद्रियातिर्यक प्राणिका भोग देके धर्म मानते हैं और दयाकी अभिरुचिवाले अपनेको बताते हैं. मीमांसको दया शब्दका पारमार्थिक रहस्य समजते नहि है, इतना नहि परंतु दया शब्द शुकवत् वाणी मात्र कह जानते हैं. वेदान्तवेत्ताओ पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति ये सबमें चेतनसत्ता स्विकारके इन २ तत्त्वोंके जीवात्मा सुषुप्ति अवस्थावाले हैं, ऐसा समजके उनके प्राण, व्यतिपात करते हुए, पापोद्भव मान्य करतें नहि है. याहुदी, जरतोस्ती, महम्मदीय प्रजा स्थावर जंगमात्मक सब द्रव्योंमें ईश्वरी सत्ता स्विकारके, जंगम जीवोंमें आत्मतत्त्व शास्त्रशैलिसें मान्य रखकर दयाशब्दकी प्रियता बताते हैं, तो भी भक्ष्याभक्ष्यका लक्ष रखते नहि हैं. क्रिश्चियन धर्मवेत्ताओ मनुष्यके शिवाय अन्य प्राणीओंमें आत्माका अस्तित्व स्विकारते नहि है. अन्य

प्राणीओंमें प्रत्यक्ष प्रमाणसें चेतनाका अनुभव होता है, तो भी कौनसें विशेष प्रबल प्रमाणसें ऐसा कहते हैं, यह समजना पक्षपातसें तटस्थ रहकर अवलोकन करनेवालेको कष्टसाध्य है. मनुष्यमें आत्मतत्त्व अंगीकार करके दया करनेका प्रेमपूर्वक स्विकारते हैं. ईसी तरह जनसमुदायके अनेकानेक संप्रदायिको दयाका लक्ष्य आपनी भिन्न २ रुचीके अनुसार स्वीकारके वर्त्तन करते हैं. दयाका वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थका भिन्न भिन्न स्वरूप सर्व दर्शनाभ्यासियोंको द्रष्टव्य होगा.

यदि निरीक्षक उच्चतम बुद्धिशाल निष्पक्षपाती और विचारविवेकसंपन्न होवेगा तो स्वाभाविक रीतिसें दयाका सर्वांशी लक्ष्यका गृहण करनेवाले दर्शनका विजय सिद्ध करके सर्वोपरि दयाके तत्त्वानुवादकी उत्तमोत्तम दिव्य प्रसादिका सुशील आत्मश्रेणीकी प्राप्तिके उत्सुक मुमुक्षुवर्गको रसास्वाद प्राप्त करावेगा यह वात निःसंदेह है. सर्वांशसें दयाका लक्ष्यार्थ प्रतिपादक दर्शन, विनय, क्षमा, ज्ञान, ध्यान, चारित्र, तप, स्वाध्याय, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, सौजन्यता, सुशीलतादिके शुद्ध स्वरुपका तादात्म्य दिखा सके यह स्वाभाविक है. क्योंकि दया यह धर्मरूप वृक्षका बीज है; सर्वांगपूर्णबीज बोया जावे और शास्त्रविचाररूप जल योग्य रीतिसें शुद्ध मतिज्ञानरूप भूमिमें सेचन किया होवे तो विनयादि अन्यधर्म लक्षण अनायाससें प्राप्त होवे जिसमें आश्चर्य क्या? जैनदर्शनमें दयाका मार्गसें वर्त्तन करनेके अनेक द्वार है. प्रथम शास्त्राधिकारीको भी आकर्षणकारी मनोहर दयामार्ग जैनदर्शनकी भव्यतामें पूज्यता उत्पन्न कराके निरीक्षकको दया मार्गमें रसलुब्ध करनेमें सदाकाल विजयी होगा, ऐसा उत्तम शास्त्राभ्यासियोंका मानना है.

जैनदर्शनमें स्थावर प्राणियोंका पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, और वनस्पति ऐसे पांच भेद है. जंगमके द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, ऐसे चार प्रकार परम विशुद्ध भावनासें प्रतिपादन करके उन२ प्राणियोंके लक्षण दिखाकर स्वआत्माकी तरह सर्व प्राणीके आत्माको समजके उनके तरफ समानबुद्धिसें उनके आत्माको किसी प्रकारसें भी क्लेश न हो, ऐसा वर्त्तन करनेको उग्रशब्दज्वालाकी कांति श्रोताके हृदयमंदिरको प्रकाशित करके बोधश्रेणि सुस्थापित करी है. कीतनेक धर्मावलंबी किसी प्राणीको रोगादिसें पीडित देखकर उनकी अंतावस्था करनेमें दया मानते हैं, परंतु जैनदर्शन अनेक प्रमाणोसें ईस बातको असत्य ठहराकर कहता है कि सब प्राणिको चाहे जैसी दुःखी अवस्थामें भी जीवनकी इच्छा तीव्र होती है. जीवन कष्टके असंख्य प्रवाहोमें भी प्राणियोंको प्रीयतम होता है. अनेक तीव्र वेदनासें पीडित अंतःकरणका लक्ष तो जीवन संधि रखनेमेंही परम दृष्टीस्थान अनुभवता है, यह वात सब विचारशील मनुष्यको प्रत्यक्ष अनुभवसें ज्ञेय है. यही सिद्धांत प्रबल प्रमाण पूर्वकसर्वज्ञ श्री महावीरने प्रतिपादन किया है. स्थावर जीवात्माओंके सूक्ष्म प्रदेशमें असंख्य जीवोंका अस्तित्व स्वीकारते हैं. वनस्पतिकायके प्रत्येक और साधारण सूक्ष्म भागमें असंख्य और अनंत जीवात्माओंका अस्तित्व अनेक प्रमाणोसें सिद्ध करके दिखाया है.

सब जीव चेतना लक्षणवंत है. चेतना होवे वहां सुख दुःखका जानपणा नित्य होवे यह निर्विवाद है. जंगम जीवोंका सुख दुःखका जानपणा स्थूल दृष्टिसें देखनेसें भी लक्षित होता है. परंतु स्थावर जीवोंका ज्ञान सूक्ष्म दृष्टि सिवाय समजना दुर्लभ है. चेतना

सिवाय वस्तुका वढना, कमी होना हो नहि सकता है. पृथ्वी आदिकी वृद्धि क्षयकी अनेक क्रियाओं अनेक नियमोसें निरंतर होती है. इस वातका सवको प्रत्यक्ष अनुभव है. यह बात देखते हैं तो चेतना सर्व द्रव्यमें व्याप्त हो रही है. यह स्वीकार करके भी चेतनको अंगसुख दुःखका वेदकपणा होना चाहिये यह समजना सामान्य बुद्धिसें मुश्किल है. स्थावर प्राणियोंमें चेतनको अंगसुखदुःखका जानपणा विद्यमान है. तीर्थंकरोंने स्थावर प्राणियोंमें चार संज्ञाका आहार, शरीर, इंद्रिय, और श्वासोश्वास ये चार पर्याप्ति अस्तित्व फरमाया है. जिनके नाम आहार, भय, मैथुन, और परिग्रह. वनस्पतिमें आहार संज्ञा है, जिससें वृद्धि होती है, भय संज्ञा है, जिससें पाषाणादि द्रव्य बीचमें आनेसें दूसरे मार्गसें वृद्धि होती है, मैथुन संज्ञा होनेसें नर जातिको फरशी हुई धूली नारी जातिके वृक्षोंको स्पर्श करनेसें नारी जातिके वृक्ष नवपल्लव होकर फलते हैं. *

परिग्रह संज्ञासें नये २ परमाणुको ग्रहणकरके वृद्धि होती है. वैसेंही पृथ्वी आदिमें आहारादि संज्ञाका अस्तित्व पदार्थ विज्ञानादि शास्त्रोंके अवलोकनसें अनुभवगम्य हो सकता है. स्थावर द्रव्योंमें संज्ञाका अस्तित्व स्वीकारनेसें चेतना स्वीकारी जाती है. और चेतना स्वीकारनेसें ज्ञानका अस्तित्व स्वीकारना पडता है. इस संकलनासें मालूम होता है कि ज्ञातापणांकी प्रेरणासेंही संज्ञाका उद्भव होता है. ज्ञातापणाही सुखदुःखका वेदकस्वरूप होता है. स्थावरमें सुखदुःखका भोक्तापणा इस प्रकारसें संभवित होता है. जिसको सुख-दुःखका ज्ञातापणा है, उसके ज्ञातापणेको क्लेश न हो, इस तरहसें वर्त्ताव रखना यही दयाका लक्षण है. ऐसी अनुपमेय वर्णन शैलिसेंयुक्त जैनदर्शनके सिद्धांत स्थावर जंगम प्राणियोंकी दया पालनेको अनेक रीतिसें स्पष्ट करके दिखाते हैं. दयामार्गके प्रतिपादक भिन्न २ लेख वैष्णवी, रामानुजी, चैतन्यमार्गी, कवीरपंथी, निमानंदी, दादुपंथी, नानकपंथी आदिके ग्रंथोंमें मीलते हैं. वे लेख अनेक प्रमाणोसें पुष्ट किये हुवे हैं. तथापि स्थावर जीवात्माओंकी अनेक जिवायोनीके सूक्ष्म विवेचनयुक्त लेख सत्यनिष्ठ अंतःकरणवाले बुद्धिकौशल्य शील पुरुषको जैन तत्त्व दर्शनिक शास्त्रोंके सिवाय दृष्टिगोचर कदापि नहिं होगा. तीर्थंकरप्रणित जैन तत्त्वशास्त्रोंमें दया यही धर्मका रहस्य गिनकर ज्ञान, दर्शन, तप, संयम, वृत्तादिक निरूपण करके अरूपी आत्माका अवर्णनीय स्वरूप लक्षणोंद्वारा आत्मा अनात्मा (जीव अजीव) पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा बंध और मोक्ष. इन नव तत्त्वोंका अति स्फुट वर्णन दृष्टिगोचर कराके गुरुद्वारा, शास्त्राध्ययन करनेवालेको सम्यकवोधसें आत्मविचारश्रेणिकी अलौकिकतामें आनंदमय कर देता है. सम्यक्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्ररूप रत्नत्रयि जैन

---

* युरोपियन तत्वज्ञानियोंने ईसी माफक शोध की है कि नर वृक्षके फूलादिकी रज उडकर नारि जातिके पुष्पमें प्रवेश करे, जब इस मैथुनसें नारि वृक्ष फलता है. वंध्या प्रायः दाडिमादि वृक्षके फलानेको इस इलाजको काममें लगाते हैं, यह शोध पांच पचास वर्षकी वताते हैं, परंतु जैनसिद्धांतमें अनादि कालसें यह वात मान्य है. सर्वज्ञप्रणित धर्ममें किस वातकी न्यूनता होवे ! देखो कि मख्खनमें वहुत वारिक जीव है ऐसा एक युरोपियन विद्वानने थोडा समय हुवा शोध करके निकाला है. और ईस शोधके लिये उसका दुनीयाके विद्वानवर्गमें बहुमान हो रहा है. परंतु जैनीका एक लडका भी जानता और मानता है के मख्खनमें एक अंतर्मुहूर्त्तमें (४८ मीनीट) असंख्य जीव पैदा होते हैं. वासी रोटीमें, पाणीके एक बिंदूमें असंख्य जीव आजके विद्वान सुक्ष्मदर्शकयंत्र (खुर्दबीन) द्वारा देखते हैं. परंतु यह सिद्धांत जैनी अनादि कालसें मानते आये हैं.

तत्त्वज्ञानसागरकी रत्नराशि है. उस रत्नराशिकी कान्ति ! मात्र दया शब्दके रहस्यमें अंतर्भूत होती है. दयाका मनमंदिरसें प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) होतेही बुद्धि साम्यपणेको प्राप्त होती है. सर्व प्राणीप्रति समान भावसे देखनेवाले जीवात्माको अंतरंगमें अपना और अन्यका ऐसा विरोधी विकारका क्षय होके सर्व प्राणीप्रति आत्मभावका अनुभव होता है. सर्व प्राणीप्राति आत्मभावना होनेसें आप संसारसागरमें एक बिंदु समान है, ऐसी बुद्धिवाला सर्व प्राणीप्रति समानता अनुभवनेवाला आत्मा अपने आपको विश्व रहस्य-रूप देखकर अंतमें परम आत्मलक्षकी दृष्टि प्राप्त करके परमानंद संपत्ति संपन्न हो सकता है. जैनतत्त्वज्ञानकी ग्रंथी अपूर्व उद्देशसें रचके अपूर्व गांभीर्यता उसके निरीक्षकको बताकर परम विशुद्ध मुक्तिमार्गका प्रतिपादन करता है. जैनतत्त्वविचारके अनुयायी अनेक पुरुष पूर्वकालमें प्रगट हुए थे; उन्होंने अनेक भगवद्वचनानुसार स्वरचित ग्रंथोसें जैनतत्त्वामृतकी प्रसादी अपनी बुद्धिबलकी प्रबलतासें उनके समयानुसारीको दीथी. वैसे वर्त्तमान समयमें उन्हेंके बोध हुए सद्ग्रंथोके वचन सत्वशील शास्त्राभ्यासीको वचनामृतरूपकरके दिव्यता द्रष्टव्य करते हैं. ऐसा एक महान दर्शनके अनुयायिओंने अपने तत्त्वमार्गकी जनसमुदायके अन्य धर्म सिद्धांतके सामने महत्वता प्रगट करके बतानी यह उनकी बडी भारी फरज है. परंतु कालबलके प्रबल प्रतापसें इस मार्गके अनुयायी स्वधर्मकी महत्वता जिस किसी अंशसें जानते हैं उतनीका भी उदय करनेमें अपनी उत्साहवृत्तिका उपयोग नही कर सकते हैं. इस पुस्तकका बनना इसी उपयोगकाही फल है. एसा उत्साह रहित होना कालमहात्म्यकी अपूर्व कलाका दिग्दर्शन नजर आता है. जिस दर्शनके प्रवर्त्तक पुरुष सर्वज्ञ थे, जिस दर्शनके मुनि (साधु) उत्तम चारित्र संपत्तिमान थे, जिस दर्शनके अनुयायी गृहस्थ त्यागयुक्त दृष्टिवाले होकर अवधि ज्ञानादि संपत्ति प्राप्त करते थे, उस दर्शनके वर्त्तमान समयानुयायी शास्त्र परिभाषाके पंडित होनेकी एवजमें शास्त्रशब्दके रहस्य समजनेमें भी प्रायः शक्तिवान नहीं है. ऐसा है तो कालके महात्म्य सिवाय और क्या कल्पना करी जावे ! अर्थात कालकी कलाही ज्ञान दृष्टिके मार्गमें ले जानेके बदले पंचेंद्रियके रसानंदमें मग्न कर देती है. प्रो० मेक्स मुलर आदि पाश्चात्य तत्ववेत्ता जो कि आर्य दर्शन शास्त्रके प्रायः निष्पक्षपाती निरीक्षक हैं, सो भी जैनदर्शनकी महत्त्वत्ता सर्वथा कबूल करते हैं; तो जैनधर्मावलंबी जैन तत्त्वशास्त्रकी महत्वता जनमंडलमें प्रगट करनेके स्थानमें आपही शास्त्राध्ययन करके रहस्य समजनेमें प्रवृत्ति नहीं करते हैं; ऐसा है तो कालरूप जादुगरकी रची हुई व्यावहारिक वैभवकी जालमें जकडे हुए हैं, ऐसाही कहना पडता है.

जैनतत्त्वज्ञान संबंधी विचार व्यवहार और परमार्थकी उन्नति योजमेमें साधनभूत है. तत्त्वज्ञानानुसार वर्त्तन करनेवालेको परमसुख करता है. रत्नत्रयिके अनुभवसें आत्मज्ञान प्राप्तकरके मुक्तिमार्गकी परासीमा स्वीकारी है. रत्नत्रयिका अनुभव, सत्‌देव, सत्‌गुरु, और सत्‌धर्मकी समज शिवाय प्राप्त हो नहि सकता है. आत्मस्वरूपका पूर्ण ज्ञाता आत्मस्वरूप अनुभवी सर्वज्ञ वोही सत्‌देव, क्रोधादि कषायोंका लय करके अंतर सत्वनिष्टावान वैराग्य-संपन्न शास्त्राभ्यासी वोही सत्‌गुरू, कर्ममलसें निर्मल होनेका सदुपदेश बोधक मार्ग वोही सत्‌धर्म; इस त्रिपुटीको स्वरूपके अनुभवी शास्त्राध्ययन करनेवाला रत्नत्रयि संपन्न हो

सकता है. रत्नत्रयि संपादित हुआ और सर्वज्ञादि विभूति शीघ्र प्राप्त होती है. सर्वज्ञादि विभूतिकी प्राप्ति ज्ञानमार्गके उदयसे परिणाममें प्राप्त होती है. और ज्ञानमार्गका उदय अलौकिक भावनासे भीजे हुए जैनमार्गकी शैलिकी महत्वता जैनदर्शनशास्त्रके अभ्यासकी वृद्धी होनेसेही हो सकता है. उसका उमदा रस्ता यह है कि हिंदुस्थानमें मुंबई जैसे एक मध्यस्थानमें एक बडी जैन पाठशाला स्थापित होनी चाहिये कि जिसमें अंग्रेजी-देशी सांसारिक केलवणीके साथ धार्मिक केलवणी बालपणसेंही दीजावे. बडे बडे शहरोंमें शाखा-पाठशालाए स्थापित करनी चाहिये. सद्बोध प्राप्त हुए विना कार्यकी सिद्धी नहीं होती है. ख्रिश्चनलोक कि जिस धर्मको वे ठीक समजते हैं, उसकी वृद्धि करनेके वास्ते करोडों रुपैयोंकी कान्तिका मोह उतारके व्यय करते हैं. धर्मके पुस्तकोंकी लाखो नकलों छपाके लागतसें भी कमदामसे वेचते हैं. मुसलमान, याहुदी, पारसी, आदि प्रथम धर्मकी केलवणी अपने बच्चोंको देकर फिर उदर पोषणकी सांसारिक विद्या पढाते हैं. धर्माभ्यासके लिये इन लोकोंने जब सेंकडों शालाए बनाई हैं, तो सत्यके अपूर्व कीर्त्तिस्तंभकरके सुवर्णलताकी कान्तिरूप जैनदर्शनके अनुयायी उदरनिर्वाहकी व्यवहारग्रंथीमें लिपटके परमार्थ मार्गकी स्वप्नावस्थामें कालरात्री गुजार रहे हैं. धनसंपन्नवर्ग विषयास्वादमें मग्न हैं; मध्यमवर्ग व्यवहारपटुतामें लुब्ध है. अधमवर्ग उदरनिर्वाहकी चिंतामें है. पंडित भावनासें शास्त्राभ्यासका कोई भी सुशील अवलोकन करनेवालेको अपूर्व जैनदर्शनकी यह स्थिति देख करके दया धर्मके प्रतिपादक जैनदर्शनपर दया करनेकाही समय आया है. विवेकी धनसंपन्न जैनधर्मीयोंको चाहिये कि अब अपने हृदयचक्षुसे धर्मकी स्थितिको देखकर जैनतत्त्वशास्त्ररूपरत्नको पहेल पढाके उसकी शुद्ध कांति प्रगट करनेको उद्युक्त होकर अपनी फरज यहि अपना कर्तव्य समझे, यही जीवनका तात्पर्य समजे, शिशुवयका बोध ज्ञानतंतुमें स्थायी रह सकता है, उसके संस्कार जीवनपर्यंत जींदगीको मधुरी निर्दोष करनेको सामर्थ्यवान् है., धर्मानुरागीको चाहिये कि ऐसी जैन पाठशाला स्थापन करानेमें उद्यमवंत हो. ये अपूर्व ज्ञानामृतकी प्रसादीका लाभ अपने बालकोंको दें, इसमें अपना, अपने महान् धर्मका, अपने कुल, जाति और देशका उदय है. ऐसी एक पाठशाला स्थापन करनेको स्वर्गवासी बाबुसाहेब पन्नालालजीने अपने धनका सदुपयोग चार लाख रुपये ज्ञानमार्गमें देकर किया है. इस पाठशालाके लिये कई विद्वानोंकी सम्मति लेकर " बाबु पन्नालाल आत्म[1] जैन पाठशालाकी योजना " ऐसे नामसे मेरी तरफसें एक योजना पत्र तयार किया है.

जैनधर्म अनादि होनेकी पुष्टीमें यह सिद्ध है कि मूल आर्य वेदोंके छत्तीस उपनिषद् जो जैनशैली अनुसार जैनोंमें मौजूद है, जिसपरसे और दूसरे संजोगोंसे यह बात सबूत होती है कि आधुनिक वेद कोई नयेही वेद हैं. जैन इतिहास कहता है कि पहेले तीर्थंकर श्रीऋषभनाथके पुत्र भरत चक्रवर्त्तीने अपने पीताके उपदेशसें गृहस्थ अर्थात् श्रावक धर्मके निरूपक चार वेद श्रावक ब्राह्मणोंके पढनेके वास्ते रचे. ये वेदोंके नाम

१ "आत्म" शब्दसे यह भावार्थ है कि स्वर्गवासी बाबुजीका यह निश्चय था कि महाराज श्री आत्माराम जीके नामसें एक पाठशाळा (जैन-कॉलेज) स्थापन करके यह परम उपकारी सद्गुरुका नाम अमर रखना.

(१) संसारादर्शन वेद (२) संस्थापन परामर्शन वेद (३) तत्त्वाववोध वेद (४) विद्याप्रवोध वेद. ब्रह्मचर्य पालनेवालोंका नाम ब्राह्मण था. यह आर्यवेद और सम्यग्दृष्टि ब्राह्मण ये दोनों वस्तु श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत नवमे तीर्थंकर तक यथार्थ चली. दक्षिणमें कितनेक ऐसे वैदिक ब्राह्मण अब भी विद्यमान हैं, जो आधुनिक वेदोंसें कोई अन्य रीतीका वेद मंत्र पढते हैं. ये आर्यवेद कि जिसको तमाम जैन मानते थे विच्छेद होगये, परंतु उनके ३६ उपनिषद् मोजूद हैं. यह प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथसे कला, दंडनीति, कृषी, अग्नि इत्यादिका आरंभ हुवाहै. (मनुजी भी मनुस्मृतिमें ऐसाही लिखते हैं. आगे श्लोक देखो.) श्री सुविधि नाथके पीछे, जब आर्यवेद विच्छेद हो गये, तब उस वखतके ब्राह्मणाभासोंने अनेक तरहकी श्रुतीओं रचीं. उनमें इंद्र, वरुण, पूषा, नक्त, अग्नि, वायु, अश्विनौ, उषा इत्यादि देवताओंकी उपासना करनी लोकोंको उपदेश किया; अनेक तरेहके यजन याजन करवाए, और कहने लगे कि हमने इसीतरांह अपने वृद्धोंसे सुना है. इस हेतुसे तिन श्लोकोंका नाम श्रुति रक्खा. अपने आपको गौ, भूमी, आदि दानके पात्र ठहराये, और जगद्गुरु कहलाने लगे. इन हिंसक श्रुतिओंको वेदके नामसे प्रचलित की. वेदव्यासजीने श्रुतिएं एकठी कीं, और जुदे जुदे कारणोंसे उनके चार नाम रक्खे जो सांप्रत कालके ब्राह्मणोंके ऋग्, यजुस् साम और अथर्ववेद हैं. व्यासजीने ब्रह्मसूत्र रचा सो वेदांतमतके ये मुख्य आचार्य कहे जाते हैं. यह वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके तीसरे अध्यायके दूसरा पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनोंकी सप्तभंगीका खंडन कीया है, जिसका प्रावल्य होता है, उसका खंडन लिखा जाता है, तो वेदव्यासजीके वखतमें जैन धर्म विद्यमान था. वेदव्यासजीके शिष्य जैमिनीने मीमांसा बनाया. व्यासजीके शिष्य वैशंपायनके शिष्य याज्ञवल्क्यको गुरु और दूसरे ऋषीओंके साथ लढाई होनेसे उनोनें यजुर्वेद छोडके शुक्ल यजुर्वेद" बनाया. इत्यादि कहांतक विस्तार किया जाय. पुराणादि ग्रंथोंने एक दूसरेको और वेदोंका वहोत खंडन किया है. यहांतकके पढनेवालोंको भी नागवार मालूम होता है. इस ग्रंथमें जैन धर्मकी प्राचीनता वेदोंसे पहेलेकी अच्छे प्रमाणोंसें सिद्ध की है. फिर इन्ही वेदोंमें, स्मृतिमें, महाभारत, भागवत पुराणादि ग्रंथोंमें लीखे हुए जैन धर्मकी प्राचीनताका अन्य प्रमाण भी नीचे लीखा जाता है. उसको पाठकगण निष्पक्षपाती होकर पढे और सत्यासत्यका विचार करे. कीतनेक लोक कपोलकल्पित शंका करते हैं कि जैनधर्म बौधकी शाखा है. उनको कहा जाय कि जैनमत बौद्धकी शाखा नही, परंतु एक अनादि धर्म है, जो इस पुस्तकके स्तंभ ३३ में ऐतिहासिक और शीला लेखोंके प्रमाण द्वारा और प्रो० जेकोबीका प्रमाण देकर अच्छीतरह सिद्ध किया है. फिर भी बौद्धोंके ग्रंथ "महाविनयसूत्र" और "समानफलासूत्र" में जैनोंके चोवीसमे तीर्थंकर श्री महावीर स्वामिको "ज्ञातपुत्र" लिखकर वहोत संबंध लिखा है; बौद्धोंका "विनयत्रीपीठीका" ग्रंथका तरजुमा "लाईफ ऑफ धी बुद्ध" नामा पुस्तकमें प्रो० जे. डवल्यु. उडवील राखीलने किया है, जिसका पृष्ठ ६९, ६६, १०३, १०४ पर जैनोंके निर्ग्रंथके संबंधमें और पृष्ठ ७९, ९६, १०४, २५९ पर महावीर स्वामीके लिये जो लेख है वो पढनेसे पाठक वर्ग संतोषित होंगे कि प्रथम बुद्धके वखतमें जैनधर्म विद्यमान था. कितनेक लोक राजा शिवप्रसाद सी. आई. ई. का बनाया हुवा "इति-

हास तिमिरनाशक" ग्रंथका प्रमाण देकर कहते हैं कि जैनधर्म बौद्धकी शाखा है; परंतु सन १८७३ में उनोंने ऐक पत्र बनारससे पंजाबका गुजरांवाला शहरके जैन समुदायपर लिखा था उसमें लीखा है, कि "जैन, बौद्ध मत एक नही है,सनातनसें भिन्न भिन्न चले आये हैं, जर्मनी देशके एक वडे विद्वानने इसके प्रमाणमें एक ग्रंथ छापा है." वगैरेह वहोत प्रमाण हैं. कहांतक लिखा जाय?

उपर लिखे जैनकी प्राचीनताके कितनेक वेदादि प्रमाण मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रंथानुसार लिखे जाते हैं.

॥ श्री भागवत ॥

नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनयाचिरसुप्तबुद्धेः।
लोकस्ययोकरुणयोभयमात्मलोकमाख्यान्नमोभगवतेऋषभायतस्मै ॥

अर्थः—उस ऋषभदेव (जैनोंकेप्रथम तीर्थंकर) को हमारा नमस्कार हो. सदा प्राप्त होनेवाले आत्मलाभसें जिसकी तृष्णा दूर होगई है, और जिन्होंने कल्याणके मार्गमें झूठी रचनाकरके सोते हुए जगतकी दया करके दोनों लोकके अर्थ उपदेश किया है ॥

॥ श्री ब्रह्माण्डपुराण ॥

नाभिस्तु जनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां मनोहरम्।
ऋषभं क्षत्रियश्रेष्टं सर्वक्षत्रस्य पूर्वकम् ॥
ऋषभाद्भारतोजज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः।
राज्येऽभिषिच्य भरतं महाप्राव्रज्यमाश्रितः ॥

अर्थः—नाभिराजाके यहां मरुदेवीसे ऋषभ उत्पन्न हुए जिनका बडा सुंदर रूप है, जो क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ और सब क्षत्रियोंके आदि हैं ॥ और ऋषभके पुत्र भरत पैदा हुवा जो वीर है और अपने सौ (१००) भाईयोंमें वडा है ॥ ऋषभदेव भरतको राज देकर महा दीक्षाको प्राप्त हुए अर्थात् तपस्वी होगये ॥

भावार्थः—जैन शास्त्रोंमें भी यह सब वर्णन इसही प्रकार है ॥ इससे यह भी सिद्ध हुवा कि जिस ऋषभदेवकी महिमा वेदान्तिओंके ग्रन्थोंमें वर्णन की है, जैनी भी उसही ऋषभदेवको पूजते हैं, दूसरे नहीं.

॥ श्री महाभारत ॥

युगेयुगे महापुण्यं दृश्यते द्वारिका पुरी।
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासशशिभूषणः ॥
रेवताद्रौजिनोनेमिर्युगादिर्विमलाचले।
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥

अर्थः—युग २ में द्वारिकापुरी महा क्षेत्र है, जिसमें हरिका अवतार हुवा है जो प्रभास क्षेत्रमें चन्द्रमाकी तरह शोभित है ॥ और गिरनार पर्वतपर नेमिनाथ और कैलाश (अष्टापद) पर्वतपर आदिनाथ अर्थात् ऋषभदेव हुए हैं ॥ यह क्षेत्र ऋषियोंके आश्रम होनेसें मुक्ति मार्गके कारण है ॥

भावार्थ-श्री नेमिनाथस्वामी भी जैनियोंके तीर्थंकर है और श्रीऋषभनाथको आदिनाथ भी कहते हैं, क्योंकि वह इस युगके आदि तीर्थंकर है ॥

॥ श्री नागपुराण ॥

दर्शयन् वर्त्म वीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रयस्य कर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ।
छत्रत्रयीभिरापूज्यो मुक्तिमार्गमसौ वदन् ॥
आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलिभिरीशितुः ।
ध्यायंति भावतो नित्यं यदंघ्रियुगनीरजम् ॥
कैलासविमले रम्ये ऋषभोयं जिनेश्वरः ।
चकार स्वावतारं यो सर्वः सर्वगतः शिवः ॥

अर्थः—वीर पुरुषोंको मार्ग दिखाते हुये सुर असुर जिनको नमस्कार करते हैं जो तीन प्रकारकी नीतिके बनानेवाले हैं, वह युगके आदिमें प्रथम जिन अर्थात् आदिनाथ भगवान् हुए. सर्वज्ञ (सबको जाननेवाले,) सबको देखनेवाले, सर्व देवोंकरके पूजनीय, छत्र-त्रयकरके पूज्य, मोक्षमार्गका व्याख्यान कहते हुए, सूर्यको आदि लेकर सब देवता सदा हाथ जोडकर भाव सहित जिसके चरणकमलका ध्यान करते हुए ऐसे ऋषभ जिनेश्वर निर्मल कैलास पर्वतपर अवतार धारण करते भये जो सर्वव्यापी हैं और कल्याणरूप हैं ॥

भावार्थः—जिन अर्थात् जिनेश्वर भगवानको कहते हैं जिनभाषित अर्थात् भगवानका कहा हुवा मत होनेके कारण जैनमत कहलाता है । उपरोक्त श्लोकोंमें श्रीऋषभनाथ अर्थात् आदिनाथ भगवान्को जिनेश्वर कहकर महिमा की है ॥

॥ शिवपुराण ॥

अष्टषष्टिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ।
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत् ॥

अर्थः—अडसठ (६८) तीर्थोंकी यात्रा करनेका जो फल है, उतना फल श्री आदिनाथके स्मरण करनेहीसे होता है. ।

॥ ऋग्वेद ॥

ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितानां चतुर्विंशतितीर्थकराणां ।
ऋषभादिवर्द्धमानान्तानां सिद्धानां शरणं प्रपद्ये ॥

अर्थः—तीनलोकमें प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेवसे आदि लेकर श्री वर्द्धमानस्वामी तक चौबीस तीर्थंकरों (तीर्थोंकी स्थापन करनेवाले) है, उन सिद्धोंकी शरण प्राप्त होता हूं।

॥ यजुर्वेद ॥

॥ ॐ नमोऽर्हन्तो ऋषभो ॥

अर्थः—अर्हन्त नाम वाले (वा) पूज्य ऋषभदेवको प्रमाण हो.

फिर ऐसा कहा है:—

ॐ ऋषभंपवित्रं पुरहूतमध्वरं यज्ञेषु नग्नं परमं माहसंस्तुतं वारं शत्रुंजयंतं पशुरिंद्रमाहुरिति स्वाहा। उत्रातारमिंद्रं ऋषभंवदंति अमृतारमिन्द्रहवे सुगतं सुपार्श्वमिन्द्रंहवे शक्रमजितं तद्वर्द्धमान पुरुहूतमिंद्रमाहुरिति स्वाहा। ॐ स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवा स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः स्वस्तिनस्तार्क्षोअरिष्टनेमिः स्वस्तिनो वृहस्पतिर्दधातु। दीर्घायुस्त्वायवलायुर्वाशुभजातायु ॐ रक्षरक्ष अरिष्टनेमि स्वाहा वामदेव शांत्यर्थ मनुविधीयते सोऽस्माकं अरिष्टनेमि स्वाहा ॥

अर्थः—ऋषभदेव पवित्रको और इन्द्ररूपी अध्वरको यज्ञोंमें नग्नको पशु वैरीके जीतनेवाले इंद्रको आहुती देता हूं। रक्षा करनेवाले परम ऐश्वर्ययुक्त और अमृत और सुगत सुपार्श्व भगवान जिस एसे पुरुहुत (इन्द्र) को ऋषभदेव तथा वर्ध्धमान कहते हैं उसे हवि देता हूं। वृद्धश्रवा (वहुत धनवाला) इन्द्र कल्याण करे, और विश्ववेदा सूर्य हमें कल्याण करै, तथा अरिष्टनेमि हमें कल्याण करे और वृहस्पति हमारा कल्याण करे। (यजुर्वेद अध्याय २९ मं० १९) दीर्घायुको और वलको और शुभ मंगलको दे। और हे अरिष्टनेमि महाराज हमारी रक्षा कर (२)॥ वामदेव शान्तिके लिये जिसे हम विधान करते हैं वह हमारा अरिष्टनेमि है. उसे हवि देते हैं.

भावार्थः—श्री ऋषभदेव श्री सुपार्श्व भगवान और अजितनाथ भगवान और अरिष्टनेमि आदि भगवान यह सव जैनियोंके तीर्थंकर हैं जिनकी मूर्त्ति जैनी लोग वनाते हैं और भक्ति करते हैं. ।

॥ भागवत ग्रंथ ॥

एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपिलोकानुशासनार्थंमहानुभावः परमसुहृद् भगवान् ऋषभापदेशः उपशमशीलानामुपरतकर्म्मणां महामुनीना भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्म्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्टं परमभागतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं

भवनएवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रहः उन्मत्तइवगगनपरिधानः प्रकीर्णकेशः आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥

अर्थः-वह ऋषभदेव भगवान् इस प्रकार अपने बेटोंको समझाकर उनके बेटे यद्यपि आपही ज्ञानवान् हैं तौ भी लोकरीतिके अर्थ समझाकर महात्मा परम मित्र भगवान ऋषभदेव शांति परिणामी नाश किया है कर्म जिन्होंनें, भक्तिवान् ज्ञानवान् वैरागी महा मुनीश्वरोंको परमहंस धर्मका उपदेश देते हुवे और सौ (१००) बेटोंमें बड़े मनुष्योंमें तत्पर ऐसे भरतको पृथ्वीके पालनेके वास्ते राज्य देकर और आप केवल शरीरमात्र परिग्रह रखकर केश लोंचकर नग्न आत्मामें स्थापन किया है ब्रह्मस्वरूप जिन्होंने, उन्मत्तकी तुल्य पृथ्वीपर भ्रमण करते संते हमारी रक्षा करो ॥

॥ भर्तृहरिशतक, वैराग्य प्रकरण ॥

एको रागिषु राजते प्रियतमादेहार्द्धधारी हरो।
नीरागेषु जिनो विमुक्तललनासंगो न यस्मात्परः॥
दुर्व्वारस्मरवाणपन्नगविषव्यासक्तमुग्धो जनः।
शेषः कामविडंवितो हि विषयान् भोक्तुं न मोक्तुं क्षमः ॥ *

अर्थः-बडी प्यारी गौरीके आधे देहको धारण किये हुवे रागी पुरुषोंमें एक शिवही शोभता है और वीतरागियोंमें ऐसे जिनदेवसें बढकर और कोई नहिं है, जिन्होंने स्त्रियोंके संगकोही छोडदिया है; इन दोनोंसें जो भिन्न पुरुष है, जो दुर्वार कामदेवके बाणरूपी सर्पोंका विषके चढनेसें पागल हुए कामसें ठगे है, वे पुरुष न विषयोंके छोडनेको समर्थ है और न भोगनेको समर्थ है.।

भावार्थः-इसमें शिवको परम रागी और जिन भगवान अर्थात् जैनियोंके देवताको परम वीतरागी कहकर प्रशंसा की है और राग अर्थात् विषयभोगकी निन्दा की है।

॥ योगवासिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण ॥

राम उवाच। नाहं रामो न मे वाञ्छा भावेषु च न मे मनः।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि चात्मन्येव जिनो यथा॥

अर्थः--रामजी बोले कि न मैं राम हूं, न मेरी कुछ इच्छा है, और न मेरा मन पदार्थोंमें है; केवल यह चाहता हूं जिन देवकी तरह मेरी आत्मामें शान्ति हो.

भावार्थः--रामजीने जिन समान होनेकी वांच्छा करी, इससें विदित है कि जिनदेव रामजीसे पहले और उत्तमोत्तम है.

*यदि पुराने छपे भर्तृहरिके ग्रंथोंमें यह श्लोक विद्यमान है, परंतु इसमें जिन देवकी स्तुति होनसे नये छपे ग्रंथोंमेंसे जानके निकाला गया है.

॥ दक्षिणा मूर्त्ति सहस्रनाम ग्रन्थ ॥

शिवउवाच । जैनमार्गरतो जैनो जितक्रोधो जितामयः ॥

अर्थः—शिवजी बोले, जैनमार्गमें रति करनेवाला जैनी, क्रोधके जीतनेवाला, और रोगोंके जीतनेवाला.

भावार्थः—शिव अपने हजार नामोंमें एक नाम जैनी बताकर क्रोधको जितनेवाले कहते हैं.

॥ वैशंपायनसहस्रनाम ग्रन्थ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शूरः शौरिर्जिनेश्वरः ।

अर्थः—भगवानके नाम इस प्रकार वर्णन किये हैं ॥ कालनेमिके मारनेवाला, वीर, बलवान्, कृष्ण और जिनेश्वर ।

॥ दुर्वासा ऋषिकृत महिम्नस्तोत्र ॥

तत्र दर्शने मुख्यशक्तिरिर्ति च त्वं ब्रह्म कर्मेश्वरी ।
कर्त्ताऽर्हन्पुरुषोहरिश्च सविता बुद्धः शिवस्त्वं गुरुः ॥

अर्थः—वहां दर्शनमें मुख्य शक्ति आदि कारण तू है, और ब्रह्म भी तू है. माया भी तू है, कर्त्ता भी तू है और अर्हन् भी तू है, और पुरुष (जीव), हरि सूर्य, बुद्ध और महादेव गुरु वेस भी तूही है, ॥

भावार्थः—यहां अर्हन् तू है ऐसा कहकर भगवानकी स्तुति करी.

॥ हनुमन्नाटक ॥

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्त्तेति नैयायिकाः ॥
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्म्मेति मीमांसकाः ।
सोयं वो विदधातु वांच्छितफलं त्रैलोक्यनाथः प्रभुः ॥

अर्थः—जिसको शैवलोग महादेव कहकर उपासना करते हैं, और जिसको वेदान्ति लोग ब्रह्म कहकर और बौद्ध लोग बुद्धदेव कहकर और युक्ति शास्त्रमें चतुर नैयायिक लोग जिसको कर्त्ता कहकर और जैनमतवाले जिसको अर्हन् कहकर मानते हैं और मीमांसक जिसको कर्मरूप वर्णन करते हैं वह तीन लोकका स्वामी तुम्हारे वांच्छित फलको देवै ॥

भावार्थः—हनुमानने समुद्र सेतू बांधते वखत छ मतोंमें जिन देवकी भी स्तुति करी है. अर्थात् रामचंद्रजीके समयमें जैनमत विद्यमान था.

॥ भवानीसहस्रनाम ग्रंथ ॥

कुण्डसना जगद्धात्री बुद्धमाता जिनेश्वरी ।
जिनमाता जिनेंद्रा च शारदा हंसवाहिनी ॥

अर्थः-भवानीके नाम ऐसें वर्णन किये हैं ॥ कुंडासना, जगतकी माता, बुद्ध देवकी माता, जिनेश्वरी, जिनदेवकी माता, जिनेंद्रा, सरस्वती हंस, जिसकी सवारी है ॥

॥ नगरपुराण भवावतार रहस्यमें ॥

अकारादि हकारान्तं मूर्द्धाधोरेफसंयुतं। नादविंदुकलाक्रान्तं चन्द्रमंडलसन्निभं ॥ एतद्देवि परंतत्त्वंयोविजानातितत्त्वतः । संसारबन्धनं छित्वा सगच्छेत्परमां गतिम्

अर्थः—आदिमें अकार और अंतमें हकार और ऊपर और नीचे रकारसे युक्त नाद और बिन्दु सहित चन्द्रमाके मंडलके तुल्य ऐसा अर्हन् (जिनदेव) जो शब्द है यह परम तत्त्व है, इस्को जो कोई यथार्थ रूपसें जानता है वह संसारके बंधनसे मुक्त होकर परम गतिको पाता है.

॥ नगरपुराण ॥

दशभिर्भोजितैर्विप्रैः यत्फलं जायते कृते ।
मुनिरर्हन्तभक्तस्य तत्फलं जायते कलौ ॥

अर्थः—सत्ययुगमें दश ब्राह्मणोंको भोजन देनेसे जो फल होता है वहही फल कलियुगमें अर्हतभक्त मुनिको भोजन देनेसे होता है.

॥ मनुस्मृतिग्रंथ ॥

कुलादिबीजं सर्वेषां प्रथमो विमलवाहनः ।
चक्षुष्मांश्च यशस्वी वाभिचन्द्रोथ प्रसेनजित् ॥
मरूदेवी च नाभिश्च भरते: कुलसत्तमः ।
अष्टमो मरूदेव्यां तु नाभेर्जात उरुक्रमः ॥
दर्शयन् वर्त्मवीराणां सुरासुरनमस्कृतः ।
नीतित्रितयकर्त्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः ॥

अर्थः—सर्व कुलोंका आदि कारण पहिला विमलवाहन नामा और चक्षुष्मान ऐसे नामवाला यशस्वी अभिचन्द्र और प्रसेनजित् मरुदेवी और नाभि नामवाला और कुलमें श्रेष्ठ भरत और आठवां नाभिका मरुदेवीसें उरुक्रम नामवाला पुत्र उत्पन्न हुआ. ॥ यह उरुक्रम वीरोंके मार्गको दिखलाता हुवा देवता और दैत्योंसे नमस्कारको पानेवाला और युगके आदिमें तीन प्रकारकी नीतिको रचनेवाला पहिला जिन भगवान हुवा ॥

भावार्थः—यहां विमलवाहनादि मनु कहे हैं, जैनमतमें इनको कुलकर कहा है और यहां युगके आदिमें जो अवतार हुवा है उस्को जिन अर्थात जैन देवता लिखाहै इससें विदित है कि जैनधर्म युगकी आदि विषे विद्यमान होनेसे सबसें पहिलेका है.

मनुजीको होनेको अन्यमतवाले लाखों वर्ष (सत्ययुगमें) मानते हैं. तो मनुजी पहिले जैनधर्म विद्यमान था.

॥ प्रभासपुराण ॥

भवस्य पश्चिमे भागे वामनेन तपः कृतम् ।
तेनैव तपसाकृष्टः शिवः प्रत्यक्षतां गतः ॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगम्बरः ।
नेमिनाथः शिवोथैवं नाम चक्रेऽस्य वामनः ॥
कलिकाले महाघोरे सर्वपापप्रणाशनम् ।
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदम् ॥

अर्थ—शिवजीके पश्चिमभागमें वामनने तप किया था उस तपके कारण शिवजी वामनको प्रत्यक्ष हुए. किस रूपमें प्रत्यक्ष हुवे? पद्मासन लगाये हुवे, श्यामवरण और नग्न. तव वामनने इनका नाम नेमिनाथ रक्खा । यह नाम इस भयंकर कलियुगमें सर्व पापोंको नाश करनेवाला है और इनके दर्शन वा स्पर्शनसें करोड यज्ञका फल होता है.

भावार्थः—श्रीनेमिनाथ भगवान् जैनियोंके २२ मे तीर्थंकर हैं, और जैनधर्मके ग्रंथोंमें भी उनका वर्ण श्याम लिखा है । इसप्रभास पुराणमें उनको शिवजीका अवतार वर्णन करके प्रशंसा की है.

॥ ऋग्वेद ॥

ॐपवित्रंनग्नमुपवि (ई) प्रसामहे येषां नग्ना (नग्नये) जातिर्येषां वीरा ॥

अर्थः—हमलोग पवित्र पापसें बचानेवाले नग्न देवताओंको प्रसन्न करते हैं जो नग्न रहते हैं और बलवान् हैं ।

ॐनग्नं सुधीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनं उपैमि वीरं
पुरुषमर्हंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात्स्वाहा ॥

अर्थः—नग्न धीर वीर दिगम्बर ब्रह्मरूप सनातन अर्हंत आदित्यवर्ण पुरुषकी सरण प्राप्त होता हूं ॥

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

आरोहस्व रथं पार्थ गांडीवंच करे कुरु ।
निर्जिता मेदिनी मन्ये निर्ग्रंथा यदि सन्मुखे ॥

अर्थः—हे युधिष्ठिर ! रथमें सवार हो और गांडीव धनुष हाथमें ले । मैं मानता हूं कि जिसके सन्मुख जैन मुनि आये उसने पृथ्वी जीतली.

मृगेंद्रपुराण ।

श्रवणोनरगोराजा मयूरः कुंजरोवृषः। प्रस्थानेचप्रवेशे वा सर्वसिद्धिकरामताः।
पद्मिनी राजहंसश्च निर्ग्रंथाश्च तपोधनाः। यंदेशमुपाश्रयंति तत्रदेशे सुखंभवेत् ।

अर्थः—मुनीश्वर, गौ, राजा, मोर, हाथी, बैल, यह चलनेके समय तथा प्रवेशके समय सामने आवैं तौ शुभ हैं और कमलनी, राजहंस, जिनकल्पीमुनि जिस देशमें हों उस देशमें सुख हो।

वाराहिसंहिता, गणेशपुराणादि ग्रंथोंमें जैनके विषयमें बहोत लेख हैं कहांतक लिखा जाय.

अन्यमतवाले हंसते हैं कि जैनीलोक कंदमूल नही खाते और रात्रीभोजन नही करते हैं, परंतु उनके ग्रंथोंमें भी इनही बातोंका निषेध है.

॥ महाभारत ग्रन्थ ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं।
ये कुर्वंति वृथा तेषां तीर्थयात्राजपस्तपः॥

अर्थः—जो कोई मदिरा पीता है मांस खाता है या रात्रीको भोजन करता है या कन्द [धरतीके नीचे जो वस्तु पैदा हुई आलू अद्रक मूली गाजरआदिक] खाता है उस पुरुषका तीर्थयात्रा जप तप सब वृथा है.

॥ मार्कंडेयपुराण ॥

अस्तं गते दिवानाथे अपोरुधिरमुच्यते।
अन्नं मांससमं प्रोक्तं मार्कंडेयमहर्षिणा॥

अर्थः—सूरजके अस्त होनेके पीछे जल रुधिर समान और अन्न मांस समान कहा है.

॥ भारत ग्रन्थ ॥

चत्वारोनरकद्वारं प्रथमं रात्रिभोजनं।
परस्त्रीगमनं चैव संधानानंतकायकं॥
ये रात्रौ सर्वदाहारं वर्जयंते सुमेधसः।
तेषां पक्षोपवासस्य मासमेकेन जायते।
नोदकमपि पातव्यं रात्रावत्र युधिष्ठिर।
तपस्विनोविशेषेण गृहिणांचविलोकिनां॥

अर्थ—नरकके चार द्वार हैं, प्रथम रात्रिभोजन करना, दूसरा परस्त्रीगमन, तीसरा संधाना खाना, चौथा अनंत काय अर्थात् कंद मूल आदिक ऐसी वस्तु खाना जिसमें अनंत जीव हों। जो पुरुष एक महिनेतक रात्रिभोजन न करे उसको एक पक्षके उपवासका फल होता है. हे युधिष्ठिर! गृहस्थीको और विशेषकर तपस्वीको रातको पानी भी नहीं पीना चाहिये।

मृते स्वजनमात्रेपि सूतकं जायते किल।
अस्तंगते दिवानाथे भोजनं क्रियते कथं।
रक्ताभवंति तोयानि अन्नानि पिशितानि च।

रात्रौ भोजनसक्तस्य ग्रासेन मांसभक्षणं ॥
नैवाहुतीर्नच स्नानं न श्राद्धं देवतार्चनं ।
दानं च विहितं रात्रौ भोजनं तु विशेषतः ॥
उदुंबरं भवेन्मांसं मांसं तोयमवस्त्रकं ।
चर्म्मवारोभवेन्मांसं मांसं च निशिभोजनं ॥
उलूककाकमार्जारगृध्रशंबरशूकराः ।
अहिवृश्चिकगोधाद्या जायन्ते निशि भोजनात् ॥

अर्थ—जैसे स्वजनके मरण मात्रसे सूतक होता है, ऐसाही सूर्य अस्त होनेके पीछे रात्रिको सूतक होता है इस कारण रात्रिको कैसे भोजन करना उचित है ? रात्रिको जल रुधिर समान होजाता है, और अन्न मांसके भावको प्राप्त होता है, इस कारण रात्रि विषे भोजन लंपटीको एक ग्रास भी मांसभक्षण समान हो जाताहै। रात्रिभोजन करनेवाले पुरुषको आहुति देना, स्नान करना, श्राद्ध करना, देवार्चन करना, दान देना, व्यर्थ है. । उदुंबर फल अर्थात् बडका फल, पीपलका फल, पीलूका फल, गूलरका फल आदिक मांस समानही हैं।

और रात्रिको भोजन करना भी मांस है । रात्रिको भोजन करनेसें उल्लू, कव्वा, बिल्ली, गिद्द, सूवर, सर्प, वीछू, गोहरा, गोह आदिकमें जन्म होता है.

॥ भारत ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कंदभक्षणं ।
भक्षणान्नरकं याति वर्जनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥
अज्ञानेन मया देव कृतं मूलकभक्षणं ।
तत्पापं यातु गोविंदं गोविंद तव कीर्तिनात् ॥
रसोनं गृंजनं चैव पलांडुपिंडमूलकं ।
मत्स्या मांसं सुरा चैव मूलकं च विशेषतः ॥

अर्थ—शराव पीने, मांस खाने, रातको भोजन करने और कंद भक्षण करनेसें जीव नरकमें जाता है और त्यागनेसें स्वर्गमें जाताहै ॥ हे गोविन्द ! मैंने अज्ञानता करके मूलक (अर्थात् मूली रतालु आदिक) खाया है वह पाप तुम्हारी कीर्तिसे दूर हों. लहसन, गाजर, प्याज, पिंडालू, मच्छी, मांस, मदिरा और विशेषकर मूलका भक्षण नहीं करना ॥

मद्यमांसाशनं रात्रौ भोजनं कन्दभक्षणं।
ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थयात्रा जपस्तपः ॥ १ ॥

वृथा एकादशी प्रोक्ता वृथा जागरणं हरेः ।
वृथा च पौष्करी यात्रा कृत्स्नं चांद्रायणं वृथा ॥ २ ॥
चातुर्म्मास्ये तु संप्राप्ते रात्रिभोज्यं करोति यः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥ ३ ॥

अर्थ—मदिरा और मांस इनको खाना और रातको भोजन तथा कन्दोंको भक्षण करना इनको जो करते हैं, तिनको तीर्थयात्रा, और ये सभी व्यर्थ है और उनका एकादशी व्रत और हरि निमित्त जागरण (रातको जागना, और पुष्करराजको यात्रा और सभी चान्द्रायण व्रतविशेष) ये वृथा होते हैं. चौमासेके आने पर जो रात्रिको भोजन करता है, उसको सैंकडों चान्द्रायण व्रतोंसे भी शुद्धि नहीं होती ।

शिवपुराण ।

यस्मिन्गृहे सदा नित्यं मूलकं पाच्यते जनैः ।
स्मशानतुल्यं तद्वेश्म पितृभिः परिवर्जितम् ॥
मूलकेन समं चान्नं यस्तु भुंक्ते नराधमः ।
तस्य शुद्धिर्न विद्येत चांद्रायणशतैरपि ॥
भुक्तं हालाहलं तेन कृतं चाभक्ष्यभक्षणं ।
वृन्ताकभक्षणं चापि नरो याति च रौरवं ॥

अर्थ--जिसके घर नित्य मूल पकाया जाता है उसका घर विना प्रेत स्मशानतुल्य है ॥ जो मनुष्य मूलके साथ भोजन खाता है उसका एकसौ चांद्रायण व्रत करनेसें भी पाप दूर नहीं होता है ॥ मांसतुल्य जिसने अभक्ष्य भक्षण किया उसने हालाहल जहर भक्षण किया और जिसने वैंगन खाया वह नर रौरव नरकमें जाता है ॥ वगैरह वहोत प्रमाण है. अफसोस है ! इनके शास्त्रोंमें ऐसे स्पष्ट प्रमाण होते हुए भी, इसी कंदमूलको एकादशी आदि व्रतोंमें अन्यमति उमंगसें खाते हैं ॥

जैन धर्मकी अनादिसिद्ध करनेको ऐसे वहोत प्रमाण हैं. कहां तक लिखा जाय?

इस समयमें जैन श्वेतांवरमतमें मुनि श्रीमद् विजयानंदसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराज एक वडे विद्वान हुए हैं, उनोंने अपनी अपूर्व विद्वत्तासें धर्मकी योग्य सेवा वजाके वर्त्तमान समयमें जैनीयोंमें अग्रेसर पद प्राप्त किया है. इतनाही नहीं परंतु अन्य मतावलंबीओंमें, युरोप अमेरिकाके पंडितोंमें भी इन्होंने वडा नाम और मान पाया है. धर्ममें धूरीसमान, क्रियामें अचलायमान, अतिशय श्रद्धावान, परोपकारमें तत्पर, स्वभावसें शांत, कर्म-अरि जीतनेमें सामर्थ्यवान, ज्ञानमें प्रवल, इत्यादि गुणसंपन्न महात्माके अपने अंत समयमें वनाये हुए इस **तत्त्वनिर्णयप्रासाद** ग्रंथको पढनेको, मनन करनेको, उनका चरित्र, और चित्रद्वारा उनकी मुखमुद्रा निहारनेको कौन भाग्यवान् उत्सुक नहिं होगा ? सर्व होंगे.

यह महात्मामें कइ गुण ऐसे थे जो वडे पुरुषोंमें भी एकही साथ वहु कठिनतासें पाये जाते हैं. प्रायः आंतरीय गुणोंके अनुसार वाहिरकी आकृति होती है. दृढ विचारवाले पुरुषकी दृढता इत्यादि उनके चेहरेपर जाहिर होती है. कामी पुरुषका काम उसकी आंख और गालके उपर दृष्टिगोचर होता है. हठपणा जडवासें जाहिर होता है. आकृति देखकर गुणअवगुण कहना यह प्राचीन अष्टांगगोचर होता है.

आधुनीक समयमें भी अमेरिकादि देशोंमें यत्किंचित् यह विद्या जाननेवाले हैं. इन महात्माका जिसने दर्शन नहि किया है वह उनकी तस्वीर देखकर उनकी भव्यता देख शकता है, परंतु पुण्योदयके प्रभावसें जिनोंने उनकी चरणसेवा की है वे तो पांच महाव्रत पालनेकी निशानी महाराज श्रीके शरीरपर देख शकते थे. पांच महाव्रत हरेक मुनी पाले ऐसा ख्याल करें, परंतु इन महामुनिराजके ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी छाप उनकी चालमें, वाणीमें, वर्तावमें, व्याख्यानमें, साधारण वार्तालापमें, टुकमें हरेक प्रसंगपर जाहिर होतीथी, हजारों साधुओंके बीचमेंसें उक्त मुनिराज एकदम अनजान आदमीको भी नजर आ जाते थे ऐसी उनकी भव्य आकृति थी.

आज काल हम देखते हैं के किसी खास धर्मगुरुकेपास व्याख्यान श्रवण करनेको अन्य धर्मवाले प्रायः करके नहि जाते हैं. विशेष करके वेदमतानुयायी ब्राह्मणोंने जैनोंकी तरफ अपना द्वेष जगे जगे जाहिर किया है. जैन यानि नास्तिक-पाखंडी. फिर उस धर्मके साधु और उपदेशक तो दूरसेंही नमस्कार करने योग्य माने उसमें क्या आश्चर्य? परंतु मुनि श्रीआत्मारामजीके संबंधमें अन्य मतवालोंका वर्तन वहुतही प्रशंसनीय था. पंजावमें महाराजश्रीने वहुत काल व्यतीत किया था, और उनके व्याख्यानमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सव वर्णके लोग आते थे. आते थे इतनाही नहीं परंतु उनको पूज्य गुरु समझते थे. उनमें अन्यमतावलंबीयोंको सत्य मार्ग वतानेकी शक्ति भी अद्भुत थी. किसीको बुरा नहीं मनाकर जीज्ञासुके संशयको दूर करते थे. एक समय अंवाला शहरमें एक वेदमतानुयायी गृहस्थ महाराजश्रीका नाम सुनकर आकर नम्रतासें नमस्कार करके वैठा. थोडी देरके वाद उसने पूछा "महाराज! हमने सुना है कि आप जैनी लोग ईस जगत्का कोई कर्त्ता नहीं है ऐसा मानते हैं यह वात सच्च है क्या?" महाराजजीने कहा "जगत्कर्ता ईस शब्दका अर्थ समझनेमें लोगोंकी भूल होती है. जिससे जैनधर्म संबंधी खोटा अपवाद प्रचलित हुआ है. मैं तुमको पूछता हूं कि तुम खुद जगत्कर्ता ईश्वरको मानते हों तो कहो यह ईश्वर कौनसी जगा रहता है? उस गृहस्थने कहा "महाराज! ईश्वर सबही जगापर है; सब जीवोंमें ईश्वर हैं. कोई जगा विनाईश्वरके नहीं है." महाराजजीने कहा, "ठीक है. हम इसको आत्मतत्त्व कहते हैं, वह हरेक जीववाली वस्तुमें है. यह आत्मतत्त्व कर्मानुसार शरीर रचता है, तो इस आत्मतत्वको अमुक अपेक्षासें जगत्कर्ता कहनेमें आवे तो हमको कुच्छ उजर नहि है. परंतु एक वात जाननी जरूर है के यदि ईश्वरको सामान्य लोकोंके माने मुजिव जगत्कर्ता माना जायतो कामी पुरुष व्यभिचार करता है तो उनको प्रेरनेवाला

ईश्वर होना चाहिये. कभी ईश्वर जीवोंको कर्मानुसार फल देता है ऐसा माना जाय तो भी जब कामी पुरुषके व्यभिचारसें स्त्रीको पूर्वकर्मानुसार फल मिला तब वो फल ईश्वरने उसको दिया. और उस कामी पुरुषको व्यभिचार द्वारा वह फल मिला इसलिये यह व्यभिचारकी इच्छा ईश्वरने पैदा की शिवाय इसके उस स्त्रीको या उस पुरुषको पूर्वोक्त फल कैसे मिल शकता?" उस गृहस्थने कहा "महाराज! ईश्वर तो साक्षी मात्र है." महाराजजीने कहा "हम भी निश्चयनयकी अपेक्षासें कहते हैं कि, आत्मा (ईश्वर) साक्षी मात्र है. उस गृहस्थने कहा "महाराज! ऐसा है तब आपके और हमारे मतमें क्या तफावत है?" महाराजजीने कहा "तुम वस्तुका एक धर्म ग्रहण करके एकांतवादमें दूसरे धर्मोंको स्वीकारते नहीं हो, हम वस्तुके सबही धर्म अंगीकार करते हैं. परंतु कथनमें सर्व धर्म युगपत् कथन करने अशक्य होनेसें और सबधर्म एक दूसरेके साथ ऐसे मिले हुए हैं कि एक दुसरेसें सर्वथा छुटे नहीं पड सकते हैं. इस सबबसें जब हमको एक या ज्यादा धर्मके संबंधमें व्याख्यान करना पडताहै तब कहते हैं कि "स्यात् अस्ति इत्यादि" अर्थात् कथंचित् (अमुक अपेक्षासें वस्तु है, कथंचित् नही है,) इत्यादि."

इस संभाषणसें वह गृहस्थ बहुतही संतुष्ट होकर महाराजजीके गुणानुवाद करता करता स्वस्थानमें गया. जैसें साधारण बातचीतमें ऐसें व्याख्यानमें भी स्याद्वाद मार्गकी शैली महाराजजीके शब्द शब्दमें व्यापीहुई मालूम पडतीथी. "षड्दर्शन जिन अंग भणीजे" यह आनंदघनजी महाराजका वाक्य सत्य है. यह बात उनके साथ मात्र पांच मिनीट बात करनेसें मालूम होतीथी.

कोई अनजान गृहस्थ महाराजजी पास शंकाके पूछनेको आते तो उनकी शंकाका समाधान प्रश्न पूछनेके पहिलेही प्रायः बातचितमें होजाताथा. जैन समुदायके उपर महाराजजीश्रीने जो जो उपकार किये हैं, वे सर्व अवर्णनीय हैं. धर्म संबंधी ज्ञान जैनोंमें बहुत कचा होगयाहै यह तो जाहिर बात है. कोई युवान धर्मज्ञान प्राप्त करनेको चाहताथा तो उसको साधन मिलते नहिं थे. साधन प्राप्त होते तो समझनेमें मुस्केली पडतीथी. यह बडा अंतराय जो जीज्ञासु पुरुषके मार्गमें था सो इन्होनें दूर किया. जैन तत्वादर्श जैसा अमूल्य ग्रंथ हिंदी सरल भाषामें लिखकर जैनोंके तत्व समझनेमें आवे इसतरह लोक समक्ष रजु किया. यह कुच्छ कम उपकारका काम नहीं है. कितनेक अनसमजु लोकोंका मत है कि ज्ञानको भंडारमेंज रखना. ज्ञान पंचमी जैसे दिनोंमें पुजामें रखना, परंतु जिनेश्वर भगवानने पुकारके उपदेश किया है कि आत्माका ज्ञान गुण बहार आवेगा तबही सिद्धिपदकी प्राप्ति होगी. ज्ञान अभ्यासके वास्ते है, नहिके संग्रहके लिये, ज्ञानको गुप्त रखनेसे, लोगोंको ज्ञानके साधन शक्तिके होवे भी नहीं देनेसें ज्ञानावर्णीय कर्म बंधाता है, यह जैन सिद्धांत हैं और यह सिद्धांतके अनुसार महाराजजीश्रीने जगा जगा पुस्तकालय बनवाके पुस्तकद्वारा और उपदेशद्वारा ज्ञानका फेलाव किया है और यह पुस्तक भी उसी ज्ञानका फल है. हम सब इस भाग्यवान महा पुरुषके उपकारनीचे दबेहुए.

है. हमारे ज्ञान पर्याय इस मुनीराजके सदुपदेश और आज्ञानुसार वर्तनसें किंचित् वहार आये हैं. इनके उपकाररूप ऋणको हम कीसी तरह भी अदा नहीं कर सकते हैं. इस प्रकारका मत उनके तमाम अनुयायीयोंका है. हां एक बात है की इन महात्माके नामसें प्रतिग्राम और प्रतिनगर जैन विद्याशाला स्थापन करी जावे और जिसमें सांसारिक विद्याके साथ धार्मिक विद्याका ज्ञान दिया जावे तो पूर्वोक्त महात्माके किये उपकारका यत्किंचित् वदला उतर सकता है. एसे २ कइ उपकार यह महात्मा कर रहे थे. परंतु आः हा ! दैवकी गति न्यारी है, भारतवर्षभूषण, विद्यापारंगत, सुधारणास्थापक, धर्मविजयके आनंद, आत्मामें रमण करनहार, सुरि देवलोक प्राप्त हुए. वह भव्यमूर्ति, निडर घंटनादसम वाणी हृदय, पारंगत दृष्टि, वज्रसमान मर्मयुक्त खंडनकला, सदा सर्वथा मन वचन कर्मवाणीसें प्रकाशित केवल निःस्वार्थी धर्माभिमान यह एक क्षणमें भारतभूमिको दुर्भागि करनेको अदृश्य हो गये. मातृभूमिको भी दुष्काल महामारीरूप दुःखका वैधव्य स्वामिवियोगसें हुवा नहो !

पूज्यमहाराजजीने यह ग्रंथ अपनी अंत अवस्थाके थोडेही काल पहीले वनायाथा. अन्य मतके उपर उजाला डालनेवाली वहोतसी वाते इसमें है. मेरेपर उनका पुरा अनुग्रह होनेसें यह ग्रंथ मुझको दिया गया था. प्रसिद्ध करनेको छपवाना सुरू किया. वाद महामारी, छापखानेकी अव्यवस्था, वाद छापखानेका वीकजाना, मेरेपर स्त्रीमरणादि आफतोंका आना, तस्वीरें मिलनेमें देरी, और जाहिर करने योग्य नहि ऐसें विघ्नोंसें और कुच्छ प्रमादसें भी ग्रंथका प्रसिद्ध होना ढीलमें रहा. अव यह ग्रंथ वाचकवर्गके आगे रजुकर शका हूं ; जिसका पुरा धन्यवाद मैं आचार्यजी महाराज श्रीकमलविजयजी और मुनिराज श्रीवल्लभविजयजी आदिको देताहूं कि उन्होंने औषधीरूप कटुलेख आदिसें मुझको जागृत करके प्रसिद्ध करवाया.

जिस जिस महाशयोंने इस ग्रंथको खास सहाय दी है, उनका पुरा धन्यवाद मानताहूं; उनकी सविस्तर हकीकत आगे आवेगी. *

आगेसें ग्राहक होकर पूरी मदद देनेवाले महाशयोंके नाम भी आगे दाखिल किये हैं.

यह पुस्तक धर्मकार्यमें उपयोग करनेवालेको, पुस्तकालय भंडारमें भेट करनेवालेको, इनामके लिये लेनेवालेको, साधारण पाठकवर्ग वगैरे सवके सुभिताके लिये सहायदाताओंकी मददसें कम मूल्यमें दिया जायगा. योग्य मुनिराजोंको यह पुस्तक भेट भेजा जायगा.

इन ज्ञानी आचार्यका अद्भुत वंशवृक्ष रंगीन वृक्षके माफिक वनाकर इस पुस्तकमें प्रसिद्ध किया है. इस ग्रंथकी तमाम तस्वीरें अमेरिका और इंग्लंडसे वहोत खरचा देकर खास कारीगरके हाथसें वनवाकर मंगाई हैं. कागज मोटे और सफाईदार पसंद किये हैं. अक्षर वडे हैं जो देखने और पढनेसें पाठकवर्ग खुश होंगे. ज्ञानका अनुमोदन करेंगे तो प्रसिद्ध कर्त्ताका परिश्रमका वदला मिला समझा जायगा.

---

* सहायदाता महाशयोंकी उमदा छबी और अल्प वृत्तांत उन महाशयोंकी इच्छा नहीं होते हुवे भी सहायताके केवल उपकारार्थ छापे गये हैं.

मुद्रालयके और दृष्टि दोषके कारणसें जो भूल रहगईहै उसका सूक्ष्म शुद्धिपत्रक ग्रंथमें दाखल किया है. फिर भी कोई भूल रह गई होतो सुज्ञ पाठक वर्गसें प्रार्थना है कि सुधारके वांचे.

सस्ती किंमतमें ग्रंथको प्रसिद्ध करानेके वास्ते जिन महाशयोंने मदद दीहै उनकी तस्वीर वगैरेह इस ग्रंथमें प्रसिद्ध कर्ताने उन महाशयोंकी केवल कदर बुजनेको प्रसिद्ध साधु, अग्रेसरी धर्मके जानकर जैन बंधुओंकी संमति लेकर दाखल किये हैं. मेरेपास ऐसी सम्मति मोजूद होते हुए भी चंद जैनबंधुओंने गृहस्थोंकी तस्वीर वगैरेह दाखल करनेमें विरुद्ध उठायाथा. अगर यह वात ग्रंथ प्रसिद्धकर्ताकी मरजीकी थी, परंतु किसीको पुस्तकका अंतराय न होवे इस लिये मैं तीन तरहके पुस्तक बंधवाये है. (१) मूल ग्रंथ, प्रस्तावना, जन्म चरित्र, और तस्वीर दाखल किया हुवा, संपूर्ण ग्रंथ; (२) और ग्रंथकर्ताकी तस्वीर और मूल ग्रंथ;(३) और प्रस्तावना, ग्रंथकर्ताका जन्म चरित्र, साधुकी तस्वीरें, गृहस्थोंकी तस्वीरें और टुंक वृत्तांतका अलग ग्रंथ. किमत सबकी एकही पडेगी, जीनको जैसा चाहे वैसा मंगवा लेवे. कितनेक ग्राहकोंका यह आग्रह है कि हमको तो संपूर्ण ग्रंथ साथही चाहिये इस लिये किसीका दील दुःखी न होवे, ऐसा रस्ता नीकालके उपर मुजिब मैंने व्यवस्था की है. पुस्तक प्रसिद्ध होनेमें ढील होनेसें जो ज्ञानांतराय हुवा है उसकी मैं क्षमा चाहकर आखिर कहताहूं कि इस पुस्तककी शोधनमें, इसकी उमदा हस्ताक्षरसें नकल करनेमें, प्रस्तावना लीखनेमें, और प्रूफ वगैरह सुधारनेमें जो किमती सहायता देके श्रीमद विजयानंदसूरिश्वरके जेष्ठ शिष्य श्रीमान् पंडित श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य श्रीमान् श्रीहर्षविजयजीके शिष्य मुनि श्रीवल्लभविजयजीने जो परिश्रम उठाया है उनको और पंडीतजी अमीचंदजीको मैं धन्यवाद देता हूं कि उन्होंने गुरु भक्ति और धर्मसेवा निमित्त जैनधर्म और उसके अनुयायी उपर अमूल्य उपकार किये हैं.

श्रीमद् विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराजके पाटपर श्रीमद् कमलविजय सूरि महाराज विराजमान हुवे, उनकी और इस ग्रंथको उपर लिखी मदद देनेवाले मुनिश्री वल्लभ विजयजीकी तस्वीरें दाखल करानेको भी वहुत महाशयोंने जोर दिया, वे तस्वीरें भी उन्होंकी आज्ञा नही होते हुवे भी केवल धर्मसेवा और ग्राहकोंकी तीव्र जीज्ञासाको तृप्त करनेको दाखल की है जिसकी मैं क्षमा चहाता हुं.

यह ग्रंथ कायदे माफक रजीस्टर करवाया है, और सर्व हक प्रसिद्ध कर्त्ताने अपने स्वाधिन रखा है.

सर्वको आनंद सुख प्राप्त हो. तथास्तु ! ! !

दासानुदास,

अमरचंद पी० परमार.

॥ ॐ ॥

॥ श्रीपरमात्मने नमः ॥

उपोद्घात

विदित होवेकि, इस संसारसमुद्रमें सतत पर्यटन करनेवाले प्राणियोंको, जन्ममरणादिक असुम दुःखोंमेंसें मुक्त करनेवाला, केवल एक धर्मही है. अन्यमतावलंबियोंके शास्त्रोंमें भी, ऐसेंही कहा हुआ है. ऐसा जो धर्म, उसका मूल तो सर्वांशयुक्त दयाही है; दयाकरके धर्मकी प्राप्ति होती है, और परिपूर्ण धर्मकी प्राप्ति हुए, जीव, मोक्षको प्राप्त होता है. इसवास्ते दया सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है. सर्वमतोंवाले दयाका उपयोग करते हैं, परंतु सर्वांश दयाका उपयोग करते नही है; इसीवास्ते उनको धर्मपदार्थका जैसा चाहिये, वैसा लाभ नही प्राप्त होता है. दयाका सर्वांश उपयोग तो, केवल जैनदर्शनमेंही स्वीकार किया है; तिससेंही जैनदर्शन, धर्मधुरीसर कहा जाता है. इसवास्ते दयाका सर्वांश उपयोग करना आवश्यक है. क्योंकि, जब दया पदार्थ सर्वांशयुक्त पालनेमें आवे, तबही तिससें धर्मोपलब्धि होवे; अन्यथा कदापि नही. सर्वमतावलंबियोंको दया मान्य है, तथापि उनके समझनेमें फरक होनेसें, वे, श्रेष्ठतापूर्वक दयाका सर्वांश-उपयोग, नही करसकते हैं. यह वात, इस ग्रंथके अग्रेतनव्याख्यानसें सिद्ध हो जायगी; तथा श्रीसूत्रकृतांगादिशास्त्रोंमें भी वर्णन किया है कि,-कितनेक (अन्यधर्मी) कहते हैं, प्राणी जबतक शरीरमें सुखी होवे, तबतक उसके ऊपर दया करनी, परंतु जब वह, व्याधिग्रस्तस्थितिमें पीडित होवे, तबतो, उस प्राणीका वध करके, पीडासें मुक्त करना, सोही दया है. कितनेक कहते हैं कि, सूक्ष्म, अथवा स्थूल जे प्राणी, मनुष्योंको दुःख देते हैं, उनको मारदेना, यही दया है. कितनेक यज्ञयागादिमें प्राणियोंका नाश करनेमेंही धर्मधुरंधरता, और दया मानते हैं.

या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ इत्यादि वचनात्.

भावार्थः-इस चराचर जगत्में जो वेदोक्त हिंसा नियत की गई है उसको अहिंसाही जानना चाहिये; क्योंकि, वेदसेंही धर्मकी उत्पत्ति हुई है, इत्यादि.

और कितनेक अतिसूक्ष्मादि प्राणी, जिसका स्वरूप दृष्टिगोचर नही, उसकी किंचित्-मात्र भी चिंता नही करते हैं; किंतु केवल स्थूलप्राणियोंके ऊपरही दया करनेमें दया मानते हैं. ऐसें अनेक प्रकारसें मनःकल्पित दयाका उपयोग, प्रायः अन्यमतावलंबी करते हैं; तथापि, वे, स्वदया १, परदया २, द्रव्यदया ३, भावदया ४, निश्चयदया ५, व्यवहारदया ६, स्वरूपदया ७, अनुबंधदया ८, इत्यादि दयाके जो अनेक भेद जैनग्रंथोंमें सविस्तर वर्णन किये हैं, तदनुसार प्रवृत्त होके, दयाका स्वरूप, नयशैलीपूर्वक समझते नही हैं; यही उनकी मतिमें विभ्रम है; और ऐसी भ्रमितमतिवाले दर्शनियोंका मत, कदापि शुद्ध नहीं. किंतु,

जिस दर्शनमें अपने आत्माका आत्मपणा जानके, पूर्णदयाको अंगीकार करी होवे, सो तो, एक, श्रीजैनदर्शनही है, जो सर्व लोकको विदित है, और इससें यह धर्म, जगत्‌में सर्वोत्कृष्ट कहा जाता है.

इस धर्मके अपेक्षावशसें आचारधर्म, दयाधर्म, क्रियाधर्म, और वस्तुधर्म, ये चार भेद होते हैं. और दान, शील, तप, और भाव, येही चार तिसके कारण है. धनके बलसें दान होता है, मनोबलसें शील पलता है, शरीरबलसें तप होता है, और सम्यग्ज्ञानबलसें भावधर्मकी वृद्धि होती है.

भावधर्म, दान शील तपसें अधिक है. क्योंकि, भावधर्मका कारण ज्ञानबल है, जिसकरके वस्तुका स्वरूप जाना जाय सो ज्ञान है. ज्ञानसें जितना आत्मधर्मकी वृद्धि, और संरक्षण होता है, उतना प्रथमके तीन दान, शील, तप, इनसें नही होता है. इसका कारण यह है कि, नय, निक्षेप, प्रमाण, चार अनुयोगविचार, सप्तभंगी, पट्‌द्रव्यादिकका विचार, इत्यादि सर्व, ज्ञानबलकरकेही जीवको परिपूर्ण प्राप्त होता है. श्री दशवैकालिक सूत्रमें भी प्रथम ज्ञान, और पीछे क्रिया कही है. " पढमं नाणं तओ दया " इति वचनात्. ज्ञान विनाकी जो क्रिया करनी है, सो भी, क्लेशरूप प्रायः है; क्रिया ज्ञानकी दासी तुल्य है; ज्ञानी पुरुषकी अल्पक्रिया भी, अत्यंत श्रेष्ठ है. " जं अन्नाणी कम्मं खवेइ बहुहिं वासकोडिहिं । तं नाणी तिहिं गुत्तो खवेइ ऊसासमित्तेणं " इति वचनात्. श्री उत्तराध्ययन सूत्रमें कहा है कि, ज्ञानगुणसंयुक्त जो होवे, उसको मुनि कहना; इससें भी ज्ञानका माहात्म्य कथंचित् अत्युत्कृष्ट मालूम होता है. श्री महानिशीथ सूत्रमें ज्ञानको अप्रतिपाति कहा है. श्री उपदेशमालामें कहा है, ज्ञानरूप नेत्रकरके चक्षुष्मान्, ऐसे मुनिको वंदन करना योग्य है.

श्री देवाचार्य, श्री मल्लवादी प्रभृति आचार्योंने, दिगंबर बौद्धादिकोंका पराजय किया, और यशोवाद प्राप्त किया; तथा श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजीने, काशीमें सर्व वादीयोंका पराजय करके 'न्यायविशारद' की पदवी पाई, सो भी, ज्ञानकाही प्रभाव जानना.

ज्ञानविना सम्यक्त्व नही रह सकता है, ज्ञानविना अहिंसा मार्ग नही जाना जाता है, सिद्धांतोक्त सकल क्रियाका मूल जो श्रद्धा, उसका भी कारण ज्ञान है. क्योंकि, ज्ञानविना प्रायः श्रद्धा प्राप्त होती नही है, ऐसा जो ज्ञान, उसके पांच भेद हैं. मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यव, और केवल. इन पांचोंमें भी, श्रुतज्ञान सर्वसें अधिकोपयोगि है. श्रुतज्ञान पदार्थ मात्रका प्रकाशक है, स्वपरमतका परिपूर्ण प्रकाश करनेवाला भी श्रुतज्ञानही है, अज्ञानरूप अंधकार पटलको दूर करनेवास्ते सूर्य समान है, और दुस्समकालरूप रात्रिमें तो दीपक समान है. तथा स्वपरस्वरूपका बोध करानेको श्रुतज्ञानही समर्थ है, अन्य चारों ज्ञानसें जाने हुए पदार्थका स्वरूप भी श्रुतज्ञानसेंही कहा जाता है, इसवास्ते मत्यादि चारों ज्ञान स्थापने योग्य है, "चत्तारि नाणाइं ठप्पाइं ठवणिज्जाइं" इति श्रीअनुयोगद्वारसूत्रादिवचनात् । इसवास्ते श्रुतज्ञानही, उपकारक है. क्योंकि, श्रुतज्ञानसेंही उपदेश होता है, श्रुतज्ञानसेंही शुद्धात्मिक परमपदकी प्राप्ति होती है, इस

वास्ते श्रुतज्ञान बडा निमित्त कारण है; श्रुतज्ञानके सुननेसें जीवको शुद्ध स्वरूप विशुद्ध श्रद्धानकी प्राप्ति होती है, और उससें शुद्धात्माका आचरण आसेवन अनुभव उत्पन्न होता है, सोही परमपद प्राप्ति जाननी. श्रुतज्ञानके श्रवण करनेसें जीव, धर्मको विशेषकरके जानता है, विवेकी होता है, दुर्मतिका त्यागी होता है, यावत् मोक्षको प्राप्त होता है. इसवास्ते श्रुतज्ञानका आदर, अवश्य करना चाहिये. श्रुतज्ञानका संयोग होना जीवको अतीव दुर्लभ है.

श्रुतज्ञानके संयोगसें श्री गौतमस्वामी, सुधर्मास्वामी, जंबूस्वामी प्रभृति बहुत जीव, संसार समुद्रको तर गये. और वर्त्तमानकालमें महाविदेहक्षेत्रमें श्री सीमंधरादिक तीर्थंकरोंकी वाणी सुनके, बहुत जीव, तर रहे हैं. और आगामिकालमें पद्मनाभादि तीर्थंकरोंकी वाणी सुनके, अनेक जीव, तरेंगे. तैसेंही इस भरतादि क्षेत्रमें अद्यतनकालमें भी, जो जीव, श्रुतज्ञानको सुनेगा, पढेगा, औरोंको पढावेगा, अंतरंग रुचिसें श्रद्धा प्रतीत करेगा, करावेगा, सो, सुलभबोधि होवेगा, यावत्क्रमकरके मुक्तिको प्राप्त होवेगा. ऐसे श्रुतज्ञानका मूल, द्वादशांगी है. तिस श्रुतज्ञानकी वाचना (१) पृच्छना (२) परावर्त्तना (३) अनुप्रेक्षा (४) और धर्मकथा (५) होती है. सो धर्मकथा, श्री उववाइसूत्रमें चार प्रकारकी कही है आक्षेपिणी (१) विक्षेपिणी (२) निर्वेदिनी (३) और संवेदिनी (४). जिससें एक तत्त्व; मार्गमें प्रवृत्ति होवे, तिस कथाका नाम आक्षेपिणी कथा है. । १ । जिसमें मिथ्यात्वकी निवृत्ति होवे, तिसका नाम विक्षेपिणी है. । २ । जिससें मोक्षकी अभिलाषा उत्पन्न होवे, तिसका नाम निर्वेदिनी है. । ३ । जिससें वैराग्यभावकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम संवेदिनी है. । ४ । ऐसी श्रुतज्ञानरूप कथा, श्री अरिहंत, देवाधिदेव, परमेश्वर, तीर्थंकर, सर्वज्ञ, जीवनमोक्ष, समवसरणमें बैठके "उपन्नेइवा विगमेइवा धुवेइवा" इस त्रिपदी उच्चारणपूर्वक, द्वादश पर्षदाके मध्यमें करते हैं. और तिससें (त्रिपदीसें) श्रीगणधर, द्वादशांगीकी रचना करते हैं, तिनको सूत्र कहते हैं. तथा तीर्थंकरके शासनमें हुए प्रत्येक बुद्ध, चतुर्दशपूर्वधर, दशपूर्वधर प्रभृति महान् पुरुष जिन जिन निबंधोंकी रचना करते हैं, तिनका भी सूत्र संज्ञा होनेसें द्वादशांगीमेंही समावेश होता है. क्योंकि, वे सूत्र भी, द्वादशांगीका आश्रय लेकेही, स्थविर, रचते हैं.

यदुक्तं श्रीनंदीवृत्तौ ॥

यत्पुनः शेषैः श्रुतस्थविरैस्तदेकदेशमुपजीव्य ॥
विरचितं तदनंगप्रविष्टमित्यादि ॥

परंतु गणधरकृत सूत्रको, 'नियतसूत्र' कहते हैं, और स्थविरकृत सूत्रको, 'अनियत' कहते हैं. ।

उक्तंच ॥ गणहरकयमंगकयं जंकय थेरेहिं बाहिरं तं तु ॥
नियतं चंगपविट्ठं अणिययं सुयबाहिरं भणियं ॥ १ ॥

गणधरकृतको अंगप्रविष्ट कहते हैं, और स्थविरकृतको अनंगप्रविष्ट, अर्थात् अंग बाहिर कहते हैं; तथा जो, अंग प्रविष्ट है, सो नियत है. क्योंकि, सर्व क्षेत्रोंमें सर्व काल अर्थ वा क्रमको अधिकारकरके ऐसेंही व्यवस्थित होनेसें. और शेष जो, अंगबाहिर

श्रुत है, सो अनियत है. । तथा उपन्नेइवा इत्यादि मातृकापदत्रयप्रभव, गणधरकृत, आचारादि, जो श्रुतज्ञान है, तिसको ध्रुवश्रुत कहते हैं; और जो, स्थविरकृत, मातृकापदत्रयव्यतिरिक्त, प्रकरणनिबद्ध उत्तराध्ययनादि, अंगबाह्य है, उनको अध्रुवश्रुत कहते हैं. ।

तदुक्तं श्रीस्थानांगवृत्तौ ॥

गणहरथेराइकयं आएसा सुत्तपगरणओ वा।
धुवचलविसेसणाओ अंगाणंगेसु णाणत्तंति ॥

इस श्रुतज्ञानके उद्देश, समुद्देश, अनुज्ञा, और अनुयोग, ये चार भेद होते हैं. सामान्य प्रकारसें कथन करना, सो उद्देश; यथा अमुक शास्त्र, वा अध्ययन, तू पढ' विशेष कथन करना, सो, समुद्देश; यथा इस शास्त्र, वा अध्ययनको अच्छी तरेसें याद रख, आज्ञा देनी, सो अनुज्ञा; यथा अन्यको पढाव, और सूत्रार्थ कथनरूप व्याख्यान सो अनुयोग. इनका विस्तार श्री अनुयोगद्वार, व्यवहारभाष्य कल्पभाष्यादि सूत्रोंमें है. इत्यादि कारणोंसें व्याख्यान करनेमें श्रुतज्ञानही उपयोगि है, अन्य नहीं; अन्य ज्ञानोंको मूक होनेसें. इसवास्ते इस समयमें श्रुतज्ञानहीकी रक्षा, और वृद्धि करनी चाहिये. क्योंकि, इस समयमें श्रुतज्ञानही, हम तुमको आधारभूत है. यदि श्रुतज्ञान शास्त्र न होवे तो, देवगुरुधर्मका बोध होना इस कालमें कदापि न होवे. इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि, तथा रक्षा करनी है, सो धर्मकी वृद्धि और रक्षा करनी है. क्योंकि, इससें अधिक, और कोइ भी धर्मवृद्धि करनेका अत्युत्तम साधन, नही है. इसवास्ते श्रुतज्ञानकी वृद्धि और रक्षा करनेके उपाय, तथा तत्संबंधी उद्योगमें, सुज्ञजनोंको कटिबद्ध होके, तन मन और धनसें, कदापि, पीछे नही हटना चाहिये. ज्ञानकी जो वृद्धि है, सो ज्ञानीके ऊपर आधार रखती है; और ज्ञानीकी वृद्धि, ज्ञानकी अपेक्षा रखती है. ज्ञान और ज्ञानीका परस्पर कार्यकारणभाव संबंध है. हरएक गाममें, शहरमें, जिलेमें, अथवा देशमें, एक ज्ञानी होवे तो, उसके उपदेशसें अन्य कितनेही जनोंको ज्ञान होता है; और जिनको ज्ञान होता है, वे सर्व, ज्ञानी कहाते हैं. जब ज्ञानीसें ज्ञानका प्रचार होता है, तब ज्ञानी, ज्ञानका कारण, और ज्ञान, ज्ञानीका कार्य होता है. और जब ज्ञानके प्रचारसें ज्ञानीकी वृद्धि होती है, तब ज्ञान, ज्ञानीका कारण, और ज्ञानी, ज्ञानका कार्य होता है. यद्यपि ज्ञान और ज्ञानीका, गुणगुणीभाव संबंध, असंभवी है; क्योंकि, ज्ञान और ज्ञानी, अभेद है; तिससें कार्यकारणता संभवे नही है. तथापि, कर्म सहित जीवको ज्ञानरूप गुण उत्पत्तिवाला है, तिससें कार्यता संभवे है; और ज्ञानीको कारणता संभवती है. और ज्ञानसें ज्ञानीपणा होता है, तिससें ज्ञानी कार्य है, और ज्ञान कारण है.

हरएक वस्तुकी सिद्धिमें उसके साधनोंकी अवश्यमेव अपेक्षा होती है; जब ज्ञानरूप वस्तु सिद्ध करनी होवे, तब तिसके साधन व्याकरण, कोष, काव्य, छंदोलंकार, ज्योतिष, न्याय, धर्म, और अन्य दर्शन विषयक नाना प्रकारके शास्त्र, तथा उन उन शास्त्रोंके अध्ययनका विधि, तथा श्रवणमननादिककी आवश्यकता है. प्राचीन कालमें विद्वानोंकी (पूर्वाचार्योंकी) स्मरणशक्ति अत्युत्कृष्ट होनेसें, वे, हरएक प्रकारकी प्रक्रिया, शृंखलाबद्ध कंठाग्र रखते थे

अर्थात् बडे वडे सूत्र प्रमुख द्वादशांगीपर्यंत कंठाग्र रखते थे, तिस समयमें भी, यद्यापि देव नागरी आदि लिपियें विद्यमान थी, तो भी, ग्रंथोंको लिखके रखनेकी बहुत जरूरत नहीं पडती थी. क्योंकि, वो कालमानही तैसा था. पीछे, कालके प्रभावसें जैसें जैसें मनुष्योंकी स्मरणशक्ति घटती गई, तैसें तैसें ज्ञानकी न्यूनता होने लगी जिससें किसी समयमें कितनेक विद्वानोंने इकठे होके, ग्रंथ लिखने लिखवाने प्रारंभ किये.

इस रीतिके प्रचलित होनेके वाद उसउस समयके श्रेष्ठ पुरुषोंने, लिखारीयोंके पाससें अनेक ग्रंथ लिखवायके, उनके वडेवडे ज्ञानभंडार (पुस्तकालय) कराये; जो, अद्यापि प्रायः पाटनादि शहरोंमें देखनेमें आते हैं. यद्यपि पूर्वज पुरुषोंने, ऐसे अनेक भंडार करके श्रुतज्ञानके मुख्य साधन पुस्तकोंकी रक्षा करी है, तथापि, कितनेही अपूर्व अपूर्वतर पुस्तक, पढने पढानेवाले, और समझने समझानेवालेके अभावसें, नष्ट होगये. और कितनेक पुस्तक तो, जैनियोंके प्रमादसें नष्ट होगये, अब जो विद्यमान है, उनमें भी न्यूनता होनेका संभव हो रहा है; क्योंकि, न तो, कोई जैनीयोंमें पठन पाठनका ' कालेज ' (वृहज्जैनशाला) प्रमुख साधन है, और न मातापिता ध्यान देकर पढाते हैं. केवल सांसारिक विद्याके ऊपरही जोर देते हैं, परंतु यह उनकी वडी भारी भूल है. यदि सांसारिक विद्याके साथही, धार्मिक विद्या भी पढाई जावे तो, थोडेही प्रयाससें ज्ञानवृद्धि होवे, और धर्मकी भी वृद्धि होवे, तथा अपने संतानोंका परलोक भी सुधर जावे. परंतु, मोदक खाने छोडके ऐसा काम कौन करे? अफशोस !!! जैनियोंका उद्य, कैसे होवेगा?

हां! आजकाल कई लोग नवीन पुस्तक लिखाके भंडार कराते हैं, परंतु वो भी, मक्षिकास्थाने मक्षिकावत् जैसा लिखारियोंने लिख दिया, वैसाही लेके स्थापन करदिया; शुद्ध कौन करे? हाय ! जैनीयोंमें प्रमादने कैसा घर करदिया ! जो, ज्ञान पढनेकेतरफ ख्यालही नही होने देता है ! ! !

ऐसे ज्ञानके अभ्यासके न होनेसें लोगोंमें संस्कृत प्राकृतका वोध घट गया, तो अब इस समयमें संस्कृत प्राकृतके वोधरहित लोगोको वोध करानेकेवास्ते देशीयभाषामें ग्रंथ रचना करके, अपनी शक्तिके अनुसार प्रत्येक ज्ञाता पुरुषको अपना ज्ञान प्रसिद्ध करना उचित है.

इसीवास्ते पूज्यपाद श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराजजीने भव्यजीवोंके उपकारकेवास्ते, अतिशय परिश्रम करके, लोक (देश)भाषामें ग्रंथोंकी रचना करनी प्रारंभ करी. जिनमें **जैनतत्त्वादर्श, अज्ञानतिमिरभास्कर, जैनप्रश्नोत्तरावलि, सम्यक्त्वशल्योद्धारादि** कितनेही ग्रंथ छपकरके प्रसिद्ध होगये हैं; कितनेक प्रसिद्ध करनेकेवास्ते तैयार हैं. परंतु प्रथम इस **'तत्त्वनिर्णयप्रासाद'** नामक ग्रंथको प्रसिद्धिमें रखते हैं.

इस ग्रंथका नाम यथार्थही गुणनिष्पन्न है. क्योंकि, जो कोई निष्पक्षपाती, इस ग्रंथरूप प्रासाद(मंदिर)में प्रवेश करेगा, अवश्यमेव वस्तुस्वरूपनिर्णय प्राप्त करेगा. इस ग्रंथके वनानेमें

ग्रंथकारने, कितना परिश्रम उठाया है, सो वांचनेवाले सुज्ञ जन आपही विचार लेवेंगे; इसवास्ते इस ग्रंथकी महिमा लिखनी योग्य नहीं है. क्योंकि, इस ग्रंथमें ज्ञानगुण है तो, वाचकवर्ग आपही स्तुति–महिमा करेंगे. क्या फूल किसीको कहता है कि, मेरे बीच सुगंध है!

जैसें राज्यमाहिल आदिके नाना प्रकारकी जडतसें जडे हुए स्तंभ होते हैं, तैसें इस ग्रंथरूप प्रासादके अनेक प्रकारके ज्ञानगुणादि रत्नोंसें जडे हुए छतीस (३६) स्तंभ है. जिनमें–

१. प्रथम स्तंभमें पुस्तकसमालोचना, प्राकृतभाषानिर्णय, और वेदवीजक प्रमुखका वर्णन है.

२. दूसरे स्तंभमें श्रीमद्धेमचंद्राचायकृत महादेवस्तोत्रद्वारा ब्रह्मा विष्णु महादेवके लक्षण, और उनका स्वरूप, तथा लौकिक ब्रह्मादिदेवोंमें यथार्थ देवपणा सिद्ध नहीं होता है, तिसका पुराणादि लौकिक शास्त्रद्वारा स्वरूप वर्णन किया है.

३. तीसरे स्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु महादेवादिरूप देवमें जो जो अयोग्य वातें हैं, उनका व्यवच्छेदरूप वर्णन श्री हेमचंद्रसूरिकृत द्वात्रिंशिकाद्वारा किया है.

४, ५. चौथे और पांचवें स्तंभमें श्रीमद्धरिभद्रसूरिविरचित लोकतत्त्वनिर्णयका भाषासहित अपूर्व स्वरूप लिखा है, जिसमें पक्षपात रहित होकर देवादिकी परीक्षा करनेका उपाय, और अनेक प्रकारकी सृष्टि जे जगद्वासी जीवोंने कल्पन करी है, उसका वर्णन है.

६. छठे स्तंभमें मनुस्मृतिका कथन किया हुवा सृष्टिक्रम, और उसकी समीक्षा है.

७, ८. सातमे आठमे स्तंभमें ऋगादि वेदोंमें जैसें सृष्टिका वर्णन है, तैसें प्रतिपादन करके तिसकी समीक्षा करी है.

९. नवमे स्तंभमें वेदके कथनकी परस्पर विरुद्धताका दिग्दर्शन है.

१०. दशमे स्तंभमें वेदोक्त वर्णनसेंही वेद ईश्वरोक्त नहीं है, ऐसा सिद्ध किया है.

११. इग्यारहमें स्तंभमें "ॐभूर्भुवः स्वस्तत्" इत्यादि गायत्री मंत्रके अनेक प्रकारके अर्थ करके, श्रीजैनाचार्योंकी बुद्धिका वैभव दिखाया है.

१२. बारमे स्तंभमें सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंके वनाये गायत्री मंत्रके अर्थोंका समीक्षापूर्वक वर्णन है, तथा वेदका निंदक नास्तिक नहीं, किंतु वेदका स्थापक नास्तिक है, ऐसा महाभारतादिकोंद्वारा सिद्ध किया है.

१३ सें ३१. तेरमे स्तंभसें लेके इकतीसमे स्तंभपर्यंत गृहस्थके षोडश (१६) संस्कारोंका वर्णन, श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर नामा शास्त्रसें करा है.

३२. वत्तीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, वेदके पाठोंमें गडवड होगई है तिसका, निष्पक्षपाती होनेका, और व्याकरणादिकी सिद्धिका, तथा पाणिनीकी उत्पत्ति प्रभृतिका वर्णन है.

३३. तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी बौद्धमतसें भिन्नताका, पाश्चात्यविद्वानोंप्रति हितशिक्षाका, और दिगंबरप्रति हितशिक्षाका वर्णन है.

३४. चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनीक वार्तेपर कितनेही लोक अनेक प्रकारके वितर्क ऊठाते हैं, उनके उत्तर दिये हैं.

३५. पेंतीसमे स्तंभमें शंकरदिग्विजयानुसार, शंकरस्वामीका जीवनचरित्र है.

३६. छत्तीसमें स्तंभमें वेदव्यास, और शंकरस्वामीने, जो जैनमतकी सप्तभंगीका खंडन किया है, उसका वेदव्यास और शंकरस्वामीकी जैनमतानभिज्ञताका दर्शक, उत्तर दिया है. तथा जैनमतवाले सप्तभंगी जैसें मानते हैं, तैसें उसका स्वरूप, और सप्तनयादिकोंके स्वरूपका संक्षेपसें वर्णन करा है.

ऐसे विचित्र वर्णनके साथ यह ग्रंथ भरा हुआ है; इसवास्ते निष्पक्षपाती सज्जन पुरुषोंको, अथमें लेके इतिपर्यंत बराबर एकाग्रध्यान रखके इस ग्रंथको वाचना, और सत्यासत्यका निर्णय करना उचित है. क्योंकि, पक्षपात करना यह बुद्धिका फल नही है, परंतु तत्त्वका विचार करना, यह बुद्धिका फल है. "बुद्धेःफलं तत्त्वविचारणंचेतिवचनात्."

और तत्त्वका विचार करके भी पक्षपातको छोडकर जो यथार्थ तत्त्वका भान होवे, उसको अंगीकार करना चाहिये; किंतु पक्षपात करके अतत्त्वकाही आग्रह नही करना चाहिये.

यतः ॥ आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते ।
परीक्ष्य हेमवद् ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥

इत्यलम्बहु पल्लवितेन विद्वद्वर्येषु ॥

भावार्थः—आगम (शास्त्र) और युक्तिकेद्वारा जो अर्थ प्राप्त होवे उसको सोनेके समान परीक्षा करके ग्रहण करना चाहिये; पक्षपातके आग्रह (हठ) से क्या है. ॥

☞ अब सर्व सज्जन पुरुषोंको, मैं, विज्ञप्ति करताहूं कि, इस ग्रंथको समाप्त करके, गुरुजी महाराज श्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी [आत्मारामजी] महाराजजीने नकल करनेवास्ते मुजको दीया. विहारादि कितनेही कार्यके विक्षेपसें, नकल पूर्ण होनेमें विलंब हुआ; तथापि, जोर देनेसें सनखतरा ग्राममें नकल पूर्ण हो गई. तदनंतर सनखतरेसें प्रतिष्ठादिसंबंधि कार्यके व्यतीत होए, श्री गुरुजीमहाराजजी इस क्षेत्रमें [गुजरांवालेमें] सं. १९५३ प्रथम ज्येष्ठ सुदि द्वितीयाको पधारे. बाद थोडेही समयमें, अर्थात् संवत १९५३ प्रथम ज्येष्ठ सुदि अष्टमीको स्वर्गवास होगए!!! इसवास्ते सम्पूर्ण इस ग्रंथको, वे, आप शुद्ध नही कर सके हैं!! किंतु, मैंने, स्वबुद्ध्यनुसार देखके, शुद्ध करा है. इसवास्ते, इस ग्रंथमें जो कोई अशुद्धतादि दोष रह गया होवे, सो, सर्व सज्जन पुरुष सुधारके वांचे, और क्षमा करें "॥ विस्मृति स्वभावोहि छद्मस्थानामतो मिथ्यादुष्कृतं मोस्त्विति ॥"

श्री वीर संवत् २४२३ ॥
विक्रम संवत् १९५४ ॥

मुनि वल्लभविजय.



ન્યાયાંભોનિધિ શ્રીમદ્વિજયાનંદસૂરી.

(આત્મારામજી મહારાજ)

The Bombay Art Printing Works, Fort.

। श्रीः ।

॥ ॐ नमः श्रीपरमात्मने ॥

श्रीश्रीश्री १००८ श्रीतपगच्छाचार्यश्रीमद्विजयानन्द-सूरीश्वरजी प्रसिद्धनाम आत्मारामजी महाराजजी जैनीसाधुका जन्मचरित्र ॥

अगले पृष्ठके ऊपर जो फोटो (छबि-चित्र) विराजमान है. वह किनकी प्रतिमूर्त्ति है ? वह प्रशस्त ललाट, वह अलौकिक तेजभरे शांतरूप दीर्घ नयन, किनके हैं ? शरीरमें देवभावका प्रकाश, मुखमंडलमें सर्व जीवोंको अभय करनेवाली अपूर्व शोभा—क्या यह सब स्वर्गीय संपत्, रोगशोकसें भरे हुए मनुष्योंमें पाई जासक्ती है ? पाठको ! यह छवि, ऐसे महात्माकी है, जो जैनीयोंके इस कठोर कुदिनमें डूबते हुये हिंदुधर्ममें अग्रगामी, जैनधर्मको डूबने नही देते थे; जो मनुष्य शरीर धरकरके भी, ऐसे ऊंचे आसनपर आरूढ थे कि, जिसपर साधारण मनुष्योंके चढने-की सामर्थ नहीं है. जो संपूर्ण भारत यावत् विलायत तकमें इस दुषम कालमें सत्य यथार्थ धर्मके एकही उपदेष्टा थे. जिनकी कृपाके विना षड्दर्शनकी व्याख्या इस समयमें बहुत कठिन थी, जिनके दर्शनसें राजा प्रजा धनी निर्धन ज्ञानी अज्ञानी सब अपनेको कृतार्थ मानते थे; यह प्रति-मूर्त्ति, उनही सर्व पंडितोंके शिरोमणि, सर्वशास्त्रोंके वेत्ता, परम मुनियोंके मुखी, परम ऋषियोंके अग्रेश्वरी, भारतवर्षके अलंकार, जैनधर्माधार, न्यायांभोनिधिश्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद-सूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजजीकी है. धर्मात्मन् ! जगत्में कौन ऐसा होगा, जिसका हृदय विद्वानमंडलके आदर्शस्थल, धार्मिकोंके प्रधान, दयादि गुणोंके पारावार, जैनीयोंके शिरो-भूषण, यथार्थ सत्यवक्ता महामुनि श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर (आत्मारामजी) महाराजजीका वि-शुद्ध चरित पढने सुननेको उत्साहित न होगा ?

मूलक पंजाबके द्वाबा "सिंधसागर" में दरया "जेहलम" के किनारेपर "पींडदादनखान" नामक एक शहर वसताहै, तिसके पूर्वओर अनुमानसे दो मिलके फासलेपर एक "कलश" नामक गाम है. तहां पूर्व कालमें कलशजातिके सरदारोंका दिवान "बीत्राराम" नामक काश्यपगोत्रिय "चउधरा कपूर ब्रह्म क्षत्रिय" था. तिसका पुत्र "रोचिराम" नामसे हुआ. तिसका बडापुत्र "दीवानचंद" था. तिसकी स्त्री "महादेवी" रूपमें देवीके समान थी. तिसकी कूखसे "लक्खुमल्ल"-"गणेशचंद"-दोपुत्र, और "रुक-मदेवी" नामक एक पुत्री पैदा हुए. दीवानचंदका छोटाभाई "श्यामलाल" था. जिसके "देवीदत्ता" करके पुत्र और "राधा" नामकी पुत्री हुए. और दीवानचंदके दूसरे भाइयोंके बेटे "महेशदास" "प्रभदयाल" "मंगलसेन" हुये. जिनकी सन्तान आत्मारामजीके पितृव्य भाई (चाचेके पुत्र) "रामनारायण," "हरिनारायण," "गुरुनारायण" आदि अब विद्यमान हैं. तात्पर्य आत्मारामजीके

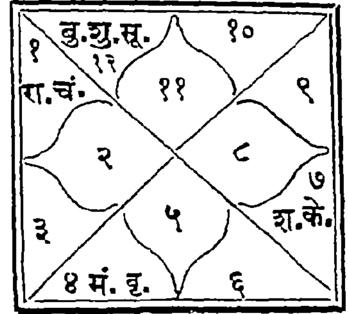
परिवारके आठ घर कलशगाममें पूर्वोक्त परंपराके अब विद्यमान हैं.और "पत्याल "गाम जो खुशावके पास वसता है, वहां भी "आत्मारामजी" के नजदीकके साकसंबंधी कपूरक्षत्रियोंके चालीश घर वसते हैं. (वंशवृक्ष देखो.) " दीवानचंद " और उसकी भार्या "महादेवी" अपने दोनों पुत्रों और लडकीको छोटी उमरमें छोडकर गुजर गयेथे. इस वास्ते दोनों पुत्र (लक्खुमल गणेशचंद) और पुत्री (हुकमदेवी) तीनों जने अपने पिताके भाई (चाचे) श्यामलालके घर रहतेथे परंतु "श्यामलालकी" भार्याकी तवियत सखत होनेसे, " गणेशचंद " दुःखी होकर कितनेक दिन पीछे विना कहे, वहांसें चलनिकला; और रामनगरके पास कसवा फालीयेमें आकर थानेदार (पोलीस ओफिसर) हुआ. और वहांही " कवरसेन " नामके पूरी क्षत्रिय कुंजाहीकी बेटी " रूपदेवी " के साथ विवाह होगया. " गणेशचंद " शूरवीर होनेसे वहोत सीपाइयोंके साथ भाइवट्टु आदि नगरोंकी लडाइयोंमें शामिल रहतेथे. कितनेक काल पिछे महाराज "रणजीतसिंह"-के राज्यमें हरिकापत्तनपर एक हजार घोडेस्वारोंको जानेका हुक्म हुआ. उनके साथ गणेशचंदकी भी वदली हुई. वहां (हरिकापत्तनपर) " गणेशचंदजी " वहुत मुद्दत तक रहे. इसीवास्ते वहांके " नंदलाल" ब्राह्मण, और कितनेक ओसवालोंके साथ वहुत प्रीति होगईथी. जिससे जब रिसालेकी वदली हुई, तव गणेशचंदजी नोकरी छोडकर वहांही रहगये.

"नंदलाल"ब्राह्मण वडा शूरवीर और डाकू (धाडवी) था.तिसकी संगतसे "गणेशचंदजी" भी डाके डालने लगगये.उनके साथ,और भी आसपासके जौनेकी,लेहरा,गंडीविंड,रूडीवाला,सरहाली इत्यादि गामोंके डाकू मिलजानेसें,सव मिलके डाके डालने लगे.उस समयमें सरहाली गाममें"मूलामिश्र" उसका पितामह (वावा) रहता था.उसके तीन वेटे थे.उनमेंसे "वशास्वीराम" तो पंडित था, और अमृतसरमें रहता था, और "देवीदत्ता" मूलामिश्रका वाप, सरहालीमेंही रहता था. और तीसरा "आज्ञाराम" जौनेकी गाममें दुकान करता था, और गणेशचंदजीका मित्र, और मेहरबान था, और डाके डालनेमें भी शामिल था. इसी तरह गाम रूडीवालामें " विशनसिंघ" का वाप " कहानसिंध " गणेशचंदजीका मित्र रहता था. गणेशचंदजी प्रायःकरके अपने मित्र कहानसिंधकी मुलाकातके वास्ते रूडीवालामें आते जाते थे. वहां (रूडीवालामें) लेहरा गामकी एक लडकी " कर्मो " व्याही थी, और विशनसिंघके घरकेपास रहती थी.इसवास्ते कर्मो भी गणेशचंदजीको अच्छी तरांह जानती थी, और इसी सववसे गणेशचंदजीका " लेहरा " गाममें रहना हुआ. क्योंकि "राजकुंवर" नामका क्षत्रिय, टुंकावाली जिल्हा गुजरांवालेका,जीरामें महाराज रणजीतसिंहजीके तरफसे टेकेदार हुआ करता था. अपने वतनकी मोहवतसे गणेशचंदजी उससे मिलनेके लिये जीरेकेपास लेहरा गाममें रहने लगे. कर्मोंकी जान पिछान होनेसें लेहरामें रहना उनको मुश्किल नहीं हुआ, अर्थात् थोडेही कालमें वहुत लोगोंसे मोहवत होगई. गणेशचंदजी लेहरा गामसे प्रायः निरंतर राजकुंवरसे मिलनेकेलिये जीरेगाममें आते थे,इस सववसें जीरेका रहनेवाला "जोधामल्ल" ओसवाल, जोकि खानदानी, लायक, और वुजूर्ग था, उसकेसाथ गणेशचंदजीकी मुलाकात हुई. जोधामल्लका राजकुंवर टेकेदारके साथ वहुत स्नेह था. राजकुंवरका बेटा " जमीतराय " जीरेमें रहता था, जिसके वेटे " केदारनाथ " और " बद्रीनाथ " बडे नामी आदमी अब शहर गुज-

रांवालेमें विद्यमान है इस सबबसे कितनेही वर्षोंतक जमीतराय, और जोधामल्लकी संतानका* आपसमें मोहवतका बरताव रहा.

भवितव्यताके बशसें "राजकुंवर" और "जमीतराय" तो अपने वतन चलेगये. और "गणेशचंदजी" लेहरा गाममेंही रहने लगे, और वहांही बिक्रम संवत् १८९३ चैत्रशुदि प्रतिपदा गुरुवारके रोज "श्रीआत्मारामजीका" "रूपादेवी" माताकी कूखसे जन्म हुआ. माता पिताने ब्राह्मणोंसे पूछके "आत्माराम" नाम रखा.

श्रीआत्मारामजीकी जन्म कुंडली नष्टोद्दिष्टसे ॥



इस समय (लेहरागाम) "अतरसिंघ" नामा "सोढी" (शीखलोकोंके गुरू) के तावेमें था. इस सबबसे सोढी अतरसिंघ, और "गणेशचंदजीकी" आपसमें बहोत प्रीति थी. एक दिन सोढी अतरसिंघने श्रीआत्मारामजीको माता रूपादेवीकी गोदमें देखा, और बुद्धिके प्रभावसे ऐसा निश्चय किया कि, यह बालक वडा तेजप्रतापवाला होवेगा. पिछे अतरसिंघ सोढीने कहा कि "इस बालकके ऐसे सुंदर लक्षण हैं कि, जिससें यह लडका वडाभारी राजा होवेगा! अथवा ऐसा साधु होवेगा कि, जिसके चरणोंके राजा महाराजा भी सेवक होवेंगे! और यह लडका किसी तरह भी तुमारे पास नहीं रहेगा. इस लिये यह लडका तुम मुझे दे दो; और मैं इसको अपनी कुल मिलकतका मालिक करूंगा." परंतु माता पिताने यह वातको स्वीकार नहीं किया. तथापि सोढी अतरसिंघके दिलसें यह बात दूर नही हुई, बलकि निरंतर इसही बातका ख्याल रखता रहा, और श्रीआत्मारामजीसे बहुत प्यार करता रहा. ठेकेदार राजकुंवरके वतन पहुंचनेसे गणेशचंदजीके भाई लक्खुमल्ल और चाचेके पुत्र देवीदत्तामल्लको गणेशचंदजीका पता बहोत कालके पीछे मालूम होनेसे दिल खुश होगया. और उसी बखत अपने भाई "गणेशचंदजी" को अपने वतन ले जानेकेलिये आये. अपने भाई गणेशचंदजीको देखतेही बहुत खुश होगये.

दोहा—पाया अतिहि बियोगसे, जसतन दुःख भरपूर ॥
फिर मिलनेसे वोही तन, पावे सुख भरपूर ॥ १ ॥

गणेशचंदजीकी गोदमें छोटी उमरवाले वडे तेजवाले अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीको देखके बहुतही प्रसन्न हुये. और दोनों भाइयोंने अपने भाई गणेशचंदजीको अपने वतन लेजानेके वास्ते बहुत मेहनत की; परंतु इस देशकी मोहवत, और दाना पानीने गणेशचंदजीको किसी तरह भी जाने न दिया. इस वास्ते लाचार होके कितनेक दिन वहां रहके अपने वतनको चलेगये. और चलनेके समय अपने भाईके पुत्र श्रीआत्मारामजीका नाम, "दित्ता" रखगये. और कहते गये कि, "इस बालकका अच्छी तरह ख्याल रखना." "रत्नंयत्नेनरक्षयेत्" भावार्थ—रत्नकी यत्न

* विक्रम संवत १९३७ में जब श्रीआत्मारामजी महाराजजीका चौमासा शहेर गुजरांवालेमें था, तब जोधामल्लकी संतानके राधामल्ल और हरदयालमल्ल श्रीमहाराजजीके दर्शनकेवास्ते गये थे, तब पिछली मुलाकातके सबबसे जमीतराय, उनसे वहोत महोवतसे मिला था. बलकि देशाचारके अनुसार राधामल्लके बेटे ईश्वरदास और बशाखीमल्लके पुत्र हरदयालमल्ल को कपडे और मिठाई वगैरह दी थी.

पूर्वक रक्षा करना चाहिये. तब मातापिताने भी "दित्ता" नाम स्वीकार कर लिया. और उस दिनसे "श्रीआत्मारामजी" "दित्ता" के नामसे प्रसिद्ध हुवे.

कितनेक कालपीछे लेहरा गाममें व्यवहाराभावसें गणेशचंदजी अपनी भार्या रूपदेवीको और दित्ताको लेकर आनंदपुर माखोवाल कीर्त्तिपुरमें, जहां सोढी अतरसिंघ रहता था जा रहे; और सोढी अतरसिंघने वडी खुशीसें गणेशचंदजीको अपने सीपाइयोंमें नौकर रखे. और पशुयोंके घास चारेकी जमीन (चरागा–बीड) के रक्षक ठहराये. और अतरसिंघ सोढी निरंतर दित्ता (श्री-आत्मारामजी) को लेनेके ख्यालमेंही रहा. इसी सबबसें कितनेक दिनोंपिछे सोढी अतरसिंघने, गणेशचंदजीको अपनी जमीनमें ब्राह्मणोंकी गौयां चरने देनेके तोहमतसे तकसीरवार ठहराकर, पैरोंमें वेडी पहनाकर कहा कि, " जो तूं अपने पुत्र आत्माराम (दित्ता) को मुझे देवेगा तो, मैं तुजे छोडूंगा; अन्यथा किसी प्रकारसे भी तेरा छूटकारा न होवेगा. " परंतु गणेशचंदजी जोरावर होनेके सववसें अवसर देखके बेडीको तोडके अपनी भार्या रूपदेवी और पुत्र दित्ता(आत्माराम)-को लेके रातके वखत भागगये, और रुडीवाला गाममें आ रहे. यहां, गणेशचंदजीकी भार्या रूपा-देवीसें दूसरा पुत्र पैदाहुआ. अनुमान चार वर्ष वहां रहके कितनेही आदमियोंके और सावण ब्रा-ह्मण तथा जोधामल्ल वगैरहके कहनेसे फिर लेहरा गाममें चलेआये. और लेहरा गाममें खेतीका काम करके अपना गुजारा करते रहे, और जोधामल्लकी मोहवतसे अमन चैन उडाते रहे.

अब इस वखत पिछला जमाना (शिखेसाई जमाना) फिरगया था, और सरकार महाराणी विक्टोरीयाका अमल होगया था, जिससे हरतरहका आराम हुआ; और देशकी ठीक ठीक सारवार होती रही. न्यायके सवबसे मानो बकरी और सिंह एक घाटपर पानी पीने लगें, अर्थात् छोटे बड़े सवको अदल इनसाफ मिलता रहा, मुसाफर निडर होके रस्तेपर चलने लगे थे; कोई नहीं पूछस-कता था कि तेरे मुखमें कितने दांत हैं. सोना उछालता चलाजावे,न चोरका डर,न डाकूका डर रहा था. क्योंकि, सबके सिरपर अंग्रेजी राज्य प्रतापका ऐसाही डर घूम रहा था. परंतुः—

दोहा—होणहार हिरदे वसे, विसर जाय सुद्ध बुद्ध ॥
जो होणी सो होत है, वैसी उपजे बुद्ध ॥ १ ॥

इस कहावत मुजब ऐसे नाजुक वखतमें गणेशचंदजी आठ आदमीयोंके साथ मिलकर फिर डाका डालना शुरु किया. परन्तु आखर उसको इस पापका फल मिला सो यह कि,पकडे गये. कहावत भी है कि "सौ दिन चोरके और, एक दिन साधका."इस अपराधमें अदालतसे दश वर्षकी कैदकी सजा पाई और कैदियोंको आग्रेके किल्लेमें भेजनेका हुकम हुआ.चलते वखत गणेशचंदजीने अपने पुत्र दित्ता (आत्माराम) को जोधामल्ल ओसवालको सोंपकर कहा कि, " इसकी सार संभाल रखना क्योंकि यह तुह्माराही पुत्र है, इसवास्ते इसको सांसारिक विद्या पढाना, जिससे यह व्यापा-रादि करके अपना गुजारा करता रहे, वहुत क्या कहुं मैं इसको तुमकोही सोंपताहुं, इसका नफा नुकसान तुमारेही अखतीयार है." जोधामल्लने रुदन करके कहा कि,

जुदाई तेरी किसको मंजूर है; जमीन सख्त और आसमान दूर है.

परंतु कर्मोके आगे किसीका भी जोर नहीं चलता है:—

हरो वरो ब्रह्म विवाह कर्त्ता, वैश्वानरो आहुतिदायकश्च ॥
तथापि वंध्या गिरिराजपुत्री, न कर्मणः कोपि बली समर्थः ॥ १ ॥

भावार्थ इसका यहहै—महादेव जिसका पति, साक्षात् ब्रह्माजीने जिसका विवाह किया, जिसके विवाहमें साक्षात् अग्नि देवताने आहुति दी, ऐसी पार्वती भी वांझ रही. इसवास्ते कर्मोंसे कोई भी अधिक बलवान् समर्थ नहीं है—इसवास्ते इस बातमें हमारा कोई भी जोर नहीं चलता है और इस लडकेकी बावत जो तुम कहते हो, सो तो परमेश्वर जानते हैं, मुझको यह अपने दोनो लडकोंसे अधिक प्यारा है." इत्यादि कितनीक बातें करके गणेशचंदजी तो चलेगये और आग्रेके किल्लेमें-ही अंग्रेजोंके साथ लडाई करते हुए, आपसमें गोली लगनेसे गणेशचंदजी स्वधामको पहुंचगये !!!

अब आत्मारामजी जोधामल्लके घरमें उनके पुत्रोंकी तरह पलने लगे, और जोधामल्लने भी अपने आपको सच्चा धर्मपिता प्रमाणित किया; और अपने बचनको पूरा कर दिखलाया. और अपने छोटे पुत्र " रलाराम " के साथ हिंदी इल्म सिखलाया. इसवास्ते " आत्मारामजी " भी, जोधामल्लको अपने पिता मानते थे. और जोधामल्लका बडा पुत्र " वधावामल्ल " आत्मारामजीसे बहुत भाईओंसे भी अधिक प्यार रखता था. इसवास्ते घरकी स्त्रियां भी, अपने लडकोंवालोंसे भी ज्यादा प्यार रखती थीं; परंतु जोधामल्लके छोटे भाईका नाम, दित्तामल्ल होनेसे आत्माराम-जीका दूसरा नाम दित्ता बदलके, " देवीदास " रखदिया था.

जिनदिनोंमें देवीदास (आत्मारामजी) जोधामल्लके घरमें पलतेथे, उस वखत जोधामल्ल, और तिसका परिवार, और जीरेके रहीस सब ओसवाल, ढूंढक मत* (स्थानकवासी) को मानतेथे.

---

*ढूंढकमतकी उत्पत्ति इस प्रकारसें है.–गुजरात देशके अहमदावाद नगरमें एक लौंका नामका लिखारी यतिके उपाश्रयमें पुस्तक लिखके आजीविका चलाताथा. एक दिन उसके मनमें ऐसी बेइमानी आई जो एक पुस्तकके सात पाने बिचमेंसे लिखने छोड दिये. जब पुस्तकके मालिकने पुस्तक अधूरा देखा, तब लौंकेलिखारीकी बहुत निंदा की और उपाश्रयसे निकाल दिया, और सबको कह दियाकि, इस बेइमानके पास कोई भी पुस्तक न लिखावे.तब लौंका आजीविका भंग होनेसे बहुत दुःखी हो गया. और जैनमतका बहुत द्वेषी बनगया. परंतु अहमदावादमें तो लौंकेका जोर चला नहीं. तब वहांसे (४५) कोशपर लींबडी गाम है, वहां गया. वहां लौंकेका संबंधी लखमसी वनिआ राज्य-का कारभारी था, उसे जाके कहाकि, " भगवान्का धर्म लुप्त हो गयाहै, मैंने अहमदावादमें सच्चा उपदेश किया था.परंतु लोकोंने मुजको मारपीट के निकाल दिया; यदि तुम मुझे सहायता दो तो, मैं सच्चे धर्मकी प्ररूपणा करूं." तब लखमसीने कहा, " तूं लींबडीके राज्यमें बेधडक तेरे सच्चे धर्मकी प्ररूपणा कर, तेरे खानपानकी खबर मैं रखूंगा." तब लौंकेने संवत् १५०८ में जैनमार्गकी निंदा करनी शुरू करी. परंतु २६ वर्ष तक किसने भी इसका उपदेश नहीं माना. संवत् १५३४ में भूणा नामा वनिया लौंकेको मिला, उसने लौंकेका उपदेश माना, लौंकेके कहनेसे विना गुरूके दिये अपने आप वेष धारण कर लिया; और मुग्ध लोगोंको जैनमार्गसें भ्रष्ट करना शुरू किया. लौंकेने ३१ शास्त्र सच्चे माने. व्यवहार सूत्रको मान्य नहीं किया. जिसका सबब यह है कि व्यवहार सूत्रमें लिखाहै कि, " तीन वर्ष दीक्षापर्यायवाले साधुको आचारप्रकल्प नामा अध्ययन पढाना कल्पता है, एवं चार वर्ष पर्यायवाले साधुको सूयगडांग पांच वर्ष पर्यायवालेको दशाश्रुतस्कंध—कल्पसूत्र (बृहत्कल्प) व्यवहारसूत्र, विकृष्ट वर्ष पर्यायवालेको अर्थात् छ वर्षसें लेके नव वर्ष पर्यंत पर्यायवालेको ठाणांग—समवायांग, दश वर्ष पर्याय-वालेको भगवतीसूत्र, एकादश वर्ष पर्यायवालेको खुड्डियाविमाण पविभत्ति—महल्लिया विमाण पविभत्ति-अंगचूलिया—वंगचूलिया—विवाह चूलिया, द्वादश वर्ष पर्यायवालेको अरुणोववाए–गरुलोववाए–धरणो

इसवास्ते आत्मारामजी भी जोधामल्ल आदिके साथ ढूंढक साधुओंके पास जाने लगे और ढूंढकमतको मानने लगे. " जवारमल्ल " नामक ओसवालके पाससे ढूंढकमतका सामायिक पडिक्कमणा सीखा और नवतत्व छवीसद्वार आदि वोल विचारोंको भी याद किये. विक्रम संवत् १९१० में " गंगाराम–जीवणराम " ढूंढकमतके दो साधुओंने जीरामें चौमासा किया. तव जवारमल्ल दुग्गडके, और पूर्वोक्त साधुओंके उपदेशसे " श्रीआत्मारामजी " इस असार संसारसें विरक्त हुए; और साधु होनेका निश्चय किया. इस वातकी खवर इनकी माता " रूपादेवी " जो कि लेहरा गाममें रहती थी उसको हुई; तव वो अपने पुत्रके पास आके वहुत रुदन करके पुत्रको साधु होनेके वास्ते मना करने लगी, परंतु श्रीआत्मारामजीने माताजीको शांत करके मीठे वचनोंसे कहा कि, " हे माताजी ! आप मुजे खुशीसे रजा दीजिये, जिससे मेरा साधुपणा आपके आशीर्वादसें पूर्ण होवे." तव माताजीने गद्गद् स्वरसे कहा कि, " हे पुत्र ! तेरे पिताजी तुजको जोधामल्लजीको सोंप गयेहैं, इसवास्ते अपने धर्मपिता जोधामल्लजीकी आज्ञा तुजको लेनी चाहिये, और जो कुछ वे फरमावे, वो तुजको करना चाहिये. मेरे तरफसे वे मालिक है." माताजीका ऐसा कथन सुनके श्रीआत्मारामजीने वडी खुशीसे अपने धर्मपिता जोधामल्लसे आज्ञा मांगी. तव जोधामल्लने कहा कि, " तू मेरा धर्मपुत्रहै, मैंने तुजको वाल्यावस्थासे पाला है,इसवास्ते मैं अपने सारे धनका तीसरा हिस्सा तेरे नामका सरकारमें लिखादेता हुं, और तेरा विवाह भी वडी धामधूमसे मैं आप करूंगा. किसीके वहकानेसे मत भूल." यह कहकर जोधामल्ल श्रीआत्मारामजीको प्यारसे छातीके साथ लगाकर वहुत रोया, तव श्रीआत्मारामजी अपने धर्मपिता जोधामल्लके सामने कुछ भी जवाव न दे सके; क्योंकि श्रीआत्मारामजी वहुत नरम दिलके, और विनयवान् थे.

ववाए—वेसमणोववाए–वेलंधरोववाए, त्रयोदश वर्ष पर्यायवालेको उठ्ठाणसुए–समुठ्ठाणसुए–देविंदोववाए-नागपरियावणियाए, चउदह वर्ष पर्यायवालेको सुमिणभावणा, पंदरह वर्ष पर्यायवालेको चारणभावणा, सोलां वर्ष पर्यायवालेको तेअनिसग्ग, सप्तदश वर्ष पर्यायवालेको आसीविसभावणा, अठारह वर्ष पर्यायवालेको दिठ्ठीविशभावणा, ऐकोनवीस वर्ष पर्यायवालेको दिठ्ठिवाऐ, वीश वर्ष पर्यायवालेको सर्वश्रुत, पढाना कल्पताहै. " यदि जो लौंका व्यवहार सूत्रको मान्य करता तो, स्ववचन व्याघातरूप दूपणसे वज्रोपहत तुल्य होजाता. क्योंकि, वो आप विना साधु हुयेही शास्त्र पढतारहा, और भूणा वगैरहको भी पढाया. इसी सववसे अद्यतनकालमें भी कितनेक जैनाभास गृहस्थीयोंको पूर्वोक्त शास्त्र पढाते हैं. परंतु यह आश्चर्य है कि, लौंकेने तो प्रथमसेही व्यवहार सूत्रको जलांजलि देदी थी. इस वास्ते वो तो पृथग्भूही रहो ! परंतु जो लोक व्यवहारसूत्रको मानते हैं, और फिर गृहस्थीयोंको पूर्वोक्त पाठ लोपके शास्त्र पढाते हैं, उनकी कितनी भारी वेसमझ है ! इस वातकी परीक्षा करनी हम उनकोही सपुर्द करते हैं.अफशोश !! लौंकेने जो(३१)शास्त्र मान्य रखे उनमें भी,जहां जहां जिन प्रतिमाका अधिकार है, तहां तहां मनःकल्पित अर्थ कहने लग गया. इसी तरह कितनेही लोगोंको जैनमार्गसें भ्रष्ट किया. विक्रम संवत् १५६८ में रूपजी नामा भूणेका शिष्य हुआ, उसका शिष्य संवत् १६०६ में वरसिंह हुआ, तिसका शिष्य संवत् १६४९ में माघ सुदि त्रयोदशी गुरुवारके रोज पहर दिन चढे जसवंत हुआ, उसके पीछे वजरंगजी हुआ (जो संवत् १७०२में लुंपकाचार्य कहाया.)वजरंगजी की दीक्षा पीछे सुरतका वासी वोहरा वीरजीकी वेटी फूलांबाईके गोदपुत्र लवजीने दीक्षा ली. दीक्षा लेनेके पीछे जव दो वर्ष हुऐ, तव दशवैकालिक शास्त्रका टवा (भापारूप अर्थ) पढा तव अपने गुरूको कहने लगा कि, " तुम साधुके आचारसे भ्रष्ट हो; " इत्यादि कहनेसे गुरूके साथ लडाई हुई. तव लुंपकमत, और लौंकेमतके अपने गुरूको त्याग दिया. और थोभणरिष–सखीयोजीको वहकाके अपने साथ लेके, अनुमान संवत् १७०९ में स्वयमेव कल्पित वेष धारण करके साधु वनगया, और मुखपर कपडा

पूर्वोक्त हकीगत गंगारामजी और जीवणमल्लजी साधुओंने सुनकर जोधामल्लके छोटे भाइ दित्तामल्लको जिसका धर्ममें बडाही राग था, कहा कि, " आप अपने बडे भाईको समझाकर आत्मारामजीको साधु होनेकी आज्ञा दिलवा देवें." दित्तामल्लके आग्रहसे, और श्रीआत्मारामजीकी वृत्ति सर्वथा संसारमें पराङ्मुख देखनेसे, अंतमें जोधामल्लने भी लाचार होकर आज्ञा दे दी. और कहा कि, "हे पुत्र ! चिरंजीव रहीयो ! और " श्रीजैनमत " का खूब उद्योत करीयो " ! वृद्धोंके वचन कैसे फलप्रदाता है ! ! कि जोधामल्लके इस आशिर्वादने थोडेही कालमें क्या असर दिखलाया ! जोकि इस वखत स्वप्नमें भी ख्याल नहीं था.

चौमासे बाद मगसर वदि एकमके दिन " मनसूरदेवा " गाममें साधुओंके साथ श्रीआत्मारामजी जा रहे. वहां जीराकी बाईयोंके साथ श्रीआत्मारामजीकी माता भी रुदन करती हुई आई. तब साधुओंने तिसको बहुत अच्छी तरांह समझाई. और पूछा कि, " माई! तेरे पुत्रका नाम "दित्ता" है ? वा " देवीदास " है ? वा "आत्माराम" है ? क्योंकि, लोक इसको कितनेही नामोंसे बुलाते हैं. हम इसका कौनसा नाम रखे ? " माताजीने कहा कि, " महाराजजी ! इसका असली नाम तो " आत्माराम " ही है, और शेष पीछेसे कल्पना करे हुये है." तब साधुओंने कहा कि, "हम तो पहिलाही नाम अर्थात् " आत्माराम " ही रखेंगे. " तबसे श्रीआत्मारामजीका यही (आत्माराम) नाम प्रसिद्ध हुआ और क्रम करके " मालेर कोटला " में पहुंचे. जहां मगसर सुदि पंचमीके रोज बडी धामधूमसे " जीवणरामजी " गुरुके पास ढूंढक मतकी दीक्षा ली.

श्रीआत्मारामजीकी बुद्धि बहुत तीव्र, और निर्मल थी,परंतु उनके गुरु अधिक पढे हुये न होनेसे

वांधलिया. और लौंकेसे विलक्षणही मत निकाला. लवजीके चेले सोमजी तथा कहानजी हुये. तथा लुंपकमति कुंवरजीके चेले धर्मसी–श्रीपाल–अमीपालने भी गुरूको छोडके, स्वयमेव पूर्वोक्त आचरण किया. तिनमें धर्मसीने आठकोटी पच्चख्खाणवका पंथ चलाया, जो गुजरात देश प्रांत काठियावाडमें प्रसिद्ध है.

लवजीके चेले कहानजीके पास एक धर्मदास नामका छींपा दीक्षा लेनेको आया; परंतु कहानजीका आचार उसने भ्रष्ट जाना, इस वास्ते वह भी मुहको पट्टी वांधके,स्वयमेवही साधु वनगया. इन सबका रहनेका मकान ढूंढा अर्थात् फूटा हुआथा, इस वास्ते लोकोंने ढूंढक नाम दिया. केई ढूंढक लोक कहतेहैं कि–

ढूंढत ढूंढत ढूंढ फिरे सब वेद पुरान कुरानमें जोई ॥
ज्युं दधिसेती मख्खण ढूंढत त्युं हम ढूंढियाका मत होई ॥

परंतु यह वात लोकोंको भरमानेके वास्ते खडी की है, क्योंकि इन ढूंढकोकी पट्टावलीयोंमें पूर्वोक्त लेख है नहीं. अस्तु तुष्यंतु दुर्जनाः तथापि इस पूर्वोक्त ढुंढकोंके कथनसे भी यही सिद्ध होता है कि यह ढूंढकमत जैनशास्त्रानुसार है नहीं तथा एक यह भी आश्चर्य है कि जो जो अनिष्टाचरण ढूंढकोंमें प्रचलित है सो न तो वेदमें है,न पुरानमें है, और न कुरानमें है तो इन महाशयोंने अपना माना अनिष्टाचरण किस पातालसे निकाला होवेगा ! तथा वेद पुरान कुरानके माननेवालोंने जरूर इन ढूंढकोंसे पूछना चाहिये कि " महाशयो ! वेद पुरान कुरानका नाम लेके अपने मतकी सिद्धि करनी चाहते हो परंतु अपना अनिष्टाचरण वेद पुरान कुरानमेंसे निकाल देवोगे ?" कदापि न निकलेगा.

धर्मदास छीपेका चेला धन्नाजी हुआ, उसका चेला भूदरजी हुआ, उसके चेले रघुनाथ–जयमल्लजी–गुमानजी हुये; इनका परिवार प्रायः मारवाडदेशमें है. रघुनाथके चेले भीषमने तेरापंथी मुहवंधेका पंथ चलाया.

लवजीका चेला सोमजी, तिसका चेला हरिदास, उसका चेला वृंदावन, उसका भवानीदास, उसका मलूकचंद उसका महासिंह उसका खुशालराय उसका छजमल उसका रामलाल उसका चेला अमरसिंह, इनके परिवारके साधु प्रायः पंजाब देशमें है.

"काशीराम" नामक एक ढूंढक श्रावकके पास "श्रीआत्मारामजी" ने " उत्तराध्ययन " सूत्रके कितनेक अध्ययनोंका पठन किया. और दीक्षा लिये बाद पंदरह दिनोंमेंही व्याख्यान करने लग गये. कितनेही दिनोंवाद गुरुके साथ विचरते हुये "सरसा–राणीया"गाममें गये और संवत् १९११ का चौमासा वहांही किया. वहां मालेरकोटला निवासी "खरायतीमल्ल" नामक बनिया, दीक्षा लेकर श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई वना, जो कि इस वखत मुल्क गुजरात, जिल्ला काठीयावाडमें प्रायः विचरते हैं. जिनका नाम ढूंढकमत परित्याग करके संवेगीपणा अंगीकार किया, तब सद्गुरुने " श्रीखांतिविजयजी " दिया है. इन महात्माने कितनेही वर्ष हुए षष्ठ षष्ठ (बेले बेले-दो उपवास) पारणा करना शुरु किया है, जो अबतक वृद्धावस्था है, तो भी कियेही जाते हैं. (छवी देखो) राणीयामें श्रीआत्मारामजीने वृद्ध पोसालीय तपगच्छके "रूपऋषिजी" के पास " उत्तराध्ययन " सूत्र पठन किया वहांसे यमुना नदीपार " रुडमल्ल " साधुकेपास पढनेके लिये गये, और उनके पास " उववाई " सूत्र पढा. वहांसे दिल्ली होके " सरगथल " गाममें गये, और संवत् १९१२ का चौमासा किया. वहां " श्रीआत्मारामजी " के दादा गुरु "गंगारामजी" काल धर्मको प्राप्त हुये चौमासेवाद गुरु और गुरुभाईके साथ विचरते हुये " जयपुरमें गये. वहां " अमीचंद " नाम ढूंढक, जो कि उस वखत ढूंढकोंमें श्रुतकेवली कहाता था, तिसकेपास "श्रीआत्मारामजी" ने " आचारांग " सूत्र पढना प्रारंभ किया. जयपुरके ढूंढकलोकोंने श्री आत्मारामजीको कहा कि "तुम व्याकरण मत पढना, यदि पढोगे तो तुमारी बुद्धि विगड जायगी."(अब भी ढूंढक मतवालेका यह प्रथम प्रायः मंतव्य है.) सत्य है–

दोहा—रत्न परीक्षक जानीये, ज्हौरी नाहिं चमार।
पंडित तत्त्व पिछानीये, नाहिं जट्ट गमार ॥

श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त शिक्षा देनेवाले ऐसे मिले कि, जिनोंने विद्या कल्पवृक्षकी जड काटडाली! विद्यालाभरूप अमृत मेघवर्षण समान जो अवस्था थी उसमें आगकी वर्षा भई!! क्योंकि उस समय " श्रीआत्मारामजी " की ऐसी शक्ति थी कि, जिससे निरंतर तीनसौं श्लोक कंठाग्र कर सकते थे, परंतु यह उत्तम समय, पूर्वोक्त आभास हितकारीयोंके उपदेशसे निष्फल गया. अफशोस!! ऐसे हितकारीयोंसे तो पंडित शत्रुही श्रेष्ठ है.

यतः॥ पंडितोपि वरं शत्रु, र्न मूर्खो हितकारकः॥
दानरेण हतो राजा, विप्र चौरेण रक्षितः॥ १ ॥

पंडित शत्रु तो श्रेय है, परंतु हितकारी मूर्ख अच्छा नहीं है; वानरने राजाको मारा, और ब्राह्मण चौरने उसको बचा लिया.*

* भावार्थ इसका यह है कि–किसी एक नगरमें कीसी राजाके पास कोई मदारी वानर नचाने लगा. उस वानरकी चपलता देखके राजा खुश होकर मदारीसे कहने लगा, "जो तेरी मरजीमें आवे,सो तूं मेरेपास मांग ले; परंतु यह वानर तूं मुजे दे दे." मदारीने बहुत ना कही,परंतु राजहठ जोरावर है राजाके पास किसीका जोर नहीं चलताहै. लाचार होकर मदारिने वानर दे दिया.राजाने उस वानरको अपना पेहेरेगीर वनाया,और हाथमें तल्वार देके,उसको अपने पल्यंक(पलंग)के पांवेके साथ बांध दिया एकदिन ऐसा हुआ कि राजा सोताहै,वानर पहरा देताहै,इतनेमें एक सर्प राजाके पल्यंकपर छतके साथ जाता है, उसकी छाया राजाके शरीर पर पडी,उस छायाको देखके मूर्खशि-

श्री आत्मारामजी जयपुरसें अजमेर गये.वहां "लक्ष्मणजी" "देवकरणजी" और "जितमल्लजी" वगेरह ढूंढक साधुओंके पास कितनेक शास्त्र पढे.वहांसे फिर अमीचंदके पास पढनेके लिये "जयपुरमें" आये और संवत् १९१३ का चौमासा वहांही किया. वहांसें विहार करके "नागोर" (मारवाड) शहेरमें गये,और " हंसराज " नामा श्रावकके पास " अनुयोगद्वार " शास्त्र पढे. वहांसें "जोधपुर" जाके "वैद्यनाथ " पटवा ओसवालके पास विद्याध्ययन किया. "वैद्यनाथ"व्याकरण पढना अच्छा मानतेथे, और भाष्यकार टीकाकार आदिकोंके कथनको बहुत प्रमाणिक, और सत्य गिनतेथे. इस वास्ते उन्होंने " श्रीआत्मारामजी " को कहा कि " आप व्याकरणादि पढनेके पीछे,शास्त्रोंकी भाष्य टीका वगेरह पढो तो आपकी बुद्धि सफल होवे. " परंतु पूर्वोक्त असत्योपदेशके अजीर्णसें, और स्वोपार्जित ज्ञानावरण कर्मके प्रबलसें, " श्रीआत्मारामजी " को " वैद्यनाथ "के वचनामृतकी रुचि हुई नहीं. वहांसें विहार करके शहर " पाली " (मारवाड) वगैरहमें होके "नागोर" गये, और संवत् १९१४ का चौमासा वहां किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने ढूंढकोंके श्रीपूज्य "कचोरीमल्ल" के पास, और "नन्दराम" "फकीरचंदजी"वगैरह साधुओंके पास " सूयगडांग " " प्रश्नव्याकरण " "पन्नवणा" " जीवाभिगम" आदि शास्त्रोंका अभ्यास किया. उस समय फकीरचंदजीके पास"हर्षचंद"नामा एक शिष्य "सिध्ध हैम कौमुदी" (चंद्रप्रभा नामका जैन व्याकरण) पढताथा.जिससें फकीरचंदजीने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, "तुमारी बुद्धि बहुत निर्मल है, इस वास्ते तुम मेरे पास चन्द्रप्रभा पढो,तुमको जलदी आजावेगी."परंतु उस वखत श्रीआत्मारामजीको पूर्वोक्त कर्म रोगसें,फकीरचंदजीका पूर्वोक्त वचनामृत भी रुचा नहीं. चौमासे बाद श्री आत्मारामजीने विहार करके"मेडता" "अजमेर" "किसनगढ" "सरवाड"वगैरह शहरोमें थोडा थोडा काल व्यतीत किया,जिनमें"उत्तराध्ययन" "दशवैकालिक" " सूयगडांग" " अनुयोगद्वार " "नंदी" ढूंढकोका "कल्पित आवश्यक" और"बृहत्कल्प"वगैरह शास्त्र कंठाग्र किये. अनुमान दश हजार श्लोक श्रीआत्मारामजीने कंठाग्र किये. संवत् १९१५ का चौमासा

रोमणि वानर, तल्वार लेके सर्पकी भ्रांतिसें राजाके शरीर पर घाव करने लगा. उस अवसरमें उसी नगरका रहनेवाला कोइक विद्वान्, जन्मका दरिद्री, अन्य व्यवहाराभावसें अपनी स्त्रीकी प्रेरणासें चौरी करनेके वास्ते गया. वह प्रथम किसी वेश्याके घरमें गया. वहां देखता है कि, वेश्या किसी कुष्टीके साथ विषय सेवन कर रही है. देखके विचार करने लगा कि,"हा ! जिस पैसे वास्ते ऐसे कोढीके साथ भी यह रमण होती है ! इस वास्ते इसका पैसा मुझको लेने योग्य नहीं है"—पीछे वहांसें निकलके एक लक्षाधीशके वहां गया.वहां देखता है कि,पितापुत्र हिसाब मिला रहे हैं; परंतु हिसाब बहुत मेहनत करनेसें भी नहि मिला.अनुमान आठ आनेका फरक रहा.तब पिताने पुत्रको ऐसा मारा, कि पुत्र मूर्छित होगया, देखके पंडितने विचार किया कि जो आठ आने पीछे अपने एकके एक सकुमार पुत्रके ऊपर ऐसा जुल्म गुजारता है,यदि मैं इसका धन चुरा कर ले जाऊंगा तो,जरूर यह छाती फटकर मर जायगा! इसवास्ते ऐसे कृपणका धन भी लेना मुझको उचित नहीं है.इत्यादि विचारकर फिरता२ राजाके महेलपर जा चढा.वहां पूर्वोक्त कार्य करते वानरको देखके, एकदम पंडितने वानरके दोनों हाथ खूब जोरसें पकड लिये. तब वानरने किलकिलीयारी करके शोर मचाया. जिससें राजाकी निंद खूल गई. राजाने पंडितको पूछा, " तू कौन है ? और किसवास्ते इसको तूने पकडा है"? पंडितने ऊपर जाते हुए सर्पको दिखाके, अपना सारा वृत्तांत सत्य सत्य सुनादिया. राजाने खुश होकर पंडितकी आजीविका कर दी.और वानरको निकलवा दिया. यहां यद्यपि पंडित चौरी करनेको आया था,और राजाका शत्रुभूत हुआ था, तो भी विद्वान् होनेसें नफा नुकसान विचार लिया. इसवास्ते हित करनेवाले मूर्खसें, शत्रु पंडित ही अच्छा है कि, जो अवसर तो विचार लेता है !

" जयपुर " में किया. चौमासे बाद "बक्षीराम" साधुके साथ " माधोपुर " " रणथंभोर " होके, "बुंदी" "कोटा" शहेरमें गये. वहां ढुंढक साधुओंमें श्रेष्ठ "मगनजी स्वामी" थे, तिनको मिलनेकी श्रीआत्मारामजीकी उत्कंठा हुई. परन्तु उस समय मगनजी स्वामी भानपुरमें थे. इस वास्ते श्रीआत्मारामजी भी भानपुर जाके तिनको मिले. वहां दोनोंही आपसमें चर्चा वार्त्ता होनेसें अत्यानन्दको प्राप्त हुए. श्रीआत्मारामजी भानपुरसें विहार करके "सीताम" "उजावरा" होके "सलाना" गाममें अपने गुरुको मिलके, "रतलाम" गये. तहां ढुंढकमतका जानकार "सूर्यमल्ल" कोठारी था, जो जैनमतके ११ शास्त्र सच्चे हैं और शेष यतियोंकी कल्पनासें बने हुवे है, ऐसा मानताथा तिसको श्रीआत्मारामजीने हेतुयुक्ति देकर निरुत्तर किया, बाद तहांसें चलके " खोचरोद " " वंदावर " " वडनगर " " इंदोर " और " धारानगरीमें " होके " रतलाम " फिर आये. और संवत् १९१६ का चौमासा वहां किया. मगनजी स्वामीने भी तहांही चौमासा किया. जिससें श्रीआत्मारामजीकी उनके पास विद्याभ्यास करनेकी उत्कंठा, आनायासही सफल हुई. श्रीआत्मारामजीने उनके पाससें ढुंढकमतकी जितनी पुंजीथी–ढुंढक मतवाले ३२ शास्त्र मानतेहैं–सर्व लेली. अर्थात् ३२ ही शास्त्र पढ लिये और कितनेक कंठाग्र भी कर लिये.

अब श्रीआत्मारामजीके मनमें पूर्वोक्त कर्मरोगके प्रायः जीर्ण होनेसें ऐसी आशंका होने लगी कि, मैंने ढुंढकमतके सर्व शास्त्र देखे और इस मतके प्रायः सर्व प्रसिद्ध पंडितोंको मैं मिला, तिन सर्वका कहना एक दूसरेसें विरुद्ध है. किसी एक बाबतमें कोई कीसी तरहका अर्थ करताहै, और दूसरा दूसरी तरहका अर्थ करताहै, और जहां कोई अर्थ ठीक ठीक भान नही होताहै तो चार पांच जने एकत्र होकर सलाह करके मनः कल्पितअर्थ कर लेतेहैं, जिसको पंचायती अर्थ कहतेहैं. पंजाब देशके ढुंढकोमें प्रायः पंचायतीही अर्थ चलताहै. तो अब मुजे कौनसा मत सत्य मानना, और कौनसा असत्य मानना चाहिये ? और कितनेक लोक ४५ आगम मानतेहैं, कितनेक ३२, कितनेक ३१, और कितनेक ११ शास्त्र मानतेहैं. तो इनमें सच्चे कौन और झूठे कौन ? मुजे कितने शास्त्र सच्चे मानने चाहिये ? क्योंकि " बुंदीकोटा " वाले ढुंढक शास्त्रोंके अर्थ, अपने मुखसें मनोघटित करतेहैं. मारवाडी ढुंढक भाषारूप जो टबार्थ लिखाहै उसमेंसें अपने मतके अनुयायी, अर्थको मानतेहैं, और शेष छोड देतेहैं, या तिस पाठ पर हडताल लगाके ऊपर अपनी मति कल्पनाका अर्थ लिख देतेहैं, तथा " तपगच्छ " " खरतरगच्छ " वाले कहतेहैं, कि ढुंढक लोग शास्त्रोंका यथार्थ अर्थ नही जानतेहैं. इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करके अंतमें श्रीआत्मारामजीने यह निश्चय किया कि, संस्कृत प्राकृत व्याकरण पढनेके पीछे शास्त्रोंके यथार्थ जे अर्थ होते होवेंगे, वे, मैं मानुंगा. इस वखत श्रीआत्मारामजीको वैद्यनाथ पट्वेका और फकीरचंदजीका कहना सत्य सत्य भान हुआ.*

दोहा—तबलग धोवन दूध है, जबलग मिले न दूध ॥
तबलो तत्त्व अतत्त्व है, जबलो शुद्ध न बुद्ध ॥ १ ॥

* जैनमतके शास्त्रोंसें भी सिद्ध होताहै कि, व्याकरण अवश्यमेव पढना चाहिये. क्योंकि, श्री प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखा है कि—नाम, आख्यात, निपात, उपसर्ग, तद्धित, समास, संधिपद, हेतु, यौगिक, उणादि, क्रियाविधान, धातु, स्वर, विभक्ति, वर्ण, इनों करके युक्त—तथा जनपद सत्य, सम्मत सत्य, स्थापना सत्य,

इस तरह महाराजजीश्रीने देखा कि जैन शास्त्रोंसें सिद्ध होता है कि, विना व्याकरणके पढे ठीक ठीक यथार्थ अर्थ नही भान होसक्ता. इस वास्ते मैं जरुर अब व्याकरण पढुंगा. हाय-अफशोस! कैसे कुगुरोंके वश होकर अपनी अमूल्य विद्याप्राप्त्यवस्था निष्फल करी!

पूर्वोक्त कारणोंसें, तथा बहुत देशोंमें फिरनेसें, बहुत जैनमंदिर तथा बडे बडे पुस्तकोंके भंडार देखनेसें, श्रीआत्मारामजीके मनमें यह निश्चय हुआ कि "जैनमत" तो कोई अन्यही वस्तु है, और यह ढुंढकमत अन्यही वस्तु है.*

जैनमतके शास्त्रोंसें ढुंढकमतके विपरीत अनिष्टाचरण देखनेसें, श्रीआत्मारामजीके मनसें ढुंढकमतकी आस्था कम होगई और गुजरातदेशमें जाके पंडित साधुओंके साथ वातचित करके निर्णय करनेका इरादा श्रीआत्मारामजीने किया. तथा जैनमतके प्रसिद्ध तीर्थ "शत्रुंजय" "उज्जयंत" (गिरनार) आदिकी बहुत प्रशंसा तिनके सुननेमें आई, जिससें उनको देखनेकी उत्कंठा भी श्रीआत्मारामजीको हुई. इस वास्ते श्री आत्मारामजीने "गुजरात" देशमें जानेकी इच्छा की. परंतु जीवणरामजीने गुजरातदेशमें जानेके वास्ते कितनेक प्रकारकी दहशत दिखाई, और आज्ञा नही दी; जीससें श्रीआत्मारामजी चौमासे बाद "जावरा" "मंदसोर" "नीमच" "जावद" वगैरह शहेरोंमें होके "चितोड" गये. तहां पुराने किल्लेमें जाके बहुत उज्जडे हुए थेह, (खंडेर) जैनमंदिर, फतेहके महेल, कीर्त्तिस्तंभ, जलके कुंड, कीर्त्तिधर सुकोशल मुनिकी तप करनेकी गुफा, पद्मिनी राणीकी सुरंग, सूर्यकुंड वगैरह प्राचीन वस्तुयें देखके संसारकी अनित्यता और तुच्छता इंद्रजालकी तरह क्षणमात्रका तमासा याद आया!

इत्यादि श्रीठाणांग सूत्रोक्त दश प्रकारका त्रिकाल विषयक सत्य—तथा प्राकृत, संस्कृत, मागधी, पैशाची, सौरसेनी, अपभ्रंश, एवं षट् भाषा गद्य-पद्य रूपकरके बार प्रकारकी भाषा तथा—

"वयण तियं ३ लिंग तियं ३ कालतियं ३ तह परोक्ख १० पच्चक्खं ११
उवणीयाइ चउक्कं १५ अब्भत्थंचेव १६ सोलसमं"

एवं सोलह प्रकारके वचनको जाननेवालेको अर्हदनुज्ञात बुद्धिद्वारा पर्यालोचन करके साधुको अवसरमें बोलना चाहिये, नान्यथा. तथा श्रीअनुयोगद्वार सूत्रमें सक्कया पागयाचेव इत्यादि संस्कृत, और प्राकृत दो प्रकारकी भाषा स्वरमंडलमें ग्रहण करके बोलनेवाले साधुकी भाषा प्रसस्थ है. तथा पूर्वोक्त शास्त्रमेंही प्रमाणाधिकारमें भावप्रमाण चार प्रकारका है—सामासिक (१) तद्धितज (२) धातुज (३) निरुक्तिज (४). सामासिकके सात भेद हैं. द्वंद्व (१) बहुव्रीहि (२) कर्मधारय (३) द्विगु (४) तत्पुरुष (५) अव्ययीभाव (६) और एकशेष (७). ताद्धितजके आठ भेद हैं, कर्म (१) शिल्प (२) श्लाघा (३) संयोग (४) समीप (५) ग्रंथरचना (६) ऐश्वर्यता (७) और अपत्य (८). धातुज—भू सत्तायां परस्मै भाषा—एध वृद्धौ—स्पर्द्ध संहर्षे—निरुक्तिज—मह्यां शेते महिषः। भ्रमति रौति च भ्रमरः मुहुर्मुहुर्लसतीति मुसलं इत्यादि—और भी श्रीठाणांगसूत्र—दशाश्रुत स्कंधसूत्र वगैरहसें भी व्याकरणका पढना सिद्ध होता है.

* प्रायः इनका आचरण, जैनमतकेशास्त्रोंसें विपरीत हैं. जैनशास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने जिनप्रतिमाका पाठ आता है, तिनका ढुंढकलोक निषेध करते हैं; और जिन प्रतिमाकी शास्त्रोक्त रीतिसें पूजन करनेवालेको हिंसाधर्मी कहते हैं. तपगच्छ, खरतरगच्छ आदिके साधु मुहपत्ति हाथमें रखते हैं, और ढुंढक साधु रातदिन मुख बंधी रखते हैं; जो कि जैनमतके शास्त्रसें विरुद्ध है. तपगच्छादिके साधु दंडा रखते हैं, ढुंढक रखते नही हैं; और शास्त्रोंमें दंडेका वर्णन आता है. कितनेक ढुंढकमतके श्रावक, कितनेही महीनोंतकका स्नान करनेका नियम करतेहैं, इतनाही नहीं, परंतु कितनेक जंगल (दिशा) फिरके हाथ, पाणीसें धोनेका भी नियम करते हैं. जिस नियमका नाम "अणकी व्रत" बहुत ढुंढकोमें प्रसिद्ध है तथा लघुनीतिका नाम "नयापाणी" धर रखा है, इत्यादि.

चितोडसें " उदयपुर " " नाथद्वारा " " कांकरोली " " गंगापुर " " भीलाडा " " सरवाड " " जयपुर " " भरतपुर " " मथुरा " " विंद्रावन " होके " कोशी " के रस्ते " दिल्ली " शहरमें गये वहां चौमासा करनेकी श्रीआत्मारामजीकी इच्छा थी, परंतु जीवणरामजीके कहनेसें संवत् १९१७ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने " सरगथल " गाममें किया. चौमासे बाद विहार करके दिल्ली गये. दिल्लीसें जमनापार " खट्टा " " लुहारा " " विनौली " "बडौत" " सुनपत " वगैरह स्थानोंमें फिरके संवत् १९१८ का चौमासा, दिल्लीमें जा किया. तिस चौमासेमें " पंजावी ढुंढकोंके पूज्य " " अमरसिंहजी "के चेले मुस्ताकराय और हीरालालको आठ शास्त्र श्रीआत्मारामजीने पढाये. चौमासे वाद सुनपत पानिपत होके श्रीआत्मारामजी " करनाल " गाममें आये. वहां अमरसिंहजीके चेले " रामबक्ष " " सुखदेव " " विश्वचंद " " चंपालाल " वगैरह मिले. तब श्रीआत्मारामजीने रामवक्ष, और विश्वचंदको अनुयोगद्वारसूत्र पढाया. वहांसें विहार करके श्रीआत्मारामजी "अंबाला" शहरमें आये और रामवक्षादि भी वडसटके रस्ते होकर अंबाला शहरमें आये. वहांसें विहार करके श्रीआत्मारामजी "खरड" "रोपड" होके "माछीवाडा" गाममें गये. यहांतक तो रामवक्ष वगैरह साधु, श्रीआत्मारामजीके साथही रहे, और पढते भी रहे. जिसमें इतने समयमें श्रीआत्मारामजीने पूर्वोक्त रामवक्ष और विश्वचंदको आचारांग, जीवाभिगम, नंदीसूत्र, वगैरह शास्त्र पढाये.

रोपड गाममें श्रीआत्मारामजीने पंडित "सदानंदजी"सें " सारस्वत " व्याकरण पढना शुरू किया, और थोडेही समयमें अपनी अपूर्व बुद्धिसें षट्लिंगतकका अभ्यास कर लिया. माछीवाडेसें विहार करके श्रीआत्मारामजी मालेर कोटलामें जाके अपने गुरु जीवणरामजीसें मिले. वहांसें जीवणरामजी तो "रणीया" गाममें जा चौमासा रहे, और श्रीआत्मारामजी " सुनाम " गये, जहां श्रीआत्मारामजीका एक चेला हुआ. सुनामसें "समाणा" "पटीयाला " "नाभा" "मालेर कोटला" " रायका कोट " और "जीगरांवह" वगैरह होके श्रीआत्मारामजी " जीरा " गाममें गये, और संवत् १९१९ का चौमासा जीरामें किया.

रामवक्ष वगैरह साधु, देश "मारवाड"के तरफ विहार कर गये. क्यौंकि, इनके गुरु अमरसिंहजी मारवाडको गये हुयेथे. इतने दिनोंतक केवल पढनेके वास्तेही श्रीआत्मारामजीके पास रहेथे. परंतु चलते समय रामवक्षने श्रीआत्मारामजीसें आधीनताके साथ प्रार्थना की कि, "आप इस मुलक पंजावमें आगयेहैं, और मेरे गुरु मारवाडको चलेगयेहैं, इस वास्ते आपने इस पंजाबदेशसें जोर लगाकर "अजीवमतकी"* जड काटते रहेना, इससें मेरे गुरु अमरसिंहजीको परम आनंद होगा और आपका वडा उपकार होगा." संवत् १९१९ के चौमासेमें जीराही गाममें श्रीआत्मारामजीको व्याकरणके बोधसें ज्यादाही शक पैदा हुआ कि "जो अर्थ ढुंढक लोग शास्त्रोंका करतेहैं, वह व्याकरणकी रीतिसें ठीक मालुम नही होताहै; इसका निश्चय करना चाहिये. क्यौंकि मैंने थोडाही व्याकरण अबतक पढाहै, तो भी मुजे कितनेही ठीक अर्थ मालुम होने लगेहैं तो, यदि जिसको पूरा पूरा व्याकरणका बोध होवे, उसका तो क्याही कहना है? इससें यही सिद्ध होताहै कि,

* पंजाव देशके ढुंढकोंमें दो फिरके (मत) है, एकतो अनाजमें जीव मानते हैं ओर, एक नही मानते हैं. जो नही मानते हैं उनको अजीवमती कहते हैं.

ढुंढक लोग इसही डरके मारे व्याकरण पढने नही देतेहैं और यह भी सिद्ध होताहै कि इनके सब अर्थ प्रायः मनः कल्पित हैं, और जानबुझके अज्ञान रूप अंधे कूपमें गिरते हैं." यह समझके श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, जो कुच्छ पूर्वाचार्योंने निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका वगैरह द्वारा अर्थ कियेहैं, वेही अर्थ यथार्थ हैं, और जो कोइ मनःकल्पित अर्थ शास्त्रोंके करतेहैं, वो बडाही अनर्थ करतेहैं.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी जीरासें विहार करके "मनोहरदास"के टोलेके ढुंढक साधुओंमें वृद्ध पंडित साधु "रत्नचंदजीके" पास विद्याभ्यास करनेके वास्ते "आग्रा" शहरमें गये, और संवत् १९२० का चौमासा वहांही किया. रत्नचंदजीने बडी खुशीसें श्रीआत्मारामजीको "स्थानांग" "समवायांग" "भगवती" "पन्नवणा" "बृहत्कल्प" "व्यवहार" "निशीथ" "दशाश्रुत स्कंध" "संग्रहणी" "क्षेत्रसमास" "सिद्ध पंचाशिका" "सिद्धपाहुड" "निगोद छत्रीसी" "पुद्गल छत्रीसी" "लोकनाडीद्वात्रिंशिका" "षट्कर्म ग्रंथ" चार जातके "नयचक्र," इत्यादि कितनेही शास्त्र पढाये, जिनमें कितनेक प्रथम श्रीआत्मारामजी पढे हुएथे, तो भी अर्थ निश्चय करनेके वास्ते फिरसें पढे. श्रीआत्मारामजीको विभक्तिज्ञान होनेसें जे अर्थ मालुम होतेथे, वे अर्थ ढुंढकोंके पढाये अर्थके साथ नहीं मिलतेथे, जिससें श्रीआत्मारामजीको निश्चय होगया कि पूर्वाचार्योंके किये हुये अर्थही सत्य हैं, तथापि परीक्षा करने लगे तो पूर्ण करनी चाहिये. रत्नचंदजीके पढाये अर्थ प्रायः अन्य ढूंढकोंसें विपरीत, और टीका वगैरहके साथ मिलते हुये श्रीआत्मारामजीको भान हुए, इस वास्ते अधिक आनंदसें उनके पास पढे. इस चौमासेमें श्रीआत्माराजीने रत्नचंदजीके पाससें कितनाक अपूर्व ज्ञान भी प्राप्त किया. रत्नचंदजीके पास चिरकालतक श्रीआत्मारामजीकी पढनेकी मरजीथी परंतु जीवणरामजीके बुलानेसें चौमासे बाद विहार करनेकी तैयारी करके श्रीआत्मारामजी रत्नचंदजीके पास आज्ञा लेनेके वास्ते गये. तब रत्नचंदजी नाराज होके कहने लगे कि "तुमारा वियोग मैं चाहता नहीं हुं. परंतु क्या करूं? तुमारे गुरूका हुकम आयाहै, सो तुमको भी मान्य करनाही चाहिये, परंतु अंतकी मेरी शिक्षा तुम अंगिकार करो. मैंने सुनाहै कि, आत्माराम श्री जिन प्रतिमाकी बहुत निंदा करताहै, परंतु यह काम करना तुजको अच्छा नहीं है. हमारे कहनेसें इस तरह अमल करना. एक तो श्री जिन प्रतिमाकी कबी भी निंदा नहीं करनी (१) दूसरा पेशाब करके विना धोया हाथ कबी भी शास्त्रको नहीं लगाना (२) और तीसरा अपने पास सदा दंडा रखना (३). मैंने यह तुजको श्री जैनमतका असल सार बताया है. कितनेक दिनों बाद जब तूं व्याकरण पढेगा, और शास्त्रका यथार्थ बोध होगा, सब कुच्छ तुजको मालुम हो जायगा. आगे भी इसी तरह ज्ञानाभ्यास करनेमें निरंतर उद्यम रखना और व्याकरण जरूर पढना." तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, "महाराजजी! एक बात और भी बतावें कि, मुखपर कानोंमें डोरा डालकर मुहपत्तीका बांधना सूत्रानुसार है कि नहीं?" श्रीरत्नचंदजीने जवाब दिया कि, "सूत्रानुसार तो नहीं. क्योंकि, शास्त्रानुसार तो मुहपत्ती हाथमें रखनी कही है. परंतु अनुमान (१५०) देढसें वर्षसें हमारे बडोंने मुखपर मुहपत्ती बांधी है, और तेरे बडोंने अनुमान दोसौं (२००) वर्षसें बांधनी सुरू की है. यह ढुंढकमत अनुमान सवादोसौं (२२५) वर्षसें बिना गुरु अपने

आप मनःकल्पित वेष धारण करके निकाला गयाहै."श्रीआत्मारामजीको तो,प्रथमसेंही कितनीक बातोंका शक था. अबतो सर्वथा निश्चय होगया कि,निश्चयही यह ढुंढकमत बनावटी है. और सनातन जैनधर्मसें उलटा है. और भगवतीजी, अनुयोगद्वार,समवायांग, नयचक्र वगैरह शास्त्रोंमें " आवश्यक" " विशेषावश्यक " की साक्षी दी है और लिखा भी है कि,आवश्यकका इतना मूलपाठ है, इतनी निर्युक्ति है, इतना भाष्य है, इतनी चूर्णि है, इतनी टीका है. और ढुंढकके माने आवश्यकमें कितनीक बातें जे शास्त्रोंमें है, वे नही है, और ढुंढक आवश्यक गुजराती भाषामें है, और दूसरे शास्त्र प्राकृतमें है. इसवास्ते आवश्यक सूत्र भी प्राकृत भाषामें होना चाहिये. इसतरह श्री आत्मारामजीकी ढुंढकमतसें अनास्था होनी शरू हुई. तोभी अधिकतर निश्चय करनेके वास्ते श्रीआत्मारामजीने वहुत शास्त्रोंकी पुनरावृत्ति की. तथापि अंतमें ऊंटके मेंगणेकी तरह ढुंढकमतकी पोल निकली. इसवास्ते श्रीआत्मारामजीने निश्चय किया कि, " मैं अपनी शक्तिके अनुसार भव्य जीवोंके आगे सत्य सत्य बात प्रगट करूंगा, जिसको रुचेगा, वो ग्रहण कर लेवेगा. " ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी आग्रेसें विहार करके दिल्ली आये, वहां श्री विश्चचंदजी मिले. और श्रीआत्मारामजीसें शास्त्र पढने लगे और साथही साथ विहार करते हुए मालेर कोटलामें आये. एक दिन श्रीविश्चचंदजी, पेशाव करके हाथ विनाही धोये शास्त्र पढने लगगये. इससें श्रीआत्मारामजीने गुस्से होकर विश्चचंदजीको कहा कि, " खबरदार ! आज पिछे कबी भी ऐसा काम नही करना. अर्थात् विना धोये हाथ पेशाव करके शास्त्रको नहीं लगाना." प्रत्यक्षमें तो श्रीविश्चचंदजी, पूर्वोक्त श्रीआत्मारामजीका कहना मंजुर करके मौन होरहे; परंतु दिलमें विचार करने लगे कि, "रत्नचंदजीकी संगतसें इनकी श्रद्धामें फरक पडगया है, इसी वास्ते यह ऐसे कहते हैं. क्योंकि, मेरे गुरु रामवक्षजी, और उनके गुरु अमरसिंहजी पूज्यजी महाराज वगैरह सब ढुंढक साधु, पेशावसें शुद्धि करना, आहारके पात्रोमें लेकर वस्त्रादि धोना आदि करते हैं. परंतु मुजे तो इनके पास पढना है इसवास्ते कितनेक दिन जिस तरह यह कहते हैं, इसी तरह करना चाहिये." कोटलामें श्रीआत्मारामजीने, पंडित " अनंतरामजी" सें शेष व्याकरण पढना शुरू किया;और एक महीनेके बाद विहार करके रायका कोट होकर जगरांवां गाममें आये. वहां " चोथमल्ल " के पत्रसें अपने उपकारी वियागुरु, श्रीरत्नचंदजीका संवत् १९२१ का जेठ मासमें स्वर्गवास होना सुनकर, बहुत अफसोस किया. अंतमें अपने ज्ञानवलसें अफसोस दूर करके, श्रीआत्मारामजी जगरांवांसें विहार करके शहर"लुधीआना"में आये. वहां श्रावक " सेढमल्ल " " गोपीमल्ल " वगैरहसें अजीवमतकी श्रद्धा छुडवाई. और मासकल्पके बाद लुधीआनासें विहार करके कोटलामें गये. और संवत् १९२१ का चौमासा वहां किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने चंद्रिका, कोष,काव्य, अलंकार, तर्कशास्त्र वगैरहका अभ्यास किया, तथा श्री " विश्चचंदजी"को भी,शास्त्रानुसार चर्चा करके यथार्थ सत्य मार्गका बोध कराया.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीयाना होके " देशु "नामा गाममें गये. वहां एक यतिके पुस्तकोंमेंसें " श्रीशिलांकाचार्य विरचित श्रीआचारांग सूत्र वृत्ति" (टीका) की प्रति श्रीआत्मारामजीको मिली. इस प्रतिके मिलनेसें श्रीआत्मारामजीको ऐसा आनंद प्राप्त हुआ कि, जैसें मरुदेशमें प्यासेको अमृत मिलनेसें शांति होवे ! तहांसें विहार करके राणीया,रोडी, होकर "सरसा"

गाममें गये; और संवत् १९२२ का चौमासा वहां किया. वहां "किशोरचंदजी" यतिके पास श्री-आत्मारामजीने दो तीन ज्योतिषके ग्रंथ पढे. तथा वडगच्छके यति " रामसुख " और खरतर गच्छके यति "मोतीचंद"के पाससें साधु श्रावकके प्रतिक्रमण और तिसके विधिके पुस्तक लाकर देखें तो, मालुम हुआ कि, ढुंढकमतका प्रतिक्रमण, और तिसका विधि, यथार्थ नहीं है. और भी कितनेक पुस्तक लाकर देखा, और आचारांग सूत्र वृत्तिका भी स्वाध्याय किया, जिससें श्रीआत्मारामजीको अधिकतर निश्चय हुआ कि, ढूंढकमत असल जैनमत नहीं है. परंतु जैनमतके नामसें जैनमतका आभास रूप, एक नया पंथ मनःकल्पित निकाला है. तथापि श्रीआत्मारामजीने विचार किया कि, " इस समय कुल पंजाब देशमें प्रायः ढुंढकमतका जोर है; और मैं अकेला शुद्ध श्रद्धान प्रकट करूंगा तो, कोई भी नहीं मानेगा. इस वास्ते अंदर शुद्ध श्रद्धान रखके बाह्य व्यवहार ढुंढकोंकाही रखके कार्यसिद्धि करनी ठीक है. अवसर पर सब अच्छा होजावेगा." ऐसा निश्चय करके श्रीआत्मारामजी चौमासे बाद सरसेसें सुनाममें आये; वहां " कनीराम " रोहतक वाला ढुंढक साधु मिला. तिसके साथ ढुंढक साधुके भेष, और पडिक्कमणेका विधि, और ढुंढकाचारकी बाबत वार्त्तालाप हुआ. परंतु कनीरामने कुच्छ भी शास्त्रानुसार ठीकठीक जवाब न दिया, और कहा कि, "तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है, जो तुम अपने गुरु, दादगुरुओंके कथनमें शंका करते हो ? " तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "मैं कोई गुरु, दादगुरुओंका बंधा हुआ नहीं हूं, मुझें तो श्रीमहावीर स्वामीके शासनके शास्त्रोंका मानना ठीक है. यदि किसीके पिता, पितामह कूपमें गिरे होवे तो, क्या उसके पुत्रको भी कूपमेंही गिरना चाहिये? " तब कनीराम क्रोध करके चला गया. और श्रीआत्मारामजी भी सुनामसें विहार करके मालेर कोटलामें आये, वहां लाला " कवरसेन " और " मंगतराय " के आगे अपने अंतरंग जो सनातन जैनधर्मका श्रद्धान बैठा था, सुनाया. उन्होंने भी अच्छी तरहसें समझके श्रीआत्मारामजीका कथन, जैनशास्त्रानुसार यथार्थ होनेसें अंगीकार किया. और श्रीआत्मारामजीकोही सद्गुरु सत्योपदेष्टा मानने लगे. पंजाबमें इस वखत पूर्वोक्त दोही श्रावक, प्रथम शुद्ध श्रद्धान वालोंकी गिनतीमें हुए. वहांसें विहार करके शहर लुधीयानामें आये. वहां लाला " गोपीमल्ल " पाटणी को शास्त्रानुसार समझायके श्रीआत्मारामजीने अपना तीसरा श्रावक बनाया. यहां इस समय श्रीविश्नचंदजी, और तिनके चेले चंपालालजी वगैरह भी आये हुएथे. चंपालालजीके मनमें कितनेक संशय ढुंढकमत संबंधी पडे हुएथे. इसवास्ते अपने गुरु विश्नचंदजीको अवसर पाकर पूछतेही रहतेथे. परंतु श्रीविश्नचंदजी अवसरके जानकार होनेसें, यद्यपि अपने अंदर श्रीआत्मारामजीकी सोबतसें शुद्ध श्रद्धान हुआथा, और श्री सनातन जैनधर्मका शुद्ध स्वरूप जानते थे, तोभी खुलकर कथन करनेका अवसर अबतक न होनेसें पूरा पूरा जवाब नहीं देतेथे. किंतु गोलमोल जिससें पूछने वालेको ज्यादा शंका पडे, वैसे जवाब देतेथे. इसवास्ते एक दिन श्रीचंपालालजीने श्रीविश्नचंदजीको जोर देकर कहा कि, "महाराजजी साहिब ! हमने जो घर, हाट, पुत्र, परिवार आदि छोडके साधुपणा लियाहै, और आपका शरणा अंगिकार कियाहै, सो कुच्छ डूबनेके वास्ते नहीं, किंतु तिरनेके वास्ते है. इसवास्ते आप हमको शुद्ध अंतःकरणसें यथार्थ जैनमत, जो कि महावीर स्वामीके शासन पर्यंत सनातन चला आया, सो बताओ; हम आपका बडाही उपकार मानेंगे. जैसे आपने उपदेश देकर हमको संसारसें बचा-

या, ऐसेंही इस संशयसें भी बचाइये. आपके विना और किसके आगे हम अपने दिलकी बातें करें" ? तब श्रीविश्नचंदजीने श्रीआत्मारामजीके पास अपने चेले चंपालालजीके प्रत्यक्ष सवाल जवाब करके चंपालालजीको ठीकठीक निश्चय करा दिया. उस दिनसें चंपालालजीने भी शुद्ध श्रद्धा धारण की. बाद श्रीविश्नचंदजीने तो, लुधीयानासें विहार कर दिया, और रस्तेमें गुरूके झंडीआलाके श्रावक "मोहरसींघ" "वशाखीमल्ल मालकौंस" और जमृतसरवाले लाला "बूटेराय" ज्वहरीको प्रतिबोध किया. तथा साधु "हुकमचंदजी–हाकमरायजी" को भी श्रीविश्नचंदजीने प्रतिबोध किया, इसतरह श्रीविश्नचंदजी, और चंपालालजीकी मददसें श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धाके आदमियोंकी गिनती बढने लगी; और ढुंढक श्रद्धान रूप अजीर्ण दूर होता चला.अनुक्रमे श्रीविश्नचंदजी वगैरह पट्टी गाममें गये. वहां लाला "घसीटामल्ल" जो पूज्य अमरसींहका मुख्य श्रावक था, तिसके साथ वातचीत हुई. जिससें लाला घसीटामल्लके दिलमें भी कितनेही शक पैदा होगये.तब घसीटामल्लने पूर्वोक्त संशयको दूर करके निर्णय करनेके वास्ते, श्रीविश्नचंदजीके कहनेसें अपने पुत्र "अमीचंदजी" को व्याकरण पढाना शुरू कराया. जब वो पढकर तैयार होगया, तब घसीटामल्लने कहा कि, "पुत्र ! किसीका भी पक्षपात न करना. जो शास्त्रमें यथार्थ वर्णन होवे, सो तूं मुजे सुनाना." तब अमीचंदने कहा कि, "पिताजी ! जो कुच्छ, श्रीमहाराज आत्मारामजी,तथा विश्नचंदजी वगैरह कहते हैं,सो सर्व ठीक ठीक है. और पूज्य अमरसींहजी, तथा उनके पक्षके ढुंढक साधुओंका जो कुच्छ कथन है, सो सर्व असत्य, और जैनमतसें विपरीत है." यह सुनकर लाला घसीटामल्ल भी ढुंढकमतको छोडके शुद्ध श्रद्धानवाले होगये.पूर्वोक्त अमीचंद इस समय गुजरात–मारवाड–पंजाब वगैरह देशोंमें "पंडित अमीचंदजी" के नामसें प्रसिद्ध है, और प्रायः श्रीआत्मारामजीके संवेगमत अंगीकार किया पीछे,जितने नूतन शिष्य हुये, सर्वने थोडा बहोत जरूरही पंडितजी अमीचंदजीके पास विद्याभ्यास किया,बलकि अबतक कियेही जाते हैं.

पट्टीसें विहार करके श्रीविश्नचंदजी, हुकमचंदजी, हाकमरायजी, चंपालालजी वगैरह श्रीआत्मारामजीके पास, जो लुधीयानासें विहार करके शहर "जलंधर" में आये हुये थे, पहुंचे.क्योंकि, वहां श्रीआत्मारामजीकी, और अजीवपंथी "रामरतन" और "वसंतराय" की अजीवपंथ संबंधी चर्चा होनेके वास्ते निश्चय होगया था. इस अवसर पर २७ शहरोंके श्रावक आये हुये थे, और पादरी तथा ब्राह्मण पंडितोंको मध्यस्थ नियत किया था. जिसमें रामरतन और वसंतराय हार गये, और श्रीआत्मारामजीकी जीत हुई. तथापि रामरतन वगैरहने अपना हठ छोडा नहीं. सत्य है कि, जिसका जो स्वभाव पडजावे, मरणपर्यंत भी वो स्वभाव प्रायः तिसका दूर नहीं होता है.

यतः ॥ यो हि यस्य स्वभावोस्ति । स तस्य दुरतिक्रमः ॥
श्वा यदि क्रियते राजा । किं न अत्ति उपानहम् ॥ १॥

भावार्थः–जो जिसका स्वभाव है, वो तिसका दूर होना मुश्किल है. क्या यदि कुत्तेको राजा बनाइये, तो वो जुतीको भक्षण नहीं करता है? अपितु करताही है.

जालंधरसें जयपताका लेकर विहार करके श्रीआत्मारामजी, तथा विश्वचंदजी वगैरह अमृतसरमें आये. और श्रीआत्मारामजीने, लाला "उत्तमचंदजीकी" बैठकमें उतारा किया. और

व्याख्यानमें "श्रीभगवती सूत्र" सटीक वांचना प्रारंभ किया. जो सुननेके वास्ते पूज्य अमरसींघजी भी, अपने सब चेलोंके साथ आया करते थे. श्रोताका जमाव इतना होता रहा कि, मकानमें बैठनेकी जगा भी मिलनी मुश्किल होगई. तब सबने सलाह करके व्याख्यानके वास्ते दूसरा बडा भारी मकान मंजुर किया, और वहां व्याख्यान होने लगा. श्रीआत्मारामजीका व्याख्यानामृत सुन करके भी, श्रोताजनोंको तृप्ति नही होतीथी; अर्थात् श्रवण करनेकी तृष्णा, बढतीही जातीथी. उस समय पूज्य अमरसींघजी तो ऐसे मोहित होगये कि, एक दिन श्रीआत्मारामजीको कहने लगे कि, किसीतरह मेरे चेलोंको भी, यह ज्ञान, सिखाना चाहिये. जिससें जैनमतका बडा भारी उद्योत होवे. तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "पूज्यजी साहिब! व्याकरणका अभ्यास बिना किये, यह ज्ञान पाना बडाही मुश्किल है; इस लिये प्रथम इनको व्याकरण पढाना चाहिये." इससें पूज्य अमरसींघजीके प्रायः सब साधु उसवखत पंचसंधि पढने लग गये.

एक दिन श्रीआत्मारामजीने व्याख्यानमें अवसर देखकर कहा कि, "पूर्वाचार्योंके कथन करे अर्थको छोडकर, मनःकल्पित अर्थ करनेवालोंका परलोकमें खबर नहीं क्या हाल होवेगा?" यह सुनकर, पूज्य अमरसींघजीको गुस्सा आया; और सोदागरमल्ल ओसवाल, स्यालकोटका वासी, ढुंढक श्रावकोंमें मुखी और जानकार किसी कारणसें अमृतसरमें आयाथा, तिसको कहने लगे कि, "आज काल आत्मारामको बडाही अभिमान आगया है, परंतु मैं इसका अभिमान दूर करूंगा, मेरे आगे यह क्या चीज है?" सत्य है अपने चित्तका माना हुआ गर्व किसको सुखदाई नही होता है?

यतः—टिट्टिभः पादमुत्क्षिप्य, शेते भंगभयाद्भुवः ॥
स्वचित्तनिर्मितो गर्वः, कस्य न स्यात् सुखप्रदः ॥ १ ॥

भावार्थः—टिट्टिभ (टटीरी) जानवर, मेरे पैर रखनेसें पृथिवीका भंग न होजावे! इस भयसें अपने पैरोंको ऊंचे करके सोवे हैं. इसवास्ते अपने चित्तसें बनाया हुआ गर्व (अहंकार) किसको सुख देनेवाला नहीं है?

अमरसींघको पूर्वोक्त अहंकारमें आये हुऐ जानके, सोदागरमल्लने समझाये कि, "पूज्यजी साहिब! आप आत्मारामजीके साथ मत संबंधी चर्चा कदापि मत करो, यदि करोगे तो, याद रखना! तुमारे मतकी जड काटी जायगी. मैंने अच्छी तरह समझ लिया है कि, इनके (आत्मारामजीके) सामने कोई भी जवाब देनेको समर्थ नहीं है." सोदागरमल्लका पूर्वोक्त कहना सुनकर, पूज्य अमरसींघजी हैरान होगये और सुनकर चूपके हो रहे; और श्रीआत्मारामजीकी बराबरी करनेमें असमर्थ होकर, खुशामत करने लग गये. सत्य है "डरती हर हर करती." श्रीआत्मारामजीको एकदिन एकांतमें ले जाकर ऐसे कहने लगे कि, "बेटा आत्मारामजी! तू हमारे मतमें लाल (रत्न) पैदा हुआ है. इस वास्ते तुजको ऐसा काम करना चाहिये कि, जिससें हमारा तुमारा आपसमें मतभेद न पडे." तब श्रीआत्मारामजीने कहा, "पूज्यजी साहिब! जो पिछले आचार्योंका लेख शास्त्रोंमें चला आयाहै, मैं उससें उलटी प्ररूपणा कदापि न करूंगा. और आपको भी यही उचित है कि, आप जरुर सत्यासत्यका निर्णय कर लेवें. क्योंकि, यह मन-

ष्यका जन्म, वारंवार मिलना मुश्किल है. इस जूठे हठको छोडदे." इत्यादि अनेक प्रकारकी हित शिक्षा, श्रीआत्मारामजीने अमरसींघजीको दी. परंतु अमरसिंघजीको इस हित शिक्षाने कुछ भी फायदा नही किया. क्योंकि--

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ॥
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति ॥ १ ॥

भावार्थः--अनजानको समझाना सुखाला है, इससें भी जो सखस अच्छे बुरेको समझताहै, और हठी कदाग्रही नहीं है, ऐसे पंडितको समझाना अतीव सुकर (सुखाला) है. परंतु जो प्राणी, ज्ञानके दो अक्षर आनेसें दुर्विदग्ध होगया, (अर्थात् थोडासा पढके अपने आपको बृहस्पति तुल्य मानने लग गया, हठ कदाग्रहसें प्रीति करने लग गया) ऐसे सखसको तो ब्रह्मा भी रंजित नही कर सकताहै. अर्थात् पूर्वोक्त लक्षणोंवाले पंडितायते (पंडिताभिमानी) को तो ब्रह्मा भी नहीं समझा सकताहै तो औरका तो क्याही कहना?--गुस्सा करके अमरसिंघजी पराङ्मुख होगये. तब श्रीआत्मारामजीने भी विचारा कि--

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शांतये ॥
पयःपानं भुजंगानां, केवलं विषवर्द्धनम् ॥ १ ॥

भावार्थः--मूर्खोंको उपदेश देना क्रोध बढानेके वास्ते है, परंतु शांतिके वास्ते नहींहै, जैसे कि, सापको दूध पिलाना, केवल विषका बढानाहै. इस वास्ते इनको ज्यादा कहना, नुकशान कर्त्ता है, ऐसा विचारके श्रीआत्मारामजी भी अपने स्थानपर चले गये. कितनेक दिन पीछे अमरसिंघजी तो पट्टीको विहार करगये; और श्रीआत्मारामजी विश्वचंदजी आदि अमृतसरसें विहार करके जालंधर शहरमें आये. और "खरायतीमल्ल" (श्रीआत्मारामजीका गुरुभाई) और "गणेशीलाल" (शिष्य) येह दो साधु, कितनेक दिन पहिलेही हुशीआरपुर चले गये थे. वहां इन दोनोंका आपसमें कलह हुआ, इससें गणेशीलाल मुहपत्तीका डोरा तोडकर, श्रीआत्मारामजीको विना मालुम किये, हुशीआरपुरसें विहार करके शहर गुजरांवालामें "श्रीबुद्धिविजयजी" (बूटेरायजी)* संवेगी तपगच्छके साधूके पास चला गया.

* तसवीर देखो. इन महात्माका जन्म, देशपंजाबमें लुधीआना शहेरके तरफ बलोलपुरसें सात आठ कोश दक्षिणके तरफ दूलुवां गाममें टेकसिंघ नामा कुटंबिक (कुणबी--पटेल) की कर्मो नामा स्त्रीकी कूखसें विक्रम संवत १८६३ में हुआथा. माताकी आज्ञा लेके विक्रम संवत् १८८८ में इनोंने संसार छोडके, मलुकचंदके टोलेके नागरमल्ल नामा ढुंढक साधुकेपास साधुपणा लियाथा. परंतु शास्त्रोंके देखनेसें, और देशदेशावरोंमें फिरनेसें, ठिकाने ठिकाने श्रीजिनमंदिरोंको देखनेसें, ढुंढकमत मनःकल्पित मालुम होनेसें, देश गुजरात शहर अहमदावादमें आके "गणि श्री मणिविजयजी" महाराजजीके पास अनुमान विक्रम संवत् १९११--१२में तपगच्छका वासक्षेप लेके, पूर्वोक्त महात्माको गुरु धारन करके, ढुंढकमतका त्याग करा. यद्यपि ढुंढकमतका श्रद्धान तो इन महात्माके मनसें विक्रम संवत् १८९३ में निकल गयाथा, परंतु पूर्वोक्त संवत् तक यथार्थ गुरु नही धारण करनेसें ऐसा लिखा है. इन महात्माका विशेष वर्णन जिसको देखनेकी इच्छा होवेतो, इनकी बनाई "मुहपत्ती चर्चा" नाम पोथीसें देखलेवें. इन महात्माके पांच शिष्य प्रायः अधिक

ये गणेशीलाल श्री "बूटेरायजी" सें संवेगी दीक्षा लेकर "विवेक विजय" नामसें विचरने लगा. और ठिकाने ठिकाने कहने लगा कि, "श्रीआत्मारामजीके अंदर शुद्ध सनातन जैनमतकी श्रद्धा होगई है; और प्रत्यक्षमें ढुंढक भेष, और व्यवहार रक्खा है. परंतु ढुंढकमतकी आस्था, बिलकुल नहीं है" इसके ऐसे अनुचित समयमें इसतरहके कथनसें, और पूर्वोक्त काररवाई अंगीकार करनेसें कितनेही शहरोंके लोगोंको सनातन जैनमतकी शुद्ध श्रद्धा प्राप्त होनी बंध होगई. क्योंकि, बहुत अनजान लोकोंने विनाही समझे हठ कदाग्रह करके श्रीआत्मारामजी वगैरहके पास जाना आना बंध करदिया.*

जालंधरसें विहार करके श्रीआत्मारामजी, "हुशीआरपुर" गये. और संवत् १९२३ का चौमासा वहांही किया; जिस चौमासेमें "भक्त नथ्थुमल्ल, बिल्लामल्ल, मानामल्ल" वगैरह बहुत लोकोंने शुद्ध सनातन जैनमतका श्रद्धान अंगीकार किया. और लाला "गुज्जरमल्ल" वगैरह कितनेक अंतरंग शुद्ध श्रद्धानवाले थे, उनका श्रद्धान परिपक्क होगया. चौमासे बाद हुशीआरपुरसें विहार करके दिल्लीशहर तरफ गये, और संवत् १९२४का चौमासा, दिल्लीसें विहार करके जमना नदीके पार, "विनौली" गाममें जा किया; जहां भी कितनेही लोकोंने सनातन जैनधर्मका श्रद्धान अंगीकार किया. इस चौमासेमें श्रीआत्मारामजीने "नवतत्त्व" ग्रंथ बनाना शुरु किया; चौमासे बाद विचरते विचरते "डोंगर" नाम गाममें गये, जहां एक "रणजीतमल्ल" ओसवाल जो मारवाडसें पंजाब देशको रामबक्षके साथ आयाथा, श्रीआत्मारामजीको मिला; तब श्रीआत्मारामजीने तिसको पुराणा मिलापी समझके, यथार्थ तत्त्वका स्वरूप सुनाया; क्योंकि, प्रथम भी जयपुर दिल्ली वगैरहके चौमासेमें श्रीआत्मारामजी "रणजीतमल्ल" को कई प्रकारका ज्ञान पढाते रहेथे. इस बातसें रणजीतमल्लके मनमें शक पैदा होनेसें ढुंढक "चंदनलालजी" साधुको, (जो जोगराजीये ढुंढक रुडमल्लजीके चेले थे—"श्रीआत्मारामजी" भी जोगराजियेही कहातेथे) श्रीआत्मारामजीके पास ले आया. चंदनलालजीने "श्री आत्मारायजी" सें साधुके उपगरण, और प्रतिक्रमण संबंधी वातचित करी, तब "श्रीआत्मारामजी" ने शास्त्रके पाठ, चंदनलालजीको दिखलाया. देखतेही "श्रीचंदनलालजी" ने "श्रीआत्मारामजी" का कहना, सत्य सत्य अंगीकार करलिया; परंतु रणजीतमल्लने हठ नही छोडा, और कहने लगा कि, मेरे साथ तो ऐसा हुआ, "लेनेगई पुत, खो आई खसम" "मैं तो श्रीआत्मारामजीको समझानेके वास्ते, श्रीचंदनलाल-

---

प्रसिद्ध हुये. जिनमें भी श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) अधिकतर प्रसिद्ध हुए हैं. तिन पांच शिष्योंके नाम—(१) श्रीमुक्तिविजयजी गणि (मूलचंदजी) (२) श्रीवृद्धिविजयजी (वृद्धिचंदजी) (३) श्री नीतिविजयजी (४) श्रीखातिविजयजी (५) श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) जिनमेंसें श्रीमुक्तिविजयजीकी छवी मिली नहीं, दूसरे महात्माओंकी छवी आगे देखलेवें.

* इस समयमें भी ऐसेही होरहाहै. संवेगी साधुके पास कोई जाना न पावे, इसवास्ते ढुंढक साधु हरएक अपने श्रावक जो कि कोरे रहगये हैं, तिनको प्रतिज्ञा प्रायः कराते हैं कि संवेगी साधुके पास जाना नही, तिनका उपदेश सुनना नही, तिनको वंदना करनी नही, अहार पानी देना नही; जैसे कि पिछले दिनोंमें श्रीआत्मारामजी पशरुरमें गयेथे, जहां पानीके न मिलनेसें उसही दिन पीछली पहरको विहार करना पडा; होय, ! अफसोस ! कैसी समझ!! ढुंढकश्रावकोंमे भी कितनेक हठग्राही अनजानोंने ऐसा बंदोबस्त प्रायः कियाहै कि "संवेगी साधु आवे, उसके पास जावे, पचास दंड पावे, नही तो जात बहार थावे." ऐसा सुननेमें आता है.

जीको लेआया था; परंतु यहां तो, उलटे श्रीचंदनलालजी भी, फस गये ! ” श्रीआत्मारामजीने भी अयोग्य समझके उपेक्षा करली. श्रीचंदनलालजीने जाकर अपने गुरु “रुडमल्ल” जीको श्रीआत्मारामजीका कहना सुनाया. तब रुडमल्लजीने कहा, “श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य है, हम भी ऐसेही मानेंगे, प्रथम भी हमारे मनमें कितनेही संदेह थे, सो अब निकल गये. ” ऐसे श्रीरुडमल्लजीने भी शुद्ध श्रद्धान अंगीकार करलिया. बाद शेषकाल और और ठिकाने विचरके संवत् १९२५ का चौमासा श्रीआत्मारामजीने “ बडौत ” गाममें किया; जहां “ नवतत्त्व ” ग्रंथ समाप्त किया. जिस ग्रंथको देखनेसेंही, ग्रंथकर्त्ताका बुद्धिवैभव मालुम होताहै.

इधर पंजाब देशमें, “श्रीआत्मारामजी” की श्रद्धावालोंकी कुच्छ वृद्धि होती देखके, ढुंढकोंके पूज्य अमरसिंघजीने, एक लेख (मेजरनामा) तैयार कराया; जिसमें लिखवाया कि, “ जो कोई जिन प्रतिमाके माननेका, वा पूजनेका उपदेश करे, डोरेके साथ मुखपर बंधीहुई मुहपत्तीको निंदे, (अर्थात् न माने,) और बावीस अभक्ष्य (नहीं खाने योग्य वस्तुओं) का नियम करावे, उसको, अपने समुदायसें बाहर निकाल देना. ” ऐसा लेख लिखवाके, सब साधुओंके प्रायः हस्ताक्षर करालिये, जिसमें श्रीआत्मारामजीके गुरु, “ जीवणमल्लजी ” के भी छल करके दसखत करालिये. और “ जीवणमल्ल, ” “ पन्नालाल ” वगैरह चार साधुओंका लेख देकर “ श्रीआत्मारामजी”के पास, दसखत करानेके वास्ते भेजे, और दिल्लीके तरफ ऐसे पत्र लिखवा भेजे कि, “आत्माराम”की श्रद्धा जिन प्रतिमा पूजनेसें मुक्ति माननेकी,बावीस अभक्ष्य वस्तु नही खानेकी और मुखोपरि डोरेसें मुहपत्ती नहीं बांधनेकी होगई है. इसवास्ते हमने उसको इस देशसें निकाल दिया है, तुम भी अपने देशमें आत्मारामको रहने मत दो तथा आत्मारामकी संगत मत करो. पंजाब देशमें भी गामोगाम और शहर शहर, पत्र भेजवाये कि, “ आत्मारामकी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है, इसवास्ते तुम आत्मारामकी संगत मत करो. ” परंतु जो लोग जानते थे कि, श्रीआत्मारामजी जैनमतके शास्त्रानुसारही, कथन करते हैं, और ढुंढक लोग अपनी मनःकल्पित बाते बतातें हैं वे लोग तो, पत्र को देखके पत्र भेजने भेजवानेवालोंकी हांसी करने लगे, और कहने लगे कि, “ ढुंढक लोक फक्त दूर दूरसेंही तडाके मारते हैं. परंतु श्रीआत्मारामजीके सामने, कोई भी नही हो सकता है, जिसका मूलकारण यह है कि, ढुंढकलोक “ व्याकरण ” को “ व्याधिकरण ” मानके तिसका अभ्यास नहीं करते हैं. और श्रीआत्मारामजीके परिवारमें तो, प्रायः व्याकरणका प्रचार मुख्य है. यह तो प्रगटही है कि, “ विद्वानके साथ मूर्खकी बात होही नहीं सकती है. ”

जीवणमल्ल, पन्नालाल वगैरह साधु, अमरसिंघजीका दिया हुवा लेख लेकर, विहार करके “कांधला” गाममें आये कि जहां “श्रीआत्मारामजी” बडौतसें विहार करके आये हुए थे और “श्रीआत्मारामजी” सें मिले तब जीवणमल्लजी तो चूपही रहे, और पन्नालालने “श्रीआत्मारामजी”सें कहा कि, “तुम भी, इस लेखपर अपने दसखत कर दो; अन्यथा समुदायसें बहार होना पडेगा.” तब श्री आत्मारामजीने कहा कि, “मेरे गुरुजी तो कुच्छ भी नही कहते हैं,तो तू दसखत करानेवाला कौन है” ? सुनकर पन्नालाल तो, कांपने लग गया. और जीवणमल्लजीने कहा कि, “में क्या करूं ? मेरेपास, जोरावरी दसखत छल करके करा लिये हैं.” तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, “ महाराजजी! आप कुच्छ चिंता न करें; मैं आपही संभाल लेऊंगा. ”

ऐसा कहकर अपने गुरुको धीरज देके गुरुके साथही विहार करके "श्रीआत्मारामजी" शहर दिल्लीमें गये. दिल्लीके ढुंढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्र पहुंचनेसें इरादा किया कि, "आत्मारामजी"को चरचामें निरुत्तर करके निकाल देवें. परंतु वहांपर "श्रीआत्मारामजी"ने श्री "उत्तराध्ययन" सूत्र सटीक अध्ययन २८ मा व्याख्यानमें वांचना शुरु किया. जिसके सुननेसें दिल्लीके श्रावक बहुत खुश हुए कि, "हमने आजतक किसी भी ढुंढिये साधुका इसतरहका व्याख्यान नही सुना." व्याख्यानके सुननेसेंही लोगोंको निश्चय होगया कि, "हम यदि इनसें चरचा करेंगे तो जरूर हम हार जावेंगे. क्योंकि, यह बडे पढे हुए हैं, हमारी शक्ति इनको जवाब देनेकी नही है. और चरचाके होनेसें, यातो समग्र, नहीं तो आधे तो, जरूरही इनके पक्षमें होजावेंगे. इस वास्ते चरचा चुरचाको छोडके, जिसतरह भाव भक्तिके साथ विहार करजावे वैसा करना चाहिये." ऐसा निश्चय करके सब चूपके होरहे. सत्य है—

तावद्गर्जति खद्योत, स्तावद्गर्जति चंद्रमाः ॥
उदिते तु सहस्रांशौ, न खद्योतो न चंद्रमाः ॥ १ ॥

भावार्थः—तबतकही खद्योत (जुगनु-खजुआ-टटाणा-आगीआ) गर्जताहै,(अर्थात् अपना चांदना दिखाताहै) और तबतकही चंद्रमा भी गर्जताहै कि, जबतक सूर्यका उदय नही होता है, जब सूर्योदय होताहै तो, फिर न तो खद्योत, और न चंद्रमा,दोनोंमेंसें कोई भी नही गर्जताहै.

दिल्लीसें विहार करके, "श्रीआत्मारामजी," "लुहारा" गाममें आये, जहां रातके समय फिर जीवणमल्लजी रोकर कहने लगे कि, "आत्मारामजी! तैंने कब भी मेरे हुकुमका अपमान नहीं किया है. मैं अच्छी तरांह जानताहूं कि, तूं बडाही विनयवान् है. परंतु मैं क्या करुं? अमरसिंघके बहकानेसें तेरे जैसे लायक शिष्यके साथ अणबनाव (नाइतफाकी) का काम, मैंने किया, जोकि, विना विचारे लेखपर मैंने अपने दसखत करादिये. अब मैं इस बातका बडा पश्चात्ताप कर रहा हूं." तब फिर भी "श्रीआत्मारामजीने" धीरज देकर कहाकि, "स्वामीजी! आप इसबातका बिलकुल फिकर न करें, अपना पुण्यतेज होवे तो, दुश्मन क्या करसकता है? यदि अमरसिंघने दसखत करालिये हैं तो, क्या हुआ? और अमरसिंघ मेरा क्या कर सकताहै?" यह सुनकर, जीवणमल्लजी चूप होगये. बाद लुहारा गामसें विहार करके "श्रीआत्मारामजी," बडौत गाममें आये, जहां श्री आत्मारामजीको मालुम हुआ कि, दिल्लीके कितनेही ढुंढक श्रावकोंने, अमरसिंघजीके पत्रकी प्रेरणासें, बहुत शहरोंमें पत्र भेजेहैं, जिनमें लिखाहै कि, "आत्मारामजीकी श्रद्धा, ढुंढकमतसें बदल गई है, और पूज्यजी साहिब अमरसिंघजीने, इनको पंजाब देशसें निकाल दिया है, इत्यादि"—इस वर्णनके सुननेसें, "श्रीआत्मारामजीने" अपने दिलमें पूर्ण धर्मश्रद्धा होजानेसें विचार किया कि, "जहां मैं जाऊंगा, वहांही इस तरहके पत्र प्रथमही पहुंच गये होंगे. इस तरह तो किसी जगा भी रहना नहीं होसकेगा, इसवास्ते पीछे पंजाबदेशमेंही जाना ठीक है. जैसा होवेगा, देखा जायगा. यद्यपि इसवखत पंजाबमें, निःशंक होके, मुजे मदद देनेवाले कोई नहीं है, तथापि सच्चे धर्मके प्रतापसें,कोई न कोई,पुण्यवान्, साहायक, होजावेगा." ऐसा निश्चय करके, "श्रीआत्मारामजी" बडौतसें विहार करके शहर अंबालामें आये; और

निडर होकर, यथार्थ सत्य सनातन जैनधर्मका उपदेश, जो कि इतने समयतक प्रच्छन्नपणे कि-सी किसीको सुनातेथे पर्षदाके विच सुनाने लगगये, जिससें " जमनादास " " सरस्वतीमल " " नानकचंद " " गोंदामल्ल, " गंगाराम, " " लालचंद, " आदि वहुत श्रावकोंने जैनमतका सच्चा श्रद्धान, अंगिकार किया, जिससें " श्रीआत्मारामजी"को भी, उत्साह अधिक हुआ. सत्यहै, ' साचको आंच कभी नही. '

अंबालासें विहार करके "पटियाला, नाभा" होकर "मालेर कोटला"में आये. और सत्यधर्म-की प्ररूपणा करी, जिसको वहुत श्रावकोंने अंगिकार की, और चौमासा करनेके लिये विनती की. चौमासेको देर होनेसें कोटलेसें विहार करके " श्रीआत्मारामजी " शहर " लुधिआना " में आ-ये, और खुव सन्मार्गका प्रकाश किया. यहां " घोलुमल्ल, सेढमल्ल, वधावामल्ल, निहालचंद, प्रभ-दयाल नाजर " वगैरह श्रावकोंके दिलसें ढुंढक तिमिरका नाश किया, और एक महिने वाद विहार करके, संवत् १९२६ का चौमासा, " मालेरकोटला" में जा किया, और भव्य जी-वोंको प्रतिवोध दिया. चौमासे वाद कोटलासें विहार करके एक शिष्यकी लालचसें, " श्री आ-त्मारामजी" विनौलीके तरफ गये. और संवत् १९२७ का चौमासा, विनौलीमें किया. और अध्यात्ममय " आत्म वावनी " नाम छोटासा ग्रंथ तैयार किया. इधर पंजाव देशमें " श्री-विश्नचंदजी, हुकमचंदजी " वगैरह, वडे वडे शहेरोंमें फिरकर प्रच्छन्नपणे श्रावकोंको प्रतिवोध करने लगे, जिससें " श्रीआत्मारामजी " के श्रावकोंकी वृद्धि होती रही.

चौमासे वाद विनौलीसें विहार करके " श्रीआत्मारामजी", अंवाला पटियाला, नाभा, कोटला, रायदाकोट होते हुए " जगरांवा " गाममें आये; और जगरांवासें विहार, " जि-रा"को किया. रस्तेमें "किशनपुरा" गामके पास, दैवयोगसें अनायासही, कितनेही चेलोंके साथ " पूज्य अमरासिंघजी" जोकि जिरेसें विहार करके जगरांवाको आतेथे, " श्रीआत्मारामजी"-को मिले. "श्रीआत्मारामजी" को देखके, लाल आंखे करके, रस्ता छोडके, किनारे होके, जाने लगे. तव श्रीआत्मारामजीने, जोरावरी हाथ पकडके, अमरासिंघजीको वेठा लिया. वंदना कर-के, सुखसाता पूछके, हाथ जोडके, नम्रता करके, पूछाकि, " पूज्यजी महाराज. मैंने आपका क्या गुनाह किया है? आपने मेरे ऊपर इतना गुस्सा क्या किया? " तव पूज्य अमरसिंघने लाल आंखे करके कांपते कांपते कहा कि, " तू लोंगोंके आगे कहता फिरता है कि, अमर-सिंघ मेरी रोटी, वंदना वगैरह वंध कराता है. सो तूं इस वातको सत्य करदे, नही तो अठाइ (आठ व्रत) का दंड ले. " तव " श्रीआत्मारामजी" ने कहाकि " महाराजजी! " " मो-हनलाल, " और " छज्जुमल्ल " तुमारे श्रावकोंने, यह समाचार कहाहै. यदि यह वात सत्य है तो, इसका दंड आपको लेना चाहिये. और यदि जूठ है तो, " मोहनलाल, छज्जुमल" तुमारे श्रावकोंको यह दंड लेना चाहिये. परतुं मुजे किसीतरह भी, दंड नही चाहिये. यह सुनकर, अ-मरासिंघजी निरुत्तर होगये, और क्रोध करके पराङ्मुख होकर, अपने रस्ते चलते होगये. स-त्य है " जूठेको क्रोधकाही शरण है. " श्रीआत्मारामजी वहांसें चलकर, जिरामें गये. यहांके ओसवालोंको अमरासिंघजी धीरज देकर, वडे पक्के करके कहगयेथे कि, " तुम आत्मारामका क-हना, नही मानना. " परंतु जिराके लोग वडे अक्कलमंद, और इलमवाले होनेसें, " श्रीआत्मा-

रामजी " के पास आकर प्रश्नोत्तर करने लगे. प्रश्नोंका जवाब पूरा पूरा मिलनेसें कितनेही श्रावक तो, उसी वख्त शुद्ध मार्गमें आगये, और कितनेकने यह दावा किया कि, " हम ढुंढक साधुओंको पूछके, निर्णय कर लेवेंगे, पीछे जो हमको सत्य सत्य मालुम होवेगा, अंगिकार करलेवेंगे." ऐसें कहकर, पंजुराम वगैरह चार पांच श्रावक, "पटियाला" शहेरमें, " रामबक्षजी " के पास गये, और कितनेही प्रश्न किये; परंतु एक बातका भी ठीक ठीक उत्तर न मिला. अंतमें रामबक्षजीने गुस्सेमें आकर कहा कि, " तुमारे अंदर अज्ञान बढगया है. यदि तुमको हमारे ऊपर निश्चय है तो, जैसें हम कहते, और करते हैं, वैसही करे जाओ, नही तो तुमारी मरजी. आवश्यक जो हमारे पास है, सोही है, तुमारे वास्ते हम कोई नया अवश्यक बनावे क्या ? " तब उन श्रावकोंने कहा कि, " महाराजजी साहिब ! आप गुस्सा न करें. क्यौंकि, " श्रीआचारांग " वगैरह सूत्र प्राकृत वाणीमें है तो आवश्यक भी, प्राकृतवाणीमेंही होना चाहिये; और आपके पास जो है, सो गुजराती वगैरह भाषाओंसें मिश्रित खीचडी हुआ हुआहै. इसको सच्चा किसतरह माना जावे ? " तब रामबक्षजीने कहा, " तुम बहोत झगडा मत करो. तुमारी श्रद्धा तुमारे पास, और हमारी श्रद्धा हमारे पास. "

यह सुनकर उनको निश्चय होगया कि, जो कुच्छ श्रीआत्मारामजी बताते हैं, सब सत्य है. और ढुंढक साधुओंका कहना, असत्य है. तब रामबक्षजीके पासही ढुंढकमतको त्यागन करके जिरे चले गये; और सब वृत्तांत, जिरेके लोगोंको कह सुनाया. सुनकर सबनेही श्रीआत्मारामजीका कहना सत्य मानकर, शुद्ध श्रद्धान अंगिकार करलिया. इसवखत जीवणमल्लजी श्रीआत्मारामजीके ढुंढक अवस्थाके गुरु भी, जिरामें आपहूंचे, उनको भी सत्य धर्मका कुच्छ असर होगयाथा. परंतु " फिरोजीपुर " जानेंसें वहांके ढुंढीयोंके बहकानेंसे बहक गये.

जिरेमें श्रीआत्मारामजीने कल्याणजी साधुको समझाया, और सन्मार्ग अंगिकार कराया. यह बात सुनकर पूज्य अमरसिंघने हुकुमचंदको, कल्याणजीके साथ पत्र भेजकर" भदौड" गाममें बुलाया. और गुस्से होकर कहा कि "तूं मेराही घर पुटने लगाहै ? तूं कल्याणजीको लेकर क्यौं जिरेको गयाथा ?" तब हुकुमचंदजीने शांति करके कहा कि, " स्वामीजी ? मैं भूलगया. मेरा गुन्हा माफ करें. आगेको ऐसा नकरूंगा." यह नम्रता करनेका सबब यह था कि हुकुमचंदजी अच्छी तरह जान गयेथे कि, ढुंढकमत मनःकल्पित है. परंतु अबतक हमको इस घरमें रहकर बहोत कुच्छ कार्य करनेके हैं, इसवास्ते धीरजसें जो बने सो अच्छा है--सत्य है--सहज पक्के सो मीठा हो. इसवखत विश्नचंदजी भी, वहां आये हुयेथे. उनोंने भी पूज्यजीको समझायके शांत करे और श्रीविश्नचंदजी वगैरह विहारकी तैयारी करने लगे. तब अमरसिंघजीने कहा, " रस्तेमें जिरेसें विहार करके जगरांवामें आकर आत्माराम बैठाहै, उसको मिलनेका नियम करो. " तब श्रीविश्नचंदजीने कहा, " हम नहीं मिलेंगे ." ऐसा कहकर विहार करके जगरांवामें आये, और श्रीआत्मारामजीको मालुम न होवे ऐसे पृथक् मकानमें जा उतरे. परंतु क्या चांद निकला छीपा रहता है ? एक ओसवालने जाके श्रीआत्मारामजीको मालुम किया.कि, " श्रीविश्नचंदजी आये हैं, और फलाने मकानमें उतरे हैं. " यह सुनतेही श्रीआत्मारामजी बडे खुश हुवे, और विश्नचंदजी जिस मकानमें उतरे थे, वहां जाकर कहने लगे कि, " मिलनेका नियम तु-

मको पूज्यजीने कराया है, परंतु मुझको तो नही कराया है? मैं तुमको मिला, तुम मुझे नही मिले, इसवास्ते तुमारा नियम भंग नही हैं." तब श्रीविश्वचंदजीने कहा कि "महाराजजी! मनसें तो हम सदाही आपके साथ मिले हुये हैं. क्यौंकि, आपने शुद्ध सनातन जैनमतका यथार्थ स्वरूप दिखलाके हमारे ऊपर जो उपकार किया है, हम इसका बदला भवभवमें भी नही दे सकते हैं. परंतु क्या करें? अपनी मतलब सिद्ध करनेके वास्ते, ऊपर ऊपरसें जुदाई रखते हैं. यदि इतनी भी जुदाई न रखे तो, पूज्यजी नाराज हो जाते हैं; और उनके नाराज होनेसें अपना कार्य, सिद्ध होना मुश्किल हैं." तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि "खबरदार? पूज्यजीसें अलग होनेका इरादा, कदापि न करना; जबतक यह विद्यमान् है, इनको दुःख न होना चाहिये, पीछे जो तुमारी मरजी होवे, तुम करना, क्योंकि तुमारे अलग होनेसें पूज्यजीको ज्यादा दुःख होवेगा. और तुम जो कार्य करना चाहते हो, वह भी पूर्ण न होवेगा." इत्यादि हित शिक्षा देकर श्रीआत्मारामजी श्रीविश्वचंदजीको हाथ पकडके अपने मकानमें जहां आप उतरेथे, लेगये, और बडे आनंदपूर्वक ज्ञानालाप किया. दूसरे दिन श्रीविश्वचंदजी जगरांवासें विहार करके "लुधीआना" तरफ गये, और श्रीआत्मारामजीने भी लुधीआने जानेकेवास्ते श्रीविश्वचंदजीसें एक दिन पीछे विहार जगरांवासें किया. परंतु रस्तेमें वर्षाके सबबसें दैवयोगसें अनायासही सात कोशपर "बोपारामा" गाममें, दोनोंका मिलाप होगया. वहां कोई भी ओसवाल ढुंढकका उपद्रव न होनेसें, दोनोंही अपने साथके साधुओं सहित एकही मकानमें उतरे, और खूब आनंदसें ज्ञानगोष्टी करते रहें. सध्यांका प्रतिक्रमण भी, एकत्रही किया. तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "तो आज मैं तुमको श्रीमहावीर स्वामीके शासनका प्रतिक्रमण विधि सहित कराउं." प्रतिक्रमणका विधि देखके, सब साधु चकित हो गये, और कहने लगे कि, "महाराज हमारे नसीबमें भी कभी ऐसी विधि कहनेका दिन आवेगा और यह जैनाभास ढुंढक मनःकल्पित फासी हमारे गलेसें फाटी जायगी?" तब श्रीआत्मारामजीने कहा, "धैर्य रखो, हिम्मत मत हारो, सब अच्छा होजायगा." दूसरे दिन विश्वचंदजी वगैरह, पमाल होकर लुधीआने पहुंचगये. और श्रीआत्मारामजी, एक दिन पीछे लुधीआना शहेरमें पहुंचे. यहां भी जूदे जूदे मकानमें उतरे. परंतु श्रीआत्मारामजीका व्याख्यान सुननेको, निरंतर श्रीविश्वचंदजी वगैरह आतेथे. जिनमेंसें एक साधु "धनैयालाल" नामा जिसको ऐसी उंधी पाटी पढा रखीथी कि, आत्माराम जहेरके बूटे लगाता है. साधुओंके बहुत कहनेसें एक दिन कथा सुनने गये. सुनकर कहने लगे कि," यह तो सत्य सत्य कथन करते हैं. इनको क्यौं असत्प्रलापी कहते हैं? ऐसा अपने मनसें विचारके "गणेशजी" नामा अपने गुरु भाईसें पूछा कि, "तुम जो मेरे दूसरे साधुओंके पास अनिष्ठाचरण कराते हो और तुम खुद भी करते हो, सो ऐसा काम करना, किस जैनमतके शास्त्रमें लिखाहै? वो पाठ मुझे दिखलादो, अन्यथा आज पीछे ऐसा काम मैं कभी भी न करुंगा." तब गणेशजी साधुने कहा कि, "भाई! साधुओका काम ऐसेही चलता है." तब धनैयालालने कहा कि "पहेले चलगया सो चलगया अब आगे तो जबतक शास्त्रका पाठ नही दिखावोगे तबतक नही चलेगा." ऐसा कहकर धनैयालालने भी श्रीआत्मारामजीका कथन सत्य सत्य अंगिकार कर लिया. यह बात अमर-

सिंहजीको पत्रद्वारा भदौंडमें मालुम हुई. तब चिंताके सबबसें अमरसिंहजीको ताप चढने लगा, और तापके बिच बकवाद करने लगे, और "तुलशीराम" नामक अपने चेलेसें कहने लगा कि, "उठ! लुधीआने चलके आत्मारामको सरकारमें कैद करादेवें! क्योंकि, इसने मेरे सब चेले वहका दिये हैं." तब तुलशीरामने बहुत धीरज देके शांत किया. क्योंकि, तुलशीरामकी भी श्री आत्मारामजीकीही श्रद्धा थी, इसवास्ते जानतेथे कि, यह जूठे ढोंग करते हैं.

कितनेक दिनों पीछे अमरसिंहजीकी तरफसें पत्र ऊपर पत्र आनेसें, लाचार होकर श्री विश्वचंदजी लुधीआनेसें विहार करके, अंबाला शहेरमें जा चौमासा रहे; और श्री आत्मारामजीने संवत् १९२८ का चौमासा, "लुधीआने" मेंही किया.

चौमासे बाद श्रीआत्मारामजी, लुधीआनासे विहार करके "हुशीआरपुर" में आये. वहां श्री विश्वचंदजी वगैरह बारा (१२) साधुओंने अमरसिंहके कितनेक साधुओंका भ्रष्टाचार मालुम होनेसें असरसिंहजीको कहा कि, "इन चौथे व्रतके भ्रष्टाचारीयोंको रखना आपको योग्य नहीं" तब अमरसिंहने, उनका कहा नही माना; और कहा कि, "तुमारी श्रद्धा भ्रष्ट होगई है; तुमारा हमारा रस्ता पृथक् पृथक् है." तब श्रीविश्वचंदजीने बहुत नम्रतासें कहा कि, "पूज्यजी साहिब! आप विचार करें! अन्यथा पीछे आपको बडा पश्चात्ताप करना पडेगा."परंतु अमरसिंहजीने बिलकुल शोचा नहीं. तब श्रीविश्वचंदजी वगैरह अमरसिंहजीसें अलग होकर श्री-आत्मारामजीको आन मिले, जब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "तुमने अच्छा काम नहीं किया. विना अवसर अलग होगये! अभी अलग होनेका समय नहीं था." तब श्री-विश्वचंदजी वगैरहने कहा कि, "हम क्या करें? हमतो बहोतही समझाते रहें, परंतु पूज्यजी साहिब बिलकुल नहीं समझे. क्या हम भी उन भ्रष्टाचारीयोंके साथ मिलकर, अपना जन्म निष्फल करें?" तब श्रीआत्मारामजीने कहा कि, "अच्छा जो होवे सो हो. परंतु यदि तुमको इस देशमें विचरना होवे तो, जोर लगाकर शहेरोंशहेर, और गामोंगाममें फिरके शुद्ध श्रद्धानका उपदेश करके श्रावकसमुदाय बनाओ. क्योंकि, विना श्रावकसमुदायके इस पंचम कालमें, संजमका पालना कठिनहै. और यदि इस देशमें विचरना न होवे तो, चलो गुजरात देशमें चलके शुद्ध सनातन जैनधर्मके अव्यवच्छिन्न परंपरायके गुरु धारण करें; और उसी देशमें फिरें." तब कितनेक साधुओंने कहा कि, "महाराजजी साहिब! यह काम हमसें नही बनेगा. इस देशको तो हम कदापि न छोडेंगे. इसवास्ते आपकी आज्ञानुसार हम, दो दो तीन तीन साधु, अलग अलग विचरके क्षेत्रोंमें श्रावक समुदाय बनावेंगे. यह कोई बडी बात नही है. क्योंकि, प्रायः सबही क्षेत्रोंमें पैर रखने जितना ठिकाना तो, आपने, और आपकी मददसें हमने भी कर रखा है."ऐसा कहकर श्रीविश्वचंदजी वगैरह बारासाधु अमरसिंहजीको छोडके आये थे वे, और आठ साधु जोगराजके, श्रीआत्मारामजी वगैरह, कुल वीस साधु; चारों तरफ जूदे जूदे शहरोंमें अपने पक्षके श्रावक समुदाय बनानेके वास्ते, विचरने लगे. वे सर्वक्षेत्रोंमें प्रायः सत्योपदेशद्वारा अपना विछौना विछाते चले, और ढुंढकोंका विछौना उठाते चले. ऐसे करते करते श्रीआत्मारामजी, तथा श्रीविश्वचंदजी वगैरह साधुओंने "हुशीआरपुर," "जालंधर, "नीकोदर," "झंडी-आला," "अमृतसर," "पट्टी," "वेरोवाल," "कसूर, "नारोवाल," "सनखतरा," "जीरा," "कोटला," "अंवाला," "लुधीआना," "लाहोर," "रोपड," "जेजो,"

"सरहिंद," "कुजरांवाला," (गुजरांवाला) "रामनगर," "पसररु," "जंवु," वगैरह बहुत स्थानोंमें अपने पक्षके श्रावक बनाये. इधर यह कारवाई देखकर, पूज्य अमरसिंहजीको घभराट होगया; और रुदन करके अपने श्रावकोंको कहने लगे कि, "मेरे अच्छे अच्छे पढेहुये बारा चेले आत्मारामके पास चलेगये, और आत्मारामके साथ मिलकर पंजाबके सब शहरोंको विगाड रहे हैं. इससें मेरे बाकी शेष रहेहुये चेलोंके वास्ते बडी मुश्किल होगी, और आहार पानी भी मिलना मुश्किल हो जावेगा. इसवास्ते इस बातका बंदोवस्त करना चाहिये. यदि तुम इस बातका बंदोबस्त न करेंगे तो, मैं इस पंजाब देशको छोडके मारवाड वगैरह देशमें जाकर, अपनी जींदगी गुजारुंगा!!"

तब "पटियाला" वगैरह दो तीन शहरोंके ढुंढक श्रावकोंने, पूज्य अमरसिंहजीके लिखाये मुजब, पत्र लिखकर ब्राह्मणको देकर प्रायः पंजाबके सब शहरमें भेजे, जिसमें लिखाथा कि, आत्मारामजी वगैरह जितने साधु,ढुंढकमतसें उलटी श्रद्धावाले होवे, उनको किसी भी श्रावक वंदना नहीं करे; उतरनेको जगा नहीं दे; वस्त्रपात्र नहीं दे; आहार पानी भी नहीं देना; इनका उपदेश भी नहीं सुनना; इनकेपास जाना भी नहीं; सामायिक भी नहीं करना,वगैरह यह खबर हुशीआरपुरके श्रावकोंने भी सुनी, तब "नथ्थुमल्ल" भक्त, लाला "प्रभुदयालमल्ल" आदि बहुत श्रावक कहने लगे कि, "जिसने यह पत्र भेजवायें है, इनकेवास्तेही यह वंदोवस्त है." और शहरोंवालोंनेभी यही जवाब दिया. संवत् १९२९ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने जिरामें किया. और श्रीविश्वचंदजी वगैरह साधुओंने भी, जूदे जूदे क्षेत्रोंमें चौमासा किया. चौमासे बाद सर्व साधु पूर्वोक्त रीतिसें फिरते रहें. और लाकोंको सत्योपदेश सुनाते रहे. जिससें अनुमान सात हजार (७०००) श्रावकोंने ढुंढकमत छोडके, शुद्ध सनातन जैनधर्म, अंगिकार किया. संवत् १९३० का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने अंबाला शहरमें किया, वहां श्रीहुकमचंदजीकी प्रार्थनासें चौवीस भगवान्के चोवीस स्तवन, बडे गंभीर अर्थ, और वैराग्य रससें भरे हुए बनाये. संवत् १९३१ का चौमासा, श्रीआत्मारामजीने शहर हुशीआरपुरमें किया. इस चौमासेके बाद सब साधु, लुधीआना शहरमें एकत्र हुये. तब श्रीविश्वचंदजी वगैरह साधुओंने श्रीआत्मारामजीको कहा कि, "कृपानाथ! जैन शास्त्रसें विरुद्ध इस ढुंढकमतके वेषमें हमको कहांतक फिरावोगे? अब तो जैन शास्त्रके मुजब जो गुरु होवे उनके पास फिरसें दिक्षा लेके, शास्त्रोक्त वेष धारण करके, "यथार्थ गुरु," धारण करना चाहिये. तथा "श्रीशत्रुंजय, उज्जयंत" (गिरनार)वगैरह जैन तीर्थोंकी यात्रा करायके,हमारा जन्म सफल कराना चाहिये." यह बात श्रीआत्मारामजीको भी पसंद आनेसें सब साधु शहर लुधीआनासें विहार करके, "कोटला," "सुनाम," "हांसी," "भियाणी," वगैरह शहरोंमें होकर शहर पालीमें (देश मारवाड) गये. वहां "नवलखा" "पार्श्वनाथ" की यात्रा करके, "वरकाणा" गाममें श्री "वरकाणापार्श्वनाथ," "नाडौलमें" "पद्मप्रभु,""नारलाईमें" "श्री ऋषभदेव" वगैरह(११)जिनालय, "घाणेराव" में "श्रीमहावीर स्वामी," "सादडी" में तथा "राणकपुर" में "श्री ऋषभ-

१ कुजरांवाला, रामनगरमें श्री "बूटेरायजीके उपदेशसें संवेगमत प्रचलित हुआथा. परंतु पूर्वोक्त साधुओंके विचरनेसें, वे श्रावक परिपक्व होगये.

२ पसरुर और जंवुके ओसवाल प्रायः सब श्रीविश्वचंदजीके उपदेशसें श्रीआत्मारामजीकी श्रद्धावाले होगये थे. परंतु पछिसें अशुभ कर्मके उदयसें फिर गये.

देवजी," "सीरोहीमें" (१४) जिनालय जो एकही नींव (थडा–चौतरा–पाया) ऊपर है, वगैरहही यात्रा करते करते, श्री " आबुराज " पधारे, जिनकी यात्रा करके दिलसें खुश खुश हो गये. श्रीआबुजीकी श्लाघा करनेको, जुबानमें ताकत नहीं है. जो आंखोंसे देखता है, चकित हो जाता है. जिसके देखनेके वास्ते कई अंग्रेज विलायतसें आते हैं, और लिखते हैं कि आबुजीके मंदिर सरिखी इमारत दुनीयाभरमें भी होनीं मुश्किल है. कई युरोपियन इसका फोटो (आकस) भी उतार कर लेगये हैं, जिसकी नक़ल चिकागो धर्मसमाजके तरफसें छपे हुए पुस्तक वगैरह वहोत जगे पाई जाती है. " टॉडके राजस्थान " ग्रंथमें इनका बहुत वर्णन है आबुजी देलवाडेके मंदिरोंकी यात्रा करके, श्रीआत्मारामजी, विश्नचंदजी वगैरह(१६) साधु[†] श्री "अचलगढ" की यात्रा करनेको गये. जहां वडे भारी मंदिरमें चौदांसौ चंवालीस(१४४४) मण सोनेकी चौदां (१४) मूर्तियोंके दर्शन करके आबुजीके पहाडसें उतरके श्रीआत्मारामजी "पालनपुर" पधारे. कितनेक दिन वहां ठहरके विचरते विचरते "भोयणी" गाममें श्री "मल्लीनाथस्वामी " की यात्रा करके, ग्रामो ग्राम जिन मंदिरके दर्शन करते हुए, और श्रावकोंको दर्शन देते हुए, शहर " अहमदावादमें " पधारे, श्रीआत्मारामजीका आगमन सुनकर नगरशेठ " प्रेमाभाई हिमाभाई " तथा शेठ "दलपतभाई भगुभाई " वगैरह अनुमान तीन हजार (३०००) श्रावक श्राविका तीन कोसपर सामने लेनेको गये. क्या आश्चर्य है? जहां अनुमान सात हजार घर श्रावकोंके, औ पांचसें जिन मंदिरहै, तहां तीन हजारका सामने जाना कुछ बडीबात नहीं है. सबने श्रीआत्मारामजीको देखतेहीं सार विधिपूर्वक वंदना करके वडी धामधूमसें नगरमें ले जाकर, शेठ दलपत भाईके वंगलेमें उतारे. जहां आदमीयोंके एकत्र होनेमें कुछ कसर न रही.

व्याख्यान सुनकर श्रावकवर्ग लोट पोट होतेथे, केइ सखसोंके हृदयको कुलगुरुओंके उत्सूत्र वचनांधकारने वासा करके स्याम कर दियाथा, तिनको इन महात्माके वचन भास्करने दूर करके उज्ज्वल कर दिये. उत्सूत्र प्ररूपक शिरोमणि शांतिसागर जिसने शहर अहमदावादमें जैनमतसें विरुद्ध वर्णन करके एक उपद्रव खडा कर रखाथा, वह श्रीआत्मारामजीके साथ चरचा करने को तैयार होगया. श्रीआत्मारामजीने भी, शास्त्रानुसार जवाव देकर उसको निरुत्तर कर दिया. तिस दिनसें शांति सागरका जोर नरम होगया. तव शहर अहमदावादके जैनसमुदायने श्रीआत्मारामजीका अपूर्व ज्ञान, और बुद्धिवैभव देखके बहुत प्रशंसा करी, और कहा कि महाराजजी साहिव! आपका इस वखत इस शहरमें आना ऐसा हुआहै कि, जैसें दावानलके लगे वर्षाका आगमन होवे!" अहमदाबाद थोडेही दिन रह कर श्रीआत्मारामजी वगैरह साधुओंने श्रीशत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेके वास्ते " पालीताणा " शहर तरफ विहार किया, और क्रम करके शहर पालीताणामें पधारे. और दूसरे दिन सूर्योदयके लगभग " श्रीशत्रुंजय " पर्वत पर चढे. एक तरफ तो सूर्य उदय होकर चढता जाता था, और दूसरी तरफ श्रीमहाराजजी सूर्य समान दिदार लोकोंको देते हुये क्रम उठाते चढते जाते थे; इस तीर्थका वर्णन करनेको इंद्र भी समर्थ नहीं है तो, औरोंका तो क्याही कहना है? इस तीर्थ ऊपर नव वसी(टूंक)याने हिस्से हैं; जिनमें अनुमान (२७००) जिन मंदिर हैं. प्रायः संपूर्ण दिन ऐसे दर्शनामृतसें तृप्त हुये कि, न तृषा लगी, न

[†] चंदनलालजीके गुरु रुडमलजी, वृद्ध होनेसें दोनों (शिष्य–गुरू) उस वखत गुजरात देशमें नहीं गयेथे. तथा एक दो जने, साधुपणेको छोड गये थे, इसवास्ते कल सोला साधु लिखे हैं।

भूख. ऊपरसें नीचे आनेको दिल बिलकुल कबूल नहीं करता था, परन्तु कोई भी यात्री प्रायः ऊपर न रहनेका रिवाज होनेसें, लाचार होकर "श्रीऋषभदेवजीकी" यात्रा करके नीचे उतर आये. सायंकालका प्रतिक्रमण करके, तीर्थराजके गुण गाते हुये फिर दर्शन करनेको सूर्योदयकी आकांक्षा करते हुये सोगये. प्रातःकाल होतेही प्रतिक्रमण, प्रतिलेषणादि साधुकी क्रिया करके फिर ऊपर चढे. इसी तरांह निरंतर करते रहे. तीर्थयात्रा करके पालीताणासें विहार करके, "गोघा बंदर," "भावनगर," "वला" "पछी," "लाखेणी," " लाठीधर, "बोटाद," "राणपुर," "चुडा," "लींबडी," वगैरह गामोंमें विचरते हुये, सैंकडोंही जिन मंदिरोंकी यात्रा करते हुये, हजारोंही श्रावकांको दर्शन व उपदेश देते हुये, फिर शहेर अहमदाबादमें आये. जहां "गणि श्री मणिविजयजी" महाराजजीके शिष्य "गणि श्री बुद्धिविजयजी" (बूटेरायजी) महाराजजीके पास, श्री "तपगच्छ" का वासक्षेप लिया. और इनही महात्माको श्रीआत्मारामजीने, गुरु धारण किये. और शेष साधुओंने श्रीआत्मारामजीको अपने सद्गुरु धारण किये. इसवखत श्रीबुद्धिविजयजी महाराजजीने सब साधुओंके पिछले नाम, बदल दिये. जैसेंकी।

(१)	श्री आत्मारामजी—	श्री आनंदविजयजी.
(२)	श्री विश्नचंदजी—	श्री लक्ष्मीविजयजी. +
(३)	श्री चंपालालजी—	श्री कुमुदविजयजी.
(४)	श्री हुकमचंदजी—	श्री रंगविजयजी.
(५)	श्री सलामत रायजी—	श्री चारित्रविजयजी.
(६)	श्री हाकम रायजी—	श्री रत्नविजयजी.
(७)	श्री खूबचंदजी—	श्री संतोषविजयजी.
(८)	श्री घनैयालालजी—	श्री कुशलविजयजी.
(९)	श्री तुलशीरामजी—	श्री प्रमोदविजयजी.
(१०)	श्री कल्याणचंदजी—	श्री कल्याणविजयजी.
(११)	श्री नीहालचंदजी—	श्री हर्षविजयजी.
(१२)	श्री निधानमल्लजी—	श्री हीरविजयजी.
(१३)	श्री रामलालजी—	श्री कमलविजयजी.
(१४)	श्री धर्मचंदजी—	श्री अमृतविजयजी.
(१५)	श्री प्रभुदयालजी—	श्री चंद्रविजयजी.
(१६)	श्री रामजीलाल—	श्री रामविजयजी.

संवत् १९३२ का चौमासा, श्री "आनंदविजयजी" (आत्मारामजी) वगैरह साधुओंने शहेर अहमदावादमें ही किया. चौमासे बाद शत्रुंजय गिरनार वगैरह तीर्थोंकी यात्रा करके श्री आनंदविजयजीने संवत् १९३३ का चौमासा, शहर भावनगरमें किया; चौमासे बाद "वहोरा अमरचंद, जसराज, झवेरचंद" के संघके साथ, "शत्रुंजय, तलाजा, डाठा, महुवा, दीव, प्रभासपाटण, वेरावल, मांगरोल," होकर तीर्थयात्रा करते हुए शहर जुनागढ तीर्थ "गिरनार" की यात्रा करके शहर जामनगरमें पधारे. यहांसे संघने फिर भावनगर चलनेके

+ तसवीर देखो.





श्रीमन्
मुक्तिविजयजी गणि
(मूलचंदजी.)
आदिके सद्गुरु.



मुनिराज श्री वृद्धिचंदजी.
मूल नाम–कृपाराम. ज्ञाति–ओसवाल.
जन्म,–सं० १८९०
दीक्षा, सं० १९०८
बालब्रह्मचारी
श्रीमन् बूंटेरायजीके शिष्य.
स्वर्गवास. सं० १९४९.

मुनिराज श्री नीतिविजयजी.
मूल सूरतके
नाम–नगीनदास.
दीक्षा, सं० १९१३.
बहुधा खंभातमें रहे.
श्रीमन् बूंटेरायजीके शिष्य.
स्वर्गवास, सं० १९४७



मुनिराज श्री खांतिविजयजी.
(तपस्वीजी)
मूल नाम–खरायतिमल्ल.
ढुंढक दीक्षा, सं० १९११.
संवेगी दीक्षा, सं० १९३०.
श्रीमन् बूंटेरायजीके शिष्य,
काठिआवाडमें विचरे हैं.
स्वर्गवास, सं० १९५९.
(जन्म चरित्र–पृष्ठ ४०.)

मुनि श्रीमन्महोपाध्याय
श्री लक्ष्मीविजयजी
(विश्नचंदजी)
मूल–पुष्करणा ब्राह्मण.
ढुंढक दीक्षा, सं० १९१४
श्री आत्मारामजी के ये
बडे और विद्वान शिष्य थे.
स्वर्गवास, सं० १९४०.
(ज. च. पृष्ठ ४४, ६०.)



मुनि महाराज
श्री १००८
श्री वृद्धिविजयजी
(बूंटेरायजी).
जन्म–सं० १८६३.
ढूंढक दीक्षा,
सं० १८८८.
स्वयंमेव संवेगी दीक्षा,
सं० १९०३.
बाल ब्रह्मचारी.
तपगच्छ दीक्षा,
सं० १९११.
स्वर्गवास सं० १९३८



वास्ते बहुत प्रार्थना करी. परंतु देश पंजाबमें, जो सत्यधर्मका बीज लगायाथा, तिनको प्रफुल्लित करनेका इरादा करके, संघसें जूदे होकर, " मोरबी, ध्रांगध्रा, झींझुवाडा, " होकर "शंखेश्वर" गाममें, श्री " शंखेश्वर पार्श्वनाथ " की मूर्ति, जो शंखपति, " कृष्णवासुदेव " को " धरणेंद्र " की आराधनासें मिलीथी, और जिसके स्नात्रजलके छिटकनेसें, " जरासिंध " नामा प्रतिवासुदेवकी जरा विद्या, कृष्ण वासुदेवके लश्करसें दूर हुई थी. ऐसें प्रभाववाली श्री पार्श्वनाथकी मूर्तिके दर्शन करनेसें सब साधु, बहोतही आनंदित हुए. यहांसें विहार करके श्री " आनंदविजय जी, " " पाटण " शहरमें पधारे. तहां प्राचीन जैन पुस्तकोंके भंडार देखे, तिनमेसें कितनेक ग्रंथोंकी नकलें भी करवाई. पाटणसें विहार करके "तारंगाजी " तीर्थपर, " राजाकुमारपाल" के उद्धार किये बडे भारी मंदिरमें बिराजमान, श्री " अजितनाथ स्वामी " की यात्रा करी और विहार करके " पालणपुर, आबु, शिरोही, पंचतीर्थी, " वगैरहकी यात्रा करते हुए शहर " पाली " में आये. तहां शहर " जोधपुर " के श्रावकोंका पत्र, श्रीआत्मारामजीको मिला. जिसमें लिखाथा कि, " यहां (जोधपुरमें) इसवखत (३५) ढुंढक साधु, आपके साथ चरचा करनेके वास्ते एकत्र हुए हैं. जिसमें दिवान् " विजयसिंह " मेहता, पंडित मंडल सहित, मध्यस्थ नियमित किये गये हैं. इसवास्ते आप कृपा करके जलदी शहर जोधपुरमें पधारके, हम सेवकोंकी अभिलाषा पूर्ण करें" इसवास्ते श्री आनंदविजयजीने, थोडेही दिन पालीमें रहकर, शहर जोधपुरके तरफ विहार किया; और क्रम करके शहर जोधपुरमें पहुंचे. इनके वहां पहुंचनेसेंही अगले रोज (३४) ढुंढक साधु तो, सभा होनेके एकदिन पहिलेंही, विना चरचा किये, चूपचाप इस तरांह चले गये, जैसें सूर्योदयसें अंधेरा दूर होजाता है. परंतु " हर्षचंद " नामा एक ढुंढक साधु, रहगयाथा. सो श्रीआनंदविजयजीसें बातचित करके, शुद्ध श्रद्धानमें आगया. श्रीविश्रचंदजी गुरु नाम धराया, और " हर्षविजयजी " निज नाम पाया. इस वखत ढुंढकोंके अनिष्टाचरणसें राज्यके भयसें कितनेही औसवाल, जैनमतको छोडके वैष्णवादि मतका आश्रय लेने लग गयेथे. इसवास्ते इन लोकोंपर कृपादृष्टि करके, श्री आनंदविजयजी महाराजने संवत् १९३४ का चौमासा, शहर जोधपुरमेंही किया. जिससें प्रथम पचास घर अनुमान ठीक ठीक श्रद्धानवाले रहेथे, सो वधके अनुमान पांचसौ होगये. क्यौं न होवे? सूर्यके उदय होनेसें अंधकार दूर होताही है. यदि ऐसे महात्माके आनेसें भी हृदयगत अज्ञानांधकार दूर न होता तो, कब होता? चौमासे बाद जोधपुरसें विहार करके, दुकालके सबवसें रस्तेमें भूख प्यासको सहन करते हुए, श्रीआनंदविजयजी, " जयपूर, दिल्ली " होकर देश पंजाबमें शहर अंबालामें आये. इसवखत सूर्योदयसें घूक जानवरको जैसें चिंता होती है, तैसें पंजाबी ढुंढकोको हुई. परंतु सूर्यविकाशी कमलकी तरांह अन्य श्रावकोंके मुखारविंद खिड गये.

अंबालासें विहार करके शहर लुधीआनामें आये; वहां " श्री उत्तमऋषि " लौंकामतके यति, (पूज) अंबालावालेने सब डेरा छोडके, श्रीआनंदविजयजीके पास पांच महाव्रत अंगीकार किये, और गुरुजीका दिया, श्री " उद्योतविजयजी" नाम धारण किया.

कितनेक दिनों बाद शहर लुधीआनामेंही, जील्ला फिरोजपुर गाम मुदकीका रहनेवाला दुनीचंद ओसवाल, हुशीआरपुरका रहनेवाला, उत्तमचंद ओसवाल, शहेर पाली देश मारवाडका रहनेवाला हर्षचंद ओसवाल, जेजोका रहनेवाला मोतीचंद ओसवाल, इन चार जैनों-

की बडी धूम धामसें दीक्षा हुई; जिसमें अनुक्रम करके श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने उन्होंके यह नाम रखे(१) "विनय विजयजी (२) कल्याण विजयजी (३) सुमति विजयजी(४) मोती विजयजी." बाद चौमासेके दिन नजदीक आजानेसें संवत् १९३५ का चौमासा, श्रीआनंद विजयजीने शहर लुधीआनामें किया. इस सालमें देश पंजाबमें कितनेही शहरोंमें बिमारीका बहुत जोर था. जीसमें भी लुधीआनामें अधिकतर बिमारीका जोरथा. जिस बिमारीमें मगसर महिनेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके शिष्य " रत्नविजयजी " (हाकमरायजी) स्वर्गवास हुये. और श्रीआनंद विजयजीको भी, कितनेक दिनोंतक ताप आया. जिस तापका ऐसा जोर वधगया कि, श्रीआनंद विजयजी बेहोश होगये. यह हाल देखकर सकल श्रीसंघको अतीव खेद पैदा हुआ. अब इस वखत क्या करना चाहिये ? ऐसे विचारमेंही सकल श्री संघ दिग्मूढ होगया, परंतु मालेर कोटला निवासी लाला " कवरसेन " जो कि जैनमतके रहस्य उत्सर्ग अपवादादि षड्भंगीका अच्छा ज्ञान धारण करताथा, तिसने आके लाला "गोपीमल्ल," और "प्रभदयाल नाजर " वगैरहको समझाया कि, " विचार करने करनेमेंही तुम काम बिगाड देवोगे ! यह समय विचारनेका नहीं है, जलदी श्रीमहाराजजी साहिबको, शहर अंबालामें लेचलो. क्यौं कि, वहांकी आब हवा इस वखत बहोत अच्छी है." यह सुनकर कितनेकके मनमें तो यह वात रुचि नहीं; परंतु कवरसेन बडा लायक होनेसें उसका कथन, कोई भी अन्यथा नहीं कर सकता था. वहांसें शहेर अंबालामें लेगये. वहांगये बाद दो दिन पीछे, जब श्रीआनंद विजयजीको तपका जोर कुच्छ नरम हुआ, और कुच्छ होश आया, तव देखते हैं तो, अपने आपको शहर अंबालाके उपाश्रयमें देखें. आश्चर्य प्राप्त होकर कहने लगे कि, " यह क्या हुआ ? मुजे कोई स्वप्न आया है? अथवा यह कोई इंद्रजाल हो रहा है? या मुझे कोई मतिभ्रम होगया है ? क्योंकि, मैं तो लुधीआनेमें था; और इस वखत मुझे अन्यही अन्य भान हो रहा है. " ऐसे अनेक प्रकारके संशयां दोलारूढ हुये विचार कर रहेथे, इतनेमें लाला कवरसेन वगैरह श्रावक समुदाय, हाथ जोडकर कहने लगे कि, " महाराजजी साहिब ! आप शोच मत करें. आपको लुधीआनासें हम यहां (अंबालामें) ले आये हैं." इत्यादि सब वृत्तांत सुनाया. अनुमान दो महिने बाद जब श्रीआनंद विजयजीको आराम होगया, तब पूर्वोक्त सब हाल लिखकर शहर अहमदाबादमें गणिजी " मुक्ति विजयजी " (मूलचंदजी) महाराजजीके पास भेजा. उन्होंने श्री जैनशास्त्रानुसार, जो कुच्छ प्रायश्चित्त देना ठीक समझा, दिया. जिसको श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने भी, बडी खुशीसें स्वीकार किया. इस वखत शहर अंबालामें "श्रीवीरविजयजी," " श्रीकांतिविजयजी," " श्रीहंसविजयजी"की दीक्षा हुई. बाद अंबालासें विहार करके लुधीआना, जालंधर होते हुये गुरुके " झंडीआले " आये. और संवत् १९३६ का चौमासा; श्रीआनंदविजयजीने झंडीआलामें किया. " नारोवाल, " " सनखतरा " चौमासे बाद विहार करके " जीरा, " " पट्टी, " " अमृतसर, " होते हुये शहेर "गुजरांवाला"में पधारे. और संवत् १९३७ का चौमासा, वहां ही किया. चौमासे पहिले इस जगा, श्रीमाणिक्य " विजयजी, " और " श्रीमोहनविजयजी" की दीक्षा हुई. और चौमासेमें श्रीआनंदविजयजी महाराजजीनें, बहुत लोकोंके कहनेसें, संस्कृत, प्राकृत नहीं जाणनेवालोंको बोध होनेके लिये, " जैनतत्त्वादर्श " (जैनधर्मके तत्त्वोंका सीसा दर्पण)इस नामका ग्रंथ, बनाना सुरु किया. चौमासे बाद विहार करके "पींडदादनखां" में गये,

और " मोतीचंद " ओसवाल शहर अमृतसरके रहनेवालेको दीक्षा देकर " श्रीसुंदरविजयजी " नाम रखा. यहांसें विहार करके श्रीआनंदविजयजी, अपने परिवारसहित गाम " कलश " (महाराजजीकी जन्मभूमि) में पधारे. जिनको देखके श्रीआत्मारामजीके सांसारिक परिवारके " मंगलसेन " " प्रभदयाल " वगैरह पितृव्य भाई, बडे आनंदको प्राप्त हुये. उनकी बहुत प्रार्थनासें एक रात वहां रहे. वहांसें विहार करके " रामनगर, " " पपनाखा, " " किला दिदारासिंघ, " " गुजरांवाला, " " लाहोर " " अमृतसर, " "जालंधर," होकर शहेर हुशीआरपुरमें पधारे; और संवत् १९३८ का चौमासा, वहांही किया. इस चौमासेमें " जैनतत्वादर्श " ग्रंथ समाप्त किया. चौमासे बाद बिहार करके "जालंधर, "नीकोदर, " " जीरा, " कोटला" होके " लुधीआना " शहेरमें पधारे. और " श्रीजयविजयजी, " "श्रीअमृतविजयजी, " " श्री अमरविजयजी, " तीन शिष्य नये किये. बाद लुधीआनासें विहार करके श्री आनंदविजयजी महाराजजी, शहेर अंबालामें पधारे. और संवत् १९३९ का चौमासा वहांही किया. इस चौमासामें जैनतत्त्वादर्श नामा ग्रंथ, जो प्रथम बनाया था, सो छपवानेके वास्ते, रायबहादुर धनपतिसिंघ, जो शहेर अंबालामें श्री महाराजजी साहिबके दर्शन करनेको आयेथे, उनको दिया. जो छपवाके प्रसिद्ध किया गया है, और " अज्ञानतिमिरभास्कर " नामा दूसरा ग्रंथ, बनाना प्रारंभ किया. परन्तु कितनेक वेदादि पुस्तक,जिनकी बहुत जरूरत थी और जे उस वखत पासमें नहीं थे,इस वास्ते थोडासा लिखके,बंध कियाथा. इस चौमासेमें, पंजाबके श्रावकसमुदायकी प्रार्थनासें, श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने "सत्तरभेदीपूजा " बनाई. इतने वर्षोंमें श्रीआनंद विजयजी महाराजजीके परिवारमें " हर्षविजयजी " "उद्योतविजयजी " वगैरह (१९) शिष्य नये हुये, जिनमें जिस जिसकी दीक्षा, श्री महाराजजी साहिबके हाथसें हुई, तिस तिसके नाम, यहां लिखेहैं, और भी नाम, वंश वृक्षसें मालुम होगा. यह पांच चौमासेमें देश पंजाबमें श्री आनंदविजयजी महाराजजीने, श्री जैनधर्मका बडा भारी उद्योत किया; और कितनेक लोकोंके दिलमें, ढुंढकोंका अनिष्टाचरण देखनेसें, जैनधर्मके ऊपर द्वेष हो रहाथा दूर किया. क्योंकि, लोकोंको मालुम होगया कि, जो मुखबंधे हैं, वे मलीन हैं. और यह पीतांबर धारण करनेवाले, उज्ज्वल धर्म प्ररूपक है, अब इस वखत भी, किसी क्षत्रीय ब्राह्मणके साथ बातचीत होने लगती है तो, उसी वखत वे कहने लग जाते हैं कि, " पंजाब देशके ओसवाल (भावडे) तथा खंडेरवालको तो, श्री आनंदविजयजी (आत्मारामजी) महाराजजीने सुधार दिये. " क्योंकि, प्रथम तो येह भावडे लोक, मुहबंधे गंदे गुरुओंकी सोबतसें, बडेही मलीन होगये थे; और इसी वास्ते पंजाब देशमें प्रायः सब जगा, येह लंकाके चुडेके नामसें प्रसिद्ध थे. अब भी जो शेष ढुंढक रह गये हैं, उनको लोक बुरे समझते हैं, और उनसें परेहज भी रखते हैं. धर्मको लगा हुआ यह कलंक, दूर किया; येह कोई श्रीआनंद विजयजी महाराजजीने थोडा पुण्य पैदा नहीं किया ! सब जगा जहां जहां जावे, वहां वहां अनेक प्रकारके मत मतांतरोंवालेके साथ चर्चावार्ता होनेसें लोकोंमें जैनधर्मकी " फिलॉसोफी " (तत्वज्ञान) मालुम होगई; इत्यादि बहुत उपकार कर रहेथे. परंतु नूतन शिष्योंको जैनशास्त्रानुसार, " छेदोपस्थापनी " नामा चारित्रका संस्कार कराना था. सो उसवखत गणिजी महाराज श्री, " मुक्तिविजयजी " (मूलचंदजी) सिवाय, औरको " श्री बुद्धिविजयजी

(बूटेरायजी) महाराजजीके परिवारमें अधिकार नहीं होनेसें देश गुजरात, शहेर अहमदावादके तरफ विहार करनेका इरादा करके, शहर अंबालासें विहार करके दिल्लीमें पधारे. वहां तिनको ढुंढकोंका छपवाया ' सम्यक्त्वसार ' नामा पुस्तक, भावनगरकी " श्री जैनधर्म प्रसारक सभा " तरफसें मिला. तिसका उत्तर, सभाकी प्रेरणासें श्रीआनंदविजयजीनें लिखना सुरु किया. शहर दिल्लीसें " हस्तिनापुर" की यात्रा करके " जयपुर " " अजमेर " " नागौर " आदि शहरोंमें विचरते हुये, " बीकानेर " पधारे. और संवत् १९४० का चौमासा, वहां किया. और चौमासेमें " वीशस्थानकपूजा " बनाई. इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीके बडे शिष्य, " श्रीलक्ष्मीविजयजी (विश्नचंदजी) " बहुत बिमार होगये. वीकानेरसें शनैः शनैः विहार करके श्री आनंदविजयजी, श्रीलक्ष्मीविजयजी आदि शिष्यों सहित, शहर पालीमें पधारे. यहां श्रीलक्ष्मीविजयजी स्वर्गवास हुये ! अफसोस ! ! महाराजजीकी बडी बांह टूट गई ! ऐसे लायक विनयवान् पंडित शिष्यके स्वर्गवास होनेसें सब श्री संघको बडा खेद हुआ. परंतु श्रीआनंदविजयजीको देखके हौंसला किया कि, फिकर नहीं. एक न एक दिन तो मरनाही था. अस्तु ! अब परमेश्वरसें यही प्रार्थना है कि, हमारे शिरपर, श्रीआनंदविजयजी महाराजजी कि छत्र छाया, चिरकाल बनी रहे !

श्रीआनंदविजयजी पाली शहरसें विहार करके पंचतीर्थी, आबुजी आदिकी यात्रा करते हुए शहर अहमदावाद पधारे. और वडौदाके राज्यमें गाम डभोईके रहनेवाले मोतीचंदको दीक्षा देके " श्री हेमविजयजी " नाम रखा. तथा " उद्योतविजयजी " आदिको, श्री गणिजी महाराजजीके पास बडी दीक्षा दिलवाई. और संवत् १९४१ का चौमासा, वहांही किया. चौमासेमें " आवश्यकसूत्र " बाईस हजार, जो प्रथम संवत् १९३२ के चौमासेमें वांचना प्रारंभ किया था, अधूरा रहनेसें, अब भी व्याख्यान उसहीका करते रहें; और भावनाधिकारमें " श्रीधर्मरत्न प्रकरण " सटीक वांचते रहे. जिसको सुननेके वास्ते अनुमान (७०००) श्रावक श्राविका आतेथे. इस चौमासेमें श्री जैनधर्मका बडाही उद्योत हुआ, सैंकडोंही अट्ठाई महोत्सव हुवे, पूजा प्रभावना भी बहुत हुई, अनेक प्रकारकी तपस्या भी हुई, स्वधर्मीवात्सल्य भी बहुत हुये. एक दिन श्रीसंघने सलाह करके, श्रीमहाराजजी साहिब श्रीआनंदविजयजीसें प्रार्थना करीकि, " आपने देशपंजाबमें जो नये श्रावक बनाये हैं, तिनको हम मदद देनी चाहाते हैं," तब श्री महाराजजीने कहा कि, " तुमारी मरजी. तुमारा धर्मही है के, अपने स्वधर्मियोंको मदद देनी. " बाद श्रीसंघने बहुत जिन प्रतिमा धातुकी, और पाषाणकी, देशपंजाबके शहर " अंबाला, " " लुधीआना, " " कोटला, " " जिरा, " " जालंधर, " " नीकोदर, " " हुशीआरपुर, " " गुरुका झंडियाला, " " पट्टी, " " अमृतसर, " " नारोवाल, " " सनखतरा, " " गुजरांवाला, " वगैरह बहुत शहरोंमें श्रावकोंके पूजने वास्ते भेजी. तथा इस चौमासेमें, श्रीआनंदविजयजीने, सम्यक्त्वसार पुस्तकका उत्तर लिखके पूर्ण किया. जो " सम्यक्त्वशल्योद्धार" के नामसें भावनगरकी सभाके तरफसें छप गया है. जिसमें भावनगरकी सभाने भी, अपने तरफसें कितनाक हिस्सा बढाया है. इस ग्रंथके वांचनेसें ढुंढकमत, और सनातन जैन धर्ममें, कितना फरक है, मालुम होजाताहै. परंतु कितनेक शब्द सभाके तरफसें कठिन पडनेसें बहुत ढुंढक लोक वांचते नहीं है, तथा गुजरात देशकी बोलीमें होनेसें, कितनेकको ठीक ठीक



आचार्य श्री १००८ श्रीमद् कमल विजयसूरि.

श्रीमद्विजयानंद सूरीश्वर (आत्मारामजी) के पाटधारी.

मूल–पंजाबी–ब्राह्मण.–सिरसामें यति किशोरचंदजीके पास रहतेथे.

ढुंढक दीक्षा, सं० १९३० में श्री विभचंदजीके पास ली. नाम—रामलालजी.

संवेगी दीक्षा–अहमदावादमें—सं० १९३२.

और श्रीमन् आत्मारामजीके बडे शिष्य श्री लक्ष्मीविजयजी (विश्वचंदजी)के शिष्य हुए.

पाटण–गुजरातमें पट्टपर बिराजे - सं०१९५७.

वचनामृतकी वृष्टी जगह २ कर रहे हैं.

समझ भी नहीं आती है; इस वास्ते कितनेक लोगोंका इरादा है कि, इसको जिस ढबपर श्रीआनंदविजयजी महाराजजीने अपनी कलमसे प्रथम लिखा है, उसही ढबपर हिंदिभाषामें छपवाना चाहिये. जिससे, बहुत फायदा होनेका संभव है; सो प्रायः थोड़ेही कालमें यकीन है, छप जायगा. चौमासे बाद श्रीआनंदविजयजी वगैरह साधु अहमदाबादसे विहार करके, श्री शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करनेको पधारे. एक महीना " पालीताणा " शहेरमें रहे, और निरंतर यात्रा करके अपना मनुष्यदेह, पावन करते रहे. इस श्री शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे " शेठ प्रेमाभाई," "शेठ नरशी केशवजी, " " शेठ वीरचंद दीपचंद " वगैरह देश गुजरातके संघकी मददसे बडे अद्भुत सुन्दर, और देखनेसें चित्त शांत होवे, ऐसे (३५) जिनबिंब देश पंजाबमें भेजे गये. इन जिन प्रतिमाके आनेसे देश पंजाबमें जैनधर्मका बडा उद्योत हुआ, और इन प्रतिमाके रखनेके वास्ते पंजाबके श्रावकोंको अपने २ शहेरमें जैनमंदिर बनवानेका ख्याल आया, और जिन मंदिर बनने शुरु हुये. पालीताणासे विहार करके "शिहोर, वरतेज, भावनगर" होकर "गोधा बंदर" में श्रीआन्दविजयजी पधारे. तहां " श्री नवखंडा पार्श्वनाथ " की यात्रा करके " वला, बोटाद" होकर " लिंबडी " शहेर पधारे, जहां पांचसो घर श्रावकोंके, और तीन जिन मंदिर है, श्री महाराजजीके पधारनेकी खुशीमें श्रावकोंने समवशरणकी रचना वगैरह महोच्छव किये. यहांके राजा साहिबने भी, श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) महाराजजीके दर्शन पाये, और बातचीत करके बडेही आनंदको प्राप्त हुये. एक महीनेबाद लींबडीसे विहार करके वढवाण धंधूका, धोलेरा होकर शहेर खंभात बंदर पधारे, जहां अनुमान एक हजार घर श्रावकोंके और दोसौ जिन मंदिर है. यहां बहुत पुराने ताडपत्रोंपर लिखे पुस्तक भंडार देखे. कईएक शास्त्रोंका उतारा भी, करवा लिया. तथा पुस्तकादिककी मदद ठीक ठीक मिलनेसे " अज्ञान तिमिर भास्कर" नामा ग्रंथ जो शहेर अंबालामें बनाना सुरु किया था, यहां समाप्त किया, जो भावनगरकी "जैन ज्ञान हितेच्छु" सभाके तरफसे छपवाकर प्रसिद्ध किया गयाहै. जिसके पहिले हिस्सेमें, वेदादि शास्त्रोंमें यज्ञादि धर्मका जैसा विचार है,तैसा सप्रमाण दिखलाया है, और दूसरे हिस्सेमें,जैनमतका संक्षेपसें वर्णन कियाहै. और इस जगा "श्रीस्तंभन पार्श्वनाथजी" की, जो कि बडी प्राचीन प्रतिमा है, यात्रा करके बहुत खुश हुए. खंभातसे विहार करके " जंबूसर " होकर "भरुच बंदर" पधारे; यहां अनुमान अढाईसें घर श्रावकोंके, और छ मंदिर बडे खुबसुरत है, और वीसमे तीर्थंकर " श्रीमुनिसुव्रत स्वामी " की, बहुत प्राचीन मूर्त्तिके दर्शन करके अत्यानंद प्राप्त हुये. भरुचसें विहार करके श्रीआनंदविजयजी, " सुरत बंदर " पधारे. श्रावक लोकोंने बडे महोत्सवसे शहरमें प्रवेश कराया. ऐसा प्रवेश महोत्सव हुवा कि, उसको देखके सुरतके वासी बडे बडे बुजर्ग जैन और अन्यमति भी, कहने लगे कि, " ऐसा आदर पूर्वक प्रवेश महोत्सव आजतक हमने किसीका भी नही देखाहै." श्रावकोंकी अतीव प्रार्थना होनेसे, संवत् १९४२ का चौमासा, सुरत शहेरमें किया. चौमासेमें श्रावकोंकी अभिलाषापूर्वक, " श्रीआचारांग सूत्र" सटीक, और " धर्मरत्न प्रकरण " सटीक, पर्षदामें सुनाते रहे. हजारों श्रावक श्राविका तिस वचनामृतको पीकर, मिथ्यात्व विषको दूर करते रहे; और अनेक प्रकारके उद्यापन, समवसरण रचना, अठाई महोच्छव वगैरह महोत्सव करके, श्रीजैनधर्मका उद्योत किया.इस चौमासामें श्रीआनंदविजयजीके धर्मोपदेशसे श्रावक लो-

कोंको ऐसा रंग चढा था के,जिससे अनुमान(७५०००)रुपैये धर्ममें खरच किये.यहां रहकर श्रीआनंदविजयजीने "जैनमत वृक्ष"बनाया. तथा इस बखत सुरत शहरमें "हुकममुनि" नामा एक "जैनाभास"साधु रहते थे; तिसने "अध्यात्मसार"नामा एक ग्रंथ बनाकर प्रसिद्ध किया था.परंतु वह ग्रंथ जैनागमकी शैलिसे तद्दन विरुद्ध होनेसे, बहुत श्रावकोंके मनमें विपरीत श्रद्धान प्रवेश कर गया था. इसवास्ते श्रीआनंदविजयजी(आत्मारामजी) ने, अध्यात्मसारमेंसे (१४) प्रश्न निकाले; और हुकम मुनिको श्रावक मारफत खबर दिलवाई कि, "तुह्मारा बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ जो जैनमतसे विरुद्ध है उसमेंसे निकाले यह(१४)प्रश्नका उत्तर देवो". तिसके उत्तरमें हुकममुनिके तरफसे संतोषकारक जवाब नहीं मिलनेसे,सुरतके श्रीसंघने वे(१४) प्रश्न और श्रीआनंदविजयजीके और हुकममुनिके दिये उत्तर " धी जैन एसोसिएशन आफ् इन्डीया " (भारतवर्षीय जैनसमाज) ऊपर भेजेगये. वे सर्व प्रश्न, वहांसे हिंदुस्थानके जैनमतके ज्ञाता साक्षर पंडित जैन साधु यतियोंके पास निर्णय करनेके वास्ते जगे२ भेजे गये, तिन सर्वने पक्षपात रहित होकर,जैन शैलीके अनुसार अपना मंतव्य जाहिर किया कि,"हुकम मुनिके बनाये ग्रंथ अध्यात्मसारमेंसे जो (१४) प्रश्न श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने निकाले हैं, वे धर्मसे विरुद्ध, और संशयसें भरे हुए हैं; तथा श्रीआनंदविजयजीके दिये उत्तर जैन शास्त्रानुसार है, और हुकममुनिके दिये उत्तर जैन शास्त्रसे विरुद्ध है."देशावरोंसे जैन पंडितोंके पूर्वोक्त अभिप्रायोंको,जैन एशोसिएशन आफ इंडीयाने, अपनी सुरत ब्रेंच सभामें, सर्व श्रीसंघको एकत्र करके, संवत् १९४२ का मगसर सुदि १४ के दिन, वांचकर सुना दिये, और सभामें आये हुये हुकममुनिके सेवकोंको खबर दी कि, "सर्व जैन पंडितोंके अभिप्राय मुजिब, हुकममुनिका बनाया अध्यात्मसार ग्रंथ, अप्रमाणिक सिद्ध हुआ है, जिससें हम भी तिस ग्रंथको, जैन शैलीसे विरुद्ध मानके, हुकममुनिको खबर देते हैं के उनको अपने ग्रंथमेंसें असत्य लिखानका सुधारा करना चाहिये; अथवा तिस लिखानको निकाल देना चाहिये. जबतक इन दोनों बातोंमेंसे एक भी बात वे करेंगे नहीं, तबतक हम तिस पूर्वोक्त ग्रंथको प्रमाणिक नहीं मानेंगे. " ऐसा निर्णय करके सभा विसर्जन हुई थी. चौमासेबाद भी कितनाक समयतक पूर्वोक्त कारणसे श्रीआनंदविजयजीका रहना सुरत शहरमेंही हुआ. इस समयमें एक ढुंढक साधु जिसका नाम " रायचंद " था, और जिसने संवत् १९३९ में पोरबंदर शहेरमें फागण वदि १३ को देवजीरिख नामा ढुंढक साधुके पास दीक्षा ली थी, परंतु सम्यक्त्व शल्योद्धार ग्रंथके देखनेसें, ढुंढकमतसें अनास्था होनेसें संवत् १९४२ आश्विन वदि १२ के दिन ढुंढकमतको छोडके श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) के पास आकर, संवत् १९४२ मगसर वदि ५ के दिन, शुद्ध सनातन जैनधर्मको अंगीकार किया, और दीक्षा लेकर जैनमतका साधु हुआ, जिसका नाम श्रीआनंदविजयजीने "श्रीराजविजयजी" रखा.

सुरत शहेरसें विहार करके श्रीआनंदविजयजी "भरुच" "मियागाम" "डभोई" होकर शहेर "वडौदा" में पधारे. और "कस्तूरचंद" मारवाडी सुरत निवासीको दीक्षा देकर "कुंवरविजय" नाम रखा. शहेर वडोदामें " श्रीशत्रुंजय " तीर्थ संबंधी बहुत मुदतकी तकरारका फैसला होनेकी खुश खबर मिलनेसें, और कितनेक श्रावकोंकी प्रेरणासें, इस पवित्र तीर्थकी छायामें (पालिताणामें) चौमासा करनेकी श्रीआनंदविजयजीकी इच्छा हुई. इसवास्ते

बडौदेसें विहार किया. और "छाणी" "उमेटा" "बोरसद" "पेटलाद" वगैरह शहेरो विचरते हुये, "मातर" गाममें आये. यहां पांचवें तीर्थंकर "श्रीसुमतिनाथ" जो "साचे देव" के नामसें गुजरात देशमें प्रसिद्ध है, तिनके अपूर्व दर्शन पाये. और इन देवके समक्षही, "पाटन" शहेरके रहनेवाले, "लेहराभाई" जिसकी उमर अनुमान अठारह वर्षकी थी तिसको दीक्षा देकर "श्रीसंपत्‌विजयजी" नाम दिया. बाद विहार करके "खेडा" "अहमदावाद" "कोठ" "लींबडी" "बोटाद" "वला" वगैरह शहेरोंमें विचरते हुये, "पालीताणा" में पधारे. यहां श्रीतीर्थाधिराजकी यात्रा करके, सुरत निवासी "माणेकचंद" ओसवालके लडकेको दीक्षा देकर "श्रीमाणिक्यविजयजी" नाम रखा. और संवत् १९४२ का चौमासा, चौवीस साधुओंके साथ, श्रीआनंदविजयजीने पालीताणामें किया. इन महात्माका चौमासा सुनकर सुरत निवासी शेठ "कल्याणभाई शंकरदास" वगैरह, भरुच निवासी शेठ "अनूपचंद मलुकचंद" वगैरह, बडोदा निवासी झवेरी "गोकलभाई दुल्लभदास" वगैरह, जील्ला खानदेश–मालेगांव धूलीया निवासी शेठ "सखाराम दुल्लभदास" वगैरह, खंभायतके रहनेवाले शेठ "पोपटभाई अमरचंद" वगैरह, बहुत शहेरोंके अनुमान पांचसौ श्रावक श्राविका, अपना सांसारिक कार्य सब छोडके, जंगम और स्थावर दोनोंही तीर्थोंकी युगपत् सेवा करनेका इरादा करके, पालिताणेमेंही आके चौमासा रहे. इस चौमासेमें श्रीआनंदविजयजीने श्रावकोंके उत्साहानुसार, "श्रीभगवतीसूत्र सटीक" तथा "उपदेशपद सटीक" व्याख्यानमें सुनाया.

चौमासेकी समाप्ति समयमें, अर्थात् कार्त्तिकी पूर्णमासी ऊपर, यात्रा करनेके वास्ते बहुत लोकोंका मेला हुआथा. जिसमें कलकत्तावाले बाबु राय बहादुर "बद्रीदासजी" भी आये हुये थे. तथा "गुजरात" "काठियावाड" "कच्छ" "मारवाड" "पंजाब" "पूर्व" वगैरह देशोंके मुख्य शहेरोंमेंसें बहुत संभावित गृहस्थ भी आये हुयेथे. अनुमान (३५०००) आदमी यात्राके वास्ते आये हुयेथे. ऐसे शुभ प्रसंगमें, महाराज श्रीआनंदविजयजी (आत्मारामजी) की अपूर्व विद्वत्ता, और बुद्धि चातुर्यतासें प्रसन्न होकर, सर्व श्रीसंघने मिलके, उनको "सूरि" पद देनेका निश्चय किया. और संवत् १९४३ मगसर वदि (गुजराती कार्त्तिक वदि) पंचमी पूर्णा तीथिको, पालीताणामें शेठ नरशी केशवजीकी धर्मशालामें, श्रीचतुर्विध संघ समुदायने मिलके, पंडित मुनि श्रीआत्मारामजी (आनंदविजयजी) को "सूरि पद" प्रदान करके, "श्रीमद्विजयानंदसूरि" नाम स्थापन करके, अपने आपको पूर्ण किया. इस दिनसें लेकर सर्व साधु, और श्रावक वगैरह, कागल पत्रमें "पूज्यपाद् श्रीश्रीश्री १००८ श्रीमद्विजयानंद सूरि" यह नाम लिखने लगे, और इस पूर्वोक्त नामसेही मानने लगे. शासन नायक श्रीमन्महावीर स्वामिसे श्रीमद्विजयानंद सूरि ७२ मे पट्टपर हुये, सो इस माफक है.

शासन नायक श्रीमन्महावीर स्वामी—

(१) श्री सुधर्मा स्वामी
(२) श्री जंबू स्वामी
(३) श्री प्रभवा स्वामी
(४) श्री शय्यंभव सूरि
(५) श्री यशोभद्र सूरि
(६) { श्री संभूतविजयजी तथा / श्री भद्रबाहु स्वामी }

(७) श्री स्थूलभद्र स्वामी
(८) श्री आर्यसुहस्ति सूरि
(९) { †श्री सुस्थित सूरि तथा / श्री सुप्रतिबुद्ध सूरि }
(१०) श्री इंद्रदिन्न सूरि
(११) श्री दिन्न सूरि
(१२) श्री सिंहगिरि सूरि
(१३) श्री वज्र स्वामी
(१४) श्री वज्रसेन सूरि
(१५) *श्री चंद्र सूरि
(१६) ÷श्री सामंतभद्र सूरि
(१७) श्री वृद्धदेव सूरि
(१८) श्री प्रद्योतन सूरि
(१९) श्री मानदेव सूरि
(२०) श्री मानतुंग सूरि
(२१) श्री वीर सूरि
(२२) श्री जयदेव सूरि
(२३) श्री देवानंद सूरि
(२४) श्री विक्रम सूरि
(२५) श्री नरसिंह सूरि
(२६) श्री समुद्र सूरि
(२७) श्री मानदेव सूरि
(२८) श्री विबुधप्रभ सूरि
(२९) श्री जयानंद सूरि
(३०) श्री रविप्रभ सूरि
(३१) श्री यशोदेव सूरि
(३२) श्री प्रद्युम्न सूरि
(३३) श्री मानदेव सूरि
(३४) श्री विमलचंद्र सूरि
(३५) श्री उद्योतन सूरि
(३६) +श्री सर्वदेव सूरि
(३७) श्री देव सूरि
(३८) श्री सर्वदेव सूरि
(३९) { श्री यशोभद्र सूरि तथा / श्री नेमिचंद्र सूरि }
(४०) श्री मुनिचंद्र सूरि
(४१) श्री अजितदेव सूरि
(४२) श्री विजयसिंह सूरि
(४३) { श्री सोमप्रभ सूरि तथा / श्री मणिरत्न सूरि }
(४४) ×श्री जगच्चंद्र सूरि
(४५) श्री देवेंद्र सूरि
(४६) श्री धर्मघोष सूरि
(४७) श्री सोमप्रभ सूरि
(४८) श्री सोमतिलक सूरि
(४९) श्री देवसुंदर सूरि
(५०) श्री सोमसुंदर सूरि
(५१) श्री मुनिसुंदर सूरि
(५२) श्री रत्नशेखर सूरि
(५३) श्री लक्ष्मीसागर सूरि
(५४) श्री सुमतिसाधु सूरि
(५५) श्री हेमविमल सूरि
(५६) श्री आनंदविमल सूरि
(५७) श्री विजयदान सूरि
(५८) श्री हीरविजय सूरि

---

† इन्होंने सूरि मंत्रका कोटि जाप किया,इस वास्ते निर्ग्रंथ गच्छका "कौटिक गच्छ" नाम प्रसिद्ध हुआ.

* इन्होंसें कौटिक गच्छका नाम "चंद्र गच्छ" पडा.

÷ इन्होंसें "वनवासी गच्छ" प्रसिद्ध हुआ.

+ इन्होंसें निर्ग्रंथ गच्छका पांचमा नाम "वडगच्छ" पडा.

× इन्होंसें वडगच्छका नाम तपगच्छ प्रसिद्ध हुआ.

(५९) श्री विजयसेन सूरि (६०) श्री विजयदेव सूरि
(६१) श्री विजयसिंह सूरि (६२) श्री सत्यविजय गणि
(६३) श्री कपूरविजय गणि (६४) श्री क्षमाविजय गणि
(६५) श्री जिनविजय गणि (३६) श्री उत्तमविजय गणि
(६७) श्री पद्मविजय गणि (६८) श्री रूपविजय गणि
(६९) श्री कीर्त्तिविजय गणि (७०) श्री कस्तूरविजय गणि
(७१) श्री मणिविजय गणि (७२) श्री बुद्धिविजय गणि (बूटेरायजी)
(७३) §श्री विजयानंद सूरि (श्री आत्मारामजी)—

पालीताणाके चौमासेमें श्रीआनंद विजयजी महाराजने श्रीतीर्थाधिराजको भाव पूजारूप पुष्प भेट करनेके वास्ते, "अष्टप्रकारी पूजा" बनाई.

चौमासे बाद कितनेक दिन यात्राके निमित्त रहकर, विहार करके "सीहोर, वला, बोटाद, लींबडी, वढवाण" होकर "लखतर" आये. इस राज्यका दिवान "फूलचंद कमलसी" श्रावक होनेसें, श्रीमद्विजयानंद सूरिका आगमन राजासाहिबको भी मालुम हुआ, और वे भी श्रीमहाराजजी साहिबके पास आकर धर्मकी चर्चा करते रहे. राजा साहिबने अपना दिल धर्मके तरफ लगा हुआ होनेसे, श्रीमहाराजजी साहिबको रहनेके वास्ते प्रार्थना करी. परंतु श्रावक समुदायके घर थोडे होनेसे, वहां ज्यादा रहना, श्रीमहाराजजी साहिबने ठीक न समझा. लखतरसे विहार करके "वीरमगाम, रामपुरा" होकर "भोयणी" गाममें आये; और श्रीमल्लीनाथ स्वामीके दर्शन पाये. बाद विहार करके "मांडल, दशाडा, पंचासर," होकर "शंखेश्वर" गाममें "श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथजी" की यात्रा करके, चंडावल, समनी, गोचीनार होकर शहेर "राधनपुर" जहां अनुमान पंदरासौ घर श्रावकोंके और (२५) मंदिर हैं, पधारे. यहां बडौदे शहेरके रहनेवाले "छगनलाल" नामा लडकेको, श्रावकोंका अत्याग्रह होनेसेही संवत् १९४४ वैशाख सुदि तेरस बुधवारके दिन, दीक्षा दी; और "श्रीवल्लभ विजयजी" नाम रखा. बाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, यहांसे विहार करके "रण, जामपुर, उंदरा," वगैरह गामोंमें होकर शहेर "पाटण"में जहां अनुमान अढाई हजार श्रावकोंके घर; और (५००) जिन मंदिर हैं, पधारे; और "श्री पंचासरा पार्श्वनाथ" की यात्रा की. यह मूर्त्ति "वनराज चावडा" ने, श्री शीलगुण सूरिके पास प्रतिष्ठा करायके, स्थापन करीथी; इस मंदिरमें वनराज चावडेकी भी मूर्त्ति है. इस शहरमें पुराणे जैन पुस्तकोंके भंडार देखके, कई पुस्तकोंके उतारे कराय लिये. अनुमान एक महिना रहकर शहेर राधनपुरके श्रावकोंके आग्रहसे पाटण शहेरसें विहार करके, पीछे राधनपुरमें पधारे; और संवत् १९४४ अषाढ सुदि दशमी बृहस्पति वारको एक लडकेको दीक्षा दी, जिसका नाम श्री "भक्ति विजयजी" रखा—जो अब गुण विजयके नामसे कहाताहै. संवत् १९४४ का चौमासा, यहांही किया; इस चौमासेमें श्रीमद्विजयानंद सूरिने व्याख्यान नहीं किया;

§ श्री मुक्तिविजयजी गणि प्रसिद्ध नाम मूलचंदजी महाराजजी भी श्री बुद्धिविजयजी गणि महाराजजीके पाट ऊपर हुए हैं. अर्थात् श्री मूलचंदजी और श्री आत्मारामजी दोनोंही श्री बूटेरायजी महाराजजीके पाट ऊपर हुये, तथा किसी पट्टावलिमें श्री विजयदेव सूरि और श्री विजयसिंह सूरि दोनों एकही पट्ट ऊपर गिने है, तो उस मुजब श्रीमद्विजयानंद सूरि बहत्तर (७२) मे पट्ट ऊपर जानने.

क्योंकि, आंखमें मोतीया उतर रहाथा. तथापि श्रावक लोकोंके आग्रहसे "चतुर्थ स्तुति निर्णय" नामा पुस्तक बनाया, जो छपकर प्रसिद्ध होगयाहै. पूर्वोक्त कारणसें चौमासेमें व्याख्यान, "श्री हर्ष-विजयजी" महाराज करते रहे, और श्री सूयगडांग सूत्र, तथा धर्मरत्न प्रकरण सटीक सुनाते रहे.

चौमासे वाद श्रीमद्विजयानंद सूरि, राधनपुरसें विहार करके शंखेश्वर पार्श्वनाथजीकी, तथा भोयणीमें श्री मल्लिनाथजीकी यात्रा करके, कडी शहेर होकर शहेर अहमदावादमें पधारे. यहां जुनागढवाले प्रसिद्ध डाक्टर "त्रिभोवनदास मोतीचंद शाह" जो श्रीमहाराजजी साहिवके परम भक्त श्रावक हैं, और जिनोंने श्री महाराज आत्मारामजीकेही उपदेशसें, ढुंढकमतको त्याग करके; सनातन जैनधर्म अंगीकार कियाहै; तिनोंने महाराज श्रीआत्मारामजीकी आंखमेंसे मोतीया निकाला. बाद श्रीआत्मारामजी, अहमदावादमें गोपाल नामा श्रावकको, दीक्षा देकर "श्रीज्ञानविजयजी" नाम स्थापन करके, तदनंतर विहार करके "मेहसाणा" जहां पांचसौ घर श्रावकोंके, और दस जैनमंदिर है, पधारे. और संवत् १९४५ का चौमासा, वहां किया. यहां भी डाक्टरकी मनाई होनेसें श्रीमहाराज आत्मारामजीने व्याख्यान नहीं किया; किंतु "श्री हर्ष विजयजी महाराज" "श्रीभगवती सूत्र" सटीक, तथा "धर्मरत्नप्रकरण" सटीक सुनाते रहे. चौमासेमें महोत्सवादि वहुत धर्म कार्य समयानुसार हुवे. परंतु एक कार्य वहुतही अद्भुत यह हुआ कि, दो हजार रुपैये, पुराने पुस्तकोंके उद्धारमें लगाये, और आगेके वास्ते भी श्रावकोंने ज्ञान संवंधी वंदोवस्त कर रखा.

इस चौमासेमें कलकत्ताकी "रोयल ऐशियाटिक सोसाईटी" के ऑनररी सेक्रेटरी डाक्टर (भट्ट–पंडित) "ए. एफ. रुडॉल्फ् होरनल" साहिवने, पत्रद्वारा शा० मगनलाल दलपतराम मारफत, महाराजजी श्रीमद्विजयानंद सूरि (आत्मारामजी) को धर्म संवंधी कितनेक प्रश्न लिख भेजे थे, तिनके जवाव श्री महाराज आत्मारामजीने, शास्त्रानुसार, ऐसी चतुराईसें लिख भेजे, जिनको वांचके पूर्वोक्त साहिव, वहुत खुश हुए, और महाराज श्रीका वहुत उपकार मानने लगे. पूर्वोक्त अंग्रेज विद्वान साथ, प्रायः वहुत प्रश्नोत्तर हुए; जे वहुतसे भावनगरके "जैन धर्म प्रकाश" चोपान्यामें छपगये हैं. तथा पूर्वोक्त साहिवने, "उपाशक दशांग" नामा जैन पुस्तक अंग्रेजी तरजुमाके साथ छपवाया है; जिसमें श्री महाराजजीका उपकार मानके, बडी भक्तिके सूचक, चार श्लोकोंमें श्रीमहाराजजीका गुणानुवाद करके, तथा अंग्रेजी लेखमें भी वहुत स्तुति लिखकर वह पुस्तक महाराजजीश्रीको अर्पण कियाहै.† श्री महाराज आत्मारामजीने अहमदावाद निवासी

---

† अर्पण पत्रिकाके वे चार श्लोक यह है.

उपजाती छंद–दुराग्रहध्वान्तविभेदभानो। हितोपदेशामृतसिंधुचित्त॥
संदेहसंदोहनिरासकारिन्। जिनोक्तधर्मस्य धुरंधरोसि॥ १॥

आर्या———अज्ञानतिमिरभास्करमज्ञाननिवृत्तये सहृदयानाम्॥
आर्हततत्वादर्शग्रंथमपरमपि भवानकृत॥ २॥

अनुष्टुप् छंद–आनंद विजय श्रीमन्नात्माराम महामुने॥
मदीयनिखिलप्रश्नव्याख्यातः शास्त्रपारग॥ ३॥
कृतज्ञताचिन्हमिदं ग्रंथसंस्करणं कृतिन्॥
यत्नसंपादितं तुभ्यं श्रद्धयोत्सृज्यते मया॥ ४॥

शेठ "गीरिधरलाल हीराभाई," जो उस वखत राज्य पालनपुरके न्यायाधीश थे, तिनकी प्रेरणासे छोटी उमरके वालकोंको भी प्रायः धर्मका स्वरूप मालुम होवे, उस ढवपर, "श्रीजैन प्रश्नोत्तरावली" नामा ग्रंथ प्रारंभ किया. ऐसे आनंदसें चतुर्मास पूर्ण करके श्रीमहाराजजी साहिब विहार करके तारंगाजी वगैरह तीर्थकी यात्रा करते हुये, शहेर "पालनपुर" में पधारे. और "जैन प्रश्नोत्तरावलि" ग्रंथ पूर्ण करके पूर्वोक्त महाशयको दिया जो उन्होंने छपवाकर प्रसिद्ध किया. "वर्धमान" दशाडा निवासी, "वाडीलाल" शहेर पाटन निवासी वगैरह सात जनोंको दीक्षा देकर यह नाम रखे. (१) श्रीशुभविजयजी, (२) श्रीलब्धिविजयजी (३) श्रीमानविजयजी (४) श्रीजशविजयजी (५) श्रीमोतिविजयजी (६) श्रीचंद्रविजयजी (जिसका नाम इस समय "श्रीदानविजयजी" कहा जाताहै.) (७) श्रीरामविजयजी. ऐसे पांच वर्षमें गुजरात देशमें श्रीजैनधर्मका वहुत उद्योत किया. कई भव्य जीवोंको प्रव्रज्यारूप नावमें बिठाकर, संसार समुद्रसें पार लंघाये. हजारांही श्रावकोंने व्रत, नियम, प्रत्याख्यान, अंगीकार किये. तथा शब्दांभोनिधि, गंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक) वादार्णव सम्मतितर्क, प्रमाण-प्रमेयमार्तंड, खंडखाद्य वीरस्तव, गुरुतत्त्व निर्णय, नयोपदेश अमृत, तरंगिणी वृत्ति, पंचाशक सूत्रवृत्ति, अलंकार चूडामणि, काव्यप्रकाश, धर्मसंग्रहणी मूलशुद्धि, दर्शनशुद्धि, जीवानुशासन वृत्ति, नवपद प्रकरण, शास्त्रवार्त्ता समुच्चय, ज्योतिर्विदाभरण, अंगविद्या, वगैरह सैंकडों शास्त्र लिखवाके, अभ्यास किया. ऐसे ऐसे अपूर्व ग्रंथोंको लिखवायके उद्धार कराया, जो हर एक ठिकाने मिलने मुश्कल होवे.

पालनपुरसे विहार करके पंजाव देशके श्रावकोंको धर्मोपदेश द्वारा दृढ करनके वास्ते, "आवुजी, सीरोही, पंचतीर्थी" होकर शहर "पाली" में पधारे. यहां मुनि वल्लभविजयजी आदि नवीन साधुओंको योगोद्वहन करायके पुनःसंस्काररूप छेदोपस्थापनीय चारित्र प्रदान किया. बाद पालीसे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिव, शहेर "जोधपुर" में पधारे, और संवत् १९४६ का चोमासा वहां किया. श्रावकोंकी अभिलाषा पूर्वक व्याख्यानमें श्रीमान् श्री "हेमचंद्र सूरि" विरचित, श्री "योगशास्त्र" वांचते रहे. इस चोमासेमें श्रीमहाराजजी साहिवको युरोपमें छपा हुआ "ऋग्वेद" का पुस्तक, "डॉक्टर ए. एफ. रुडॉल्फ हॉरनल" साहिवके जरियेसे ब्रीटीश सरकारकी तरफसे, आवुके "एजंट टु धी गवरनर जनरल" साहिवकी मारफत भेट आया.

चोमासे वाद महाराजजी श्री जोधपुरसे विहार करके "अजमेर" पधारे, जहां समवसरणकी रचना हुई, धर्मका अच्छा उद्योत हुआ. वाद "जयपुर, अलवर" होकर शहेर दिल्लीमें पधारे. यहां इनको, अपने रत्न समान शिष्य शिष्य, "श्री हर्ष विजयजी" का वियोग हुआ, अर्थात् श्री हर्ष

भावार्थ--दुराग्रह रूपी ध्वान्त अर्थात् अंधकारको नाश करनेमें सूर्य समान और हितकारी उपदेश रूप अमृत समुद्र समान चित्तवाले, संदेहका समूहसे छुडानेवाले, जैन धर्मके धुरके धारण करनेवाले आप हो. १.

सज्जन पुरुषोंकी अज्ञानकी निवृत्तिके अर्थ आपने "अज्ञान तिमिर भास्कर" और "जैन तत्वादर्श" नाम ग्रंथ रचे, हैं. २.

महामुनि श्रीमन् आनंदविजयजी (आत्मारामजी) ने मेरे संपूर्ण प्रश्नोंकी व्याख्या की; इस लिये हे मुनि! आप शास्त्रमें पूर्ण हो. ३.

यत्नसे संपादित और संस्कार किया हुवा कृतज्ञताका चिन्ह रूप यह ग्रंथ श्रद्धा पूर्वक आपको अर्पण करताहूं. ४.

विजयजी स्वर्गवास हुए. दिल्लीसे विहार करके बिनौली, बडौत वगैरह होकर शहेर अंबालामें पधारे. यहां "गोविंद" और "गणेशी," नामा दो ढुंढक साधु, दूसरे साधुओंसे लढके, संवेगमत अंगीकार करनेके वास्ते,श्रीमहाराजजी साहिबके पास आकर, प्रार्थना करने लगे. तब श्री महाराजजी साहिबने कहा कि, "हाल तुम कमसे कम छ महिने तक हमारे साथ इसही (ढुंढक) वेषमें रहो, और संवेगमतकी क्रियाका अभ्यास करो; पीछे तुमको रुचे तो अंगीकार करना, अन्यथा तुमारी मरजी." यह सुनकर कितनेक श्रावकोंकी, और साधुओंकी अरजसें श्रीमहाराजजीकी मरजी नहीं भी थी तो भी, संवेगमतकी दीक्षा देनी पडी. परंतु अंतमें दोनोंही, भ्रष्ट होगये. इस वखत सब श्रावक, और साधुओंको, श्री महाराजजी साहिबका कहना याद आया. सत्य है.—"वृद्धोंका कहना,और आमलेका खाना, पीछेसें फायदा देता है." अंबालासें विहार करके शहेर लुधीयानामें पधारे, वहां कितनेही आर्यसमाजी वगैरह मतोंवाले लोक, निरंतर आते रहे; अच्छी तरह वार्त्तालाप होतारहा, निरुत्तर होकर जाते रहे. जिसमेंसे एक ब्राह्मणका लडका " कृश्नचंद्र " नामा जो आर्य समाजकी सभामें भाषण दिया करताथा, महाराजजी साहिबके न्याय सहित उत्तर सुनकर, बहुत खुश हुआ, और यथार्थ धर्मका निर्णय करके गुरुमंत्र धारण करके, श्री महाराजजी साहिबका उपाशक होगया. एक महीने बाद विहार करके " मालेर कोटले" पधारे, और संवत् १९४७ का चौमासा, वहां किया. चौमासेमें " श्री आवश्यक सूत्र, " और " धर्मरत्न" सटीक वांचते रहे. " गौंदामल्ल क्षत्रीय, जीवाभक्त, " वगैरह कितनेही भव्यजीवोंको सत्य धर्ममें लगाये. चौमासे बाद विहार करके " रायका कोट, जीगरांवा, जीरा " होकर " पट्टी " पधारे. इस वखत पट्टीका स्वरूप बदल गया, अर्थात् प्रथम, आठ दशही घर श्रावकके थे, परंतु श्रीमहाराजजी साहिबके पधारनेसें, यथार्थ निर्णय करके अनुमान अस्सी (८०) घर सनातन धर्मके तरफ ख्याल करनेवाले होगये. श्रावकोंने चौमासा करनेकी विनती करी. परंतु चौमासा दूर होनेसे जवाब दिया गया कि, "चौमासेके वखत यदि क्षेत्र फरसना होवेगी तो यहांही करेंगे.भाव तो है,परंतु अबतक निश्चयसें नही कह सकतेहैं, क्योंकि, न जाने कल क्या होवेगा?" बाद पट्टीसें विहार करके कसूर होकर शहेर अमृतसर पधारे. यहांके श्रावकोंने नवीन श्रीजिन मंदिर, बनाया था, जिसमें "श्रीअरनाथ स्वामी" की प्रतिष्ठा संवत् १९४८ का वैशाख सुदि छठ बृहस्पति वारके दिन करी. इस प्रतिष्ठाकी क्रिया करानेके वास्ते, शहेर वडोदेसें झवेरी गोकलभाई दुल्लभदास और शेठ नहानाभाई हरजीवनदास गांधीको बुलाये थे. निर्विघ्नपणे प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होने बाद, श्रीमहाराजजी साहिब, विहार करके झंडीयाले पधारे. यहां सुरतके चौमासेमें श्री महाराजजी साहिबने जो " जैनमतवृक्ष " बनायाथा, और भीमसिंह माणेकने छपवाया था, सो बहुत अशुद्ध छपनेसे, पुनः परिश्रम करके शुद्ध तैयार करके, वांचनेवालोंको सुगमता होनेके वास्ते, पुस्तकके आकारमें तैयार किया, जो इस वखत छपगयाहै. यहां पट्टीके श्रावकोंकी विनतीसे झंडियालेसें विहार करके, पट्टी पधारे. और संवत् १९४८ का चौमासा पट्टीमें किया. चौमासे पहिले कितनेक साधुओंकी प्रार्थनासे " चतुर्थ स्तुतिनिर्णय " भाग दूसरा बनाया और चौमासामें "नवपदपूजा" बनाई. श्रीउत्तराध्ययनसूत्रवृत्ति कवलसंयमी, और श्री रत्नशेषर सूरि विरचित श्राद्ध प्रतिक्रमणवृत्ति अर्थदीपिका, वांचते रहे, सुनकर लोक बहुत दृढतर होगये. सत्य है— " गुरुविना ज्ञान नहीं. "

यतः ॥ विनागुरुभ्यो गुण नीरधिभ्यो, जानाति धर्मं न विचक्षणोपि ॥
आकर्ण्ण दीर्घोज्वल लोचनोपि, दीपं विना पश्यति नांधकारे ॥ १ ॥

भावार्थः—गुण समुद्र गुरुओंके विना, विचक्षण पुरुष भी, यथार्थ धर्मको नहीं जानता है, जैसे कानपर्यंत लंबे निर्मल नेत्रवाला भी पुरुष, अंधकारमें बिना दीपकके, नहीं देखता है.

चौमासे बाद, यहां संवत् १९४८ मगसर वदि पंचमीके दिन, गुजरात देशमें शहेर अहमदाबाद-के पास वलाद नामा गामके रहेनेवाले डाह्याभाईको दीक्षा दीनी; और "श्री विवेक विजयजी" नाम स्थापन करके, उसही दिन जीरेके श्रावकोंकी नूतन जिन मंदिरकी प्रतिष्ठा करानेकी विनती मंजूर करके, पट्टीसे विहार किया, और जीरा गाममें पधारे. ‡

बडौदेसे पूर्वोक्त श्रावक आये, तथा भरुच निवासी शेठ "अनूपचंद मलूकचंद" सपरिवार, नूतन स्फाटिक रत्नके जिनबिंबकी अंजनशिलाका (मंत्रपूर्वक संस्कार) करानेके वास्ते, आये. और भी देश देशावरोंके बहुत लोक आये. संवत् १९४८ मार्गशीर्ष सुदि एकादशी (मौन एकादशी पर्व) के दिन, विधि पूर्वक नूतन बिंबको अंजन करके, "श्री चिंतामणि पार्श्वनाथजी"-को नवीन जिन मंदिरमें गद्दी ऊपर पधराये. निर्विघ्नतासे महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, जीरासे विहार करके नीकोदर, जालंधर, होकर शहेर हुशीआरपुरमें पधारे. क्योंकि, यहांके रहनेवाले परम उपकारी शेठ लाला गुज्जरमल्लजीने नवीन जिन मंदिर, बनायाथा. तिसकी प्रतिष्ठा करानेका मुहूर्त, साधना था. यहां भी पूर्वोक्त बडौदेवाले गृहस्थही आये थे. संवत् १९४८ माघ सुदि पंचमी (वसंत पंचमी) के दिन, निर्विघ्नतापूर्वक "श्री वासुपूज्य स्वामी"-को गद्दी ऊपर स्थापन करे बाद, आसपासके गामोंमें कितनाक समय व्यतीत करके

---

‡ जीराके श्रावकोंका आनंद यह स्तुतिसें जाहिर होताहै.

(पंजाबी-हिंदी भाषामें)

चलो जी महाराज आए प्यारे, मात रूपदेवी जाए ॥ अंचली ॥
भाग्य उनोंदे तेज भए जब, सूरि पदवी पाइ ॥
नगर पट्टीमें किया चौमासा, लोक सबी तर जाइ ॥ च० ॥ १ ॥
मुनी इग्यारह (११) संग उनोंदे, एकसें एक सवाए ॥
महेरबान जब होए सबीजी, जीरे नगर उठ धाए ॥ च० ॥ २ ॥
सुनी बात जब सब सेवकने, मनमें खुशी मनाई ॥
लगे शहेरमें बाजे बजन, ध्वजा निशान सजाए ॥ च० ॥ ३ ॥
धूमधामसे जलै लैनको, महिमा कही न जाए ॥
एक दूसरा चले अगाडी, आगेही कदम उठाए ॥ च० ॥ ४ ॥
तीन कोशपर मिले सबी जा, चरणी सीस नमाए ॥
सीस उठाके दर्शन पाए, धन्य रूपदेवी जाए ॥ च० ॥ ५ ॥
सबी संघ होकर आनंदी, तरफ शेहरदी आए ॥
नगर विच परवेशही कीना, आन बैठक उतराए ॥ च० ॥ ६ ॥
चौंकी ऊपर आनही बैठे, मंगलिक आख सुनाए ॥
भरी सभामें दीनानाथ और, खुशीराम गुण गाए ॥ च० ॥ ७ ॥

संवत् १९४९ का चौमासा, शहेर "हुशीआरपुर" में जा किया. चौमासामें श्री मानविजयोपाध्याय विरचित "धर्म संग्रह," तथा श्री संघतिलकसूरि विरचित "तत्त्व कौमुदी" नामा सम्यक्त्व सप्ततिका वृत्ति, वांचते रहे. चौमासे बाद जंबू शहेरके नजदीकमें रहनेवाले ब्राह्मणके पुत्र "कर्मचंद" और बडौदेके रहनेवाले श्रावक "लल्लुभाई" को दीक्षा दीनी. जिनके नाम, अनुक्रमसे "कपूरविजयजी" और "लाभविजयजी" रखे. बाद हुशीआरपुरसे विहार करके श्रीमद्विजयानंदसूरि (आत्मारामजी) महाराज, जालंधर होकर "वेरोवाल" पधारे. यहां श्री महाराजजी साहिबको मुंबाईकी "धी जैन एसोसीएशन ओफ इन्डिया" की मारफत, चीकागो (अमेरिका) का पत्र मिला. तिसमें चीकागोमें होनेवाले विश्व प्रदर्शनके वखत देश परदेशके धर्मगुरुओंका जो वडा मेला (समाज—The World's Parliament of Religeons.) होनेवाला था. तिसमें पधारनेका आमंत्रण करनेमें आयाथा, और सवसीडियरी कमीटिके मेम्बर मुकरर किए गएथे. परंतु अपनी साधुवृत्तिको खलल होवे इसवास्ते वहां नहीं जा सकनेसें, श्री महाराजजी साहिबने, चीकागोके पत्रकी नकल और चीकागोवालेकी मांगणी मुजब अपना संक्षेपसे जीवन वृत्तान्त, तथा फोटो (छवि) वगैरह, मुंबई श्रीसंघको भेजवा दिये. जिससें मुंबईके श्रीसंघने एक सभा करके "मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए." (फोटो देखो) को जैन धर्मका प्रतिनिधि करके, चीकागो भेजनेका ठराव किया. इस वखत महाराज श्रीका मुकाम, वेरोवालसे झंडीआले होकर शहेर "अमृतसर" में हुआ था. वहां मि० वीरचंद राघवजीने आकर, श्रीमहाराजजी साहिबको प्रार्थना करी कि, "मुजको चीकागो जानेके वास्ते श्रीसंघने फरमाया है, इसवास्ते मैं श्रीसंघकी आज्ञाको मस्तकोपरि धारण करके, आपकी सहायतासे चीकागो जानेको तैयार हुआहूं, आप कृपा करके मुजको मदद् तरीके थोडासा जैनधर्मसंबंधी व्यान, लिखदेवें." इस प्रार्थनाको स्वीकार करके, श्रीमहाराजजी साहिबने, एक महिने तक परिश्रम उठाकर, एक लिखाण (निबंध) तैयार करदिया. §

अमृतसरसें विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, झंडीआलामें पधारे; और संवत् १९५०

§ यह निबंध चीकागो प्रश्नोत्तर के नामसे ग्रंथके आकारमें छप रहाहै. धर्मसमाजकी १७ दीनकी काररवाई और भाषणका जो हाल पुस्तकद्वारा चीकागोमें छपाहै, जिसमें महाराजजी श्रीकी तसवीर रखी गई है और उसके नीचे इस माफक लेख है.

"No man has so peculiarly identified himself with the interests of the Jain Community as "Muni Atmaramji." He is one of the noble band sworn from the day of initiatiou to the end of life to work day and night for the high mission they have undertaken. He is the high priest of the Jain Community and is recognized as the highest living "Authority" on Jain religion and literature by oriental scholars."

भावार्थः—जैसी विशेषतासे मुनी आत्मारामजीने अपने आपको जैनधर्ममें संयुक्त वा लीन किया है ऐसे किसी माहात्माने नहीं किया है. संयम ग्रहण करनेके दिनसे जीवन पर्यंत जिन प्रशस्त महाशयोंने स्वीकृत श्रेष्ठ धर्ममें अहोरात्र रत वा सहोद्योग रहनेका निश्चय वा नियम किया है उनमेंसें यह मुनिराज है. जैनधर्मके आप परमाचार्य हैं, तथा प्राच्य वा पौरस्त्य विद्वान जैनमत और जैनशास्त्रोंके संबंधमें विद्यमान जनोंमें सबसे उत्तम प्रमाण इस महर्षिको मानते हैं.

का चौमासा, वहां किया. चौमासेमें " सूयगडांग सूत्र वृत्ति," और " वासुपूज्य स्वामी चरित " वांचते रहे. इस चौमासेमें श्रावकोंके आग्रहसें " स्नात्रपूजा " बनाई. चौमासे बाद भी यहां जानुओंके (घूंटणोंके) दरदसे, कितनाक समय रहना पडा. तिस समयमें नूतन दीक्षित साधुओंको बृहद् योगोद्वहन कराया, और पट्टीमें जाके छेदोपस्थापनीय चारित्रका संस्कार दिया. बाद पट्टीसें विहार करके जीरामें पधारे. और संवत् १९५१ का चौमासा, वहां किया. इसी चौमासेमें, " तत्त्वनिर्णय प्रासाद " नामा ग्रंथ पूर्ण किया, जो ग्रंथ, इस समय अस्मदादिकोंके दृष्टिगोचर हो रहाहै; और जिस ग्रंथको हाथमें लेकर, ग्रंथकर्त्ताके जीवन चरितामृतका पान कर रहे हैं.

इस ग्रंथकी समाप्ति अनंतर श्रीमहाराजजी साहिबने, " महाभारत " का आद्योपांत स्वाध्याय करा. "ऋग्वेदादि चारों वेदों" का, तथा "ब्राह्मण भाग" जितने छपेहुए मिले तिन सर्वका स्वाध्याय तो, श्रीमहाराजजीने प्रथमसेंही कराथा. स्वमत (जैनमत) विना अन्य मत मतांतरोंका भी, श्रीमहाराजजी साहिबको पूर्ण ज्ञान था. जो इनके बनाये " जैनतत्त्वादर्श, " " अज्ञान तिमिर भास्कर, " और " तत्त्वनिर्णय प्रासाद " वगैरह ग्रंथोंके देखनेसें, साफ साफ मालूम होताहै. महाभारतका स्वाध्याय किये बाद, पुराणोंका स्वाध्याय भी अनुक्रमसें करा.

जीरेके चौमासेसें पहिले जीरेमें ऐसा अद्भुत बनाव बना कि, जिससें पंजाब देशके श्रावकोंको अतीव आनंदामृतका स्नान हुआ. क्योंकि, इस पंजाब देशमें आजतक कोई भी यथार्थ सनातन जैनधर्मकी वृत्तिवाली " साध्वी " न थी. सो देश मारवाड शहेर " बीकानेर " से, साध्वी श्री " चंदनश्रीजी, " और " छगनश्रीजी, " विहार करके रस्तेमें अनेक प्रकारके कष्ट सहन करके जीरामें पधारीं. और श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजीके दर्शनामृतके स्नानसे, मार्गका सर्व परिश्रम भूलायके, पंजाबके श्राविका संघको अतीव सहायक हुई. इनके साथ एक बाई बीकानेरसे दीक्षा लेनेकेवास्ते आई हुई थी, तिसको दीक्षा दीनी, और " उद्योतश्रीजी " नाम रखा. चौमासेबाद जीरासे विहार करके श्रीमहाराजजी साहिब, पट्टीमें पधारे. और संवत् १९५१ माघ सुदि त्रयोदशीके दिन, गुजरात देशसे आये हुये स्फाटिक जिनबिंब, और पंजाब देशके श्रावकोंके कितनेक नूतन जिनबिंब मिलाके (५०) जिनबिंबकी, अंजनशिलाका करी. तथा नवीन जिन मंदिरमें " श्री मनमोहन पार्श्वनाथजी " को स्थापन किये. इस पूर्वोक्त क्रिया कराने वास्ते भी, केई श्रावक आये थे. प्रतिष्ठा महोत्सव पूर्ण होनेके बाद, विहार करके लाहोर तरफ पधारनेका इरादा, श्रीमहाराजजी साहिबका था. परंतु शहेर अंबालाके श्रावक नानकचंद, वसंतामल्ल, उद्दममल्ल, कपूरचंद, भानामल्ल, गंगाराम, वगैरह प्रतिष्ठा महोत्सवपर आये थे. उनोंने विनती करी कि, " महाराजजी साहिब ! हमारे शहेरमें आपकी कृपासे जिन मंदिर तैयार होगया है. सो कृपानाथ ! कृपा करके आप शहेर अंबालामें पधारो. और प्रतिष्ठा करके हमारे मनोरथ पूर्ण करो. हमारी यही अभिलाषा है कि, हमारे जीते जीते प्रतिष्ठा हो जावे, कालका कोई भरोसा नहीं, खबर नहीं कलको क्या होवेगा ? इस वास्ते हम अनाथोंकी प्रार्थना जरुर अंगीकार करके, हमको सनाथ करने चाहिये. " यह सुनकर श्रीमहाराजजी साहिबने पूर्वोक्त विचार बदलके, शहेर अंबालाके तरफ विहार कर दिया. और अनुक्रमे शहेर अंबालामें पधारे. यहां जुनागढके " डाक्टर त्रिभोवनदास-मोतीचंद शाह, एल. एम. "ने आके, श्रीमहाराजजीकी दूसरी आंखका मोतीया निकाला था. इस हेतुसे संवत् १९५२ के चौमासेमें श्री महाराजजी साहिब व्याख्यान नहीं करते थे. पर्युषण पर्वके

लगभग, मि० वीरचंद गांधी चीकागोसे आके, यहां श्रीमहाराजजी साहिबको मिले, और अपनी कारखाई, सुनाई. सुनके श्रीमहाराजजी साहिबको इतना हर्ष प्रकर्ष हुआ,जो लिखनेसें बाहिरहै.

चौमासे बाद भी कितनाक समय शहेर अंबालामेंही रहे. क्योंकि, संवत् १९५२ का मगसर सुदि पूर्णिमाको, "श्रीसुपार्श्वनाथ" सप्तम तीर्थंकरकी जिन प्रतिमाको नूतन जिन मंदिरमें स्थापन करनेका मुहूर्त्त था. तिस मुहूर्त्तपर वहांके श्रावकोंने अपूर्वही रचना करीथी. जो समग्र उमरमें भी देखनेमें नहीं आई थी. एक साक्षात् देवलोकका नमुना बना दियाथा. दूर दूरसे यावत् देश गुजरात–मेहसाणासे चांदीका रथ वगैरह असवाब, मंगवायाथा. निर्विघ्नपणेसें विधिपूर्वक पूर्वोक्त मुहूर्त्त साधके, श्री सूरिमहाराज, लुधीयाना शहेरमें आये. इनके शुभागमनसें आनंदित होकर श्रावक समुदायने, किसी सांसारिक कार्यके सबबसे अपनी ज्ञाति (बिरादरी) में कितनेही वर्षोंसे जो झगडा पडाथा, सो सलाह संप करके दूर कर दिया. और " श्री कलिकुंडपार्श्वनाथ " (जिसके साथकी दो मूर्त्ति, देश गुजरातमें भावनगरके पास वरतेज गाममें, श्रीसंभवनाथके जिन मन्दिरमें, देखनेमें आती है.) का जिन मन्दिर बनवाना प्रारंभ किया. इस जिन मन्दिरके प्रारंभमें अग्रता, रामदत्तामल्ल क्षत्रीय, जिसको श्रीमहाराजजी साहिबने जैनधर्मानुरागी बनायाहै, तिसकी है. क्योंकि, इसने अपनी दो दुकानें, श्री जिन मन्दिर बनानेके वास्ते प्रथम दीं. तदनन्तर लाला गोपीमल्लके पुत्र,खुशीराम वगैरहने अपनी दो दुकानें दीं.बाद सकल श्रीसंघने मदद देकर, श्रीजिनमन्दिर बनाना सुरू करदिया. यहां बहुत अन्यमति लोक भी, व्याख्यानमें आतेथे.क्योंकि, इस पंजाब देशमें प्रायःइतना पक्षपात नहींहै. किंतु मत मतांतरोंका जोर होनेसे, हर एक मतवालेके पास, हरएक मतवाला प्रायः चरचा वार्त्ता करनेके वास्ते आता जाता है.इस समय जितनी मतमतान्तरोंकी प्रचोलना, देश पंजाबमें है, अन्य स्थानोंमें नहीं होगी. श्री महाराजजी साहिबकी शांत मूर्त्तिको देख,और हरएक बातका पूरा पूरा दिलको शांति करनेवाला जवाब सुनके, और अपूर्व ज्ञानामृतका स्वाद चखके, शहेर लुधीआनेके लोक बहुत मोहित होगये, और चौमासेकी प्रार्थना करने लगे. श्री माहराजजी साहिबके मनमें भी, प्रार्थना मंजूर करनेकी सलाह होगई. परंतु इस अवसरमें, जिल्ला स्यालकोट गाम सनखतरेके रहनेवाले श्रावक, गोपीनाथ, अनन्तराम, प्रेमचंद, ताराचंद खण्डेरवाल भावडेकी विनती आई कि, " महाराजजी साहिब ! आपने शहेर अंबालामें, भाई अनन्तरामको फरमायाथा कि,'यदि मन्दिरका काम तैयार होगया होवे, और प्रतिष्ठा करानेका इरादा होवे तो, संवत् १९५२ का वैशाख सुदि पूर्णिमाका मुहूर्त्त आताहै.' तब अनन्तरामने कहाथा कि, 'मैं घर जाकर सब भाइयोंसे सलाह करके आपको जवाब लिखवा देऊंगा. और मैं तो परम राजीहूं कि, धर्मका कार्य जलदी हो जाना अच्छा है, सो महाराजजी साहिब ! हम अनन्तरामका कहा सुनकर, परमानन्दको प्राप्त हुवे हैं. हमारे भाग्यमें ऐसा दिन आ जावे तो,और क्या चाहिये ? हमको आप साहिबका हुकम मंजूर है, आपका फरमाया मुहूर्त्त हमको मान्यहै, परन्तु आप जानते हैं कि हमलोक अनजान हैं. क्या करना, और क्या नहीं हम कुच्छ जानते नहीं है. इतना तो, हमको यकिन हैही कि, आप प्रतापी महाराजके प्रभावसे, हमरा सर्व कार्य सानन्द समाप्त हो जायगा. तथापि हम, पामर सेवक, आपके चरणोंमें सीस रखके, प्रार्थना

करते हैं कि,आप दया करके प्रतिष्ठाके दिनोंसे महिना दो महिने पहिलेहीं, यहां (सनखतरामें) पधारोगे, जिससे हमको शांति हो जावेगी. "

इस विनतीको हृदयमें धारण करके श्री महाराजजी साहिब लुधीआनेसे विहार करके फगवाडा, जालंधर,झंडीआला,अमृतसर,होकर नारोवालमें पधारे.यहां अनुमान पंदरा दिन रहकर प्रतिष्ठाके सबबसें श्री सूरिमहाराज,"सनखतरे"पधारे; जहां अलौकिक जैन मंदिर, देखके अत्यानंद हुआ. मंदिरके सोपान(पउडी)चढते हुये,श्री महाराजजी साहिब अपने शिष्य "वल्लभ विजय"से कहने लगे कि,"अरे वल्लभ! क्या शत्रुंजय ऊपर चढते हैं?" इस वखत शत्रुंजयके याद आनेका हेतु यही है कि, वो मंदिर शत्रुंजय तीर्थ ऊपर मूल नायक श्री ऋषभदेव भगवान्की टुंकका जैसा नकशा है, वैसीहीं ढब पर बना हुआहै. अहा! वृद्धोंकें, और फिर महात्माओंके, जिसमें भी ऐसे गुण-समुद्र महात्मा कि, जिसके गुणोंका वर्णन करना मुश्किल है, ऐसे महात्माके मुखारविंदसे पूर्वोक्त वचन वासना अनायासही, ऐसीं निकली के, जिसने सनखतरेके मंदिरको वासित करदिया. अर्थात् उस समय वो मंदिर, साक्षात् शत्रुंजयकाही अनुभव देने लगा. क्योंकि, श्री महाराजजी साहिबके पधारनेसे, सनखतराके श्रावक समुदायने, देश परदेश प्रतिष्ठा महोत्सव संबंधी आमंत्रण पत्र भेजे. जिसको वांचके कपडवंजका श्रावक शाह शंकरलाल वीरचंद और अहमदावादका श्रावक ठकोरदास,नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका करानेके वास्ते लेके सनखतरे पहुंचे, इनको उतारा दे रहे थे, इतनेमेंही, मुंबईसें " शेठ तलकचंद माणेकचंद जे. पी. " के भेजे मणिलाल, और छगनलाल नवीन जिनबिंबको अंजनशिलाका कराने वास्ते लेकर आये. जिनके साथ शत्रुंजय तीर्थ ऊपरसे शेठ मोतीशाहके कारखानेसे नवीन जिनबिंबको अंजन-शिलाका वास्ते लेकर, माली, मंदिरका पूजारी, आयाथा. तथा बडौदेवाले, " गोकलभाई दुल्ल-भदास " और छाणीवाले " नगीनदास गरबडदास," प्रतिष्ठाकी क्रिया कराने वास्ते आये थे; वे भी, "वडोदा," "अहमदावाद," " मेहसाणा, " "छाणी," "वरतेज," "जयपुर" "दील्ली," वगैरह शहैरोंके श्रावकोंके बनवाए रत्नमय, और पाषाणमय, जिनबिंब, ले आये थे. एवं पौने-दोसौं (१७५) जिनबिंब अंजनशिलाकाके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें तीन वेदिका ऊपर स्थापन किये गये. जिसमें मूलनायकजी, श्री ऋषभदेवजी,स्थापन किये गये थे. इस वखत शत्रुं-जय तीर्थके सिद्धघराका अनुभव, देखनेवालेको होरहा था. श्रीसूरि महाराजजीकी निगा नीचे, श्रीवर्द्धमान सूरि विरचित आचार दिनकर ग्रंथके अनुसार पूर्वोक्त श्रावक सकल क्रिया कराते रहे. लग्नका समय प्राप्त हुए, श्रीसूरि महाराजने, " श्री धर्मनाथ स्वामी" को, नूतन मंदिरमें गद्दी ऊपर स्थापन करके, मूलनायक श्री "ऋषभदेवजी" वगैरह नूतन जिनबिंबको, विधि पूर्वक अंजन किया. इन अंजन किये नवीन जिनबिंबमेंसें कितनेक तो, श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर, कपडवंजवाली शेठाणी माणेकबाईका बनवाए नवीन जिन मंदिरमें स्थापन किये गये. मी० तलकचंद माणेकचं-दने, सुरतमें जिन मंदिर बनायके स्थापन किये. एवं अपने अपने शहेरमें, जिनबिंब बनवानेवालों-ने, श्री जिन मंदिरमें स्थापन किये. मोतीशाह शेठवाले जिनबिंब, शत्रुंजय तीर्थ ऊपर, मोतीशाह-की टुंकमें स्थापन किये गये. एक मूर्ति लाजवर्द रत्नकी, श्री नेमनाथ स्वामीकी, अंजनशिला-का, और प्रतिष्ठा महोत्सवके याद करनेके वास्ते, सनखतरेके मंदिरमें स्थापन की गई.

ऐसे वैशाख सुदि पूर्णिमा, सोमवार, स्वाति नक्षत्र, रवियोग, तथा सिद्धयोगादि, शुभ दिनमें

अंजनशिलाका और श्रीधर्मनाथ स्वामीकी प्रतिष्ठा करके बडे आनंदको प्राप्त हुए. और जेठ वदि छठको, सनखतरासे गुजरांवालेके श्रावकोंकी विनती मान्य करके, विहार करके, "किलाशोभा सींघका" होकर, शहेर "पशरूर" में पधारे. वहां, प्रथम पांच सात दिन रहनेका इरादा था; परंतु सनातन जैनधर्मानुरागीके अभावसे, उष्ण जलके न मिलनेसें जिस दिन गये, उसही दिन अनुमान चार बजे विहार करदिया. इस वखत नगरके क्षत्रीय ब्राह्मण वगैरह लोकोंने, वहांके रहीस ढुंढकमतानुसारी भावडोंका, बहुत तिरस्कार किया. जिससें कई भावडे लाचार होकर, और कितनेक अंतरंग श्रद्धावाले, अपने बापदादाके डरसें प्रकटपणे कारवाई नहीं करनेवाले, आकर बहुत विनती करके कहने लगे कि, "महाराजजी साहिब ! हमारा गुन्हा माफ कीजिये; आगेको ऐसा काम नहीं होगा." परंतु कालके जोरसे, उस वखत, इन महात्माके मनमें, बिलकुल करुणा नहीं आई. हाय ! काल कैसा निष्करुण है कि, जो अपने आनेके समयमें, करुणासागरको भी निष्करुण, करदेताहै !

पशरुरसें विहार करके छछरांवाली, सतराह, सेरांवाली, होकर वडाला गाममें पधारे. तहां रात्रिके पिछले प्रहरमें, दम (श्वास) चढना सुरू होगया. इस श्वास रोगने इतना जोर एकदम करदियाके, कदम भरना भी, मुश्कल होगया. तथापि इस रोगको, श्रीमहाराजजी साहिबने, कुच्छ नहीं गिना; मनोबलसे चलते रहे. परंतु शरीरने, जवाब दे दिया. इसवास्ते वडालेसे गुजरांवालेका एक दिनका रस्ता भी, तीन दिनमें समाप्त किया, और जेठ सुदि दूजके रोज बडी धूमधामसें श्रावक लोकोंने नगरमें प्रवेश करायके श्रीमहाराजजी साहिबको उपाश्रयमें उतारे.

सोला (१६) वर्ष पीछे श्रीमहाराजजी साहिबका आगमन, इस शहेरमें होनेसें लोकोंको वडाही उत्साह प्राप्त हुआ था. कितनेही जिज्ञासु, चरचा वार्त्ता करते रहे. पूर्वोक्त रोगकी चिकित्सा करानेके वास्ते, अन्य साधुओंने कहा. परंतु कालकी प्रबलतासें, चिकित्सा करानेको मान्य नही किया. इतनाही नही, बलकि साधुओंसे कहने लगे कि, "ऐसे थोडे थोडे रोग पीछे क्या दवाई करानी ?" साधुओंने भी "विनाशकाले विपरीत बुद्धिः" इस कहावत मुजब, श्रीमहाराजजीका कहा, जो इस वखत मान्य नहीं करने योग्य था वो भी मान्य करलिया, जिसका फल थोडेही दिनोंमें,साधु और श्रावकोंको मिलगया. अर्थात् संवत् १९५२ जेठ सुदि सप्तमी मंगलवारकी रात्रिको, प्रतिक्रमण करके, अपना नित्य नियम संथारा पौरुशी वगैरह कृत्य करके सो गये. अनुमान रात्रिको बारा बजे नींद खुलगई, और दम उलट गया. दिशाकी हाजत होनेसे दिशा फिरके शुचि करके, आसन ऊपर बैठे हुए, "अर्हन्! अर्हन् ! अर्हन् !" ऐसे तीन वेरी मुखसे उच्चारण करके, "लो भाई, अब हम चलते हैं, और सबको खमाते हैं. ऐसा कहके, पुनः"अर्हन्" शब्द उच्चारण करते हुए, अंतर्ध्यान होगये.† इस वखत साधु श्रावकोंको जो दुःख पैदा हुआ, वाणीके अगोचर है. इस दुःखको सहन न करके, चंद्रमा भी,मानु अपनी चांदनीको संकोचके, अदृश्य होगया होवे ऐसे अस्त होगया ! और अज्ञान रूप भाव अंधारा, अब ज्ञान सूर्यके अस्त होनेसे प्रकट होगया, ऐसा मालुम करनेको, द्रव्य अंधारा, होगया. दुर्जनके हृदयवत् काली रात्रिको

---

† जिस वखत् महाराजका स्वर्गवास हुवाथा, उसवखत अष्टमी पहिलेसेंही लग चूकीथी, ईस लिये काल तिथि जेठ सुदि अष्टमी गीनीगई.

देखके, सब सेवकोंके मुखका तेज, उडगया. किसीका जोर नही चला. कई सेवक जन, स्नेह विव्हल होके,कहने लगे, "महाराज! आपने इतनी शीघ्रता क्यों करी" ? कोई कहता है, "रे! दुष्ट! काल! ऐसे उपकारी पुरुषका नाश करते हुऐ, तेरा नाश क्यों नहीं हुआ?" कोई कहता है, "महाराज साहिबने,अपना वचन सत्य करलिया. क्योंकि, जब कभी किसी जगेपर, गुजरांवालेके श्रावक विनती करते थे तो, उनको यही जवाब देते थे कि, 'भाई क्यों चिंता करते हो ? अंतमें हमने बाबाजीके क्षेत्र गुजरांवालेमें बैठना है'."

यथा—हे जी तुम सुनीयोजी आतम राम, सेवक सार लीजोजी ॥ अंचली ॥
आतमराम आनंदके दाता, तुम बिन कौन भवोदधि त्राता ॥
हुं अनाथ शरणि तुम आयो, अब मोहे हाथ दीजोजी ॥ हे० ॥ १ ॥
तुम बिन साधु सभा नवि सोहे, रयणाकर विन रयणी खोहे ॥
जैसे तरणि विना दिन दिपे, निश्चय धार लीजोजी ॥ हे० ॥ २ ॥
दिन दिन कहते ज्ञान पढाऊं, चूप रहे तुज लड्डु देऊं ॥
जैसे माय बालक पतयावे, तिम तुमे काहे कीजोजी ॥ हे० ॥ ३ ॥
दिन अनाथ हुं चेरो तेरो, ध्यान धरूं हुं निश दिन तेरो ॥
अबतो काज करो गुरु मेरो, मोहे दीदार दीजोजी ॥ हे० ॥ ४ ॥
करो सहाज भवोदधि तारो, सेवक जनको पार उतारो ॥
वारबार विनती यह मोरी, वल्लभ तार दीजोजी ॥ हे० ॥ ५ ॥

इत्यादि अनेक संकल्प विकल्प करते हुए, आधि रात्रि आधे जुग समान होगई. प्रातःकाल होनेसे, शहेरमें हाहाकार हो रहा. हिंदुसें लेके मुसलमान पर्यंत कोईकही निर्भाग्य शहेरमें रहगया होगा कि, जिसने उस अंत अवस्थाका दर्शन, नहीं पाया होगा! जो देखता रहा, मुखसें यही शब्द निकालता रहा कि, "इन महात्माने तो समाधि धारण करी है, इनको काल करगये, कौन कहता हे ?" यह वखतही ऐसा था; ऐसा तेज शरीर ऊपर छायाथा, देखनेवालेको एक दफा तो भ्रमही पडजाता था. स्कूलके मास्तर छुटी होनेके सबबसे पिछली मुलाकातसे मिलनेको, और वातचित करनेको आते थे, रस्तेमें सुनके हैरान होकर कहने लगे कि, "क्या किसी दुश्मनने यह बात उडाई है ? क्योंकि, कल शामके वखत, हम महात्माके दर्शन करके, और मतमतांतरों संबंधी वातचित करके, आज आनेका करार करगये थे. रात रातमें क्या पत्थर पडगया ?" आनके देखे तो सत्यही था. दर्शन करके कहने लगे, " महात्माजी आप हमसें दगा करगये ! हमतो आपसे, बहुत कुच्छ पूछके धर्म संबंधी निर्णय करना चाहते थे.आपने यह क्या काम किया ? क्या हमारेही मंद भाग्यने जोर दिया, जो आप हमको भूला गये ?" वगैरह जितने मुख, उतनीही बातें होती रही. परंतु सब,उजाडमें रुदन करने तुल्य था. क्योंकि, कितनाही विरलाप करें, कुच्छ भी बनता नहीं है. काल महा बली है. बडे२ तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वासुदेव, किसीको भी कालने छोडे नहीं है.

रातो रात देशावरोंमें तारद्वारा पूर्वोक्त वज्रघातके समाचार, पहुंच गये. परंतु यह अविचारित समाचार, सेवकजनोंको सत्य भान नहीं हुआ. यही मनमें आया कि, "किसी द्वेषीने हमारे हृदयको दुःखानेके वास्ते, यह खोटी वार्ता, फैलाई है. क्योंकि, प्रथम भी दो वखत द्वेषी लोकोंने ऐसी खोटी वार्ता फैलाइ थी." पुनः गुजरांवाले तार भेजके खबर मंगवाई कि "यह क्या बात है?" बदलेका जबाव पहुंचगया कि, "क्या बात पूछते हो? अंधकार हो गया. ज्ञान सूर्य अस्त हो गया." प्रातःकाल होतेही लाहोर, अमृतसर, जालंधर, झंडीयाला, हुशीआरपुर, लुधीआना, अंबाला, जीरा, कोटला, वगैरह शहेरोंके श्रावक समुदाय निस्तेज होकर, आने लग गये. निरानंद होकर, अश्रुजलकी वर्षासें बाह्यतापको शांत करते हुये, और अंतरंग तापको तेज करते हुये, चंदनकी चितामें स्थापन करके महात्माके शरीरका अग्नि संस्कार, बहुत धूमधामसे किया. उस वखतके चितारका स्वरूप यह गायनसे मालुम होगा.

सतगुरुजी मेरे दे गये आज दिदार स्वामीजी मेरे,
दे गये आज दिदार श्री श्री आतमराम सूरीश्वर,
विजया नंद सुखकार स्वामीजी ॥ अंचलि ॥
गुरु होए निर्वान, संघ हो गया हैरान,
टूट गया मन मान, ज्ञान ध्यान कैसे आवेगा;
अब उपजीया शोक अपार, स्वामीजी० ॥ १ ॥
ये गंभीर धुनि वानी, जिनराजकी वखानी,
गुरुराजकी सुनानी, ऐसे कौन सुनावेगा;
अब किसका मुझे आधार ॥ स्वामीजी० ॥ २ ॥
धन्य धन्य सूरिराज, होये जैनके जहाज,
बहु सुधारे धर्म काज, अब कौन डंका लावेगा;
श्री गुण ज्ञान अपार ॥ स्वामीजी० ॥ ३ ॥
मुनि सार्थवाह प्यारे, जीव लाखोंही सुधारे,
चंद दर्शनी दिदारे, नही सोही पछतावेगा;
अब होगइ हाहाकार ॥ स्वामीजी० ॥ ४ ॥
जैसे सूरज उजारे, मतमिथ्यात निवारे,
अंधकार मिटे सारे, कौन चांदना दिखावेगा;
दास खुशी कैसे धार ॥ स्वामीजी० ॥ ५ ॥

॥ गजल ॥ (चाल रासधारीयोंकी)

जहां व्रजराज कल पावे, चलों सखी आज बावनमें—यहदेशी—

बिना गुरुराजके देखे, मेरा दिल बेकरारी है ॥ अंचलि ॥

॥ बहिर्लापिका ॥

आनंद करते जगत जनको, वयण सत सत सुना करके—विना० ॥ १ ॥
तनु तस शांत होया है, पाया जिनें दर्श आ करके—विना० ॥ २ ॥
मानो सुर सूरि आये थे, भुवि नर देह धर करके—विना० ॥ ३ ॥
राजा अरु रंक सम गिनते, निजातम रूप सम करके—विना० ॥ ४ ॥
महा उपकार जग करते, तनु फनाह समझ करके—विना० ॥ ५ ॥
जीया वल्लभ चाहताहै, नमन कर पांव परकरके—विना० ॥ ६ ॥

इत्यादि गुणानुवाद करतेहुये सब लोक एकत्र होकर श्रीमहाराजजी साहिबकी सदा यादगारी कायम रखनेके वास्ते, द्रव्य संग्रह करके, स्तूप (समाधि) वनानेका निश्चय करके, निरानंद होकर अपने अपने स्थानोंपर चले गये.*

जिस वखत श्री महाराजजी साहिबका स्वर्गवासका समाचार नगरमें फैलगया, उसही वखत किसी प्रतिपक्षीने पूर्वला वैर लेनेका इरादा करके किसीको स्यालकोट भेजके, गुजरांवालेके "डीप्युटी कमिश्नर" को कल्पित नामसे तार दिलवाया कि, "साधु आत्मारामका मृत्यु जहेरसें हुवा मालूम होताहै. और इधर आप वे प्रतिपक्षी, श्री महाराजजी साहिबजीके सेवकोंसे आनके कहने लगे कि, "यद्यपि हमारा तुमारा अनुष्ठान मिलता नहीं है, तथापि श्रीआत्मारामजी जैनी साधु कहाते थे, तुम हम दोनोंही जैनी कहातेहैं; इनका मरना क्या वारंवार होना है ? तथा पिछली अवस्थाका हमारा भी कुच्छक हक है, इस वास्ते इनके इस निर्वाण महोत्सवमें हम भी, भाग लेवेंगे. तब श्रीमहाराजजी साहिबके सेवकोंने, उनकी वक्रता, और सरलता विना समझे, सरल स्वभावसें उनका कहना मंजूर कर लिया. परंतु यह नहीं विचारा कि, यद्यपि इस वखत यह हमारे सज्जन होकर आये हैं, तथापि वास्तविकमें तो यह दुर्ज्जनही है. इसवास्ते सर्प्पकी तरह इनका विश्वास करना, दुःखदायी है.

यतः—दोजीहो कुडिलगइ, परछिड्डगवेसणिक्कतल्लिच्छो।
कस्स न दुज्जणलोओ, होइ भुयंगुव्व भयहेऊ ॥ १ ॥
उवयारेण न घिप्पइ, न परिचएण न पिम्मभावेण।
कुणइ खलो अवयारं, खीराइपोसिय अहिव्व ॥ २ ॥

*गुजरांवालेमें गाम बहार बड़ा भारी स्तूप (छत्री) बन गइ है. जिसके दर्शनका सर्व जातिके बहुत लोकोंको नियम है.

भावार्थः—जैसे सर्पको दो ज़बान होती है, ऐसे दुजीभा अर्थात् चुगलखोर, सर्पकी तरह कुटिल वांकी गतिवाला, अर्थात् कहना कुच्छ, और करना कुच्छ; तथा जैसे सर्प परके छिद्र (खुड-बिल) ढुंढनेमें रक्त होताहै, तैसे यह दुर्जन परके छिद्र, अर्थात् अवगुण ढुंढनेमें रक्त होताहै, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों विशिष्ट दुर्जन पुरुष सर्पकी तरह, किसको भयका हेतु कारण नहीं है? अपितु सबकोही है.

तथा दुर्जन पुरुष उपकार करनेसे, परिचय करनेसे, स्नेहभावसे, किसी प्रकारसे भी वश नहीं होताहै. किंतु अवसर पाकर, अपकार करनेमें कसर नहीं रखताहै, दूधसे पोषे सर्पकी तरह. परंतु वे क्या करे? जब भाग्य वक्र होवे तो, कितनाही पुरुषार्थ करो, सब निष्फल होताहै.

यतः—कैवर्त्तकर्कसकरग्रहणच्युतोपि ।
जाले पुनर्निपतितः सफरो वराकः ॥
दैवात्ततो विगलितो गिलितो बकेन ।
वक्रे विधौ वद कथं पुरुषार्थसिद्धिः ॥ १ ॥

भावार्थः— किसी एक कैवर्त्त (धींवर) ने, कठोर हाथोंसें मच्छ पकडा, वो हाथसें निकलके जालमें पडगया, दैवयोगसें जालमेंसें भी निकलगया तो, तिसको बक (बगला) जानवरने निगल लिया. (खा लिया.) तो अब कहो दैवके वक्र हुवे क्या पुरुषार्थ सिद्धि होसक्ती है? कदापि नही.

जब श्रावकोंने उन प्रतिपक्षीयोंका कहना मंजूर करलिया तब वे बहुत खुश होकर धूर्त्तता करके दुर्ज्जनवत्, मित्रता प्रकट करते हुए,

यतः—प्रारंभगुर्व्वी क्षयिणी क्रमेण, तन्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात्
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्धभिन्ना, च्छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—दुर्ज्जनकी मैत्री, दिनके पूर्वार्द्ध भाग समान होती है, जैसें दिनके पूर्वार्द्ध भागमें छाया, प्रथम बहुत होती है, और पीछे क्रम करके घटती जातीहै; ऐसेही दुर्जनकी मैत्री, प्रथम तो अत्यंत गाढी होतीहै, और पीछे क्रमकरके घटती जाती है. और सज्जन पुरुषोंकी मैत्री, दिनके पिछले भाग समान होतीहै, अर्थात् जैसे दिनके पिछले भागकी छाया, प्रथम थोडी होतीहै और पीछेसे क्रमकरके बढती जाती है, ऐसेही सज्जन पुरुषोंकी मैत्री, थोडी होती है, और पीछेसे क्रमकरके बढती जाती है.

धूर्त्ततासे सर्वकार्यमें, वे लोक, अग्रगामी होते चले. जब श्रीमहाराजजी साहिबके शरीरके विमानको बहार, वास्ते अग्नि संस्कारके ले चलेथे. तब वे लोक, अपनी अंतरंग पापकी प्रेरणासे, रस्तेमें बहुत ठिकाने सज्जन बनके रोकते रहे;तथापि कुच्छ नहीं बना.क्या बिल्लीके भागको छिक्का टूटताहै? जिसका पुन्य तेज होवे, उसको दुर्जन कितनीही चालाकी करे, कुच्छ नहीं कर सक्ता है. दैवयोगसे उस दिन अंग्रेजोंका कोई तेहवारका दिन होनेसे, तार, रातको नव बजे आया. जब यहां अग्निसंस्कार हो चुकाथा. डिप्युटी कमिश्नरने, विचार नहीं किया कि यह साधु किस मतके है? इनका आचार विचार कैसा है? डेराधारी है, वा रमते फकीर है? कोठी

पैसा रखतेहैं, वा नहीं ? वगैरह विचार किये विनाही, पोलीस कमिश्नरको बंदोबस्त वास्ते हुक्म भेज दिया. श्रावकोंने बारीस्टर वगैरह भी बुलाया था. कमिश्नरने तलास करके अपना निश्चय करलिया. कुच्छ भी नहीं बना. श्री महाराजजी साहिबके सेवक जीत गये. और प्रतिपक्षीको लोकोंकी तरफसे गालियां तिरस्कारका सिरोपाव मिलतारहा!

देशदेशावरोंमें स्वर्गवासकी खबर पहुंचतेहीं बजार हाट बंधकरके हडताल पडी, हाहाकार होगया.हजारों रुपयोंका दान पुन्यहुआ.जगेजगे पूजा भणाई गई, वगैरह हजारों धर्म कार्य हुए.

इस तरांह श्रीमद्विजयानंदसूरि (श्रीआत्मारामजी) महाराजका जीवन चरित, संक्षेपसे वर्णन किया. इससे मालूम होगा कि, इन महात्माने विद्याकी प्राप्ति, धर्म शोधन और जैनधर्मके उद्धारके वास्ते, कितना बडा परिश्रम उठाया और अंतमें कैसा जय प्राप्त किया था. ऐसे महात्मा पुरुषोंको धन्य है !

इन महात्माके उपकारकी यादगीरीमें, प्रायः हरएक ठिकाने विद्याशाला स्थापन होरहींहैं; और उनके चरण, तथा तिनकी मूर्तिकी स्थापना होगई है और भी करनेकी हिलचाल होरहींहै.

पंजाब देशमें इनके अपूर्व जयकी यही निशानींहै कि, अमृतसर, जीरा, हुशीआरपुर, पट्टी, अंबाला, सनखतरा, कोटला, नीकोदर, लुधिआना,जालंधर, झंडीयाला,वेरोवाल, जेजो, रोपड, कसूर, नारोवाल, आदि क्षेत्रोंमें श्रीजिन मंदिर बनगये हैं. और अन्य ठिकाने बने जाते हैं.

॥ इति शुभम् ॥

वेदं बाणांके इंद्वब्दे नभोमासे सिते दले,
प्रतिपद्वासरे शुक्रे, चरितं श्रुतिसौख्यदम् ॥ १ ॥
नारोवालपुरे रम्ये, सुव्रतजिनमंडिते,
चतुर्मासीस्थितेनेदं, विजयानंदसूरीणाम् ॥ २ ॥
यद्दृष्टं यच्छ्रुतं यच्चा—नुभूतं किल तन्मया,
वल्लभविजयाख्येन, भाषायां ग्रथितं मुदा ॥ ३ ॥

इति तपगच्छाचार्य श्रीमद्विजयानंदसूरि शिष्य महोपाध्याय श्रीमल्लक्ष्मी विजय शिष्योपाध्याय श्रीमद्धर्ष विजय शिष्य मुनिवल्लभ विजय विरचितं श्रीमद्विजयानंदसूरि चरितं समाप्तं ॥

॥ शुभं लेखक पाठकयोरिति ॥

मुनि श्री आत्मारामजीका जन्मचरित्में पृष्ठ ३४ देखो.

मुनिराज श्रीआत्मारामजीका कुरसीनामा (वंशवृक्ष). खानदान कपूरक्षत्रियान्–गाम कलश–तहसील पिंडदादनखान–जिल्ला जेहलम–पंजाब. कपूर यह कोम पंजाबमें सब हिंदुओंमें प्रथम दरज्जेका है.

- रामचंद्र
  - महोकमचंद
    - जसूराम
      - रामचंद
    - राजाराम
    - मोतीराम
    - (रामचंद / मोतीराम)
      - रामनारायण
        - *गणेशदास
      - देवीदित्ता
      - हरिराम
      - * गुरुनारायण
      - (*गणेशदास / * गुरुनारायण)
        - *मेघराज
        - * हंसराज
        - * सुखराज
  - बिबाराम
    - रोचीराम
      - दिवानचंद
      - सूबामल्ल
      - कालुराम
        - देवीदित्ता
      - (सूबामल्ल / देवीदित्ता)
        - महेशदास
        - प्रभदयाल
        - मंगलसेन
          - * बूटामल्ल
          - * मथरादास
      - (दिवानचंद / महेशदास)
        - लखूमल्ल
        - गणेशचंद
          - श्रीआत्मारामजी
          - * गुरुदत्तसिंह

* ये सब जीते हैं.



मुनि श्री वल्लभ विजयजी. जन्म सं० १९२७.

जन्म,–वडोदा: ज्ञाति–श्रीमाली: पीता–दीपचंद; माता–इच्छाबाई.

दीक्षा, सं० १९४४ में राधणपुर.

श्रीमन्महोपाध्याय श्री लक्ष्मीविजयजीके शिष्य – श्री हर्षविजयजीके शिष्य

पंजाबमें इनके उपदेशसे पुस्तक भंडार. आत्मानंद जैन पत्रिका, आत्मानंद जैन पाठशाला, पाई फंड आदिकी स्थापना हुई

पंजाबदेश तीर्थस्तवनावली आदिके कर्त्ता.

इस ग्रंथके संशोधन कर्त्ता.

॥ ॐ ॥

॥ नमः श्री परमात्मने ॥

अथ तत्वनिर्णयप्रासादप्रारम्भः ॥

अथ श्रीमत्तपगच्छाचार्य श्री श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वर "आत्माराम" कृत श्री तत्वनिर्णयप्रासादनामग्रंथप्रारंभः ।

तत्रादौ मंगलाचरणम् ॥

प्राकारैस्त्रिभिरुत्तमा सुरगणैस्संसेविता सुन्दरा
सर्वाङ्गैर्मणिकिङ्किणीरणरणज्झाङ्काररावैर्वरा ॥
यस्यानन्यतमा सुभूमिरभवद् व्याख्यानकाले ध्रुवं
स श्रीदेवजिनेश्वरोभिमतदो भूयात्सदा प्राणिनाम् ॥ १ ॥

जीन प्रभुकी सभा (सुभूमि) निश्चय करके व्याख्यान समयमें (रजत, कंनक, रत्नके बने) तीन कोट करके उत्तम, देव समुदायसें संसेवित, सर्वांगोंसें मनोहर, मणिमय घुंघरूओंके रणरणत् झणकार करके श्रेष्ठ, ओर अनुपम होती हुई,—ऐसे श्री जिनेश्वर देव प्राणिओंको वांच्छित फलके देनेवाले हो ॥ १ ॥

(१. यह श्लोकमें समुच्चय राग द्वेषादि अंतरंग शत्रुओंको जितनेवाले श्री जिनेश्वर देवकी स्तुति है.)

नमितनम्रसुरासुरकिन्नरचरणपङ्कजबोधिदपारग ॥
प्रथमतीर्थकरप्रविशारद प्रभव भव्यजनाय सुसौख्यदः ॥२॥

नम्रीभूत देव, असुर, और किन्नर करके नमस्कार किये गये हैं चरणकमल जिनके, बोधवीज (समकित-रत्नत्रय) की प्राप्तिके करानेवा

वाले, संसारसमुद्रके पारंगामी, और अति कुशल (प्रविशारद=केवल ज्ञान, केवल दर्शन करके संयुक्त) ऐसे, हे, प्रथम तीर्थके करनेवाले (श्री आदीश्वर-ऋषभदेव भगवान्) भव्य जिवोंको भला सुख देनेवाले हो॥२॥

(२. यह श्लोकमें इस अवसर्पिणीके चौवीस तीर्थंकरोमें प्रथम तीर्थंकर श्री युगादि देवकी स्तुति है.)

ये पूजितास्सुरगिरौ विविधैः प्रकारैः
क्षीरोदसागरजलैरमरासुरेशैः ॥
जन्माभिषेकसमये वरभक्तियुक्ते-
स्ते श्रीजिनाधिपतयो भविकान् पुनन्तु ॥ ३ ॥

जन्माभिषेक समयमें, सुमेरु पर्वतपर उत्कृष्ट भक्तिवान चार जातिके (भुवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषि, वैमानिक) देवेंद्रोंने, क्षीर समुद्रके जलसें नाना प्रकारका पूजन किया, ऐसे श्री जिनाधिपति भव्य जीवोंको पवित्र करो ॥ ३ ॥

(३. यह श्लोकमें बावीस तीर्थंकरकी समुच्चय स्तुति है.)

गतौ रागद्वेषौ विविधगतिसंचारजनकौ
महामल्लौ दुष्टावतिशयबलौ यस्य बलिनः ॥
प्रभोर्देवार्यस्य प्रचुरतरकर्मारिविकलं
नमामो देवं तं विबुधजनपूजाभिकलितम् ॥ ४ ॥

[illegible]ीन बलवान, देव प्रधान (चौवीसमे तीर्थंकर श्री महावीर) प्रभुके, नाना प्रकारकी गतिओंमे (चार गति, चौरासी लक्ष जीवाजून) भ्रमण करानेवाले दुष्ट महामल्ल समान अतिशय बलवाले राग द्वेष नाशको प्राप्त हुए, उन बडे भारी कर्म शत्रु करके रहित, और देवसमूह करके पूजित, श्री जिनेश्वरदेवको (श्री महावीर-वर्द्धमान स्वामिको) हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥

(४. यह काव्यमें निकटोपकारी शासननायक श्री महावीर, चौवीसमे तीर्थंकरकी स्तुति व नमस्कार है.)

ये नो पण्डितमानिनः शमदमस्वाध्यायचिन्ताचिताः
रागादिग्रहवञ्चिता न मुनिभिः संसेविता नित्यशः ॥
नाकृष्टा विषयैर्मदैर्न मुदिता ध्याने सदा तत्परा-
स्ते श्रीमन्मुनिपुङ्गवा गणिवराः कुर्वन्तु नो मङ्गलम् ॥ ५ ॥

जे पांडित्यमद रहित, क्रोधादिको शांत करनेमें, इंद्रियोंका दमन करनेमें, स्वाध्याय ध्यान करनेमें लीन, रागादि ग्रह करके अवंचित, (नही ठगाये हुवे,) मुनियों करके नित्य संसेवित, विषयों करके अलिप्त, (पांच इंद्रियोंके तेवीस विषयोंसें पराङ्मुख) अष्टमद (जातिमद, कुलमद, वलमद, रुपमद, तपमद, ज्ञानमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद,) रहित, और ध्यानमें सदा तत्पर हैं, वे श्रीमान मुनियोंमें प्रधान गणधर और पूर्वाचार्य हमारें मंगल करो ॥ ५ ॥

(५. यह काव्यमें जिनके किये शास्त्रोंसें शास्त्रकारको बोध प्राप्त हुआ तिनका बहुमान किया है.)

कलमकलितपुस्तन्यस्तहस्ताग्रमुद्रा
दिशतु सकलसिद्धिं शारदा सारदा नः ॥
प्रतिवदनसरोजं या कवीनां नवीनां
वितरति मधुधारां माधुरीणां धुरीणाम् ॥ ६ ॥

जो कवियोंके मुखकमलमें नवीन (अपूर्वही) श्रेष्ट और मधुर धारा देती है, लेखनी संयुक्त पुस्तक धारण किया है हस्ताग्र में जिसने ऐसी मुद्रामूत्रिको धारण करनेवाली, और सारवस्तुको देनेवाली श्री सरस्वती देवी (श्री भगवतकी वाणीकी अधिष्ठायिका देवी) सकल सिद्धि देओ ॥ ६ ॥

(६. यह श्लोकमें श्रुत देवकी स्तुति करी है.)

श्रीवीरशासनाधिष्ठं यक्षं मातङ्गनामकम् ॥
सिद्धायिकां त्वहं देवीं स्तुवे विघ्नोपशान्तये ॥ ७ ॥

श्री महावीर स्वामीके शासनकी रक्षा करनेवाले मातंग यक्ष देवता और सिद्धायिका देवीकी, विघ्नोंकी शांतिके लिये, स्तुति करता हुं ॥ ७ ॥

अन्यानपि सुरान् स्मृत्वा जैनधर्मैकतत्परान्
तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थोऽस्माभिः प्रतन्यते ॥ ८ ॥

जैन धर्ममें तत्पर सम्यग् दृष्टि दुसरे देवोंका स्मरण करके, तत्वनिर्णय प्रासाद नामा ग्रंथको हम विस्तार करते हैं ॥ ८ ॥

(७. ८. यह दो श्लोकमें सम्यग् दृष्टि देवोंका स्मरण करके शास्त्रका प्र[redacted] सूचन किया है.)

अथ प्रथमस्तम्भप्रारम्भः

विदित होवे के संप्रति कालमें कितनेक लोक संसारिक विद्याका अभ्यास करके अपने आपकों सर्वसें अधिक अकलवंत मानने लग जाते हैं, और ऐसे घमंडमें बूट पहने फिरते हैं कि घोडोंकों भी मात करते हैं. और कितनेक तो नास्तिकही बन जाते हैं. कितनेक नवीन मिथ्यामतके पक्षी हो जाते हैं. परंतु पक्षपात छोडके सत्य धर्मका निश्चय करके स्वीकार करना दुर्लभ है. हम बहुत नम्रतासें सर्व मतवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रिय मित्रो! यद्यपि अपने अपने पितामह प्रपि[redacted]ादिकी परंपरायसें अपने अपने कुलमें जो जो धर्मव्यवहार चला [redacted] है, तिसकोंही सत्यधर्म मान रहे हैं, चाहे वो असत्यही होवे; और अन्य धर्मावलंबियोंकों मिथ्या मतवाले मान रहे हैं, चाहो वो सत्य मतही होवे; परं यह सुज्ञ जनोंका लक्षण नही है. क्योंकि, इस भरतखंडमें जैनमत, वेदमत और बौद्धमत ये तीन मत बहुत कालसें प्रचलित हैं. तिनमेसें वेदमतवाले कहते हैं, कि हमारा वेदमतही सबसें पुराना है; इसवास्ते सत्यधर्मका प्रतिपादक है. और जैनमतवाले अपने मतकों सर्व मतोंसें प्राचीन मानते हैं; ऐसेही बौद्धमतवाले मानते हैं. इन तीनो मतोंमेंसे वेदकी रचनाकों यूरोपियन पंडित पुरानी मानते हैं.

मोक्षमूलर भट्ट अपने रचे संस्कृत साहित्य ग्रंथमें यह भी लिखते हैं, कि वेदके छंदोमंत्र ऐसे हैं, जैसें अज्ञानीयोंके मुखसें अकस्मात् वचन निकले हों. और यह भी कहते हैं, कि जरथोस्ती धर्मपुस्तककी रचना वेदरचनासें पहिली वा वेदरचनाके समान कालकी है.

अब सोचना चाहिये कि, वेदमत और जरथोस्तीमतके पुस्तकोंसें पहिले कोई मत और कोई मतके पुस्तक भी अवश्य होने चाहिये. क्योंकि, मोक्षमूलरके लिखने मूजब वेदके छंदोभाग मंत्रभागकी रचनाको २९०० वा ३१०० वर्षके लगभग हूए हैं. फेर मोक्षमूलरजी कहते हैं, कि २२००० वर्ष पहिलें एशियाके अमुक अमुक हिस्सेमें अमुक अमुक जातिके लोक वस्ते थे तो क्या तिनके समयमें कोइ भी पुस्तक, कोइ भी धर्म, इस खंडमें नही था? यह कैसें माना जावे? इस हेतुसें यह कोइ भी नही कह सक्ता है, कि यही पुस्तक पहिला है, अन्य नही. इसवास्ते वेद सर्व पुस्तकोंसें पहिला पुस्तक सिद्ध नही होता है. हां, संप्रति कालमें जो वेदके पुस्तक हैं, वे जैनमतके संप्रति कालके पुस्तकोंसें प्राचीन रचनाके हैं. क्योंकि, वर्त्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक हैं वे सर्व श्री महावीर अर्हन्के समयसें लेके पीछेही रचे गए हैं. क्योंकि, श्री महावीर भगवान्के, (११) इग्यारह वडे शिष्योंने नव वाचनामें द्वादशांगकी रचना करी थी. अर्थात् नव तरेंके आचारांग, नव तरेंके सूत्रकृतांग, यावत् नव तरेंके दृष्टिवाद. तिनमेसें पांचवे गणधर श्री सुधर्मस्वामीकी वाचना विना, आठ वाचनाका व्यवच्छेद श्री महावीर और श्री गौतमगणधरके पीछेही हो गया था. संप्रति कालमें जे पुस्तक जैनमतमें प्रचलित हैं, वे सर्व श्री सुधर्मस्वामीकी वाचनाके हैं. इस वाचनाके पुस्तकोंको भी वहुत उपद्रव हो गुजरे हैं.

प्रथम तो नंद राजाके समयमें इस खंडमें वारां वर्षका प्रथम काल पडा, तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें एक भद्रवाहूस्वामीकों वर्जके सर्व साधुयोंके कंठाग्रसें द्वादशांगके पुस्तक सर्व विस्मृत हो गये थे. जब वारां वर्षका दुर्भिक्षकाल गया, तब पाटलीपुत्र नगरमें सर्व साधु एकठे हूए; जिस जिस साधुको जो जो पाठ कंठ रह गया था, सो सो सर्व सं-

धान करके एकादशांग तो पूरे करे, और बारमे अंगके पढनेवास्ते श्री संघने तीक्ष्ण बुद्धिवाले श्री स्थूलभद्रादि ५०० साधु नैपाल देशमें श्री भद्रबाहुस्वामीके पास भेजे. तिनमेंसें एक श्री स्थूलभद्रजीनेही दश पूर्व सूत्रार्थसें और चार पूर्व सूत्र मात्र पढे. श्री स्थूलभद्रजीके शिष्य श्री आर्यमहागिरि और श्री आर्यसुहस्तिने दश पूर्वोहि सूत्रार्थसें पढे. तहांसे लेके वज्रस्वामी तक दश पूर्वके कंठाग्र ज्ञानवाले आचार्य रहे; परंतु अर्थांश तो क्रमसें न्यून न्यूनतर होता चला गया. और वज्रस्वामी दश पूर्वधरने सर्व शास्त्रोंका उद्धार अर्थात् किसी जगे प्राचीन नाम निकालके नवीन नाम प्रक्षेप करे; अस्तोव्यस्त हुए आलापकोंको न्यूनाधिक करके स्थापन करे; इत्यादि उद्धार करा. तिनके पीछे दशमा पूर्व पूर्ण व्यवच्छेद हूआ, अर्थात् श्री आर्यरक्षितसूरि साढे नव पूर्व कंठाग्र ज्ञानवाले हूए, संपूर्ण दशमा पूर्व नही पढ सके.

पीछे स्कंदिलाचार्यके समयसें बारां वर्षीय पुनः काल पडा; तिसमें भिक्षाके न मिलनेसें क्षुधादोषसें साधुयोंकों अपूर्वार्थ ग्रहण १, अपूर्वार्थ स्मरण २, और श्रुतपरावर्त्तन ३, ये तीनो मूलसेंही जाते रहे. और जो अतिशायी अर्थात् चमत्कारी लोकोंमें चमत्कार दिखलानेवाले वहुत शास्त्र नष्ट हो गए. और, अंगोपांगादिमें जो ज्ञान था, सो भी पठन पाठन परावर्त्तनादिके न होनेसें भावसें नष्ट हो गया.

बारां वर्ष पीछे सुभिक्ष होनेसें मथुरा नगरीमें स्कंदिलाचार्य प्रमख श्रमण संघने एकत्र मिलके जो जिसके याद था, सो सर्व अनुपांगादि एकत्र करके, ऐसेंहि कालिक, उत्कालिक, श्रुत, और पूर्वगत किंचित् संधान करके रचे. मथुरा नगरीमें पुस्तक जोडे गए, इस वास्ते इसकों जैन मतमें 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

कितनेक आचार्य ऐसें कहते हैं, कि पीछले बारांवर्षीय दुर्भिक्षकालमें श्रुत नष्ट नही हूआ था, किंतु तिस समयमें तितनाहि ज्ञान रह गया था, शेष पहिलाही कंठसें भूल गया था. केवल अन्य जे युगप्रधान सूत्रार्थके धारक थे, वे सर्व दुर्भिक्षमें मृत्युधर्मकों प्राप्त हो गए थे,

एक श्री स्कंदिलाचार्यहि रह गये थे, तिनोंने मथुरा नगरीमें फेर अनुयोग प्रवर्त्तन करा, इस वास्ते 'माथुरी वाचना' कहते हैं.

जो सूत्रार्थ श्री स्कंदिलाचार्यने संधान करके कंठाग्र प्रचलित करा था, सोही श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने, एक कोटी (१०००००००) पुस्तकोंमें आरूढ करा. सो ज्ञानमतोंके झगडोंसें और मुसलमानोंके राज्यके जुलमोंसें लाखों ग्रंथ जलाए गए. और लाखों ग्रंथ जैनी लोकोंकी अज्ञानतासें उद्धारके विना कराए, पाटणादि नगरोंमें मुसकी तरे ताडपत्रके पुस्तकोंके चूरेसें कोठे कीतने भरे हैं.

इतिहासतिमिरनाशकके रचनेवालेका ऐसा कथन है, कि अब भी जो पुस्तक जैसलमेर, खंभात, पाटण, अहमदावादादि स्थानोंमें विद्यमान हैं, वे पुस्तक देखने वैदिक मतवालोंके नसीबमें भी नही हैं.

पूर्वपक्षः—जब जैनमतके चौदह पूर्वधारी, दश पूर्वधारी, विद्यमान थे, तबसेंही जेकर ग्रंथ लिखे जाते तो जैनमतका इतना ज्ञान काहेको नष्ट होता? क्या तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! पूर्वोक्त महात्माओंके समयमें किसीकी भी शक्ति नही थी, जो संपूर्ण ज्ञान लिख सक्ता. और ऐसे ऐसे चमत्कारी विद्याके पुस्तक थे, जे गुरु योग्य शिष्योंके विना कदापि किसीकों नही दे सक्ते थे; वे पुस्तक कैसें लिखे जाते? और बीजक मात्र किंचित् लिखे भी गए थे. यह नही समजना कि तिस समयमें लोक लिखना नही जानते थे. क्योंकि, (७२) बाहत्तर कलाओंमें प्रथम कला लिखतकी है. और वे बाहत्तर (७२) कला इस अवसर्प्पिणी कालमें प्रथम श्री ऋषभदेवजीने अपने पुत्र और प्रजाकों सिखलाई. जिसमें लिखत भी श्री ऋषभदेवजीने, (१८), अष्टादश प्रकारकी सिखलाई. वे अठारह भेद लिपिके आगे लिखते हैं.

ब्राह्मी लिपि १, यवन लिपि २, दोषऊपरिका लिपि ३, वरोट्टिका लिपि ४, खरसापिका लिपि ५, प्रभारात्रिका लिपि ६, उच्चतरिका लिपि ७, अक्षरपुस्तिका लिपि ८, भोगयवत्ता लिपि ९, वेदनतिका लिपि १०, निन्हतिका लिपि ११, अंक लिपि १२, गणित लिपि १३, गांधर्व लिपि

१४, आदर्श लिपि १५, माहेश्वर लिपि १६, दामा लिपी १७, और वोलिदि लिपि १८; ये अठारह प्रकारकी लिपि श्री ऋषभदेवजीने ब्राह्मी नाम्ना निज पुत्रीकों सिखलाई, इस वास्ते ब्राह्मी लिपि अथवा ब्राह्मी संस्कृतादि भेदवाली वाणी, भाषा, तिसकों आश्रित्य श्री ऋषभदेवजीने, या दिखलाई अक्षर लिखनेकी प्रक्रिया, सा ब्राह्मी लिपि, तिसके अठारह भेद[1]. पीछेसें देशांतर कालांतर पुरुषांतरके भेद पाकर ये अठारह प्रकारकी लिपि अनेक रूपसें प्रचलित हो गई; परं मूल सर्व लिपियोंका यह अठारह भेदवाली ब्राह्मी लिपीही है. इस वास्ते जे कोइ कहते हैं, कि प्राचीन आर्य लोक लिखनाही नहीं जानते थे, ये कहना प्रमाणिक नही है. और लिखना तो जानते थे, परंतु कल्पसूत्रकी भाष्यवृत्तिसें लिखा है, कि जो साधु सूत्र लिखे वा पास रक्खे तो तिसकों प्रायश्चित्त लेना पडता है; क्योंकि, पुस्तक लिखेगा तब स्याही, पट्टी, बंधन, दोरे, वगैरे रखने, रस्तेमें बोझ उठाना, पुस्तकके पत्रोंमें अनेक सूक्ष्म जीव उत्पन्न होते हैं, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें लिखनेका निषेध है. और श्री देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने जो पुस्तक लिखे, सो अन्यगतिके न होनेसें, और सर्व ज्ञान व्यवच्छेद होनेके भयसें, और प्रवचनकी भक्तिसें लिखे हैं. क्योंकि, जैनमतमें मैथुन वर्जी किसी वस्तुका एकांत निषेध नही है. इस वास्ते अपवाद पदावलंबके सूत्र सर्व लिखे. और अब भी वोही रीति प्रचलित है. और वर्त्तमान कालमें जे जैनमतके पुस्तक विद्यमान हैं, उनोंसें जैनमतके आचार्य सत्यवादी और भवभीरु भी सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अपने मतके पुस्तकोंका जेसा वृत्तांत बीता था, तैसाही लिख गए. और अपनी कल्पनासें कोइ पाठ उलट पुलट नही करा[2]; सो महानिशीथादि शास्त्रोंमें प्रगट देखनेमें आता है.

---

१ इन अठारह प्रकारकी लिपिका स्वरूप किसी जगे भी नही देखा, इस वास्ते नही लिखा है, ऐसें टीकाकार लिखते है.

२ जैसे वैदिक मतवालोंने वेद, उपनिषद्, महाभारत, भागवत, पुराणादिमें करा है, जो पाठ आगे लिखे जावेंगे.

इस पूर्वोक्त सर्व लेखसें यही सिद्ध हुआ, कि जैनमतके सर्व सूत्र श्री महावीरजीसेंही प्रचलित हूए हैं; परंतु यह नही समझना कि शेष त्रेवीस (२३) तीर्थंकरोंके समयमें जैनमतके शास्त्र नही थे.

पूर्वपक्षः-त्रेवीस तीर्थंकरोंके समयमें किस किस नामके शास्त्र जैनमतके थे ?

उत्तरपक्षः-जो नाम संप्रति कालमें आचारादि द्वादशांगोंका है, सोही नाम शेष तीर्थंकरोंके समयमें था.

पूर्वपक्षः-श्री ऋषभदेवके समयकेही शास्त्र श्री महावीरजीतांई तथा संप्रति कालमें भी क्यों नही रहे? और अजितादि त्रेविस तीर्थंकरोंको अपने अपने शासनको प्रचलित करने वास्ते नवीन नवीन द्वादशांगकी रचना करनेका क्या प्रयोजन था ?

उत्तरपक्षः-हे भव्य! जे अनंत तीर्थंकर अतीत कालमें हो गए है, और जे अनंत तीर्थंकर आगामि कालमें होवेंगे, तिन सर्वके द्वादशांगी रचनाके तत्वमें किंचित्मात्रभी अंतर नही; किंतु पुरुष स्त्रीयोंके नाम, और गद्य पद्यादि रचना इत्यादिमें अंतर है, शेष तत्वस्वरूप एकसरीखा है; इस वास्ते जो श्री महावीरजीके समयकी रचना शास्त्रोंकी है, सोही श्री ऋषभदेवजीके समयमें थी. इस वास्ते जैनमतके पुस्तक सर्व मतोंके पुस्तकोंसें पुराने सिद्ध होते हैं.

और जो तीर्थंकर अपने अपने तीर्थमें नवीन उपदेश द्वादशांगीका करते हैं, वे अपना अपना तीर्थंकर नाम पुण्य प्रकृति रूप कर्मके क्षय करने वास्ते. क्योंकि, विना उपदेशके तीर्थ नही होता है; तीर्थके करे विना तीर्थंकर नाम कर्मका फल नही भोगा जाता है, और तीर्थंकर नाम कर्मके फल भोगे विना मुक्ति नही होती है; इस वास्ते उपदेश करते हैं. और इसी हेतुसें नवीन शास्त्र रचे जाते हैं, परंतु हकीकतमें पुरानेही हैं.

---

१ आचारांग १, सूत्रकृतांग २, स्थानांग ३, समवायांग ४, विवाहप्रज्ञप्ति ५, ज्ञाताधर्मकथा ६, उपासक दशांग ७, अंतगड ८, अनुत्तरोववाइ ९, प्रश्न व्याकरण १०, विपाकश्रुत ११, और दृष्टिवाद १२.

पूर्व पक्षः—जैनमतके सर्व शास्त्र प्राकृत भाषामें रचे हैं, इस वास्ते प्रमाणिक नही हैं.

उत्तर पक्षः—यह कहना अयुक्त है. किसी भी भाषामें सच्चा पुस्तक लिखा हूआ होवे, सो सर्व सुज्ञ जनोंकों प्रमाण है. और प्राकृत भाषाकी बाबत तो वेदांग शिक्षामें ऐसें लिखा है.

"त्रिषष्टिः चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शंभुमते मताः ॥
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा ॥ ३ ॥"

भावार्थ यह है कि, त्रेसठ (६३) वा चौसठ (६४) वर्ण शंभुके मतमें प्रमाण हैं. प्राकृतमें और संस्कृतमें आप स्वयंभूने कथन करे हैं. और पाणिनी वररुचि प्रमुखोंने प्राकृतके व्याकरण रचे हैं. जेकर प्राकृत भाषा प्रमाणिक न होवे तो व्याकरण क्यों रचे जाते?

हंटर साहिब अपने रचे संक्षिप्त हिंदुस्थानके इतिहासमें लिखते हैं कि, हिंदुस्थानकी मूल भाषा पुराणी प्राकृत है.

रुद्रटप्रणीत काव्यालंकारकी टिप्पणी करनेवाले लिखते हैं कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस्सेंही संस्कृत बनाई गई है. और संस्कृत यह जो शब्द है, सो भी यही ज्ञापन करता है कि, असंस्कृत शब्दोंकों जब समारके रचे तिसका नाम संस्कृत है; सो पाठ लिखते हैं. ॥

प्राकृतसंस्कृतमागधपिशाचभाषाश्च शूरसेनी च ।
षष्ठोऽत्र भूरि भेदो देशविशेषादपभ्रंशः ॥ १२ ॥

प्राकृतेति । सकल जगज्जंतूनां व्याकरणादिभिरनाहितसंस्कारः सहजो वचनव्यापारः प्रकृतिः। तत्र भवं सैव वा प्राकृतम्। 'आरिसवयणे सिद्धं देवाणं अद्धमागहावाणी' इत्यादि वचनाद्वा प्राक् पूर्वं कृतं प्राकृतं बालमहिलादिसुबोधं सकलभाषानिबंधनभूतं वचनमुच्यते । मेघनिर्मुक्तजलमिवैकस्वरूपं तदेव च देशविशेषात् संस्कारकरणाच्च समासादितविशेषं सत् संस्कृताद्युत्तरभेदानाप्नोति । अत एव शास्त्रकृता प्राकृतमादौनिर्दिष्टं तदनुसंस्कृतादीनि । पाणिन्यादिव्याकरणोदितशब्दलक्षणेन संस्करणात् संस्कृतमुच्यते । इत्यादि.

इस्सें भी यही सिद्ध होता है कि, प्राकृत भाषा प्रथम थी. तिस भाषाको समारके रचना करनेसें वेदोंकी संस्कृत रची गई. और जब वेदोंकी संस्कृतकों पिछली व्याकरणोंसें मांजी, तब शुद्ध संस्कृत उत्पन्न भई. इससें यह सिद्ध हुआ कि, वेदोंकी संस्कृतसें पहिले प्राकृत पुस्तक होने चाहिये.

और गुर्जर देशीय मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी अपने रचे सिद्धांतसार ग्रंथमें लिखते हैं कि "इस ठिकाणे भाषाशास्त्रीयोंमें बहुत भारी झगडा चलता है. जब, संस्कृत–सुधरी भाषा–ऐसा नाम पडा, तब किसमेंसें सुधारी यह मालुम करना चाहिये. प्राकृतमेंसें, लोकभाषामेंसें सुधारी; ऐसें कहो तो प्राकृत प्राचीन भाषा होगी, और संस्कृत किसी कालमें सार्वत्रिक बोलाती भाषा न थी ऐसें मानना पडेगा. दूसरा मत ऐसा है, कि प्राकृत भाषा प्राचीन तो खरी, और उसके मिलापवाली वेद भाषामेंसें नवीन भाषा हुई सो संस्कृत; परंतु संस्कृत सार्वत्रिक उपयोगमें नही आती थी ऐसा नही. विद्वानो तथा उच्च वर्गके लोक संस्कृतही बोलते थे, और नीचलोक स्त्रीवर्ग इत्यादि प्राकृत बोलते थे. इस उभय पक्षके अनुयायी बहोत हैं; परंतु ज्यादा ख्याल दूसरे पक्ष तरफ है. स्लेगेल, बन्सन, वील्सन, मुर, गोल्डस्टकर, वेबर, बोप, मेक्समूलर वगैरे किसी भी पाश्चात्य पंडितके भाषा संबंधी लेखमें इस बातका विस्तार मिल जायगा."

ऊपर जो लेख लिखे हैं, सो कितनेही ग्रंथ और अनुमानद्वारा लिखे हैं. अब जैनमतके पुस्तकानुसार जो कथन है सो लिखते हैं. प्रा[illegible] और संस्कृत ये दोनों भाषा अनादि सिद्ध है. तिनमें प्राकृत भाषा तीन तरहकी है. १ समसंस्कृत प्राकृत, २ तज्जा अर्थात् संस्कृत शब्दोंकों प्राकृत शब्दोंका निर्देश करणा. और ३ देशी, अर्थात् प्राकृत संस्कृत व्याकरणोंसें जिसकी सिद्धि न होवे; किंतु अनादिसिद्ध जे शब्द हैं, तिनकों देशी प्राकृत कहते हैं. जैसें श्रीपादलिप्तसूरिविरचित देशीनाममाला और तरंगलोला कथा वगैरे-तथा श्री हेमचंद्रसूरिविरचित देशीनाममाला-परंतु यह नही समझना कि, जो अनेक देशोंके शब्द एकत्र

करणे, तिसका नाम देशी प्राकृत है. जैनमतके चौदह (१४) पूर्व तो प्रायः संस्कृत भाषामेंही रचे जाते हैं. और अंगादि शास्त्र प्रायः प्राकृत भाषामेंही रचे जाते हैं. तिसका कारण संस्कार वर्णनमें लिखेंगे.

और प्राकृत भाषा प्रायः विद्वज्जनमानभंजिका भी है. जैसें वृद्धवादीसूरिजीने, श्री सिद्धसेनदिवाकरकों एक गाथा प्राकृतकी पूछी; तिसका अर्थ तिनकों नही आया. तथा जितने अर्थांशकों प्राकृत दे सक्ती है, तितने अर्थांश प्रायः संस्कृत नही दे सक्ती है[1]. इस वास्ते प्राकृत भाषा बहुत गहनार्थवालीहै. और इसी हेतुसें, जैनोंने अंगोपांगादिकी रचनामें प्राकृत भाषाही ग्रहण करी है.

और दयानंदसरस्वतिजी जो लिखते हैं कि, जैनाचार्योंने अपने तत्वोंकों छाना रखनेके वास्ते धूर्त्ततासें प्राकृत भाषामें रचना करी है, इसका उत्तर, वाहजी वाह! खूब विद्वत्ता दिखलाई! आपकों जो भाषा न आवे, उस भाषाके पुस्तक बनानेवाले वा लिखनेवाले धूर्त्त हैं. इस्सें तो दयानंदस्वामीके लेखानुसार जिसकों संस्कृत भाषा नही आती है उसके वास्ते तो जितने वैदिकमतके, तथा और मतके पुस्तक, जो कि संस्कृतादिमें बने हुए हैं, वे सर्व धूर्त्तोंके वनाए सिद्ध होवेंगे. बलके वेद तो महा धूर्तोंके बनाए सिद्ध होवेंगे. क्यौंकि उनकी रचना तो सर्व संस्कृत ग्रंथोंसें प्रायः विलक्षणही है. यदि कहोगे कि, वैदिक शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण विद्यमान है, तिस्सें वेदकी रचना सिद्ध हो सक्ती है: तो क्या प्राकृत शब्दोंकों सिद्ध करनेवाला व्याकरण नही है? यदि है, तो आपही धूर्त्त ठहरेंगे, जो कि सत्य शास्त्रोंकों असत्य और असत्यकों सत्य बनानेका उद्यम कर रहे हैं, वा करते थे. यदि दयानंदसरस्वतिजीने प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पिशाची, चूलिकापिशाची इत्यादि भाषायोंके व्याकरण पढे होते वा देखे होते तो कदापि ऐसा लेख नही लिखत; परंतु वे तो सिवाय अष्टाध्यायीके कुछ भी नही जानते थे, जो कि, उनोंके बनाए ग्रंथोंसें विद्वजन आपही जान

१ देखो अर्थदीपिका श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्तिमें.

२ अन्य भी कोई अजाण कदाग्रही एसें ही कहते है.

सक्के हैं. अब सोचना चाहिये कि, प्राकृतमें जो रचना करी है सो धूर्त्ततासें करी है. यह लिखना सिवाय निर्विवेकी, कदाग्रहीसें और किसीका हो सक्ता है? यदि कोई किसी अपठित जाटके आगे सुंदर संस्कृत वेद, जिनशतक काव्यादि ग्रंथ रख देवें तो, क्या वो जाट तिसकों पढ सक्ता है? नही. जेकर वो जाट कहै, इन पूर्वोक्त शास्त्रोंके रचनेवाले धूर्त्त और अपंडित थे, तो क्या तिस जाटका वचन बुद्धिमान् सत्य मानेंगे? कदापि नही. ऐसेंही दयानंदसरस्वतिजीका कहना है. जितनाचिर षड्भाषाके व्याकरण और न्यायादि न पढे, तब तक वो पूर्ण विद्वानोंकी पंक्तिमें नही गिना जाता है.

और दयानंदसरस्वतिजीने जो वेदों ऊपर भाष्य रचा है, सो निःकेवल स्वकपोलकल्पित है. जो कोई विद्वान् देखता है, तो मुह मचकोडता है. और दयानंदस्वामीने जो वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ लिखे हैं, वे केवल वेदोंका बिहूदापण छिपानेके वास्ते है. सज्जनोंकों ऐसा काम करणा उचित नही है, कि वेश्याकों सती सिद्ध करना; परंतु सतीकों झूठा कलंक लगा होवे तो सज्जन तिसको दूर करणेका यत्न करते हैं. और अपने अपने संप्रदायमें अपने अपने मतके पुस्तकोंके पूर्व पुरुषोंके करे अर्थोंसे अपना स्वकपोलकल्पित मत सिद्ध न होनेसें अक्षरोंके अनुसार जो स्वकपोलकल्पित अर्थ करते हैं, वे महा मिथ्यादृष्टियोंके लक्षण है; जैसें, जैनमतके नामसें अपठित, जैनाभास, ढुंढक साधु करते हैं. तैसेंही दयानंदस्वामी पंडित कहलाके करते थे.

क्योंकि, ऋग्वेदादि चारों वेदोंमें जीवहिंसा और इंद्र, वरुण, कुबेर, नक्त, पूषा, यम, अश्विनौ, उषा, नदी इत्यादिकी स्तुति, और प्रार्थनाके सिवाय, और कितनीक जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक वातोंके सिवाय जीवोंके कल्याणकारी मोक्ष मार्गका किंचित् भी उपदेश नही है. और न कोइ संसारकी उपकारिणी विद्याका कथन है. सो वाचक वर्गको मालुम होनेके वास्ते थोडासा लिख दिखाते हैं.

प्रथम वेदोंका हिंसकपणा देखना होवे तो हमारे बनाए अज्ञानति-

मिरभास्कर ग्रंथसें देख लेना. जुगुप्सनीय, उपहास्यजनक बातों लिखनी हम अछा नही समझते हैं[२]. और स्तुति प्रार्थना विषयक जो लेख है, नीचे लिखते हैं.

॥ ऋग्वेद । मंडल १, अष्टक १, अनुवाक १. ॥

प्रथम नवऋचामें–अग्नि, वा, अग्निदेवताकी स्तुति है.

तदनु तीन ऋचामें–वायु, वा, वायु देवताका वर्णन है. और आमंत्रण स्तुति है.

तदनु तीन ऋचामें–ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें–ऐंद्रवायु देवताका आमंत्रण है.

तदनु तीन ऋचामें–मैत्रावरुण दो देवताका सामर्थ्य कथन है.

त० ती०–अश्विनौ देव वैद्योंके गुण कथन, और उनोंका आमंत्रण है.

त० ती०–इंद्रकों आमंत्रण, और तिसके हरित् घोडेका वर्णन है.

त० ती०–विश्वेदेवास इस नामके देवताका सामर्थ्य, और आमंत्रण है.

त० दो०–सरस्वती देवीका सामर्थ्य कथन है.

त० एक०–सरस्वती नदीका वर्णन, और उपकार कथन है.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० २ ॥

प्रथम तीन ऋचामें–इंद्रकों सोम रस पीनेके वास्ते आमंत्रण; सोमरस पीनेसें इंद्र हमकों गौआं देवेगा.

तदनु एक ऋचामें–यज्ञ करानेवाला यजमानकों कहता है, तूं जा कर

---

१ मणिलाल नभुभाइ अपने बनाए सिद्धांतसार पुस्तकमें लिखते हैं कि—यज्ञसंबंधी एकबात बहुत मुख्य रीतिसें विचारने जैसी है. बहुत बडे यज्ञोंमें एक दोसें सौ सौ तक पशु मारनेका संप्रदाय नजरे आता है. बकरे घोडे इत्यादि पशु मात्रका बलि दिया जाता था इतनाही नही परंतु अपनेकों आश्चर्य लगता है कि मनुष्योंका भी भोग देनेमे आता था! पुरुषमेध इस नामका यज्ञही वेदमें स्पष्ट कहा हुआ है; और शुनःशेपादि वृत्तांत भी इसी बातकी साक्षी देता है. और इस रक्तस्रावमें आनंद मानने उपरांत, सोम पानसें, और आखीरके वखतमें तो सुरा (मदिरा) पानसें भी, आर्यलोक मत्त होते मालुम पडते हैं.

२ जिसकों देखनेकी इछा होवे ऋगवेद अष्टक आठ (८) में और यजुर्वेद अध्याय तेवीस (२३) में देख लेवे.

इंद्रकों पूछ कि यज्ञ करानेवालेने इंद्रकी स्तुति ठीक करी है, कि नही? यह सुण कर इंद्र तेरेकों श्रेष्ठ धन पुत्रादि सर्व औरसें देवेगा.

तदनु एक ऋचामें–हमारे ऋत्विज इंद्रकों कहे, हमारे निंदक इस देशमें, तथा अन्य देशोंमें भी न रहे.

त० एक०–हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हमारे शत्रु भी मित्रभूत हूए बोलते हैं.

त० तीन०–इंद्रकों सोमवल्लीका रस देवो, जिसकों पीके इंद्र वृत्रनामारि असुर शत्रुयांकों हननेवाला होवे, और संग्राममें, हे इंद्र! तूं अपने भक्तकी रक्षा करनेवाला हो, हे इंद्र! तेरेकों अन्नवाला करते हैं.

तदन एक ऋचामें–इंद्र धनकी भूमिका रक्षक है, इस वास्ते हे ऋत्विजो! तुम इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०–हे ऋत्विजो! शीघ्र इस कर्ममें आवो! आवो! आ कर बैठो; बैठ कर इंद्रकी स्तुति करो.

त० एक०–हे ऋत्विजो! तुम सर्व एकठे होकर इंद्रकों गावो.

त० एक०–पूर्व मंत्रोक्त गुणवाला इंद्र हमकों पूर्व अप्राप्त पुरुषार्थकों प्राप्त करो! और, सोइ इंद्र धन, स्त्री, अथवा बहुत प्रकारकी बुद्धियांकों सिद्ध करो.

त० नव०–इंद्रके रथ घोडोंका कथन, और इंद्रकी प्रार्थना.

त० एक०–इंद्रही अग्नि, वायु, सूर्य, नक्षत्रके रूपसें रहा हूआ है.

त० एक०–इंद्रके घोडे रथका वर्णन.

त० एक०–सूर्यका वर्णन.

त० पांच०–मरुतका वर्णन, पणि नामक असुरोंने स्वर्गसें गौआं चुरायके अंधकारमें छिपा रखी. पीछे इंद्र मरुतोंके साथ तिनकों जीतता हूआ, इंद्र मरुतकी स्तुति, और आमंत्रण.

त० एक०–इंद्र आकाशादिकोंसें ल्याके हमकों धन देवो.

त० नव०–इंद्रकी अनेक रूपसें स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ३ ।

प्रथम पांच ऋचामें-शत्रुकों जीतने वास्ते इंद्रकी प्रार्थना, और धनादिका मांगना.

तदनु दश ऋचामें-इंद्रकों धनके वास्ते प्रेरणा, हे इंद्र! हमकों धन, गौआं, अन्न संयुक्त कीर्ति, हजारां संख्याका धन, व्रीहि, जव, बहुत रथ सहित अन्न दे! अपने धनकी रक्षा वास्ते हम इंद्रकों बुलाते हैं; स्तुति करते हूए सर्व यजमान इंद्रके सामर्थ्यकी प्रशंसा करते हैं.

तदनु नव ऋचामें-इंद्रकी महिमा; धन, गौआं, दुग्ध दे! वर्षा प्रेरो! दुग्धवाली गौआं दे! हमारी स्तुति सुणो! इत्यादि.

त० २३ ऋ०-हे इंद्र! हम तुजकों जानते हैं, तूं संग्राममे हमारा बुलाना सुणता है, हजारोंका धन देनेवाला है. इत्यादि इंद्रकी स्तुति हमारी स्तुति तुमकों पहुचे.

त० ३ ऋ०-हे इंद्र! तेरे अनुग्रहसें हम शत्रुयांसें भय न पावेंगे, इंद्र धनदाता है.

त० ३ ऋ०-इंद्रके गुणोंका कथन, बल नामक असुर देव संबंधिनी गौआं चुरायके, किसी बिलमें गुप्त करी, फिर इंद्र, सैन्य सहित बिलसें निकाल लाया तिसका कथन, और यजमान इंद्रकी स्तुति कर्त्ता है.

त० २ ऋ०-इंद्रने शुष्ण असुरकों मारा, और इंद्रकी स्तुति.

। ऋ० अ० १ मं० १ अ० ४ ।

१२ ऋ०-देव दुत, अग्नि, सर्व देवताओंकों बुलानेवाला है, इस यज्ञमें यजमानकी करी आहुति सर्व देवताओंकों पहुचानेवाला है, स्तुति योग्य है. हे अग्ने! तूं देवताओंकों बुलाके इस यज्ञ कर्ममें आके बैठ! तूं हमारे शत्रुयांकों भस्म कर! इत्यादि.

८ ऋ०-अग्नि विशेषका वर्णन.

३ ऋ०-अग्नि विशेषका वर्णन.

१ ऋ०-हे इंद्रादि देवो! तुमारे वास्ते तृप्तिकारिका, सोमा, संपादन करी है.

३ ऋ०–अग्निकों आमंत्रण, अग्निकी स्तुति, अग्निके रथके घोडे पुष्टशरीरवाले हैं, अग्निसें प्रार्थना, यज्ञ करनेवालोंकों पत्नीयुक्त कर.

१ ऋ०–हे अग्ने! तेरी जिव्हा करके देवते सोमका भाग पीवो.

१ ऋ०–देवताकों स्वर्गलोकसें यज्ञमें बुलाना.

३ ऋ०–हे अग्ने! तूं देवताओं सहित सोमसंबंधी मधुर भाग पी. हे अग्ने! तूं हमारे यज्ञकों निष्पादन कर. हे देवाग्ने! तूं अपने रोहित नामा घोडेकों जोडके इस यज्ञमें देवताओंकों बुलाव.

१२ ऋ०–हे इंद्र! ऋतुदेवसहित सोम पी. हे मरुत! तूं सोम पी. ऋतुके साथ हमारे यज्ञकों सोध. हे अग्नादेवते! तूं रत्नोंका दाता है, इस वास्ते सोम पी. हे अग्ने! तूं देवताकों बुलवाव. हे इंद्र! तूं ऋतुसहित धनभूतपात्रसें सोम पी. हे मित्रनामक और वरुणनामक देव! तुम ऋतुके साथ हमारे यज्ञमें व्याप्त हुओ. अग्निदेवकी धनके अर्थी ऋत्विज स्तुति करते हैं. द्रविणोदा देवता हमकों धन देवो. द्रविणोदा देव ऋतुयांके साथ नेष्टृसंबंधि पात्रसें सोम पीनेकी इच्छा करता है, इस वास्ते हे ऋत्विज! तुम होमके स्थानपर जाकर होम करो. हे द्रविणोदा देव! ऋतुयां सहित तेरेकों हम पूजते हैं. तूं हमकों धन दे. हे आश्विनौ देवते! तुम ऋतु सहित यज्ञके निर्वाहक हो. हे अग्निदेव! तूं गृहपतिके रूप करके ऋतु सहित यज्ञका निर्वाहक है.

९ ऋ०–हे इंद्र! सोम पीनेके वास्ते अपने घोडोंकों बुलाव. वेदीके पास इंद्रकों आहुति–हे इंद्र! तूं घोडोंसहित आव, हम आहुति देते हैं. हे इंद्र! तूं गौर मृगकी तरें तृषित (प्यासा) हुवा इस सोमकों पी. हे इंद्र! तिस तिस पात्रगत तिन तिन सोमोंकों बलके वास्ते तूं पी. हे इंद्र! यह जो श्रेष्ठ स्तोत्र हम करते हैं, सो तेरे हृदयकों सुखदायि होवे; स्तुति अनंतर तूं सोम पी. इंद्रकों यज्ञमें आमंत्रण–हे शतक्रतो! तूं हमकों वांछित फल, गौआं, घोडे सहित पूरण कर. हम भी ध्यान करके तेरी स्तुति करते हैं.

९ ऋ०–में अनुष्ठाता समीचीनराज्यसंयुक्त, सम्यग् दीप्यमान वा ऐसें इंद्रवरुणोंसंबंधी रक्षाकी प्रार्थना करता हूं. हे इंद्रवरुणौ! तुम अनुष्ठान करनेवालेके रक्षक हो. इत्यादि–हे इंद्रवरुणौ! यदा यदा हम धन चाहते हैं, तदा तदा तुम देते हो. हे इंद्रवरुणौ! तथाविध हविः ग्रहण करनेवाले तुह्मारे दोनोंके प्रसादसें हम अन्न देनेवाले पुरुषोंमें मुख्य होते हैं. यह इंद्र धन देनेवालोंमेंसें प्रभूतधन देता है, वरुण स्तुति करने योग्य है, इंद्र वरुणके रक्षक होनेसें हम धनको प्राप्त होते हैं, निधि भी करते हैं, हे इंद्रवरुणौ! हम तुमको आहुति देते हैं, मणि आदि विचित्र धनके वास्ते, और शत्रुयोंमें हमको जययुक्त करो. हे इंद्रवरुणौ! तुम हमारी बुद्धियांमें सुख दो, हे इंद्रवरुणौ! तुम श्रेष्ठ स्तुतिको प्राप्त हो.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ५ ॥

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते देव! मुजे अनुष्ठानकर्त्ताको देवोंके विषे प्रकाशवाला कर, कक्षीवान् नामक ऋषिकी तरें.

१ ऋ०–धनवान्, रोगोंको हननेवाला, धनप्राप्तिवाला, पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला, शीघ्र फलका देनेवाला, ऐसा ब्रह्मणस्पति देव, हमको अनुग्रह करो.

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! शत्रुको दूर कर, हमको पाल.

१ ऋ०–यह इंद्रदेव यक्ष्यमाण मनुष्यको वर्द्धमान करता है, तथा ब्रह्मणस्पति, और सोम करते हैं सो यजमान विनाशको प्राप्त नहीं होता है.

१ ऋ०–हे ब्रह्मणस्पते! तूं अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यकी पापसें रक्षा कर, तथा सोम, इंद्र, दक्षिण, यह सर्व देव रक्षा करो.

सदसस्पति नाम देवता, इंद्रका प्यारा, धनका दाता, इत्यादि चतुर्दश (१४) ऋचामें अनेक प्रकारके देवताओंका सामर्थ्य और आमंत्रणादि वर्णन है.

८ ऋ०–मनुष्य तप करके देवते हूए, तिनको ऋभु कहते हैं. तिनोंको प्रीति उत्पन्न करने वास्ते ऋत्विजोंने अपने मुखकरके स्तोत्र उत्पन्न करा, तिस स्तोत्रका वर्णन.

६ ऋ०—इंद्राग्नि आदि देवताका वर्णन.

१९ ऋ०—अनेक नामके देव देवीका वर्णन, और यज्ञके वास्ते आमंत्रण.

१ ऋ०—विष्णु परमेश्वर त्रिविक्रमावतारमें पृथिवीकी रक्षा करता भया, तिसका वर्णन.

१ ऋ०—विष्णु त्रिविक्रमावतारधारी इस जगत्कों उद्दिश्य विशेष करके पादक्रमण करता भया, इत्यादि—

१ ऋ०—कोइ भी जिसकों हनने सामर्थ्य नहीं, ऐसा विष्णु जगत्का रक्षक है. पृथिव्यादि स्थानोंमें तीन पादक्रमण करता हुआ. धर्म जो अग्निहोत्रादि तिसका पोषण करता हुआ.

१ ऋ०—हे ऋत्विगादयः! तुम विष्णुके कर्म पालनादि देखो, इत्यादि विष्णुवर्णन.

१ ऋ०—पंडित विष्णुसंबंधि स्वर्गस्थान उत्कृष्ट पदकों देखते हैं, जैसें चक्षु आकाशमें देखते हैं.

१ ऋ०—प्रमादरहित जे पंडित हैं, वे विष्णुके पदकों दीपाते हैं.

३ ऋ०—यज्ञके वास्ते ऐंद्रवायुदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

३ ऋ०—मित्रवरुणदेवताका आमंत्रणादिवर्णन.

६ ऋ०—मरुतदेवताकों विनती आमंत्रणादि.

३ ऋ०—पूषन्देवताका वर्णन.

८ ऋ०—आप् (पाणी)का वर्णन, आमंत्रण और तिससें विनती आदि.

१ ऋ०—अग्निका वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ६ ॥

१९ ऋ०—यूपकेसाथ यज्ञके वास्ते बंधा हूआ शुनःशेपनामा जन अपनी जिंदगीके वास्ते अनेक देवताओंको विनती करता है, और उन्होंकी स्तुति करता है; विशेषकरके वरुणदेवताकी स्तुति जीवन वास्ते करता है.

२१ ऋ०—शुनःशेपने वरुणकीही स्तुति करी तिसका वर्णन.

२२ ऋ०—वरुणके कहनेसें शुनःशेपने अग्निकी स्तुति करी.

१ ऋ०–अग्निकी प्रेरणासें शुनःशेपने विश्वेदेवताकी स्तुति करी.

८ ऋ०–उखल मूसलकी स्तुति है, क्योंकि, उखल मूसल सोमको कूटके इंद्रके पीने योग्य रस काढते हैं.

१ ऋ०–ऋत्विग्विशेष हे हरिश्चंद्र देवता! पक्षे हे हरिश्चंद्र! तूं सोमको गाडीऊपर लाद दे.

२२ ऋ०–विश्वेदेवोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रकी स्तुति करी. हे इंद्र! हमकों गालीयां देनेवाले हमारे शत्रुयांकों तूं मार इत्यादि.

१ ऋ०–इंद्रने तुष्टमान होके शुनःशेपकों हिरण्यरथ दिया.

३ ऋ०–इंद्रकी प्रेरणासें शुनःशेपने इंद्रके घोडोंकी स्तुति करी.

३ ऋ०–इंद्रके घोडोंकी प्रेरणासें शुनःशेपने उषःकालाभिमानिनी देवताकी स्तुति करी.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ७ ॥

१८ ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निके कर्त्तव्य, हे अग्ने! नहुषनामा राजाका तूने सेनापतिपणा करा; किसी लडकी छोकरीका तूं उपदेशक था;–इत्यादि.

१५ ऋ०–इंद्रके पराक्रमोंका वर्णन, मेघकों मारा, जलकों भूमिमें गेरा, पर्वतांकों तोडके नदीओंकों ले आया, अनेक असुरांकों मारे, वृत्रनामा असुरने मेघकों रोक रक्खा था तिसकों इंद्रने मारा–इत्यादि.

१५ ऋ०–पणिनामा असुर देवताओकी गौआंकों हरके ले गया, देवताओंने परस्पर सलाह करके इंद्रके पास पुकार करा; इंद्र गौआंकों ले आया, वृत्रके अनुचरोंकों मारा, मेघ वर्षाया, दैत्य मारे, कुत्सनामा ऋषिकी रक्षा करी, दशद्यु ऋषिकी रक्षा करी, शत्रुओंके भयसें जलमें मग्न हुआ, इंद्रके अनुग्रहसें वहार निकला, और उसकी रक्षा करी–इत्यादि.

१२ ऋ०–अश्विनीकुमारोंका सामर्थ्य, उनोंकी प्रार्थना, रथके गर्दभोंका वर्णन, और यज्ञमें आमंत्रणादि.

११ ऋ०–सूर्यका वर्णन, सूर्य वहुत देशोंसें आता है, सूर्यके रथका वर्णन, सूर्यके घोडोंका वर्णन, सोश्यावीनामा घोडा सूर्यका रथ वहता है, लोक स्वर्गोपलक्षित तीन है, दो लोक सूर्यके समीप होनेसें सूर्य उनकों

प्रकाशता है, तीसरा यमलोक है, जिसमें प्रेतपुरुष आकाशमार्गसें जाते हैं. सूर्यके किरण तीन लोककों प्रकाश करते हैं, ऐसे किरणोंवाला सूर्य रात्रिमें कहां है? यह रहस्य कोइ नहीं जानता है. सूर्य आठों दिशा और गंगादि सात नदीयों वा सात समुद्रांकों प्रकाशता है, सो यहां यज्ञमें आवो, सोनेके हाथोंवाला सूर्य स्वर्ग और पृथ्वीके बीचमें चलता है. सूर्यकी स्तुति. हे सूर्य! तेरे चलनेका मार्ग निर्मल है. आज तूं आ कर हमारी रक्षा कर–इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ८ ॥

२० ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निकों आमंत्रण,–हे अग्ने! तूं हमारे शत्रुओंकों मार, भस्म कर, राक्षसोंकों भस्म कर–इत्यादि.

४० ऋ०–काण्व ऋत्विक्का वर्णन, मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, काण्वकों यज्ञमें आमंत्रण, पुनः मरुत् देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों विनती और आमंत्रण–४९ प्रकारके मरुत् देवताओंका सामर्थ्यवर्णन, यज्ञमें आमंत्रण और उनोंसें याचना करनी–इत्यादि.

८ ऋ०–ब्रह्मणस्पति देवताका सामर्थ्यवर्णन, उनकों आमंत्रण और उनसें अनेक वस्तुओंकी याचना–इत्यादि.

९ ऋ०–वरुण, मित्र और अर्यमा, इन तीनों देवताओंका कथन, और उनोंसें प्रार्थना, धन देवो, यजमानकी रक्षा करो, शत्रुओंकों मारो–इत्यादि.

१० ऋ०–पूषन् देवताका वर्णन, तिसका सामर्थ्य, तिसकों आमंत्रण और तिससें धनादिकी याचना–इत्यादि.

५ ऋ०–रुद्रनामक देवका वर्णन स्तोत्रद्वारा–

१ ऋ०–हमारे घोडे, मेष, मेषी, पुरुष, स्त्री, गौआदिके तांइ देव सुख करता है.

३ ऋ०–हे सोम! हमकों धन दे. इत्यादि वर्णन.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० ९ ॥

२४ ऋ०–अग्निकी स्तुति, अग्निका विचित्र प्रकारके विशेषणों सं-

युक्त वर्णन, हे अग्ने! तूं धूमरूप चिन्हवाला है, तूं यहां आव, हमकों धन दे-इत्यादि.

१५ ऋ०-उषो देवता तथा अश्विनौ देवता इन्होंका वर्णन, उन्होंकों आमंत्रण, आवो, सोम पीवो-इत्यादि.

१० ऋ०-हे अश्विनौ देवते! तुम सोम पीवो यजमानकों रत्नादि धन देवो इत्यादि प्रार्थना और आमंत्रणादि.

२० ऋ०-हे द्यु देवताकी पुत्रि उषः! अश्ववती, गोमती, तूं धनवानोंका धन हमारे वास्ते प्रेरय, सोम पीने वास्ते सर्व देवोंकों बुलवा, इत्यादि प्रार्थना, अनेक प्रकारसें उषः देवताकी स्तुति, और आमंत्रण यज्ञके वास्ते-इत्यादि.

१३ ऋ०-सूर्यकी स्तुति, सूर्यकों आमंत्रण यज्ञके वास्ते-हे सूर्य! तूं और कोइ जानेकों समर्थ नहीं तिस रस्तेकरके जानेवाला है[1], सोइ दिखाते हैं; दो हजार दोसौ और दो (२२०२), योजन अर्द्ध निमेषमात्रमें चलता है. इस वास्ते तेरे तांइ नमस्कार हो. हे सूर्य! तूं आकाशमें चलता है, यह सूर्य मेरे उपद्रव करनेवाले रोगोंकों नाश करता हुआ उदय हुआ-इत्यादि.

॥ ऋ० अ० १ मं० १ अ० १० ॥

१ ऋ०-इंद्र आपही किसीका पुत्र हुआ, यद्वा, काण्वपुत्र, मेधातिथि यजमानका सोम, इंद्र, मेषका रूप करके पीता हुआ, वो ऋषि उसकों मेष कहता हुआ, इसी वास्ते अबभी इंद्रकों मेष कहते हैं. उस मेषरूप इंद्रका वर्णन.

१ ऋ०-वरुणकी स्तुति और तिसका वर्णन.

८ ऋ०-विचित्र कर्त्तव्यों सहित इंद्रकी स्तुति.

१ ऋ०-शर्यात नामा राजऋषिके यज्ञमें भृगुगोत्रका उत्पन्न हुआ च्यवन महाऋषि आश्विनग्रहकों ग्रहण करता हूआ, इंद्र उसकों देख

---

१ हे सूर्य त्वं तरणिः तरिता अन्येन गन्तुमशक्यस्य महतोऽध्वनो गन्ताऽसि तथा च स्मर्यते 'योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने ॥ एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोऽस्तु ते' इति भाष्यकारः ॥

कर क्रोधित हुआ, उसकों इंद्र पीछा ल्याया, फेर तिसके तांइ सोमदिया, इस अर्थका वर्णन है.

१ ऋ०–अंगराज किसी दिनमें अपनी राणीयांके साथ गंगामें जलक्रीडा करता हुआ; तिस समयमें दीर्घतमा नाम ऋषिकों अपने स्त्री, पुत्र, नौकरादिकोंने दुर्बल होनेसें कुछभी नही कर सक्ता है, ऐसे द्वेषसे गंगामें वहा दिया; सो ऋषि वहता हुआ अंगराजके क्रीडाप्रदेशमें आ लगा. राजाने सर्वज्ञ जाणके तिस ऋषिकों बहार निकाला, और कहा कि, हे भगवन्! मेरे पुत्र नही हैं; यह पट्टराणी है, इसके विषें किसी पुत्रकों उत्पन्न कर. ऋषिनें मान लिया. पट्टराणीने भी राजाकेपास मान लिया. पीछे यह अतिशय वृद्ध जुगुप्सित मेरे योग्य नही है; ऐसी अपनी बुद्धिकरके विचारके राणीने अपनी उशित् नामा दासीकों भेजी. तिस सर्वज्ञ ऋषिने मंत्रपवित्र पानी करके दासीकों सिंचन करी; सो दासी ऋषिपत्नी हुई; तिसाविषे कक्षीवान् नाम ऋषि उत्पन्न हुआ, सोही राजाका पुत्र हुआ. उसने बहुविध राजसूयादि यज्ञ करे, तिसके करे यज्ञोंसें तुष्टमान होके इंद्रने वृचया नामा स्त्री तिसके तांइ दीनी. तथा हे इंद्र! तूं वृषणश्व नाम राजाकी कन्या होता भया, जिसका नाम मेनां था.–इत्यादि वर्णनका संक्षेप है.

इत्यादि प्रायः सारा ऋग्वेद इसीसें परिपूर्ण है. यजुर्वेदादिमें भी सिवाय हिंसा और प्रार्थनाके और कुछभी प्रायः नहीं है. और जो ऋग्वेदके सातमे मंडलमें ईश्वरकी स्तुति और स्वरूप लिखा है, सो सर्व सूक्त नवीन हैं. क्योंकि, तिनकी संस्कृत अन्य अष्टक मंडल सूक्तोंसें अन्य तरेकी शुद्ध मार्जन करी हुई मालुम होती है. दयानंदस्वामीजीने इन सूक्तोंके अर्थभी प्राचीन अर्थोंसें उलटे करे हैं; परंतु इससें कुछ पंडिताई हांसल नहीं होती है. भवभीरु और पंडितोंका तो यही काम होता है, सत्यकों ग्रहण करना, असत्यकों त्याग करना. और असत्यकों जो मनःकल्पित अर्थ हेतु–युक्तिद्वारा सत्य सिद्ध करना है, सो तो कदाग्रहीका काम है. और असल प्राचीन वेदमंत्रोंमें अनीश्वरी, पूर्वमीमांसा, अर्थात् जैमनीय मतका प्रतिपादन है, इस वास्तेही मीमांसक विधि-

वाक्यकों वेद मानते हैं; शेष ईश्वर, ईश्वरस्तुति, ईश्वरस्वरूप और वेदांत अद्वितीय ब्रह्मकी प्रतिपादक श्रुतियां, यह सर्व ऋषियोंने पीछे प्रक्षेप करी हैं, ऐसें मानते हैं. जैन मतका शास्त्रभी पूर्वोक्त मीमांसक मतकी गवाही देता है यदुक्तं षड्दर्शनसमुच्चये श्रीहरिभद्रसूरिपादैः ॥

जैमिनीयाः पुनः प्राहुः, सर्वज्ञादिविशेषणः ॥
देवो न विद्यते कोपि, यस्य मानं वचो भवेत् ॥ १ ॥
तस्मादतींद्रियार्थानां, साक्षाद्द्रष्टुरभावतः ॥
नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिर्णयः॥ २ ॥
अतएव पुरा कार्यो, वेदपाठः प्रयत्नतः ॥
ततो धर्मस्य जिज्ञासा, कर्त्तव्या धर्मसाधनी ॥ ३ ॥
नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियांप्रति ॥
प्रवर्त्तकं वचः प्राहुः, स्वः कामोग्निं यजेद्यथा ॥ ४ ॥

भाषार्थः—जैमनीय पुनः कहते हैं कि, सर्वज्ञादि विशेषणवाला ऐसा कोइ देव नहीं है कि, जिसका वचन प्रमाण होवे ॥ १ ॥ तिस वास्ते अतींद्रिय अर्थोंके साक्षात् द्रष्टाके अभावसें नित्य ऐसें वेदवाक्योंसें यथावस्थित पदार्थत्वका विशेष निर्णय होता है ॥ २ ॥ इस वास्ते प्रथम प्रयत्नसें वेदपाठ करना, पीछे धर्मसाधन करनेवाली धर्मजिज्ञासा करनी ॥ ३ ॥ वेदवचनकृतनोदना, प्रेरणालक्षण धर्म; और नोदना क्रियाके प्रतिप्रवर्त्तकका वचन, जेसें स्वर्गका कामी अग्निका यजन करे ॥ ४ ॥

और जिन सूक्तोंसें ईश्वरका स्वरूप कथन करा है, सो भी प्रमाणयुक्तिसें बाधित है, सो स्वरूप थोडासा आगेकों लिख दिखावेंगे. और वेदोंकी उत्पत्ति जैनमतवाले जैसें मानते हैं, तैसें जैनतत्वादर्श नामक (संवत १९४० का छपा) पुस्तकके ५१० सें लेके ५२२ पृष्ठतक जाननी. ब्राह्मण लोक जिसतरें वेदकी संहिता उत्पन्न भई मानते हैं, तैसें महीधरकृत यजुर्वेदभाष्य, और अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रंथसें जान लेनी. इस वास्ते वेद सर्वज्ञ अष्टादश दूषणरहित भगवंतके कथन करे हूए नहीं हैं; तो फेर ये

पुस्तक प्राचीन हुए वा नवीन हुए तो इनसें कुछभी सत्य मोक्षमार्गकी सिद्धि नही होती है. यह किंचित्मात्र ग्रंथसमीक्षाविषयक लिखा, इसके आगे देवविषयक स्वरूप लिखा जायगा, जोकि ध्यान देकर वाचनेके योग्य है.

इति श्रीमद्विजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे ग्रंथ-
समीक्षाविषये प्रथमः स्तंभः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयस्तम्भप्रारम्भः

अब इस द्वितीय स्तंभमें थोडासा देवविषयक लिखते हैं. क्योंकि, कोइ लोक कहते हैं कि, जैनमतवाले ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों नही मानते हैं. इस वास्ते जैनमत प्रमाणिक नहीं है; परंतु यह कहना उन मित्र लोकोंको अच्छा नही है. क्योंकि, असली ब्रह्मा, महादेव और विष्णु जो है, तिनकों तो जैनमतवालेही मानते हैं. और कल्पित जो ब्रह्मा, महादेव, विष्णु है तिनकों अन्य मतवाले मानते हैं.

पूर्वपक्षः—जैनमतवाले जैसें ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं, तिनका स्वरूप लिखो; जिससें हरेक वाचकवर्गको मालुम हो जावे कि, जैनमतवाले ऐसे ब्रह्मा, महादेव और विष्णुकों मानते हैं.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! मेरी इतनी बुद्धि वा शक्ति नही है, जो मैं यथार्थ ब्रह्मा, महादेव और विष्णुका पूरेपूरा स्वरूप लिख सकूं, तोभी पूर्वाचार्योंके प्रसादसें किंचित्मात्र लिखता हूं; जिसको ध्यान देके पढनेसें मालुम होगा कि, ब्रह्मा, महादेव और विष्णु ऐसे होते हैं.

प्रशांतं दर्शनं यस्य सर्वभूताभयप्रदं ॥
मांगल्यं च प्रशस्तं च शिवस्तेन विभाव्यते ॥ १ ॥

भावार्थः—जिस महादेवका अथवा तिसकी प्रतिमाका दर्शन प्रशांत है, दर्शन करनेवालेके मनकों प्रशांत करनेका हेतु होनेसें प्रशांत दर्शन

४

और तिनकी मूर्ति निरुपाधिक प्रशांतरूप होनेसें प्रशांत दर्शनवाली है. क्योंकि, जो त्रिभुवनमें प्रशांतरूप परिणामवाले परमाणु भगवान्‌के शरीरको लगे हैं, तैसें परमाणु तितनेही जगत्‌में हैं; इसवास्ते भगवान्‌के प्रशांतरूप समान अन्यरूप किसीका भी नही है. तथा तिनकी मूर्ति जैसी प्रशांताकारवाली है, तैसी जगत्‌में किसी भी देवकी नही है, इस वास्ते भगवान्‌का प्रशांत दर्शन है. और सर्वभूत प्राणियोंको अभयदान देनेवाला है, "अभय दयाणं इति वचनात्" क्योंकि, विद्यमान भगवान्‌के स्वरूप और तिनकी मूर्तिके स्वरूपमें कोईभी वस्तु भय देनेवाली नही है. जिसके हाथमें त्रिशूल, चक्र, परशु, तलवार आदि शस्त्र होवेंगे, वो देव अभय देनेवाला नही है, परंतु किसी वैरीके भयसें वा किसीके मारनेवास्ते शस्त्र धारण करे हैं. भगवान्‌में पूर्वोक्त दूषण नही हैं; इसवास्ते अभयदानका दाता है. और मांगल्यरूप है. "अरिहंता मंगलं इति वचनात्" और प्रशस्त भला है, प्रशस्त वस्तुरूप होनेसें. इस करके पूर्वोक्त विशेषणोंवाला होनेकरके शिव कहीये है. ॥ १ ॥

महत्वादीश्वरत्वाच्च यो महेश्वरतां गतः ॥
रागद्वेषविनिर्मुक्तं वंदेऽहं तं महेश्वरम् ॥२॥

भाषार्थः—प्रथम श्लोकमें शिवका स्वरूप कथन करा, अथ महेश्वरका स्वरूप कहते हैं. बडा होनेसें और ईश्वर होनेसें जो महेश्वरताको प्राप्त हुआ है, तिहां महत् शब्दका अर्थ बडा है, शुद्ध स्वरूप शुद्ध ज्ञानादि गुणोंसें, बडा होनेसें और सर्व देवताओंका ठाकुर (पूज्य) अलंघनीय आज्ञावाला और सर्वका नायक, अग्रेश्वरी होनेसें ईश्वर. क्योंकि, जो चैतन्य जड पदार्थ जगत्‌में है, वे सर्व तिसकी स्याद्वाद मुद्रारूप आज्ञाका उल्लंघन नही कर सक्ते हैं. और जो उल्लंघन करता है, सो तीन कालमें भी वस्तुस्वरूपको प्राप्त नही होता है. उक्तं च श्रीमद्धेमचंद्रसूरिप्रवरैः ॥

आदीपमाव्योम समस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ॥
तन्नित्यमेवैकमनित्यमन्यदिति त्वदाज्ञाद्विषतां प्रलापाः ॥१॥

भाषार्थः—'आदीपं' दीपकसें लेके 'आव्योम, व्योम मर्यादीकृत्य' आकाशपर्यंत, सर्व वस्तु पदार्थस्वरूप जो हैं, सो समस्वभाव हैं; तुल्यरूप हैं स्वभावस्वरूप जिसका, सो समस्वभाव. क्योंकि, वस्तुका स्वरूप द्रव्यपर्यायात्मक है, ऐसा हम कहते हैं. तैसेंही वाचक मुख्य श्री उमास्वातिजी तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं. "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सदिति" जो उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यकरके युक्त है सोइ सत् है. और जो सत् है सोई वस्तुका लक्षण है. समस्वभाव सर्व वस्तुयों किस हेतुसें ? ऐसें पृछकके पूछें थके विशेषणद्वारकरके हेतु कहते हैं. 'स्याद्वादमुद्रानतिभेदि'—'स्यात्' ऐसा अव्यय अनेकांतका द्योतक है. तब तो स्याद्वाद (अनेकांतवाद) नित्य–अनित्यादि अनेक धर्मोंके शबल स्वभाववाला एक वस्तुका मानना, तिसकी मुद्रा (मर्यादा) तिसको जो उल्लंघन न करे (न तोडे) सो स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु है. जैसें न्याय एकनिष्ट न्यायतत्पर राजाके राज्यशासन चलाते हुए, सर्व तिसकी प्रजा तिसकी मुद्रा (मर्यादा) का अतिक्रम नही करती हैं. जेकर अतिक्रम करे तो तिसके सर्व अर्थकी हानि होवे है. ऐसेंही विजयवंत निःकंटक स्याद्वाद महानरेंद्रके हुए, तिसकी स्याद्वादमुद्राका सर्वही पदार्थ अतिक्रम (उल्लंघन) नही कर सकते हैं. जेकर उल्लंघन करे तो तिनको स्वरूप व्यवस्थाकी हानिकी प्रसक्ति होनेसें अवस्तुपणेका प्रसंग होवेगा. और सर्व वस्तुयोंका जो समस्वभाव कथन करा है, सो परवादियोंको जो अभीष्ट मान्य है, एक व्योमादि वस्तु नित्यही है, अन्यत् प्रदीपादि अनित्यही है, ऐसे वादके प्रतिक्षेप खंडनका बीज है. सर्वही भाव पदार्थ द्रव्यार्थिक नयापेक्षासें नित्य है, और पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य है. तहां एकांत अनित्यपणेवादीयोंने अंगीकार करे प्रदीपको प्रथम नित्यानित्यपणेके व्यवस्थापनविषे दिङ्मात्र (संक्षेपमात्र) कथन करते हैं. तथाहि प्रदीपपर्यायको प्राप्त हुए तैजस परमाणु जे हैं, वे स्वभावें वा तैलके क्षयसें वा पवनके अभिघातसें ज्योतिःपर्यायको त्यागके तमोरूप पर्यायांतरको प्राप्त होते हुए भी एकांत अनित्य नही हैं. क्योंकि, पुद्गल द्रव्यरूपकरके वे सदा अवस्थितही हैं. इतने मात्रसेंही अनित्यता नही

है कि, पूर्व पर्यायका नाश और उत्तर पर्यायका उत्पाद होना. जैसें मट्टीरूप द्रव्य, स्थासक, कोश, कुशूल, शिवक, घटादि अवस्थांतरांको प्राप्त हुआ भी, एकांत विनष्ट नही होता है. तिन अवस्थायोंमें भी, मृत्तिकाद्रव्यके अनुगमको आबालगोपालादिकोंको प्रतीत होनेसें. और ऐसें भी न कहना कि, अंधकार, पुद्गलरूप नही है; नेत्रोंके विषयकी अन्यथा अनुपपत्ति होनेसें प्रदीपालोकवत् तिसको पौद्गलिकपणा सिद्ध है.

पूर्वपक्षः—जो चाक्षुष है, सो सर्व अपने प्रतिभासमें आलोककी अपेक्षा करता है. परंतु तम ऐसा नही है; तो फिर तमको कैसें चाक्षुषपणा होवे ?

उत्तरपक्षः—उलूकादिकोंको तिसके विनाभी अंधकारक प्रतिभास होनेसें. जिन अस्मदादिकोंने अन्यत् चाक्षुष घटादिक आलोक विना उपलंभ नही करीये है, तिनोंही अस्मदादिकोंने तिमिरको देखीये है भावोंके विचित्र होनेसें. अन्यथा कैसें पीत श्वेतादि भी, स्वर्ण, मुक्ताफलादि पदार्थ आलोककी अपेक्षासें दीखते हैं, और प्रदीप चंद्रादि प्रकाशांतरकी अपेक्षा रहित दीख पडते हैं. इससें सिद्ध हुआ कि, तमः चाक्षुष द्रव्य है. नेत्रोंसें दीखनेवाला द्रव्य है, और रूपवान् होनेसें. स्पर्शवाला भी जाना जाता है, शीतस्पर्शके ज्ञानका जनक होनेसें. और जे अनिवडावयवत्व, अप्रतिघातित्व, अनुद्भूतस्पर्शविशेषवत्त्व, अप्रतीयमान खंडावयविद्रव्यविभागत्व, इत्यादि तमके पौद्गलिकपणेके निषेध वास्ते परवादियोंने साधन उपन्यास करे हैं, वे सर्व प्रदीप प्रभाके दृष्टांत करकेही प्रतिषेध करने योग्य हैं, तुल्ययोग क्षेम होनेसें. और ऐसें भी न कहना कि, तैजस परमाणु तमपणे कैसें परिणमते हैं ? क्योंकि, पुद्गलोंमें तिस तिस सामग्रीके सहकारी हुआ, विसदृशकार्यका उत्पादकपणा भी देखनेसें आता है. देखा है आर्द्रेंधनके संयोगसें, भास्वररूप भी अग्निसें, अभास्वररूप धूमकार्यका उत्पाद. इस हेतुसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्यरूप प्रदीप है. जिस अवसरमें बूझनेसें पहिले देदीप्यमान दीप है, तिस अवसरसें भी नवीन नवीन पर्यायोंके उत्पाद व्ययका भागी होनेसें और प्रदीप अन्वयके होनेसें नित्यानित्यरूपही दीपक है.

ऐसें आकाश भी उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक होनेसें नित्यानित्यरूप है, सोही दिखाते हैं. अवगाहक जीव पुद्गलोंको अवगाह दानोपग्रहही तिसका लक्षण है. "अवकाशदं आकाशमिति वचनात्" यदा अवगाहक जीव पुद्गल प्रयोगसें वा स्वभावसें एक नभःप्रदेशसें प्रदेशांतरको प्राप्त होतेहै, तदा तिस नभःकाके तिन अवगाहकोंके साथ एक प्रदेशसें विभाग और उत्तर प्रदेशमें संयोग होता है और संयोग विभाग दोनों परस्पर विरुद्ध धर्म हैं, तिनके भेदसें अवश्य धर्मीका भेद है. तथा चाहुः—"अयमेव हिभेदो भेदहेतुर्वा यद्विरुद्धधर्माध्यासः कारणभेदश्च" यहही भेद वा भेदका हेतु है, जो विरुद्ध धर्माध्यास और कारणका भेद होना. तव तो सो आकाश पूर्वसंयोगविनाशलक्षण परिणामकी आपत्तिसें विनष्ट हुआ, और उत्तरसंयोगोत्पाद परिणाम अनुभावसें उत्पन्न हुआ, और दोनों जगे अनुगत होनेसें, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तव तो
अनुगत होनेसें, उत्पाद व्यय दोनोंका एकाधिकरण हुआ. तव तो
"यदप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यम्" ऐसा नित्यका लक्षण कहते हैं. सो खंडित हुआ, क्योंकि, ऐसे लक्षणवाला कोई भी पदार्थ नही है. "तद्भावाव्ययं नित्यं" यह नित्यका लक्षण सत्य है. उत्पाद विनाश दोनोंके हुए भी, तद्भावात् अन्वयिरूपसें जो नाश न होवे सो नित्य है. ऐसें तिसके अर्थको घटमान होनेसें. जेकर अप्रच्युतादि लक्षण माने, तव तो उत्पाद व्यय दोनोंको निराधारत्वका प्रसंग होवेगा और तिनके योगसें नित्यत्वकी हानि भी नही है.

द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्याया द्रव्यवर्जिताः ॥
क्व कदा केन किंरूपा, दृष्टा मानेन केन वा ॥ १ ॥

इति वचनात्.

भाषार्थः—द्रव्य पर्यायांरहित, और पर्यायां द्रव्यसें रहित किसी जगे, किसी कालमें, किसीने, किसी रूपवाले, किसी प्रमाणसें, देखे हैं? अपि तु नही देखे हैं. और ऐसें भी न कहना कि, आकाश द्रव्य नही है. क्योंकि, लौकिकोंमें भी घटाकाश है, पटाकाश है; इस व्यवहारकी प्रसिद्धिसें आकाशको नित्यानित्यत्व सिद्ध होता है. यदा घटाकाश भी घटके दूर हुए, और पटकरके आक्रांत हुए यह पटाकाश है, ऐसा व्यवहार है और यह भी न कहना कि, यह औपचारिक होनेसें प्रमाण नही. क्योंकि,

उपचारको भी किंचित् साधर्म्यद्वारसें मुख्यार्थका स्पर्शि होनेसें प्रमाणता है. आकाशका जो सर्वव्यापकत्व मुख्य प्रमाण है सो तिस तिस आधेय घटपटादि संबंधि नियत प्रमाणके वशसें कल्पित भेदके हुए प्रतिनियत देशव्यापि करके व्यवहार करते हुए घटाकाश पटाकाशादि तिस तिस व्यपदेशका निबंधन होता है. और तिस तिस घटादि संबंधके हुए व्यापकपणे करके अवस्थित आकाशको अवस्थांतरकी आपत्ति है, तव तो अवस्थाके भेद हुए. अवस्थावालेका भी भेद है. अवस्थाको तिससें अविष्वग्भाव होनेसें सिद्ध हुआ कि, नित्यानित्य आकाश है. स्वयंभूमतवाले भी नित्यानित्यही वस्तु मानते हैं. 'तथा चाहुस्ते' तीन प्रकारका निश्चय यह परिणाम है. धर्मिका धर्मलक्षण अवस्थारूप है. सुवर्ण धर्मि, तिसका धर्म परिणाम वर्द्धमान रुचकादि. धर्मका लक्षण परिणाम अनागतादि है. यदा यह हेमकार वर्द्धमानकको भांगके रुचककी रचना करता है, तदा वर्द्धमानक वर्त्तमानता लक्षणको छोडके अतीतताललक्षणको प्राप्त होता है. और रुचक तो अनागतता लक्षणको त्यागके वर्त्तमानताको प्राप्त होता है; और वर्त्तमानताको प्राप्त हुआ भी, रुचक नव पुराणादि भावको प्राप्त होता हुआ अवस्था परिणामवान् होता है. सो यह तीन प्रकारका परिणाम धर्मिके धर्मलक्षण अवस्था जे हैं, सो धर्मिसें भिन्न भी हैं, और अभिन्न भी हैं; ते धर्मिसें अभेद होनेसें नित्य हैं. और भेद होनेसें उत्पत्तिविनाशविषयत्व है. ऐसें दोनोही उपपन्न होते हैं.

अथ इस काव्यके उत्तरार्द्धका विवरण करते हैं. तन्नित्यमेवैकम्-इत्यादि—ऐसें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकत्व सर्व भावोंके सिद्ध हुआ भी, एक आकाशादिक नित्यही है; और अन्यत् प्रदीप घटादिक अनित्यही हैं; इस प्रकारसें दुर्नयवादापत्ति होवे है. अनंतधर्मात्मक वस्तुमें स्वाभिप्रेतनित्यत्वादिधर्मके सिद्ध करनेमें तत्पर होना, और शेष धर्मोंके तिरस्कार करनेमें प्रवर्त्त होना दुर्नयोंका लक्षण है. इस उल्लेखकरके तेरी आज्ञाके द्वेषी तेरे कथन करे शासनके विरोधियोंके प्रलापाः प्रलपितानि असंबद्धवाक्य तिनके हैं. यहां प्रथम आदीपमिति इससें परप्रसिद्धिकरके अनित्यपक्ष उल्लेखके हुए भी जो आगे

यथासंख्य उत्तर करके पूर्वतर नित्यही एक है, सो ऐसें ज्ञापन करता है कि, जो अनित्य है सो भी कथंचित् नित्यही है. और जो नित्य है, सो भी कथंचित् अनित्यही है. प्रकांतवादीयोंने भी एकही पृथ्वीमें नित्यानित्यत्व माना है. "तथा च प्रशस्तकारः' पृथिवी दो प्रकारकी है. नित्या और अनित्या, परमाणु लक्षणा नित्या है, और कार्यलक्षणा अनित्या है. और ऐसें भी न कहना कि यहां परमाणुकार्य द्रव्यलक्षणविषय दो भेदोंसें एकाधिकरण नित्यानित्य नही है. क्योंकि, पृथिवीत्वका दोनों जगे अव्यभिचार होनेसें. ऐसें अप् आदिकमें भी जानना. आकाशसें भी तिनोने संयोगाविभाग अंगीकार करनेसें अनित्यत्व युक्तिसें मानाही है. तथा च स एवाह' शब्दकारणत्व वचनसें संयोगविभाग हैं. ऐसें नित्यानित्य दोनों पक्षोंको संवालितत्व है. और यह स्वरूप लेशमात्रसें ऊपर लिख आए हैं. प्रलापप्रायत्व परवादीयोंके वचनोंका इस प्रकारसें समर्थन करना योग्य है. वस्तुका प्रथम तो अर्थक्रियाकारित्व लक्षण है, सो लक्षण एकांत नित्य अनित्य पक्षोंमें घटता नही है. अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिरैकरूप जो नित्य है, सो क्रमकरके अर्थक्रिया करता है, वा अक्रम करके. परस्पर व्यवच्छेद रूपोंको प्रकारांतरके असंभव होनेसे तहां क्रम करके अर्थक्रिया तो नही करता है. क्योंकि, सो कालांतरभाविनीक्रिया प्रथम क्रिया कालमेंही जबरदस्तीसें करे समर्थको कालक्षेप करना अयोग्य है; कालक्षेपिको असमर्थ प्राप्ति होनेसें. जेकर कहेंगे समर्थ भी तिस तिस सहकारिके समवधानके हुए तिस तिस अर्थको करता है. तव तो सो समर्थ नही है. अपर सहकारिकी सापेक्षवृत्ति होनेसें. सापेक्ष जो है, सो समर्थ नही. इस न्यायसें जेकर कहोगे वो तो सहकारिकी अपेक्षा नही करता है. किंतु कार्यही सहकारिके न हुए, नही होता है, इस वास्ते तिनकी अपेक्षा करता है. तब तो सो भाव समर्थ है वा असमर्थ है? जेकर समर्थ है तो काहेको सहकारीयोंके मुखको देखता है? जलदीही क्यों नही करता है?

पूर्वपक्षः—समर्थ भी बीज, पृथिवी, जल पवनादि सहकारीयोंकेसहितही अंकुरको करता है, अन्यथा नही.

उत्तरपक्षः—सहकारियोंने तिसकों किंचित् उपकार करीये है, वा नही? जेकर नही करीये है, तब तो सहकारीयोंकी संनिधानसें पहिलेकी तरें क्यों नही अर्थक्रियामें उदास रहता है? जेकर उपकार करीये है, तब तो सो उपकार तिनोंने भिन्न कर्याये हैं वा अभिन्न? जेकर अभिन्न करीये हैं तब तो तिसकोही करीये हैं ऐसें तो लाभ इच्छते हुए मूलहानिही आ गई. कृतक होनेसें, तिसको अनित्यताकी आपत्तिसें. जेकर भेद है, तो सो उपकार तिसको कैसें हुआ? सह्य और विंध्याचलको क्यों न हुआ?

पूर्वपक्षः—तिसके साथ संबंध होनेसे तिसका यह उपकार है.

उत्तरपक्षः—उपकार्य उपकारका क्या संबंध है? संयोगसंबंध तो नही. क्योंकि, वो तो द्रव्योंकाही होता है. यहां तो उपकार्य द्रव्य है, और उपकार क्रिया है, इसवास्ते संयोगसंबंध तो नही है. और समवायसंबंध भी नही है. क्योंकि, तिसको एक होनेसें और व्यापक होनेसें, निकट दूरके अभावसें, सर्वत्र तुल्य होनेसें. नियतसंबंधियोंके साथ भी संबंधयुक्त नही है. क्योंकि, नियतसंबंधिसंबंधके अंगिकार करे हुए तिसका करा उपकार इस समवायका अंगिकार करना चाहिये. तैसें हुए उपकारको भेदाभेद कल्पना तैसेंही है. उपकारको समवायसें अभेद हुए समवायही करा सिद्ध हुआ. और भेद माने भी समवायको नियतसंबंधिसंबंधत्व नही है. तिस वास्ते एकांत नित्यभाव क्रमकरके अर्थक्रिया नही करता है. और युगपत भी अर्थक्रिया नही करता है. एक भाव सकल कालमें होनेवालीयां युगपत् सर्व क्रियाओंको करता है, ऐसी प्रतीति नही होती है. जेकर करे तो दूसरे समयमें क्या करेगा? जेकर करेगा तो क्रमभावी पक्षके दूषण होवेंगे. जेकर न करेगा तो अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें अवस्तुत्वका प्रसंग है. ऐसें एकांत नित्यसें क्रमाक्रमकेसाथ व्याप्त अर्थक्रिया व्यापकानुपलब्धिके बलसें व्यापक निवर्तन होनेसें निवर्तमान होती हुई स्वव्याप्य अर्थक्रियाकारित्वको निवर्तन करे हैं. और अर्थक्रियाकारित्व निवर्तमान होता हुआ स्वव्याप्यसत्वको निवर्तन करता है. इस वास्ते, एकांत नित्य पक्ष भी युक्तिक्षम नही है. एकांत अनित्य पक्ष भी अंगीकार करने योग्य नही है. अनित्य जो है सो प्रतिक्षण-

विनाशी है सो क्रमकरके अर्थक्रिया करनेको समर्थ नही है, देशकृत कालकृत क्रमकेही अभावसें. क्रम जो है सो पूर्वापर है, सो क्षणिकमें संभवे नही है. क्योंकि, अवस्थितकोंही नाना देशकालव्याप्ति है; और देशक्रम कालक्रम भी कहिये है. और एकांत विनाशीमें सा है नही. 'यदाहुः'

यो यत्रैव स तत्रैव यो यदैव तदैव सः॥
न देश कालयोर्व्याप्तिर्भावानामिह दृश्यते॥ १॥

भाषाः—जो जहां है सो तहांही है. जो जिस कालमें है सो तिसही कालमें है. भावोंकी यहां देशकालोंविषे व्याप्ति नही दीखती है. और संतानकी अपेक्षाकरके भी पूर्वोत्तर क्षणोंको क्रम संभव नही है, संतानको अवस्तु होनेसें. वस्तुके हुए भी जेकर तिसको क्षणिकत्व है, तब तो क्षणोंसें कुछ भी विशेष नही है. जेकर अक्षणिकत्व है, तब तो क्षणभंगवाद समाप्त हुआ. अक्रमकरके भी क्षणिकमें अर्थक्रियाका संभव नही है. सो क्षणिक एक वीजपूरादि रूपादिक्षण युगपत् अनेक रसादि क्षणोंको उत्पादन करता हुआ एक स्वभावकरके उत्पन्न करता है, वा नाना स्वभावोंकरके? जेकर एककरके करता है, तब तो तिन रसादि क्षणोंका एकत्वपणा होवेगा; एक स्वभावसें जन्य होनेसें. अथ नाना स्वभावोंकरके उत्पन्न करता है, किंचित् रूपादि उपादानभावकरके, किंचित् रसादि सहकारिपणेकरके, तव तो वे स्वभाव तिसके आत्मभूत है वा अनात्मभूत है? जेकर अनात्मभूत है, तव तो स्वभावत्वकी हानि है. जेकर आत्मभूत है तब तो तिसको अनेकत्वपणा है, अनेक स्वभावत्व होनेसें. अथवा अनेक स्वभावोंको एकत्वका प्रसंग है. तिससें तिनको अव्यतिरिक्त होनेसें और तिसको एक होनेसें. अथ जोहि एकत्र उपादानभाव है सोही अन्यत्र सहकारिभाव है; इस वास्ते स्वभावभेद नही मानते हैं, तब तो नित्य एक रूपको भी क्रमकरके नाना कार्यकारिको स्वभावभेद और कार्यसांकर्य कैसे माना है क्षणिकवादियोंने? अथ नित्य जो है सो, एकरूपवाला होनेसें अक्रम है और अक्रमसें क्रमकरके होनेवाले नाना कार्योंकी कैसें

उत्पत्ति होवें ? अहो स्वपक्षपाती देवानांप्रिय बौद्धो ! जो वस्तु स्वयं एक निरंशरूपादिक्षण लक्षणकारणसें युगपत् अनेक कारणसाध्य अनेक कार्योंको अंगीकार करता हुआ भी परपक्षे नित्य भी वस्तुमें क्रमकरके नाना कार्य करनेमें भी विरोध उद्भावन करता है. तिस वास्ते, क्षणिक भावको भी अक्रमकरके अर्थक्रिया दुर्घट है. इस वास्ते एकांत अनित्यसें भी क्रमाक्रम व्यापकोंकी निवृत्ति होनेसें व्याप्य अर्थक्रिया भी निवृत्त होवे है. और तिसकी निवृत्तिके हुए सत्व भी व्यापकानुपलब्धि-वलकरकेही निवर्त्तता है. इससें एकांत अनित्यवाद भी रमणीय नही है. और स्याद्वादमें तो पूर्वोत्तराकार परिहार स्वीकार स्थिति लक्षण परिणाम करके भावोंको अर्थक्रियाकी उपपत्ति अविरुद्ध है. ऐसें भी न कहना कि, एकत्र वस्तुमें परस्पर विरुद्ध धर्माध्यासयोगसें स्याद्वाद असत् है. क्योंकि, नित्य पक्ष अनित्य पक्षसें विलक्षण पक्षांतरके अंगीकार करनेसें. और तैसेंही सर्व जनोने अनुभव करनेसें ॥ १ ॥

तथाच पठंति ॥ भागे सिंहो नरो भागे योर्थो भागद्वयात्मकः ॥
तमभागं विभागेन नरसिंहं प्रचक्षते ॥ २ ॥

भावार्थः—तथा वैशेषिकोंने भी चित्ररूप एक अवयवीके माननेसें एकही पटादिके चलाचल रक्तारक्त आवृतानावृतत्वादि विरुद्ध धर्मोंकी उपलब्धिसें और सौगतोंने भी एकत्र चित्रपटी ज्ञानमें नील अनीलके विरोधको अनंगीकार करनेसें स्याद्वाद मानाहै. यहां यद्यपि अधिकृतवादी प्रदीपादिकको कालांतर अवस्थायि होनेसें क्षणिक नही मानते हैं. तिनके मतमें पूर्वापर तावत् छिन्नसत्ताकोंही अनित्यता लक्षणतें. तो भी बुद्धिसुखादिकको वे भी क्षणिकताकरकेही मानते हैं. तिनके अधिकारमें भी क्षणिकवाद चर्चा अनुपपन्न नही हैं. और जो भी कालांतरावस्थायि वस्तु है, सो भी नित्यानित्यही है. क्षण भी ऐसा कोइ नही है. जहां वस्तु उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक नही है. इति काव्यार्थः ॥ २ ॥

महेश्वरका स्वरूप कथन करके महादेवका स्वरूप श्लोक ११ करके कथन करते हैं.

महाज्ञानं भवेद्यस्य लोकालोकप्रकाशकम् ॥
महादया दमो ध्यानं महादेवः स उच्यते ॥ ३ ॥

भाषा—बडा ज्ञान, अर्थात् केवलज्ञान, लोकालोकके स्वरूपका प्रकाशक होवे, जिसकों और जीवनमोक्षावस्थामें महादया, महादम और महाध्यान, शुक्लध्यान होवे जिसकों सो महादेव कहा जाता है ॥ ३ ॥

महांतस्तस्करा ये तु तिष्ठन्तः स्वशरीरके ॥
निर्जिता येन देवेन महादेवः स उच्यते ॥ ४ ॥

भाषा—जे वडे भारी तस्कर छद्मस्थावस्थामें अपने शरीरमें रहे हुए अष्टादश (१८) दूषणरूप, वे सर्व जिस देवने अपुनर्भवरूपसें जीते हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ४ ॥

रागद्वेषौ महामल्लौ दुर्जयौ येन निर्जितौ ॥
महादेवं तु तं मन्ये शेषा वै नामधारकाः ॥५॥

भाषा—राग अभिष्वंगरूप, द्वेष अप्रीतिरूप, ये दोनो महामल्ल दुर्जय हैं; जीतने कठिन हैं. परं जिसने ये पूर्वोक्त दोनो मल्ल जीते हैं, तिसकों तो मैं सच्चा महादेव मानता हूं. और जो रागी द्वेषीकों लोक महादेव मानते हैं, सो नाममात्रसें महादेव है; नतु यथार्थ स्वरूपसें. होलिके वाद-शाहवत् ॥ ५ ॥

शब्दमात्रो महादेवो लौकिकानां मते मतः ॥
शब्दतो गुणतश्चैवार्थतोपि जिनशासने ॥ ६ ॥

भाषा—शब्दमात्र (कथनमात्र) महादेव तो लौकिक मतवालोंके मतमें मान्य है, और जैसा शब्द तैसाही अर्थ होवे, अर्थात् शब्दसें जो अर्थ निकले तिस अर्थरूप गुणसंयुक्त जो होवे, तिसकों जैन मतमें महादेव मानते हैं ॥ ६ ॥

शक्तितो व्यक्तितश्चैव विज्ञानं लक्षणं तथा ॥
मोहजालं हतं येन महादेवः स उच्यते ॥ ७ ॥

भाषा—शक्ति क्षायकज्ञानलब्धिरूप और व्यक्ति ज्ञानउपयोग लक्षण,

लब्धिकी अपेक्षा ज्ञानशक्ति सादि अनंत है, और ज्ञानोपयोगलक्षणसें सादि सांत, और द्रव्यार्थक नयकी विवक्षासें अनादि, अनंत ऐसा विज्ञानरूप लक्षण है जिसका तथा मोहजाल अर्थात् अट्ठाइस (२८) उत्तरप्रकृतिरूप मोहका जाल जिसने हत (नष्ट) किया है, सो महादेव कहा जाता है ॥ ७ ॥

नमोऽस्तु ते महादेव महामद विवर्जित ॥
महालोभविनिर्मुक्त महागुणसमन्वित ॥ ८ ॥

भाषा–महामद करके विवर्जित (रहित), महालोभ करके रहित, और महागुणसंयुक्त, ऐसे हे महादेव! तेरेकों नमस्कार होवे ॥ ८ ॥

महारागो महाद्वेषो महामोहस्तथैव च ॥
कषायश्च हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ९ ॥

भाषा–महाराग, महाद्वेष, महाअज्ञान, चशब्दसें सूक्ष्म सत्तागत जो स्वल्प भी राग, द्वेष, अज्ञान और षोडश प्रकारका कषाय ये पूर्वोक्त दूषण जिसने हने हैं, निःसत्ताकीभूत करे हैं सो महादेव कहा जाता है ॥ ९ ॥

महाकामो हतो येन महाभयविवर्जितः ॥
महाव्रतोपदेशी च महादेवः स उच्यते ॥ १० ॥

भाषा–महा काम, जो सर्व जगत्में व्यापक हो रहा है, तिसकों जिसने हण्या है, और जो सात प्रकारके महाभयकरके विवर्जित (रहित) है, और जो पंच महाव्रतका उपदेशक है, सो महादेव कहा जाता है ॥१०॥

महाक्रोधो महामानो महामाया महामदः ॥
महालोभो हतो येन महादेवः स उच्यते ॥ ११ ॥

महाक्रोध, महामान, महामाया, महामद, महालोभ, ये जिसने हनन किये हैं, सो महादेव कहा जाता है ॥ ११ ॥

महानन्दो दया यस्य महाज्ञानी महातपः ॥
महायोगी महामौनी महादेवः स उच्यते ॥ १२ ॥

भाषा–अतिशय आत्मानंद, और दया (परम करुणा) है जिसके, और जो

महाज्ञानी, महातपःस्वरूप, महायोगी सर्व योगोंका जाननहार, और धारनहार है; और जो महामौनी, सावद्य वचनसें रहित है, सो महादेव कहा जाताहै ॥ १२ ॥

महावीर्यं महाधैर्यं महाशीलं महागुणः ॥
महामञ्जुक्षमा यस्य महादेवः स उच्यते ॥ १३ ॥

भाषा—महावीर्य, वीर्यांतरायकर्मके क्षय होनेसें अनंतवीर्य, महाधैर्य, छद्मस्थावस्थामें परीसह उपसर्गोंसें कदापि ध्यानसें चलायमान नहीं होनेसें, महाशील, अष्टादश सहस्र १८००० शीलांगवाले होनेसें, केवलज्ञानदर्शनादि अनंत महागुण, और महाकोमल मनोहर क्षमा है जिसके, सो महादेव कहा जाता है ॥ १३ ॥

स्वयंभूतं यतोज्ञानं लोकालोकप्रकाशकम् ॥
अनन्तवीर्यचारित्रं स्वयंभूः सोभिधीयते ॥ १४ ॥

भाषा—स्वयमेवही आत्मस्वरूपसेंही ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके क्षय होनेसें आविर्भूत हुआ है ज्ञानकेवलरूप लोकालोकका प्रकाशक जिसके, वीर्यांतराय कर्मके क्षय होनेसें आविर्भूत हुआ है अनंतवीर्य जिसके, और चारित्रमोहके क्षय होनेसें अनंतक्षायक चारित्र प्रगट हुआ है जिसके, तिस भगवान्कों स्वयंभू कहियेहैं. "शंभुः स्वयंभूर्भगवान्" इतिवचनात्॥१४॥

शिवो यस्माज्जिनः प्रोक्तः शंकरश्च प्रकीर्त्तितः ॥
कायोत्सर्गी च पर्यङ्की स्त्रीशस्त्रादिविवर्जितः ॥ १५ ॥

भाषा—शिव निरुपद्रव, अर्थात् जिसका स्वरूप निरुपद्रव है, और सर्व जगत्के निरुपद्रव होनेमें हेतु है; क्योंकि, जहां जहां भगवंत विचरते हैं, तहां तहां चारों तर्फ पच्चीस योजनतांइ दुष्ट व्यंतरकृत मरीज्वरादि नही होतेहैं. और स्वचक्रपरचक्रका भय नही होता है. और अवृष्टि, अतिवृष्टि तथा मूषक टीडप्रमुख धान्यके उपद्रवकारी जीव नही होते हैं. और जीवोंकों शिव अर्थात् मुक्तिपथका उपदेश देनेसें जिन भगवान् तीर्थंकरकोंही शिव कहतेहैं, चौतीस ३४ अतिशय संयुक्त होनेसें. पुनः तिसही भगवंतकों तीन भुवनके जीवोंकों उपदेशद्वारा शं (सुख) करनेसें शंकर

कहते हैं. "त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात्" इतिवचनात् । भगवंतके दोही आसन हैं, कायोत्सर्गासन वा पर्यंकासन. पुनः भगवंतकी मुद्रा, स्त्री और चक्र त्रिशूलादि, आदिशब्दसें जपमाला, यज्ञोपवीत, कमंडलु इत्यादिसें रहित होतीहै. क्योंकि, इनके रखनेसें भगवान् कामी, क्रोधी, अज्ञानी, अशुची इत्यादि दूषणोंवाला सिद्ध होता है. यदुक्तं "स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः॥ व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमण्डलुः" इति ॥ १८ ॥

साकारोऽपि ह्यनाकारो मूर्त्तामूर्त्तस्तथैव च ॥
परमात्मा च बाह्यात्मा अन्तरात्मा तथैव च ॥ १६ ॥

भाषा–देहसंयुक्त तेरमे चौदमे गुणस्थानमें जबतांइ औदारिक, तैजस, कार्मण शरीरोंकेसाथ संबंधवाला है, तबतांइ ईश्वर साकारस्वरूपवाला है; और जब सिद्धपदकों प्राप्त होताहै, तब निराकारस्वरूप कहा जाता है. ईश्वर साकारावस्थामें मूर्तिमान् है, और सिद्धपदकी अपेक्षा अमूर्त्तस्वरूप है, परमात्मा है, बाह्यात्मस्वरूपवाला है, और अंतरात्मास्वरूपवाला भी है. कथंचित् भगवंतमें पूर्वोक्त सर्वस्वरूप घटे हैं, सोही स्याद्वाद शैलीकरके दिखाते हैं ॥ १६ ॥

दर्शनज्ञानयोगेन परमात्मायमव्ययः ॥
परा क्षान्तिरहिंसा च परमात्मा स उच्यते ॥ १७॥

भाषा–दर्शनज्ञानके योगकरके अर्थात् ज्ञानदर्शनस्वरूपकरके जो परमात्मास्वरूपकों प्राप्त हुआ है. । 'नाणदंसणलक्खणं' इतिवचनात् । और जो अव्ययरूपवाला है. "तद्भावाव्ययं नित्यम्" इतिवचनात् । और उत्कृष्ट क्षमा और अहिंसा इनकरके जो संयुक्त है, सो परमात्मा कहा जाताहै ॥ १७ ॥

परमात्मासिद्धिसंप्राप्तौ बाह्यात्मा तु भवान्तरे ॥
अन्तरात्मा भवेद्देह इत्येषस्त्रिविधः शिवः ॥ १८ ॥

भाषा–जब सिद्धिमुक्तिकों प्राप्त होवे तब परमात्मा जानना, अर्थात् तेरमें चौदमें गुणस्थानसें सिद्धिपदप्राप्तितक परमात्मा कहा जाताहै. और

जबतांइ चौथा गुणस्थान प्राप्त नही होता, तबतांइ बाह्यात्मा कहा जाता है. और चौथे गुणस्थानसें लेकर बारमे गुणस्थानतांइ देहमें रहे, तिसकों अंतरात्मा कहते हैं. यह तीनो प्रकारका शिव कहा जाता है॥१८॥

सकलो दोषसंपूर्णो निष्कलो दोषवर्जितः ॥
पञ्चदेहविनिर्मुक्तः संप्राप्तः परमं पदम् ॥ १९ ॥

भाषा–जबतांइ सकल है, अर्थात् घातिकर्मचतुष्टयकी उत्तरप्रकृतियां ४७ रूप कलाकरके संयुक्त है तबतांइ सदोष है, और जगत्में भ्रमण करता है. और जब निष्कल होता है, पूर्वोक्त उपाधियोंसें रहित होता है तब दोषविवर्जित है. और पंच देह (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण,) इन पांचप्रकारके शरीरोंसे मुक्त होता है, तब परमपदकों प्राप्त होता है ॥ १९ ॥

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
तान्येव पुनरुक्तानि ज्ञानचारित्रदर्शनात् ॥ २० ॥

भाषा–एकमूर्ति द्रव्यार्थिकनयके मतसें, परंतु एकही मूर्त्तिके पर्यायार्थिक नयके मतकरके तीन भाग ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वररूपसें कहे हैं, वे ऐसें हैं. ज्ञानस्वरूपकों विष्णु, चारित्रस्वरूपकों ब्रह्मा और सम्यग्दर्शनस्वरूपकों महेश्वर कहते हैं. पर्यायार्थिकनयके ये तीनो गुण अविरोधिपणे एक द्रव्यमें रहते हैं. जैसें अग्निमें उष्णता, पीतता, रक्तता रहती है. तैसें एक आत्माद्रव्यमें तीन गुण एकमूर्त्तिमें रहतेहैं. इस हेतुसें तीनोंकी एक मूर्त्ति है ॥ २० ॥

अब लौकिक मतमें जो तीन देवोंकी एकमूर्त्ति मानते हैं, सो संभव नही होती है, सोही दिखाते हैं.

एकमूर्त्तिस्त्रयो भागा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥
परस्परं विभिन्नानामेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २१ ॥

भाषा–एकमूर्त्ति, तीन भाग, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इन तीनो परस्पर विशेष भिन्नोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? अपि तु न होवे ॥ २१ ॥

कार्यं विष्णुः क्रिया ब्रह्मा कारणं तु महेश्वरः ॥
कार्यकारणसंपन्ना एकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २२ ॥

भाषा—विष्णु तो कार्यरूप है, ब्रह्मा क्रियारूप है, और महेश्वर कारणरूप है; तब कार्य कारण प्राप्त हुआंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? क्योंकि, कारण, कार्य, क्रिया ये तीनो एकरूप नही हो सक्के हैं ॥ २२ ॥

प्रजापतिसुतो ब्रह्मा माता पद्मावती स्मृता ॥
अभिजिज्जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २३ ॥

भाषा—ब्रह्माके पिताका नाम प्रजापति, प्रजापति ऋषिका पुत्र ब्रह्मा हुआ; ब्रह्माकी माताका नाम पद्मावती, ब्रह्माका जन्म अभिजित् नक्षत्रमें हुआ था. अभिजित् नक्षत्रका अधिष्ठाता देवताका नाम ब्रह्मा है, इसवास्ते पुत्रका नाम ब्रह्मा रक्खा ॥ २३ ॥

वसुदेवसुतो विष्णुर्माता च देवकी स्मृता ॥
रोहिणी जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २४ ॥
पेढालस्य सुतो रुद्रो माता च सत्यकी स्मृता ॥
मूलं च जन्मनक्षत्रमेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ २५ ॥

भाषा—वसुदेवका पुत्र विष्णु हुआ, और माता देवकी कही, और रोहिणी नक्षत्रमें जन्म हुआ, पेढालका पुत्र रुद्र हुआ, और माताका नाम सत्यकी, दूसरा नाम सुज्येष्ठा, और मूलनक्षत्रमें जन्म हुआ, इस पृथक् २ हेतुसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे ॥ २४ ॥ २५ ॥

रक्तवर्णो भवेद्ब्रह्मा श्वेतवर्णो महेश्वरः ॥
कृष्णवर्णो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २६ ॥
अक्षसूत्री भवेद्ब्रह्मा द्वितीयः शूलधारकः ॥
तृतीयः शंखचक्रांक एकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २७ ॥
चतुर्मुखो भवेद्ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽयं महेश्वरः ॥
चतुर्भुजो भवेद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २८ ॥

मथुरायां जातो ब्रह्म राजगृहे महेश्वरः ॥
द्वारावत्यामभूद्विष्णुरेकमूर्तिः कथं भवेत् ॥ २९ ॥
हंसयानो भवेद्ब्रह्मा वृषयानो महेश्वरः ॥
गरुडयानो भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३० ॥
पद्महस्तो भवेद्ब्रह्मा शूलपाणिर्महेश्वरः ॥
चक्रपाणिर्भवेद्विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३१ ॥

भाषा–ब्रह्माके शरीरका रंग लाल, महादेवका श्वेत, और विष्णुका कृष्ण था. ब्रह्माने जपमाला धारण करी है, महादेवने शूल, और विष्णुने शंख, चक्र धारण करे हैं. ब्रह्माके चार मुख थे, महादेवके तीन नेत्र थे, और विष्णुकी चार भुजायां थी. ब्रह्मा मथुरानगरीमें उत्पन्न भया, महादेव राजगृहमें, और विष्णु द्वारिकामें. ब्रह्माका वाहन हंस था, महादेवका वैल, और विष्णुका गरुड. ब्रह्माके हाथमें कमल था, महादेवके हाथमें शूल (त्रिशूल), और विष्णुके हाथमें चक्र था. इत्यादि विलक्षण हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥२६॥२७॥२८॥२९॥३०॥३१॥

कृते जातो भवेद्ब्रह्मा त्रेतायां च महेश्वरः ॥
द्वापरे जनितो विष्णुरेकमूर्त्तिः कथं भवेत् ॥ ३२ ॥

भाषा–कृतयुगमें अर्थात् सतयुगमें ब्रह्मा उत्पन्न भए, त्रेतायुगमें महेश्वर उत्पन्न हुए, और द्वापरयुगमें विष्णु उत्पन्न हुए, इन हेतुओंसें इन तीनोंकी एकमूर्त्ति कैसें होवे? ॥ ३२ ॥

इन पूर्वोक्त तीनो देवोंकी एकमूर्त्ति नही हो सक्ती है, पृथक् २ गुणोंके होनेसें. अव जिसतरें तीनोंकी एकमूर्त्ति होवेहै, सो दिखाते हैं.

ज्ञानं विष्णुस्सदा प्रोक्तं चारित्रं ब्रह्म उच्यते ॥
सम्यक्तं तु शिवं प्रोक्तमर्हन्मूर्त्तिस्त्रयात्मिका ॥ ३३ ॥

भाषा–ज्ञानकों सदा विष्णु कहते हैं, चारित्रकों ब्रह्मा कहते हैं, और सम्यक्त जो है तिसकों शिव कहते हैं. इसवास्ते 'अर्हन्' जो है, सो त्रयात्मक मूर्त्तिरूप है. अर्थात् ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन तीनों गुणमयी अर्हन्की

आत्मा है. क्योंकि, ये तीनो गुण आत्माद्रव्यसें, कथंचित् भेदाभेदरूप है. जब द्रव्यार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब तो एक द्रव्य होनेसें एकही मूर्ति है. और जब पर्यायार्थिक नयके मतसें विचारिए, तब ज्ञान-दर्शनचारित्ररूप तीनो गुणोंके भिन्न २ होनेसें तीन रूप सिद्ध होते हैं. और स्याद्वादवादीके मतमें कथंचित् द्रव्यपर्यायके भेदाभेद होनेसें, एक-मूर्त्ति त्रयात्मक हैं. इस हेतुसें अर्हन्‌ही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके रूपके धारक हैं; अन्य नही ॥ ३३ ॥

पूर्वपक्षः–जैसें आपने ज्ञानदर्शनचारित्रकी अपेक्षा, अर्हन्मूर्ति त्रयात्मक मानी हैं, तैसेंही, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकी मूर्त्ति माननेमें क्या दोष है?

उत्तरपक्षः–हे प्रियवर! ऐसी मानी जाय और पूर्वोक्त ज्ञानदर्शनचारित्र उनोंमें सिद्ध होवे, तब तो कोइ भी दोष न आवे. अन्यथा वेश्याका सतीके गुणोंसें वर्णन करनेसदृश है. क्योंकि, लौकिकमतवालोंने जैसें ब्रह्मा, विष्णु, महादेव माने हैं, तिनोंमें पुराणादि शास्त्रोंके लेखसें, पूर्वोक्त ज्ञान, दर्शन, चारित्रमेसें एक भी सिद्ध नही होता है. सोही हम लिख दिखाते हैं—यथा मत्स्यपुराणे तृतीयाध्याये॥

सावित्रीं लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः ॥
ततः संजपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम् ॥ ३० ॥
स्त्रीरूपमर्द्धमकरोदर्द्धं पुरुषरूपवत् ॥
शतरूपा च साख्याता सावित्री च निगद्यते ॥ ३१ ॥
सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परन्तप ॥
ततः स्वदेहसंभूतामात्मजामित्यकल्पयत् ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत्कामबाणार्दितो विभुः ॥
अहोरूपमहोरूपमिति चाह प्रजापतिः ॥ ३३ ॥
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः ॥
ब्रह्मा न किंचिद्ददृशे तन्मुखालोकनादृते ॥ ३४ ॥

अहोरूपमहोरूपमिति प्राह पुनः पुनः ॥
ततः प्रणामनघां तां पुनरेवाभ्यलोकयत् ॥ ३५ ॥
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी ॥
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया ॥ ३६ ॥
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डु गण्डवत् ॥
विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः ॥ ३७ ॥
चतुर्थमभवत्पश्चाद्वामं कामशरातुरम् ॥
ततोन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा ॥ ३८ ॥
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात् ॥
सृष्ट्यार्थं यत्कृतं तेन तपः परमदारुणम् ॥ ३९ ॥
तत्सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया ॥
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत्पंचमं तस्य धीमतः
आविर्भवज्जटाभिश्च तद्वक्त्रं चावृणोत्प्रभुः ॥ ४० ॥
ततस्तानब्रवीद्ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान् ॥
प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः ॥
गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम् ॥ ४२ ॥
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिंदिताम् ॥
सम्बभूव तया सार्द्धमतिकामातुरो विभुः ॥
सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे ॥ ४३ ॥
यावदष्टशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः ॥
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः ॥ ४४ ॥

भाषा—प्रथम ब्रह्माजी लोककी रचनाके निमित्त बडी सावधानीसें हृदयमें सावित्रीको धारण करके उसको जपते हुए पापरहित देहको भेदन करके

आधे शरीरको स्त्रीरूप और आधेको पुरुषरूप करते भये. इस सावित्रीको शतरूपा कहते हैं. और इसीको गायत्री और ब्रह्माणी भी कहते हैं. फिर वह ब्रह्माजी अपने देहसें उत्पन्न हुई उस स्त्रीकों अपनी आत्मजा (पुत्री) मानने लगे. तदनंतर उसकों देखकर कामदेवके बाणोंसें महापीडित हुए ब्रह्माजी आश्चर्यपूर्वक यह कहने लगे कि, अहो बडा आश्चर्य है कि, इसका कैसा सुंदर चित्तरोचक रूप हैं. फिर वसिष्ठादिक जो ब्रह्माके पुत्र थे, वह उसको अपनी बहन समझने और कहने लगे. और ब्रह्माजी सबकों त्याग कर उसके मुखकीही ओर देखने लगे. अर्थात् उस नम्रमुखी सावित्रीके रूपको वारंवार देख कर कहने लगे कि, इसका रूप कैसा आश्चर्यकारी सुंदर है. इसके पीछे वह सुंदर रूपरंगवाली सरस्वती अपने पिताकी प्रदक्षिणा करती भई. उस समय पुत्रोंसे लज्जित होकर ब्रह्माजीका मुख उसके देखनेकी इच्छाकरके दाहिनी ओरसें पीला हो गया, और ओष्ठ भी फुरने लगे; तब तो आश्चर्य करनेसे अपने मुखकों पीछे करलिया. इसके अनंतर कामदेवकी पीडासें युक्त होकर ब्रह्माजीका मुख महाकामातुरतासें उसके देखनेकों आश्चर्यित होके शोभित हुआ. उस समयपरही सरस्वतीकेही समानरूपवाली एक दूसरी स्त्री उत्पन्न हो गई. और जो कि ब्रह्माजीने सृष्टि रचनेकेलिये बडा दारुण तप किया था, वह ब्रह्माजीका किया हुआ तप अपनी पुत्रीके संग भोग करनेकी इच्छा करनेसें नष्ट हो गया था, इस हेतुसें ब्रह्माजीके ऊपरकी ओर पांचवां मुख उत्पन्न होता भया. तब उस समर्थ ब्रह्माजीने उस पांचवें मुखको अपनी जटाओंसे ढककर अपने पूर्वोक्त पुत्रोंसे कहा कि, तुम देवता, राक्षस और मनुष्यादि सब प्रकारकी प्रजाको रचो. उनकी आज्ञा पातेही वह सब ब्रह्माके पुत्र अनेक प्रकारकी प्रजाओंकी सृष्टि रचनेको चले गये. उनके चलेजानेके पीछे कामके बाणोंसे महापीडित ब्रह्माजी नम्रमुखी और अनिंदित अपनी शतरूपानाम स्त्रीको ग्रहणकरके बडी लज्जासें युक्त होकर देवताओंके सो वर्षपर्यंत अन्य अज्ञानी मनुष्योंकेसमान उससें रमण करते भये—फिर बहुत कालपीछे उसको मनु नाम पुत्र हुआ—इत्यादि तथा अध्याय चौथे अध्यायमें लिखाहै कि, ब्रह्माजी वेदकी

राशि है, और गायत्री उसकी अधिष्ठात्री है, इस हेतुसें गायत्रीके संग गमन करनेमें ब्रह्माजीको कुछ दोष नहीं है. ऐसा होनेपर भी पूर्वके प्रजापति ब्रह्माजी अपनी पुत्रीके साथ संगम करनेसें बडे लज्जित हुए, और क्रोधसें कामदेवको यह शाप देते भये कि, जो तैंने मेरा भी मन अपने बाणोंसे चलायमान कर दिया, इसहेतुसे शीघ्रही तेरे शरीरको—शिवजी भस्म करेंगे.–इत्यादि–तथा च नवषष्टितमेऽध्याये ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः ॥
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः ॥
पुण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः ॥१॥

॥ ईश्वर उवाच ॥

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश ॥
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव ॥ २ ॥
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले ॥
पुष्पिते पवनोत्फुल्लकह्लारसरसस्तटे ॥ ॥ ३ ॥
निर्भरापानगोष्ठीषु प्रसक्ताभिरलंकृतः ॥
कुरंगनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः ॥ ४ ॥
गच्छन् समीपमार्गेण सांबः परपुरंजयः ॥
साक्षात्कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः ॥ ५ ॥
अनंगशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः ॥
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि ॥ ६ ॥
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा ॥
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यंति दस्यवः ॥
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम् ॥७॥

ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत् ॥
ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः ॥८॥
उत्तारभूतं दासत्वं समुद्राद्ब्राह्मणप्रियः ॥
उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम् ॥ ९ ॥
भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद्व्रतं कथयिष्यति ॥
तदेवोत्तारणायालं दासत्वेऽपि भविष्यति ॥
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः ॥ १० ॥
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते ॥
निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते ॥ ११ ॥
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने ॥
हृतासु कृष्णपत्नीषु दासभोग्यासु चाम्बुधौ ॥ १२ ॥
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुखः ॥
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः ॥१३॥
तास्तमर्घेण संपूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥
लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः ॥ १४ ॥
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम् ॥
भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम् ॥ १५ ॥
दिव्यभावान् तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च ॥
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान् ॥
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेराभिमुखं स्थिताः ॥१६॥

॥ स्त्रिय ऊचुः ॥

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात् ॥
स्वधर्माच्च्यवतेऽस्माकमस्मिन् वः शरणं भव ॥ १७ ॥
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता ॥

कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः ॥ १८॥
वेश्यानामपि यो धर्मस्तन्नो ब्रूहि तपोधन ॥
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः ॥ १९ ॥

॥ दाल्भ्य उवाच ॥

जलक्रीडा विहारेषु पुरा सरसि मानसे ॥
भवतीनां च सर्वासां नारदोभ्यासमागतः ॥ २० ॥
हुताशनसुता सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा ॥
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित् ॥
कथं नारायणोऽस्माकं भर्त्ता स्यादित्युपादिश ॥ २१ ॥
तस्माद्वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत्पुरा ॥
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः ॥ २२ ॥
सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद्द्वादश्यां शुक्लपक्षतः ॥
भर्त्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि ॥ २३ ॥
यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात् ॥
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वा भविष्यति ॥
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ ॥ २४ ॥
एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः ॥
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः ॥
इदानीमपि यद्वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वरांगनाः ॥ २५ ॥

भाषा-ब्रह्माजी बोले, हे शिवजी! मैनें पुराणोंमें वर्णआश्रमोंकी उत्पत्ति और धर्मशास्त्रका निश्चय सुना है. अब उत्तम स्त्रियाओंके सदाचारको सुनना चहाता हूं. शिवजी बोले, हे ब्रह्माजी! इसी द्वापरयुगमें श्रीकृष्णके सोलह हजार स्त्रियां होंगी तब एक समय वसंतऋतुमें कोकिलाभ्रमरादिकोंसे कूजित, खिलेहुए कमलोंसें शोभित सरोवरोंवाले पुष्पितवनमें एकांत स्थानोंके सरोवरोंके तटोंपै विराजमान हुई वह स्त्रियां अपने

समीपमें मृगकेसें नेत्र, चमेलीके सुगंधित पुष्पोंको धारण किये उत्तम आभूषणोंसें शोभित, साक्षात् मानों कामदेवही रूपको धारण किये चले आते हुए श्रीमान् सांबको देख कर, कामदेवके बाणोंसे पीडित हो कर, भोगकी इच्छासें उसको देखेगी, तब उनके चित्तमें कामकी वृद्धि होवेगी. उस वार्त्ताको अंतर्यामी श्रीकृष्णजी जान कर उन सब स्त्रियोंको यह शाप देंगे कि, जो तुमने मेरे पीछे ऐसी कामदेवकी चंचलता करी है इस हेतुसे तुम सबको चोर हरेंगे. फिर इस शापसें दुःखित हो कर वह स्त्रियां श्रीकृष्णको प्रसन्न करेगी. उस समय श्रीकृष्णजी उनके दासपनेका शाप दूर करनेवाले, और आगे होनेवाले मनुष्योंके कल्याण करनेवाले इस व्रतको कहेंगे कि, हे स्त्रियों! तुह्मारे आगे जो दाल्भ्यऋषि व्रत कहेंगे वही व्रत तुह्मारे दासभावको दूर करेगा. ऐसा कहकर श्रीकृष्णजी उन स्त्रियोंसें मेलमिलाप करके चले जायंगे. अर्थात् बहुत काल व्यतीत हो जानेपर पृथ्वीका भार उतारनेके पीछे श्रीकृष्णचंद्रजी परमधामको चले-जायंगे. इनके चले जानेकेपीछे जब मुसलयुद्ध होकर यादव नष्ट हो-जायंगे, उस समय अर्जुनकी रक्षित की हुई कृष्णकी स्त्रियांओंको अर्जुनके समीपसें शूद्रलोक छीन कर समुद्रपार ले जाकर भोग करेंगे. वहां उन-केपास महातपस्वी योगात्मा दाल्भ्यऋषि आवेंगे. तब वह स्त्रियांओं उन ऋषिको अर्घदानसें पूजन कर प्रणाम करके अश्रुओंसे व्याकुल अनेक भोग दिव्यमाला पुष्पचंदनादिकोंको स्मरण करती हुई जगतोंके पति अपने भर्त्ताका, अनेक प्रकारके रत्नोंसे युक्त द्वारकापुरीका, अपने उत्तम २ स्था-नोंका, देवताओंके समान रूपवाले द्वारकावासिओंका और अपने पुत्रभ्रा-ताआदि सुहृदोंका स्मरण करती हुई दाल्भ्यमुनिके समीप सन्मुख खडी होके यह प्रश्न करेंगी कि, हे भगवन्! हम सबोंको चोरधाडियोंने बलकर छीन लिया, और घरोंपर ले जाकर भोग किया. अब हम अपने धर्मसें हीन हो गई हैं; सो आपके शरण हैं. हे महात्मन्! प्रथम श्रीकृष्णजीके दिये हुए शापसे हम वेश्याभावको प्राप्त हो गई हैं. हमारे उपदेशकर्त्ता आपही नियत किये गयेहैं, हे तपोधन! आप कृपा करके वेश्याओंका धर्म वर्णन कीजिये—इसप्रकारसे पूछे हुए दाल्भ्यऋषि उन—स्त्रियोंसे वेश्याओंके

धर्म कहेंगे कि, हे स्त्रियो! पूर्वकालमें तुम सब किसी समय मानससरोवरमें क्रीडा कर रही थीं, उस समय तुह्मारे समीप नारद मुनि आगये थे, उस कालमें तुम अग्निकी पुत्री अप्सरारूप थीं, उस समय तुमने नारदजीको प्रणाम नही किया था, और विना प्रणाम कियेही तुमने उस योगीसे यह प्रश्न किया था कि, हे मुने! हमको जगन्नाथ श्रीकृष्ण भर्त्ता कैसे प्राप्त होय उसको कहिये. उस समय तुमको नारद मुनिने श्रीकृष्णजीके मिलनेका वर दिया था, और प्रणाम नही करनेसे शाप भी दिया था, अर्थात् यह कहा था कि चैत्र वैशाख इन दोनों महीनोंकी शुक्ल पक्षकी द्वादशीके दिन दो शय्यादान और सुवर्णका दान करनेसे दूसरे जन्ममें तुह्मारा निश्चयकरके नारायण पति होगा, और जो कि, तुमने अपने रूप और सौभाग्यके अभिमानसे मुझको प्रणाम विना कियेही प्रथम प्रश्न किया है इस हेतुसे तुह्मारा इस प्रकारसे वियोग भी होगा कि, तुम चोरोंसे हरी जाओगीं, और वेश्याभावको प्राप्त हो जाओगीं. इसीसे तुम सब नारदजीके और श्रीकृष्णजीके शापसे कामसे मोहित होकर वेश्यापनेको प्राप्त होगई हो ॥ इत्यादि–

॥ पुनरपि मत्स्यपुराणे ॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ॥
शयनं शशिसंघातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम् ॥ ५८६ ॥
नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ॥
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम् ॥५८७॥
कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ॥
मन्दिरे मन्दसंचारः शनैर्गिरिसुतायुतः ॥ ५८८ ॥
तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः ॥
शशिमौलिसितजोत्स्नाशुचिपूरितगोचरः ॥ ५८९ ॥
गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः ॥

विभावर्या च संपृक्ता बभूवातितमोमयी ॥
तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम् ॥ ८१० ॥

इति श्री मत्स्यपुराणे त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

भाषा–फिर प्रकाशित हुए रत्नोंकी भीतोंवाले स्थानमें चंद्रमाके समान श्वेत वस्त्रसें शोभित हुई अनेक प्रकारके रत्नोंकी किंकिणी और मोतीयोंकी जालीसे जडी हुई कांतिवाली सुंदर चांदनी जिसके ऊपर तनी हुई ऐसी उत्तम शय्यापर शिवजी महाराज पार्वतीको साथ लेके शयन करते भये, जब पार्वतीकी भुजाओंमें अपनी ग्रीवा लगाकर शयन करते भये, तब शिवजीकी श्वेत कांति अत्यंत सुंदर लगती भई, और नीले कमलके समान कांतिवाली पार्वती भी रात्रिके अंधकारमें अतिकाली विदित होती भई. उस समय शिवजी पार्वतीसे हास्यके वचन बोले. ॥ इतिश्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५३ ॥

॥ शर्व उवाच ॥

शरीरे मम तन्वङ्गि! सिते भास्यसितद्युतिः ॥
भुजङ्गीवासिताऽशुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ ॥ १ ॥
चन्द्रातपेन संपृक्ता रुचिराम्बरया तथा ॥
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे ॥ २ ॥
इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना ॥
उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना ॥ ३ ॥

॥ देव्युवाच ॥

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते ॥
अवश्यमर्थात् प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डलम् ॥ ४ ॥
तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम् ॥
तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदेपदे ॥ ५ ॥

नैवास्मि कुटिला शर्व ! विषमा नैव धूर्जटे ! ॥
सविषस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तं दोषाकराश्रयात् ॥ ६ ॥
नाहं पूष्णोपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि ॥
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः ॥ ७ ॥
मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन् ॥
यस्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः ॥ ८ ॥
यास्याम्यहं परित्यक्ता चात्मानं तपसा गिरिम् ॥
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया ॥ ९ ॥
निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः ॥
उवाचाधिकसंभ्रान्तः प्रणयेनेन्दुमौलिना ॥ १० ॥

॥ शर्व उवाच ॥

अगात्मजासि गिरिजे! नाहं निन्दापरस्तव ॥
त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम् ॥ ११ ॥
विकल्पः स्वस्थचित्तेपि गिरिजे! नैव कल्पना ॥
यद्येवं कुपिता भीरु! त्वं तवाहं न वै पुनः ॥ १२ ॥
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते ॥
शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाऽञ्जलिः ॥ १३ ॥
स्नेहेनाप्यवमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम् ॥
तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल ॥ १४ ॥
अनेकैः स्वादुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता ॥
कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता ॥ १५ ॥
अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शंकरपाणिना ॥
विपर्यस्तालका वेगाद्यातुमैच्छत शैलजा ॥ १६ ॥

तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः ॥
सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः ॥ १७ ॥
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः ॥
तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः ॥ १८ ॥
काठिन्यांकस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता ॥
कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि ॥ १९ ॥
संक्रान्तिं सर्वदैवेति तन्वङ्गि! हिमशैलराट् ॥
इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा ॥ २० ॥
कोपकम्पितमूर्द्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा ॥

॥ उमोवाच ॥

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान्॥२१॥
तवापि दुष्टसंपर्कात् संक्रान्तं सर्वमेव हि ॥
व्यालेभ्योऽधिकजिह्वात्वं भस्मना स्नेहबन्धनम् ॥ २२ ॥
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि ॥
तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते ॥ २३ ॥
श्मशानवासान्निर्भीत्वं नग्नत्वान्न तव त्रपा ॥
निर्घृणत्वं कपालित्वाद्दया ते विगता चिरम् ॥ २४ ॥
इत्युक्त्वा मन्दिरात्तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा ॥
तस्यां व्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः ॥ २५ ॥
क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविताः पुनः ॥
विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम् ॥ २६ ॥
प्रोवाच मातः! किं त्वेतत् क्व यासि कुपितान्तरा ॥
अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम् ॥ २७ ॥

सोहं पतिष्ये शिखरात्तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः॥
उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना॥ २८॥
उवाच वीरकं माता मा शोकं पुत्र! भावय॥
शैलाग्रात्पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह॥ २९॥
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु॥
कृष्णेत्युक्ता हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता॥ ३०॥
साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम्॥
एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम्॥ ३१॥
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा॥
यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम्॥ ३२॥
दृष्ट्वा परस्त्रियश्चात्र वदेथा मम पुत्रक!॥
शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम्॥ ३३॥
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह सांप्रतम्॥
मातुराज्ञामृतह्रदे प्लाविताङ्गो गतज्वरः॥ ३४॥
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम्॥ ३५॥

इति श्रीमत्स्यपुराणे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५४॥

भाषा—शिवजी कहते हैं कि, हे तन्वंगि! मेरे शरीरमें श्वेत कांति झलक रही है, और तू ऐसे मुझसे लिपट रही है जैसे कि चंदनके वृक्षमें सर्पिणी लिपट रही हो, चंद्रमाकी किरणोंके समान सुंदर वस्त्रोंसे युक्त हुई ऐसी विदित होती हुई जैसे कि कृष्ण पक्षमें रात्रि दिखाई देती है, ऐसे कही हुई पार्वती शिवजीके कंठको छोडकर क्रोधसे लाल नेत्र कर भ्रुकुटी चढाकर बोली कि, अपने ही अवगुणोंसे सब लोगोंका तिरस्कार होता है, प्रयोजन होनेसे चंद्रमाका मंडल भी ग्रहणके समयमें अवश्य खंडित हो जाता है. बहुतसी तपस्याओंसे जो मैंने तुह्मारी प्रार्थना करी तो, उसका मुझको

यह फल प्राप्त हुआ कि, पद २ में मेरा तिरस्कार होता है. हे शिवजी! मैं, विषम और कुटिल नही हूं. हे धूर्जटे! दोषोंके सेवन करनेवालेके आश्रय होकर मुझमें विष उत्पन्न हो गया है. हे शिव! मैं पूषाके दांत नही हूं. इंद्र नहीं हूं. मुझको सूर्य भगवान् देखता है. मेरा तिरस्कार करनेवाला पुरुष अपने दोषोंकरके अपनेही मस्तकमें शूल चुभोता है. जो तुम मुझको कृष्णा और महाकाली यह जो कहते हो, इसलिये मैं अपने आत्माको त्यागकर पर्वतमें तप करने जाती हूं. धूर्त्तके साथ लगकर मुझ जीवती हुईका क्या प्रयोजन है?

पार्वतीके ऐसे वचनोंको सुनकर शिवजी संभ्रमको प्राप्त होकर बडी विनयसे यह वचन बोले. हे पार्वती! तूं मेरी प्यारी है, मैंने तेरी निंदा नही करी है, मैंने तो तेरी वुद्धि जानकर कृष्णा, कालिका यह तेरे नाम निकाले हैं. हे गिरिजे! स्वस्थचित्तवालोंके विकल्प नही होता है, हे भीरु! जो तू ऐसी कुपित होती है तो, तेरा हास्य मैं फिर अब कभी न करूंगा. अब तो कोपको दूर कर. हे सुंदरहास्यवाली! मैं तुजको शिरसे प्रणाम करता हूं, और सूर्यकी ओर हाथ जोडता हूं. स्नेहसे, अपमानसे, अथवा निंदा करनेसे जो रूस जाता है उसके साथ हास्य कभी न करना चाहिये. इस प्रकारके अनेक विनयके वचनोंसे शिवजीने पार्वतीको समझाया, परंतु मर्ममें भिंदी हुई पार्वती अपने महाक्रोधको नही त्यागती भई. शिवजीके हाथसे अपने वस्त्रको छुटाकर शीघ्रही गमन करनेकी तैयारी करती भई. तब उसके गमनहीके विचारको देखकर शिवजी क्रोधपूर्वक फिर बोले कि, सत्य है! तू सबप्रकारसे अपने पिताकेही समान है.

हिमाचलके शिखरोंपर जैसे मेघोंसे व्याकुल हुआ आकाश दुर्लभ हो जाता है, इसीप्रकार तेरा भी हृदय कठिन है. तू ऐसी कठिण है तभी तो हमको छोडकर वनोंमें जाती है. पर्वतमें जैसे कि भयंकर मार्ग रहते हैं उनसे भी तू कुटिल है. और तेरा सेवन करना हिमाचलसे भी कठिन है, ऐसे कही हुई पार्वती क्रोधकरके मस्तकको कंपाकर और दांतोंको चबाकर फिर बोली कि, आप अन्य गुणी लोगोंको दोष लगाकर उनकी निंदा मत करो.

आपकेभी दुष्टोंके संपर्कसे सब दोष हैं, तुम सर्पसे भी कठिन हो, भस्मके समान स्नेह नही करते, चंद्रमाके कलंकसे भी बुरा तुम्हारा हृदय है, इस वृषभसे भी कम निर्बुद्धि हो, इससे अधिक बकझक करनेसे क्या प्रयोजन है? श्मशानमें वास करनेसे तुम भय नही करते, नंगे रहनेसे तुमको लज्जा नही है, कपाल धारण करनेसे तुम्हारी दया चली गई है, ऐसा कहकर पार्वती उस स्थानसे चलती भई. तब चलनेके समय शिवके गणोंका किलकिल शब्द हुआ. वीरभद्र रोकर उसदेवीके संग भाग २ कर यह कहने लगा कि, हे माता! तू मुझको छोडकर कहां जाती है, ऐसे कहकर पैरोंमें लौट गया, और कहने लगा कि, मैं स्नेहको त्यागकर तुझजानेवालीके संग चलूंगा, और जिस पर्वतमें तू तप करेगी वहांसे तुझसे त्यागा हुआ मैं पर्वतके शिखरपर चढकर गिरूंगा. जब उसने ऐसी बातें कही तब पार्वती दक्षिण हाथसे उसके मुखको प्यार करके बोली हे पुत्र! तू शोच मत कर, पर्वतसे नही गिरना चाहिये, और मेरेसाथ भी तुझको नहीं चलना चाहिये. हे पुत्र! तेरे करनेके योग्य कामको मैं बताती हूं, सो तू सुन. शिवजीने मुझको कृष्णा बताकर मेरी बडी निंदा करी है, सो मैं ऐसा तप करूंगी जिस्से कि गौरवर्ण हो जाऊं. यह शिवजी स्त्रीके लालची हैं. जब मैं चली जाऊं उस समय तू इस स्थानके द्वारपर रक्षा करियो कि, कोई अन्य स्त्री इनकेपास न आने पावे. हे पुत्र! जो अन्यकोई स्त्री इनके समीप आती हुई देखे तो, अवश्य मुझसे कह दीजो, मैं शीघ्रही उसका प्रबंध करदूंगी. यह बात सुनकर वीरभद्र बोला कि, ऐसाही करूंगा. यह कहकर माताकी आज्ञा रूप अमृत हृदमें स्नान करनेसे आनंदयुक्त होता भया. और अपनी माताको प्रणाम करके पर्वतकी कक्षामें चला जाता भया.

इति श्रीमत्स्यपुराणे भाषाटीकायां चतुःपंचाशदधिकशततमोऽध्यायः १५४

॥ सूत उवाच ॥

देवीं सापश्यदायान्तीं सतीं मातुर्विभूषिताम् ॥
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम् ॥ १ ॥

सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा ॥
क्व पुत्रि! गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता ॥ २ ॥
सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम् ॥
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम् ॥ ३ ॥

॥ उमोवाच ॥

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते! ॥
सर्वतः सन्निधानं ते मम चातीव वत्सला ॥ ४ ॥
अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया ॥
अन्यस्त्रीसंप्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ ५ ॥
रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ ॥
पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे! ॥ ६ ॥
ततोहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम् ॥
इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम् ॥ ७ ॥
उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम् ॥
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा ॥ ८ ॥
ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी ॥
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोषिता ॥ ९ ॥
वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी ॥
एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता ॥ १० ॥
ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे वशी ॥
अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन् ॥ ११ ॥
देवान् सर्वान् विजित्याजौ वृकत्राता रणोत्कटः ॥
आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः ॥ १२ ॥

आजगामामरारिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः ॥
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम् ॥ १३ ॥
विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना ॥
हते तदान्धके दैत्ये गिरीशेनामरद्विषि ॥ १४ ॥
आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम् ॥
तमागत्याब्रवीद्ब्रह्मा तपसा परितोषितः ॥ १५ ॥
किमाडे! दानवश्रेष्ठ! तपसा प्राप्तुमिच्छसि ॥
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे ॥ १६ ॥

ब्रह्मोवाच ॥

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव! विद्यते ॥
यतस्ततोपि दैत्येन्द्र! मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा ॥ १७ ॥
इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसंभवम् ॥
रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसंभव! ॥ १८ ॥
तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम् ॥
इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसंभवः ॥ १९ ॥
यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्त्तस्ते भविष्यति ॥
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति ॥ २० ॥
इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः ॥
तस्मिन् काले त्वसंस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः ॥ २१ ॥
परिहर्त्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा ॥
भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम् ॥ २२ ॥
परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः ॥
अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम् ॥ २३ ॥

भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः ॥
उमारूपी छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः ॥ २४ ॥
कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम् ॥
सर्वावयवसंपूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम् ॥ २५ ॥
कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान् ॥
तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः ॥ २६ ॥
कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम् ॥
पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः ॥ २७ ॥
तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदालिङ्ग्य महासुरम् ॥
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः ॥ २८ ॥
अपृच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि! न कृत्रिमः ॥
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि! ॥ २९ ॥
त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम् ॥
प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि ॥ ३० ॥
इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयञ्छनैः ॥
न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः ॥ ३१ ॥

॥ देव्युवाच ॥

यातास्म्यहं तपश्चर्तुं बलश्यायतवातुलम् ॥
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम् ॥ ३२ ॥
इत्युक्तः शंकरः शङ्कां कांचित् प्राप्यावधारयत् ॥
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः ॥ ३३ ॥
कुपिता मयि तन्वङ्गी प्रकृत्या च दृढव्रता ॥
अप्राप्तकामा संप्राप्ता किमेतत् संशयो मम ॥ ३४ ॥

इति चिन्त्य हरस्तस्य अभिज्ञानं विधारयन् ॥
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम् ॥ ३५ ॥
लोमावर्त्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक् ॥
अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः ॥ ३६ ॥
मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमशातयत् ॥
अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम् ॥ ३७ ॥
हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम् ॥
अपरिछिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत् ॥ ३८ ॥
दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता ॥
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना ॥
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता ॥ ३९ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५५ ॥

भाषा–सूतजी बोले इसके अनंतर वह पार्वती कुसुमामोदिनीनाम-वाली उस पर्वतकी देवता सतीको सन्मुख आती हुई देखती भई, वह सती देवता भी पार्वतीको देखकर स्नेहपूर्वक बोली कि, हे पुत्री! तू कहां जाती है, तब पार्वती उस अपने शिवजीके प्रभावसे उत्पन्न हुए अपने क्रोधरूप कारणको कहती भई, और अपनी माताकेही समान उस सतीको मानकर यह वचन बोली. हे अनिंदिते! तू इस पर्वतकी देवता है, सदैव यहां रहती है, और मेरी बडी प्यारी है, इस हेतुसे मैं तेरे आगे जो कहती हूं वह तुझको करना चाहिये. इस पर्वतमें जो अन्य कोई स्त्री आवे, अथवा शिवजी एकांतमें किसी अन्य स्त्रीसे बतरावें तो, तू मुझको अवश्य खबर दीजो, उसकेपीछे मैं प्रबंध करलूंगी. ऐसा कहकर पार्वती अपने हिमालय पर्वतमें जाती भई. पार्वती अपने पिताके बगीचेमें ऐसे जाती भई जैसे कि, आकाशमें मेघमाला चली जाती है, ऐसे प्रकारसे आकाशमार्ग होकर उसने गमन किया, और वहां जाकर वृक्षोंके वल्कल

शरीरपर धारण किये, ग्रीष्मऋतुमें पंचाग्नि तपी, वर्षाऋतुमें जलमें निवास किया, कभी वनके फलोंका आहार किया, कभी निराहार रही, और पृथ्वीपर शयन किया, ऐसे प्रकारोंसे तपस्या करती भई. इसपीछे अंधक दैत्यका पुत्र उस पार्वतीको जानकर अपने पिताके वधका स्मरण कर वदला लेनेका उपाय करता भया, वह अंधकका पुत्र आडि नाम दैत्य रणमें देवताओंको जीतकर शिवजीके समीप आता भया. वहां आकर द्वार-पर खडे हुए वीरभद्रको देख प्रथम ब्रह्माजीके दिये हुए वरका चिंतवन कर वहां बहुतसा तप करता भया. तव तपसे प्रसन्न हुए ब्रह्माजी उस आडि दैत्यके समीप आकर वोले कि, हे दानव! इस तपकरके तू किस वातकी इच्छा करता है, यह सुनकर वह दैत्य बोला कि, मैं कभी न मरूं यह वर मांगता हूं. ब्रह्माजीने कहा, हे दानव! मृत्युके विना तो कोई भी नही है, इस हेतुसे तू किसी कारणसे अपनी मृत्युको मांग ले, यह सुनकर वह दानव ब्रह्माजीसे वोला कि, जव मेरा रूप वदल जावे, तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा अमर ही रहूं. यह सुन ब्रह्माजी प्रसन्न होकर बोले कि, जव तेरा दूसरा रूप वदलेगा उसी समय तेरी मृत्यु होगी. यह वर पाकर वह दैत्य अपनी आत्माको अमर मानता भया. इसके अनं-तर वीरभद्रकी दृष्टि चुरानेके निमित्त सर्पका रूप धारण कर वीरभद्रके विना देखे शिवजीके पास जाता भया; फिर वह मूढचित्तवाला दैत्य शिवजीके छलनेके निमित्त पार्वतीजीका रूप वना लेता भया, मायासे मनोहर, संपूर्ण अंगोंकी शोभासे युक्त ऐसे रूपको वनाकर मुखमें वडे २ तीक्ष्ण वज्रके समान दांतोंको लगाके अपनी बुद्धिके मोहसे शिवजीके मारनेका उद्योग करता भया. पार्वतीका रूप धारण कर सुंदर अंगोंमें आभूषण और कृत्रिम वस्त्रोंको पहर शिवजीके समीप जाता भया. तव उस महाअसुरको देखकर शिवजी प्रसन्न होकर पार्वती समझकर यह वचन वोले कि, हे पार्वती! तेरा स्वभाव अच्छा है? कुछ छल तो नही है? क्या तू मेरा मनोरथ जानकर मेरेपास आई है? तेरे विरहसे मैंने सव जगत् शून्य मान रक्खा है, अव तू मेरे पास आगई यह तैंने बहुत अच्छा किया. ऐसे कहा हुआ वह दैत्य हंसकर शिवजीके प्रभावको

नहीं जानता हुआ, धीरे धीरे यह वचन बोला, अर्थात् वह पार्वतीरूप दैत्य बोला कि, मैं तप करनेकेनिमित्त गई थी, वहां तुम्हारे विना मेरा चित्त नहीं लगा, इस कारण तुम्हारे पास आई हूं. ऐसे वचन सुनकर शिवजी कुछेक शंका विचार कर हृदयमें समाधान कर हंसकर बोले हे तन्वंगि! तू मेरे उपर क्रोधित हो गई थी, और दृढ विचार करके चली थी, अब विना प्रयोजन सिद्ध किये हुए कैसे चली आई? यह मुझको संदेह है. यह कहते हुए शिवजी उसके लक्षणोंको देखते भये. तब उसकी वाईं पांशूमें कमलका चिन्ह नहीं पाया, उस समय महादेवजी उस दानवी मायाको जानकर अपने लिंगपर वज्रास्त्रको रखकर उसके संग रमण करके उसको मारते भये. इस प्रकारसे उस मारे हुए दानवको वीरभद्रने नहीं जाना. और वह पर्वतकी देवता स्त्रीरूपवाले दानवको शिवजीसे मारा हुआ देख उस प्रयोजनको अच्छे प्रकारसे विना समझेही, वायुको दूत वनाकर पार्वतीकेपास भेजती भई. तव पार्वती वायुकेद्वारा उस वृत्तांतको सुन क्रोधसे लाल नेत्र कर वडे दुःखित हुए हृदयसे वीरभद्रको शाप देती भई.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः १५५

॥ देव्युवाच ॥

मातरं मां परित्यज्य यस्मात्त्वं स्नेहविक्लवात् ॥
विहितावसरः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ ॥ १ ॥
तस्मात्ते पुरुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता ॥
गणेशक्षारसदृशी शिला माता भविष्यति ॥ २ ॥
निमित्तमेतद्विख्यातं वीरकस्य शिलोदये ॥
सोऽभवत्प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः ॥ ३ ॥
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम् ॥
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः ॥ ४ ॥
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकंधरः ॥

प्रोद्धूतलम्बलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः ॥ ५ ॥
व्यावृत्तास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिः शिरादिषु ॥
तस्याशुवर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा ॥ ६ ॥
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः ॥
आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा ॥ ७ ॥

॥ ब्रह्मोवाच ॥

किं पुत्रि! प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते ॥ ८ ॥
विरम्यतामतिक्लेशात् तपसोस्मान्मदाज्ञया ॥
तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरुं गौरवगर्भितम् ॥ ९ ॥
वाक्यं वाचाचिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम् ॥

॥ देव्युवाच ॥

तपसा दुष्करेणाप्तः पतित्वे शंकरो मया ॥ १० ॥
स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान् भवः ॥
स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता ॥ ११ ॥
भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निर्विशेङ्कवत् ॥
तस्यास्तद्भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः ॥ १२ ॥
एवं भव त्वं भूयश्च भर्तृदेहार्धधारिणी ॥
ततस्तस्याजभृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम् ॥ १३ ॥
त्वचा सा चाभद्दीप्ता घंटाहस्ता विलोचना ॥
नानाभरणपूर्णाङ्गीपीतकौशेयधारिणी ॥ १४ ॥
तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम् ॥
निशे भूधरजादेहसंपर्कात्त्वं ममाज्ञया ॥ १५ ॥

संप्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरा ह्यसि ॥
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद्वरानने! ॥ १६ ॥
स तेऽस्तु वाहनं देवि! केतौ चास्तु महाबलः ॥
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि ॥ १७ ॥
पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः ॥
दत्तस्ते किंकरो देवि! मया मायाशतैर्युतः ॥ १८ ॥
इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह ॥
उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम् ॥ १९ ॥
प्रविशन्तीति तां द्वारि ह्यपकृष्य समाहितः ॥
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः ॥ २० ॥
तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम् ॥
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि ॥ २१ ॥
देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह ॥
प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः ॥ २२ ॥
घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकंठेन कोपिना ॥
द्वारेषु नावधानं ते यस्मात्पश्यामि वै ततः ॥ २३ ॥
भविष्यसि न मद्द्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः ॥
अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम् ॥ २४ ॥

इतिश्रीमत्स्यपुराणे षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५६ ॥

भाषा-पार्वती कहती है हे वीरभद्र! तू स्नेहरहित हो मुझ माताको त्याग कर शिवजीके ओर अन्य स्त्रियोंके एकांत समयमें सावधान नहीं रहा, इस हेतुसे तेरी माता रूखी जडहृदयसे वर्जित काली शिलाके समान हो जायगी इस प्रकारसे यह वीरभद्रके शिलामेंसे उदय होनेका निमित्त होता भया; तव वह वीरभद्र विचित्र २ कथाओंको सुन रहा था और पार्वतीने

ऐसा शाप देदिया उस समय पार्वतीके मुखसे सिंहरूप होकर क्रोध निकलता भया. उस विकरालमुख जटाधारी लंबी पूंछयुक्त कराल डाढोंसमेत मुख फाडे जिव्हा निकाले और पतली कटिवाले सिंहको देखकर उसकी वार्त्ताको पार्वती जब चिंतवन करने लगी तब उस पार्वतीके मनकी वार्ताको जानकर ब्रह्माजी आए और बडी स्पष्ट वाणीसे बोले कि हे पुत्रि! तू क्या चाहती है? मैं कौनसी अलभ्य वस्तु तुझको दूं? तू इस बडे क्लेशवाले तपको समाप्त कर और मेरी आज्ञाको मान ले. यह सुनकर पार्वती वहुत दिनके विचारे हुए मनोरथके वचनको बोली कि, मैंने वडे दुर्लभ व्रत और तपोंसे महादेवजीको प्राप्त किया था, उन्होंने मुझको वहुतवार काली २ ऐसा शब्द कहा, सो मैं चाहती हूं कि, मेरा शरीर कांचनके समान वर्णवाला हो जाय. जिस्से कि, अपने पतिकी गोदीमें सुशोभित रहूं. यह उसके वचनको सुनकर ब्रह्माजी बोले कि, तेरा शरीर ऐसाही हो जायगा, और अपने भर्त्ताके आधे शरीरके धारण करनेवाली भी हो जायगी. इसके अनंतर नीले कमलके समान पार्वतीकी त्वचा कांचनके वर्णसमान तत्काल हो गई और जो उसकी नीली त्वचा थी वह देवी रात्रिका स्वरूप पीत और कसूमे वस्त्रोंसे युक्त होकर अलग हो गया. तब ब्रह्माजी नीले कमलके सदृश वर्णवाली उस रात्रीसे बोले हे रात्री! तू मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरके स्पर्श करनेसे कृतकृत्य हो गई. और हे वराननें! इस पार्वतीके क्रोधसे जो सिंह निकला है वही तेरा वाहन होगा और तेरी ध्वजामें भी यही सिंह रहेगा तू विंध्याचलमें चली जा वहां जाकर तू देवताओंके कार्योंको करेगी. और हे देवि! यह पांचालनाम यक्ष तेरे निमित्त अनुचर देता हूं. इस यक्षको हजारों माया आती हैं. ऐसे कही हुई कौशिकी देवी विंध्याचल पर्वतमें जाती भई, और पार्वती भी अपने मनोरथको सिद्ध करके शिवजीके समीप जाती भई. तब उस भीतर जाती हुईको द्वारपर सावधान हो हाथमें वेत ले खडा हो कर वीरभद्र रोकता भया, और व्यभिचारिणीका रूप जानकर उस्से क्रोधपूर्वक बोला कि, यहां तेरा कुछ प्रयोजन नहीं, जो तू नहीं डरती है तो चली जा, यहां पार्वतीजीका रूप धरके महादेवके छलनेके निमित्त एक दैत्य आया था,

उसको भीतर जाते हुए मैंने नहीं देखा था, वह शिवजीने मार डाला. उसको मारकर मुझसे क्रोधपूर्वक कहने लगे कि तुम द्वारपर सावधान नहीं रहते हो इस हेतुसे मैं अब सबकी चौकसी करता हूं; सो तुझको भीतर नहीं जाने दूंगा, तू शीघ्रही उलटी चली जा.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५६॥

॥ वीरक उवाच ॥

एवमुक्ता गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला ॥
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने ! ॥ १ ॥
इत्युक्ता तु तदा देवी चिंतयामास चेतसा ॥
न सा नारीति दैत्योसौ वायुर्मे यामभाषत ॥ २ ॥
वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया ॥
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः ॥ ३ ॥
क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम् ॥
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम् ॥ ४ ॥
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः ॥
संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा ॥ ५ ॥
लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा ॥

॥ देव्युवाच ॥

अहं वीरक ! ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः ॥ ६ ॥
शंकरस्यास्मि दयिता सुता तु हिमभूभृतः ॥
मम गात्रछविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र ! भावय ॥ ७ ॥
तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना ॥
मया शप्तोस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते ॥ ८ ॥

ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शंकरे रहसि स्थिते ॥
न निवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते ॥ ९ ॥
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात् स त्वं कामसमन्वितः ॥
शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः ॥
उवाचार्चितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम् ॥ १० ॥

॥ वीरक उवाच ॥

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणिप्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते ॥
नगसुते! शरणागतवत्सले! तव नतोऽस्मि नतार्त्तिविनाशिनि ११
तपनमण्डलमण्डितकन्धरे! पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते! ॥
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते! गिरिसुते! भवतीमहमाश्रये ॥ १२ ॥
जगति कः प्रणताभिमतं ददौ झटिति सिद्धनुते भवती यथा ॥
जगति काञ्चनवाञ्छतिशंकरो भुवनधृतनये! भवतीं यथा ॥ १३ ॥
विमलयोगविनिर्मितदुर्जयस्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले! ॥
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता ॥ १४ ॥
सितसटापटलोद्धतकंधराभरमहामृगराजरथा स्थिता ॥
विमलशक्तिमुखानलपिङ्गलायतभुजौघविपिष्टमहासुरा ॥ १५ ॥
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका जननि! शुम्भनिशुम्भनिषूदनी ॥
प्रणतचिन्तितदानवदानवप्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि ॥ १६ ॥
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वलेऽवनितले तव देवि! चयद्वपुः ॥
तदजितेप्रतिमे प्रणमाम्यहं भुवनभाविनि! ते भववल्लभे ॥ १७ ॥
जलधयो ललितोद्धवतीचयो हुतवहद्युतयश्च चराचरम् ॥
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमास्त्वदभिधास्यति मय्यभयंकरा ॥ १८ ॥
भगवति! स्थिरभक्तजनाश्रये! प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम् ॥

करणजातमिहास्तु ममाचलन्नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥
प्रशममेहि ममात्मजवत्सले! नमोऽस्तु ते देवि! जगत्त्रयाश्रये १९

॥ सूत उवाच ॥

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता ॥
प्रविवेश शुभं भर्त्तुर्भवनं भूधरात्मजा ॥ २० ॥
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिणः ॥
व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकः ॥ २१ ॥
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः ॥
निर्भृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम् ॥ २२ ॥
गते वर्षसहस्रे तु देवास्त्वरितमानसः ॥
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शंकरचेष्टितम् ॥ २३ ॥
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः ॥
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह ॥ २४ ॥
ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम् ॥
तमुवाच महादेवः किंचित्कोपसमन्वितः ॥ २५ ॥
यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते ॥
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद्वीर्यमाहितम् ॥ २६ ॥
तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्तत्कायविभेदतः ॥
विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः ॥ २७ ॥
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शंकराश्रमे ॥
तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम् ॥ २८ ॥
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम् ॥
तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम् ॥ २९ ॥

तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा ॥
उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता ॥ ३० ॥
पातुकामा च तत्तोयं स्वादुनिर्मलपङ्कजम् ॥
अपश्यन् कृत्तिकाः स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभम् ॥ ३१ ॥
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम् ॥
हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः ॥ ३२ ॥
ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजम् ॥

॥ कृत्तिका ऊचुः ॥

दास्यामो यदि ते गर्भः संभूतो यो भविष्यति ॥ ३३ ॥
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम् ॥
भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि वरानने! ॥ ३४ ॥
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसंभवः ॥
सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत् ॥ ३५ ॥
ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम् ॥
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति ॥ ३६ ॥
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः ॥
ततस्ता हर्षसंपूर्णाः पद्मपत्रास्थितं पयः ॥ ३७ ॥
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम् ॥
पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे ॥ ३८ ॥
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुद्गतः ॥
निश्चक्रामाऽद्भुतो बालः सर्वलोकविभासकः ॥ ३९ ॥
प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः ॥
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः ॥ ४० ॥

दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः ॥
एतस्मात्कारणाद्देवः कुमारश्चापि सोऽभवत् ॥ ४१ ॥
इति श्रीमत्स्यपुराणे सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

भाषार्थः-वीरभद्रने कहा हे कमललोचने! मेरी स्नेह करनेवाली माताने भी मुझसे यही आज्ञा करी है, और कह गई है कि, किसी अन्य स्त्रीको भीतर मत जाने देना. यह सुनकर पार्वती देवी चिंतवन करने लगी कि, अहो जो वायु मुझसे कह आया था वह तो दैत्य था, स्त्री नहीं थी; मुझ क्रोधयुक्तने वीरभद्रको वृथाही शाप दिया; विशेषकरके क्रोधसे भरेहुए मूर्ख बुरा कार्य करडालते हैं, क्रोधसे कीर्ति नष्ट हो जाती है; क्रोधसे स्थिर लक्ष्मीका नाश होजाता है, मैंने विनाही विचारेहुए पुत्रको शाप देदिया. विपरीतबुद्धिवालोंको सहजहीमें विपत्ति प्राप्त होजाती है. ऐसे चिंतवन करके वह पार्वती लज्जापूर्वक वीरभद्रसे कहनेलगी; हे वीरभद्र! मैं तेरी माता हूं, तू चित्तमें संदेह मत करे, मैं शिवजीकी प्यारी स्त्री हूं, हिमाचलकी पुत्री हूं; हे पुत्र! मेरे शरीरकी कांतिकरके तू शंका मत करे, मुझको ब्रह्माजीने प्रसन्न होकर गौरवर्ण देदिया है. हे पुत्र! उस दैत्यके वृत्तांतसे मैंने तुझको विना समझे हुए शाप देदिया है वह तो दूर नहीं होसकेगा; परंतु यह कह देती हूं कि तुम मनुष्यके प्रभावसे शापसे निवृत्त होकर शीघ्रही आओगे. इसके पीछे वीरभद्र पूर्ण चंद्रमाकेसमान कांतिवाली अपनी माता पार्वतीको शिरसे प्रमाण करने लगा. वीरभद्र कहता है, हे शरणागतवत्सले! देवतादैत्योंके प्रणाम करते हुए मुकुटोंकी मणियोंसे शोभित चरणारविंदवाली! मैं तुझको प्रणाम करता हूं. हे सूर्यमंडलकेसमान शोभित शिरवाली, पर्वतके समान कांतिवाली, सर्पाकार टेढी भृकुटियोंवाली! ऐसी जो आप हैं उनकेही मैं आश्रय हूं हे पार्वती! प्रणाम करते हुएको जैसे तुम शीघ्रही वर देती हो ऐसा दूसरा वर देनेवाला तेरेसिवाय कौन है? और शिवजी भी तेरे विना जगत्में किसीकी इच्छा नहीं करते हैं. हे निर्मलयोगके द्वारा अपने शरीरको महादेवजीके शरीरमंडलके समान करनेवाली! और दैत्योंका नाश करने

वाली! तुझको सब देवता लोगभी शिरसे प्रणाम करते हैं. हे जननी! तुम श्वेतकेश और बडेमुखवाले सिंहपर सवारीकरके अपनी निर्मलशक्तिसे जब असुरोंको मारती हो तब संसार तुमको चंडिका कहता है, तुम हीं शुंभनिशुंभको मारती और भक्तजनोंके मनोरथोंको सिद्ध करती हो. हे देवि! आकाशमें वायुके मार्गमें जलती हुई अग्निमें और पृथ्वीतलमें जो तेरा रूप है उसको मैं नमस्कार करता हूं. और ललितरंगोंवाले समुद्र, अग्नि और हजारों सर्प यह सब तेरे प्रभावसे मुझको भय नहीं देसक्के हैं. मैं आपके चरणोंके आश्रय होगया हूं, अब किसी फलकी इच्छा नहीं करता हूं. हे देवि! मुझपर शांत होकर कृपा करो, मैं आपको प्रणाम करता हूं. सूतजी कहते हैं जब वीरभद्रने इस प्रकारसे स्तुति करी तब प्रसन्न होकर पार्वतीजी अपने पति शिवजीके मंदिरमें प्रवेश करती भई. फिर द्वारपर खडा हुआ वीरभद्र शिवजीके दर्शन करनेकेलिये आये हुए देवताओंको अपने २ घरोंको भेजता भया; यह कहने लगा, हे देवताओ! अब दर्शन करनेका अवसर नहीं है, शिवजी पार्वतीकेसंग रमण कर रहे हैं. ऐसे वचनोंको सुनकर देवता स्थानोंको चलेगये. जब हजार वर्ष व्यतीत होचुके तब देवता शीघ्रताकरके शिवजीके समाचार लेनेकेनिमित्त अग्निदेवताको भेजते भये. अग्नि तोतेका रूप धारण करके स्थानके किसी छिद्रके द्वारा स्थानमें प्रवेश करके पार्वतीकेसंग रमण करते हुए महादेवजीको देखता भया. तब कुछेक क्रोध करके महादेवजी उस तोतेसे बोले कि, तेरा किया हुआ यह विघ्न है इस लिये यह विघ्न तुझमें प्राप्त होगा. ऐसा कहा हुआ अग्नि अंजली बांधकर महादेवजीके वीर्यको पीता भया. फिर उस वीर्यसे तृप्त हुआ अग्नि देवताओंको तृप्त करता भया. उस समय वह शिवजीका वीर्य उन देवताओंके उदरको फाडकर बहार निकलता भया, और शिवजीके आश्रमके समीप प्राप्त होता भया. वहाँ एक सरोवर बनगया. बडा, स्वच्छ और बहुत योजन विस्तृत, सुवर्णकीसी कांतिवाला, फूले हुए कमलोंसे शोभित उस सरोवरको सुनकर पार्वतीदेवी सखियोंसे युक्त हो उसके जलमें क्रीडा करती हुई तीरपर स्थित होगए;

और उस जलके पीनेकी भी इच्छा करी. उस समय स्नान करती हुई कृत्तिकाभी छह सूर्योंके समान उस जलको देखती भई. तब पार्वती कमलके पत्तेपर स्थित हुए उस जलको ग्रहण करके आनंदसे बोली कि, कमलपत्रपर स्थित हुए इस जलको मैं देखती हूं. ऐसे पार्वतीके वचनको सुन कर कृत्तिका पार्वतीसे बोली कि, हे शुभानने! इस जलसे जो तुह्मारे गर्भ रह जावे तो वह हमारे नामसे प्रसिद्ध हमाराही पुत्र संसारमें प्रसिद्ध होवे ऐसी प्रतिज्ञा करे तो, हम इस जलको देवें. यह सुनकर पार्वतीजी बोली कि, मेरे अवयवोंसे युक्त हुआ बालक तुह्मारा पुत्र होवेगा? जब पार्वतीनें यह वचन कहा, तब कृत्तिका बोली कि, हम इसके उत्तम २ अंगोंका विधान कर देवेंगी. यह बात सुनकर पार्वतीजीने कहा कि, अच्छा इसी प्रकार होजागया. तब कृत्तिका प्रसन्न होकर उस जलको पार्वतीके निमित्त देती भई. तब पार्वतीने भी वह जल पीलिया. इसकेअनंतर उस जलका गर्भ पार्वतीकी दाहिनी कोखको फाडकर बाहर निकला. और उसमेंसे सब लोकोंको प्रकाशित करनेवाला अद्भुत बालक निकला, सूर्यके समान तेजस्वी, कंचनके समान देदीप्य, शक्ति और शूलको ग्रहण किये हुए, छ मुखवाला, वह अद्भुत बालक होता भया. सुवर्णकीसी कांतिवाला यह बालक दुष्ट दैत्योंको मारनेवाला होता भया. इस प्रकारसे स्वामी कार्तिककी उत्पत्ति हुई है.

इति श्रीमत्स्यपुराणभाषाटीकायां सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥१५७॥

पुनरपि मत्स्यपुराणे चतुर्नवत्यधिकशततमेऽध्याये यथा—

महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा ॥
ऋषयश्च समुद्भूताश्च्युते शुक्रे महात्मनः ॥ ६ ॥

देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्न्यस्तथैव च ॥
स्कन्नं शुक्रं महाराज! ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥ ७ ॥

तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात् ॥
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः ॥ ८ ॥

भाषार्थः-प्रथम महादेवजीके शापसे सब ऋषि अपने २ शरीरको आपही त्याग कर स्वर्गलोकमें जाते भये, वहां ब्रह्माजीके वीर्यसे फिर ऋषि उत्पन्न हुए हैं. तब देवताओंकी माता, और देवताओंकी स्त्रियां, ब्रह्माजीके वीर्यको स्खलित हुआ जानकर ब्रह्माजीके समीपसे उस वीर्यको अग्निमें हवन करवा देती भई. जब ब्रह्माजीने वीर्यका हवन किया, तब अग्निमेंसे महातेजवाले भृगुऋषि उत्पन्न हुए. मत्स्यपुराण अध्याय ॥१९४॥

तथा ब्रह्मवैवर्त्तपुराणेऽपि चतुर्थोऽध्याये ॥
रतिं दृष्ट्वा ब्रह्मणश्च रेतःपातो बभूव ह ॥
तत्र तस्थौ महायोगी वस्त्रेणाच्छाद्य लज्जया ॥१३॥
वस्त्रं दग्ध्वा समुत्तस्थौ ज्वलदग्निः सुरेश्वरः ॥
कोटितालप्रमाणश्च सशिखश्च समुज्ज्वलन् ॥ १४ ॥
कृष्णस्य कामबाणेन रेतःपातो बभूव ह ॥
जले तद्रेचनं चक्रे लज्जया सुरसंसदि ॥ २३ ॥
सहस्रवत्सरान्ते तड्डिम्भरूपं बभूव ह ॥
ततो महान् विराट् जज्ञे विश्वौघाधार एव सः ॥२४॥

भाषार्थः-रतिको देखकर ब्रह्माजीका वीर्यपात होता भया, तब वो महायोगी ब्रह्मा लज्जाकरके वस्त्रकेसाथ आच्छादन करके खडा होता भया, तब वो वीर्य वस्त्रको जालकर जाज्वल्यमान, कोटिताल प्रमाण, शिखावाला, देदीप्यमान, अग्निदेवता उत्पन्न होता भया. — कामके बाणोंकरके देवसभामें कृष्णजीका वीर्यपात होता भया, तब लज्जाकरके कृष्णजी उस वीर्यको जलमें निकालते भये, वहां वो वीर्य हजार वर्ष व्यतीत हुए तब बालकरूप होता भया, तिस्से जगत् समूहको आधारभूत महान् विराट् उत्पन्न होता भया. ब्रह्मवैवर्त्त पुराण अध्याय ॥ ४ ॥

इत्यादि प्रायः सर्व पुराणादिके लेखोंसे, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जो कि लोकोंने कल्पन किये हैं उन्होंमें ज्ञानदर्शन चारित्र नहीं सिद्ध होते हैं. किंतु, काम, क्रोध, ईर्षा, रागादि दोष सिद्ध होते हैं. और ऐसे

रागी द्वेषी देव मुक्तिकेवास्ते नही होते हैं. यदुक्तं ॥ "ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यङ्ककलङ्किताः ॥ निग्रहानुग्रहपरास्ते देवाः स्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लंभयेयुः पदं शान्तं प्रसन्नान् प्राणिनः कथम् ॥ २ ॥" इतिकलिकालसर्वज्ञश्रीमद्धेमचंद्रसूरिकृतयोगशास्त्रे- यद्यपि इन श्लोकोंका अर्थ जैनतत्वादर्श ग्रंथमें लिखा है तथापि भव्य जीवोंके उपकारार्थ लिखते हैं.

जिस देवकेपास स्त्री होवे, तथा तिसकी प्रतिमाकेपास स्त्री होवे, क्यों कि, जैसा पुरुष होता है, उसकी मूर्ति भी प्रायः वैसीही होती है. आजकाल सर्व चित्रोमें वैसाही देखनेमें आता है. सो मूर्तिद्वारा देवकाभी स्वरूप प्रगट हो जाता है. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे, तथा अक्षसूत्र जपमालादि आदि शब्दसे कमंडलु प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव है? रागद्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे? क्योंकि, स्त्रीकों जो पास रक्खेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें भोग करनेवाला होगा. इस्से अधिक रागी होनेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी कामरागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, और पुत्रकी वधू, प्रमुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है. और इसीका नाम लोकोंने भगवान्‌की लीला धारण किया है!!!

अब जो पुरुषमात्र होकर परस्त्री गमन करता है, उसको आज कालके मतावलंबियोंमेंसे कोइभी अच्छा नहीं कहता तो, फेर परमेश्वर होकर जो परस्त्रीसे कामकुचेष्टा करे, उसके कुदेव होनेमें कोईभी बुद्धिमान् शंका कर सक्ता है? नहीं. और जो अपनी स्त्रीसे काम सेवन करता है, और परस्त्रीका त्यागी है, उसकोंभी परस्त्रीका त्यागी धर्मी गृहस्थलोक कह सक्ते हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कभी नहीं कहे सकेंगे. क्योंकि, जो आपही कामाग्निके कुंडमें प्रज्वलित हो रहा है, तिसमें कभी ईश्वरता नहीं हो सक्ती; इस हेतुसे जो राग रूप चिन्ह करके संयुक्त है, सो देव नही हो सक्ता है. पुनः जो द्वेषके चिन्हकरके संयुक्त है, वोभी देव नहीं हो सक्ता है. द्वेषके चिन्ह शस्त्रादिकोंका धारण करना, क्योंकि, जो शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूल

प्रमुख रक्खेगा, उसने अवश्य किसी वैरीकों मारणा है; नही तो, शस्त्र रखनेसे क्या प्रयोजन है? जिसकों वैर विरोध लगा हुवा है, सो परमेश्वर नहीं हो सक्ता है; जो ढाल वा खड्ग रक्खेगा वह अवश्यमेव भयसंयुक्त होगा, और जो आपही भयसंयुक्त है तो, उसकी सेवा करनेवाले निर्भय कैसें हो सक्ते हैं? इस हेतुसे द्वेषसंयुक्तको परमेश्वर कौन बुद्धिमान् कह सक्ता है? परमेश्वर जो है, सो तो वीतराग है; सिवाय वीतरागके अन्य कोइ, रागी, द्वेषी, परमेश्वर कभी नहीं हो सक्ते हैं.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है; जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणियोंके विनाभी जपकी संख्या कर सक्ता; और जो जपको करता है सोभी अपनेसे उच्चका करता है, तो, परमेश्वरसे उच्च कौन है? जिसका वो जप करता है.

तथा जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, नंगा होके कुचेष्टा करता है, भांग, अफीम, धत्तूरा, मदिरा प्रमुख पीता है, तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है, वा, हस्ति, ऊंट, गर्दभ, वैल प्रमुखकी जो असवारी करता है, सोभी सुदेव नही हो सक्ता है; क्योंकि, जो शरीरको भस्म लगाता है, और धूणी तापता है, सो किसी वस्तुकी इच्छावाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ, सो परमेश्वर कैसे हो सक्ता है? और जो नशे, अमलकी चीजें, खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढूंढता है, और परमेश्वर तो सदा आनंद और सुखरूप है; परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकों मिलता है? और जो असवारी है सो परजीवोंको पीडाका कारण है, और परमेश्वर तो दयालु है, वो परजीवोंको पीडा कैसे देवे? और जो कमंडलु रखता है सो शुचि होनेके कारण रखता है, और परमेश्वर तो सदाही, पवित्र है उनको कमंडलुसे क्या काम है?

तथा निग्रह, जो जिसके उपर क्रोध करे, तिसकों बध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्टवियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे; और अनुग्रह, जिसके उपर तुष्टमान होवे, तिसकों इंद्र, चक्रवर्ती, बल-

देव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे; तथा सुंदर देवांगनासदृश स्त्रीका संयोग, पुत्रपरिवारादिकोंका संयोग जो करे, ऐसा रागी, द्वेषी, देव मोक्षके तांइ कभी नहीं हो सक्ता है. सो तो भूत प्रेत पिशाचादिकोंकी तरह क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंको मोक्ष कैसे दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी द्वेषी कर्मपरतंत्र है तो, सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है ?

तथा जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है, वादित्र, (वाजा) वजाता है, नृत्य करता है, औरांको नचाता है, हसता और कूदता है, विषयी रागोंको गाता है, संगीत बोलता है, स्त्रीके विरहसे विलाप करता है, इत्यादिक अनेक प्रकारकी मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, और स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, सोभी परमेश्वर नहीं कहा जाता है; यदि परमेश्वर आपही ऐसा है तो फेर वो परमेश्वर सेवकोंको शांतिपद कैसे प्राप्त करा सक्ता है? यदि किसी पुरुषने एरंडवृक्षको कल्पवृक्ष मानलिया तो, क्या वो कल्पवृक्ष हो सक्ता है? वा कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है ?

अब भगवान्में अष्टगुण होते हैं सो लिखते हैं.

॥ मूलम् ॥ आर्यावृत्तम् ॥

क्षितिजलपवनहुताशनयजमानाकाशसोमसूर्याख्याः ॥
इत्येतेष्टौ भगवति वीतरागे गुणा मताः ॥ ३४ ॥

भाषार्थ–क्षिति १ जल २ पवन ३ अग्नि ४ यजमान ५ आकाश ६ सोम ७ और सूर्य ८ ऐसे आठ गुण भगवान् वीतरागमें माने है. ॥३४॥

क्षितिरित्युच्यते क्षांतिर्जलं या च प्रसन्नता ॥
निःसंगता भवेद्वायुर्हुताशो योग उच्यते ॥ ३५ ॥
यजमानो भवेदात्मा तपोदानदयादिभिः ॥
अलेपकत्वादाकाशः संकाशः सोभिधीयते ॥ ३६ ॥

व्याख्या–क्षितिशब्दकरके क्षमा कहिए है, जल कहनेसे निर्मलता, और पवन कहनेसे निःसंगता–प्रतिबंधरहित, अग्नि कहनेसे योग, अर्थात्

जैसे अग्नि इंधनको भस्म करके जाज्वल्यमान रूपवाला होता है, तैसे भगवंत कर्मवनको दाहके निर्मल योगरूपको प्राप्त हुये हैं, इसवास्ते भगवान् अर्हन्को योगरूप कहते हैं. यजमान अर्थात् यज्ञ करनेवाला आत्मा है, तपदानदयादिसें यज्ञ करता है. निर्लेप लेपरहित होनेसें आकाशसमान भगवंतको कहते हैं. ॥३५–३६ ॥

सौम्यमूर्त्तिरुचिश्चंद्रो वीतरागः समीक्ष्यते ॥
ज्ञानप्रकाशकत्वेन आदित्यः सोऽभिधीयते ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सौम्यमूर्ति मनोहर होनेसे भगवंत चंद्रवत् चंद्र वीतराग होनेसे देखते है, और ज्ञानप्रकाशकरने करके सो भगवंत अर्हतको आदित्य (सूर्य) कहिये है. ॥ ३७ ॥

पुण्यपापविनिर्मुक्तो रागद्वेषविवर्जितः ॥
श्रीअर्हद्भ्यो नमस्कारः कर्त्तव्यः शिवमिच्छता ॥ ३८ ॥

व्या०–पुण्यपापकरके विनिर्मुक्त (रहित) है, और रागद्वेषकरके विवर्जित है, ऐसे श्रीअर्हतको मुक्तिइच्छक पुरुषोंनें नमस्कार करणे योग्य है. ॥ ३८ ॥

अकारेण भवेद्विष्णू रेफे ब्रह्मा व्यवस्थितः ॥
हकारेण हरः प्रोक्तस्तस्यान्ते परमं पदम् ॥ ३९ ॥

व्या०–अब अर्हन् शब्दका स्वरूप कथन करते हैं. आदिमें जो अकार है, सो विष्णुका वाचक है, और रकारमें ब्रह्मा व्यवस्थित है, और हकार करके हर (महादेव) कथन करा है, और अंतमें नकार परमपदका वाचक है. ॥ ३९ ॥

अकार आदिधर्मस्य आदिमोक्षप्रदेशकः ॥
स्वरूपे परमं ज्ञानमकारस्तेन उच्यते ॥ ४० ॥

व्या०–अकार करके आदिधर्म, और मोक्षका प्रदेशक है, तथा स्वरूपविषे परम ज्ञान है, इसवास्ते अर्हन् शब्दकी आदिमें जो अकार है, तिसका यह अर्थ होनेसे अकार कहते हैं. ॥ ४० ॥

रूपि द्रव्यस्वरूपं वा दृष्ट्वा ज्ञानेन चक्षुषा ॥
दृष्टं लोकमलोकं वा रकारस्तेन उच्यते ॥ ९१ ॥

व्या०—रूपी द्रव्य, वा शब्दसे अरूपी द्रव्य, ज्ञाननेत्रकरके जिसने देखा है, तथा लोकालोक जिसने देखा है, इसवास्ते रकार कहते हैं.॥९१॥

हता रागाश्च द्वेषाश्च हता मोहपरीषहाः ॥
हतानि येन कर्माणि हकारस्तेन उच्यते ॥ ९२ ॥

व्या०—राग, द्वेष, अज्ञान, परीषह और अष्टकर्म हनन किये हैं, अर्थात् नष्ट किये हैं, इसवास्ते हकार कहते हैं. ॥ ९२ ॥

संतोषेणाभिसंपूर्णः प्रातिहार्याष्टकेन च ॥
ज्ञात्वा पुण्यं च पापं च नकारस्तेन उच्यते ॥ ९३ ॥

व्या०—संतोषकरके जो सर्वतरेसें संपूर्ण है, और अष्ट प्रातिहार्य-करके संपूर्ण है, सो अष्ट प्रातिहार्य लिखते हैं—

"किंकिल्लि कुसुमवुट्ठि देवझुणि चामरासणाइं च ॥
भावलय भेरि छत्तं जयंति जिणपाडिहेराइं" १ ॥

व्या०—भगवंतके सहचारि होनेसें प्रातिहार्य कहे जाते हैं, अथवा इंद्रके आदेश करनेवाले देवताओंका जो कर्म उसको प्रातिहार्य कहते हैं, वे आठही प्रातिहार्य देवताके करे जाणने.

किंकिल्लि०—अशोकवृक्ष—सो जहां श्रीभगवंत विचरे समवसरे, वहां महाविस्तीर्ण कुसुमसमूह लब्धभ्रमरनिकर शीतलसच्छाय मनोहर विस्तीर्ण शाखावाला भगवान्के देहमानसें बारां गुणा अशोकवृक्ष देवता करते हैं, तिसके नीचे बैठके भगवान् देशना (धर्मोपदेश) देते हैं. ॥ १ ॥

कुसुमवुट्ठि—पुष्पवृष्टिः—जलस्थलके उत्पन्न हुये, श्वेत, रक्त, पीत, नील, श्याम, ऐसे पांच वर्णोंके विकस्वर सरस सुगंधमय फूलोंकी वर्षा समवसरणकी पृथ्वीमें देवता करते हैं; जिसमें फूलोंके बींट नीचेपासे, और मुख उंचेपासे होते है, तथा वर्षा गोडेप्रमाण होती है; अर्थात् पुष्पवृष्टिसें समवसरण भूभागमें जानुप्रमाण उंचा पुष्पसमूह होता है.॥ २ ॥

देवझुणि—दिव्यध्वनिः—भगवान् जिस वखत अत्यंत मधुर स्वरकरके

सरस अमृतरससमान समस्त लोकोंको प्रमोद देनेवाली वाणीकरके धर्म-देशना देते हैं, तिस वखत देवता तिस भगवंतके स्वरको अपनी ध्वनि-करके अखंड (पूर्ण) करते हैं. यद्यपि मधुरमें मधुर पदार्थसेंभी भग-वान्‌की वाणीमें अधिक रस है, तथापि भव्य जीवके हितवास्ते भगवान् जो देशना देते हैं सो मालवकोश रागमें देते हैं; जिस वखत भगवान् मालवकोश रागकरके देशना आलापते हैं, तिस वखत भगवान्‌के दोनों तरफ रहे हुए देवता मनोहर वेणु वीणादिके शब्दकरके तिस भगवान्‌की वाणीको अधिकतर मनोज्ञ करते हैं. जैसें कोई सुस्वर करके गयन करता होवे, उसके पास वीणादिके शब्दकरके ध्वनि पूर्ण करें. ॥ ३ ॥

चामर–केलिस्तंभमें लगे हुए तंतु निकरके समान मनोहर दंडमें लगे हुए अनेक रत्नोंकी किरणोंकरके मानो इंद्रधनुष्यकाही विस्तार न होता होय? ऐसे रत्नोंकरके जडित सुवर्णदांडीसहित श्वेत चामर भगवान्‌के दोनोंपासे देवता करते हैं, तथा इंद्रभी करते हैं ॥ ४ ॥

आसणाइं च–आसनानि च–अनेक रत्नचूनयिांकरके विराजमान सुवर्णमय मेरुशृंगकीतरह ऊंचा और अनेक कर्मरूप वैरिके समूहको मानो डराते न होय? ऐसें साक्षात् सिंहरूपकरके शोभायमान ऐसा सुवर्णमय सिंहासन देवता करते हैं, तिसके ऊपर बैठके भगवान् देशना देते हैं. ॥ ५ ॥

भावलय–भामंडल–भगवंतके पीछे शरदृऋतु संबंधि सूर्यकी किरणों कीतरह दुर्दर्श अत्यंत देदीप्यमान श्री वीतरागके मस्तकके पीछले भागमें भामंडलकीतरह भामंडल होता है. "भा" नाम कांति, तिसका मंडल अर्थात् मांडला सो भामंडल. विनाभामंडलके भगवान्‌के मुखसन्मुख अतिशय तेजोमयि होनेसें, कोइ देख नही सक्ता है. इस वास्ते, देवता भामं-डलकी रचना करते हैं. ॥ ६ ॥

भेरि–भेरी ढका दुंदुभिरिति यावत्–जिसने अपने भोंकार शब्दकरके विश्वका विवर भरा है ऐसी भेरी शब्दायमान करते हैं. मानो भेरीका शब्द तीन जगत्‌के लोकोंको ऐसें कहता न होय? कि "हे जनो! तुम प्रमादको छोडके श्री जिनेश्वर देवको सेवो, यह जिनेश्वर देव मुक्तिरूपी

नगरीमें पहुंचानेको सार्थवाहतुल्य है," ऐसी दुंदुभि अर्थात् आकाशमें दिव्यानुभावकरके क्रोडोंही देववाजित्र बजते हैं. ॥ ७ ॥

छत्त्रं–तीन भवनमें परमेश्वरत्वके ज्ञापक, शरत्कालके चंद्रमा और मुचकुंदके समान उज्वल मुक्ताफलकी मालाकरके विराजमान, ऐसें तीन छत्र भगवान्के मस्तकोपरि छत्रातिछत्रप्रत्यें धारण करते हैं.

यह आठ प्रातिहार्य श्री जिनेश्वर भगवत्संबंधि जयवंते वर्त्तो !

इन पूर्वोक्त अष्ट प्रातिहार्यकरके संपूर्ण है, और पुण्य पाप उपलक्षणसें नव तत्व जाणता है तिस हेतुसे नकार अंत्याक्षर कहते हैं. यह अर्हन् शब्दके अक्षरोंका अर्थ है. ॥ ४३ ॥

अब स्तवनकर्त्ता पक्षपातसें रहित होके अंतका आर्यावृत्त कहते हैं.

भवबीजाङ्कुरजनना रागाद्याःक्षयमुपागता यस्य ॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥ ४४ ॥

इति श्रीमद्धेमचंद्रसूरिविरचितं श्रीमहादेवस्तोत्रम् ॥

व्या०–संसाररूप बीजके चार गतिरूप अंकुरके उत्पन्न करनेवाले राग, द्वेष, अज्ञानादि अठारह दूषण जिसके क्षयभावको प्राप्त हुए हैं, तिसका नाम ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा हर, (महादेव) हो, वा जिन हो, तिसकेतांइ नमस्कार हो ॥ ४४ ॥ इति श्रीम० श्रीमहादेव स्तोत्रम् ॥

इन पूर्वोक्त विशेषणोंवाले ब्रह्मा, विष्णु, महादेवकोंही जैनमतवाले अर्हन्, अरिहंत, अरुहंत, अरह, जिन, तिर्थंकर, इत्यादि नामोसें मानते हैं. क्योंकि, जैनमतमें अरिहंत है, सोही ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है. "यदुक्तं श्रीमन्मानतुङ्गसूरिप्रवरैः—'

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधा-
त्वं शंकरोऽसि भुवनत्रयशंकरत्वात् ॥
धातासि धीरशिवमार्गविधेर्विधाना-
द्व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥

टीका ॥ अर्थान्तरकरणेनान्यदेवनाम्ना जिनं स्तुवन्नाह । बुद्धस्त्वमिति ॥ हे नाथ! त्वमेव बुद्धः असि वर्त्तसे । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं ।

कथंभूतस्त्वं । बुद्धः ज्ञाततत्त्वः । कस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् । विबुधैः गणधरैर्देवैर्वा अर्चितः पूजितो बुद्धेः केवलज्ञानस्य बोधो वस्तुस्तोमपरिच्छेदो यस्य स विबुधार्चितबुद्धिबोधस्तस्मात् विबुधार्चितबुद्धिबोधात् इति बहुव्रीहिः । पक्षे बुद्धः । सप्तानामन्यतमः सुगतः केवलज्ञानाभावेन ज्ञाततत्त्वो नास्तीति भावः । हे नाथ ! त्वमेव शंकरोऽसि । असीति क्रियापदं । कः कर्त्ता । त्वं । कथंभूतस्त्वं । शंकरः । कस्मात् । भुवनत्रयशंकरत्वात् । भुवनत्रयस्य जगत्रीतयस्य शंकरत्वात् सुखकारित्वात् । भुवनानां त्रयं भुवनत्रयं इति तत्पुरुषः । भुवनत्रयस्य शं सुखं करोतीति भुवनत्रयशंकरस्तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् भुवनत्रयशंकरत्वात् । इति तत्पुरुषः । पक्षे शंकरो महादेवः स तु कपाली नग्नो भैरवः संहारकः तेन यथार्थनामा शंकरो नास्तीति भावः । हे धीर ! धियं बुद्धिं राति ददातीति धीरस्तस्य संबोधनं हे धीर ! धाता त्वं असि । कस्मात् । निष्पादनात् । कस्य शिवमार्गविधेः । शिवस्य मोक्षस्य मार्गः पंथा । तस्य विधिः रत्नत्रयरूपयोगस्तस्येति तत्पुरुषः । एतावता मोक्षमार्गविधेर्विधानात् त्वमेव धातासीत्यर्थः संपन्नः । पक्षे धाता ब्रह्मा स तु जडो वेदोपदेशान्नरकपथमुदजीघटत्तेन शिवमार्गविधेर्विधायको नास्तीति भावः । हे भगवन् ! त्वमेव व्यक्तं स्पष्टं पुरुषोत्तमः असि । पुरुषेषु उत्तमः पुरुषोत्तम इति तत्पुरुषः । पक्षे पुरुषोत्तम कृष्णः । स तु सर्वत्र कपटप्रकटनात् यथार्थां पुरुषोत्तमतां न धत्ते इति भावः ॥ २९ ॥

भावार्थः—यह है कि, हे नाथ ! विबुधों, वा गणधरों, वा देवोंकरके पूजित केवलज्ञानके बोध वस्तु स्तोमके प्रगट करनेवाला होनेसें, तूंही बुद्ध है. पक्षमें सातों बुद्धोंमेंसे अन्यतम सुगत केवलज्ञानके अभावकरके ज्ञाततत्त्व नही है. हे नाथ ! तीन भुवनकों, शं (सुख) करनेसे तूं शंकर है. पक्षमें शंकर, महादेव, सो तो, कपाली, नग्न, भैरव संहारक होनेकरके यथार्थनामा शंकर नही है. हे धीर ! ज्ञानदर्शनचारित्ररूप मोक्षमार्गके विधिकों करनेसे तूंही धाता है. पक्षमें धाता, ब्रह्मा, सो तो, जड है. वेदोपदेश (हिंसकशास्त्रोपदेश) सें नरकपथकों प्रगट करता भया, तिसकरके शिवमार्गके विधिको करनेवाला नही है. हे भगवन्!

तूं ही व्यक्त (प्रगट) पुरुषोंमें उत्तम है. पक्षमें पुरुषोत्तम, कृष्ण, सो तो, सर्वत्र कपटवशसें यथार्थ पुरुषोत्तम नही है ॥ २९ ॥

और अज्ञ लोकोनें, जो ब्रह्मा, विष्णु, महादेवके नामोंको कलंकित करे है, और तिनके असभ्यतारूप चरित लिखे हैं, वे देव यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेव नही माने जाते हैं. क्योंकि उन देवोंका चरित, और स्वरूप, जो परमतवालोंने लिखा है, तिस चरित स्वरूपसेही सिद्ध होता है कि वे यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नही थे.

तथाचाह भर्तृहरिः–॥

शंभुस्वयंभुहरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियंत सततं गृहकुंभदासाः ॥
वाचामगोचरचरित्रपवित्रिताय*
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय+ ॥ ४८ ॥

भावार्थः–जिस कामदेवने, शंभु (महादेव), स्वयंभु (ब्रह्मा), और हरि (विष्णु), इन्होंकों, हरिणसमान, ईक्षण (नेत्र) है जिनोंके, ऐसी स्त्रियोंके निरंतर घरके कुंभदास, अर्थात् पानी भरनेवाले करे हैं [दूसरी परतमें, 'गृहकर्मदासाः' ऐसा पाठ हैं. उसका अर्थ घरके काम करनेवाले दास, अर्थात् नौकर] वचनके अगोचर चरित्र उन्होंकरके पवित्र, ऐसा जो भगवान् मकरध्वज (कामदेव) तिसकेतांइ नमस्कार हो.
तथा भोजराजाकी सभाके मुख्य पंडित धनपालजी कहते हैं.

दिग्वासा यदि तत्किमस्य धनुषा तच्चेत्कृतं भस्मना
भस्माथास्य किमङ्गना यदि च सा कामं प्रति द्वेष्टि किम् ॥
इत्यन्योन्यविरुद्धचेष्टितमहो पश्यन्निजस्वामिनो
भृङ्गी सान्द्रसिरावनद्धपरुषं धत्तेऽस्थिशेषं वपुः ॥ १ ॥

* प्रत्यंतरे 'वाचामगोत्ररचरित्रविचित्रिताय'–अर्थः–वाणीयोंके अगोचर अर्थात् वचनोंसें न कहे जावें ऐसे विचित्र, अद्भुत, आश्चर्यकारी, चरित्र है जिसके, ऐसा जो कामदेव भगवान् तिसकेतांइ ननस्कार हो.
+ प्रत्यंतरे 'कुसुमायुधाय' यह कामदेवकाही पर्यायनाम है.

भावार्थः–एकदा अवसरमें भोजराजा शिवालयके द्वारमें अति दुर्बल भृंगीगणकी मूर्ति देखके, पंडित श्रीधनपालजीकों पूछते भए कि, "हे पंडित! यह भृंगीगण अति दुर्बल किस कारणसें है?" तब श्रीपंडित धनपालजीने कहा, "हे राजन्! यह भृंगीगण, अपने स्वामी शंकरका असमंजस स्वरूप देखके चिंताकरके दुर्बल हो गया है;" सोही दिखाते है. भृंगीगण यह चिंता करता है कि, यदि महादेव, दिगंबर (दिशारूप वस्त्रका धारी) है, तो फेर इनकों धनुष काहेकों रखना चाहिये? क्योंकि, दिगंबर, निःकिंचन, होके धनुष रखना यह परस्पर विरुद्ध है. ॥ १ ॥ यदि, धनुषही रखना था, तो फेर शरीरको भस्म लगानेसें क्या लाभ है? क्योंकि, धनुषधारी होना यह योद्धे और अहेडी शकारीयोंका काम है, और भस्म शरीरको लगाना यह संतोंका काम है, जिसका किसीकेभी साथ वैर विरोध नही है. यह दूसरा विरोध. ॥ २ ॥ अथ जेकर भस्मही शरीरके लगाये संत बने, तो फेर स्त्रीकों संग काहेकों रखनी चाहिये? ॥ ३ ॥ जेकर स्त्रीही संग रखनी थी, तो फेर कामके ऊपर द्वेष करके उसकों भस्म क्यों करना था? ॥ ४ ॥ ऐसें परस्पर अपने स्वामीके विरुद्ध लक्षण देखके भृंगीगण दुर्बल हो गया है.

॥ अकलंकदेवोप्याह ॥

ईशः किं छिन्नलिङ्गो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्या-
न्नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति च कथं सांगनः सात्मजश्च ॥
आर्द्राजः किंत्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मान्तरायं
संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोत्र धीमानुपास्ते ॥ १ ॥

भावार्थः–जे कर शंकर, आप ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता, हर्त्ता है तो, ऋषिके शापसें उसका लिंग किस वास्ते टूट गया? और ईश्वर होके ऋषिके आगे नग्न होके काहेकों नाचा? और जेकर ईश्वर भयरहित है तो, शूलपाणि क्यों है? जे कर त्रिभुवननाथ है तो, क्यों भीख मांगके खाता है? जे कर यति है तो, किसतरें स्त्रीसहित और पुत्रसहित है? जे कर आर्द्रा नक्षत्रसें जन्म लिया तो, अजन्मा (जन्मरहित)

किसतरह हुआ? जेकर सर्वज्ञ है तो, आत्माकी अंतराय क्यों नही देखता? अर्थात् घरघरमें भीख मांगता है, तव किसी घरसें भीख मिलती है, और किसी घरसें नही मिलती है; जिस घरसें भीख नही मिलती है, तिस घरमें भीख मांगनेको क्यों जाता है? यह संक्षेपसें सम्यक् प्रकारसें कथन करा है. ऐसे पशुपति (महादेव) की, अपशु अर्थात् बुद्धिमान् मनुष्य कौन सेवा कर सक्ता है? ॥ १ ॥ इस हेतुसें, जो कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, महादेव हैं, वे जैनमतवालोंके उपास्य नही है. और जो यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव है, वे जैनोंके उपास्य है.

"इति श्रीविजयानन्दसूरिकृते तत्वनिर्णयप्रासादे किंचिद्देवस्वरूपवर्णनो नाम द्वितीयः स्तम्भः ॥ २ ॥"

अथ तृतीयस्तम्भप्रारम्भः

द्वितीयस्तंभमें यथार्थ ब्रह्मा विष्णु, महादेवका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखा. अथ तृतीयस्तंभमें तिन यथार्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेवमें जे जे अयोग्य वातें हैं, तिनके व्यवच्छेदरूप श्रीमन्महावीरस्वामी स्तोत्र लिखते हैं.

इहां निश्चय विषमदुःषमअररूप रात्रितिमिरके दूर करनेकों सूर्यसमानने, और पृथिवीतलमें अवतार लेके अमृतसमान धर्मदेशनाके विस्तारसें परमार्हत हुआ श्री कुमारपाल भूपालसें प्रवर्त्तित कराई अभयदान जिसका नाम ऐसी संजीविनी औषधिकरके जीवित करे नाना जीवोंने दीनी आशीर्वादरूप महात्म्यकल्प अर्थात् पंचम अरेपर्यंततांइ स्थिर रहनेहारा स्थिर करा है विशद (निर्मल) यशःशरीरकरके जिन्होंनें, और चातुरविद्यके निर्माण करनेमें एक ब्रह्मारूप श्रीहेमचंद्रसूरिने, जगत्में प्रसिद्ध श्रीसिद्धसेनदिवाकरविरचित वत्तीस वत्तीसियोंके अनुसारि श्रीवर्द्धमानजिनकी स्तुतिरूप, अयोग्यव्यवच्छेद और अन्य योग्यव्यव-

च्छेद नाम कियां दो बत्तीसियां पंडितजनोंके मनके तत्त्वबोध हेतुभूत रचीयां है. तिनमेंसें, प्रथम द्वात्रिंशिका सुगमार्थरूप है, इसवास्ते इसकी व्याख्या नही करते हैं, ऐसें श्रीमल्लिषेणसूरि कहते हैं. परंतु इस कालके हमारे सरीखे मंदबुद्धियोंकों तो, प्रथम द्वात्रिंशिकाका अर्थ जानना बहुतही कठिन हो रहा है; तथापि, शिष्यजनोंकी प्रार्थनासें, और श्रीहेमचंद्रसूरिजीकी भक्तिके मिससें किंचिन्मात्र अर्थ लिखते हैं.

अगम्यमध्यात्मविदामवाच्यं वचस्विनामक्षवतां परोक्षम्
श्रीवर्द्धमानाभिधमात्मरूपमहं स्तुतेर्गोचरमानयामि ॥ १॥

व्याख्याः–(अहं) मैं हेमचंद्रसूरि (श्रीवर्द्धमानाभिधम्) श्रीवर्द्धमान नाम भगवंतकों (स्तुतेः) स्तुतिका (गोचरम्) विषय (आनयामि) करता हूं. कैसा है श्रीवर्द्धमान भगवंत (अध्यात्मविदाम्) अध्यात्मवेत्तायोंके (अगम्यम्) अगम्य है, अर्थात् अध्यात्मज्ञानीभी जिसका संपूर्ण स्वरूप नही जान सक्ते हैं. जे आत्माका, मनका और देहका, यथार्थ स्वरूप जानते हैं, तिनकों अध्यात्मवित् कहते हैं. तिनोंकेभी ज्ञानकरके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप अगम्य है. तथा (वचस्विनाम्) वचस्वी पंडितकों कहते हैं, मनःपर्यायज्ञानी, अवधिज्ञानी, पूर्वधर, गणधरादि सर्व शास्त्रोंका वेत्ता. ऐसें सद्बुद्धिमान् सर्व पापोंसें दूर वर्त्तनेवाले ऐसें पंडितोंके वचनों करके श्रीवर्द्धमान भगवंतका स्वरूप (अवाच्यम्) अवाच्य है, अर्थात् ऐसें पंडितभी जिनका संपूर्ण स्वरूप नही कह सक्ते हैं. क्योंकि, श्रीवर्द्धमान भगवंत अनंतस्वरूप गुणवान् है; और छद्मस्थके तो ज्ञानमेंही वे सर्वगुण नही आ सक्ते हैं तो, तिन सर्वका स्वरूप कथन करना तो दूरही रहा. तथा (अक्षवताम्) नेत्रोंवालोंके (परोक्षम्) परोक्ष है; यद्यपि संप्रति कालके नेत्रोंवालोंके तो भगवंतका स्वरूप देखना परोक्षही है, परंतु भगवंतके जीवनमोक्षके समयमें भी नेत्रोंवालोंकेभी श्रीभगवंतका स्वरूप परोक्षही था. क्योंकि, समवसरणमेंभी विराजमान भगवंतका अनंत गुणात्मक स्वरूप, नेत्रोंवाले नही देख सक्ते थे. तथा कैसे है श्रीवर्द्धमानाभिध भगवंत (आत्मरूपम्) आत्मरूप है. आत्मा शब्दका अर्थ ऐसा है कि, अतति

सततं निरंतर अवगच्छति जानता है: अत 'सात्यतगमने' इस वचनसें, अत धातुकों गत्यर्थ होनेसें, और गत्यर्थ सर्व धातुयोंको ज्ञानार्थत्व होनेसें, तब तो, अनवरत निरंतर जो जानें ऐसें निपातसें, आत्मा, जीव, उपयोग, लक्षण होनेसें, आत्मा सिद्ध होता है. और सिद्ध मोक्षावस्था संसारी अवस्था दोनोंमेभी, उपयोगके भाव होनेकरके निरंतर अवबोधके होनेसें, जेकर निरंतर अवबोध न होवे, तब तो अजीवत्वका प्रसंग होवेगा; और अजीवको फेर जीव होनेके अभावसें, जेकर, अजीवभी जीव हो जावे, तब तो, आकाशादिकोंकोभी जीवत्व होनेका प्रसंग होवेगा. तब तो, जीवादि व्यवस्थाकाही भंग होवेगा. इसवास्ते, निरंतर अवबोधरूप होनेसें, आत्मा कहते हैं. अथवा, अतति सततं निरंतरं गच्छति प्राप्त होता है, अपनी ज्ञानादिपर्यायांकों जो, सो आत्मा है.

पूर्वपक्षः-ऐसें तो आकाशादिकोंकों भी, आत्मशब्दके व्यपदेशका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, वेभी अपनी अपनी पर्यायांकों प्राप्त होते हैं; अन्यथा अपरिणामी होनेकरके, अवस्तुत्वका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः-जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है. क्योंकि, दो प्रकारके शब्द होते हैं. व्युत्पत्तिमात्रनिमित्तरूप, और प्रवृत्तिनिमित्तरूप; तिसमें यह तो व्युत्पत्तिमात्रही है, और प्रवृत्तिनिमित्तसें तो जीवही आत्मा है. न आकाशादि. अथवा, संसारी अपेक्षा नानागतियोंमें निरंतर गमन करनेसें, और मुक्तात्माकी अपेक्षाभूततद्भावसें आत्मा कहते हैं. यह आत्मा शब्दका अर्थ है. सो आत्मा, तीन प्रकारका है. बाह्यात्मा १, अंतरात्मा २, परमात्मा ३. तिनमें जो परमात्मा है, तिसका स्वरूप ऐसा है, जो शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्म शत्रुयोंकों हणके निरूपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद पाकरके, करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहकों विशेष जानते और देखते हैं; और परमानंदसंपन्न होते हैं; वे तेरमें चौदमें गुणस्थानवर्त्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्धस्वरूपमें रहनेसें, परमात्मा कहे जाते हैं. ऐसा परमात्मास्वरूप है, जिसका ॥ १ ॥

इस काव्यका भावार्थ यह है कि, सपाद लक्ष पंचांगव्याकरणादि साढेतीन कोटि श्लोकोंके कर्त्ता, श्रीहेमचंद्राचार्य, अपने आपकों श्रीवर्द्ध-

मान भगवंतकी संपूर्ण स्तुति करनेकी सामर्थ्य न देखते हुए, अपने आपको कहते हैं कि, जो वर्द्धमान भगवंत परमात्मरूप है, जो अध्यात्म ज्ञानियोंके अगम्य है, जो वचस्वियोंके अवाच्य है, और जो नेत्रवालोंके परोक्ष है, तिनकों मैं स्तुतिका विषय करता हूं, यह बडाही मेरा साहस है. तव मानूं श्री वर्द्धमान भगवंत साक्षात्‌ही श्री हेमचंद्राचार्यकों कहते हैं कि, "हे हेमचंद्र! जेकर तूं मेरी स्तुति करनेकों शक्तिमान् नही है तो, तूं किसवास्ते मेरी स्तुति करनेकों उद्यम करता है?" तव श्री हेमचंद्राचार्य भगवतको मानूं साक्षात्‌ही कहते हैं.

स्तुतावशक्तिस्तव योगिनां न किं गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः
इदं विनिश्चित्य तव स्तवं वदन्न बालिशोऽप्येष जनोऽपराध्यति२

व्याख्या-"हे भगवन्! (तव) तेरी (स्तुतौ) स्तुति करनेमें (किम्) क्या (योगिनाम्) योगियोंकों (अशक्तिः) असमर्थता (न) नही है? अपितु है; अर्थात् हे भगवन्! तेरी स्तुति करनेकी योगियोंमेंभी शक्ति नही है, परंतु तिनोंनेभी तेरी स्तुति करि है." तव मानूं भगवान् फेर साक्षात् श्री हेमचंद्रजीकों कहते है कि, "हे हेमचंद्र! योगियोंकों मेरे गुणोंमें अनुराग है, इस वास्ते तिनोंने मेरी स्तुति करी है. जो गुण रागी करेगा सो समीची नही करेगा" तव श्रीहेमचंद्रजी कहते हैं (गुणानुरागस्तु ममापि निश्चलः) "गुणानुराग तो मेरा भी निश्चल है; अर्थात् हे भगवन! तेरे गुणोंका राग तो मेरेभी अति दृढ है. (इदम्) यही वार्त्ता (विनिश्चित्य) अपने मनमें चिंतन करके अर्थात् निश्चय करके (तव स्तवं वदन्) तेरी स्तुति कहता हुआ (बालिशः अपि) मूर्ख भी (एष जनः) यह हेमचंद्र (नअपराध्यति) अपराधका भागी नही होता है.

अथ स्तुतिकार अपनी निरभिमानता और पूर्वाचार्योंकी वहुमानता सूचन करते हैं.

क्व सिद्धसेनस्तुतयो महार्था अशिक्षितालापकला क्व चैषा ॥
तथापि यूथाधिपतेः पथस्थः स्खलद्गतिस्तस्य शिशुर्न शोच्यः॥३॥

व्याख्या–हे भगवन्! (क) कहां तो (महार्थाः) अति महा अर्थ संयुक्त (सिद्धसेनस्तुतयः) सिद्धसेनदिवाकरकी करी हुई स्तुतियां, और (क) कहां (एषा) यह (अशिक्षितालापकला) नही सीखा है अब तक पूरा पूरा बोलनाभी जिसने, तिसके कहनेकी स्तुतिरूप कला; अर्थात् कहां श्रीसिद्धसेनदिवाकररचित महा अर्थवालिया बत्तीस बत्ती-सियां, और कहां मेरे अशिक्षित आलापकी यह स्तुतिरूप कला; (तथापि) तोभी, (यूथाधिपतेः) हाथियोंके यूथाधिपके (पथस्थः) पथ मार्गमें रहा हुआ (स्खलद्गतिः) स्खलित गतिभी, अर्थात् पथसें इधर उधर गति स्खलायमान् भी (तस्य) तिस यूथाधिपका (शिशुः) बालक कलभ (न शोच्यः) शोचनीय नही है. ऐसेंही श्री सिद्धसेनदिवाकर गच्छा-धिप है, और मैं तिनका (बालक) बच्चा हूं. जिस रस्तेपर वे चले हैं, मैंभी तिसही रस्तेमें रहा हुआ, अर्थात् तिनकी तरहही स्तुति करता हुआ, जेकर स्खलायमानभी होजावुं, तोभी शोचनीय नही हूं.

अथाग्रे श्रीहेमचंद्रसूरि अयोग व्यवच्छेदरूप भगवंतकी स्तुति रचते हैं.

जिनेंद्र यानेव विबाधसे स्म दुरंतदोषान् विविधैरुपायैः ॥
त एव चित्रं त्वदसूययेव कृताः कृतार्थाः परतीर्थनाथैः ॥ ६ ॥

व्याख्या–हे जिनेंद्र! (यानेव) जिनही (दुरंतदोषान्) दुरंतदूषणाकों (विविधैः) विविध प्रकारके (उपायैः) उपायोंकरके (विबाधसे) तुम बाधित करते हुए हैं, अर्थात् जिन दुरंतदूषण राग, द्वेष, मोहादिकोंको नाना प्रकारके संयम, तप, ज्ञान, ध्यान, साम्यसमाधि, योग, लीनतादि उपायोंकरके दुर करे हैं; (चित्रम्) मुझकों बडाही आश्चर्य है कि, (त एव) वेही दुरंतदूषण (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (त्वदसूययेव) तेरी असूया करकेही (कृतार्थाः) कृतार्थ (कृताः) करे हैं, अर्थात् अच्छे जानके स्वीकार करे हैं; सोही दिखाते हैं.

हे भगवन्! प्रथम रागकों तैने दूर करा; तिस रागकोंही परतीर्थनाथों-ने स्वीकार करा है. क्योंकि, रागका प्रायः मूल कारण स्त्री है, सो तो, तीनोंही देवने अंगीकार करी है. ब्रह्माजीने सावित्री, शंकरने पार्वती,

और विष्णुने लक्ष्मी. और पुत्र पुत्रीयां साम्राज्य परिग्रहादिकी ममताभी सर्व देवोंके तिनके शास्त्रोंके कथनानुसारही सिद्ध हे. और अप्रीतिलक्षणद्वेषभी पूर्वोक्त देवोंमें सिद्ध है. क्योंकि, जो शस्त्र रखेगा सो यातो वैरीके भयसें अपनी रक्षाकेवास्ते रखेगा, यातो अपने वैरियोंको मारने वास्ते रखेगा; शंकर धनुष, बाण, त्रिशूलादि; और विष्णु चक्र, धनुष, वाण, गदादि; और ब्रह्मादि तीनो देवोंने अनेक पुरुषोंकों शाप दिये महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हे; और शंकर विष्णुने अनेक जनोंके साथ युद्ध करे हे; इत्यादी अनेक हेतुयोंसें, तीनो देव, द्वेषी सिद्ध होते हैं. और मोह, अज्ञानभी, तीनो देवादिक परतीर्थनाथोंने स्विकार करा है. क्योंकि, जपमाला रखनेसें अज्ञानी सिद्ध होते हैं, जपमाला जपकी गिणती वास्ते रखते हैं, जपमालाविना जपकी गिणती (संख्या) न जाननेसें, अज्ञानिपणा सिद्ध है. और महाभारत, रामायण, शिवपुराणादि ग्रंथोंके कथनसें, तीनो देव, अस्मदादिकोंकी तरह अज्ञानी सिद्ध होते हैं. जैसें, शिवके लिंगका अंत ब्रह्मा विष्णुकों न मिला, इत्यादि अनेक उदाहरण है. तिससें, तीनो देव अज्ञानी सिद्ध होते हैं. तथा हास्य, रति, अरति, भय, जुगुप्सा, शोक, काम, मिथ्यात्व, निद्रा, अविरति, पांच विघ्नादि दूषणभी, तीनो देवादिकोंमें तिनके कथन करे शास्त्रोंसेंही सिद्ध होते हैं.

इस वास्ते मानूं हे जिनेंद्र! तीनो देवोंने तेरी ईर्षा करकेही पूर्वोक्त दूषण अंगीकार करे हैं. यह प्रायः जगत्में प्रसिद्धही है कि, जो निर्द्धन धनाढ्यका स्पर्धी, जब धनाढ्यकी बराबरी नही करसक्ता है, तब धनाढ्यकी ईर्षासें विपरीत चलना अंगीकार करता है. तैसेंही, परतीर्थनाथोंने हे भगवन्! तेरेकों सर्व दूषणोंसें रहित देखके तेरी ईर्षासेंही मानूं सर्व दूषण कृतार्थ करे हैं, यह मेरेकों बडाही आश्चर्य है. ॥ ४ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें असत् उपदेशकपणे काव्य वछेद करते हैं.

यथास्थितं वस्तु दिशन्नधीश न तादृशं कौशलमाश्रितोऽसि ॥
तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यो नमः परेभ्यो नवपण्डितेभ्यः ॥५॥

व्याख्या—हे अधीश! हे जिनेंद्र! तूं (यथास्थितं) यथास्तित (वस्तु) व-

स्तुका स्वरूप (दिशन्) कथन करता हूआ (तादृशं) तैसी (कौशलं) कौशलता–चातुर्यताकों (न) नही (आश्रितोसि) आश्रित–प्राप्त हूआ है, जैसी चातुर्यताकों असद्रूप पदार्थकों, सद्रूप कथन करते हूए परवादी प्राप्त हूए हैं, अर्थात् जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आस्रव ५, संवर ६, निर्ज्जरा ७, वंध ८, और मोक्ष ९, यह नव पदार्थ है. तिनमें जो जीव है, सो ज्ञानादि धर्मोंसें कथंचित् भिन्नाभिन्न रूप है, शुभाशुभ कर्मोंका कर्त्ता है, अपने करे कर्मोंका फल अपने अपने निमित्तों द्वारा भोक्ता है, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव रूप चार गतिमें अपने कर्मोंके उदयसें भ्रमण करता है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप साधनोंसें निर्वाण पदकों प्राप्त होता है, चैतन्य अर्थात् उपयोगही जिसका लक्षण है, अपने कर्मजन्य शरीर प्रमाण व्यापक है, द्रव्यार्थिक नयके मतसें नित्य है, पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्य हैं, द्रव्यार्थे स्वरूपसें अनादि अनंत है, पर्यायार्थे सादि सांत है, और कर्मोंके साथ प्रवाहसें अनादि संयोग संवंधवाला है, इत्यादि विशेषणोंवाला जीव है. ॥ १॥

चैतन्यरहित, अज्ञानादि धर्मवाला, रूप, रस गंध, स्पर्शादिकसें भिन्नाभिन्न, नरामरादि भवांतरमें न जानेवाला, ज्ञानावरणादि कर्मोंका अकर्त्ता, तिनोंके फलका अभोक्ता, जड स्वरूप, इत्यादि विशेषणोंवाला रूपी, अरूपी, दो प्रकारका अजीव है. तिनमें परमाणुसें लेके जो वस्तु वर्ण गंध रस स्पर्श संस्थानवाला दृश्य है, वा अदृश्य है, सो सर्व रूपी अजीव है. तथा धर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, और काल, ये चारों अरूपी अजीव है. धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, यह तीनों द्रव्यसें एकैक द्रव्य हैं, क्षेत्रसें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यह दोनों लोकमात्र व्यापक है, आकाशास्तिकाय, लोकालोक व्यापक है, कालसें तीनों ही द्रव्य अनादि अनंत है, और भावसें वर्ण गंध रस स्पर्शरहित, और गुणसें धर्मास्तिकाय चलनेमें सहायक है, और अधर्मास्तिकाय स्थितिमें सहायक है, और आकाशास्तिकाय सर्व द्रव्योंका भाजन विकाश देनेमें सहायक है. काल, द्रव्यसें एक वा अनंत है, क्षेत्रसें अढाइ द्वीप प्रमाण व्यावहारिक काल है, कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस

स्पर्श रहित, गुणसें नव पुराणादि करनेका हेतु है. और रूपी अजीव पुद्गल रूप द्रव्यसें पुद्गल द्रव्य अनंत है, क्षेत्रसें लोकप्रमाण है; कालसें अनादि अनंत है, भावसें वर्ण गंध रस स्पर्श वाला है. मिलना और विच्छड जाना यह इसका गुण है; इन पूर्वोक्त पांचों द्रव्योंका नाम अजीव है. २.

तथा पुण्य जो है, सो शुभ कर्मोंके पुद्गल रूप है, जिनके संबंधसें जीव सांसारिक सुख भोगता है. ३. इससें जो विपरीत है सो पाप है. ४. मिथ्यात्व (१) अविरति (२) प्रमाद (३) कषाय (४) और योग (५) यह पांच बंधके हेतु है; इस वास्ते इनकों आस्रव कहते हैं, ५. आस्रवका निरोध जो है सो संवर है, अर्थात् सम्यग्दर्शन, विरति, अप्रमाद, अकषाय, और योगनिरोध, यह संवर है. ६. कर्मका और जीवका क्षीरनीरकी तरें परस्पर मिलना तिसका नाम बंध है. ७. बंधे हूए कर्मोंका जो क्षरणा है सो निर्ज्जरा है. ८. और देहादिकका जो जीवसें अत्यंत वियोग होना और जीवका स्वस्वरूपमें अवस्थान करना तिसका नाम मोक्ष है. ९. *

इन पूर्वोक्त नवही तत्त्वोंका स्याद्वाद शैलीसें शुद्ध श्रद्धान करना तिसका नाम सम्यग्दर्शन है; और इनका स्वरूप पूर्वोक्त रीतिसें जानना तिसका नाम सम्यग्ज्ञान है; और सत्तरें भेदें संयमका पालना तिसका नाम सम्यक्चारित्र है; इन तीनोंका एकत्र समावेश होना तिसका नाम मोक्षमार्ग है; जड, और चैतन्यका जो प्रवाहसें मिलाप है, सो संसार है; यह संसार प्रवाहसें अनादि अनंत है, और पर्यायोंकी अपेक्षा क्षणविनश्वर है. इत्यादि वस्तुका जैसा स्वरूप था, तैसाही, हे जिनाधीश ! तैंने कथन करा है, ऐसे कथन करनेसें तैंने कोई नवीन कुशलता—चातुर्यता नही प्राप्त करी है, क्योंकि, जेसें अतीतकालमें अनंत सर्वज्ञोंने वस्तुका स्वरूप यथार्थ कथन करा है, तैसाही तुमने कथन करा है इस वास्ते, (तुरंगशृंगाण्युपपादयद्भ्यः) घोडेके श्रृंग उत्पन्न करनेवाले (परेभ्यःनवपंडितेभ्यः) पर नवीन पंडितोंकेतांइ (नमः) हमारा नमस्कार होवे, अर्थात् जिनोंने तुरंगश्रृंग समान असत् पदार्थ कथन करके

* जीवाजीवादि नव पदार्थोंका स्वरूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथमें विस्तारसें लिखा है, इस वास्ते यहां नहीं लिखा है.

जगत्वासी मनुष्योंको मिथ्यात्व अंधकार संसारकी वृद्धिके हेतुभूत मार्गमें प्रवर्त्तन कराया है, तिनोंकेतांइ हम नमस्कार करते हैं. ये तुरंगश्रृंग समान पदार्थ यह है. एकही ब्रह्म है, अन्य कुछभी नही है, १. पूर्वोक्त ब्रह्मके तीन भाग सदाही निर्मल है और एक चौथा भाग मायावान् है, २. ब्रह्म सर्वव्यापक है, ३. सक्रिय है, ४. कूटस्थ नित्य है, ५. अचल है, ६. जगत्की उत्पत्ति करता है, ७. जगत्का प्रलय करता है, ८. ऊर्णनाभकीतरें सर्व जगत्का उपादान कारण है, ९. सदा निर्लेप सदा मुक्त है,१०. यह जगत् भ्रममात्र है, ११. इत्यादि तो वेद और वेदांत मतवालोंने तुरंगश्रृंग समान वस्तुयोंका कथन करा है.

और सांख्य मतवालोंने एक पुरुष चैतन्य है, नित्य है, सर्वव्यापक है, एक प्रकृति जडरूप नित्य है, तिस प्रकृतिसें बुद्धि उत्पन्न होती है, बुद्धिसें अहंकार, अहंकारसें षोडशकागण, पांच ज्ञानेंद्रिय, (पांच कर्मेंद्रिय, इग्यारमा मन, और पांच तन्मात्र, एवं षोडश) पांच तन्मात्रसें पांच भूत एवं सर्व, २५ प्रकृति जडकर्त्ता है, और पुरुष तिसका फल भोक्ता है, पुरुष निर्गुण है, अकर्त्ता है, अक्रिय है, परंतु भोक्ता है, इत्यादि सर्व कथन तुंरगशृंगकीतरें असद्रूप करा है.

नैयायिक वैशेषिक यह दोनों ईश्वरको सृष्टिका कर्त्ता मानते हैं, ईश्वर नित्य बुद्धिवाला है, सर्वव्यापक और नित्य है, ईश्वरही सर्व जीवोंका फलप्रदाता है, आत्मा अनंत है परंतु सर्वही आत्मा सर्वव्यापक है, मोक्षावस्थामें ज्ञानके साथ समवायसंबंधके तूटनेसें आत्मा चैतन्य नही रहता है, और तिसकों स्वपरका भान नही होता है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

पूर्व मीमांसावाले कहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ नही है, मोक्ष नही है, वेद अपौरुषेय और नित्य है, वेदका कोई कर्त्ता नही है, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है.

बौद्ध मतके मूल चार संप्रदाय है,–योगाचार (१), माध्यमिक (२), वैभाषिक (३), सौतांत्रिक (४); इनमें योगाचार मतवाले विज्ञानाद्वैतवादी हैं, आत्माको नहीं मानते हैं, एक विज्ञान क्षणकोही सर्व कुछ

मानते हैं; कितनेक विज्ञान क्षणोके संतानके नाशकोही निर्वाण मानते हैं; कितनेक शून्यवादी सर्व शून्यही सिद्ध करते हैं, इत्यादि सर्व कथन तुरंगशृंग उपपादनवत् है.

इन पूर्वोक्त, सर्ववादियोंका कथन जिस रीतिसें तुरंगशृंग उपपादनवत् असत् है. सो कथन अन्य योग व्यवच्छेदक द्वात्रिंशिकावृत्ति, (स्याद्वाद मंजरी.) षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति. प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार सूत्रकी लघु वृत्ति (रत्नाकरावतारिका.) बृहद्वृत्ति (स्याद्वाद रत्नाकर.) धर्म संग्रहणी. अनेकांत जयपताका, शब्दांभोनिधि. गंधहस्तिमहाभाष्य, (विशेषावश्यक.) वादमहार्णव. (सम्मतितर्क.) इत्यादि शास्त्रोंसें जानना.

इन पूर्वोक्त वादियोंने असत् वस्तुकों सत् करके कथन करनेमें जैसी कुशलता प्राप्त करी है. तैसी. हे जिनाधीश! तैंने नही पाई है इस वास्ते. तिन परपंडितोंकेतांइ हमारा नमस्कार होवे. इहां जो नमस्कार करा है, सो उपहास्य गर्भित है, नतु तत्वसें ॥ ८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतसें व्यर्थ दयालुपणेका व्यवच्छेद करते हैं.

जगत्यनुध्यानबलेन शश्वत् कृतार्थयत्सु प्रसभं भवत्सु ॥
किमाश्रितोऽन्यैः शरणं त्वदन्यः स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः॥९॥

व्याख्या—हे भगवंतः! (जगति) जगत्में (शश्वत्) निरंतर (प्रसभं) यथास्यात् तैसें हठसें (भवत्सु) तुमारेकों (कृतार्थयत्सु) जगत्वासी जीवांकों कृतार्थ करते हूआं, किस करके (अनुध्यान बलेन) अनुध्यान शब्द अनुग्रहका वाचक है. अनुग्रहके बल करके. अर्थात् सद्धर्मदेशनाके बल करके भव्य जीवोंके तारने वास्ते निरंतर जगत्में प्रसभसें—हठसें देशनाके बलसें जनोंकों कृतार्थ करते हूए, क्योंकि परोपकार निरपेक्ष अर्थात् बदलेके उपकारकी अपेक्षा रहित जो अनुग्रहके बलसें भव्य जनोंकों मोक्षमार्गमें प्रवर्त्त करना है. इसके उपरांत अन्य कोइभी ईश्वरकी दयालुता नही है, जे कर विनाही उपदेशके दयालु ईश्वर तारने समर्थ है. तो फेर द्वादशांग, चार वेद, स्मृति, पुराण, बैबल, कुरानादि पुस्तकों द्वारा उपदेश प्रगट

करना व्यर्थ सिद्ध होवेगा; इस वास्ते ईश्वरकी यही दयालुता है, जो भव्य जनोंकों उपदेश द्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करना सो तो आप निरंतर जगत्में करही रहे हैं, ऐसे आप परम कृपालुकों छोडके (अन्यैः) अन्य परवादीयोंनें (त्वदन्यः) तुमारिसें अन्यकों (शरणं) शरणभूत (किम्) किस वास्ते (आश्रितः) आश्रित किया है—माना है? कैसा है वो अन्य? (स्वमांसदानेन वृथा कृपालुः) अपना मांस देने करके जो वृथा कृपालु है; आत्माका घात, और परकों अपना मांस देके तृप्त करना, यह वृथाही कृपालुका लक्षण है, क्योंकि, ऐसी कृपालुतासें परजीवका कल्याण नही होता हैं, असद्धर्मोपदेशरूप होनेसें. बुद्धका यह कहना है कि, मेरे सन्मुख कोइ व्याघ्र सिंहादिक भूखसें मरता होवे तो, मैं अपना मांस देके तिसकी क्षुधा निवारण करुं, मैं ऐसा दयालु हूं. और क्षेमेंद्रकविविरचित बोधि सत्व-अवदान कल्पलतामें बोधि सत्वने पूर्व जन्मांतरमें अपना शरीर सिंहको भक्षण करवाया था ऐसा कथन है, इस वास्ते बुद्ध अपने आपकों स्वमांसके देनेसें कृपालु मानता था, परंतु यह कृपालुता व्यर्थ है. ॥ ६ ॥
आथाग्रे आचार्य असत्पक्षपातीयोंका स्वरूप कहते हैं.

स्वयं कुमार्गं लपतां नु नाम प्रलम्भमन्यानपि लम्भयन्ति ॥
सुमार्गगं तद्विदमादिशन्तमसूयान्धा अवमन्वते च ॥ ७ ॥

व्याख्या—(असूययांधाः) ईर्षा करका जे पुरुष अंधे है वे (स्वयं) आपतो (कुमार्गं) कुमार्गकों (लपतां) कथन करो! प्रबल मिथ्यात्व मोहके उदय होनेसें जैसें मद्यप पुरुष मदके नशेमें, जो चाहो सो असमंजस वचन बोलो तैसेंही मिथ्यात्वरूप धतूरेके नशेसें ईर्षांध पुरुष कुमार्ग, अर्थात् अश्वमेध, गोमेध, नरमेध, अजामेध, अंत्येष्टि, अनुस्तरणि, मधुपर्क, मांस आदिसें श्राद्ध करना, ब्राह्मणोंके वास्ते शिकार मारके लाना, परमेश्वरकों जीव वध करके बलिका देना, मोक्ष प्राप्तकों फेर जगत्में जन्म लेना, तीर्थोंमें स्नान करनेसें सर्व पापोंसें छूटना, काशीमें मरणेसें मोक्षका मानना, अरूपी, अशरीरी, सर्वव्यापक, मुखादि अवयव रहित, ऐसें परमेश्वरकों वेदादि शास्त्रोंका उपदेष्टा मानना, अग्निमें

घृतादि द्रव्योंके हवन करनेसें पवन सुधरता है, तिससें मेघ शुद्ध वर्ष-ता है, तिससें मनुष्य निरोग्य रहते हैं, यह अग्निके हवन करनेसें महा-न् उपकार है ऐसा मानना, वेदोंमें ईश्वरने मांस खानेकी आज्ञा दीनी है, वेदमंत्र पवित्रित मांस खानेमें दूषण नही, निरंतर मांससें हवन करना, केवल क्रियासेंही मोक्ष मानना, केवल ज्ञानसेंही मोक्ष मानना, रागी, द्वेषी, अज्ञानी, कामीकों परमेश्वर कथन करना, सारंभी, सपरिग्रहीकों साधु मानना, पशुयोंकों मारना चाहिये नही तो येह बहुत हो गए तो, मनुष्योंकी हानि करेंगे, स्त्रीकों इग्यारह खसम करने, ऐसे नियोगकी ई-श्वरकी आज्ञा है, इत्यादि कुमार्गका नुपदेश करो! कर्मके नुदयकों अनि-वार्य होनेसें (नु) अव्यय है, खेदार्थमें तिससें बडा खेद है (नाम) कोम-लामंत्रणमें है वा प्रसिद्धार्थमें है तब तो ऐसा अर्थ हुवा कि, बडाही खेद है कि ऐसे असूया करके अंध पुरुष (अन्यानपि) अन्य जगत्वासी मनु-ष्योंकोंभी (प्रलम्भं) कुमार्गके लाभ—प्राप्तिकों (लम्भयन्ति) प्राप्ति कराते हैं, अर्थात् आप तो कुमार्गकी देशना करनेसें नाशकों प्राप्त हुए हैं, परं अन्य जनोंकाभी कुमार्गमें प्रवर्त्तोके नाश करते हैं. इतना करकेभी संतोषित नही होते हैं, बलकि वे, असूया इर्षा करके अंधे (सुमार्गगं) सुमार्ग गत पुरुषकों, (तद्विदं) सुमार्गके जानकारकों और (आदिशन्तं) सुमार्गके नुपदेशककों (अवमन्वते) अपमान करते हैं. जैसें यह ईश्वरकों जगत्क-र्त्ता नही मानते हैं, वेदोंके निंदक हैं, वेद बाह्य हैं, नास्तिक हैं, जगत्कों प्रवाहसें अनादि मानते हैं, कर्मका फलप्रदाता निमित्तकों मानते हैं, परंतु ईश्वरको फलप्रदाता नही मानते हैं, आत्माकों देहमात्र व्यापक मानते हैं, षट्कायको जीव मानते हैं, इत्यादि अनेक तरेसें अपना मत चलाते हैं; इस वास्ते अहो लोको ! इनके मतका श्रवण करना तथा इनका संसर्ग करना, अच्छा नही है, इत्यादि अनेक वचन बोलके पूर्वोक्त तीनों-का अपमान करते हैं. ॥ ७ ॥

अथाग्रे भगवत्के शासनका महत्त्व कथन करते हैं.

प्रादेशिकेभ्यः परशासनेभ्यः पराजयो यत्तव शासनस्य
खद्योतपोतद्युतिडम्बरेभ्यो विडम्बनेयं हरिमण्डलस्य ॥ ८ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (परशासनेभ्यः) पर शासनोंसें, कैसें पर शासनोंसें ? (प्रादेशिकेभ्यः) प्रमाणका एक अंश माननेसें जे मत उत्पन्न हूए है, अर्थात् एक नयको मानके जे परमत वादीयोंने उत्पन्न करे हैं, तिनका नाम प्रादेशिक मत है. आत्मा एकांत नित्यही है, वा क्षणनश्वरही है, वस्तु सामान्य रूपही है, वा विशेष रूपही है वा सामान्य विशेष स्वतंत्रही पृथक् २ है, कार्य सत्ही उत्पन्न होता है, वा असत्ही उत्पन्न होता है, गुण गुणीका एकांत भेदही है, वा एकांत अभेदही है, एकही ब्रह्म है, इत्यादि प्रादेशिक परमतोंसें (यत्) जो (तव शासनस्य) तेरे शासनका (पराजय) पराजय है, सो, ऐसा है, जैसा (खद्योतपोद्युतिडम्बरेभ्यः) खद्योतके बच्चेकी पांखोंके प्रकाश रूप अडंबरसें (हरि मंडलस्य) सूर्यके मंडलकी (इयं) येह (विडम्बना) विटंबना अर्थात् पराभव करना है, भावार्थ यह है कि, क्या खद्योतका बच्चा अपनी पांखोंके प्रकाशसें सूर्यके प्रकाशकों पराभव कर सक्ता है? कदापि नही कर सक्ता है. तैसेंही, हे जिनेंद्र ! एक नया भास मतके माननेवाले वादी, खद्योत पोतवत् तेरे अनंत नयात्मक स्याद्वाद मतरूप सूर्यमंडलका पराभव कदापि नही कर सक्ते हैं ॥ ८ ॥

भगवंतका शासन सर्व प्रमाणोंसें सिद्ध है. अथ, जो ऐसे शासनमें संशय करता है, क्या जाने यह भगवंत अर्हन्का शासन सत्य है, वा नही? अथवा, जो भगवंतके शासनमें विवाद करता है कि, यह शसन सत्य न ही है, ऐसे पुरुषकों स्तुतिकार उपदेश करते हैं.

शरण्यपुण्ये तव शासनेऽपि संदेग्धि यो विप्रतिपद्यते वा ॥
स्वादौ सतथ्ये स्वहितें च पथ्ये संदेग्धि वा विप्रति पद्यते वा॥९॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! (शरण्यपुण्ये) शरणागतकों जो त्राण करणे योग्य होवे तिसकों शरण्य कहते हैं तथा पुण्य पवित्र ऐसे (तव) तेरे (शासनेपि) शासनके हूएभी (यो) जो पुरुष तेरे शासनमें (संदेग्धि) संदेह करता है (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, सो पुरुष (स्वादौ) अत्यंत स्वादवाले (तथ्ये) सच्चे

(स्वहिते) स्वहितकारी (च) और (पथ्ये) निरोग्यतामें साहायक ऐसे सुंदर भोजनमें (संदेग्धि) संशय करता है, क्या जाने यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य है, वा नही ? (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) विवाद करता है, यह भोजन, स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य, नही है, यह तिसकी प्रगट अज्ञानता है. अंतिमका वा, पाद पूरणार्थ है. काव्यका भावार्थ यह है कि, हे जिनेंद्र! शरणागतकों त्राण करणेवाला तेरा शासन शरण्य रूप है "चत्तारि सरणमिति वचनात्"--चारही वस्तुयें जगत्में शरण्य है. अरिहंत, १, सिद्ध, २, साधु, ३, और केवलज्ञानीका कथन करा हूआ धर्म, ४. तिनमें अरिहंत उसकों कहते हैं, जिनोंने ज्ञानावरण, १, दर्शनावरण, २, मोहनीय, ३, और अंतराय, ४, इन चारों कर्मकी ४७ उत्तर प्रकृतियां क्षय करी है, और अष्टादश दूषणोंसें रहित हूए है, केवल ज्ञान और केवल दर्शन करके संयुक्त है, चौत्रीस अतिशय और पैंत्रीस वचन अतिशय करके सहित है, जीवन मोक्षरूप है, महामाहन, १, महागोप, २, महानिर्यामक, ३, महासार्थवाह, ४, येह चारों जिनकों उपमा है, परोपकार निरपेक्ष अनुग्रहके वास्ते जिनोंका भव्य जनोंकेतांइ उपदेश है, अरिहंतके विना अन्य कोइ यथार्थ उपदेष्टा शरणभूत नही है; क्योंकि, इनोंनेही आदिमें जगत्वासीयोंको उपदेशद्वारा मोक्षमार्ग प्राप्त करा है. । १ ।

दूसरा शरण सिद्धोंका है, जे अष्ट कर्मकी उपाधिसें रहित है, सदा आनंद और ज्ञान स्वरूप है, स्वस्वरूपमें जिनोंका अवस्थान है, अमर, अचर अजर, अमल, अज, अविनाशी, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सदाशिव, पारंगत, परमेश्वर, परमब्रह्म, परमात्मा, इत्यादि अनंत तिनके विशेषण है, ऐसे सिद्ध परमात्मा शरणभूत है; जे कर एसे सिद्ध न होवे तव तो अरिहंतके कथन, करे मार्गकों भव्य जन काहेकों अंगीकार करे? और सिद्धांके विना आत्माका शुद्ध स्वरूप केसें जाना जावे? इसवास्ते सिद्ध आतमस्वरूपके अविप्रणासके हेतु है, इस वास्ते शरणरूप है. । २ ।

तीसरा शरण साधुओंका है, साधु कहनेसें आचार्य उपाध्याय और साधु, इन तीनोंका ग्रहण है. जे कर आचार्य उपाध्याय न होते तो, अस्मदादिकों-

को अरिहंतका उपदेश कौन प्राप्त करता? और साधु न होते तो जगत्-वासीयांको मोक्षमार्ग पालन करके कौन दिखाता? और मोक्षमार्गमें प्रवर्त्ते हुए भव्य जनोंको साहाय्य कौन करता? इस वास्ते साधु शरणभूत है. । ३ ।

चौथा शरण केवल ज्ञानीका कथन करा हुआ धर्म है; क्योंकि विना धर्मके पूर्वोक्त वस्तुयोंका अस्मदादिकांको कौन बोध करता? इस वास्ते सर्व शरणभूतोंसें अधिक शरण्यभूत, हे भगवन्! तेरा शासन है । ४ ।

तथा हे जिनेंद्र! तेरा शासन पुण्य पवित्र है, सर्व दूषणोंसें मुक्त होनेसें, प्रमाण युक्ति शास्त्रसें, अविरोधि वचन होनेसें, तथा दृष्टसेंभी अविरोधि होनेसें, ऐसे शरण्य और पवित्र तेरे शासनके हुएभी, जो कोइ इसमें संशय करता है, वा विवाद करता है, सो पुरुष, अत्यंत स्वादु, तथ्य, स्वहितकारि, पथ्य भोजनमें संशय करनेवाला है, अर्थात् वो अत्यंतही मूर्ख है, जो ऐसी वस्तुमें संशय वा विवाद करता है ॥ ९ ॥

अथ स्तुतिकार अन्यआगमोंके अप्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशादसर्वविन्मूलतया प्रवृत्तेः
नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहाच्च ब्रूमस्त्वदन्यागममप्रमाणम् ॥ १० ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (त्वदन्यागमम्) तेरे कथन करे हुए आगमोंसें अन्य आगम (अप्रमाणम्) प्रमाण नही, अर्थात् सत्पुरुषांको मान्य नही है, ऐसें (ब्रूमः) हम कहते हैं. अन्य आगमोंको प्रमाणता किस हेतुसें नही है? सोइ दिखाते हैं (हिंसाद्यसत्कर्मपथोपदेशात्) वे, अन्य वेदादि आगम, हिंसादि असत् कर्मोंके पथके उपदेशक होनेसें, और (असर्वविन्मूलतयाप्रवृत्तेः) असर्ववित्, असर्वज्ञोंके मूलसें प्रवृत्त होनेसें, अर्थात् असर्वज्ञोंके कथन करे हुए होनेसें, और (नृशंसदुर्बुद्धिपरिग्रहात्) निर्दय, उपलक्षणसें मृषा, चोरी, स्त्री, परिग्रहके धारनेवाले दुर्बुद्धि, अर्थात् कदाग्रही असत्पक्षपातीयोंके ग्रहण करे हुए होनेसें; भावार्थ ऐसा है कि, जे आगम, निर्दयी, मृषावादी, अदत्तग्राही स्त्रीके भोगी और परिग्रहके लोभीयोंने ग्रहण करे हैं, अर्थात् वे जिन आगमोंको जगत्में प्रवर्त्तावने

वाले हैं, और जे आगम हिंसादि, आदि शब्दसें मृषा, अदत्तादान, मैथुनादि पाप कर्म करनेके उपदेशक हैं, वे आगम प्रमाण नही है. ॥ १० ॥ अथ भगवंतप्रणीत आगमके प्रमाण होनेमें हेतु कहते हैं.

हितोपदेशात्सकलज्ञक्लृप्तेर्मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहाच्च ॥
पूर्वापरार्थेप्यविरोधसिद्धेस्त्वदागमा एव सतां प्रमाणम् ॥११॥

व्याख्या—हे भगवन् जिनेंद्र! (त्वदागमाएव) तेरे कथन करे हुए द्वादशांगरूप आगमही (सतां) सत्पुरुषांकों (प्रमाणम्) प्रमाण है, किस हेतुसें (हितोपदेशात्) एकांत हितकारी उपदेशके होनेसें और (सकल ज्ञक्लृप्तेः) सर्वज्ञके कथन करे रचे हुए होनेसें, (च) और (मुमुक्षुसत्साधुपरिग्रहात्) मोक्षकी इच्छावाले सत्साधुयोंके ग्रहण करनेसें, अर्थात् आचार्य उपाध्याय साधु जिनके प्रवर्त्तक होनेसें, (अपि) तथा (पूर्वापरार्थे) पूर्वापर कथन करे अर्थोंमें (अविरोधसिद्धेः) अविरोधकी सिद्धिसें. ॥११॥ अथ भगवत्के सत्योपदेशकों परवादी किसी प्रकारसेंभी निराकरण नही कर सक्ते हैं यह कथन करते हैं.

क्षिप्येत वान्यैः सदृशी क्रियेत वा तवाङ्घ्रिपीठे लुठनं सुरेशितुः ॥
इदं यथावस्थितवस्तुदेशनं परैः कथंकारमपाकरिष्यते ॥ १२ ॥

व्याख्या—हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (अङ्घ्रिपीठे) चरण कमलोंमें, जो (सुरेशितुः) इंद्रका (लुठनं) लुठना-लोटना था, चरणमें चौसठ इंद्रादि देवते सेवा करते थे, इत्यादि जो तेरे आगममें कथन है, तिसकों (अन्यैः) परवादीबौद्धादि, (क्षिप्येत) क्षेपन करें—खंडन करें; यथा जिनेंद्रके चरण कमलोंमें इंद्रादि देवते सेवा करते थे, यह कथन सत्य नही है, जिनेंद्र और इंद्रादि देवतायोंके परोक्ष होनेसें (वा) अथवा (सदृशी क्रियेत) सदृश करें, जैसें श्री वर्द्धमान जिनके चरणोंमें इंद्रादि लोटते थे—चरण कमलकी सेवा करते थे, ऐसेही श्री बुद्ध भगवान् शाक्यसिंह गौतमकेभी चरणोंमें इंद्रादि सेवा करते थे, ऐसें कहें; परंतु (इदं) यह जो (यथावस्थितवस्तुदेशनं) यथार्थ वस्तुके स्वरूपका कथन तेरे शासनमें है, तिसकों (परैः) परवादी (कथंकारम्) किस प्रकार करके (अपाकरिष्यते)

अपाकरण-तिरस्कार-खंडन करेंगे अपितु किसी प्रकारसेंभी खंडन नहीं कर सकेंगे. ॥ १२ ॥

अत्र कोइ प्रश्न करे कि, यदि अर्हन् भगवन् श्री वर्द्धमानका, कोइभी परवादी जिसका किसी प्रकारसेंभी खंडन नही कर सक्ते हैं ऐसा सत्योपदेश है, तो फेर अन्य मतावलंबी तिसकी उपेक्षा क्यौं करते हैं? इसका उत्तर स्तुतिकार श्रीमद्धेमचंद्राचार्य देते हैं.

तद्दुःखमाकालखलायितं वा पचेलिमं कर्मभवानुकूलम् ॥
उपेक्षते यत्तव शासनार्थमयं जनो विप्रतिपद्यते वा ॥ १३ ॥

व्याख्या–हे जिनेंद्र! (यत्) जो (अयं जनः) यह प्रत्यक्ष जन (तव) तेरे (शासनार्थं) शासनार्थकी (उपेक्षते) उपेक्षा करता है, (वा) अथवा (विप्रतिपद्यते) तेरे शासनार्थके साथ शत्रुपणा करता है (तत्) सो, तिस प्राणिका (दुःखमाकालखलायितं) पंचम दुःखम कालका खलायितपणा है,–दुःखम कालही तिस जीवके साथ खलकी तरें आचरण करता है, जो सत्य जिनेंद्रके कथन करे मार्गकी प्राप्ति नही होने देता है, (वा) अथवा, (भवानुकूलम्) तिस जीवके भवानुकूल संसारमें भ्रमण करवाने योग्य (कर्म) अशुभ कर्म मिथ्यात्व मोहनीयादि (पचेलिमं) पक्के हुए, अर्थात् अपना फल देनेके वास्ते उदयावलिमें आये हुए है, तिनके उदयसें जिनेंद्रके कथन करे हुए मार्गको अंगीकार नही कर सक्ता है, जैसें, ऊंट द्राक्षावेलडीके खानेकी इच्छा नही करता है, तैसेंही दुःखम काल खलायितपणेसें और पचेलिम कर्मके उदयसें, यह जन, हे जिनेंद्र! तेरे मार्गकी उपेक्षा करता है, अर्थात् कल्याणकारी जानके अंगीकार नही करता है; अथवा तेरे शासनके साथ शत्रुपणा करता है॥१३॥

कोई कहेकि, तप करना, और योगाभ्यासादि सत्कर्म करने, तिनके प्रभावसेंही मोक्षकी प्राप्ति हो जावेगी, तो फेर जिनेंद्रके कथन करे मार्गके अंगीकार करनेकी क्या आवश्यकता है? तिसका उत्तर, स्तुतिकार देते हैं.

परः सहस्राः शरदस्तपांसि युगांतरं योगमुपासतां वा ॥
तथापि ते मार्गमनापतन्तो न मोक्ष्यमाणा अपि यान्ति मोक्षम् १४

व्याख्या–हे भगवन्! (परः) पर अन्य मतावलंवी (सहस्राः) हजारों (शरदः) वर्षोंतांई (तपांसि) विविध प्रकारके तप करो, (वा) अथवा (युगांतरं) अर्थात् बहुत युगांतांई (योगं) योगाभ्यासकों (उपासतां) सेवो-करो, (तथापि) तोभी वे (ते) तेरे (मार्गम्) मार्गकों (अनापतंतः) न प्राप्त होते हुए, अर्थात् तेरे मार्गके अंगीकार करे विना, (मोक्ष्यमाणाअपि) चाहो वे अपने आपकों मोक्ष होना मानभी रहे हैं, तोभी, (मोक्षम्) मोक्षकों (न) नही (यांति) प्राप्त होते हैं, क्यौंकि, सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रके अभावसें किसीकोंभी मोक्ष नहीं है, और सम्यग् दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति, तेरे मार्ग विना कदापि नही होवे है ॥ १४ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार, परवादीयोंके उपदेश भगवत्के मार्गकों किंचिन्मात्रभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं, सो दिखाते हैं.

अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलम्भाः ॥
परोपदेशाः परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे किमु संरभन्ते ॥ १५ ॥

व्याख्या–हे जिनेंद्र! (परोपदेशाः) जे परमतवादीयोंके उपदेश है, वे उपदेश (परमाप्तक्लृप्तपथोपदेशे) तेरे परमाप्तके रचे कथन करे उपदेशमें (किमु) क्या, किंचिन्मात्रभी (संरभन्ते) करते हैं? अर्थात् कोप वा आक्रोश करते हैं? किंचिन्मात्रभी नही क्या? खद्योत प्रकाश करते हुए सूर्य मंडलकों कोप वा आक्रोश कर सक्ता है? कदापि नही. ऐसें तेरे शासनकोंभी परोपदेश संरंभ नही कर सक्ते हैं, क्यौंकि, परवादीयोंके मतमें जो सूक्ति संपत् है, सो तेरेही पूर्व रूपी ये समुद्रके विंदु गए हुए हैं, तिनके विना जो परवादीयोंने स्वकपोलकल्पनासें मिथ्या जाल खडा करा है, सो सर्व युक्ति प्रमाणसें बाधित है, इस हेतुसें परवादीयोंके उपदेश तेरे मार्गमें कुछभी कोप वा आक्रोश नही कर सक्ते हैं. कैसें हैं वे परवादीयोंके उपदेश? (अनाप्तजाड्यादिविनिर्मितित्वसंभावनासंभविविप्रलंभाः)अनाप्तोंकी बुद्धिकी जो जाड्यतादि, तिससें निर्मितित्व संभावना, अर्थात् अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावना करके विप्रलंभरूप वे उपदेश रचे गए हैं; भावार्थ यह है कि, अनाप्तोंकी मंदबुद्धिकी संभावनासें जे विप्रलं-

भरूप-विप्रतारणरूप उपदेश रचे गए हैं, वे उपदेश, तेरे परमाप्तके रचे पथोपदेशमें कोप वा आक्रोश, वा तिनके खंडनमें उत्साह, वा वेग, जलदी नही कर सक्ते हैं, असमर्थ होनेसें. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके मतमें जे उपद्रव हुए हैं, वे उपद्रव भगवानूके शासनमें नही हुए हैं, ऐसा स्वरूप दिखाते हैं.

यदार्जवादुक्तमयुक्तमन्यैस्तदन्यथाकारमकारि शिष्यैः ॥
न विप्लवोयं तव शासनेभूदहो अधृष्या तव शासनश्रीः॥ १६॥

व्याख्या-(अन्यैः) परमतके आदि पुरुषोंने (आर्जवात्) आर्जवसें अर्थात् भोले भाले सादे अपने मनमाने विचारसें (यत्) जो कुछ वेदादि शास्त्रोंमें (अयुक्तम्) अयोग्य (उक्तम्) कथन करा है (तत्) सोही कथन (शिष्यैः) तिनके शिष्योंने (अन्यथाकारम्)अन्यरूपही (अकारि) कर दीया है; क्यौंकि, प्रथम जे वेद थे वे अनीश्वरवादी मीमांसकोंके मतानुयायी थे, और कर्मकांड यजनयाजनादि और अनेक देवतायोंकी उपासना करके स्वर्गप्राप्ति मानते थे, और काम्य कर्मोंके वास्ते अनेक तरेंके यज्ञादि करते थे, मोक्ष होना नही मानते थे, सर्वज्ञकोंभी नही मानते थे, वेदोंकों अपौरुषेय किसीके रचे हुए नही हैं, किंतु अनादि हैं, ऐसें मानते थे; तिस अपने मतकी पुष्टि वास्ते पूर्वमीमांसा नामक ऐसें जैमनि मुनिने रचे है, ऐसा इस मतका स्वरूप था. प्रथम तो वेदोंमेंही गडवड कर दीनी, कितनेही प्राचीन मंत्र वीचसें निकाल दिये, ऋग्वेदमें पुरुषसूक्त, और जे जे ईश्वर विषयक ऋचा हैं, वे प्रक्षेप कर दीनी है; और यजुर्वेदादिकोंमें 'सहस्रशीर्षः सहस्रपात्' तथा 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' इत्यादि तथा 'इशावास्य' इत्यादि; तथा चारवेद ईश्वरसें उत्पन्न हुए हैं, तथा चार वेद हिरण्यगर्भके उत्स्वास रूप है इत्यादि श्रुतियां ईश्वर विषयक वेदोंमें प्रक्षेप करके वेदोंकों ईश्वरके रचे हुए सिद्ध करे; पीछे तिन वेदोंके मूल पाठमें भेदवालीयां हजारां शाखा और शाखाके सूत्र रचे गए, तदनंतर यास्काचार्यादिकोंनें निघंटु निरुक्तादि रचके वेदोंके

शब्दोंके अर्थोंमें गडबड करदीनी, 'यथा अग्निमीळे (ले)' इत्यादिमें, 'अग्निर्वै विष्णुः' इत्यादि.

और कुमारिल मीमांसाके वार्त्तिककारनेभी, प्राचीन अर्थोंमें बहुत गडबड करी है; तथा वेद रचनाके पहिलें निरीश्वरी सांख्य मत था; पीछे नवीन सांख्य मतवाले उत्पन्न हुए, तिनोंने सेश्वर सांख्यमत प्रगट करा; पीछे सांख्य मतके अनुसार ऋषियोंने वेदांत अद्वैत ब्रह्मके स्वरूपके प्रतिपादक पुस्तक रचे, तिनोंका नाम उपनिषद् रक्खा; प्रकृतिकी जगे मायाकी कल्पना करी, और तीन गुणादि २४ चौवीस तत्वोंके नाम वेही रक्खे, परंतु तिनकों माया करके कल्पित ठहराए; और प्रमाण भट्ट मतानुसारि मानलीए. और उपनिषद् नामक ग्रंथ तो इतने रच लिए कि, जिसने अपना नवीन मत चलाया, तिसकी सिद्धिके वास्ते नवीन उपनिषद् रचके प्रसिद्ध करी; जैसे रामतापनी, गोपालतापनी, हनुमतोपनिषद्, अल्लोपनिषद्, इत्यादि पीछे तिनके भाष्यादि रचे गए.

शंकर स्वामीने दश उपनिषदों ऊपर, गीता ऊपर, और विष्णुसहस्र नामादि ऊपर, भाष्य रचे; तिनोंने प्राचीन अर्थोंको व्यवच्छेद करके नवीनही तरेके अर्थ रचे; तिस भाष्यके ऊपर टीकाकारोंने शंकरकी भूलें सुधारनेकों टीका रची. पुराण, और स्मृतिनामक कितनेही पुस्तकोंमें प्राचीन पाठ निकाल कर नवीन पाठ प्रक्षेप करे, और कितनेही नवीन रचे; सांप्रति शंकर स्वामीके मतानुयायीयोंमें वेदांत मतके माननेमें सैंकडो भेद हो रहे हैं, तथा व्याससूत्रोंपरि शंकरस्वामिने शारीरक भाष्य रचा है, और अन्योंने अन्य तरेके भाष्यार्थ रचे हैं, सायणाचार्यने चारों वेदोंउपर नवीन भाष्य रचके मन माने अर्थ उलट पुलट विपर्यय करके लिखे हैं, परंतु प्राचीन भाष्यानुसार नही. और दयानंद सरस्वतीजीने तो, ऋग्वेद और यजुर्वेद के दो भाष्य ऐसे विपरीत स्वकपोलकल्पित रचे हैं कि, मृषावादकों वहुतही पुष्ट करा है, सो वांचके पंडित जन वहुतही उपहास्य करते हैं. संप्रति दयानंद स्वामीके चलाये आर्य समाज पंथके दो दल हो रहे हैं, तिनमेंसे एक दलवाले तो मांस खानेका निषेधही करते हैं, और दूसरे दलवाले कहते हैं कि, वेदमें मांस खानेकी आज्ञा

है, इससें प्रगट मांस खानेका उपदेश करते हैं, और राजपुताना योधपुरके महाराजा सर प्रतापसिंहजीनें एक नवीन पुस्तक बनवा कर, तिसमें अथर्ववेदके मंत्र लिखके, तिनके ऊपर एक पंडितने नवीन भाष्य रचा है, तिसमें बहुत प्रकारसें मांसका खाना ईश्वरकी आज्ञासें सिद्ध करा है. तथा इस विषयक मनुस्मृति और दयानंदस्वामी आदिका भी प्रमाण लिखा है. अब यह दोनों दल परस्पर विवाद कर रहे हैं.

और गौतमने सिर्फ वेद और वेदांतके खंडनवास्ते ही न्यायसूत्र रचे हैं, वेद और वेदांतसें विपर्ययही प्रक्रिया रची है, कणादने षट् पदार्थ ही रचे हैं इत्यादि अनेक विप्लव अन्य मतके शास्त्रोंमें तिनके शिष्योंने करे हैं अर्थात् पूर्वजोंने जो कुछ कथन करा था, सो, तिनके शिष्यप्रशिष्यादिकोंने अन्यथा आकारवाला कर दिया है!!! हे जिनेंद्र! (तव) तेरे (शासने) शासनमें (अयं) यह पूर्वोक्त (विप्लवः) विप्लव (न) नहीं (अभूत्) हुआ है अर्थात् शिष्य प्रशिष्योंका करा ऐसा विप्लव तेरे कथनमें नही हुआ हैं. क्योंकि, सात निह्नव, और अष्टमबोटिक महा निह्नव, इनोंनें किंचिन्मात्र विप्लव करना चाहा था, तोभी, तिनका करा किंचिद् विप्लव न हुआ, शासनसें बाह्य तिनकों श्री संघने तत्काल कर दीए, इसवास्ते तेरे शासनमें पूर्वोक्त विप्लव नही हुआ है. इसवास्ते (अहो) बडाही आश्चर्य है कि, (तव) तेरे (शासनश्रीः) शासनकी लक्ष्मी (अधृष्या) अधृष्य है, अर्थात् कोईभी तिसकी धर्षणा नही कर सक्ता है ॥ १६ ॥

अथ परवादीयोंने जे जे अपने अपने मतके अधिष्ठाता स्वामीभूत देवले कथन करे हैं, तिनमें जे जे अघटित परस्पर विरुद्ध बातें हैं, वें, स्तुतिकार दिखाते हैं.

देहाद्ययोगेन सदा शिवत्वं शरीरयोगादुपदेशकर्म ॥
परस्परस्पर्धि कथं घटेत परोपक्लृप्तेष्वधिदैवतेषु ॥ १७ ॥

व्याख्या–(देहाद्ययोगेन) देहादिके अयोगसें, अर्थात् देह, आदि शब्दसें राग, द्वेष, मोहादि सर्व कर्म जन्य उपाधिके अभावसें (सदा) नि-

रंतर (शिवत्वं) शिवपणा, सत्‌चित्‌आनंदरूप परम ब्रह्म परमात्मा परम ईश्वरपणा है; और (शरीरयोगात्) शरीरके योगसें संबंधसेही (उपदेशकर्म) उपदेश कर्म है, अर्थात् देहवाला ईश्वर होवे तबही उपदेष्टा हो सक्ता है; यह दोनो बातें (परस्परस्पर्धि) परस्पर विरोधि (कथं) किसतरें (परोपक्लृप्तेषु) परवादीयोंके माने हुए (अधिदैवतेषु) अधिदेवतायोंमें (घटेत) घटती हैं? अपितु किसी प्रकारसेभी नही घट सक्ती हैं क्योंकि, परवादीयोंने अनादि मुक्तरूप, निरुपाधिक, निरंजन, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, एक ईश्वर, सर्व व्यापक माना है; ऐसा ईश्वर किसी प्रकारसेंभी उपदेष्टा सिद्ध नही हो सक्ता है. उपदेश करनेके देहादि उपकरणोंके अभावसें. क्योंकि, धर्माधर्म, अर्थात् पुण्य पापके विना तो देह नही हो सक्ता है, और देह विना मुख नही होता है, और मुख विना वक्तापणा नही है, व्याकरणके कथन करे स्थान और प्रयत्नोंके विना साक्षर शब्दोच्चार कदापि नही हो सक्ता है, तो फेर देहरहित, सर्वव्यापक, अक्रिय परमेश्वर, किसतरें उपदेशक सिद्ध हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः–परमेश्वर अवतार लेके, देहधारी होके, उपदेश देता है.

उत्तरपक्षः–परमेश्वरके मुख्यतीन अवतार माने जाते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, और येही मुख्य उपदेशक माने जाते हैं, परंतु परवादियोंके शास्त्रानुसार तो ये तीनो देव, राग, द्वेष, अज्ञान, काम, ईर्षादि दूषणोंसें रहित नही थे; तो फेर, ईश्वर, अनादि, निरुपाधिक, सदा मुक्त, सदाशिव, कैसें सिद्ध होवेगा? और सर्वव्यापी ईश्वर, एक छोटीसी देहमें किसतरें प्रवेश करेगा?

पूर्वपक्षः–हम तो ईश्वरके एकांशका अवतार लेना मानते हैं.

उत्तरपक्षः–तब तो ईश्वर एक अंशमें उपाधिवाला सिद्ध हुआ, तब तो ईश्वरके दो विभाग हो गए, एक विभाग तो सोपाधिक उपाधिवाला, और एक विभाग निरुपाधिक उपाधिरहित.

पूर्वपक्षः–हां हमारे ऋग्वेद और यजुर्वेदमें कहा है कि, ब्रह्मके तीन हिस्से तो सदा मायाके प्रपंचसे रहित, अर्थात् सदा निरुपाधिक है, और एक चौथा हिस्सा सदाही उपाधिसंयुक्त रहता है.

उत्तरपक्षः—तव तो ईश्वर, सर्व, अनादि, मुक्त, सदा शिवरूप न रहा, परं, देश मात्र मुक्त, और देशमात्र सोपाधिक रहा. तव एकाधिकरण ईश्वरमें परस्पर विरुद्ध, मोक्ष और वंधका होना सिद्ध हुआ, सो तो दृष्टेष्टवाधित है. छायातपवत्. विशेष इसका समाधान श्रुतिसहित आगें करेंगे. तव तो, ईश्वरकों सदा मुक्त, कूटस्थ, नित्य, देहादिरहित, सदा शिवादि न कहना चाहिये.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो देहादिसें रहित, सर्वव्यापक और सर्व शक्तिमान् है, इसवास्ते ईश्वर अवतार नही लेता है, परंतु सृष्टिकी आदिमें चार ऋषियोंकों अग्नि १, वायु २, सूर्य ३ और अंगिरस ४ नामवालोंकों, वेदका वोध ईश्वर कराता है.

उत्तरपक्षः—यद्यपि यह पूर्वोक्त कहना दयानंदस्वामीका नवीन स्वकपोलकल्पित गप्परूप है, तथापि इसका उत्तर लिखते हैं. प्रथम तो, ईश्वर सर्वव्यापक होनेसें अक्रिय है, अर्थात् वो कोइभी क्रिया नही करसक्ता है, आकाशवत्; तो फेर ऋषियोंकों वेदका वोध कैसें करा सक्ता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वर अपनी इच्छासें वेदका वोध करता है.

उत्तरपक्षः—इच्छा जो है, सो मनका धर्म है, और मन देह विना होता नही हैं, ईश्वरके देह तुमने माना नहीं है, तो फेर, इच्छाका संभव ईश्वरमें कैसें हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—हम तो इच्छानाम ईश्वरके ज्ञानकों कहते हैं, ईश्वर अपने ज्ञानसें प्रेरणा करके वेदका वोध कराता है.

उत्तरपक्षः—यहभी कहना मिथ्या है, क्योंकि, ज्ञान जो है, सो प्रकाशक है, परंतु प्रेरक नहीं है, ईश्वरमें रहा ज्ञान, कदापि प्रेरणा नही करसक्ता है, तो फेर किसतरें ऋषियोंकों वेदका वोध कराता है?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त ऋषि, अपने ज्ञानसेंही ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानके, लोकोंकों वेदोंका उपदेश करते हैं.

उत्तरपक्षः—यहभी कथन ठीक नही है, क्यों कि, जव ऋषि अपने ज्ञानसें ईश्वरके ज्ञानांतर्गत वेदज्ञानकों जानते हैं, तो वो वेदज्ञान ईश्वरके ज्ञानमें व्यापक है? वा किसीजगे ज्ञानमें प्रकाशका पुंजरूप हो रहा

है ? जेकर सर्वव्यापक है, तब तो ऋषियोंने ईश्वरका सर्वज्ञान देख लीना; जब ईश्वरका सर्वज्ञान देखा, तब तो ईश्वरका सर्व स्वरूप ऋषियोंने देख लीया, तब तो ऋषिही सर्वज्ञ सिद्ध हुए; सो तो तुम ईश्वरके विना अन्य किसीभी जीवकों सर्वज्ञ मानते नही हैं. जेकर मानोगें, तो वे ऋषि सर्वज्ञ ईश्वरतुल्य होवेगें, और अपने ज्ञानसेंही वेदोंके उपदेशक सिद्ध होवेगें, तब ईश्वरके कथन करे, वा कराये वेद क्योंकर सिद्ध होवेगें? जेकर दूसरा पक्ष मानोगें तब तो अनाडीके रंगे वस्त्रके रंगसमान ईश्वरका ज्ञान सिद्ध होवेगा, जैसें अनाडीके रंगे वस्त्रमें एकजगे तो अधिक रंग होता है, और दूसरी जगे अल्परंग होता है; ऐसेही ईश्वरकाभी ज्ञान, एक अंशमें वेदादिज्ञानके प्रकाशपुंजरूप ज्ञानवाला है; तब तो एक अंशमें ईश्वर वेदोंके ज्ञानवाला है और अन्य सर्व अनंत अंशोंमें वेदके ज्ञानसें अज्ञानी सिद्ध होवेगा; इसवास्ते शरीररहित सर्वव्यापक ईश्वर, कदापि वेदादिशास्त्रोंका उपदेशक सिद्ध नही होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्वशक्तिमान् है, इसवास्ते देहरहित सर्वव्यापक ईश्वर, अपनी शक्तिसें सर्वकुछ करसक्ता है; हे जैनो! ऐसे तुम मान लेवो.

उत्तरपक्षः—ऐसे तुम्हारे कथनमें क्या प्रमाण है? क्यों कि,प्रमाणविना प्रेक्षावान् कदापि किसीके कथनकों नही मानेगें; परंतु यह तुम्हारा कथन तो तुम्हारी प्रीय भार्या आर्यासमाजिनीही मानेगी, अप्रमाणिक होनेसें. और एक यहभी बात है कि, जब तुमने ईश्वरकों विना प्रमाणसेही सर्वशक्तिमान् माना है तो, क्या ईश्वरमें अवतार लेनेकी शक्ति नही है? क्या ईश्वर कृष्णावतार लेके, गोपियोंके साथ क्रीडा रासविलास भोगविलासादि नही कर सक्ता है? क्या शंकर बन करके, पार्वतीके साथ विविधप्रकारके भोगविलास और अनेकतरेंकी शिवकी लीला नही कर सक्ता है? क्या ब्रह्मा बनके चारों वेदोंका उपदेश, और निजपुत्रीसें सहस्र वर्षतक भोगविलास नही कर सक्ता है? क्या मत्स्यवराहादि चौवीस अवतार धारके अपने मनधारे कृत्य नही कर सक्ता है? क्या ईश्वर नाचना, गाना, रोना, पीटना, चोरी, यारी, निर्लज्जतादि नही कर सक्ता है? क्या लिंगकी वृद्धि करके, तीन लोकांतोंसेंभी परे नही पहुंचाय सक्ता है? इत्यादि

अनेक कृत्य जे अच्छे पुरुष नही करसक्ते हैं, वे सर्व कृत्य ईश्वर करसक्ता है ?

पूर्वपक्षः—ऐसे ऐसे पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर नही कर सक्ता है, क्यों कि, ऐसी बुरी शक्तियां ईश्वरमें है तो सही, परंतु ईश्वर करता नहीं है.

उत्तरपक्षः—तुम्हारे दयानंदस्वामी तो लिखते हैं कि, ईश्वरकी सर्वशक्तियां सफल होनी चाहियें; जेकर पूर्वोक्त सर्वकृत्य ईश्वर न करेगा तो, तिसकी सर्व शक्तियां सफल कैसे होवेंगी ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरमें ऐसी २ पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो वदतोव्याघात हुआ, अर्थात् सर्वशक्तिमान् ईश्वर सिद्ध नहीं हुआ, तो फेर, देह मुखादि उपकरणरहित सर्वव्यापक ईश्वर, प्रमाणद्वारा वेदोंका उपदेशक कैसें सिद्ध होवेगा ? अपितु कदापि नहीं होवेगा. क्योंकि, उपदेश जो है सो देहवालेका कर्म है, इस वास्ते एक ईश्वरमें पूर्वोक्त देहरहित होना और उपदेशकभी होना, ये परस्पर विरोधि धर्म नही घट सक्के हैं, इसवास्ते परवादीयोंका कथन अज्ञानविजृंभित है ॥ १७ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंत श्रीवर्द्धमानस्वामी फेर अयोग्यव्यवच्छेद कहते हैं—

प्रागेव देवांतरसंश्रितानि रागादिरूपाण्यवमांतराणि
न मोहजन्यां करुणामपीश समाधिमास्थाय युगाश्रितोऽसि १८

व्याख्या—हे जिनेंद्र ! हे ईश ! (रागादिरूपाणि) राग, द्वेष, मोह, मद, मदनादिरूपदूषण (प्राक्-एव) पहिलांही (देवांतरसंश्रितानि) तेरे भयसें, (देवांतर) अन्यदेवोंमें आश्रित हुए हैं कि, मानू, निर्भय हम इहां रहेगें; जिनेंद्र तो हमारा समूलही नाश करनेवाला है, इसवास्ते किसी बलवंतमें रहना ठीक है, जो हमारी रक्षा करे, मानू, ऐसा विचारकेही रागादि दूषण देवांतरोंमें स्थित हुए हैं. कैसे है वे रागादिदूषण ? (अवमांतराणि) जे क्षयकों प्राप्त नही हुए हैं, अर्थात् अप्रतिहत शक्तिवाले हैं, जिनका क्षय वा क्षयोपशम वा उपशम किंचित् मात्रभी नही हुआ है, इसवास्ते हे ईश ! तूं (समाधिं—आस्थाय) समाधिकों

अवलंबके, समाधिनाम शुक्लध्यानकों अवलंबके, (मोहजन्यां) मोहजन्य (करुणां-अपि) करुणाकोंभी (न) नही (युगाश्रितः-असि) युगमें आश्रित हुआ है, अर्थात् मोहरूप करुणा करकेभी तूं युगयुगमें अवतार नही लेता है. जैसे गीतामें लिखा है-

"उपकाराय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगेयुगे ॥ १ ॥"
तथाबौद्धमतेपि "ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य कर्त्तारः परमं पदम् ॥
गत्वा गच्छंति भूयोपि भवन्तीर्थनिकारतः ॥ १ ॥"

अर्थः-अच्छे जनोंके उपकारवास्ते, और पापी दैत्योंके नाश करनेवास्ते, और धर्मके संस्थापन करनेवास्ते, हे अर्जुन! मैं युगयुगमें अवतार लेता हूं. । १ । हमारे धर्मतीर्थका कर्ता बुद्ध भगवान्, परमपदकों प्राप्त होकेभी, अपने प्रवर्त्तमान करे धर्मकी वृद्धिकों देखके जगद्वासीयोंकी करी पूजाके लेनेवास्ते, और अपने शासनके अनादरसें अर्थात् अपने प्रवर्ताये शासनकी पीडा दूर करनेवास्ते, इहां आता है. ऐसी मोहजन्य करुणाकों हे ईश! तूं युगयुगमें आश्रित नही हुआ है. ॥ १८ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतमें जैसा कल्याणकारी उपदेश रहा है, तैसा अन्यमत के देवोंमें नहीं है, यह कथन करते हैं--

जगन्ति भिन्दन्तु सृजन्तु वा पुनर्यथा तथा वा पतयः प्रवादिनाम्।
त्वदेकनिष्ठे भगवन् भवक्षयक्षमोपदेशे तु परंतपस्विनः ॥ १९ ॥

व्याख्याः-(प्रवादिनाम्- पतयः) प्रवादीयोंके पति, अर्थात् परमतके प्रवर्त्तक देवते हरिहरादिक, (यथा तथा वा) जैसें तैसें प्रवादीयोंकी कल्पना समान वे देवते (जगंति) जगतांको (भिंदंतु) भेदन करो-प्रलय करो-सूक्ष्म रूपकरके अपनेमें लीन करो; (वा पुनः) अथवा (सृजंतु) सृष्टियांकों सृजन (उत्पन्न) करो, यह कर्त्तव्य तिनके कहनेमूजब होवो, वे देवते करो, परंतु हे भगवन्! (त्वदेकनिष्ठे) एक तेरेहीमें रहे हुए (भवक्षयक्षमोपदेशेतु) संसारके क्षय करनेमें समर्थ ऐसे धर्मोपदेशके देनेमें तो, वे परवादीयोंके पति (स्वामी) देवते, (परं) परमउत्कृष्ट (तपस्विनः)

तपस्वी अर्थात् दीन हीन कंगाल गरीब है, अनुकंपा करनेयोग्य है; क्योंकि, वे विचारे दूधकी जगे आटेका धोवन अपने भक्तोंकों दूध कहके पिलारहे हैं, इस वास्ते अनुकंपा करनेयोग्य है कि, इन विचारांकों किसीतरें सच्चा दूध मिले तो ठीक है ॥ १९ ॥

अथ स्तुतिकार परवादियोंके नाथोंने भगवान्‌की मुद्राभी नही सीखी है यह कथन करते हैं–

वपुश्च पर्यंकशयं श्लथं च दृशौ च नासानियते स्थिरे च ॥
न शिक्षितेयं परतीर्थनाथैर्जिनेंद्रमुद्रापि तवान्यदास्ताम् ॥ २०

व्याख्या–हे जिनेंद्र ! (परतीर्थनाथैः) परतीर्थनाथोंने (इयं) येह (तव) तेरी (मुद्रा–अपि) मुद्राभी, शरीरका न्यासरूपभी (न) नही (शिक्षिता) सीखी है तो (अन्यत्) अन्य तेरे गुणोंका धारण करना तो (आस्ताम्) दूर रहा, कैसी है तेरी मुद्रा? (वपुः–च) शरीर तो (पर्यंकशयं) पर्यंकासनरूप (च) और (श्लथं) शिथिल है, (च) और (दृशौ) दोनों नेत्र (नासानियते) नासिकाउपर दृष्टिकी मर्यादासंयुक्त (च) और (स्थिरे) स्थिर है.

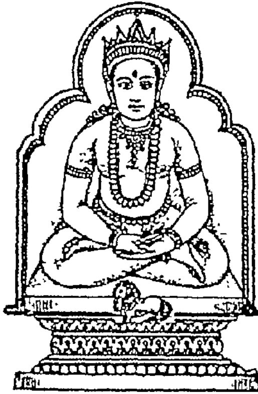
भावार्थः–यह है कि, भगवंतकी जो पर्यंकासनादिरूप मुद्रा है, सो मुद्रा, योगीनाथ भगवंतने योगीजनोंके ज्ञापनवास्ते धारण करी है; क्यों कि, जितना चिरयोगीनाथ आप योगकी क्रिया नही करदिखाता है तितना चिरयोगी जनोंकों योग साधनेका क्रियाकलाप नही आता है तथा भगवंत अष्टादश दूषणरहित होनेसें निःस्पृह और सर्वज्ञ है, तिनकी मुद्रा ऐसीही होनी चाहिये; परंतु परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्राभी नही सीखी है; अन्यभगवंतके गुणोंका धारण करना तो दूर रहा, परतीर्थनाथोंने तो भगवंतकी मुद्रासें विपरीतही मुद्रा धारण करी है; क्यों कि, जैसी देवोंकी मुद्रा थी, वैसीही मुद्रा तिनकी प्रतिमाद्वारा सिद्ध होती है

शिवजीने तो पांच मस्तक जटाजूटसहित, और शिरमें गंगाकी मूर्त्ति और नागफण, गलेमें रुंड (मनुष्योंके शिर) की माला, और सर्प, हाथ दश, प्रथम दाहने हाथमें डमरु, दूसरेमें त्रिशूल, तीसरेसें ब्रह्माजीको

आशीर्वादका देना, चौथेमें पुस्तक, और पांचवेमें जपमाला; वामे प्रथम हाथमें गंध सूंघनेको कमल, दूसरेमें शंख, तीसरे हाथसें विष्णुको आशीर्वादका देना, चौथेमें शास्त्र, और पांचमे हाथसें दाहने पगका पकडना, ऐसी मूर्ति धारण करी है. तथा अन्यरूपमें शिवजीने पार्वतीको अर्धांगमें धारण करी है, और अपने हाथसें लपेट रहे है. तथा शिवजीके दाहनेपासे ब्रह्माजी हाथ जोडकरके खडे हैं, और वामेपासे विष्णु हाथ जोडके खडे हैं.

विष्णुकी और ब्रह्माजीकी मुद्रा तो प्रायः चित्रोंमें प्रसिद्धही है. शंक, चक्र, गदादिशस्त्र, और श्री (लक्ष्मी) जी सहित तो विष्णुकी; और चारमुख, कमंडलु जपमाला वेद पुस्तकादि चारों हाथोंमें धारण करे, ऐसी मुद्रा ब्रह्माजीकी है. परंतु योगीनाथ अरिहंतकी मुद्रा तो, किसीनेभी धारण नही करी है. ॥ २० ॥

अरिहंतकी मूर्ति.



शिवकी मूर्ति.



विष्णुकी मूर्ति.



ब्रह्माकी मूर्ति.



अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतके शासनकी स्तुति करते हैं-

यदीयसम्यक्त्वबलात् प्रतीमो भवादृशानां परमस्वभावम् ॥
वास न ।पाशविनाशनाय नमोस्तु तस्मै तव शासनाय ॥२१॥

व्याख्या-(यदीयसम्यक्त्वबलात्) जिसके सम्यक्तवलसें, अर्थात् जिसके सम्यग् ज्ञानके वलसें (भवादृशानां) तुम्हारेसरीखे परमाप्तजीवनमोक्षरूप महात्मायोंके (परमस्वभावम्) शुद्धस्वरूपकों (प्रतीमः) हम जानते हैं (तस्मै) तिस (तव) तेरे (शासनाय) शासनकेतांइ हमारा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे, कैसे शासनकेतांई? (कुवासनापाशविनाशनाय) कुवासनारूपपाशीके विनाश करनेवाला तिसकेतांई.

भावार्थः-जेकर हे भगवन्! तेरा शासन न होता तो, हमारे सरीखे पंचमकालके जीव तुम्हारे सरीखे परमाप्तपुरुषोंके परम शुद्धस्वभावकों कैसें जानते? परंतु तेरे आगमसें ही सर्वकूंजाना; और तेरे आगमनेही पांच प्रकारके मिथ्यात्वरूप कुवासनापाशीका विनाश करा है, इसवास्ते तेरे शासनकेतांई हमारा नमस्कार होवे। ॥ २१ ॥

अथ स्तुतिकार दो वस्तुयों अनुपम कहते हैं-

अपक्षपातेन परीक्षमाणा द्वयं द्वयस्याप्रतिमं प्रतीमः ॥
यथास्थितार्थप्रथनं तवैतदस्थाननिर्बंधरसं परेषाम् ॥ २२ ॥

व्याख्या-(अपक्षपातेन) पक्षपातरहित हो कर (परीक्षमाणाः) जब हम परीक्षा करते हैं तो, (द्वयस्य) दो जनोंकी (द्वयं) दो वस्तुयों (अप्रतिमं)अनुपम उपमा रहित (प्रतीमः) जानते हैं; हे भगवन्! (तव) तेरा (एतत्) यह (यथास्थितार्थप्रथनं) यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार, अर्थात् यथास्थित पदार्थोंके स्वरूप कथन करनेका विस्तार जैसा तैंने करा है, ऐसा जगत्में कोइभी नही कर सक्ता है, इसवास्ते तेरा कथन हम अनुपम जानते हैं. और (परेषां) अन्योंका (अस्थाननिर्बंधरसं) अस्थाननिर्बंधरस, अर्थात् अन्योंने असमंजसपदार्थोंके स्वरूपकथनरूप गोले गिरडाये हैं, वेभी उपमारहित हैं, तिनोंके विना ऐसा असमंजसकथन अन्य कोईभी नही कर सक्ताहै। ॥ २२ ॥

अथ स्तुतिकार अज्ञानियोंके प्रतिबोध करनेमें अपनी असमर्थता कहते हैं.-

अनाद्यविद्योपनिषन्निषण्णैर्विशृंखलैश्चापलमाचरद्भिः ॥
अमूढलक्ष्योपि पराक्रिये यत्त्वत्किंकरः किं करवाणि देव ॥२३॥

व्याख्या-अनादि अविद्या, अर्थात् मिथ्यात्व अज्ञानरूप उपनिषद्रहस्यमें तत्पर हुयोंने, और विशृंखलोंने, अर्थात् विना लगाम स्वच्छंदाचारी प्रमाणिकपणारहितोंने, और चपलता अर्थात् वाग्जालकी चपलताके आचरण करतेहुयोंने, इन पूर्वोक्त विशेषणोंविशिष्ट महाअज्ञानिपुरुषोंने जेकर तेरे अमूढ लक्ष्यकोंभी-जिसके उपदेशादि सर्व कर्म निष्फल न होवें तिसकों अमूढलक्ष्य कहते हैं, अर्थात् सर्वज्ञ ऐसे तेरे अमूढलक्ष्यकोंभी, जेकर पूर्वोक्त पुरुष खंडन करे-तिरस्कार करे, जैसें कोई जन्मांध सूर्यके प्रकाशकों पराकरण करे, न माने, तो तिसकों निर्मल नेत्रवाला पुरुष क्या करे? ऐसेही अज्ञानी तेरा तिरस्कार करे, तो हे देव! स्वस्वरूपमें क्रीडा करनेवाले सर्वज्ञ वीतराग! तेरा किंकर मैं हेमचंद्रसूरि, क्या करूं? कुछभी तिनकेतांई नही कर सकता हूं. जैसें जन्मके अंधकों अंजनवैद्य कुछ नही कर सकता है. ॥ २३ ॥

अथ स्तुतिकार भगवंतकी देशना भूमिकी स्तुति करते हैं--

विमुक्तवैरव्यसनानुबंधाःश्रयंति यां शाश्वतवैरिणोऽपि ॥
परैरगम्यां तव योगिनाथ तां देशनाभूमिमुपाश्रयेऽहम् ॥२४॥

व्याख्या-हे योगिनाथ! (यां) जिस तेरी देशनाभूमिकों (शाश्वतवैरिणः-अपि) शाश्वतवैरीभी, अर्थात् जिनका जातिके स्वभावसेंही निरंतर वैरानुबंध चला आता है, जैसें बिल्लि मूषकका, श्वान बिल्लिका, वृक अजाका, इत्यादि; वेभी सर्व, (विमुक्तवैरव्यसनानुबंधाः) स्वजातिका शाश्वत वैर रूपव्यसनके अनुबंधसें विमुक्त रहित हुए थके (श्रयंति) आश्रित होते हैं. यह भगवंतका अतिशय है कि, शाश्वतवैरीभी भगवान्की देशनाभूमि समवसरणमें जब आते हैं, तब परस्पर वैर छोडके परममैत्रीभावसें एकत्र बैठते हैं; और जो (परैः) परवादीयोंने (अगम्यां) अगम्य है, अर्थात् परवादी जिस देशनाभूमिका स्वरूप नही जान सक्ते हैं

मिथ्यात्व अज्ञानरूप पटलोंसें अंधे होनेसें; (तां) तिस (तव) तेरी (देशनाभूमिं) देशनाभूमिकों (अहम्) मैं (उपाश्रये) उपाश्रित करता हूं-आश्रित होताहूं, जिससें मेराभी सर्वजीवोंके साथ वैरानुबंधरूप व्यसन छुट जावे. ॥ २४ ॥

अथस्तुतिकार परदेवोंका साम्राज्य वृथा सिद्ध करते हैं.

मदेन मानेन मनोभवेन क्रोधेन लोभेन च संमदेन ॥
पराजितानां प्रसभं सुराणां वृथैव साम्राज्यरुजा परेषाम् ॥२५॥

व्याख्या—(परेषाम्–सुराणाम्) परदेवताओंका, ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादिकोंका (साम्राज्यरुजा) लोकपितामहपणा, जगत्कर्त्तापणा, हंसवाहन, कमलासन, यज्ञोपवीत, कमंडलु, चतुर्मुख, सावित्रीपति, विशिष्टादि दश पुत्रोंवाला, वेदोंका कहनेवाला, चार वर्णका उत्पन्न करनेवाला, वर शाप देने समर्थ, सतोगुणरूप, इत्यादि ब्रह्माजीका साम्राज्य–चतुर्भुज, शंख, चक्र, गदा, शारंग, धनुष्, वनमालाका धारनेवाला, ईश्वर, लक्ष्मी, राधिका, रुक्मिणीआदिका पति, सोलां सहस्र गोपियोंके साथ क्रीडा करनी, अनेक रूपका करना, बत्रीस सहस्र राणियोंका स्वामी, त्रिखंडाधिप, वामन नरसिंह रामकृष्णादिका रूप धारना, कंस, वाली, रावणादिका वध करना, सहस्रों पुत्रोंका पिता, रजोगुणरूप, सृष्टिका पालनकर्ता, भक्तसाहायक, घटघटमें व्यापक होना, इत्यादि विष्णुका साम्राज्य. और जगत्प्रलय करना, वृषभवाहन, पंचमुख, चंद्रमौलि, त्रिनेत्र, कैलासवासी, सर्वसें अधिक कामी, स्त्रीके अत्यंत स्नेहवाला, सदा स्त्री पार्वतीकों अर्द्धांगमें रखनेवाला, अत्यंत भोला, त्रिभुवनका ईश्वर इत्यादि शिवका साम्राज्य. इसीतरे सर्वलौकिक देवोंका साम्राज्य समज लेना. ऐसा पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग परतीर्थनाथोंका (वृथाएव) वृथाही है. कैसे परतीर्थनाथोंका? (मदेन) अष्टप्रकारके मद (मानेन) अभिमान–अहंकार (मनोभवेन) काम (क्रोधेन) क्रोध शत्रुके मारणरूप वा शापदानरूप (लोभेन) लोभ स्त्री, पुत्र, धन, धान्य, शस्त्र, स्थानादिग्रहणरूप, (च) शब्दसे माया-कपटादि और (संमदेन) हर्ष खुशी इनों करके (प्रसभं) यथा स्यात्तथा अर्थात् हठ करके अपने वडे सामर्थ्य करके (पराजितानां) जे पराजित

हैं, अर्थात् पूर्वोक्त दुषणोंकरके जे संयुक्त हैं, तिनोंका. क्योंकि, पूर्वोक्त साम्राज्यरूप रोग आत्माकों मलिन करने और दुःख देनेवाला है, इस वास्ते वृथाही है ॥ २५ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार असत्‌वादी और पंडितजनोंके लक्षण कहते हैं.

स्वकण्ठपीठे कठिनं कुठारं परे किरन्तः प्रलपन्तु किंचित् ॥
मनीषिणां तु त्वयि वीतराग न रागमात्रेण मनोऽनुरक्तम् ॥२६॥

व्याख्या—(परे) परवादी जे हैं, वे (स्वकण्ठपीठे) अपने कंठपीठमें (कठिनं) कठिन–तीक्ष्ण (कुठारं) कुठार–कुहाडा (किरन्तः) क्षेपन करते हुए (किंचित्) कुछक (प्रलपन्तु) प्रलपन करो, अर्थात् परवादी अप्रमाणिक युक्तिवाधित किंचित् तत्वके स्वरूपकथनरूप कठिन कुठार–कुहाडा अपने कंठपीठमें क्षेपन करो–मारो, यद्वा तद्वा वोलो, सत्‌मार्गके अनभिज्ञ होनेसें, अपने आत्माकी हानि करो, परंतु हे वीतराग ! (मनीषिणां तु) मनीषि–पंडित–सद्‌बुधिमानोंका तो (मनः) मन–अंतःकरण (त्वयि) तेरे विषे (रागमात्रेण) रागमात्र करके (न) नहीं (अनुरक्तं) रक्त है, किंतु युक्तिशास्त्रके अविरोधि तेरे कथनके होनेसें तेरे विषे पंडितजनोंका मन अनुरक्त है ॥ २६ ॥

अथाग्रे जे पुरुष अपनेकों माध्यस्थ मानते हैं, परंतु वेभी निश्चय मत्सरी हैं, तिनका स्वरूप कथन करते हैं.

सुनिश्चितं मत्सरिणो जनस्य न नाथमुद्रामतिशेरते ते ॥
माध्यस्थमास्थाय परीक्षकाये मणौ च काचे च समानुवन्धाः ॥२७॥

व्याख्या—हे नाथ ! (सुनिश्चितं) हमारे निश्चित करा हुआ वर्त्ते है कि (ते) वे जन (मत्सरिणः) मत्सरी (जनस्य) पुरुषकी (मुद्रां) मुद्राकों (न) नहीं (अतिशेरते) उल्लंघन करते हैं, अर्थात् ऐसे जनभी मत्सरियोंकी पंक्तिमेंही निश्चित करे हुए हैं; कैसे हैं वे जन ? (ये) जे (परीक्षकाः) परीक्षक होके और (माध्यस्थ्यम्—आस्थाय) माध्यस्थपणेकों धारण करके (मणौ) मणिमें (च) और (काचे) काचमें (समानुवन्धाः) सम अनुवंधवाले हैं.

भावार्थ—माध्यस्थपणेकों धारण करके, जे पुरुष अपने आपकों परीक्षक मानते हैं कि, हम पक्षपातरहित सच्चे परीक्षक हैं; परंतु काचके टुकडेकों, और चंद्रकांतादि मणियोंकों मोलसें, वा गुणोंमें समान मानते हैं, वे परीक्षक नहीं हैं, किंतु वेभी मत्सरि पुरुषकी मुद्रावालेही हैं. ऐसेंही जिनोंने माध्यस्थपणा और परीक्षक अपने आपकों माने हैं, फेर काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा, मैथुनादिरहित सर्वज्ञ वीतरागकों, और पूर्वोक्त कामादिसहित अज्ञानी सरागीकों एकसमान मानते हैं, इसवास्ते वे परीक्षक नहीं, किंतु वेभि मत्सरी ही हैं ॥ २७ ॥

अथ स्तुतिकार प्रतिवादीयोंसमक्ष अवघोषणा करते हैं.

इमां समक्षं प्रतिपक्षसाक्षिणामुदारघोषामवघोषणां ब्रुवे॥
न वीतरागात्परमस्ति दैवतं न चाप्यनेकान्तमृते नयस्थितिः ॥२८॥

व्याख्या—मैं श्री हेमचंद्रसूरी (प्रतिपक्षसाक्षिणां) प्रतिपक्षसाक्षियोंके (समक्षं) समक्ष—प्रत्यक्ष (इमां) यह जो आगे कहेंगे तिस (उदारघोषाम्) मधुर शब्दोंवाली (अवघोषणाम्) अवघोषणा, लोकोंके जनावने वास्ते उच्च शब्द करके जो बोलना तिसका नाम अवघोषणा कहते हैं, तिस अवघोषणाकों (ब्रुवे) बोलता हूं—करता हूं, सोही दिखाते हैं, (वीतरागात्) वीतरागसें (परं) परे—कोई (दैवतं) सत्यधर्मका आदि उपदेष्टा (न) नहीं (अस्ति) है, (च) और (अनेकांतं—ऋते) अनेकांत अर्थात् स्याद्वादविना कोइ (नयस्थितिः—अपि) नयस्थितिभी (न) नहीं है; अर्थात् स्याद्वादके विना पदार्थके स्वरूपके कथन करनेरूप जो नयस्थिति है सोभी नहीं है. स्यात् पदके चिन्हविना किसीभी नित्यानित्यादिनयके कथनकी सिद्धि न होनेसें ॥ २८ ॥

अथ स्तुतिकार अपने आपकों अपक्षपाती सिद्ध करते हैं.

न श्रद्धयैव त्वयि पक्षपातो न द्वेषमात्रादरुचिः परेषु॥
यथावदाप्तत्वपरिक्षया तु त्वामेव वीर प्रभुमाश्रिताः स्मः ॥ २९ ॥

व्याख्या—हे वीर! (श्रद्धया—एव) श्रद्धा मात्र करकेही, अर्थात् श्रीमहावीरके विना अन्य किसी परवादीके मतके देवकों अपना प्रभु ईश्वर

सत्योपदेष्टा नहीं मानना, ऐसी श्रद्धा, मनकी दृढता करकेही, (त्वयि) तेरेविषे हमारा (पक्षपातः) पक्षपात (न) नहीं है, और (द्वेषमात्रात्) द्वेषमात्रसें (परेषु) परमतके देव हरिहरब्रह्मादिकोंमें (अरुचिः) अरुचि –अप्रीति (न) नहीं है, परंतु (यथावदाप्तत्वपरीक्षया–तु) यथावत् आप्तपणेकी परीक्षा करकेही, हे वीर ! वर्द्धमान ! हम (त्वां–एव) तुजही (प्रभुम्) प्रभुकों (आश्रिताः स्मः) आश्रित हुए हैं. आप्तत्वकी परीक्षा आप्तके कथनसें और आप्तके चरितसें सिद्ध होती है, सो हमने तेरे कथनकी परीक्षा करी है, परंतु तेरे वचन हमने प्रमाणबाधित वा पूर्वापर विरोधि नहीं देखे हैं, और तेरा चरित देखा, सोभी आप्तत्वके योग्यही देखा है, और तेरी प्रतिमाद्वारा तेरी मुद्राभी निर्दोष सिद्ध होती है इन तीनों परीक्षायोंके करनेसें तेरेमें निर्दोष आप्तपणा सिद्ध होता है, इस वास्ते हमने तेरेकों प्रभु माना है. और अन्यदेवोंमें ये तिनो शुद्ध निर्दोष परीक्षायों सिद्ध नहीं होती हैं, इसवास्ते तीन देवोंकों हम अपना प्रभु नहीं मानते हैं. नतु द्वेष वा अरुचिसें. "यदवादिलोकतत्त्वनिर्णये श्रीहरभद्रसूरीपादैः। पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु। युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परीग्रहः" इति ॥ २९ ॥

अथाग्रे स्तुतिकार भगवंतकी वाणीकी स्तुति करते हैं.

तमः स्पृशामप्रतिभासभाजं भवन्तमप्याशु विविन्दते याः ॥
महेम चन्द्रांशुदृशावदातास्तास्तर्कपुण्या जगदीशवाचः ॥ ३० ॥

व्याख्या–हे जगदीश ! भगवन् ! (याः) जे वाचायों तेरी वाणीयों (तमस्पृशाम्) अज्ञानरूप अंधकारके स्पर्शनेवालोंके (अप्रतिभासभाजम्) अप्रतिभासभाज अर्थात् अज्ञानी जिसकों नहीं जानसक्के हैं, ऐसे (भवन्तम्–आपि) तुजकोंभी–तेरेकोंभी (आशु) शीघ्र (विविन्दते) प्रगट करतीयां हैं–जनातीयां है (ताः) तिन (चन्द्रांशुदृशावदाताः) चंद्रकी किरणोंकीतरें दृशा–ज्ञान करके अवदाता–श्वेत और (तर्कपुण्याः) तर्क करके पवित्र सम्मत (वाचः) वाणीयांकों (महेम) हम पूजते हैं ॥ ३० ॥

अथ स्तुतिकार नामके पक्षपातसें रहित होकर, गुणविशिष्ट भगवंतकों नमस्कार करते हैं.

यत्र तत्र समये यथा तथा योऽसि सोस्यभिधया यया तया ॥
वीतदोषकलुषः स चेद्भवानेक एव भगवन्नमोऽस्तुते ॥ ३१ ॥

व्याख्या-(यत्र तत्र समये) जिसतिस मतके शास्त्रमें (यथातथा) जिस तिस प्रकारकरके (यया तया अभिधया) जिस तिस नामकरके (यः) जो तूं (आसि) है (सः) सोही (आसि) तूं है, परं (चेत्) यदि जेकर (वीतदोषकलुषः) दूर होगए हैं द्वेष राग मोह मलिनतादि दूषण, तो, (भवान्-एक-एव) सर्व शास्त्रोंमें तूं जिस नामसें प्रसिद्ध है, सो सर्व जगें तूं एकही है, इसवास्ते हे भगवन्! (ते) तेरेतांइ (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥ ३१ ॥

अथ स्तुतिकार स्तुतिकी समाप्तिमें स्तुतिका स्वरूप कहते हैं.

इदं श्रद्धामात्रं तदथ परनिन्दां मृदुधियो
विगाहन्तां हन्त प्रकृतिपरवादव्यसनिनः ॥
अरक्तद्विष्टानां जिनवरपरीक्षाक्षमधिया-
मयंतत्त्वालोकः स्तुतिमयमुपाधिं विधृतवान् ॥ ३२ ॥

व्याख्या-(मृदुधियः) मृदु कोमल विशेषबोधरहित जिनकी कोमल बुद्धि है, वे पुरुष तो (इदम्) इस स्तोत्रकों (श्रद्धामात्रं) श्रद्धामात्र, अर्थात् जिनमतकी हमकों श्रद्धा है, इसवास्ते हम इसको सत्य करकेही मानेंगे, ऐसे जन तो इस स्तोत्रकों श्रद्धामात्र (विगाहन्तां) अवगाहन करो-मानो, (हन्त) इति कोमलामंत्रणे (तत्-अथ) अथ सोही स्तोत्र (प्रकृतिपरवादव्यसनिनः) स्वभावही जिनोंका परके कथनमें वाद करनेका है, अर्थात् अपने माने देव और तिनके कथनमें जिनकों आग्रह है कि, हमने तो यही मानना है, अन्य नहीं, ऐसे व्यसनी पुरुष इस स्तोत्रकों (परनिन्दां) परनिंदारूप अवगाहन करो; स्तुतिकारने परदेवोंकी निंदारूप यह स्तोत्र रचा है, ऐसें मानो, अपने माननेका कदाग्रह होनेसें, परंतु हे जिनवर! (परीक्षाक्षमधियाम्) परीक्षा करनेमें समर्थ बुद्धिवाले

(अरक्तद्विष्टानां) रागद्वेषरहितोंकों, अर्थात् किसी मतमें जिनोंका राग पक्षपात नहीं है, और किसी मतमें जिनोंकों द्वेषसें अरुचि नहीं है, ऐसे परीक्षापूर्वक सत् असत् वस्तुका प्रमाणसें निर्णय करनेवालोंकों (अयं) यह (तत्त्वालोकः) तत्त्वप्रकाशक स्तव–स्तोत्र (स्तुतिमयं–उपाधिं) स्तुतिमय उपाधिकों–स्तुतिमय धर्मचिंताकों (विधृतवान्) धारण करता है.॥३२॥ इतिश्रि-हेमचंद्रसूरिविरचितमयोगव्यवच्छेदिकाद्वात्रिंशिकाख्यं श्री महावीर स्वामिस्तोत्रं बालावबोधसहितं समाप्तम्॥ तत्समाप्तौ च समाप्तोयं तृतीयः स्तम्भः॥ श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा॥ कृतोबालावबोधोयं परोपकृतिहेतवे॥१॥

इन्दुबाणाङ्कचन्द्राब्दे माघमासे सिते दले॥
पञ्चम्यां च तिथौ जीवघस्रेपूर्तिमगात्तथा॥ २॥

॥ इतिश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे अयोगव्यवच्छेदकवर्णनोनाम तृतीयःस्तंभः॥ ३॥

॥ अथ चतुर्थस्तम्भप्रारम्भः॥

तृतीयस्तंभमें प्रायः अयोगव्यवच्छेदका वर्णन किया, अब इस चतुर्थस्तंभमें विशेषतः अयोगव्यवच्छेदादि वर्णन करते हैं.

॥ अर्हम् ॥

प्रणिपत्यैकमनेकं केवलरूपं जिनोत्तमं भक्त्या॥
भव्यजनबोधनार्थं नृतत्त्वनिगमं प्रवक्ष्यामि॥ १॥

व्याख्या–मैं हरिभद्रसूरि (नृतत्त्वनिगमं) नृतत्त्व लोकतत्त्वनिर्णयरूप निगम आगम कहता हूं; किसवास्ते? (भव्यजनबोधनार्थं) भव्यजनोंके तत्त्वज्ञानके वास्ते; क्या करके? (भक्त्या) भक्ति करके (प्रणिपत्य) नमस्कार करके; किसकों? (जिनोत्तमं) जिन नाम सामान्य केवलीका है, तिनोंमें तीर्थंकरनामकरके जो उत्तम होवे, तिनकों जिनोत्तम, जिनवर, अरिहंत, कहते हैं, तिनकों. कैसे जिनोत्तमकों? (एकं) एकरूपकों, और (अनेकं) अनेकरूपकों, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें एकरूप है, "एगेदव्वे एगेआया एगेसिद्धे" इति श्रीस्थानांगसूत्रवचनप्रामाण्यात्, अर्थात् सामा-

न्यरूपसें एकही केवल जिनोत्तमरूप परमेश्वर है, और व्यक्तिरूपकरके अनंत आत्मा एक परमब्रह्म परमेश्वरपदमें विराजमान होनेसें अनेक रूप है, अथवा द्रव्यार्थे एक आत्मा होनेसें एकरूप है, और पर्यायार्थिकनयके मतसें ज्ञानदर्शनचारित्रादि अनंत पर्यायांकरके अनंत रूप है, "उक्तंच ज्ञाताधर्मकथांगे स्थापत्यासुतमुनिशुकपरिव्राजकसंवादे—सुया एगे विअहं दुवे विअहं अणेगे विअहं—इत्यादि—हे शुक! मैं एकभी हूं, दो रूपभी हूं, अनेक रूपभी हूं—इत्यादि—" तिन एकानेकरूपवाले जिनोत्तमकों, फेर कैसे जिनोत्तमकों? (केवलरूपं) केवल शुद्धस्वरूप सर्वकर्मकृतउपाधिकरके विनिर्मुक्त रहितकों ॥ १ ॥

अथ ग्रंथकार परिषत्—सभाकी परीक्षा करनी कहते हैं.

भव्याभव्यविचारो न हि युक्तोऽनुग्रहप्रवृत्तानाम् ॥
कामं तथापि पूर्वं परीक्षितव्या बुधैः परिषत् ॥ २ ॥

व्याख्या—(भव्याभव्यविचारः) भव्याभव्य अच्छे और बुरे पुरुषोंका विचार (अनुग्रहप्रवृत्तानाम्) अनुग्रह बुद्धिकरके प्रवृत्त होए संत जनोंकों (नहि—युक्तः) करना युक्त—उचित नही है (कामं) यह कथन यद्यपि सम्मत है (तथापि) तोभी (बुधैः) बुद्धिमानोंने (पूर्वं) प्रथम (परिषत्) श्रोताजनकी (परीक्षितव्या) परीक्षा करणी उचित है ॥ २ ॥

अथ ग्रंथकार उपदेशके अयोग्य परिषत् के लक्षण कहते हैं.

वज्रमिवाभेद्यमनाः परिकथने चालनीव यो रिक्तः ॥
कलुषयति यथा महिषः पूतकवद्दोषमादत्ते ॥ ३ ॥

व्याख्या—जो पुरुष (वज्रं—इव) वज्रवत् (अभेद्यमनाः) अभेद्य मनवाला होवे, अर्थात् उपदेश श्रवणकरके जिसके मनसें किंचित्मात्रभी शुभ परिणामांतर न होवे, मुद्गशेलवत्; और (यः) जो (परिकथने) उपदेशादिकेविषे (चालनी—इव) चालनीकी तरे (रिक्तः) रिक्त हो जावे, जैसें चालनीमें जल डालीए तब सर्व जल निकल जाता है, तैसें जो श्रोता व्याख्यान श्रवण करता है, और तत्काल भूलता जाता है, सो चालनीकी तरे रिक्त जानना. २. और (यथा) जैसें (महिषः) भैंसा तलावमें पानी

पीने जाता है, तब पानीमें प्रवेश करके पानीकों विलोडन करके (कलुषयति) मलीन करता है, और जलमें मूत्र करता है, न तो आप पानी पीता है, और न भैंसांकों पानी पीने देता है, तैसेंही जो श्रोता व्याख्यानमें क्लेश लडाइ विग्रह कषाय करे, न तो आप सुने, और न शेषपरिषत्कों सुनने देवे, सो श्रोता भैंसेसमान जानना. ३. और जो श्रोता (पूनकवत्) पूनक बैया विजडासुघरा नामक जीवका घर, जो वृक्षके ऊपर बडी चतुराइसें बनाता है, तिस घरसें अहीरलोक घृत तपाके छानते हैं, तिस पूनकमेसें घृत तो निकल जाता है, और कूडाकचरा रह जाता है, तद्वत् पूनकवत्–पूनककी तरें गुण तो नहीं ग्रहण करता है, परंतु (दोषं) दोषकों–अवगुणांकों (आदत्ते) ग्रहण करता है, सो पूनकसमान जानना. ४. येह चारों परिषदा उपदेश करणे योग्य नहीं हैं. यह कथन उपलक्षण मात्र है, क्योंकि नंदिसूत्र आवश्यकसूत्र बृहत्कल्पसूत्रादिकोंमें औरभी अयोग्य परिषत्का वर्णन है ॥ ३ ॥

पूर्वोक्त परिषत्कों उपदेश निरर्थक है, सो दृष्टांतद्वारा कहते हैं.

जलमन्थनवत्कथितं बधिरस्येव हि निरर्थकं तस्य ॥
पुरतोन्धस्य च नृत्यं तस्माद्ग्रहणं तु भव्यस्य ॥ ४ ॥

व्याख्या—(जलमन्थनवत्) जलके विलोडनेकीतरें (बधिरस्य) बाहिरेकों (कथितं–इव) कथनकीतरें (च) और (अंधस्य) आंधेके (पुरतः) आगे (नृत्यं) नाटककीतरें (तस्य) तिस पूर्वोक्त अभव्यजनकों अयोग्य परिषत्कों उपदेश करना (निरर्थकं) व्यर्थ है, अर्थात् जैसें जलका विलोडना व्यर्थ है, जैसें बाहिरेकों कहना व्यर्थ है, और जैसें आंधेके आगे नाटकका करना व्यर्थ है, तैसें तिस अयोग्य पुरुषकों उपदेशका देना व्यर्थ हैं. (तस्मात्) तिस हेतुसें (तु) निश्चयकरके (भव्यस्य) भव्ययोग्य पुरुषका (ग्रहणं) ग्रहण करना योग्य हैं ॥ ४ ॥

अथ ग्रंथकार परके तरफसें आशंका करते हैं.

आचार्यस्यैवतज्जाड्यं यच्छिष्योनावबुध्यते ॥
गावोगोपालकेनैव कुतीर्थेनावतारिताः ॥ ५ ॥

व्याख्या—(आचार्यस्य—एव) आचार्य–गुरुकाही (तत्) वो (जाड्यं) मूर्खपणा है (यत्) जो (शिष्यः) शिष्य (न–अवबुध्यते) प्रतिबोध नहीं होता है, जैसें (गोपालकेन–एव) गवालीएनेही (गावः) गौयां (कुतीर्थेन) बुरे घाटकरके (अवतारिताः) अवतारण करी हैं, इसमें गौयांका कसूर नहीं, किंतु गवालीएकाही कसूर है ॥ ५ ॥

अब आचार्य पूर्वोक्त आशंकाका उत्तर देते हैं.

किंवा करोत्यनार्याणामुपदेष्टा सुवागपि ॥
तत्र तीक्ष्णकुठारोपि दुर्दारुणि विहन्यते ॥ ६ ॥
अप्रशान्तमतौ शास्त्रसद्भावप्रतिपादनम् ॥
दोषायाभिनवोदीर्णे शमनीयमिव ज्वरे ॥ ७ ॥
उदितौ चन्द्रादित्यौ प्रज्वलिता दीपकोटिरमलापि ॥
नोपकरोति यथान्धे तथोपदेशस्तमोन्धानाम् ॥ ८ ॥
एकतडागे यद्वत् पिबति भुजङ्गः शुभं जलं गौश्च ॥
परिणमति विषं सर्पे तदेव गवि जायते क्षीरम् ॥ ९ ॥
सम्यग्ज्ञानतडागे पिबतां ज्ञानसलिलं सतामसताम् ॥
परिणमति सत्सु सम्यक् मिथ्यात्वमसत्सु च तदेव ॥ १० ॥
एकरसमंतरिक्षात् पतति जलं तच्च मेदिनीं प्राप्य ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भाजनविशेषात् ॥ ११ ॥
एकरसमपि तद्वाक्यं वक्तुर्वदनाद्विनिःसृतं तद्वत् ॥
नानारसतां गच्छति पृथक् पृथक् भावमासाद्य ॥ १२ ॥
स्वं दोषं समवाप्य नेष्यति यथा सूर्योदये कौशिको
राद्धिं कङ्कटुको न याति च यथा तुल्येपि पाके कृते ॥
तद्वत् सर्वपदार्थभावनकरं संप्राप्य जैनं मतं
बोधं पापधियो न यान्ति कुजनास्तुल्ये कथासंभवे॥ १३ ॥

व्याख्या—अनार्य पुरुषोंकों भले वचनोंवालाभी उपदेष्टा क्या करता है? अपितु कुछभी नहीं कर सक्ता है, जैसें बुरे काष्टमें तीक्ष्णभी कुठार कुंठ हो जाता है.॥ अप्रशांत, मिथ्यात्व करके अति मलीन वुद्धिवाले पुरुष विषे शास्त्रका यथार्थ तत्व प्रतिपादन करना दोषकेतांइ होता है, जैसें नवीन ज्वरके उदयमें शमन करनेयोग ओषधका करना, अथवा घृत दुग्धादि पान कराना दोषकेतांइ होता है. ॥ चंद्रमा सूर्य उदय हुए हैं, तथा जाज्वल्यमान कोटिदीपकभी निर्मल जलते हैं, तोभी वे चंद्रादि, जैसें अंधपुरुषाविषे उपकार नहीं करसक्ते हैं, तैसेंही मिथ्यात्व अज्ञानरूप अंधकारकरके आच्छादित मतिवाले पुरुषोंकों सद्गुरुका उपदेशभी उपकार नहीं करसक्ता है. ॥ एकही तलावमें जैसें सर्प और गौ शुभ जल पीते हैं, परंतु सर्पविषे वोही जल विषरूप परिणामे परिणमता है, और वोही जल गौकेविषे दुध होके परिणमता है. ॥ तैसेंही सम्यक् अविपरीत ज्ञानरूप तलावमें जिनतीर्थंकर अरिहंतका ज्ञानरूप पाणी पीनेवाले सत् और असत्पुरुषोंकों परिणमता है, सत्पुरुषोंमें तो सम्यक्त्वरूप होके परिणमता है, और असत्पुरुषोंमें मिथ्यात्वरूप होके परिणमता है.॥ जैसें एकरसवाला पानी, आकाशसें पडता है, और सो पानी नानाप्रकारकी पृथ्वीकों प्राप्त होके न्यारे न्यारे भाजनोंके विशेषसें नानारसपणे प्राप्त होता है. ॥ तैसेंही एकरसवाला वाक्य, तिस वक्ताके मुखसें निकला हुआ, नानारसपणे अर्थात् न्यारे न्यारे जीवोंके भावोंकों प्राप्त होके नाना प्रकारके अभिप्रायपणे परिणमता है.॥ जैसें अपनेही दोषकों प्राप्त होके उल्लुक सूर्यके उदयकों नहीं इच्छता है, और जैसें सर्व मूंगोकेसाथ तुल्यपाकके करेभी कोकडु रंधाता नहीं है, तैसेंही सर्व पदार्थोंके स्वरूपका प्रकट करनेवाला जैनमत पाकरकेभी, पापवुद्धि वुरे जन, तुल्यकथाके श्रवण करनेसेंभी बोधकों प्राप्त नहीं होते हैं. ॥६।७।८।९।१०।११।१२।१३॥

अथ ग्रंथकार तत्त्वनिर्णय करनेकों कहते हैं.

हठी हठे यद्वदति प्लुतः स्यान्नौर्नावि बद्धा च यथा समुद्रे ॥
तथा परप्रत्ययमात्रदक्षो लोकः प्रमादाम्भसि बम्भ्रमीति ॥१४॥

यावत्परप्रत्ययकार्यबुद्धिर्विवर्त्तते तावदुपायमध्ये ॥
मनः स्वमर्थेषु निघट्टनीयं नह्याप्तवादा नभसः पतन्ति ॥१५॥

व्याख्या—जैसें कदाग्रही कदाग्रहमें अतिप्लुत चलायमान होता है, अर्थात् एक पक्षमें जूठा होकर दूसरेमें आश्रित होता है, दूसरेसें तीसरेमें, एतावता अनवस्थितिवाला होता है, और जैसें मलाहकी बंधी हुई नावा समुद्रमें अतिप्लुत होती है, तैसेंही परके निश्चय किये मात्रमेंही चतुर जो लोक है, सो प्रमादरूप पाणीमें अतिशय भ्रमण करता है, अर्थात् जे लोक अपने मनमें ऐसा समझतें हैं कि, हमकों निश्चय करनेकी कुछ जरूर नहीं है कि, यह सत्य है वा असत्य? किंतु जो पूर्वजोंने कहा है, सोइ मान्य है, वे लोक तत्त्वपदार्थके ज्ञानकों कबीभी प्राप्त नहीं होते हैं.॥ इसवास्ते जबतक परके ज्ञानके कार्यमें बुद्धि वर्त्तती है, तबतक उपायमें तत्वपदार्थके ज्ञानमें, और पदार्थोंमें अपना मन निरंतर जोडना चाहिये, अर्थात् अपने मनकों पदार्थोंके निर्णय करनेमें प्रवर्त्तावना चाहिये. क्योंकि, आप्तवाद, सत्योपदेष्टाके वचन आकाशसें नहीं गिरते हैं, किंतु बुद्धिसें विचारयुक्ति द्वारा सिद्ध होते हैं कि, येह वचन आप्तके है, और येह अनाप्तके है, इस वास्ते बुद्धिमान् पुरुषकों तत्त्व पदार्थका अवश्य निर्णय करना चाहीये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ असत् तत्वपदार्थके अग्राह्यपणेका हेतु कहते हैं.

यच्चिन्त्यमानं न ददाति युक्तिं प्रत्यक्षतो नाप्यनुमानतश्च ॥
तद्बुद्धिमान् कोनु भजेत लोके गोशृङ्गतः क्षीरसमुद्भवो न॥१६॥

व्याख्या—जो कथन करा हुआ तत्त्वपदार्थ, जब विचारीए, तब प्रत्यक्ष वा अनुमानसें युक्तिकों न देवे, अर्थात् जो युक्तिप्रमाण प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध न होवे, सो तत्त्वका कथन कौन बुद्धिमान् सत्यकरके मानेगा ? अपितु कोइभी नहीं मानेगा. जैसें लोकमें गौके शृंगसें प्रत्यक्ष, और अनुमानसें कदापि दूधकी उत्पत्तिका संभव सिद्ध नहीं हो सक्ताहै ॥१६॥

अथ ग्रंथकार जे प्रकृतिसेंही विनयवाले नम्र हैं तिनकोंही विनयवंत पुरुष विनयवंत करसक्ते हैं यह कथन दृष्टांतद्वारा सिद्ध करते हैं.

येवै नेया विनयनिपुणैस्ते क्रियन्ते विनीता
नावैनेयो विनयनिपुणैः शक्यते संविनेतुम् ॥
दाहादिभ्यः समलममलं स्यात् सुवर्णं सुवर्णं
नायस्पिंडो भवति कनकं छेददाहक्रमेण ॥ १७ ॥

व्याख्या–जे विनयवंत विनयमें निपुण पुरुष हैं, तिनकोंही विनयनिपुण पुरुषोंहीने विनयवंत करणेकों समर्थ होइए हैं, परंतु अविनीतप्रकृतिवालेकों विनयवंत करणेमें समर्थ नहीं होइए हैं. दृष्टांत–जैसें भले वर्णादिवाले सुवर्णकोंही दाह ताडन छेदादिकरके अमल (निर्मल) सुवर्ण सिद्धकरशकीए हैं, अर्थात् समलसुवर्णही दाहादिकों करके निर्मल सुवर्ण होता है, परंतु छेददाहादिक्रमकरके लोहका पिंड, कनक (सुवर्ण) नहीं होता है, ऐसेंही जे योग्य पुरुष हैं, वेही उपदेशकों सुणके शुभपरिणामांतरको प्राप्त होसक्ते हैं, अयोग्य पुरुष नहीं होसक्ते हैं. ॥ १७ ॥

अथ बाह्य पदार्थका लक्षण कहते हैं.

आगमेन च युक्त्या च योर्थः समभिगम्यते
परीक्ष्य हेमवद्ग्राह्यः पक्षपाताग्रहेण किम् ॥ १८ ॥

व्याख्या–आगमकरके और युक्तिकरके जो अर्थ–पदार्थ सिद्ध होवे, सोही दाहताडनछेदादिक्रमकरके सुवर्णकीतरें परीक्षा करके ग्रहण करने योग्य है, अर्थात् परीक्षक जनोंकों परीक्षापूर्वक सोही ग्रहण करना चाहिये कि, जो पदार्थ परीक्षामें पक्का हो जावे, किंतु पक्षपात आग्रहकों धारण न करना चाहिये. क्यों कि, पक्षपात–जूठा आग्रह करणेसें क्या लाभ है? कुछभी लाभ नहीं हैं ॥ १८ ॥

अब जो विना विचारे तत्त्वपदार्थ ग्रहण करता है, सो पीछेसें पश्चात्ताप करता है, सोइ दिखाते हैं.

मातृमोदकवद्बाला ये गृह्णन्त्य विचारितम् ॥
ते पश्चात्परितप्यन्ते सुवर्णग्राहको यथा ॥ १९ ॥

व्याख्या—यह मोदक मेरी माताका बनाया हुआ है, ऐसा जानके जे बालक तिसके अच्छेपणेका आग्रह करते हैं, और विना विचारे तिसकों ग्रहण करते हैं, वे पीछे परिताप (पश्चात्ताप) कों प्राप्त होते हैं. जैसें विना परीक्षाके करे सुवर्णका ग्रहण करनेवाला पुरुष, पीछे पश्चात्ताप करता है, यथा धिग् है मेरेकों जो मैने विना परीक्षाकेकरे सुवर्णके बदले पीतल ग्रहण किया. ऐसेही जे पुरुष अपने २ कुलकी रूढिसें माने अधर्मकों धर्म मानके कूद रहे हैं, और सत्य धर्मका निर्णय नहीं करते हैं, वे पक्षपाती पुरुष पीछे पश्चात्ताप करेंगे, लोहवणिक्वत्. ॥ १९ ॥

अथ तत्त्वज्ञानप्राप्तिका उपाय दिखाते हैं.

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ वाग् बुद्धिश्च विचारणे॥
यःश्रुतं न विचारेत स कार्यं विन्दते कथम् ॥ २० ॥

व्याख्या—सुननेयोग्य वस्तुमें तो दोनो कान करेहैं, वचन और बुद्धि ये दोनों तत्त्वके विचारणेमें प्रवृत्तमान करेहैं, सो पुरुष तत्त्वज्ञानकों प्राप्त होता है, परंतु जो सुणके विचारता नहीं है, सो पुरुष कार्यकों अर्थात् तत्त्वकों कैसें जाणे? ॥ २० ॥

नेत्रैर्निरीक्ष्य विषकण्टकसर्प्पकीटान्
सम्यग् यथा व्रजति तान् परिहृत्य सर्वान् ॥
कुज्ञानकुश्रुतिकुदृष्टिकुमार्गदोषान्
सम्यग् विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २१ ॥

व्याख्या—जैसें विषकंटक सर्प कीडे इन सर्वकों मार्गमें चलता हुआ, नेत्रोंसें देखकरके सम्यक् प्रकारे सर्व ओरसें परिवर्जन करता है, इसमें जो कहे कि, यह पुरुष रस्तेमें विषकंटक सर्प कीडे इनकों वर्जके चलता है, इसवास्ते यह पुरुष विषकंटकादिका निंदक है, क्या वो उसके कहनेसें पूर्वोक्त वस्तुयोंका अपमान करनेवाला सिद्ध होसक्ता है? कदापि नहीं होसक्ता है. ऐसेही जो पुरुष कुज्ञान, कुश्रुति, कुदृष्टि, कुमार्ग—कुज्ञान-अज्ञान, पदार्थके स्वरूपकों विपर्यय कथन करना. जैसें आत्मा चारभूतोंसें

ही उत्पन्न होताहै, अथवा आत्मा एकांत नित्यही है, अथवा आत्मानामक कोई पदार्थ है नहीं, एकांतक्षणिक विज्ञानाद्वैतरूपही तत्त्व है, एकान्त ब्रह्मा द्वैतरूपही तत्त्व है, अथवा आत्मा सर्वव्यापक है, अथवा अंगुष्ठपर्वमात्र, वा तंदुलमात्र, वा स्यामाकधान्यजितना आत्मा है; सृष्टि, प्रलय, ईश्वर करता है, जीवोंके कर्मोंका फलप्रदाता ईश्वर है, वा जीवोंका पूर्वोत्तर जन्म नहीं है, इत्यादि चैतन्य, और जडपदार्थोंके स्वरूपका विपरीतकथन जिस शास्त्रमें होवे, सो शास्त्र अज्ञानरूप है.

तथा कुश्रुति,-जिस शास्त्रमें जीवहिंसा करणेमें धर्म कथन करा होवे, यथा 'वेदविहिता हिंसा धर्माय' इत्यादि, तथा जिस शास्त्रके श्रवण करणेसें श्रोताकों अधर्मबुद्धि उत्पन्न होवे, वात्स्यायनादिकामशास्त्रवत्, सो कुश्रुति.

कुदृष्टि,-जिसकी बुद्धि, कुदेव, कुगुरु, कुधर्मकरके वासित होवे, सो कुदृष्टि; और कुमार्ग, एकांत नित्य, एकांत अनित्य, इत्यादि दुर्नयके मतसें जिस शास्त्रमें कथन करा होवे, संसारके मार्गकों मोक्षका मार्ग, और मोक्षमार्गकों संसारका मार्ग कहना, तथा सम्यग् देव गुरु धर्मका स्वरूप जिसमें कथन नहीं करा होवे, सो कुमार्ग, इत्यादिदूषणोंकों त्यागके शुद्धमार्गकों कथन करे, अर्थात् सद्ज्ञान, सत्श्रुति, सद्दृष्टि, सन्मार्गका कथन करे, और पूर्वोक्त वस्तुयोंका निषेध करे तो, इसमें दूसरोंका क्या अपवाद है? अर्थात् क्या निंदा है? सो, परीक्षको! तुमही विचार करो ॥ २१ ॥

प्रत्यक्षतो न भगवानृषभो न विष्णु
रालोक्यते न च हरो न हिरण्यगर्भः ॥
तेषां स्वरूपगुणमागमसंप्रभावा
ज्ज्ञात्वा विचारयथ कोत्र परापवादः ॥ २२ ॥

व्याख्या-प्रत्यक्ष प्रमाणसें तो, न भगवान् ऋषभदेव दिखलाइ देता है, और न प्रत्यक्षप्रमाणसें विष्णु दिखलाइ देता है, और न हर-महादेव दीखता है, न ब्रह्माजी दीखता है, अब इन पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप जाण्याविना कैसें जाना जावे कि, तिनमें कैसे कैसे गुण थे? इसवास्ते ये

सर्व आगमसें अर्थात् आगम—वेदस्मृतिपुराणादि जैसा तिनका जीवनचरित्र प्रतिपादन करते हैं, तिनकों सुणके वा वांचके पूर्वोक्त देवोंके चारित्रकों जाणकर तिन देवोंके स्वरूपगुणका निर्णय करिए तो, इसमें विचार करो कि, क्या किसी देवकी निंदा है ?॥ २२ ॥

अब पूर्वोक्त देवोंका किंचित् स्वरूप ग्रंथकार दिखाते हैं.

विष्णुः समुद्धतगदायुधरौद्रपाणिः
शंभुर्ललन्नरशिरोस्थिकपालपाली ॥
अत्यन्तशान्तचरितातिशयस्तु वीरः
कम्पूजयामउपशान्तमशान्तरूपम् ॥ २३ ॥

व्याख्या—उगरी हुइ गदारूप करके रौद्रपाणी, अर्थात् भयानक जिसका हाथ है, ऐसे स्वरूपवाला तो विष्णु है; और गलेमें मनुष्यके कपालोंकी मालावाला स्वरूप, महादेवका अर्थात् ऐसे स्वरूपवाला महादेव है; और अत्यंत शांतरूप चरितातिशयवाला वीर महावीर अर्हन् है, यह स्वरूप पुराणादि शास्त्रोंमें और जैनमतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तथा प्रत्यक्षमेंभी पूर्वोक्त देवोंका स्वरूप, तिनकी मूर्तियांद्वारा सिद्ध होता है. अब हम वाचकवर्गकों पूछते हैं कि, तुम कहो, अब हम किसकों पूजें ? शांतरूपवालेकों कि अशांतरूपवालेकों ? ॥ २३ ॥

अब ग्रंथकार पूर्वोक्तदेवोंके कृत्योंका किंचित् स्वरूप दिखाते हैं.

दुर्योधनादिकुलनाशकरो बभूव विष्णुर्हरस्त्रिपुरनाशकरः किलासीत्॥
क्रौञ्चं गुहोपि दृढशक्तिहरं चकार वीरस्तु केवल जगद्धितसर्वकारी २४

व्याख्या—दुर्योधनादि अनेक राजायोंके कुलोंका नाश करनेवाला विष्णु, कृष्ण होता भया, यह कथन महाभारतादि ग्रंथोंमें प्रसिद्ध है; और हर महादेव, त्रिपुरनामक दैत्यका नाश करनेवाला निश्चयकरके होताभया, और कार्तिकेयभी, क्रौंचनामक राजाकी दृढशक्तिका हरन—नाश करने अर्थात् क्रौंचराजाकी दृढशक्तिका नाश करनेवाला हुआ है, परंतु श्रीमहावीर तो, केवल सर्वजगत्के हितके करनेवाले हुए हैं. अब कहो! किसकी हम पूजा करीए? ॥ २४ ॥

पीड्यो ममैष तु ममैष तु रक्षणीयो
मथ्यो ममैष तु न चोत्तमनीतिरेषा॥
निःश्रेयसाभ्युदयसौख्यहितार्थबुद्धे-
र्वीरस्य सन्ति रिपवो न च वञ्चनीयाः॥ २५॥

व्याख्या—यह मेरेकों पीडनेयोग्य—दुःख देनेयोग्य है, और यह मेरेकों रक्षणेयोग्य है, और यह मेरेकों मथने योग्य है, और यह मथने योग्य नहीं है, इत्यादि यह पूर्वोक्त नीति—न्याय पूर्वोक्त काम करनेवाले देवोंका उत्तम कर्म नहीं है, 'रागद्वेषपूर्वकत्वात्'—और जिससें जीवोंको मुक्ति, और पुण्यानुबंधी पुण्यके उदयसें स्वर्गप्राप्तिरूप सुख, और इसलोक-परलोकमें हित होवे, ऐसी बुद्धिवाले अर्थात् ऐसे ज्ञानसत्योपदेशवाले, श्रीमहावीर भगवंतके रिपु वैरि तो जगत्में बहुत हैं, परंतु श्रीमहावीरजीकों वंचनीय कोईभी नहीं है, अर्थात् वध्य करणे योग्य, पीडा देने योग्य, मथनेयोग्य, कोईभी नहीं है. वीतरागत्वात्. ॥ २५ ॥

रागादिदोषजनकानि वचांसि विष्णो
रुन्मत्तचेष्टितकराणि च यानि शंभोः॥
निःशेषरोषशमनानि मुनेस्तु सम्यग्-
वन्द्यत्वमर्हति तु को नु विचारयध्वम्॥ २६॥

व्याख्या—पुराणादि शास्त्रोंमें विष्णुके वचनरागादिदोषोंके जनक उपलब्ध होतेहैं; और पूर्वोक्त शास्त्रोंमेंही शंभु—महादेवके वचन उन्मत्तपणेकी चेष्टाके उपलब्ध होतेहैं; और जैनागममें मुनि श्रीमहावीर अर्हन्के वचन संपूर्ण रोष, उपलक्षणसें रागकामादिके शमन करनेवाले उपलब्ध होतेहैं; अब हे वाचकवर्गो ! तुमपक्षपातकों छोडके अच्छीतरे विचार करो कि, इन पूर्वोक्त देवोंमें वंदना करनेयोग्य कौन देव है ? ॥ २६ ॥

यश्चोद्यतः परवधाय घृणां विहाय
त्राणाय यश्च जगतःशरणं प्रवृत्तः॥

रागी च यो भवति यश्च विमुक्तरागः
पूज्यस्तयोः क इह ब्रूत चिरं विचिन्त्य ॥ २७ ॥

व्याख्या–जो एक तो दयाकों छोडके परके बध करणेकेवास्ते उद्यत हो रहाहै, और जो एक जगत्के त्राणकेतांइ अर्थात् जगद्वासि जीवोंकी रक्षाकेवास्ते शरणकों प्रवृत्त हुआ है, अर्थात् शरण्यभूत है; और जो एक रागी है, और जो वीतराग है, इन दोनोंमेंसे पूज्य–पूजनेयोग्य कौनसा देव है? सो, हे पाठकजनो! तुम चिरकालतक चिंतन करके कहो ॥२७॥

शक्रं वज्रधरं बलं हलधरं विष्णुं च चक्रायुधं
स्कन्दं शक्तिधरं श्मशाननिलयं रुद्रं त्रिशूलायुधम् ॥
एतान् दोषभयार्दितान् गतघृणान् बालान् विचित्रायुधान्
नानाप्राणिषु चोद्यतप्रहरणान् कस्तान्नमस्येद्बुधः ॥ २८ ॥

व्याख्या—वज्र धारण करनेवाले इंद्रको, हलमुशलके धारनेवाले बलदेवको, और चक्र धरनेवाले विष्णुको, शक्तिके धरनेवाले कार्तिकेयको, श्मशानमें रहनेवाले और त्रिशूलके धरनेवाले रुद्र-महादेवको, इन पूर्वोक्त दोषभयकरके पीडित, दयारहित, अज्ञानी, विचित्र प्रकारके शस्त्र रखनेवाले, और नानाप्रकार प्राणियोंकेउपर शस्त्रके उगरने वा चलानेवाले देवोंको, कौन बुध प्रेक्षावान् नमस्कार करे? अपितु कोइभी न करे ॥ २८ ॥

न यः शूलं धत्ते न च युवतिमङ्के समदनां
न शक्तिं चक्रं वा न हलमुशलाद्यायुधधरः ॥
विनिर्मुक्तं क्लेशैः परहितविधावुद्यतधियं
शरण्यं भूतानां तमृषिमुपयातोऽस्मि शरणम् ॥ २९ ॥

व्याख्या—जो देव, त्रिशूल धारण नहीं करता है, और कामयुक्त स्त्रीको अपने खोलेमें नहीं धारण करता है, तथा जो शक्तिको, और चक्रको धारण नहीं करता है, तथा जो हलमुशलादि शस्त्रोंका धारनेवाला नहीं है, तिस रागद्वेष अज्ञानकामादि सर्वक्लेशोंसें रहित, परजीवोंके हित

करनेमें सावधान बुद्धिवाले, और जगद्वासि जीवोंके शरणभूत, ऋषि, सच्चे देवके शरणको मैं प्राप्त हुआहूं ॥ २९ ॥

रुद्रो रागवशात् स्त्रियं वहति यो हिंस्रो ह्रिया वर्जितो
विष्णुः क्रूरतरः कृतघ्नचरितः स्कन्दः स्वयं ज्ञातिहा ॥
क्रूरार्या महिषांतकृन्नरवसामांसास्थिकामातुरा
पानेच्छुश्च विनायको जिनवरे स्वल्पोपि दोषोऽस्ति कः ॥३०॥

व्याख्या—रुद्र-महादेव रागके वशसें स्त्रीको वह रहा है, और जीवहिंसा करनेवाला है, और लज्जाकरके वर्जित है, विष्णु अतिशयकरके क्रूर और कृतघ्नचरितवाला है, स्कंद आपही अपनी ज्ञातिका हननेवाला है; निर्दय काली भवानी भैंसोंके अंत करनेवाली मनुष्योंकी चर्वी मांस हाडोंकी इच्छावाली कामातुर है; और विनायक पीनेकी इच्छावाला है, परंतु जिनवरमें पूर्वोक्त दूषणोंमेंसे स्वल्पमात्रभी कोइ दूषण है? अपितु कोइभी नहीं३०॥

ब्रह्मा लूनशिरा हरिर्दृशि सरुक् व्यालुप्तशिश्नो हरः
सूर्योप्युल्लिखितोनलोप्यखिलभुक् सोमः कलङ्काङ्कितः ॥
स्वर्नाथोपि विसंस्थुलः खलु वपुः संस्थैरुपस्थैः कृतः
सन्मार्गस्खलनाद्भवन्ति विपदः प्रायः प्रभूणामपि ॥ ३१ ॥

व्याख्या—ब्रह्माजीका शिर कटागया, विष्णुके नेत्रमें रोग हुआ, महादेवका लिंग टूट गया, सूर्यका शरीर त्राछ गया, अग्नि सर्वभक्षी हुआ, चंद्रमा कलंकवाला हुआ, और इंद्रभी सहस्त्रभगकरके बुरे शरीरवाला हुआ; क्योंकि, सन्मार्ग (अच्छेमार्ग) सें स्खलायमान (भ्रष्ट) होनेसें, प्रायः समर्थ पुरुषोंकोभी दुःख होतेहैं. इसका भावार्थ कथानकोंसें जानना. तथाहि—

ब्रह्माजीका शिर क्यों कटा? सो लिखते हैं. एकदा प्रस्तावे तेतीस कोटी देवता एकत्र मिले, तहां सर्व परस्पर मातापितायोंका वर्णन करते हुए, तहां तिन्होंनें कहा कि, बडा आश्चर्य है जो महेश्वरके माता पिता जाननेमें नहीं आते हैं, इसवास्ते महेश्वरके मातापिता नहीं हुए हैं; ऐसा

देवतायोंका वचन सुणके, ब्रह्माने पांचमे गर्दभके मुखसरीसे मुख करी ईर्षासें कहा कि, मेरे सर्व पदार्थके जाननेवालेके जीवतेहुए ऐसें क्यों कहते हों? क्योंकि, महेश्वरके मातापिताका स्वरूप मैं जानता हूं. तदपीछे ब्रह्माजीने कहनेका प्रारंभ करा, तब महेशने अप्रकाशने योग्य प्रकाश करनेसें ब्रह्माउपर क्रोधकरके कनिष्ठिका अंगुलीके नखकरके सर्वदेवतायोंके प्रत्यक्ष शीघ्र ब्रह्माजीका शिर छेदन करा.

कोइक ऐसें कहते हैं कि ब्रह्मा और वासुदेव इन दोनोंका अपने अपने वडपणविषे विवाद हुआ, ब्रह्मा कहै मैं वडा हूं, और वासुदेव कहै मैं, दोनों जने विवाद करते हुए महेश्वरके पास गए, महेशने कहा तुम जिद मत करो, परंतु तुमारे दोनोंमेंसे जो मेरे लिंगके अंतको पावेगा, सोइ बडा, अन्य नहीं; तिस पीछे विष्णु तो लिंगका अंत देखने वास्ते बडे वेगसें अधोलोकको गया; परंतु लिंगका अंत न पाया, क्यों कि पातालके वडवानलके सबबसें आगे न जा सका, तबसें ही कृष्ण, काले शरीरवाला होके पाछा आया, और महादेवको कहने लगा कि, तुमारे लिंगका अंत नहीं है.

और ब्रह्माभी, तैसेंही ऊपरको जाता हुआ, परंतु लिंगके अंतको प्राप्त नहीं हुआ, तब खेदको प्राप्त हुआ, तिस अवसरमें महेशके लिंगके मस्तकके ऊपरसें पडती हुई माला प्राप्त हुई, तब ब्रह्मा मालाको पूछता हुआ कि, तूं कहांसें आई है? मालाने जवाब दिया कि, लिंगके मस्तकोपरसें आई हूं; ब्रह्मा बोला, आतीहुई तेरेको कितना काल लगा? मालाने कहा, छ मास, तब ब्रह्माने कहा, ऐसे वेगसें चलनेवाली तुझको छ मास लगे है तो, लिंगका अंत बहुत दूर है, इसवास्ते मैं थाकके पाछा जाताहूं, परंतु अंतकी पृच्छामें तैनें साक्षी देनी; मालाने ब्रह्माका कहना मान्य करा, तब तिसको साथ लेके ब्रह्मा शंभुके पास जाताहुआ, और कहता हुआकि मैंने लिंगका अंत पाया, और साक्षीकेवास्ते इस मालाको साथ ल्यायाहूं. तब शंभुने मालाको पूछा, मालाने कहा जैसें ब्रह्मा कहता है, तैसेंही है, तब अनंतलिंगको सांत करनेवाले ब्रह्मा, और जूठी साक्षी देनेवाली माला, दोनोंके उपर ईश्वर कोपायमान हुआ, कनिष्ठिकाके नखसें ब्रह्माका गर्दभाकार शिर छेदन करा, और मालाको अस्पृश्यपणेका शाप दीया.

और मत्स्यपुराणके १८२ अध्यायमें ऐसें लिखा है.

[पार्वतीजी महादेवजीसें पूछती है] जिस हेतुसें आप इस स्थानकों नहीं छोडते उस उत्तम हेतुकोभी वर्ण कीजिये. यह सुनकर महादेवजीने कहा कि, हे देवि ! पूर्वकालमें ब्रह्माजीके पांच शिर होतेभये, उनमें पांचवाँ शिर सुवर्णकेसमान कांतिवाला था, फिर एकसमय वह ब्रह्माजी मुझसें कहने लगे कि, मैं तुम्हारे जन्मको जानता हूं, तब मैंने क्रोधकरके अपने बायें अंगूठेके नखसें ब्रह्माका वह पांचवाँ शिर छेदन करदिया; तब ब्रह्माजीने कहा कि, तुमने विनाही अपराधके मेरा शिर काटडाला है, इसलिये मेरे शापसे तुम कपाली होगे, अर्थात् तुम्हारे हाथमें कपाली चिपक जायगी, तब तुम ब्रह्महत्यासें व्याकुल होकर तीर्थोंपर विचरोगे, उनके शापको सुनकर मैं हिमवान् पर्वतपर चला गया, वहाँ नारायणके पाससे मैंने भिक्षा मांगी, तब नारायणने अपने नखके अग्रभागसे वह मेरे हाथकी कपाली उतारली, उसके उतारतेही उसमेंसे बहुतसी रुधिरकी धारा निकली, और ५० योजनके विस्तारमें वह रुधिरकी धारा फैल गई, और कपालीभी फैलकर बडे अद्भुत भयंकररूपसें घोर दीखती भई; इसके पीछे वह रुधिरकी धारा दिव्य हजार वर्षोंतक वहती भई, तब विष्णु भगवान् मुझसे कहने लगे कि, यह ऐसा कपाल तुम्हारे हाथमें कैसे लगगया था ? इस मेरे हृदयके संदेहको आप मेरे आगे कहिये; तब मैंने कहा कि, हे देव ! आप इस कपालकी उत्पत्तिको श्रवण कीजिये. पूर्वकालमें हजारों वर्षोंतक ब्रह्माजीने दारुण तपस्याकरके अपने दिव्यशरीरको रचा, उनके तपके प्रभावसे सुवर्णके समान कांतिवाला पांचवाँ शिर होताभया, उन ब्रह्माजीके पांचवें शिरकों मैंने क्रोधकरके काटडाला, उसी शिरकी यह कपाली है—इत्यादि.

हरि—कृष्ण, नेत्रविषे रोगी ऐसे हुए—दुर्वासा महाऋषिको उर्वशीके साथ भोग करनेकी इच्छा हुई, तब उर्वशीने दुर्वासाऋषिको कहा कि, जेकर तूं अपूर्व यान (असवारी) में बैठके स्वर्गमें आवेगा तो, मैं तुझको अंगीकार करुंगी; यह सुनकर दुर्वासा ऋषि कृष्ण वासुदेवके पास गया, तिन्होंने ऋषिकी स्वागत करी, और आगमनका कारण पूछा तब ऋषिने

कहा कि, मैं स्वर्गमें जानेको ईच्छता हूं, इसवास्ते तूं भार्यासहित गोरूप होके रथमें जुडके मुझे स्वर्गमें पहुंचता कर, परंतु तुमने रस्ते चलते हुए पीछेको नहीं देखना. तब कृष्णजीने भक्ति और भयसें तिसका वचन अंगीकार करा, और ऋषिको स्वर्गमें लेजानेको प्रवृत्त हुआ. रस्तेमें स्त्रीहोनेसें तथा विध चलनेकी शक्तिके न होनेसें, लक्ष्मीको मुनि प्राजनक दंडकरके वारंवार प्रेरता हुआ, तिस प्रेरणाको हरि स्नेहकरके असहन करता हुआ, लक्ष्मीके सन्मुख देखता हुआ, तब दुर्वासा ऋषिने अंगीकृतके न निर्वाह करनेसें कृष्णके उपर कोप करके तिसके नेत्रोंकों प्राजनकसें प्रेरणा करी, ऐसे हरिके लोचनोंमें रोग उत्पन्न भया.

अन्य ऐसे कहते हैं कि—एकदा प्रस्तावे कृष्णजी तलावके कांठेऊपर तप तपतेथे, तहां कोइ तापसनी स्नान करतीथी, कृष्णने तिसका नग्नपणा सकाम दृष्टिसें देखा, तापसनीने तैसा जानकर शाप देके, लोचन सरोग करा.

महादेवका लिंग ऐसे टूटा—दारुवन नामक तपोवनमें तापस वसतेथे, तिनकी कुटियोंमें महादेव भीख मांगनेकेवास्ते अपना समस्त अलंकार और घंटोंकी टंकारसे दिगंतराल मुख करता हुआ जाताथा, तापसनीको देखके महादेवको विकार उत्पन्न हुआ, तब महेश्वरने तिसकेसाथ भोग करा. यह वृतांत ऋषियोंने जाना, तब ऋषियोंने अतिकोपसे शाप दिया, तब शिवका लिंग टूटगया, तदपीछे सर्वजनोंके लिंग टूट गए, और जगतोत्पत्ति बंध होगई. तब देवतायोंने विचार करा कि, यह तो अकालमेंही संहार होनेलगा, ऐसे चिंतके तिनोंने तापसोंको प्रसन्न करा, तब तिनोंने तैसाही लिंग करदीया, परंतु यह कहदिया कि, यह लिंग, आगे तो सदाही स्तब्ध रहता था, परंतु आजपीछे जब कामार्थी होवेगा, तबही स्तब्ध, होवेगा, तदपीछे सर्वलोकोंकेभी लिंग वैसेही होगए.

सूर्यका शरीर ऐसे त्राछा गया—पाहिलां सूर्यकी रत्नादेवी नामा भार्या थी, तिसका यम नामा पुत्र होता भया, रत्नादेवी सूर्यका ताप नहीं सहन करती हुई, अपने स्थानमें अपनी प्रतिच्छायाकों स्थापनकरके समुद्रके तटपर जाकर वडवा (घोडी) का रूपकरके रहती हुई; प्रतिच्छाया, शनैश्चर भद्रानामके अपत्योंकों जनती हुई. एकदा प्रस्तावे बाहि-

रसें आएहुए यमनें भोजन मांगा, छायाने भोजन नहीं दिया, तदा यमने लातका प्रहार करा, तब छायाने शाप देके यमका पग रोगवाला करदिया, यमने अपने पिता सूर्यकों कहा, सोभी सुणके चिंतवन करता हुआ कि, स्वमाता ऐसे कैसें करे ? इसवास्ते यह असली यमकी माता नहीं है. ऐसे चिंतवन करतेहुए सूर्यने वडवाके रूपमें यमकी माताको देखी, तब सूर्य तिसकी इच्छाविनाहि जोरावरीसें तिसकेसाथ भोग करता हुआ, तिससे आश्विनदेवते होतेभए. तिस रत्नाने रोषारुणनयन होके सूर्यको देखा, तब सूर्य कुष्ठी होगया, तव सूर्य अपने रोगके दूर करणेवास्ते धन्वंतरिकेपास गया, तब धन्वंतरिने कहा कि, तेरा शरीर विनाछीले अच्छा नहीं होवेगा, तब सूर्यने अपने शरीरको छीलावनेवास्ते देववढइको प्रार्थना करी, तब तिसने कहा कि, पीडा सहनेवाला होवे तो त्राछुं अन्यथा नहीं; सूर्यने कहा जैसे तुम कहोगे तैसे हि होवेगा, तव मस्तकसे लेके जानुतांइ त्राच्छनेमें वहुत पीडा हुई, तव सूर्यने सीत्कार करा, तब बढाइने त्राछना छोड दिया.

अन्य ऐसे कहतेहैं—वडवारूप स्वभार्याकों भोगके सूर्य तिसके पिताको उपलंभ देता हुआ कि, तेरी पुत्री मुझको छोडके अन्य जगे रहती है, सो कहता हुआ कि, तेरा ताप न सहन करनेसे वो क्या करे? इसवास्ते जेकर तिस मेरी पुत्रीके साथ तेरा प्रयोजन है तो, अपना शरीर छीलवा ले, तिससें तेज मंद होजावेगा, तव सूर्यने देववढइसे शरीर छीलवाया.

और मत्स्यपुराणके ११ एकादश अध्यायमें ऐसे लिखा है—ऋषियोंने पूछा हे सूतजी ! आप यथार्थक्रमसे सूर्यवंश और चंद्रवंशकों वर्णन कीजिये. सूतजी बोले प्रथम अदितिस्त्रीसें कश्यपजीसे सूर्य उत्पन्न हुए, उनकी संज्ञा, राज्ञी और प्रभा, यह तीनों नामवाली तीन स्त्रियां होतीं भई. इनमें वह रैवतीकीपुत्री राज्ञीनाम सूर्यकी स्त्रीने रेवतनाम पुत्रको उत्पन्न किया, प्रभास्त्रीने प्रभातनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और संज्ञानाम स्त्रीने मनुनाम पुत्रको उत्पन्न किया, और इसी स्त्रीने यम और यमुना, इन दोनों पुत्रपुत्रियोंकोभी उत्पन्न किया. फिर वह संज्ञास्त्री जब सूर्यके तेजको न सहती भई, तब उसने अपने शरीरसे छाया नाम बडी उत्तम स्त्रीको उत्पन्न किया.

वह छायानाम स्त्री संज्ञाके आगे खडी होकर बोली कि मैं क्या करूं? तब संज्ञाने कहा कि, हे वरानने! तूं इस मेरे पति सूर्यको ही भज, और मेरी संतानको माताके समान अपना स्नेहकरके पालन कर; फिर तथास्तु अर्थात् ऐसाही करूंगी इस प्रकारसे अंगीकार करके वह छाया सूर्यको प्राप्त हुई. तब सूर्यभी उसको संज्ञाकेही समान जानकर बडे आदर भावसे उसकेसंग भोग करनेलगे, उससें दूसरा मनु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ, यह मनु पूर्वके मनुका सवर्णी होकर सावर्णि नाम मनु विख्यात हुआ, फिर उसी छायामें सूर्यसे शनैश्चर, तपती और विष्टि, यह संतान उत्पन्न हुई. इसके अनंतर वह छाया अपने पुत्र सावर्णिनाम मनुमें अधिक स्नेह करनेलगी, इस बातको प्रथम मनुने तो सहलिया, परंतु यम न सहसके, और महाक्रोधित होकर यमने उस छायाके पुत्र मनुको दाहिन पैरसे ताडन किया, तब छायाने यमको यह शाप दिया कि, यह तेरा पैर पीवयुक्त कीटोंसे भरे घाववाला होकर राधसे झिरे.

फिर यम इसशापको न सहकर, अपने पिताके पास जाकर यह बोले कि, हे देव! माताने मुझे निरपराध शापित करदिया है, मैंने बालकपणेसे जरा पैरको उठादिया था, उस समय मनुने उसको निषेधभी किया था, परंतु उसने शाप देही दिया. हे विभो! जो कि उसने हमको शापसे हत कर दिया है, इसहेतुसे वह विशेषकरके हमारी माता नहीं है, तब सूर्यने कहाकि, हे महामते! मैं क्या करूं? मूर्खतासे अथवा कर्मके प्रभावसे कहो, किसको दुःख नहीं होता है? शिवजीसेभी कर्मकी रेखा दूर नहीं होती है तो, अन्यजनोंकी क्या बात है? हे पुत्र! मैं तुझे मुरंगा दूंगा, वह तेरे कृमियोंको भक्षण करके राधरुधिरकोभी खा कर दूर करदेगा. पिताके इसवचनको सुनकर यम दारुण तपस्या करनेलगे, अर्थात् गोकर्ण तीर्थपर जाके सर्व वस्तुओंको त्याग, फल, मूल, पत्र और वायु, इनका आहार करनेलगे, वहां दश किरोड वर्षोंतक यमने महादेवजीका तप किया, तब शूलधारी शिवजी उसपर प्रसन्न होकर बोले कि, वर मांग. तब यमने संसारके कियेहुए पापपुण्योंको जान लेनाही वर मांगा, इस-

प्रकार करके वह यम, शिवजीके प्रभावसे लोकपाल होजाताभया, फिर अधर्मोंकाभी जाननेवाला होकर, सब पितरोंका पति होता भया.

इसकेपीछे सूर्यदेवता, प्रथम कियेहुए संज्ञाके कर्मको जानकर, उसके पिता, त्वष्टाके पास गये, और क्रोध होकर उससे बोले कि, तुम्हारी पुत्रीने मेरी विनाआज्ञा ऐसा कर्म किया. यह सुनकर हे ऋषियो ! उस त्वष्टाने सूर्यको समझाकर कहा कि, हे भगवन्! यह मेरी पुत्री आपके तेजको न सहकर घोडीका रूप धारण करके मेरे समीप आईथी, सो हे सूर्यदेव ! मैंने उससे यह कहकर उसको लौटादिया कि, सूर्यकी आज्ञा लिये विना जो तू मेरे घर आई है, इसहेतुसे तू मेरे घरमें प्रवेश करनेको योग्य नहीं है. इस मेरे वचनको सुनकर वह मरुस्थल देशमें जाकर घोडीके रूपको धारण करके पृथ्वीमें विचरती है, इस हेतुसे आप प्रसन्न होकर मेरेऊपर दया करो. हे दिवाकरजी ! मैं आपके तेजको यंत्रमें करके पृथक् करदूंगा, और आपके रूपको मनुष्योंका आनंद करनेवालाभी कर दूंगा. तव सूर्यने कहा, ऐसाही करो. तव उस त्वष्टाने सूर्यके तेजको यंत्रमें करके सूर्यसे पृथक् कर दिया, फिर उसी पृथक् किये हुए सूर्यके तेजसें, विष्णुका चक्र, शिवजीका त्रिशूल, इंद्रका वज्र और अन्य २ देवताओंके अनेक शस्त्रोंको बनाया.

इसके अनंतर दैत्यदानवोंके नाश कर्त्ता संपूर्ण मूर्तिसे रहित सूर्यको सहस्र किरणवाले विना पैरके सुंदरमुखमात्रही रूपको त्वष्टाने ऐसा बनाया कि, फिर उससूर्यके पैरोंके रूप देखनेकोभी त्वष्टा समर्थ नहीं हुआ, तभीसे सूर्यकी प्रतिमामें कोई उनके पैरोंकी मूर्ति नही बनवाता है और कोई हठसे वा मूर्खतासे उनके पैरोंकी मूर्ति बनावता है वह पापियोंकी महानिंदित गतिको प्राप्त होकर इस संसारके कठिण दुःखोंको भोगता हुआ कुष्टरोगको प्राप्त होताहै, इसहेतुसे धर्मकामादिकी इच्छाका करनेवाला मनुष्य किसी मंदिर वा स्थानमें किसी स्थानपरभी सूर्यकी मूर्तिमें पैर न बनवावे.

इसके उपरांत सूर्य देवता, उसी मुखकेही रूपसे कामदेवसे पीडित होकर पृथ्वीलोकमें जाकर उस संज्ञाकी इच्छा करतेभये, और बडे तेज-

वाले घोडेका रूप बनाकर उस घोडीरूप संज्ञाके पास पहुंचे; तव संज्ञा मनसे क्षोभको प्राप्त होकर भयसे विव्हल होती भई, और उस सूर्यसेही धारण किये हुए वीर्यको परपुरुषकी शंका करके अपनी नासिकाके दोनों छिद्रोंके द्वारा बाहर त्यागती भई, उसी वीर्यसे अश्विनीकुमार उत्पन्न होते भये. अश्वसे उत्पन्न होनेसे उनको दस्रौ कहते हैं, और नासिकाके द्वारा होनेसे नासत्यौ ऐसाभी कहते हैं.

अग्नि सर्वभक्षी ऐसे हुआ—पहिले कोइक ऋषि अपनी कुटीमें वैश्वानरको वडी भक्तिसे आहुतियोंकरी पूजता था, सो एकदा अग्निको कहनेलगा कि, तूं मेरी भार्याकी रखवाली करी, ऐसे कहकर ऋषि वाहिर गया. तव पीछे कामांध होके किसी ऋषिने अग्निके प्रत्यक्षही ऋषिपत्नीके साथ भोग करा, क्षणांतरमें सो ऋषि आया, तिसने इंगिताकारकरके अपनी भार्याको परपुरुषने भोगी जानके अग्निको पूछा कि, यहां कौन आयाथा? तव दोनोंमेंसें किसीनेभी उत्तर न दिया, परंतु तिस ऋषिने अपने ज्ञानकरके तिस उपपतिको जान लिया, तव रक्षणेयोग्यकी रक्षा न करनेसें और पूछेका उत्तर न देनेसें ऋषिने अग्निके उपर क्रोध करा, और शाप दिया कि, तूं सर्वभक्षण करनेवाला होवेगा. तव अग्नि अशुचि आदि सर्व भक्षण करने लगा, और जो कुछ गंदकी आदि अग्नि भक्षण करे सो सर्व देवताओंको प्राप्त होने लगा. "अग्निमुखा वै देवा" इतिश्रुतिवचनप्रामाण्यात्, तव अशुचि रस खानेसें उद्विग्न हुए देवते, अपने ज्ञानसें शापका व्यतिकर जानकर तिस ऋषिको प्रसन्न करनेलगे, परंतु ऋषिने माना नहीं. अंतमें देवताओंके अतिआग्रहसें अग्निको सप्तजिव्हावाला कर दिया, तवसें अग्निका नाम सप्तार्चि प्रसिद्ध हुआ. तिनमें दो जिव्हासें आहुतिं भोगने लगा, वह देवताओंको पहुंचने लगी, और शेष पांच जिव्हासें सर्व भक्षी स्थापन किया.

चंद्रमाको ऐसे कलंक लगा—चंद्रमा वृहस्पतिके पास पढताथा, तिसने वृहस्पतिकी भार्याकेसाथ भोग करा, सो वृत्तांत वृहस्पतिने जाना, तव तिसने चंद्रमाको शाप दिया कि, हे गुरुपत्नीउपभुंजक! तूं सदा कलंकवान् हो.

इंद्रभी सहस्र भगकरके बुरे शरीरवाला हुआ, सो ऐसे-पूर्वकालमें गौतममुनिकी अहल्यानाम भार्या थी, तिसके रूपऊपर मोहित होके तिसकी कुटीमें जाके इंद्र तिसकेसाथ भोग करताभया, इतनेमें गौतमजी कुटीके बाहिर आगए, इंद्र तिसके भयसें मार्जारका रूपकरके स्वर्गमें जाता हुआ. गौतमऋषिने विचारा कि, यह कोइ सामान्य विडाल नहीं है, इत्यादि विचारकरके जाना कि, यह तो इंद्र है. तब शाप देके इंद्रको सहस्र भगवाला कर दिया, और अपने छात्रोंको तिसकेसाथ भोग करनेवास्ते भेजता हुआ, पीछे देवताओंने ऋषिकों प्रसन्न करा, तब गौतमने इंद्रको सहस्रभगकी जगे सहस्रनेत्रवाला करदिया-इति ॥ ३१ ॥

बन्धुर्न नः स भगवानरयोऽपि चान्ये
साक्षान्न दृष्टतर एकतमोऽपि चैषाम् ॥
श्रुत्वा वचः सुचरितं च पृथग्विशेषं
वीरं गुणातिशयलोलतया श्रिताः स्म ॥ ३२ ॥

व्याख्या-सो भगवान् श्रीवीर, हमारा भाइ नहीं है; और अन्य ब्रह्मा, विष्णु, महादेवादि देवते हमारे शत्रु नहीं हैं; और न इन पूर्वोक्त सर्व देवोंमेंसें किसी एककोंभी प्रत्यक्षसें अतिशयकरके हमने देखा है, परंतु पृथग् विशेषवाले वचनको और चरितको अर्थात् जैनागमानुसार श्रीमहावीरके वचन, और तिनका चरित सुणके, और अनंतर काव्यमें लिखेहुए पुराणानुसार अन्यदेवोंके वचन, और चरित सुणके, पृथक् २ तिन चरितोंका विशेष विचार करके, गुणातिशयकी चंचलता करके, हम श्रीमहावीरकोंही आश्रित हुए हैं ॥ ३२ ॥

नास्माकं सुगतः पिता न रिपवस्तीर्थ्या धनं नैव तै-
र्दत्तं नैव तथा जिनेन न हृतं किंचित्कणादादिभिः ॥
किं त्वेकांतजगद्धितः स भगवान् वीरो यतश्चामलम्
वाक्यं सर्वमलोपहर्तृ च यतस्तद्भक्तिमंतो वयम् ॥ ३३ ॥

व्याख्या—कोइ सुगत वुध* हमारा पिता नहीं है, और न अन्य देवते हमारे शत्रु हैं, और न तिन देवताओंने हमको धन दिया है, तैसेही जिन अरिहंत महावीरनेभी कोइ हमको धन नहीं दिया है, और न कणाद, गौतम, पतंजलि, जैमिनि, कपिलादिकोंने हमारा किंचित् मात्रभी धन हरा है; किंतु श्रीमहावीर भगवान् एकांत जगत्के हितका करनेवाला है. क्योंकि, तिनके वचन अमल, बत्तीस दूषणोंसें रहित, और अष्टगुणोंकरी संयुक्त हैं. और श्रद्धापूर्वक सुणनेवाले, और धारनेवाले श्रोताजनोंके सर्व पापमलके हरनेवाले हैं; इसवास्ते तिस श्रीमहावीरकी भक्तिवाले हम हुए हैं. अव पूर्वोक्त दूषण और गुण शिष्यजनोंके अनुग्रहकेवास्ते लिखते हैं.

अलियमुवघायजणयं निरच्छयमवच्छयं छलं दुहिलं
निस्सारमाधियमूणं पुणरुत्तं वाहयमजुत्तं च ॥ १ ॥
कमभिन्नं वयणभिन्नं विभत्तिभिन्नं च लिंगभिन्नं च
अणभिहियमपयमेव य सभावहीणं ववहियं च॥ २ ॥
काल जति च्छविदोसो समयविरुद्धं च वयणमित्तं च
अच्छावत्ती दोसो य होइ असमास दोसो य ॥ ३ ॥
उवमारूवगदोसो निद्देसपदच्छसंधिदोसो य
एए उसुत्तदोसा बत्तीसं होंति नायव्वा॥४॥ इत्यावश्यकबृहद्वृत्तौ.

[भावार्थः] अनृतम्—अणहोया, कहना, जैसें सर्वजगत्का कारण प्रधान प्रकृति है, और सद्भूतका निन्हव (निषेध) करना, जैसें आत्मा नहीं है इत्यादि—१ ।

उपघातजनकम्—जिसमें जीवहिंसाका प्रतिपादन होवे, यथा, वेदविहिता हिंसा धर्मायेत्यादि—२ ।

निरर्थकम्—वर्णक्रमनिर्देशवत्, यथा "आरादेस्" यहां आर्, आत्, एस्, यह आदेशमात्रकाही कथन है, न कि अभिधेयकरके किसी अर्थकी प्रतीति होवेहै, इसवास्ते निरर्थक; डिच्छादिवत्—३ ।

---

* बुधनाम अर्हन्तकाही है—बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधादितिवचनात् ॥

अपार्थकम्—पूर्वापरसंबंधकरके रहित, जैसें दशदाडिम, छपूडे, कुंडा, अजाचर्म, पललपिंड, कीटिके ! चल, इत्यादि—४।

छलम्—अर्थ विकल्प उपपत्तिकरके वचनका विघात करना, यथा "नवकंवलो देवदत्त" इत्यादि—५।

द्रुहिलम्—द्रोहस्वभाववाला—यथा—"यस्य बुद्धिर्न लिप्येत हत्वा सर्वमिदं जगत्। आकाशमिव पंकेन नासौ पापेन युज्यते"॥ जैसे पंककरके आकाश नहीं लिपता है, तैसे जिसकी बुद्धि इस सारे जगत्को मारके लिपती नहीं है, सो पापके साथ जुडता नहीं है, अर्थात् उसको कर्मका बंध पाप नहीं लगता है, इत्यादि—अथवा द्रुहिलं—कलुषं, जिस वचनकरके पुण्य पाप एकसदृश होजावे, यथा "एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रिय गोचरः"—जितना इंद्रियोंद्वारा दीखता है इतनाहीमात्र यह लोक है, परं देवलोक नरकादि कुछ नहीं है. इत्यादि—६।

निःसारम्—परिफल्गु, निष्फल, वेदवचनवत्—७।

अधिकम्—वर्णादिकोंकरके अधिक जो वचन होवे, सो अधिक—८।

ऊनम्—वर्णादिकोंकरके हीन—९।

अथवा हेतु उदाहरणोंकरके जो अधिक वा हीन होवे, सो अधिक ऊन, वचन जाणना. जैसें शब्द अनित्य है, कृतकत्व और प्रयत्नानंतरीयकत्व होनेसें, घटपटवत्. यहां एकहेतु और एकदृष्टांत अधिक है. तथा शब्द अनित्य है, घटवत्. इस वचनमें हेतुके न होनेसें; और शब्द अनित्य है, कृतकत्व होनेसें, इसमें दृष्टांतके न होनेसें ऊन है. इत्यादि—८।९।

पुनरुक्तम्—अनुवादकों वर्जके शब्द, और अर्थका जो पुनः कहना, सो पुनरुक्त. पुनरुक्त तीन प्रकारका होता है, तथा हि—शब्दपुनरुक्त, यथा इंद्रइंद्रइति १, अर्थपुनरुक्त, यथा इंद्रःशक्रइति २ अर्थसें आपन्न (प्राप्त) सिद्धकों, जो स्वशब्द करके कहना, सो अर्थापन्न पुनरुक्त, यथा इंद्रियांकरकेप्रफुल्लित बलवान् मोटा देवदत्त दिनमें नहीं खाता है, यहां अर्थापन्नसे सिद्ध है कि, रात्रिमें खाता है, अन्यथा पीनत्वाद्यसंभवात्. तहां जो कहेकि, दिनमें नहीं खाता है, रात्रिमें खाता है, यह पुनरुक्त जानना ३—१०।

व्याहतम्—जहां पूर्वके कथन करके परका कथन बाध्या जावे, सो व्याहत. यथा "कर्म चास्ति फलं चास्ति कर्त्ता नास्ति च कर्म्मणामित्यादि" –कर्मभी है और कर्मोंका फलभी है, परं कर्मोंका कर्ता नहीं है. इत्यादि–११।

अयुक्तम्—जो प्रमाणसें सिद्ध न होवे, यथा "तेषां कटतटभ्रष्टैर्गजानां मदविन्दुभिः॥ प्रावर्त्तत नदी घोरा हस्त्यश्वरथवाहिनीत्यादि"–तिन हस्तियोंके गंडस्थलसे भ्रष्ट–हुए झरे हुए मदविन्दुओंकरके हस्ति अश्व रथांको वहा देनेवाली घोर नदी, प्रवर्त्तती भई–चलती भई. इत्यादि–१२।

क्रमभिन्नम्—जहां क्रमकरके कथन न होवे, जैसें स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षुः, और श्रोत्रांके, अर्थ (विषय) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द, ऐसे कथनमें स्पर्श, रूप, शब्द, गंध और रस, ऐसे कहना, सो क्रमभिन्न.–१३।

वचनभिन्नम्—वचनका व्यत्यय होना, यथा वृक्षावेतौ पुष्पिता इत्यादि–१४।

विभक्तिभिन्नम्—विभक्तिका व्यत्यय होना, अर्थात् प्रथमादिविभक्तिके स्थानमें द्वितीयादिका कहना, यथा एष वृक्षमित्यादि–१५।

लिंगभिन्नम्—लिंगव्यत्यय होना, स्त्रीलिंगादिके स्थानमें पुँलिंगादिका होना, यथा अयं स्त्रीइत्यादि–१६।

अनभिहितम्—अपने सिद्धांतमें जो नहीं कहा है, तिसका कथन करना, सो अनभिहित जैसें सप्तम पदार्थ, दशम द्रव्य, वा वैशेषिककों; प्रधान और पुरुषसें अधिक सांख्यमतकों; चार सत्यसें अधिक शाक्यको. इत्यादि–१७।

अपदम्—अन्य छंदमें अन्य छंदका कहना, जैसे आर्यापदमें वैतालीय पदका कहना–१८।

स्वभावहीनम्—जो वस्तुके स्वभावसें अन्यथा कहना, यथा अग्नि शीतल, मूर्त्तिमत् आकाश. इत्यादि–१९।

व्यवहितम्—जहां प्रकृतको छोडके, अप्रकृतको विस्तार करके कथन करके, फिर प्रकृतका कथन करना.–२०।

कालदोषः—अतीतादिकालका व्यत्यय करना, जैसें रामचंद्र वनमें प्रवेश करतेभये, इसस्थानमें प्रवेश करतेहैं. इत्यादि–२१।

यतिदोषः—अस्थानमें विश्राम करना, अथवा विश्राम करनाही नहीं-२२।

छबिदोषः—अलंकाररहित-२३।

समयविरुद्धम्—अपने सिद्धांतविरुद्ध कहना, यथा असत्कारणमें कार्यका मानना सांख्यको; और सत्कारणमें कार्यका मानना वैशेषिकको, समयविरुद्धमिति-२४।

वचनमात्रम्—निर्हेतुक, जैसे इष्टभूभागमें लोकका मध्य कहना-२५।

अर्थापत्तिदोषः—जहां अर्थसेंही अनिष्टकी प्राप्ति होवे, यथा ब्राह्मण मारने योग्य नहीं है, ऐसे वचनमें अर्थसेंही अब्राह्मणघातापत्ति होवे है-२६।

असमासदोषः—जहां समासव्यत्यय होवे, अथवा समासविधिमें समास न किया होवे, सो असमासदोष जानना-२७।

उपमादोषः—हीनकों अधिक उपमा देनी, और अधिककों हीनोपमा देनी, यथा सर्षप मेरुसमान, और मेरु सर्षपसमान है. इत्यादि-२८।

रूपकदोषः—स्वरूपअवयवोंका व्यत्यय करना, अर्थात् अवयवोंका अवयवीरूपकरके कहना, यथा पर्वतरूप अवयवोंको पर्वतकरके कहना.-२९।

अनिर्देशदोषः—जहां कथन करनेयोग्य पदोंका एक वाक्यभाव न करिए, यथा इहां देवदत्त स्थालीमें ओदन पकाता है, ऐसे कहनेमें देवदत्त स्थालीमें ओदन ऐसे कहना.-३०।

पदार्थदोषः—जहां वस्तुके पर्यायवाचिपदको, पदार्थांतरकल्पनाको कहे, जैसें द्रव्यके पर्यायवाची सत्तादि, अर्थात् महासामान्य, अवांतरसामान्य, विशेष, गुणकर्मादिकांको पदार्थपरिकल्पना, उलूक अर्थात् वैशेषिकमतवालेके है.-३१।

संधिदोषः—अस्थानमें संधि करना, और संधि स्थानमें न करना-३२।

जो इन पूर्वोक्त दोषोंसें रहित होवे, सो वचन अमल (निर्मल) जानना. तथा अष्टगुणोंकरके जो संयुक्त होवे, सो वचन सूत्र अमल (निर्मल) सर्वज्ञभाषित जानना. वह अष्टगुण यह है. निद्दोसं सारवत्तं च हेउजुत्तमलंकियं ॥ उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव य ॥ भावार्थः ॥ निर्दोषम्-

दोषरहित, १, सारवत्–बहुपर्याय अर्थकरके संयुक्त, गो*शब्दवत्, २, हेतुयुक्तम्–अन्वयव्यतिरेक लक्षण, हेतुओंकरके संयुक्त, ३, अलंकृतम्–उपमादि अलंकारोंकरके संयुक्त, ४, उपनीतम्–उपनयनिगमनसंयुक्त, ५, सोपचारम्–ग्राम्यवचनकरके रहित, ६, मितम्–वर्णादिपरिमाणसंयुक्त, ७, मधुरम्–सुणनेमें मनोहर ८॥ इति–॥ ३३ ॥

हितैषी यो नित्यं सततमुपकारी च जगतः
कृतं येन स्वस्थं बहुविधरुजार्त्तं जगदिदम् ॥
स्फुटं यस्य ज्ञेयं करतलगतं वेत्ति सकलं
प्रपद्यध्वं संतः सुगतमसमं भक्तिमनसः ॥ ३४ ॥

व्याख्या–जो देव, जगद्वासि जीवोंका नित्य सदाही हितकारी है, और निरंतर उपकारी है, जिसने बहुविध अनेक प्रकारके कर्म रोगकरी पीडित इस जगत्को उपदेशद्वारा स्वस्थ करा है, और जिसके ज्ञानमें सर्व ज्ञेय पदार्थ करतलगत आमलेकीतरें प्रकट हो रहे हैं, और जो सकलपदार्थोंको जानता है, हे संतजनो! ऐसे असदृश अर्थात् जिसके बराबर कोई नहीं है–ऐसे–सुगत भगवान् अर्हनको भक्तिमनसें अंगीकार करो, और तिसको परमेश्वर मानके शुद्ध मनसें पूजो–सेवो ॥ ३४ ॥

असर्वभावेन यदृच्छया वा परानुवृत्त्या विचिकित्सया वा ॥
ये त्वां नमस्यन्ति मुनीन्द्रचद्रास्तेप्यागरीसंपदमाप्नुवन्ति॥३५॥

व्याख्या––यथार्थस्वरूपके विना जाण्या, अथवा संपूर्णभक्ति विना, वा यदृच्छा स्वतः प्रवृत्तीसें, वा परकी अनुवृत्ति देखादेखीसें परकी दाक्षिण्यतासें, वा विचिकित्सा फलके संशयसें, हे मुनींद्रोंमें चंद्रमासमान मुनींद्रचंद्र भगवन् अर्हन्! जे कोइ तेरेको नमस्कार करते हैं, वे पुरुषभी देवतायोंकी सुखादिसंपत्विभूतीकों प्राप्त होते हैं, हे जिन! तेरे यथार्थ (सत्य) शासनके माननेवालोंका तो क्याही कहना है? ॥ ३५ ॥

* गोशब्दो हि वहुपर्यायो वह्वर्थ इतितात्पर्य–दिशि दृशि वाचि जले भुवि दिवि वज्रेऽसौ पशौ च गोशब्दइतिवचनादेवं सूत्रमपि वह्वर्थयुक्तं विधेयमिति–तथा किरणे सूर्ये चंद्रे वायौ ऋषभनाऔषधौ सौरभेय्यां वाणे मातरीत्यादावपि गोशब्दो विज्ञेयः ॥

यदा रागद्वेषादसुरसुररत्नापहरणे
कृतं मायावित्वं भुवनहरणाशक्तिमतिना ॥
तदा पूज्यो वन्द्यो हरिरपरिमुक्तो ध्रुवतया
विनिर्मुक्तं वीरं न नमति जनो मोहबहुलः ॥ ३६ ॥

व्याख्या—जिस अवसरमें रागद्वेषसें सुर असुरोंके समक्ष रत्न हरणेमें तीन भवनके हरनेकी शक्तिवाले विष्णु हरिने मायाविपणा करा—यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि, जिसतरे मणि चोरी गई, जैसें बलभद्रजीके सिर लगाई, और जैसी माया हरिने करी, इत्यादि—तदा तिस अवसरमें निश्चयकरके अष्टादश दूषणोंकरके अपरिमुक्त (सहित)को पूज्य और वंद्य मानके जन (लोक) पूजता है, और नमस्कार करता है, परं सर्वदूषणोंसें विनिर्मुक्त (रहित) श्रीवीरभगवान्कों नमस्कार नहीं करता है तो, फेर तिसके मोह अज्ञान बहुत नहीं तो, अन्य क्या है? अर्थात् मोहबहुल—बहुत मोह अज्ञानके वश होनेसें सत्यासत्य नहीं जानसक्ता है, इसीवास्ते दूषणरहितकों छोडके दूषणसहितको मानता है, नमन करता है, और पूजता है. ॥ ३६ ॥

अब आचार्य श्रीहरिभद्रसूरिजी अपने आपको पक्षपातसें रहित होना बतलाते हैं.

त्यक्तः स्वार्थः परहितरतः सर्वदा सर्वरूपं
सर्वाकारं विविधमसमं यो विजानाति विश्वम् ॥
ब्रह्मा विष्णुर्भवतु वरदः शंकरो वा हरो वा
यस्याचिन्त्यं चरितमसमं भावतस्तं प्रपद्ये ॥ ३७ ॥

व्याख्या—जिसने स्वार्थका तो त्याग करा है; और जो परहितमें रत है; तथा जो सर्वदा (सर्वकाल) सर्वरूप जडचैतन्यरूप, सर्वाकार परिमंडल, वृत्त, त्र्यंश, चतुरस्र, आयतनसंस्थानाकार, विविध प्रकारे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यरूप विश्व—जगत्को, असम—अनन्यसदृश जानता है, अर्थात् जो अन्योंकेसमान नहीं जानता है. क्यों कि, अन्य तो एकांतनित्य, वा

एकात अनित्य, इत्यादि जानते है, परंतु सर्वज्ञ परमेश्वर तो, सर्व पदार्थोंकों त्रिपदीरूपसें जानता है, अन्यथा सर्वज्ञत्वहानिप्रसंगः-तथा जिसका चरित अनन्यसदृश और अचिंत्य, अर्थात् किसीभी दूषणकरके कलंकांकित नहीं, ऐसा होवे, सो पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट देव, नामकरके ब्रह्मा हो, वा विष्णु हो, वा उपदेशद्वारा वर (प्रधान) ज्ञान दर्शन चारित्रका देनेवाला हो, वा शं(सुख) करनेवाला शंकर हो, वा हर (महादेव) हो, तिसको ही मैं सच्चे भावसें अपना देव (परमेश्वर) करके अंगीकार करता हूं ॥ ३७ ॥

अब पक्षपात न होनेमें हेतु कहते हैं.

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु ॥
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥ ३८ ॥

व्याख्या—मेरा कुछ श्रीमहावीरविषे पक्षपात नहीं है कि, जो कुछ श्रीमहावीरजीने कहा है, सोइ मैंने मानना है, अन्यका कहा नहीं; और कपिलादिमताधिपोंमें द्वेष नहीं है कि, कपिलादिकोंका कहना नहीं मानना; किंतु जिसका वचन शास्त्रयुक्तिमत, अर्थात् युक्तिसें विरुद्ध नहीं है, तिसका ही वचन ग्रहण करनेका मेरा निश्चय है ॥ ३८ ॥

अब जगत्में कपिल, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, जैमिनी, गौतम, कणाद, व्यास, पंतजलि, आदि, और ऋषभादि चौवीस तीर्थंकर, और गौतमबुद्धादि अनेक धर्मतीर्थके कर्त्ता हुए हैं; इसवास्ते इनमेंसें कोइएक तो सत्यवक्ता अवश्य होना चाहिए. सोइ ग्रंथकार कहते हैं.

अवश्यमेषां कतमोपि सर्ववित् जगद्धितैकान्तविशालशासनः ॥
स एव मृग्यो मतिसूक्ष्मचक्षुषा विशेषमुक्तैः किमनर्थपण्डितैः ॥३९॥

व्याख्या—इन पूर्वोक्त धर्मतीर्थके प्रवर्त्तकोंमेंसें कोइभी वक्ता, जगत्के एकांत हितकारी विशाल आगमवाला, अर्थात् जगत्के एकांत हितकारी प्रौढ अतिसुंदर आगमके कथन करनेवाला सर्वज्ञ होना चाहिए, जो ऐसा होवे, तिसकाही अन्वेषण बुद्धिरूप सूक्ष्मचक्षुकरके बुद्धिमानोंको

करना चाहिए, परंतु अन्यका नहीं. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंकरके रहित अनर्थके कथन करनेवाले अज्ञानी पंडितोंके विचार करनेसें तिनोंके वचन सुननेसें और तिनकों अपने इष्टदेव माननेसें क्या प्रयोजन है? क्या लाभ है? अपितु कुछभी नहीं है ॥ ३९ ॥

यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते॥
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा महेश्वरो वा नमस्तस्मै ॥ ४० ॥

व्याख्या–जिसके सर्वदोष, अर्थात् राग, द्वेष, मोह, अज्ञानादि अष्टादश दूषण नहीं है, अर्थात् क्षय होगए हैं, और सर्वगुण अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतचारित्र, अनंतवीर्यादि अनंत गुण जिसके विद्यमान हैं, अर्थात् दूषणोंके नष्ट होनेसें आत्माके अनंत गुण जिसके प्रकट हुए हैं, सो ब्रह्मा होवे वा विष्णु होवे वा महेश्वर होवे तिसकेतांई मेरा नमस्कार होवे ॥ ४० ॥

इतिश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्त्वनिर्णयान्तर्गतदेवतत्त्ववर्णनो नाम चतुर्थःस्तंभः ॥ ४ ॥

अथपञ्चमस्तम्भारम्भः ॥

चतुर्थस्तम्भमें देवतत्त्वस्वरूपकथन किया अथ पंचमस्तम्भमें लोक क्रियात्मविषयक वर्णन लिखते हैं.

लोकक्रियात्मतत्त्वे विवदन्ते वादिनो विभिन्नार्थम्॥
अविदितपूर्वं येषां स्याद्वादविनिश्चितं तत्त्वम् ॥ ४१ ॥

व्याख्या–जिनोंकों स्याद्वादकरके विशेष निश्चित करेहुए तत्त्वका ज्ञान नहीं हुआ है, वे वादी लोकक्रियात्मतत्त्वविषे अन्य अन्यतरेसें विवाद करते हैं, अज्ञातपूर्वकत्वात् ॥ ४१ ॥

इच्छंति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लोकम् ॥
कृत्स्नं लोकं महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या–सृष्टिके वाद करनेवाले सर्वलोकको (संपूर्ण जगत्को) कृत्रिम (रचाहुआ) मानते हैं, तिनमेंसें महेश्वरादिसें सृष्टिकीउत्पत्ति माननेवाले सृष्टिवादी जे हैं वे संपूर्ण लोकको आदि और अंतवाला मानतेहैं ४२

मानीश्वरजं केचित् केचित्सोमाग्निसंभवं लोकम्॥
द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत्केचिदिच्छन्ति ॥ ४३ ॥

व्याख्या–मानी ईश्वर (अहंकारी ईश्वर) मैं ईश्वर हूं ऐसे ईश्वरसें लोक उत्पन्न हुआ है, ऐसे कितनेक मानतेहैं, कितनेक सोम और अग्निसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, और कितनेक इस जगत्को द्रव्यादि षट्विकल्परूप मानते हैं, सोइ दिखाते हैं ॥ ४३ ॥

द्रव्यगुणकर्मसामान्ययुक्तविशेषं कणाशिनस्तत्त्वम् ॥
वैशेषिकमेतावत् जगदप्येतावदेतावत् ॥ ४४ ॥

व्याख्या–पृथिव्यादिनवप्रकारका द्रव्य, शब्दादि चौवीस गुण उतक्षेपादि पांच प्रकार कर्म, सामान्य द्विप्रकार, समवाय एक, और विशेष अनंत, यह षट्पदार्थ कणादमुनिका तत्त्व है, वैशेषिकमतभी इतनाही है, और जगत्भी इतनाही है ॥ ४४ ॥

इच्छन्ति काश्यपीयं केचित्सर्वं जगन्मनुष्याद्यम्॥
दक्षप्रजापतीयं त्रैलोक्यं केचिदिच्छन्ति ॥ ४५ ॥

व्याख्या–कितनेक सर्व जगत्कों कश्यपसंबंधि मानते हैं, अर्थात् यह जगत् कश्यपने रचा है. ‘तथाहि शतपथब्राह्मणे’—

सयत्कूर्म्मो नाम । एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत यत्सृजताकरोत् तद्यदकरोत्तस्मात्कूर्म्मः कश्यपो वै कूर्म्मस्तस्मादाहुः सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति–श–कां–७ अ–५ ब्रा–१ कं–५

[भावार्थः] (स यत्कूर्म्मो नाम) सो, जो कि, कूर्म्मनामसें वेदोंमें प्रसिद्ध है, सो (एतद्वै रूपं कृत्वा प्रजापतिः) एतत् अर्थात् कूर्म्मरूपको धारण-

करके प्रजापति–परमेश्वर (प्रजा असृजत) प्रजाको उत्पन्न करतेहुए (तद्यदकरोत्) सो प्रजापति, जिस्सें संपूर्ण जगत्को उत्पन्न करते भये हैं (तस्मात्कूर्म्मः) तिसीसे कूर्म्म कहे गये हैं (कश्यपो वै कूर्म्मः) वै–निश्चय करके वही कूर्म्म कश्यपनामसे कहे गये हैं (तस्मात्) तिसीसे (आहुः) संपूर्ण ऋषिलोक कहते हैं कि (सर्वाः प्रजाः काश्यप्यइति) संपूर्ण प्रजा कश्यपकीही है.

तथा कितनेक कहते हैं कि, यह सर्व जगत् मनुका रचा है. 'तथाहि शतपथब्राह्मणे'—

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्ति एवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥१॥

सहास्मैवाचमुवाच बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति कस्मान्मा पारयिष्यसीति। औघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढास्ततस्त्वा पारयितास्मीति कथन्ते भृतिरिति ॥ २ ॥

स होवाच। यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवन्त्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुंभ्यामाग्रे बिभरासि। स यदा तामतिवर्द्धा अथ कर्षूं खात्वा तस्या मा बिभरासि स यदा तामतिवर्द्धै अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३॥

स शश्वत् झष आस। स हि ज्येष्ठं वर्द्धते अथ तिथीं समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वां पारयितास्मीति ॥ ४ ॥

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार ॥ स यत्तिथीं तत्समां परिदिदेश ॥ तत्तिथीं समां नावमुपकल्प्योपासांचक्रे ॥ स औघ उत्थिते नावमापेदे तं स मत्स्य उपन्या पुप्लुवे तस्य शृंगे नावः पाशं प्रतिमुमोच ते नैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥

स होवाच अपीपरं वै त्वां वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व । तन्तु त्वामा-
गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकं समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति ॥ सह तावत्तावदेवान्ववससर्प तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघो हताः सर्वाः प्रजा निरुवाहाथेहमनुरेवैकः परिशिशिषे ॥६॥ सोर्चं श्राम्यं तपश्चचार प्रजाकामः
श–कां–१ अ–८ ब्रा–१ कं–१।२।३।४।५।६॥

[भाषार्थः] मनुजीके प्रति प्रातःकालमें भृत्यगण (नोकर) हस्त धोनेके, और तर्पणकेलिये, जलका आहरण करतेभये, तब मनुजीने जैसे इतरलोक वैदिककर्मनिष्ठपुरुष, इस अवनेग्यजलकों तर्पण करनेकेलिये अपने दोनों हाथों करके ग्रहण करते हैं, इसीप्रकार तर्पण करतेहुए मनुजीके हाथमें मछलीका बच्चा मत्स्य अकस्मात् आगया, तब उसको देखकर मनुजी शोचने लगे, तावदेव मनुजीके प्रति मत्स्य कहने लगा कि, हे मनु ! तूं मेरा पालन कर, और हे मनु ! मैं तेरा पालन करूंगा. तब उस मत्स्यकी मनुष्यवाणी सुन आश्चर्य मानकर मनुजी बोले कि, तूं काहेसें मेरी पालना करेगा. क्योंकि, तूं तो महा तुच्छ जीव है. तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन् ! तूं मुझे छोटासा मत समझ, यह संपूर्ण प्रजा जो कुछ तेरे देखनेमें आती है, सो यह सब बडेभारी जलोंके समूहमें डूब जायगी कुछभी न रहेगी, सो मैं तिस महाप्रलयकालके जलसमूहसें तेरेकों पालन करूंगा अर्थात् उस प्रलयकालके जलमें मैं तुझको नहीं डूबने दूंगा. तब मनुजी बोले कि, हे मत्स्य ! तेरा पालन किस प्रकारसें होगा, सोभी कृपा करके आपही बताइये.

तब मत्स्यने कहा कि, जबतक हम लोक छोटे रहतेहैं, तबतक बहुतसी पापी प्रजा धीवरादि हमारे मारनेवाली होती हैं, और बडे २ मत्स्य और बडी २ मछलियांही छोटे २ मत्स्य और छोटी २ मछलियांकों निगल जाते हैं, इससे प्रथम इस समय तो मेरेको अपने कमंडलुमें रखलीजिये, तब मनुजीने उस मत्स्यको कमंडलुमें जल भरकर रखलिया, सो मत्स्य जब उस कमुंडलुसेभी अधिक वढ गया, तदनंतर मनुने पूछा कि, अब आपको

मैं कैसें पालन करूं, तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! एक वडा गर्त्ता वा तलाव वा नदी खुदाकर उसमें मुझको पालन कर; सो मत्स्य जब नदीसें भी अधिक वढ गया तब फिर मनुजीने पूछा कि, अब मैं तुम्हारा कैसे पालन करूं? तब मत्स्यने कहा कि, हे राजन्! अब मुझको समुद्रमें छोड दीजिये, तब मैं नाशरहित हो जाउंगा. यह सुनकर मनुजीने उस नदीको खुदाकर समुद्रमें मिलादी तब वहमत्स्य समुद्रमें चला गया.

सो मत्स्य समुद्रमें जातेही शीघ्रही वडाभारी मत्स्य होगया, और सो फेर उससे भी वहुत वडा क्षण २ में बढने लगा; अथ तदनंतर वो मत्स्य राजा मनुसें जिस वर्षकी जिस तिथीको वो जलोंका समूह आनेवाला था, वतलाकर कहता हुआ कि, जब यह समय आवे तव हे राजन्! तुम एक उत्तम नाव वनवाकर, और उसनावमें सवार होकर, मेरी उपासना करनी; अर्थात् मेरा स्मरण करना. जब सो जलोंका समूह आवेगा, तब मैं तेरी नौकाकेपासही आजाउंगा, और तब फिर मैं तेरा पालन करूंगा.

मनुजी तदुक्तक्रमसे उस मत्स्यको धारणपोषणकर समुद्रमें पहुंचाते भये, सो मत्स्य जिस तिथि और जिस संवत्को जलसमूहका आगमन वता-गयेथे, मनुजीभी तिसी तिथि और संवत्में नाव वनवाकर उस मत्स्यरूप-भगवान्की उपासना करतेभये, तदनंतर सो मनु, उसजलोंके समूहको उठा देखकर नावमें आरूढ होजाते हुये, तब वह मत्स्य तिसमनजीके समीपही आकर ऊपरको उछले, तब मनुजीने उन मत्स्यभगवान्को उछ-लते हुए देखा, तब मनुजी तिसमत्स्यके शृंगमें अपनी नौकाका रस्सा डालदेते भये; तिस करके वह मत्स्य नौकाको खीचते हुए उत्तरगिरि (हिमालय) नामकपर्वतकेपास शीघ्रही पहुंचा देतेभये.

पर्वतके नीचे नौकाको पहुंचाकर मत्स्यजी कहते भये कि, हे राजन्! निश्चयकरके मैं तेरेको प्रलयजलमें डुवनेसें पालन करता भया हूं, अब तुम नौकाको इस वृक्षके साथ बांध दीजिये, तुम इस पर्वतके शिखरपर जब-तक जल रहे तबतक रहना, और इसरस्सेको मत खोलना, फिर जब कि यह जल पर्वतके नीचे जैसे २ उतरता जाय तैसे तैसेही तुमभी पर्व-

तकी नीचे उतरते आना, ऐसे मनुजीके प्रति समझाकर मत्स्यजी जलमें समागये और सो मनुजीभी, मत्स्यजीके कथनानुकूल जैसे २ जल उतरता गया तैसे २ उस जलके अनुकूलही पर्वतके नीचे २ उतरते आए, सोभी यह केवल पर्वतके ऊपरसे एक मनुकाही जो नीचे अवसर्पण अर्थात् अवतारण हुआ, सो एक मनुही उस सृष्टिमेंसें बाकी बचे, और संपूर्ण प्रजा-जलसमूहमें ही लय होगई; तब फिर मनुजीने प्रजाके रचनार्थ पर्य्यालोचन कर तपोनुष्ठान किया, इसीसें यह प्रजा, मानवीनामसें अबतक प्रसिद्ध है. इति ॥

और कितनेक ऐसा मानते हैं कि, यह तीनो लोक दक्ष प्रजापतिने करे हैं, अर्थात् तीनों दक्ष प्रजापतीने रचे हैं ॥ ४५ ॥

केचित्प्राहुर्मूर्तिस्त्रिधा गतिका हरिः शिवो ब्रह्मा ॥
शंभुर्बीजं जगतः कर्ता विष्णुः क्रिया ब्रह्मा ॥ ४६ ॥

व्याख्या—कितनेक कहते हैंकि एकही परमेश्वरकी मूर्तिकी तीन गतियां हैं; हरि (विष्णु) १, शिव २, और ब्रह्मा ३, तिनमें शिव तो जगत्का कारणरूप है, कर्त्ता विष्णु है, और क्रिया ब्रह्मा है ॥ ४६ ॥

वैष्णवं केचिदिच्छंति केचित् कालकृतं जगत् ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मविनिर्मितम् ॥ ४७ ॥

व्याख्या—कितनेक मानते हैं कि यह जगत् विष्णुमय, वा विष्णुका रचा हुआ है; और कितनेक कालकृत् मानते हैं और कितनेक कहते हैं कि, जो कुछ इस जगत्में हो रहा है, सो सर्व, ईश्वरकी प्रेरणासें ही हो रहा है और कितनेक कहते हैं, यह जगत् ब्रह्माने उत्पन्न करा है ॥ ४७ ॥

अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥
विज्ञप्तिमात्रं शून्यं च इतिशाक्यस्य निश्चयः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—अव्यक्त (प्रधान प्रकृति) तिस अव्यक्तसें सर्व जगत् उत्पन्न होता है, ऐसे कपिलके मतके माननेवाले मानते हैं; और शाक्यसु-

निके संतानीय विज्ञानाद्वैत क्षणिकरूप जगत् मानते हैं; और कितनेक तिसके संतानीय सर्व जगत्को शून्यही मानते हैं ॥ ४८ ॥

पुरुषप्रभवं केचित् दैवात् केचित् स्वभावतः॥
अक्षरात् क्षरितं केचित् केचिदण्डोद्भवं महत् ॥ ४९ ॥

व्याख्या–कितनेक, पुरुषसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, अथवा पुरुषमय सर्व जगत् मानते हैं, "पुरुष एवेदं सर्व मित्यादिवचनात्" और कितनेक दैवसें, और स्वभावसें जगत् उत्पन्न हुआ मानते हैं, और कितनेक अक्षर ब्रह्मके क्षरणेसें, अर्थात् मायावान् होनेसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, "एको बहुस्यासितिवचनात्" और कितनेक अंडेसें जगत्की उत्पत्ति मानते हैं ॥ ४९ ॥

यादृच्छिकमिदं सर्वं केचिद्भूतविकारजम् ॥
केचिच्चानेकरूपं तु बहुधा संप्रधाविताः ॥ ५० ॥

व्याख्या–कितनेक कहते हैं कि यह लोक यदृच्छासें अर्थात् स्वतोही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक कहते हैंकि यह जगत् भूतोंके विकारसें ही उत्पन्न हुआ है, और कितनेक जगत्को अनेकरूपही मानते हैं, ऐसे बहुतप्रकारके विकल्प सृष्टिविषयमें लोकोंनें अज्ञानवशसें कथन करे हैं॥ ५०॥

अब 'वैष्णवं केचिदिच्छन्ति' इत्यादिविकल्पोंमें जिस विकल्पवाला, जिस रीतिसें सृष्टिकी रचना मानता है, सो पृथक् २ संक्षेपमात्रसें ग्रंथकार दिखाते हैं–

"वैष्णवास्त्वाहुः॥" जले विष्णुः स्थले विष्णुराकाशे विष्णुमालिनि॥
विष्णुमालाकुले लोके नास्ति किंचिदवैष्णवम्॥५१॥

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ ५२ ॥

ऊर्द्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ॥
छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ ५३॥

"पुराणे चान्यथा॥" तस्मिन्नेकार्णवीभूते नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥
नष्टामरनरे चैव प्रनष्टोरगराक्षसे ॥ ५४ ॥
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविवर्जिते ॥
अचिन्त्यात्मा विभुस्तत्र शयानस्तप्यते तपः ॥५५॥
तत्र तस्य शयानस्य नाभौ पद्मं विनिर्गतम् ॥
तरुणरविमण्डलनिभं हृद्यं काञ्चनकर्णिकम् ॥ ५६ ॥

तस्मिंश्च पद्मे भगवान् दण्डकमण्डलुयज्ञोपवीतमृगचर्म-
वस्तुसंयुक्तो ब्रह्मा तत्रोत्पन्नस्तेन जगन्मातरः सृष्टाः ॥५७॥

अदितिः सुरसंघानां दितिरसुराणां मनुर्मनुष्याणाम्॥
विनता विहङ्गमानां माता विश्वप्रकाराणाम् ॥ ५८ ॥
कद्रूः सरीसृपाणां सुलसा माता तु नागजातीनाम्॥
सुरभिश्चतुः पदानामिला पुनः सर्वबीजानाम् ॥ ५९ ॥
प्रभवस्तासां विस्तरमुपागतः केचिदेवमिच्छन्ति ॥
केचिद्वदन्त्यवर्णं सृष्टं वर्णादिभिस्तेन ॥ ६० ॥

व्याख्या—वैष्णवमतवाले कहते हैं कि—जलमेंभी विष्णु है, स्थलमें भी विष्णु है, और आकाशमेंभी जो कुछ है, सो विष्णुकीही माला—पंक्ति है, सर्वलोक विष्णुहीकी माला—पंक्तिकरके आकुल अर्थात् भराहुआ है इसवास्ते इस जगत्में ऐसी कोइभी वस्तु नहीं है, जो कि, विष्णुका रूप नहीं है.

पांच वस्तुकरके सर्वतः सर्वजगे पाणय (हाथ) हैं, और सर्वजगे पग हैं जिसके, और सर्वत्र जिसके आंखें, शिर और मुख हैं, और जो सर्वजगे श्रवणेंद्रियोंकरके युक्त है, और जो सर्वलोकविषे सर्ववस्तुयोंको व्याप्य होके रहता है, अर्थात् सर्वओरसे प्राणियोंकी वृत्तियोंकरके हस्तादिउपाधि-योंकरके सर्वव्यवहारका स्थान होके रहता है.

'क्षराक्षराभ्यामुत्कृष्टः' ऐसा पुरुषोत्तम जिसका मूल है, अधइति तिससें अर्वाचीन कार्यरूप उपाधियां हिरण्यगर्भादि ग्रहण करीए है, वे सर्व शाखाकीतरें शाखा हैं जिसकी, ऐसा पीपलका वृक्ष प्रवाहरूपकरके अविच्छेद होनेसें अव्यय है, "ऊर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातन इत्यादिश्रुतिवचनात्" और, 'छंदासि यस्य पर्णानि' वेद जिसके पत्र हैं, धर्माधर्म प्रतिपादनद्वार करके छाया समान कर्मफलकरके संयुक्त होनेकरके संसाररूप वृक्षकों सर्वजीवोंके आश्रयभूत होनेसें पत्रोंसमान वेद है, जो ऐसे पीपलके वृक्षको जानता है, सोइ वेदोंके अर्थोंको जानता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

पूर्वोक्त वर्णन प्रायः वेदानुसार किया, अब पुराणानुसार वर्णन करते हैं. तिस संसारके एकार्णवीभूत हुआं, स्थावरजंगमके नष्ट हुए, अमर (देवतायों) के नष्ट हुए, उरगराक्षसोंके नष्ट हुए, केवल गव्हरीभूत महाभूतकरके रहित, ऐसे जलमें, अर्थात् जलके ऊपर, अचिंत्य आत्मावाला विभु, विष्णु सूताहुआ तप तपता है; तहां तिस सूतेहुए विष्णुकी नाभिसें तत्कालके उदय हुए सूर्य मंडलके समान मनोहर सुवर्णकी कर्णिवाला पद्म (कमल) निकला, तिस कमलमें भगवान् ब्रह्मा, कमंडलु यज्ञोपवीत मृगचर्मासनादि वस्तुयोंसहित उत्पन्न हुआ, तिस ब्रह्मानें जगत्की मातायें पैदा करीं; सोइ दिखाते हैं. स्वर्गवासिदेवतायोंकी माता अदिति १, असुरोंकी माता दिति २, मनुष्योंकी मनु ३, पक्षीयोंकी विनता ४, सर्प्पोंकी कद्रू ५, नागजातियोंकी माता सुलसा ६, चौपायोंकी सुरभि ७, और सर्वबीजोंकी माता इला (पृथिवी) ८ ॥ तिनोंसें-पूर्वोक्त मातायोंसें उत्पन्न हुई प्रजा विस्तारको प्राप्त हुई, कितनेक ऐसें मानते हैं और कितनेक ऐसें कहते हैं कि, *प्रथम सर्वप्रजा वर्णरहित थी, पीछे तिसने-ब्रह्माने वर्णादिकरके सृष्टि रची* ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥

"कालवादिनश्चाहुः॥" कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः॥
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥६१॥

व्याख्या-कालवादी कहते हैं कि-कालही जीवोंको उत्पन्न करता है, और कालही प्रजाका संहार करता है, जीवोंके सूतेहुए रक्षा करणरूप

कालही जागता है, इसवास्ते कालही उल्लंघन करना दुष्कर है ॥ ६१ ॥
" ईश्वरकारणिकाश्चाहुः ॥ "

प्रकृतीनां यथा राजा रक्षार्थमिह चोद्यतः
तथा विश्वस्य विश्वात्मा स जागर्ति महेश्वरः ॥ ६२ ॥
अन्यो जंतुरनीशो यमात्मनः सुखदुःखयोः ॥
ईश्वरप्रेरितो गच्छेत् स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ ६३ ॥
सूक्ष्मोचिन्त्योविकरणगणः सर्ववित् सर्वकर्ता
योगाभ्यासादमलिनधियां योगिनां ध्यानगम्यः ॥
चन्द्रार्काग्निक्षितिजलमरुत्दीक्षिताकाशमूर्ति
ध्येयो नित्यं शमसुखरतैरीश्वरः सिद्धिकामैः ॥ ६४ ॥

व्याख्या–ईश्वरको कारण माननेवाले वादी कहते हैं कि–जैसें प्रजाकी रक्षावास्ते राजा उद्यत है, तैसेही सर्वजगत्की रक्षावास्ते विश्वात्मा ईश्वर जागता है, अर्थात् सर्वजगत्का वंदोवस्त महेश्वर करता है; क्योंकि, अन्यजीव सर्व अपने आपको कर्मफल सुखदुःखोंको देनेसामर्थ्य नहीं है, किंतु, ईश्वरकी प्रेरणासेंही जीव स्वर्ग वा नरकको जाताहै; इसवास्ते शमरूप सुखोंमें रक्त सिद्धिके कामी पुरुषोंको निरंतर ईश्वरकाही ध्यान करना योग्य है. ईश्वर भगवान् कैसा है? सूक्ष्म है, अचिंत्य जिसका कोइभी चिंतवन नहीं करसक्ता है, इंद्रियोंके समूहसें रहित है, सर्वज्ञ है, सर्वका कर्ता है, योगाभ्याससे निर्मल वुद्धिवाले योगियोंके ध्यानसे जानाजाता है, चंद्र, सूर्य, अग्नि, पृथिवी, जल, पवन, दीक्षित आकाशवत् मूर्ति है जिसकी, अर्थात् सर्व व्यापक है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

" ब्रह्मवादिनश्चाहुः ॥ आसिदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६५ ॥
ततःस्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६६ ॥

लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥६७॥

व्याख्या–ब्रह्मवादी कहते हैं कि–इदं यह जगत् तममें स्थित लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्म. करके अव्याकृतथी अर्थात् अलग नहीं थी, इसवास्तेही अप्रज्ञातं प्रत्यक्ष नहीं था, अलक्षणम् अनुमानका विषयभी नहीं था, अप्रतर्क्यम् तर्कयितुमशक्यम् तर्ककरनेके योग्य नहीं था, वाचक स्थूलशब्दके अभावसें, इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते सर्व ओरसे सुप्तकीतरें स्वकार्य करणेमें असमर्थ था. तदनंतर क्या होता भया ? सो कहे हैं; प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा अव्यक्त वाह्यकरण अगोचर इदं यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंको प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेको स्थलरूपकरके प्रकाश करता भया, कैसा है स्वयंभू परमात्मा ? वृत्तौजाः सृष्टि रचनेका सामर्थ्य जिसका अव्याहत है, और जो तमोनुदः प्रकृतिका प्रेरक है, सो स्वयंभू परमात्मा भूलोकोंकी वृद्धिवास्ते मुख, बाहु, ऊरु और पगोंसें ब्राह्मण १, क्षत्रिय २, वैश्य ३, और शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

"सांख्याश्चाहुः" ॥ पञ्चविधमहाभूतं नानाविधदेहनामसंस्थानम् ॥
अव्यक्तसमुत्थानं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥६८॥
सर्वगतं सामान्यं सर्वेषामादिकारणं नित्यम् ॥
सूक्ष्ममलिङ्गमचेतनमाक्रियमेकं प्रधानाख्यम् ॥ ६९ ॥
प्रकृतेर्महांस्ततोहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः ॥
तस्मादपि षोडशकात् पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ ७० ॥
मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः पञ्च ॥
षोडशकश्च विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिःपुरुषः ॥ ७१ ॥
गुणलक्षणो न यस्मात् कार्यकारणलक्षणोपि नो यस्मात् ॥
तस्मादन्यः पुरुषःफलभोक्ता चेत्यकर्त्ता च ॥७२॥

प्रवर्त्तमानान् प्रकृतेरिमान् गुणान्
तमोवृतत्वाद्विपरीतचेतनः ॥
अहंकरोमीत्यबुधोऽपि गम्यते
तृणस्य कुब्जीकरणेप्यनीश्वरः ॥ ७३ ॥

व्याख्या—सांख्यमतवाले कहते हैं कि—पांच प्रकारके महाभूत, नानाप्रकारका देह, नाम, संस्थान (आकार) येह सर्व अव्यक्त प्रधानसेंही समुत्थान (उत्पन्न) होते हैं, अर्थात् जगदुत्पत्ति प्रधानसेंही मानते हैं. अब प्रधान अपरनाम प्रकृतिका स्वरूप दिखाते हैं, जो प्रधान है, सो सर्वगत है, सामान्यरूप है, सर्व कार्योंका आदिकारण है, नित्य है, सूक्ष्म है, लिंगरहित है, अचेतन है, अक्रिय है, एक है, ऐसा प्रधाननामा तत्त्व है. तिस प्रधान (प्रकृति) सें महान्, अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होतीहै, तिसबुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसें सोलांका गण उत्पन्न होता है, तिन सोलांके गणमेंसें पांच तन्मात्रसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं; मूलप्रकृति जो है सो अविकृति है, महदादिप्रकृतिकी विकृतियां है, सोलां जो है सो विकार है, और पच्चीसमा तत्त्व पुरुष है, सो न प्रकृति है और न विकृति है; जिसहेतुसें पुरुषमें गुणलक्षण नहीं है, और कार्यकारण लक्षणभी नहीं है, तिसहेतुसें प्रकृतिसें पुरुष अन्य है, कर्मके फलका भोक्ता है, परंतु कर्त्ता नहीं है; "अकर्त्ता निर्गुणो भोक्ता आत्मा कपिलदर्शने" इतिवचनात् ॥

प्रकृतिसें प्रवर्त्तमान हुए इन पूर्वोक्त गुणोंको तमोवृतरूप होनेसें, चेतन इन गुणोंसें विपरीतस्वरूप है, इसवास्ते 'अहं करोमि' मैं कर्त्ता हूं ऐसा तो मूर्खभी मानता है; क्यों कि, कर्त्तापणा जो है, सो तो अहंकारको है, और पुरुष तो तृणमात्रकोभी वांका करणे समर्थ नहीं है ॥ ६८॥ ६९ ॥ ७० ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ ७३ ॥ —५—

"शाक्याश्चाहुः ॥" विज्ञप्तिमात्रमेवैतदसमर्थावभासनात् ॥
यथा जैन करिष्येहं कोशकीटादिदर्शनम् ॥७४॥
क्रोधशोकमदोन्मादकामदोषाद्युपद्रुताः ॥
अभूतानि च पश्यन्ति पुरतोवस्थितानि च ॥७५॥

व्याख्या—बौद्धमती कहते हैं कि—जो कुछ दीखता है, सो सर्व विज्ञानमात्र है; क्यों कि, जो दीखता है सो असमर्थ होके भासन होता है, अर्थात् युक्तिप्रमाणसें अपने स्वरूपको धारणे समर्थ नहीं है. हे जैन! जैसें तूं कहता है कि, मैं कोशकीटकादिका दर्शन करता हूं, वा करूंगा, परंतु यह जो तुझको दीखता है, सो उपाधिकरके भान होता है, नतु यथार्थ स्वरूपसें सोइ दिखावे है. क्रोध, शोक, उन्माद, काम, दोषादिकरके पीडित हुएथके पुरतः (आगे) अवस्थितपदार्थोंको देखते हैं, वे न होतेहुएको देखते हैं, न तु सद्भूतोंको ॥ ७४ ॥ ७५ ॥—६—

"पुरुषवादिनश्चाहुः॥" पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं। उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति। यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु अन्तिके यदन्तरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यतो यस्मात् परं नापरमस्ति किंचित्। ऽणीयोऽ स्वस्ति कश्चिद्वृक्ष इव स्तब्धोदिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं॥
एक एव हि भूतात्मा तदा सर्वं प्रलीयते॥
द्वावेव पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च॥ १॥
क्षरश्च सर्वभूतानि कूटस्थोक्षर एव च॥

"अपरेप्याहुः॥" विद्यमानेषु शास्त्रेषु ध्रियमाणेषु वक्तृषु॥
आत्मानं ये न जानन्ति ते वै आत्महता नराः॥ १॥
आत्मा वै देवता सर्वं सर्वमात्मन्यवस्थितम्॥
आत्मा हि जनयत्येष कर्मयोगं शरीरिणाम्॥ २॥
आत्मा धाता विधाता च आत्मा च सुखदुःखयोः॥
आत्मा स्वर्गश्च नरक आत्मा सर्वमिदं जगत्॥३॥
न कर्त्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजते प्रभुः॥
स्वकर्मफलसंयोगः स्वभावाद्धि प्रवर्त्तते॥ ४॥

आत्मज्ञानस्वभावेन स्वयं मननसंभवात् ॥
स्वकर्मणश्च संभूतेः स्वयंभूर्जीव उच्यते ॥ ५॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ॥
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ ६ ॥
अच्छेद्योयमभेद्योयं निरुपाख्योयमुच्यते ॥
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ ७॥
सोक्षरः स च भूतात्मा संप्रदायः स उच्यते ॥
स प्राणः स परं ब्रह्म सो हंसः पुरुषश्च सः ॥ ८॥
नान्यस्तस्मात्परो द्रष्टा श्रोता मन्तापि वा भवेत्॥
न कर्त्ता न च भोक्तास्ति वक्ता नैवात्र विद्यते ॥ ९॥
चेतनोध्यवसायेन कर्मणा स निबध्यते
ततोभवस्तस्य भवेत्तदभावात्परं पदम् ॥ १० ॥
उद्धरेद्दीनमात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥
आत्मा चैवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ११ ॥
संतुष्टानि च मित्राणि संक्रुद्धाश्चैव शत्रवः ॥
नहि मे तत् करिष्यन्ति यन्न पूर्वं कृतं मया ॥ १२॥
शुभाशुभानि कर्माणि स्वयं कुर्वन्ति देहिनः ॥
स्वयमेवोपकुर्वन्ति दुःखानि च सुखानि च ॥१३॥
वने रणे शत्रुजनस्य मध्ये
महार्णवे पर्वत मस्तके वा ॥
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा
रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ॥ १४ ॥

व्याख्या—पुरुषवादी कहते हैं कि—पुरुष, आत्मा, एवशब्द अवधारणमें है, सो कर्म और प्रधानादिके व्यवच्छेदार्थ है, यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान

सचेतनाचेतन वस्तु, इद्‌ःवाक्यालंकारमें, जो कुछ अतीत कालमें हुवा, और जो आगे होवेगा, मुक्ति और संसार सो सर्व पुरुषही है; उतशब्द अपिशब्दार्थे और अपिशब्द समुच्चयविषे है। अमृतस्य–अमरणभव (मोक्ष) का ईशानः प्रभु है। यदिति यच्चेति च शब्दके लोप होनेसें जो अन्नेन-अहारकरके अतिरोहाति–अतिशयकरके वृद्धिको प्राप्त होता है, यदेजति-जो चलता है पशुआदि, जो नहीं चलता है पर्वतादि, जो दूर है मेरुआदि-जो निकट है, उशब्द अवधारणमें है, सो सर्व पुरुषही है; जो अंतर इस चेतनाचेतन पदार्थके बीचमें, और जो कुछ इसके बाह्यसें है, सो सर्व पुरुषही है; जिस पुरुषकेपरे अपर कोइ किंचित् त्राणरूप कल्याणकारी अतिचतुर नहीं है. तथा जो एक, आकाश, स्वर्गमें, वा रहता है, तिसही पुरुषकरके यह सर्व पूर्ण भराहुआ है. जब एकला पुरुषही रहजाता है, तब सर्व जगत् तिसपुरुषमेंही लय होजाता है, क्यों कि दोही पुरुष जगत्में है. एक क्षर–नाश होनेवाला, और दूसरा अक्षर–अविनाशी है; जितने जगत्में भूत हैं, वे सर्व क्षर हैं, और जो कूटस्थ है, सो अक्षर है ॥ १ ॥

औरभी कहते हैं कि—शास्त्रोंके विद्यमान हुए, और वक्तार्योंके धारण करतेहुएभी जे पुरुष अपने आत्माको नहीं जानते हैं, वे पुरुष निश्चयकरकेआत्महत (आत्मघाती) हैं. आत्माही देवता है, आत्मामेंही सर्व वस्तु व्यवस्थित है; आत्माही सर्व शरीरवाले जीवोंके कर्मका संयोग उत्पन्न करता है.। आत्माही धाता है, आत्माही विधाता है, आत्माही सुखदुःखमें है, आत्माही स्वर्ग है, आत्माही नरक है, और यह सर्व जगत् आत्माही है.। ईश्वर, लोकको न कर्त्तापणा रचता है, और न कर्मोंको रचता है, किंतु अपने करे कर्मफलका संयोग स्वभावसेंही प्रवर्त्तता है.। आत्मज्ञान स्वभावकरके आपही मनन होनेका संभव होनेसें अपने कर्मोंसेंही जीव जगत्में उत्पन्न होता है, इसवास्ते जीवको स्वयंभू कहते हैं.। इसआत्माको शस्त्र छेदन नहीं करसक्के हैं, अग्नि दाह नहीं करसक्का है, पाणी गीला नही करसक्का है, और पवन शोषण नहीं करसक्का है.। इसवास्ते यह आत्मा अच्छेद्य है, अभेद्य है, पूरापूरा स्वरूपकथन नहीं करसक्के हैं इसवास्ते निरुपाख्य है, नित्य है, सर्वगत (सर्वव्यापक) है, स्थाणु (स्थिरस्वभाव) अर्थात् रूपांतरापत्तिकरके

शून्य है, अचल पूर्वरूपापरित्यागी है और सनातन (अनादि) है. । सो आत्माही, अक्षर, भूतात्मा, संप्रदाय, प्राण, परब्रह्म, हंस और पुरुषादि कहनेमें आता है. । आत्मासें अन्य कोई देखनेवाला, सुननेवाला, मनन करनेवाला, कर्त्ता, भोक्ता और वक्ता, नहीं है; किंतु, आत्माही है. । आत्मा चैतन्यरूप है, सो चेतन आत्मा अध्यवसायकरके कर्मोंसें बंधाता है, तव आत्माको संसार होता है, और कर्मबंधके अभावसें परंपद मोक्ष प्राप्त होता है.। आत्मा आपही अपने दीनात्माका उद्धार करता है, और आपही अपनेको दुःखोंमें गेरता है, आत्माही आत्माका वंधु है, और आत्माही आत्माका रिपु (शत्रु) है. । संतुष्ट मित्र, और क्रोधायमान शत्रु, जो सुखदुःख पूर्वे मैंने नही करा है, सो सुख दुःख मेरेको नही करेंगे. । क्यों कि, शुभाशुभकर्मोंको देहधारी आपही करते हैं, और आपही तिन कर्मोंको सुखदुःखरूपकरके भोगते हैं.। वनमें, संग्राममें, शत्रुजनोंके वीचमें, समुद्रमें, पर्वतके शिखरऊपर, सूतेको, प्रमत्तको, विषमआपदामें पडेको, इत्यादि अवस्थावाले आत्माकी पूर्वले करे हुए पुण्यही सर्वत्र रक्षा करते हैं. ॥ १।२।३।४।५।६।७।८।९।१०।११।१२।१३।१४ ॥

"दैववादिनश्चाहुः ॥"

स्वच्छन्दतो न हि धनं न गुणो न विद्या
नाप्येव धर्मचरणं न सुखं न दुःखम् ॥
आरुह्य सारथिवशेन कृतान्तयानं
दैवं यतो नयति तेन पथा व्रजामि ॥ १ ॥
यथायथा पूर्वकृतस्य कर्मणः
फलं निधानस्थमिवावतिष्ठते ॥
तथातथा तत्प्रतिपादनोद्यता
प्रदीपहस्तेव मतिः प्रवर्त्तते ॥ २ ॥
विधिर्विधानं नियतिः स्वभावः
कालोग्रहा ईश्वरकर्मदैवम् ॥

भाग्यानि कर्माणियमः कृतान्तः
पर्यायनामानि पुराकृतस्य ॥ ३ ॥
यत्तत्पुराकृतं कर्म्म न स्मरन्तीह मानवाः
तदिदं पाण्डवज्येष्ठ दैवमित्यभिधीयते ॥ ४ ॥

व्याख्या—दैववादी ऐसें कहते हैं—स्व (अपणे), छंदे (अभिप्राय), सें धन, गुण, विद्या, धर्माचरण, सुख और दुःखादि नही होते हैं; किंतु कालरूप यान ऊपर चढा दैव, तिसके वशसें जहां दैव लेजाता है, तहांही मैं जाता हूं.। जैसें २ पूर्वकृत कर्मोंका फल निधानकीतरें रहता है, पूर्वकृतनिकाचितकर्मका नामही दैव है, तैसें २ तिसके प्रतिपादनमें उद्यत हुआ, प्रदीप हस्तकीतरें मति प्रवर्त्ते है.। विधि १, विधान २, नियति ३, स्वभाव ४, काल ५, ग्रह ६, ईश्वर ७, कर्म ८, दैव ९, भाग्य १०, कर्म ११, यम १२, और कृतांत १३, यह सर्व पूर्वकृत कर्मोकेही पर्याय नाम हैं.। जिस कारणसें ते पूर्वकृत कर्म यहां मनुष्य नही स्मरण करते है, तिस कारणसें, यह, हे पांडवज्येष्ठ ! दैव कहा जाता है.॥ १।२।३।४॥

"स्वभाववादिनश्चाहुः॥"

कः कण्टकानां प्रकरोति तीक्ष्णं
विचित्रितां वा मृगपक्षिणां च ॥
स्वभावतः सर्वमिदं प्रवृत्तं
न कामचारोस्ति कुतः प्रयत्नः ॥ १ ॥
बदर्याः कण्टकस्तीक्ष्णो ऋजुरेकश्च कुंचितः॥
फलं च वर्त्तुलं तस्या वद केन विनिर्मितम् ॥२॥

व्याख्या—स्वभाववादी ऐसें कहते हैं—कौन पुरुष कंटकोंको तीक्ष्ण करता है? और मृगपक्षीयोंका विचित्र रंग विरंगादि स्वरूप कौन करता है? अपितु कोइभी नही करता है, स्वभावसेंही सर्व प्रवृत्त होते हैं, इसवास्ते अपनी इच्छासें कुछभी नही होता है, इसवास्ते पुरुषका प्रयत्न ठीक नही है.। बेरीका एक कांटा ऋजु (सरल) और तीक्ष्ण, और एक

कुंचित (वांका) और फल वर्त्तुल (गोल), हे प्रियवर ! कहो स्वभावविना येह किसने बनाए (रचे) हैं ? ॥ १ । २ ॥

"अक्षरवादिनश्चाहुः ॥"

अक्षरात् क्षरितः कालस्तस्माद्व्यापक इष्यते ॥
व्यापकादिप्रकृत्यन्तः सैव सृष्टिः प्रचक्ष्यते ॥ १॥

" अपरेप्याहुः ॥ "

अक्षरांशस्ततो वायुस्तस्मात्तेजस्ततो जलम् ॥
जलात् प्रसूता पृथिवी भूतानामेषसंभवः ॥ २ ॥

व्याख्या–अक्षरवादी कहते हैं–अक्षरसें क्षरका काल उत्पन्न हुआ, तिस हेतुसें कालको व्यापक माना है, व्यापकादि प्रकृतिपर्यंत सोही सृष्टि कहते हैं.

अपर ऐसे कहते हैं–प्रथम अक्षरांश, तिससें वायु उत्पन्न हुआ, तिस वायुसें तेज(अग्नि)उत्पन्न हुआ, अग्निसें जल उत्पन्न हुआ, और जलसें पृथिवी उत्पन्न हुइ, इन भूतोंका ऐसें संभव हुआ है ॥ १ । २ ॥

"अंडवादिनश्चाहुः ॥"

नारायणः परोऽव्यक्तादण्डमव्यक्तसंभवम् ॥
अण्डस्यान्तस्त्वमी भेदाःसप्तद्वीपा च मेदिनी ॥ १ ॥
गर्भोदकं समुद्राश्च जरायुश्चापि पर्वताः ॥
तस्मिन्नण्डेत्वमी लोकाः सप्त सप्त प्रतिष्ठिताः ॥ २ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ ३ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे––इत्यादि––

व्याख्या–अंडवादी कहते हैं–नारायण भगवान् परमअव्यक्तसें, व्यक्त अंडा उत्पन्न हुआ, और तिस अंडेके अंदर यह भेद जो आगे कहते हैं, सातद्वीपवाली पृथिवी, गर्भोदक वर्षणेवाला जल, समुद्र, जरायु मनुष्यादि, और पर्वत, तिस अंडेविषे ये लोक सात २ अर्थात् चौदह भुवन प्रति-

ष्टित है, सो भगवान् तिस अंडेमें एक वर्ष रहकरके अपने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करता हुआ, तिन दोनों टुकडोंमें ऊपरले टुकडेसें आकाश और दूसरे टुकडेसें भूमि निर्माण करता भया. इत्यादि॥ १। २॥ ३॥

"अहेतुवादिनश्चाहुः॥"

हेतुरहिता भवन्ति हि भावाः प्रतिसमयभाविनश्चित्राः॥
भावादृते न द्रव्यं संभवरहितं खपुष्पमिव॥१॥

व्याख्या—अहेतुवादी कहते हैं—[प्रायः अहेतुवादी, परिणामवादी, और नियतिवादी, येह यदृच्छावादीहीके भेद मालुम होते हैं] प्रतिसमय होनेवाले विचित्र प्रकारके जे भाव हैं, वे सर्व अहेतुसेंही उत्पन्न होते हैं, और भावसें रहित द्रव्यका संभव नहींहै, आकाशके पुष्पकीतरें. ॥ १॥

"परिणामवादिनश्चाहुः॥"

प्रतिसमयं परिणामः प्रत्यात्मगतश्च सर्व भावानाम्॥
संभवति नेच्छयापि स्वेच्छाक्रमवर्त्तिनी यस्मात्॥१॥

व्याख्या—परिणामवादी कहते हैं—समय २ प्रति परिणाम, प्रतिआत्मगत आत्मा २ प्रति प्राप्त हुआ, सर्वभावोंको संभव होता है, इच्छासें कुछभी नही होता है; क्योंकि स्वेच्छा क्रमवर्तिनी है, और परिणाम तो युगपत् सर्व पदार्थोंमें है॥ १॥

"नियतिवादिनश्चाहुः॥"

प्राप्तव्यो नियतिबलाश्रयेण योऽर्थः
सोऽवश्यं भवति नृणां शुभोऽशुभो वा॥
भूतानां महति कृतेऽपि हि प्रयत्ने
नाभाव्यं भवति न भाविनोस्ति नाशः॥१॥

सत्यं पिशाचाः स्म वने वसामो भेरीं कराग्रैरपि न स्पृशामः॥
अयं च वादः प्रथितः पृथिव्यां भेरीं पिशाचाः किल ताडयन्ति॥२॥

व्याख्या—नियतिवादी कहते हैं—नियतिबलाश्रयकरके जो अर्थ प्राप्तव्यप्राप्तहोने योग्य है, सो शुभ वा अशुभ अर्थ पुरुषोंको अवश्यमेव होता है,

जीवोंके बहुत प्रयत्नके करनेसेंभी, जो नही होनहार है, वो कदापि नही होता है; और जो होनहार है तिसका कदापि नाश नही होता है. यथा हम साचे पिशाच हैं, और वनमें वसते हैं, भेरीको हम हस्ताग्रोंकरके भी स्पर्श नही करते हैं, तोभी यह वाद पृथिवीमें प्रसिद्ध है कि, निश्चयकरके भेरीको पिशाचही ताडना करते हैं (बजाते हैं) ॥ १। २ ॥

"भूतवादिनश्चाहुः ॥"

पृथिव्यापस्तेजोवायुरिति तत्त्वानि तत्समुदायशरीरेंद्रियविषयसंज्ञामदशक्तिवच्चैतन्यंजलबुद्बुदवज्जीवो चैतन्यविशिष्ट कायःपुरुष इति॥

भौतिकानि शरीराणि विषयाः कारणानि च ॥
तथापि मन्दैरन्यस्य कर्त्तृत्वमुपदिश्यते ॥ १ ॥
एतावानेव लोकोयं यावानिन्द्रियगोचरः ॥
भद्रे वृकपदं ह्येतत् यद्वदन्त्यबहुश्रुताः ॥ २ ॥
तपांसि यातनाश्चित्रा संयमो भोगवंचना ॥
अग्निहोत्रादिकं कर्म बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥ ३ ॥

व्याख्या—भूतवादी कहते हैं—पृथिवी १, पाणी २, अग्नि ३, और वायु ४, येह चार तत्त्व हैं; तिनका समुदाय सोही शरीरेंद्रिय विषय संज्ञा है, और मदशक्तिकीतरें चैतन्य उत्पन्न होता है, जलके बुदबुदकीतरें जीव है, अचैतन्य विशिष्ट काया है, सोही पुरुष है, इति. ॥ ऐसें पूर्वोक्त भौतिक शरीर है, वेही विषय और कारण है, तोभी मूर्ख लोक अन्य ईश्वरादिको कर्त्तापणा कहते हैं. । यह लोक इतनाही है, जितना इंद्रियोंके गोचरविषय है; हे भद्रे ! जैसा यह जूठा कल्पित करा हुआ वृक (भेडीये) का पग है, अबहुश्रुत (अज्ञानी लोक) ऐसेही नरक स्वर्ग जूठे कल्पन करके मूर्खलोकोंको डराते हैं. । तप करना है, सो निःकेवल अनेक प्रकारकी पीडामात्र है, और जो संयम है, सो भोगोंकी वंचनारूप है, अग्निहोत्रादिक जे कर्म्म हैं, वे बालकोंकी क्रीडाकीतरें मालुम होते हैं. ॥ १।२।३ ॥

"अनेकवादिनश्चाहुः॥"

कारणानि विभिन्नानि कार्याणि च यतः पृथक्॥
तस्मात्रिष्वपि कालेषु नैव कर्मास्ति निश्चयः॥ १ ॥

व्याख्या—अनेकवादी कहते हैं—कारणभी भिन्न है, और कार्यभी भिन्न है, तिसवास्ते तीनोही कालोंविषे कर्मोंकी आस्ति नही है ॥ १ ॥इतिपूर्वपक्षः॥

इसपूर्वपक्षमें परवादीयोंके अभिमत पक्ष लिखतेहुए श्रीहरिभद्रसूरिजीनें, जो जो ऋग्वेद यजुर्वेदादिकोंकी श्रुतियां, तथा मनु गीताप्रमुख ग्रंथोंके अनुसार थोडे २ व्यस्त श्लोक लिखे हैं, तिसका कारण यह है कि, पूर्वपक्षोंके श्लोक बहुत हैं सर्व लिखते तो ग्रंथ भारी हो जाता, इसवास्ते प्रतीकमात्रसें तिन सर्वमतवादीयोंके स्वपक्षस्थापनके सर्वश्लोक जान लेने.

प्रथम इस अवसर्प्पिणीकालमें श्रीऋषभदेवजीनेही, अनंतनयात्मक सर्वव्यापक स्याद्वादरसकूपिकाके रससमानसें सर्वजीवादितत्त्वोंका निरूपण करा था, तिसमेसें किंचिन्मात्र सार लेके सांख्यमत, और सांख्यमतका किंचित् आशय लेके वेदांत, योग, मनुस्मृति, गीताप्रमुख शास्त्र ऋषिब्राह्मणोंने रचे. जैसें आर्यवेदोंकी उत्पत्ति, और तिनका व्यवच्छेद, और अनार्यवेदोंकी उत्पत्ति हुई, तथा आर्यब्राह्मणोंकी, और अनार्यब्राह्मणोंकी उत्पत्ति, इत्यादि वर्णन हम जैनतत्त्वादर्शनामाग्रंथमें लिख आए हैं; तहांसे जानना. और प्रायः इस ग्रंथमें जे जे मत पूर्वपक्षमें लिखे हैं, वेभी सर्व जैनतत्त्वादर्शग्रंथमें खंडनरूपसें लिख दीए हैं; इहां तो केवल जो श्रीहरीभद्रसूरिजीने सामान्यप्रकारे समुच्चय पूर्वपक्षोंका खंडन लिखा है, सोही लिखेंगे. वाचकवर्गको विदित होवे कि, वेदकेसाथ स्मृति नही मिलती है, और स्मृतियोंकेसाथ पुराण नही मिलते हैं, इसवास्ते यह सर्वपुस्तक सर्वज्ञके कथन करे हुए नही हैं, परस्परविरुद्धत्वात्. इसवास्ते पूर्वोक्त मतोंवालोंने जगत्विषयक जो जो कथन करा है, सो सर्व तिनोंका अज्ञानविजृंभित है. क्योंकि, इस जगत्का यथार्थस्वरूप पूर्वोक्त मतवालोंमेसें किसीनेभी नही जाना है. "तत्तं ते नाभिजाणंति नविनासी कयाइवि इतिवचनप्रामाण्यात्" ॥

अब ग्रंथकारने जो सामान्यसें पूर्वपक्षका खंडन लिखा है, सोही लिखतेहैं.

तेषामेवाविनिर्ज्ञातमसदृशं सृष्टिवादिनामिष्टम् ॥
एतद्युक्तिविरुद्धं यथातथा संप्रवक्ष्यामि ॥ १ ॥
सदसज्जगदुत्पत्तिः पूर्वस्मात्कारणात्स्वतो नास्ति ॥
असतोपि नास्ति कर्त्ता सदसद्भ्यां संभवाभावात् २ ॥
यदसत्तस्योत्पत्तिस्त्रिष्वपि कालेषु निश्चितं नास्ति ॥
खरशृंगमुदाहरणं तस्मात्स्वाभाविको लोकः ॥ ३॥
मूर्त्तामूर्त्तं द्रव्यं सर्वं न विनाशमेति नान्यत्वम् ॥
यद्वेत्येतत्प्रायः पर्यायविनाशो जैनानाम् ॥ ४ ॥
काश्यपदक्षादीनां यदभिप्रायेण जायते लोकः ॥
लोकाभावे तेषां अस्तित्वं संस्थितिः कुत्र ॥ ५ ॥

व्याख्या—तिन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंने इस जगत्का स्वरूप यथार्थ जाना-हुआ नही है, और जो उनकों सृष्टिका स्वरूप इष्ट है, सोभी एकसरीषा नही है, कोइ कैसें माने है, और कोइ किसीतरें माने है, सो सर्व प्रायः ऊपर पूर्वपक्षमें लिख आए हैं; और जो इन पूर्वपक्षीयोंका मानना है, सोभी युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, जैसें युक्तिप्रमाणसे विरुद्ध है, तैसें, मैं(श्रीहरिभद्रसूरि) सम्यक्प्रकारसें संक्षेपरूप कथन करूंगा. । जगत्की उत्पत्ति सत्कारणसें है वा असत्कारणसें है ? सत्कारणसेंभी नही है, और असत्कारणसेंभी नही है; और सृष्टिका कर्त्ता सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें संभव नही हो सक्ता है, प्रमाणके अभावसें, सोही दिखाते हैं. । जेकर कारण सत्रूप है, तव तो कारण अपने स्वरूपको कदापि नही त्यागेगा, जव कारण अपने स्वरूपको नही त्यागेगा, तव कार्यरूप जगत् कैसें उत्पन्न होवेगा ? जेकर कारण अपने स्वरूपको त्यागके कार्य उत्पन्न करेगा, तव तो कारणका सत्स्वरूप नही रहेगा, तथा जगदुत्पत्तिसें पहिलां जो जगत्का कारण था, सो नित्यस्वरूपवाला था, वा, अनित्यस्वरूपवाला था ? जेकर नित्य माना-जायगा, तव तो तीनोंही कालमें जगत्की उत्पत्ति नही होवेगी, " अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकरूपं नित्यं ॥ "

यह नित्यका लक्षण है. जब कारण अपने स्वरूपसें न क्षरेगा, अर्थात् नाश नही होवेगा, और नवीन स्वरूप धारण नही करेगा, तब कार्यको कैसें उत्पन्न करेगा? क्योंकि, मृत्पिंड, स्थास, शिवक, कोश, कशूलादि पूर्वरूपोंको त्यागकेही उत्तर रूपोंको प्राप्त होता है; जेकर कहोगे कारण अनित्य है, तब तो सोभी कारण अन्यकारणसें उत्पन्न होना चाहिए, सोभी कारण अन्यकारणसें ऐसे माने अनवस्थादूषण होवे है; इसवास्ते सत् और नित्यकारणसें जगदुत्पत्ति कैसें हो सक्तीहै? अपितु कदापि नही हो सक्ती है.

और एक यह वडा दूषण जगदुत्पत्ति माननेमें है कि, जब जगत्ही नही था, तब जगत्की उत्पत्तिका कारण और जगत्कर्त्ता ईश्वर, ये दोनों किस स्थानमें रहते थे? क्योंकि कोईभी स्थान रहनेवाला नही था. जेकर कहोगे आकाशमें रहते थे, तो, यह कहनाभी मिथ्या है; क्योंकि, सांख्यशास्त्रमें, तथा वेदोंमें, आकाशकोभी उत्पत्तिवाला माना है, जो कि आगे लिखेंगे. जब आकाशही नही उत्पन्न हुआ था, तब जगत्का सत् नित्यकारण, और कर्त्ता ये दोनों कहां रहते थे?

एक अन्यबात यह है कि, आकाशनाम शून्य पोलाडका है, जब शून्य पोलाडरूप आकाश नहीं था तो, क्या इहां कोइ निग्गर घनरूप था? क्योंकि, सप्रतिपक्ष जो वस्तु है, तिनमें जहां एक होवेगा, तहां दूसरेका अवश्य अभाव होवेगा, अंधकारउद्योतवत्. जब घनरूप था, सो परमाणु आदि चारों महाभूतोंके सिवाय अन्य कोइ वस्तु सिद्ध नही होसक्ती है, और परमाणु आदि चार महाभूत आकाशविना कदापि किसी जगे नही रहसक्ते हैं, इसवास्ते सत्कारणसें वा नित्यानित्यकारणोंसें जगत्की उत्पत्ति जे मानते हैं, तिनके घटमें अज्ञान विजृंभितके विना अन्य कोइ कारण नही है.

तथा जगत्का जो कर्त्ता माना है, सो सत्स्वरूप है कि, असत्स्वरूप है? जेकर सत्स्वरूप है तो, फेर नित्य है कि, अनित्य है? इत्यादि

प्रायः कारणवालेंही सर्व विकल्प जान लेने. तथा जब जगतूही नही था, तब जगतका कर्ता कहां रहताथा? जेकर कहे सर्व जगें व्यापक था, तो, हे प्यारे! जब कोइ जगाही नही थी, तो, व्यापक किसमें था? क्योंकि, विना आकाशके कोइभी जड चैतन्य वस्तु नही रह सक्ती है, यह प्रमाणसिद्ध है; और अप्रमाणिक कथनकों सत्य करके मानना, यह बुद्धिमानोंका काम नही है. जेकर असत्कारण, और असतूकर्त्ताके माननेसें जगदुत्पत्ति होवे, तव तो खरशृंगसेंभी पुरुष उत्पन्न होना चाहिए; सोही ग्रंथकार दिखावे है. जिसवास्ते असत् जो है, तिसकी उत्पत्ति तीनोही कालमें निश्चित नही होसक्ती है, इस कथनमें खरशृंगका दृष्टांत है, जैसें खरशृंग स्वरूपसें असत् है, तिस्सें कोइभी कार्य उत्पन्न नही होसक्ता है, तैसेंही असत्कारण और असत्कर्त्तासेंभी कोइ कार्य उत्पन्न नही होसक्ता है; तिसकारणसें प्रवाह अपेक्षा अनादि स्वभावसिद्ध लोक है, नतु ईश्वरादिरचित. ॥

मूर्त्तामूर्त्त जो द्रव्य है, परमाणु और परमाणुजन्य जो कार्यद्रव्य है, सर्व मूर्त्तद्रव्य है; जिसमें रूप, रस, गंध, स्पर्श होवे, तिसकों मूर्तद्रव्य कहते हैं; और आत्मा आकाशादि अमूर्त द्रव्य है. ये दोनो स्वरूप, द्रव्योंके सर्वथा कदापि विनाश नही होते हैं, और न अन्यत्व, अर्थात् मूर्तद्रव्य कदापि अमूर्त्तभावकों प्राप्त नही होवे है, और न अमूर्त कदापि मूर्त भावकों प्राप्त होवे है; किंतु, यह जो जगत्की उत्पत्ति विनाश है, सो पर्यायरूपकरके जैन मानते हैं, न तु द्रव्यरूपकरके. । काश्यपदक्षादिकोंके, आदिशब्दसें समलब्रह्महिरण्यगर्भब्रह्मादिके अभिप्रायसें जेकर जगत्की उत्पत्ति होवे, तव लोकके अभावसें तिनका काश्यप, दक्ष, हिरण्यगर्भादिकोंका अस्तिपणा, और रहना कहां था? कहांहीभी नही था. ॥ १।२।३।४।५ ॥

सर्वं धराम्बराद्यं याति विनाशं यदा तदा लोकः ॥
किं भवति बुद्धिरव्यक्तमाहितं तस्य किं रूपम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी आकाशादि जिस अवसरमें नष्ट हो जावेंगे, तब इस लोकका क्या स्वरूप होवेगा? अव्यक्तस्थापितबुद्धिका क्या स्वरूप होवेगा? तात्पर्य यह है कि, सांख्यमतवालोंके प्रकृतिपुरुष, और वेदांतियोंका अव्यक्त ब्रह्म, इन सर्वका रहनाभी आकाशादिके अभावसें प्रमाणसिद्ध नही होवेगा. ॥ ६ ॥

यदमूर्त्तं मूर्त्तं वा स्वलक्षणं विद्यते स्वलक्षणतः ॥
तद्व्यक्तं निर्दिष्टं सर्वं सर्वोत्तमादेशैः ॥ ७ ॥

व्याख्या—जिसपदार्थका मूर्त्त वा अमूर्त्त स्वलक्षण है, वो पदार्थ अपने लक्षणसें विद्यमान है, सो व्यक्त है, ऐसा सर्वोत्तमादेशोंकरके कहा है. ॥ ७ ॥

द्रव्यं रूप्यमरूपि च यदिहास्ति हि तत् स्वलक्षणं सर्वम् ॥
तल्लक्षणं नयस्य तु तद्वंध्यापुत्रवद्ग्राह्यम् ॥ ८ ॥

व्याख्या—इस जगत्में जो रूपि वा अरूपि द्रव्य है, सो स्व २ लक्षणकरके विद्यमान है, जिसद्रव्यमें स्वलक्षण नही है, वो द्रव्य वंध्यापुत्रवत् जानना, अर्थात् वो द्रव्यही नही है, ॥ ८ ॥

यद्युत्पत्तिर्न भवति तुरगविषाणस्य खरविषाणाग्रात् ॥
उत्पत्तिरभूतेभ्यो ध्रुवं तथा नास्ति भूतानाम् ॥ ९ ॥

व्याख्या—जैसें, खरशृंगाग्रसें घोडेके शृंगकी उत्पत्ति नही होती है, तैसेंही मूलद्रव्यके स्वलक्षणयुक्तके न हुए अविद्यमानकारणोंसे निश्चय भूतोंकी उत्पत्ति नही है ॥ ९ ॥

तत्र व्यक्तमलिङ्गादव्यक्तादुद्भविष्यति कदाचित् ॥
सोमादीनां तु न संभवोस्ति यदि न सन्ति भूतानि ॥ १० ॥
असति महाभूतगणे तेषामेव तनुसंभवो नास्ति ॥
पशुपतिदिनपतिवत्सोमाण्डव्यपितामहहरीणाम् ॥ ११ ॥
बुद्धिमनो भेदानां देहाभावे च संभवो नास्ति ॥

ईहापोहाभावस्तदभावे संभवाभावः ॥ १२ ॥
तदभावेस्ति न चिन्ता चिन्ताभावे क्रियागुणो नाऽस्ति ॥
कर्तृत्वमनुपपन्नं क्रियागुणानामसंभवतः ॥ १३ ॥

व्याख्या–तहां अलिंगवाले अव्यक्तसें व्यक्तस्वरूपकी तों कदाचित् उत्पत्ति होसक्ती है, दधिवत्; परंतु यदि भूतही नही है तो, सोमादिकोंकाभी संभव नही है. क्योंकि, जेकर शरीरके मूलकारणभूतही नही है तो, सोमादिकोंके शरीरका संभव कैसें होगा? । जब महाभूतोंका समूहही नही है तो, तिनके पशुपति (महादेव,) दिनपति, वत्स, मांडव्य, पितामह, ब्रह्मा, विष्णुके शरीरकाभी संभव नही होसक्ता है. । और देहके अभाव हुए बुद्धि, और मनके भेदोंका संभव नही है. क्योंकि, देहके विना मन और बुद्धिका संभव किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होसक्ता है, और बुद्धि मनके अभावसें ईहाअपोहका अभाव है, ईहानाम विचार करणेका है, और अपोहानाम निश्चय करणेके सन्मुख होनेका है, बुद्धिमनके अभावसें इन दोनोंका संभव नही है.? इहाअपोहाके अभावसें चिंता नही हो सक्ती है, और चिंताके अभावसें क्रियागुण नही है, क्रियागुणके संभव न होनेसें कर्त्तापणाकी अनुपपत्ति है; जब क्रियागुण नही है, तव कर्त्तापणा किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है. ॥ १०।११।१२।१३ ॥

तेन कृतं यदि च जगत् स कृतः केनाकृतोथ बुद्धिर्वः ॥
विज्ञेयः सत्येवं भवप्रपंचोऽपि तद्वदिह ॥ १४ ॥

व्याख्या—जेकर यह जगत् तिस ईश्वरने रचा है तो, वो ईश्वर किसने रचा है? अथ जेकर तुमारी ऐसी बुद्धि होवे कि, ईश्वर तो किसीनेभी नही रचा है तो, ऐसेही जगत्का प्रपंचभी जानना चाहिए, अर्थात् जगत्भी ईश्वरकीतरें किसीने नही रचा है, किंतु प्रवाहसें अनादि है; ऐसे क्यों नही मानते हैं? ॥ १४ ॥

अभ्युपगम्येदानीं जगतः सृष्टिं वदामहे नास्ति ॥
पुरुषार्थैः कृतकृत्यो न करोत्याप्तो जगत्कलुषम् ॥ १५ ॥

अपकारः प्रेताद्यैः कस्तस्य कृतः सुरादिभिः किं वा ॥
संयोजितायदेते सुखदुःखाभ्यामहेतुभ्याम् ॥ १६ ॥
तुल्ये सति सामर्थ्ये किं न कृतो वित्तसंयुतो लोकः ॥
येन कृतो बहुदुःखो जन्मजरामृत्युपथि लोकः ॥ १७ ॥
यदि तेन कृतो लोको भूयोपि किमस्य संक्षयः क्रियते ॥
उत्पादितः किमर्थं यदि संक्षपणीय एवासौ ॥ १८ ॥
कः संक्षिप्तेन गुणः को वा सृष्टेन तस्य लोकेन ॥
को वा जन्मादिकृतं दुःखं संप्रापितैः सत्वैः ॥ १९ ॥
भूतानुगतशरीरं कुम्भाद्यं कुम्भकृत् यथा कृत्वा ॥
असकृद्भिनत्ति तद्वत् कर्त्ता भूतानि निस्त्रृंशः ॥ २० ॥
भवसंभवदुःखकरं निःकारणवैरिणं सदा जगतः ॥
कस्तं व्रजेच्छरण्यं भूरि श्रेयोर्थमतिपापम् ॥ २१ ॥
स्वकृतं जगत् क्षपयतस्तस्य न बन्धोस्ति बुद्धिरन्येषाम् ॥
किं न भवति पुत्रवधे बन्धः पितुरुग्रचित्तस्य ॥ २२ ॥
जगतः प्रागुत्पत्तिर्यदि कर्त्तुर्विग्रहात् कथं तद्वत् ॥
अधुना न भवति तस्यैव विग्रहात्संभवस्तस्याः ॥ २३ ॥
विविधासु यथायोनिषु सत्वानां सांप्रतं समुत्पत्तिः
नित्यं तथैव सिद्धा प्राहुर्लोकस्थितिविधिज्ञाः ॥ २४ ॥
एवं विचार्यमाणाः सृष्टिविशेषाः परस्परविरुद्धाः ॥
हरिहरविचारतुल्या युक्तिविहीनाः परित्याज्याः ॥ २५ ॥

व्याख्या—अब हम अपने सिद्धांतको अंगीकारकरके कहते हैं; जगत्की उत्पत्ति, ईश्वरने नही करी है; क्योंकि, सर्व पुरुषार्थकरके जो ईश्वर कृतकृत्य है, सो ईश्वर आप्त, मलीन जगत्को नही करता है. जेकर करे तो, कृतकृत्य नही, आप्त नही, वीतराग नही, तब तो, वो ईश्वरही नही.।

प्रेतादिकोंने तिस ईश्वरका क्या बुरा करा है? जिस्सें तिनको अधमपणे उत्पन्न करे; और देवतायोंने क्या ईश्वरऊपर उपकार करा? जिस्से तिनकों उत्तमपणे उत्पन्न करे; असुरोंकों दुःखमें और देवतायोंकों सुखमें विनाही हेतु जोड दिए, क्या एही ईश्वरकी न्यायशीलता है?। जेकर ईश्वर पक्षपातरहित, न्यायी, दयालु, सर्वसामर्थ्य है तो, सर्व लोकोंकों वित्त (धन,) कलत्र, पुत्रादिकरके तुल्य सुखी क्यों नही करे? और किसवास्ते जन्म जरा मृत्युके पथिकलोक रच दिए? जेकर तिस ईश्वरनेही लोक रचा है, तो फेर तिसका क्षय किसवास्ते करता है? जेकर क्षयही करणा था तो जगत्की उत्पत्ति करणेकी क्या आवश्यकता थी? तिस जगत्के क्षय करणेसें ईश्वरकों किसगुणकी प्राप्ति हुई? और तिसके रचनेसें क्या लाभ हुआ? और जीवोंकों जन्म देके दुःखी करनेसें तिस ईश्वरकों क्या लाभ हुआ?। जैसें कुंभकार कुंभादि करता है, और फेर तिनकों भांगता है, तैसेही ईश्वर जीवानुगतशरीर रचता है, और भांगता है, तब तो वो ईश्वर बडाही निर्दय है, ऐसा सिद्ध होवेगा. । जगत्—संभव दुःखोंका करनेवाला (देनेवाला), और जगद्वासीयोंका विनाहीकारण सदा वैरी (शत्रु,) ऐसे अतिपापरूप ईश्वरके शरणकों कौन बुद्धिमान् कल्याणार्थी अपने कल्याणकेवास्ते प्राप्त होवे? अपितु कोइ नही. । कितनेक लोकोंकी ऐसी बुद्धि होती है कि, अपने करे जगत्के क्षय करणेवाले तिस ईश्वरकों कर्मबंध नही है, यह कथन उनोंका अज्ञान विजृंभित है; क्या निर्दयचित्तवाले पिताकों पुत्रके वध करनेमें पापका बंध नही होता है? अवश्यमेव होता है; ऐसेंही ईश्वरकोंभी जगत् संहार करते हुए अवश्यमेव पापका बंध होवे है. । जगत्की उत्पत्ति प्रथम जेकर शरीरवाले कर्त्ताने करी है तो, कैसें तिसकीतरें अधुना संप्रतिकालमें जगत्की उत्पत्ति देहवाले कर्त्तासें होती हुई नही दीख पडती है? तात्पर्य यह है कि, प्रथम जेकर सृष्टि देहधारी ईश्वरने करी है तो, संप्रतिकालमें जो नवीननवीन सृष्टि उत्पन्न हो रही है, तिसकाभी कर्त्ता देहधारी ईश्वर हमकों दीखना चाहिए, परंतु दीखता नही है; और सृष्टि अपने कार-

णोंसें हो रही है; और अमूर्त्त देहरहित ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता किसीप्रमाणसेंभी सिद्ध नही होता है, इसवास्ते जगत् ईश्वरका रचा हुआ नही है ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० । २१ । २२ । २३ ॥

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर जगत्का रचनेवाला नही, तो फेर इस जगत्की व्यवस्था कैसें माननी चाहिए ?

उत्तरपक्षः—नानाप्रकारकी योनियोंमें संप्रतिकालमें अपने २ कारणोंसें जैसें जीवोंकी उत्पत्ति हो रही है, और काल स्वभाव नियतिकर्म उद्यम जड चैतन्यमें प्रेरणशक्तिद्वारा जैसें इस जगत्की व्यवस्था हो रही है, ऐसेंही नित्यप्रवाहसें अनादि अनंत सिद्ध है. जे लोक स्थितिके विधिके जाननेवाले सर्वज्ञ है, तिनका ऐसा कथन है. और युक्तिप्रमाणसेंभी ऐसाही सिद्ध होवे है. ॥ २४ ॥

ऐसें विचार करतां थकां सृष्टिकी रचनामें विशेष कथन है, वे परस्परविरुद्ध है, ते सर्व ऊपर लिख दीखाए है. जैसें हरिहर विरंचि प्रमुख सरागी देवोंमें परमेश्वरपणा प्रमाणयुक्तिसें सिद्ध नही होता है, तैसेंही प्रमाणयुक्तिसें जगत् ईश्वरकृत सिद्ध नही होता है, इसवास्ते ये सृष्टिरचनाके कथन युक्तिविहीन है; तिस्सेंही बुद्धिमानोंकों त्यागने योग्य है.॥२५॥

मुक्तो वामुक्तो वास्ति तत्र मूर्त्तोथ वा जगत्कर्त्ता ॥
सदसद्वापि करोति हि न युज्यते सर्वथाकरणम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—जगत्का कर्त्ता ईश्वर मुक्तरूप वा अमुक्तरूप, मूर्त्त वा अमुर्त्त, सत्रूप वा असत्रूप, किसीतरेंभी सिद्ध नही होता है. ॥ २६ ॥

मुक्तो न करोति जगन्न कर्मणा बध्यते विगतरागः ॥
रागादियुतः सतनुर्निबध्यते कर्मणावश्यम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—जो मुक्तरूप है, सो तो जगत्कों नही रचेगा; प्रयोजनाभावात्. और जो वीतराग है, सो कर्मबंधनोंसें नही बंधाता है; जो रागसंयुक्त शरीरसहित है, सो अवश्यमेव कर्मोंकरके बंधाता है. ॥ २७ ॥

ज्ञानचरित्रादिगुणैः संसिद्धाः शाश्वताः शिवाः सिद्धौ ॥
तनुकरणकर्म्मरहिता बहवस्तेषां प्रभुर्नास्ति ॥ २८ ॥

व्याख्या—ज्ञानदर्शनचारित्रादिगुणोंकरके जे संसिद्ध है, और जे मुक्तिमें शाश्वत शिवरूप है, और शरीर इंद्रियकर्मोंकरके रहित है, ऐसे अनंत आत्मा, सामान्यरूपसें एक, और विशेषरूपकरके अनंत, ऐसे तिन सिद्धोंका कोइ प्रभु ईश्वर नही है, किंतु आपही ज्योतिःस्वरूप है. ॥ २८ ॥

कर्म्मजनितं प्रभुत्वं संसारे क्षेत्रतश्च तद्भिन्नम् ॥
प्रभुरेकस्तनुरहितः कर्त्ता च न विद्यते लोके ॥ २९ ॥

व्याख्या—कर्मसंयुक्तकर्मजनित जो प्रभुपणा है, सो संसारसें है, राजादि; और क्षेत्रसें विचारिए तो, उर्द्ध अधो तिर्यक् लोकमें है; परंतु इस जगतसें भिन्न, कर्मरहित, शरीररहित, सर्वव्यापक, सृष्टिका कर्त्ता, एक ईश्वर इसलोकमें नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त विशेषणोंवाला ईश्वर प्रमाणसें सिद्ध नही होता है. ॥ २९ ॥

अवगाहाकृतिरूपैः स्थैर्यभावेन शाश्वतेलोके ॥
कृतकत्वमनित्यत्वं मेर्वादीनां न संवहति ॥ ३० ॥

व्याख्या—अवगाहकरके, आकृतिकरके, रूपकरके, स्थैर्यभावकरके, इस शाश्वते लोकमें कृतकत्वपणा, अनित्यपणा, मेरुआदिपदार्थोंको नही प्राप्त होता है. "तेषां शाश्वतत्वान्नित्यत्वाच्च" तिनोंको शाश्वते और प्रवाहरूपसें नित्य होनेसें. ॥ ३० ॥

गुणवृद्धिहानिचित्रात् कश्चिन्महान् कृतो न लोकश्च ॥
इति सर्वमिदं प्राहुः त्रिष्वपि लोकेषु सर्वविदः ॥ ३१ ॥

व्याख्या—गुणवृद्धिहानिके विचित्र होनेसें समय २ उत्पादविनाशादिके होनेसें, कोइ जगेभी महान्का करा हुआ लोक नही है. ऐसें सर्व यह तीनों लोकमें, तीनोंही कालमें, सर्वज्ञ भगवान् कहते है. ॥ ३१ ॥

अद्धाचक्रमनीशं ज्योतिश्चक्रं च जीवचक्रं च ॥
नित्यं पुनंति लोकानुभावकर्मानुभावाभ्याम् ॥ ३२ ॥

व्याख्या—अद्धाचक्र (कालचक्र) जो लोकमें वर्त्तता है, सो ईश्वरकृत नही है, ऐसेंही ज्योतिश्चक्र और जीवचक्र जानने; ये तीनों चक्र नित्य सदाही लोककी अनादि मर्यादाकरके, और जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके अनुभावसामर्थ्यकरके, प्रवर्त्त रहे है, नतु ईश्वरकी प्रेरणासें. ॥ ३२ ॥

चंद्रादित्यसमुद्रास्त्रिष्वपि लोकेषु नातिवर्त्तंते ॥
प्रकृतिप्रमाणमात्मायमित्युवाचोत्तमज्ञाता ॥ ३३ ॥

व्याख्या—चंद्र, सूर्य, समुद्र, ये, तीनो लोकमें जो अपनी मर्यादाका उल्लंघन नही करते है, यह भी अनादि लोकस्थिति, और जीवोंके कर्मोंहीके प्रभावसें है. और प्रकृति अर्थात् देहप्रमाणव्यापक यह आत्मा है, ऐसें उत्तमज्ञानवान् कहते भए हैं ॥ ३३ ॥

सर्वाः पृथिव्यश्च समुद्रशैलाः सस्वर्गसिद्धालयमंतरिक्षम् ॥
अकृत्रिमः शास्वत एष लोक अतो बहिर्यत्तदलौकिकं तु ॥ ३४॥

व्याख्या—सर्व पृथिवी, समुद्र, पर्वत, स्वर्ग (देवलोक) और सिद्धालय मुक्ताकाशचिदाकाशसहित अंतरिक्ष आकाश, ये सर्व, तिनमें कितनेक तो स्वरूपसें अनादि है, और कितनेक प्रवाहसें अनादि है, इसवास्ते ईश्वरकृत नही है; किंतु यह लोक शाश्वत है, और इस लोकसें जो बाहिर है, सो अलोक है, निःकेवल आकाशमात्र है. ॥ ३४ ॥

प्रकृतीश्वरौ विधानं कालः सृष्टिर्विधिश्च दैवं च ॥
इति नामधनो लोकः स्वकर्म्मतः संसरत्यवशः ॥ ३५ ॥

व्याख्या—प्रकृति, ईश्वर, विधान, काल, सृष्टि, विधि, दैव ये सर्व लोकके नाम है; इसलोकमें संसारी जीव अपने २ कर्मोंकरके भ्रमण करता हैं, नतु स्ववशसें. ॥ ३५ ॥

कर्मानुभावनिर्म्मितनैकाकृतिजीवजातिगहनस्य ॥
लोकस्यास्य न पर्यवसानं नैवादिभावश्च ॥ ३६ ॥

व्याख्या—कर्मोंके अनुभावसमर्थसें जीवोंकी अनेक आकृति बन रही है, तिस अनेकाकृतीसंयुक्त जीवोंकी जाति, योनियोंकरके गहन इसलोकका कदापि पर्यवसान (छेहडा) नही है, और आदिपणाभी नही है.॥३६॥

तस्मादनाद्यनिधनं व्यसनोरुभीमं
जन्मारदोषदृढनेम्यतिरागतुम्ब्यम् ॥
घोरंस्वकर्मपवनेरितलोकचक्रं
भ्राम्यत्यनारतमिदं हि किमीश्वरेण॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृत लोकतत्त्वनिर्णयः ॥

व्याख्या—तिसवास्ते अनादि, अनंत और कष्टोंकरके भयजनक जन्मरूप अरे! दोषरूप दृढ चक्रकी नेमीधारा है, रागरूप तुंव घोर नाभी है, अपने २ कर्मरूप पवनका प्रेरा हुआ लोकचक्र निरंतर भ्रमण करता है, तो फेर ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना करनेसें क्या लाभ है? कुछभी नही है. निःकेवल अज्ञानियोंके अज्ञानकी लीला है, जो कि, जगत्का कर्त्ता ईश्वर मानना ॥ ३७ ॥

इति श्रीमद्धरिभद्रसूरिकृतलोकतत्त्वनिर्णयस्य वालाववोधः ॥

श्रीमत्तपोगणेशेन विजयानंदसूरिणा ॥
कृतोवालाववोधोयं परोपकृतिहेतवे ॥ १ ॥
इंदुवाणांकचन्द्राब्दे मधुमासे सिते दिले ॥
त्रयोदश्यां तिथौ वुधघस्रे पूर्त्तिमगात्तथा ॥ २ ॥

सर्व श्री संघसें हम नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, महादेवस्तोत्र, अयोगव्यवच्छेद, और लोकतत्त्वनिर्णय नामक ग्रंथोंकी टीका तो हमकों मिली नही है, केवल मूलमात्र पुस्तक मिले हैं, सोभी प्रायः अशुद्धसें है, परंतु कितनेक मुनियोंकी प्रार्थनासें यह वालाववोधरूप किंचिन्मात्र भाषा लिखी है; इनमें ग्रंथकारके अभिप्रायसें जो कुछ अन्यथा लिखा होवे, वा जिनाज्ञासें विरुद्ध लिखा होवे तो, मिथ्यादुष्कृत हमकों होवे;

और जो हमारी इस बालक्रीडामें भूल होवे, सो सुज्ञ जनोंकों सुधार-लेनी चाहिए.

ऊपर हम अन्य २ मतोंवाले जिसतरें सृष्टि अर्थात् जगत्की उत्पत्ति मानते हैं, सो लिख आए हैं. अब प्रेक्षावानोंकों विचार करना चाहिए कि, इन पूर्वोक्त सृष्टिवादीयोंमेंसें सत्य कथन किसका है, और मिथ्या कथन किसका है?

पूर्वपक्षः—जो तुमने सृष्टिविषयक मत लिखे हैं वे सर्वमतधारियोंकी कल्पना मिथ्या है, परंतु मनुस्मृति उपनिषद्वेदादिमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, सो सर्व सत्य और माननीय है, अन्य सर्वमतावलंबियोंने अपने २ मतोंमें मिथ्या कल्पनामात्र लिखा है. विशेषतः वेदोंमें जो क्रम है, सो अधिकतर माननीय है, क्योंकि वेदोंमें जो कथन है, सो ब्रह्माजीका है.

उत्तरपक्षः—मनुस्मृत्यादिका सृष्टिक्रम यदि सत्य होवे, और युक्तिप्रमाणसे अबाधित होवे तो, ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो तिसकों न माने? परंतु हे प्यारे! मनुस्मृत्यादिमें जो सृष्टिक्रम है, सोभी परस्परविरुद्ध है, और युक्तिप्रमाणसें बाधित है, विशेषतः वेदोंका और वेदोंमें जो कथन है तिस्सेंही यह सिद्ध होता है कि, वेद ईश्वरकृत नही है, जो कि, आगे किंचिन्मात्र लिखेंगे. ॥

इति श्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे लोकतत्त्वनिर्णयांतर्गतसृष्टिवर्णनो नाम पंचमः स्तंभः ॥ ५ ॥

॥ अथ षष्ठस्तम्भारम्भः ॥

पंचमस्तंभमें लोकतत्त्वनिर्णयांतर्गत वेदस्मृत्याद्यनुसार संक्षेपरूप सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथ षष्ठस्तंभमें कुछक विस्तारसें करते हैं. परं च इस हमारे लेखकों पक्षपात छोडके वाचक जन सूक्ष्मबुद्धिसें विचार करेंगे तो उनकों सत्यासत्य कथन यथार्थ विदित हो जावेगा; और जो अपने वंशपरंपरासें चली आई रूढीकाही पक्ष करेंगे, तब तो तिनकों

सत्य मोक्षमार्गकी प्राप्ति नही होवेगी.

अथ प्रथम मनुस्मृतिमें जैसे सृष्टिका क्रम लिखा है, सोही लिख दिखाते हैं.

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ॥
अप्रतर्क्यमिव ज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ५ ॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् ॥
महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः ॥ ६ ॥
योसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः ॥
सर्वभूतमयोचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ ॥ ७ ॥
सोभिध्यायशरीरात्स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः ॥
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत् ॥ ८ ॥
तदण्डमभवद्धैमं सहस्रांशुसमप्रभम् ॥
तस्मिन् जज्ञे स्वयं ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ॥ ९ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः ॥
ता यदस्यायनं पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १० ॥
यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते ॥ ११ ॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषित्वा परिवत्सरम् ॥
स्वयमेवात्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद् द्विधा ॥ १२ ॥
ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे ॥
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥ १३ ॥
उद्बबर्हात्मनश्चैव मनः सदसदात्मकम् ॥
मनसश्चाप्यहंकारमभिमन्तारमीश्वरम् ॥ १४ ॥
महान्तमेव चात्मानं सर्वाणि त्रिगुणानि च ॥
विषयाणां ग्रहीतॄणि शनैः पञ्चेन्द्रियाणि च ॥ १५ ॥

तेषां त्ववयवान् सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् ॥
सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥ १६ ॥
यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् ॥
तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥ १७ ॥
तदाविशन्ति भूतानि महान्ति सह कर्मभिः ॥
मनश्चावयवैः सूक्ष्मैःसर्वभूतकृदव्ययम् ॥ १८ ॥
तेषामिदं तु सप्तानां पुरुषाणां महौजसाम् ॥
सूक्ष्माभ्यो मूर्तिमात्राभ्यः संभवत्यव्ययाद्व्ययम् ॥१९॥
आद्याद्यस्य गुणं त्वेषामवाप्नोति परः परः ॥
योयो यावतिथश्चैषां सस तावद्गुणः स्मृतः ॥ २० ॥
सर्वेषां तु सनामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ॥
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ २१ ॥
कर्मात्मनां च देवानां सोऽसृजत् प्राणिनां प्रभुः ॥
साध्यानां च गणं सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् ॥ २२ ॥
अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ॥
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्यजुःसामलक्षणम् ॥ २३ ॥
कालं कालविभक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्तथा ॥
सरितः सागरान् शैलान् समानि विषमाणि च ॥ २४ ॥
तपो वाचं रतिं चैव कामं च क्रोधमेव च ॥
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छन्निमाः प्रजाः ॥ २५ ॥
कर्मणां च विवेकार्थं धर्माधर्मौ व्यवेचयत् ॥
द्वन्द्वैरयोजयच्चेमाः सुखदुःखादिभिः प्रजाः ॥ २६ ॥
अण्व्योमात्रा विनाशिन्यो दशार्द्धानां तु याः स्मृताः ॥
ताभिः सार्द्धमिदं सर्वं संभवत्यनुपूर्वशः ॥ २७ ॥

यं तु कर्माणि यस्मिन् स न्ययुङ्क्त प्रथमं प्रभुः ॥
स तदेव स्वयं भेजे सृज्यमानः पुनः पुनः ॥ २८ ॥
हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ॥
यद्यस्य सोऽदधात् सर्गे तत्तस्य स्वयमाविशेत् ॥ २९ ॥
यथर्त्तुलिङ्गान्यृतवः स्वयमेवर्त्तुपर्यये ॥
स्वानि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा कर्माणि देहिनः ॥ ३० ॥
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ॥
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ ३१ ॥
द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषो ऽभवत् ॥
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराजमसृजत् प्रभुः ॥ ३२ ॥
तपस्तप्त्वाऽसृजद्यं तु स स्वयं पुरुषो विराट् ॥
तं मां वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं द्विजसत्तमाः ॥ ३३ ॥
अहं प्रजाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥
पतीन् प्रजानामसृजं महर्षीनादितो दश ॥ ३४ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् ॥
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च ॥ ३५ ॥
एते मनूंस्तु सप्तान्यानसृजन् भूरितेजसः ॥
देवान् देवनिकायांश्च महर्षींश्चामितौजसः ॥ ३६ ॥
यक्षरक्षःपिशाचांश्च गन्धर्वाप्सरसोऽसुरान् ॥
नागान् सर्पान् सुपर्णांश्च पितॄणां च पृथग्गणान्॥३७॥
विद्युतोशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च ॥
उल्कानिर्घातकेतूंश्च ज्योतींष्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥
किन्नरान् वानरान् मत्स्यान् विविधांश्च विहंगमान् ॥
पशून् मृगान् मनुष्यांश्च व्यालांश्चोभयतोदतः ॥३९॥

कृमिकीटपतङ्गांश्च यूकामक्षिकमत्कुणम् ॥
सर्वं च दंशमशकं स्थावरं च पृथग्विधम् ॥४०॥
एवमेतैरिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः॥
यथा कर्मतपोयोगात् सृष्टं स्थावरजंगमम्॥४१॥म०अ०१

व्याख्या—(इदं) यह जगत्, तममें (स्थित) लीन था, प्रलयकालमें सूक्ष्मरूपकरके प्रकृतिमें लीन था, प्रकृतिभी ब्रह्मात्मकरके (अव्याकृत) अलग नही थी, इसवास्तेही (अप्रज्ञातं) प्रत्यक्ष नही था,(अलक्षणं) अनुमानका विषयभी नही था, (अप्रतर्क्यं) तर्कयितुमशक्यं तदा वाचक स्थूलशब्दके अभावसें इसवास्तेही अविज्ञेय था, अर्थापत्तिकेभी अगोचर था, इसवास्ते (प्रसुप्तमिव सर्वतः) सर्वओरसें सूतेकीतरें स्वकार्य करणे असमर्थ था. ॥ ५ ॥ अथ क्या होता भया सो कहे हैं. तव प्रलयके अवसानानंतर स्वयंभू परमात्मा (अव्यक्त) वाह्यकरण अगोचर (इदं) यह महाभूत आकाशादिक आदिशब्दसें महदादिकोंकों (व्यंजयन् अव्यक्तावस्थं) प्रथम सूक्ष्मरूपकरके रहेकों स्थूलरूपकरके प्रकाश करता हुआ, (वृत्तौजाः) सृष्टि रचनेका सामर्थ्य अव्याहत है जिसका, (तमोनुदः) प्रकृतिका प्रेरक ॥६॥ जो सो (अतींद्रियग्राह्य) ईश्वर सूक्ष्म वाह्येंद्रियअगोचर (अव्यक्त) अवयवरहित (सनातन) नित्य (सर्वभूतमय) सर्वभूतात्मा इसवास्तेही (अचिंत्य) इतना है ऐसा न जाननेसें अचिंत्य है, सो परमात्माही आप महदादिकार्यरूपकरके प्रकट हुआ. ॥७॥ सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावाला 'अभिध्यायापो जायंतां' ऐसें अभिध्यानमात्रकरकेही (अप्) पाणी प्रथम उत्पन्न करता भया, तिस पाणीमें शक्तिरूप वीजकों आरोपित करता भया॥८॥ सो बीज परमेश्वरकी इच्छासें सुवर्णसदृश अंडा होता भया, सूर्यसमान जिसकी प्रभा है, तिस अंडेमें (हिरण्यगर्भ) ब्रह्मा सर्वलोकोंका पितामह आपही उत्पन्न भया ॥ ९ ॥ पाणीका नाम नारा है, क्योंकि, पाणी जो है सो नरनाम परमात्मा ईश्वरके अपत्य–पुत्र है, सोही (नारा) पाणी इस ब्रह्मरूप परमात्माका (अयन) आश्रय है, इसवास्ते परमात्माकों नारायण

कहते हैं ॥ १० ॥ जो सो परमात्मारूप कारण (अव्यक्त) बाह्येंद्रियोंके अगोचर (नित्य) उत्पत्तिविनाशरहित सत् असत् आत्मक तिसने जो उत्पन्न करा पुरुष, तिसकों लोकमें ब्रह्मा कहते हैं. ॥ ११ ॥ तिस अंडेमें ब्रह्मा ब्रह्ममानवाले वर्षतक रह करके अपने ध्यान करके तिस अंडेके दो भाग करता भया. ॥ १२ ॥ तिन दोनों खंडोंसें–भागोंसें–ऊपरले भागसें देवलोक, और नीचले भागसें भूलोक, और दोनों भागोंके बीचमें आकाश विदिशासहित आठ दिशा और पाणीका स्थिरस्थान समुद्र इनकों रचता भया. ॥ १३ ॥ ब्रह्मा परमात्माके पाससें तिसरूपकरके मनका उद्धार करता भया, युगपत् ज्ञान अनुत्पत्तिलक्षणसें मन सत् है, और अप्रत्यक्ष होनेसें असत् है, मनके पहिले अहंकारतत्त्व अहं ऐसा अभिमाननामक कार्ययुक्त ईश्वर स्वकार्यरक्षणसमर्थकों उत्पन्न करता भया. ॥ १४ ॥ महत्नामक जो तत्त्व है तिसकों अहंकारसें पहिले परमात्मासेंही उद्धार करता भया, और आत्माकों उपकार करनेवाली तीनो गुण सत्त्व रजः तमःयुक्त विषयोंके ग्रहणहारि पांच इंद्रियोंको क्रमकरके उत्पन्न करता भया और च शब्दसें पायुआदि पांच कर्मेंद्रिय और पांच तन्मात्रको उत्पन्न करता भया. ॥ १५ ॥ तिन पूर्वोक्त अहंकार और पांच तन्मात्र छहोंके सूक्ष्म जे अवयव है तिन अवयवोंको आत्ममात्रविषे पूर्वोक्त छहोंकें अपने विकारोंमें जोडकरके मनुष्य तिर्यक्स्थावरादि सर्वभूतोंको परमात्मा रचता भया, तिनमें तन्मात्रोंका विकार पांच महाभूत, और अहंकारका इंद्रियां, पृथिवीआदिभूतोंविषे शरीररूपकरके परिणत ऐसें भूतोंविषे तन्मात्र और अहंकारकी योजना करके संपूर्ण कार्यजातका निर्माण करा, इसीवास्तेही पूर्वोक्त ६,(अमितौजस)अनंतकार्यके निर्माण करनेसें अतिवीर्यशाली है॥१६॥ जिसवास्ते (मूर्त्ति) शरीर है, तिसके संपादक अवयव सूक्ष्म तन्मात्र अहंकाररूप षट् है, प्रकृतिसहित तिस ब्रह्मके यह जे आगे कहेंगे वे भूत और इंद्रिय पूर्व कहे हुए कार्यपणेकरके आश्रय करते हैं, तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति होनेसें और अहंकारसें इंद्रियोंकी उत्पत्ति होनेसें, तिसवास्ते तिस ब्रह्मकी मूर्त्ति (स्वभाव) तिनको तैसें परिणतोंकों इंद्रियादिशा-

लिनीको लोक शरीर ऐसा कहते हैं, छहोंके आश्रयणसें शरीर ऐसे निर्वचनसें पूर्वोक्त उत्पत्तिक्रमही दृढ करा. ॥ १७ ॥ सो ब्रह्म शब्दादिपंचतन्मात्रात्माकरके अवस्थित महाभूत जे है, आकाशादिक (आविशंति) तिनसें उत्पन्न होता है, कर्मोंकरकेसहित स्वकार्योंकरके तहां आकाशका अवकाशदानकर्म, वायुका व्यूहनं विन्यासरूप, तेजका पाक, पाणीका पिंडीकरणरूप, पृथिवीका धारणकरणा, अहंकारात्मकरके अवस्थित ब्रह्म मनअहंकारसें उत्पन्न होता है, अवयवोंकरके अपने कार्योंकरके शुभाशुभ संकल्प सुखदुःखादिरूपकरके सूक्ष्म बाहिरइंद्रियोंके अगोचर होनेसें सर्वभूतोंका करा सर्वोत्पत्तिनिमित्त मनोजन्य शुभाशुभ कर्मोंसें उत्पन्न होनेसें जगत्को (अव्यय) अविनाशी है ॥ १८ ॥ तिन पूर्वोक्त प्रकृतियोंको महत् अहंकार तन्मात्रांको, सप्त संख्याको, पुरुषसें अपणेको उत्पन्न होनेसें तद्वृत्तिप्राप्त होनेसें 'पुरुषाणां महौजसां' स्वकार्य संपादन करनेसें वीर्यवंतोंको सूक्ष्म जे मूर्तिमात्र शरीरसंपादक भाग है तिनसें यह जगत् नश्वर होता है, अनश्वरसें जो कार्य है, सो विनाशी है, स्वकारणमें लय होता है, और कारण तो कार्यकी अपेक्षा थिर है, परमकारण तो ब्रह्म नित्य उपासना करनेयोग्य है, यह दिखाते हुए यह अनुवाद है.॥१९॥तिन भूतोंको आकाशादिक्रमकरके उत्पत्तिक्रम है,शब्दादिगुणवत्ता कहेंगे तहां आदिके(आकाशादिके)गुण शब्दादिक है वाय्वादि परस्पर प्राप्त होते हैं, यही बात स्पष्ट करते है,'योयइति' इनके बीचमेंसें जो जितनोंकरके पूर्ण है, सो यावतिथ कहिए हैं. 'सप्तद्वितीयादिः' दूसरा दो गुणवाला, तीसरा तीन गुणवाला, ऐसें मनुआदिकोंने कहा है. इस कथनसें यह कहा, आकाशका शब्दगुण, वायुका शब्दस्पर्श, तेजका शब्दस्पर्शरूप, अपूका शब्दस्पर्शरूपरस, भूमिका शब्दस्पर्शरूपरसगंध.॥२०॥ सो परमात्मा हिरण्यगर्भरूपकरके अवस्थित हुआ सर्ववस्तुयोंके नाम, गोजातिका गो, अश्वजातिका अश्व, कर्म, ब्राह्मणको पठन करना, क्षत्रियको प्रजा रक्षादि, पृथक् २ जिसके पूर्वकल्पमें जे जे नाम कर्म थे, वे सृष्टिकी आदिमें वेदशब्दोंसें जान कर निर्माण करता भया॥२१॥सो ब्रह्मा देवतायोंके गणसमूहको

न करता भया, प्राणीयोंको इंद्रादिकोंके कर्म आत्मस्वभाव है जिन-
तिनकों, और पाषाणादिकोंको, और देवतायोंके साध्योंको, देवविशे-
ष समूह, यज्ञ ज्योतिष्टोमादिकोंको, कल्पांतरमेंभी अनुमीयमान होनेसें
त्य हैं इनकों सृजन करता भया ॥ २२ ॥ ब्रह्मा, ऋग्, यजुः, साम, नाम-
तीनवेदोंकों अग्नि, वायु, रविसें आकर्षण करता भया; सनातन नित्य
; अपौरुषेय है, ऐसें मनुको सम्मत है, यज्ञकी सिद्धिकेवास्ते दोहन क-
ता भया; ॥ २३ ॥ आदित्यादिक्रिया, प्रचयरूपकाल, कालविभक्ति मास
ऋतु अयनादि, नक्षत्र कृत्तिकादि ग्रह सूर्यादि नदीयां समुद्रादिकों, पर्वतोंको
समविषम ऊंचनीच स्थानोंकों रचता भया ॥२४॥ तपः–प्राजापत्यादि, वाचं-
वाणी, रति–चित्तका परितोष, काम–इच्छा, क्रोध इनकों रचता भया; येह
प्रजा वक्ष्यमाण दैवादिकोंकी रचना करनेकी इच्छा करता भया; ॥२५॥
कर्मणांचेति–धर्मयज्ञादिक, सो कर्त्तव्य है; अधर्म–ब्रह्मादिवध, सो न कर-
रना; ऐसें कर्मोंके विभागतांइ धर्माधर्मका विवेचन करता भया, पृथक् क-
रके कहता भया; धर्मका फल सुख, अधर्मका फल दुःख, धर्माधर्मके फल भूत
दोनों परस्पर विरुद्धोंकरके सुखदुःखादिकोंकरके इस प्रजाकों योजन करता
भया; आदिग्रहणसें काम, क्रोध, राग, द्वेष, क्षुधा, पिपासा, शोक मोहादिकरके
युक्त करता भया ॥२६॥ दशार्द्धानां पंचमहाभूतोंके जे सूक्ष्म पंचतन्मात्ररूप
विनाशी पांच महाभूतरूपपणे परिणामी जे है, तिनोंके साथ कथन करा, और
करेंगे. ऐसा यह जगत् उत्पन्न होता है. अनुक्रमकरके सूक्ष्मसें स्थूल, स्थूलसें
स्थूलतर, इसकरके सर्वशक्तिसें ब्रह्मकी मानस सृष्टि कदाचित् तत्त्वनिर-
पेक्षाही होवेगी, ऐसी शंकाको दूर करता हुआ तत् द्वारकरकेही यह
सृष्टि ऐसा मध्यमे फेर स्मरण करता भया. ॥ २७ ॥ सो प्रजापति जि-
सजातिविशेषकों व्याघ्रादिकोंको, जिस क्रिया हरिणादिमारणारूपमें,
सृष्टिकी आदिमें जोडता भया, सो जातिविशेष वारंवार सृजन करतां
स्वकर्मोंके वश करके तैसाही आचरण करते हुए. इस कहनेकरके प्राणि-
योंके कर्मानुसार प्रजापतिने उत्तमाधम जातियां रची है, नतु रागद्वेषा-
धीनसें. ॥ २८ ॥ इसकाही विस्तार करते हैं, (हिंस्र कर्म) सिंहादिकोंको

हाथीमारणादिक,(अहिंस्र) हरिणादिक, (मृदु) दयाप्रधान विप्रादि, (क्रूर) क्षत्रियादिकोंको, (धर्म) जैसें ब्रह्मचर्यादि, (अधर्म) जैसें मांसमैथुनादि सेवन करना, सत्य बोलना, असत्य बोलना, सृष्टिकी आदिमें प्रजापति जिसमें जो कर्म स्थापन करता भया, सो कर्म पीछेसें अदृष्टवशसें स्वयमेवही प्राप्त होता भया. ॥ २९ ॥ इस अर्थमें दृष्टांत कहते हैं, जैसें वसंतादिऋतुयोंमें ऋतुके चिन्ह आम्रमंजरीआदि स्वकार्यावसरमें आपही प्राप्त होते है, तैसेंही जीवोंकों हिंस्रादि कर्म जानने. ॥ ३० ॥ भूलोकोंके वहुतवास्ते मुख, बाहु, ऊरु, पगोंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रोंको यथाक्रम निर्मित करता भया. ॥ ३१ ॥ सो ब्रह्मा निज देहके दो खंड करके एक खंडका पुरुष वना, और दूसरे खंडकी स्त्री वनी, तिस स्त्रीविषे मैथुन धर्म करणेसें विराट्‌नामा पुरुषको निर्मित करता भया. ॥ ३२ ॥ सो विराट् तपकरके जो निर्माण करता भया, तिस वस्तुको मुझकों वतलाउं; हे द्विजोत्तम! इस सर्वजगत्‌के रचनेवालेकों. ॥ ३३ ॥ मैं प्रजाकों सृजन करनेकी इच्छा करता थका सुदुश्चर तप तपके दश प्रजापतियोंकों प्रथम सृजन करता भया. क्योंकि, तिनोंकरके प्रजा सृजमान होनेसें. ॥ ३४ ॥ मरीचि १, अत्रि २, अंगिरस ३, पुलस्त्य ४, पुलह ५, क्रतु ६, प्रचेतस ७, वसिष्ठ ८, भृगु ९, और नारद १०. ॥ ३५ ॥ येह मरीचिआदि दश वडे तेजवाले अन्य सप्त परिमाणरहित मनुयोंकों देवतायोंकों ब्रह्मके सृजन करे हुए देवनिवास स्थानक स्वर्गादिकोंको और महाऋषियोंकों सृजन करता भया, यह मनुशब्द अधिकारवाची है, इसवास्ते चौदह मन्वंतरोंमें जिसकों जहां सर्गादिका अधिकार है, सो इस मन्वंतरमें स्वायंभुव स्वारोचिषानामोंकरके मनु कहा जाता है. ॥ ३६ ॥ यक्ष, वैश्रवण, राक्षस, तिसके अनुचर रावणादि, पिशाच, गंधर्व, अप्सरस, असुर, नाग, सर्प, गरुड, पित्रोंकों इनकों पृथक् २ रचता भया. ॥ ३७ ॥ विजली, अशनि, मेघ, इंद्रधनुः, उल्का सप्रकाशरेखा, भूमि अंतरिक्षमें, निर्घात उत्पातध्वनि, केतू तारा, अन्य ज्योतिषि ध्रुव अस्तादि नाना प्रकारके रचता भया. ॥ ३८ ॥ किन्नर, वांदर, मत्स्य, नानाप्रकारके पक्षियोंको, पशु मृग मनुष्योंकों, व्याल-

सिंहादि दो है दांतकी पंक्ति हेठोपरि जिनके तिनकों रचता भया. ॥३९॥ कृमी, कीट, पतंग, यूका, माकड, मक्षिका, दंश, मशक, स्थावर वृक्षलतादिभेद भिन्न विविधप्रकारके रचता भया. ॥ ४० ॥ इन मरीचि आदिकोंने यह सर्व स्थावर जंगम सृजन करा, (यथाकर्म) जिसजीवके जैसें कर्म थे तिस अनुसार देव मनुष्य तिर्यगादिमें उत्पन्न करे, मेरी आज्ञासें, तप योगसें बडा तप करके सर्व ऐश्वर्य तपके अधीन हैं, यह दिखलाया.॥४१॥ मनु० अ० १ ॥

[समीक्षा] वेदोंका कथन जो सृष्टिविषयक है, सो पाठकगणोंके वाचनार्थे संक्षेपसें प्रायः श्रुतियांसहित लिखेंगे, इहां मनुस्मृतिके कथनका किंचित् स्वरूप लिखते हैं, क्योंकि मनुस्मृतिभी वेदतुल्य, वा वेदोंसेंभी अधिक मानी जाती है; उपनिषद जो वेदका सार कहनेमें आता है तिनकी मूलश्रुतिमें मनुकी प्रशंसा लिखी है. मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायके ५–६–७ श्लोकोंमें जो सृष्टिसंबंधि कथन है, सो प्रायः ऋग्वेदकी प्रलयादिके समानही है, इसवास्ते आठमे श्लोकसें विचार करते हैं.

सो परमात्मा नानाविध प्रजा रचनेकी इच्छावंत हुआथका ध्यानसें 'आपो जायन्तां' ऐसें ध्यानमात्रसें पहिलां पाणीही रचता भया, पाणी सृजनेसें पहिलां ब्रह्म अव्याकृत था, अव्याकृत शब्दकरके पंचभूत ५, पंच बुद्धींद्रिय ५, पंच कर्मेंद्रिय ५, प्राण १, मन १, कर्म १, अविद्या १, वासना १, ये सर्व सूक्ष्मरूपकरके शक्तिरूपकरके ब्रह्मकेसाथ रहे, तिसका नाम अव्याकृत है. ॥ इति मनुस्मृतिटीकायां. ॥ इस पूर्वोक्त कथनसें तो, सांख्यमतवालोंकी मानी प्रकृति सिद्ध होती है, और मनुने सृष्टिका क्रमभी महदहंकारादिक्रमसें कहनेसें प्रायः सांख्यमतकी प्रक्रियाही अंगीकार करी मालुम होती है; इस्सें सांख्यशास्त्र मनुसें पहिलें सिद्ध होता है. जब सूक्ष्मरूपसें प्रकृति, ब्रह्मसें भेदाभेदरूपसें प्रलयदशामें थी, तब तो अद्वैतमत निर्मूल हुआ, और ब्रह्मके साथ माया, वा, प्रकृति भेदाभेदरूपसें माननी यह युक्तिविरुद्ध है. क्योंकि, जेकर भेद है तो कथं अभेद? और जेकर अभेद है तो, कथं भेद? यह दोनो पक्ष एक अधि-

करणमें कैसें रह सक्ते है? यह कहना तो ऐसा हुआ कि, जैसें कोइ उन्मत्त कहता है, मेरी माता तो है, परं वंध्या है. इस पूर्वोक्त कथनमें मनुजीने, तथा ऋग्वेदके कर्त्ताने, छिपकरके स्याद्वादका किंचित् शरण लिया मालुम होता है. क्योंकि, स्याद्वादविना कदापि भेदाभेद पक्ष सिद्ध नही होता है. स्याद्वाद तो परमेश्वरकी सर्वपदार्थोंपर मोहर छाप लगी हूई है, जिसवस्तु उपर स्याद्वादरूप मोहर छाप नही, सो वस्तु खरशृंगवत् एकांत असत् है, 'स्याद्भेदः स्यादभेदः मलयुक्तसुवर्णवत्' जैसें सोना और मल अव्याकृत, अर्थात् विभागरहित एक पिंडीरूप है, परंतु सुवर्णकी विवक्षा करीए तव तो कथंचिद् भेद है, सर्वथा नहीं; जेकर सर्वथाही भेदविवक्षा करीए तव तो, सुवर्णकी पिंडीमें मल न होना चाहिये. और जेकर सुवर्ण और मलका एकांत अभेदही मानीए तब तो, सुवर्णकी पिंडीमें सर्वथा मल न होना चाहिये, किंतु एकांत सुवर्णही होगा. इसवास्ते कथंचित् भेदाभेद पक्ष बनता है, परंतु स्यात्पदके विना केवल भेदाभेद पक्ष नही सिद्ध होता है; और जहां कथंचित् भेदाभेद पक्ष माना जावेगा, तहां अवश्यमेव दो वस्तुयों माननी पडेगी; क्षीरनीरवत्. इसवास्ते अव्याकृत ब्रह्म कथंचित् द्वैत, कथंचित् अद्वैत मानना पडेगा; इसवास्ते वेदांतियोंका एकांत अद्वैतपक्ष तीनकालमेंभी सिद्ध नही हो सक्ता है. और जडकार्यका उपादान कारणभी जड, और चैतन्यकार्यका उपादनकारण चैतन्यही सिद्ध होवेगा; इसवास्ते एक चैतन्य ब्रह्म, जडचैतन्यरूप जगत्का कदापि उपादानकारण सिद्ध नही हो सक्ता है; इसवास्ते श्रुतिस्मृत्यादिकोंमें जो लिखा है कि, मैं एकही जड़चैतन्य अनेकरूप हो जाऊं, यह प्रमाणवाधित है. और ब्रह्मको जो जगत् रचनेकी इच्छा हुई, यह भी कथन मिथ्या है, क्योंकि, शरीरकेविना मन नही, और मनविना इच्छा नही, यह प्रमाणसिद्ध है; ऊपरभी लिख आए है.

अंडा रचा, यह कथन, ऋग्वेदयजुर्वेदकी श्रुतिसें, और गोपथब्राह्मणादिसें विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें अंडा नही कहा, यजुर्वेद और गोपथब्राह्मणमें ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसें कही है. तिस अंडेमें परमात्मा

आपही ब्रह्मा होता भया, अन्य जगे वेदमें ब्रह्माको अज कहा है, यह परस्परविरुद्ध है. तिस अंडेमें ब्रह्माजीने ब्रह्माके एक वर्षतक वास करा, अंडेमेंही रहा, यह कथन मनुकी टीकामें है. ब्रह्माके एक वर्षके मनुष्योंके ३१,१०,४०,००,००,००० वर्ष होवे हैं. तथाहि. ॥

१ एक वर्ष देवताका, ३६० वर्ष मनुष्यके। देवताके १२००० वर्षका एक युग देवताका। जिसमें मनुष्यके चतुर्युग—वर्ष—४३,२०,०००। देवताके २००० युगका एक ब्रह्माका अहोरात्र—८,६४,००,००,००० मनुष्यवर्ष। ३६० दिनका एक वर्ष, जिसमें मनुष्यके वर्ष—३१,१०,४०,००,००,०००। इतने वर्षतक ब्रह्माजी तिस अंडेमें रहे.

इतने वर्षतक अंडेमें रहनेका क्या कारण था? क्या ब्रह्माजी तिस अंडेसें निकलनेका रस्ता मार्ग ढूंढते रहे? किंवा बौंदल गए? कुछ सूज नही पडती थी? किंवा तिस अंडेके मापनेमें इतने वर्ष लग गए? किंवा अब मैं क्या करूं ऐसी चिंतामें इतने वर्ष व्यतीत हो गए? किंवा उत्पत्तिके दुःखसें इतने वर्षतक विश्राम करा? किंवा जो वेदमें लिखा है, ब्रह्माजीने तप करा अर्थात् इतने वर्षोंतक सृष्टि रचनेकी तजवीज करते रहे? इन सर्व पक्षोंके माननेमें दूषण आते हैं. क्योंकि, सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ निराबाध परमेश्वरमें पूर्वोक्त कोइ पक्षभी सिद्ध नही हो सक्ता है, इसवास्ते परमेश्वर ब्रह्माका अंडेमें रहना अज्ञोंकी कल्पनामात्र है.

फेर लिखा है, ब्रह्माजीने ध्यानसें तिस अंडेके दो भाग करे, यह भी असत्य है. क्योंकि, ध्यान तो वस्तुके स्वरूपका बोधक है, ज्ञानांश होनेसें; इसवास्ते ज्ञानसें अंडेके दो टुकडे नही हो सक्ते हैं. तिन दो टुकडोंसें एक टुकडेका स्वर्गलोक, और हेठले दूसरे खंडसें भूमि रचता हुआ, इन दोनोंके बीचमें आकाश दिशां और दिशांके अंतराल और पाणीका स्थान समुद्र रचता हुआ, यह कथन युक्तिविरुद्ध तो हैही, परंतु ऋग्वेदसेंभी विरुद्ध है; क्योंकि, ऋग्वेदमें प्रजापतिके शिरसें स्वर्ग, पगोंसे भूमि, कानसें दिशा, और नाभिसें आकाश, उत्पन्न हुए लिखा है.

चतुर्दश (१४) श्लोकसें लेकर ३१ श्लोकपर्यंत मनुजीने जो सृष्टिक्रम लिखा

न । मृत्युः । आसीत् । अमृतम् । न । तर्हि । न । रात्र्याः । अह्नः । आसीत् । प्रऽकेतः । आनीत् । अवातम् । स्वधया । तत् । एकम् । तस्मात् । ह । अन्यत् । न । परः । किम् । चन । आस ॥ २ ॥

तम आसीत्तमसा गूळ्हमग्रे प्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैकम् ॥ ३ ॥

तमः । आसीत् । तमसा । गूळ्हम् । अग्रे । अप्रऽकेतम् । सलिलम् । सर्वम् । आः । इदम् । तुच्छ्येन । आभु । अपिऽहितम् । यत् । आसीत् । तपसः । तत् । महिना । अजायत । एकम् ॥ ३ ॥

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥
सतो बंधुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

कामः । तत् । अग्रे । सम् । अवर्तत । अधि । मनसः । रेतः । प्रथमम् । यत् । आसीत् । सतः । वन्धुम् । असति । निः । अविन्दन् । हृदि । प्रतिऽइष्य । कवयः । मनीषा ॥ ४ ॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामधः स्विदासी३दुपरिस्विदासी३त् ॥
रेतोधा आसन्महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥५॥

तिरश्चीनः । विऽततः । रश्मिः । एषाम् । अधः । स्वित् । आसी३त् । उपरि । स्वित् । आसी३त् । रेतःधाः । आसन् । महिमानः । आसन् । स्वधा । अवस्तात् । प्रऽयतिः । परस्तात् ॥ ५ ॥

को अद्धा वेद क इह प्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ॥
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥६॥

कः। अद्धा। वेद। कः। इह। प्र। वोचत्। कुतः। आऽजाता। कुतः। इयम्। विऽसृष्टिः। अर्वाक्। देवाः। अस्य। विऽसर्जनेन। अथ। कः। वेद। यतः। आऽबभूव ॥६॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥७॥

इयम्। विऽसृष्टिः। यतः। आऽबभूव। यदि। वा। दधे। यदि। वा। न। यः। अस्य। अधिऽअक्षः। परमे। विऽओमन्। सः। अङ्ग। वेद। यदि। वा। न। वेद ॥७॥ ऋ० अ० ८ अ० ७ व० १७ मं० १० अ० ११ सू० १२९

भाषार्थः—'तपसस्तन्महिनाजायतैकम्इत्यादि'करके आगे सृष्टि प्रतिपादन करेंगे, अब तिसकी पहिली अवस्था, (निरस्त) दूर करी है. समस्त प्रपंचरूप, जो प्रलयअवस्था, सो निरूपण करिये है. (तदानीम्) प्रलयदशामें अवस्थित रहा हुआ, जो इस जगत्का मूलकारण, सो (नासदासीत्) असत, शशेके शृंगवत् निरुपाख्य नही था, क्योंकि तैसें कारणसें इस सत्रूप जगत्की उत्पत्ति कैसे संभवे? तथा (नोसत्) सत् नही (आसीत्) था, आत्मवत् सत्त्व कहनेकरके भी निर्वाच्य था; यद्यपि सत् असत् आत्मक प्रत्येक विलक्षण है, तोभी भावाभावोंको साथ रहनेकाभी संभव नही है, तो तिनका तादात्म्य कहांसें होवे? इसवास्ते उभय विलक्षण निर्वाच्यही था, यह तात्पर्यार्थ है. ननु, ऐसा वितर्कमें पद है, 'नोसदिति' इसकरके पारमार्थिक सत्त्वका निषेध है तो, आत्माकों भी अनिर्वाच्यत्वका प्रसंग होवेगा, जेकर कहोगे ऐसें नही, क्योंकि, 'आनीदवातम्' इसपदकरके तिसका सत्त्व आगे कहेंगे, इसवास्ते परिशेषसें मायाकाही सत्त्व इहां निषेध करते हैं. ऐसें मान्याभी 'तदानीं' इस विशेषणकों आनर्थक्यपणा होवेगा; क्योंकि, व्यवहारदशामें तिस मायाको पारमार्थिकसत्त्व होनेके अभावसें. अथ जेकर व्यवहारिक सत्त्वकों तिस अवसरमेंभी

व्यवहारिकसत्ता पृथिवी आदिक भावोंकी तदापि विद्यमान होनेसें, कैसें नोसत् ऐसा निषेध हो सक्ता है? ऐसी शंकाका उत्तर कहते हैं (नासीद्रजः) इत्यादि। "लोकारजांस्युच्यन्तइतियास्कः"। इहां सामान्य अपेक्षाकरके एकवचन है, (व्योम्नोवक्ष्यमाणत्वात्) व्योमकों वक्ष्यमाण होनेसें, तिस व्योमका हेठला भाग पातालादि पृथिवी अंततक (नासीत्) नही थे इत्यर्थः। (व्योम) अंतरिक्ष, सो भी (नो) नही था (परः) व्योमसें परे ऊपर देशमें द्युलोकादि सत्यलोकांततक (यत्) जो है, सो भी नही था; इस कहनेकरके चतुर्दशभुवनसंयुक्त ब्रह्मांड भी निषेध करा. अथ तदावरकत्वककरके पुराणोंमें जे प्रसिद्ध है आकाशादिभूत, तिनका अवस्थान–रहनेका प्रदेश, और तिसके आवरणका निमित्त, आक्षेप मुखकरके क्रमकरके निषेध करते हैं. (किमावरीवरिति) क्या आवरणेयोग्यतत्त्व आवरकभूतजात (आवरीवः) अत्यंत आवरण करे? आवार्यके अभावसें, तदा आवरकभी नही था इत्यर्थः। 'यद्वा किम् इति प्रथमा विभक्तिः,' क्या तत्त्व आवरक आवरण करे? आवार्यके अभावसें, आव्रियमाणकीतरें; सो भी स्वरूपकरके नही था इत्यर्थः। आवरण करे सो तत्त्व (कुह) किस स्थानमें रहके आवरण करे? आधारभूत तैसा देश स्थान भी नही था (कस्य शर्मन्) किसका भोक्ता जीवके सुखदुःखके साक्षात्कारलक्षणमें, वा निमित्तभूतके हुआ थका तिस आवरकत्वकों आवरण करे? जीवोंके उपभोगवास्तेही सृष्टि है तिस सृष्टिके हुआं थकांही ब्रह्मांडकों भूतोंकरके आवरण होवे; परंतु प्रलयदशामें भोगनेवाले जीवरूप उपाधिके प्रविलीन होनेसें, किसीका कोइ भी भोक्ता संभव नही था; ऐसें आवरणरूप निमित्तके अभावसें सो नही घटता है. इस कहनेकरके भोग्यप्रपंचकीतरें भोक्तृप्रपंच भी तिस अवसरमें नही था; यद्यपि सावरण ब्रह्मांडका निषेध करनेसें तिसके अंतर्गत अप्सत्त्वकाभी निराकरण करा, तो भी 'आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्' इत्यादिश्रुतिकरके कोइक पाणीके सद्भावकी आशंका करे तिसप्रति कहते हैं; (अंभः किमासीदिति) क्या (गहनम्) दुःख जिसमें प्रवेश होवे (गभीरम्) और अति अगाध ऐसा पाणी था? सो भी नही था. 'आपो वा इदमग्रे'

इत्यादि जो श्रुति है, सो अवांतर प्रलयके स्वरूपकथनमें है; इहां तो महाप्रलयके स्वरूपका कथन है, इसवास्ते निरुपयोगी है. ॥ १ ॥

मृत्यु भी नही था, अमरणपणा भी नही था, 'तर्हि तस्मिन् प्रतिहारसमये' तिस प्रतिहारसमयमें रात्रीदिनका(प्रकेतः) प्रज्ञान भी नही था, तिनके हेतुभूत सूर्यचंद्रमाके अभावसें; (आनीदवातं) एक शुद्ध ब्रह्मही था, (स्वधया) मायाकरके विभागरहित था, तस्मात् पूर्वोक्त मायासहित ब्रह्मसें विना, अन्य कोइ भी वस्तुभूत भूतकार्यरूप नही था. यह वर्त्तमान जगत् भी नही था. ॥ २ ॥

(तमसागूह्ळमग्रे) सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूतभौतिक सर्व जगत् (तमसा गूढम्) जैसें रात्रिसंबंधि तमः सर्वपदार्थोंकों आवरण करता है, तैसें आत्मतत्त्वके आवारक होनेसें माया अपरनाम भावरूप अज्ञान इहां तमः कहते हैं, तिस तमःकरके (निगूढं–संवृतं) नाम ढांपा हुआ था; कारणभूत मायाकरके यद्यपि जगत् था, तो भी (अप्रकेतम्–अप्रज्ञायमानम्) प्रतीत नही था, (सलिलम्) पाणीकीतरें; जैसें पाणी और दूध अविभागापन्न है, ऐसें माया और ब्रह्म अविभागापन्न थे (तुच्छेन) तुच्छ कल्पनाकरके सत् असत्सें विलक्षण होनेसें भावरूप अज्ञानकरके ढांपा हुआ था, (एकम्) एकीभूत कारणरूप तमःकरके अविभागताकों प्राप्त हुआ भी, सो कार्यरूप (तपसः) स्रष्टव्यपर्यालोचनरूपके (महिना) माहात्म्यकरके उत्पन्न भया.॥३॥

ननु उक्तरीतिसें जेकर ईश्वरका विचारणाही जगत्की उत्पत्तिविषे कारण है तो, सो विचारही किस निमित्तसें है? सोही दिखाते हैं. 'कामस्तदग्रे इत्यादि'–इस विकारवाली सृष्टिके पहिले परमेश्वरके मनमें इच्छा उत्पन्न होती भइ कि, मैं सृष्टि करूं; ईश्वरकों इच्छा किस हेतुसें भइ? सो कहे हैं, 'मनसःइति' अंतःकरणसंबंधी वासना शेषकरके, सर्व प्राणियोंके अंतःकरणमें तैसा (रेतः) होनहार प्रपंचका बीजभूत पहिले अतीतकल्पमें जीवोंने जो करा था पुण्यात्मक कर्म, यतः जिसकारणसें सृष्टिके समयतक वे कर्मफल परिपक्वफल देनेके सन्मुख होते भए, तिसहेतुसें सर्वसाक्षी फलप्रदाता ईश्वरके मनमें सृष्टि करणेकी इच्छा उत्पन्न भइ; तिस इच्छाके हुए सृजनेयोग्य विचारके तदपीछे सर्वजगतकों

रचता है. सतइति तदपीछे सत्वरूपकरके अनुभूयमान इस जगत्का 'वंधुं–बंधकं' हेतुभूत कल्पांतरमें प्राणियोंने जो करा है कर्मसमूह, तिनकों 'कवयः' तीनों कालके जाननेवाले योगी हृदयमें बुद्धिद्वारा विचारकरके तिन कर्मानुसार सृष्टि करता भया. ॥४॥

(रश्मिः) रश्मिसमान जैसें सूर्यकी किरणां उदयानंतर निमेषमात्रकालमें युगपत् सर्व जगतमें व्याप्त होती हैं, तैसें शीघ्र सर्वत्र व्याप्त होता हुआ यह कार्यवर्ग 'विततः' विस्तारवंत होता भया. सो कार्यवर्ग, प्रथमसें क्या (तिरश्चीनः) तिर्यग् मध्यमें स्थित हुआ था? किंवा, अधः नीचेंकों हुआ था? अथवा, उपरकों हुआ था? ऐसा मालुम नही होता था. किंतु सर्वत्र एकसाथही सृष्टि होती भइ, (रेतोधाः) इससृष्टिमें (रेतसः) बीजभूत कर्मोंके करणेहारे, और भोगनेवाले जीव होते भए. 'महिमानः' अन्यमहान् पदार्थ आकाशादिभूत भोग्यरूप होते भए, भोक्ता और भोग्यमें स्वधा अन्नोंका यह भोग्य प्रपंच (अवस्तात्) निकृष्ट होता भया, (प्रयतिः) भोक्ता (परस्तात्) उत्कृष्ट होता भया.॥५॥

अथ सृष्टि दुर्विज्ञान है, इसवास्ते विस्तारसें नही कही, सोही कहते हैं. 'को अद्धेति' कौन पुरुष परमार्थसें जानता है? और कौन (इह) इस लोकमें (प्रवोचत्) कह सक्ता है? 'इयं दृश्यमाना विसृष्टिः' यह दृश्यमान विविध प्रकारभूत भौतिक भोक्तृभोग्यादिरूपकरके बहुतप्रकारकी सृष्टि, (कुतः) किस उपादानकारणसें, और (कुतः) किस निमित्तकारणसें, (आजाता) समंतात् जाता–प्राडुर्भूता–उत्पन्न हुइ है? ये दोनों कथन विस्तारसें कौन जान सक्ता, और कह सक्ता है? ननु देवता सर्वज्ञ है, इसवास्ते वे जानतेभी होवेंगे, और कह भी सक्के होवेंगे? सोही कहते हैं. अर्वागिति। देवते इस जगतके रचनेसेंपीछे उत्पन्न हुए हैं, इसवास्ते वे कैसें जान सक्के और कह सक्के हैं? अथ जब देवते भी नही जानते है तो, तिनसें व्यतिरिक्त मनुष्यादि तो कैसें जान सक्ते हैं कि, यतः जिसकारणसें संपूर्ण जगत् उत्पन्न भया, सो कारण क्या था?॥६॥ 'इयं विसृष्टिः' यह विविधप्रकारकी गिरिनदीसमुद्रादिरूपकरके विचित्रा सृष्टि जिससें उत्पन्न भइ है, और

जो 'दधे' इसकों धारण करता है, अथवा नही धारण करता है, ऐसा कोइ भी नही जानता है. 'यो अस्येति' जो इस जगत्का अध्यक्ष ईश्वर, सो सत्यभूत आकाशमें निर्मल स्वप्रकाशमें प्रतिष्ठित है, सो ईश्वरही जाने वा न जाने, अन्यकोइ नही जान सक्ता है.॥७॥

तथा—सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१॥

सहस्रऽशीर्षा । पुरुषः । सहस्रऽअक्षः । सहस्रऽपात् । सः । भूमिम् । विश्वतः । वृत्वा । अति । अतिष्ठत् । दशऽअङ्गुलम् ॥ १ ॥

पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ॥
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥ २ ॥

पुरुषः । एव । इदम् । सर्वम् । यत् । भूतम् । यत् । च । भव्यम् । उत । अमृतऽत्वस्य । ईशानः । यत् । अन्नेन । अतिऽरोहति ॥ २ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥३॥

एतावान् । अस्य । महिमा । अतः । ज्यायान् । च । पुरुषः । पादः । अस्य । विश्वा । भूतानि । त्रिऽपात् । अस्य । अमृतम् । दिवि ॥ ३ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि॥ ४॥

त्रिऽपात् । उर्ध्वः । उत् । ऐत् । पुरुषः । पादः । अस्य । इह । अभवत् । पुनरिति । ततः । विष्वङ् । वि । अक्रामत् । साशनानशनेइति । अभि ॥ ४ ॥

तस्माद्विरळजायत विराजो अधि पूरुषः ।
सजातो अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥५॥ १७॥

तस्मात्। विऽराट्। अजायत। विऽराजः। अधि। पुरुषः। सः। जातः। अति। अरिच्यत। पश्चात्। भूमिम्। अथो इति। पुरः॥ ५॥ १७॥

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः॥ ६॥

यत्। पुरुषेण। हविषा। देवाः। यज्ञम्। अतन्वत। वसन्तः। अस्य। आसीत्। आज्यम्। ग्रीष्मः। इध्मः। शरत्। हविः॥ ६॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये॥ ७॥

तम्। यज्ञम्। बर्हिषि। प्र। औक्षन्। पुरुषम्। जातम्। अग्रतः। तेन देवाः। अयजन्त। साध्याः। ऋषयः। च। ये॥ ७॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान्ग्राम्याश्च ये॥ ८॥

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। समऽभृतम्। पृषत्ऽआज्यम्। पशून्। तान्। चक्रे। वायव्यान्। आरण्यान्। ग्राम्याः। च। ये॥ ८॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥ ९॥

तस्मात्। यज्ञात्। सर्वऽहुतः। ऋचः। सामानि। जज्ञिरे। छन्दांसि। जज्ञिरे। तस्मात्। यजुः। तस्मात्। अजायत॥ ९॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः॥ १०॥ १८॥

तस्मात्। अश्वाः। अजायन्त। ये। के। च। उभयादतः। गावः। ह। जज्ञिरे। तस्मात्। तस्मात्। जाताः। अजावयः॥ १०॥ १८॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरू पादा उच्येते ॥ ११ ॥

यत् । पुरुषम् । वि । अदधुः । कतिधा । वि । अकल्पयन् । मुखम् । किम् । अस्य । कौ । बाहू इति । कौ । ऊरूइति । पादौ । उच्येते इति ॥ ११ ॥

ब्राह्मणोस्यमुखमासीद्बाहु राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्ययद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥ १२ ॥

ब्राह्मणः । अस्य । मुखम् । आसीत् । बाहूइति । राजन्यः । कृतः ऊरू इति । तत् । अस्य । यत् । वैश्यः । पत्ऽभ्याम् । शूद्रः । अजायत॥१२॥

चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोः सूर्योअजायत ।
मुखादिन्द्रश्चाग्निश्चप्राणाद्वायुरजायत ॥ १३ ॥

चन्द्रमाः । मनसः । जातः । चक्षोः । सूर्यः । अजायत । मुखात् । इन्द्रः । च । अग्निः । च । प्राणात् । वायुः । अजायत ॥ १३ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षंशीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथालोकाँ अकल्पयन् ॥ १४ ॥

नाभ्याः । आसीत् । अन्तरिक्षम् । शीर्ष्णः । द्यौः । सम् । अवर्तत । पत्ऽभ्याम् । भूमिः । दिशः । श्रोत्रात् । तथा । लोकान् ।

अकल्पयन् ॥ १४ ॥ ऋ० अष्टक ८ । अ० ४ । व० १७।१८।१९। मं० ।१०। अ० ७ । सू० ९० ॥

भाषार्थः—सर्वप्राणि समष्टिरूप ब्रह्मांडदेह है जिसके, ऐसा विराट्नाम पुरुष, सो (यह सहस्रशीर्षा) सहस्रशिर, सहस्रशब्दको उपलक्षण होनेसें अनंत शिरोंकरके युक्त हैं; क्योंकि, जे सर्वप्राणियोंके शिर हैं, ते सर्व तिसकी देहके अंतर होनेसें तिसकेही शिर हैं, इसहेतुसें सहस्रशीर्षपणा; ऐसें (सहस्राक्षः) सहस्राक्षपणा, और (सहस्रपात्) सहस्रपादपणाभी जानना सो

पुरुष, 'भूमिं' ब्रह्मांडगोलकरूपभूमिकों 'विश्वतः' सर्व ओरसें 'वृत्वा' परिवेष्टन करके 'दशांगुलं' दशांगुलदेशकों 'अत्यतिष्ठत्' अतिक्रमकरके व्यवस्थित है दशांगुल यह उपलक्षण है, इसवास्ते ब्रह्मांडसें वाहिर भी सर्व जगे व्याप्य होके स्थित है. ॥ १ ॥

जो 'इदं' यद वर्त्तमान जगत् है, सो सर्व 'पुरुष एव' पुरुषही है 'यच्च भूतं' और जो अतीत जगत्, 'यच्च भव्यम्' और जो भविष्यत् होणहार जगत्, (तदपि पुरुषएव) सोभी पुरुषही है. जैसें इस कल्पमें वर्त्तते प्राणियोंके देह है, ते सर्वही विराट्पुरुषके अवयव है, तैसेंही अतीतानागतकल्पोंमें भी जानना, इत्यभिप्रायः 'उतापि च' और 'अमृतत्वस्य' देवपणेका यह 'ईशानः' स्वामी है, यत् जिसकारणसें 'अन्नेन' प्राणियोंके अन्नरूप भोग्यकरके 'अतिरोहाति' अपनीकारण अवस्थाकों अतिक्रमकरके परिदृश्यमान जगत् अवस्थाकों प्राप्त होता है, तिसकारणसें प्राणियोंके कर्मफल भोगनेतांइ जगत्अवस्था अंगीकार करनेसें यह तिसका वस्तुतत्त्व नही है, इत्यर्थः ॥ २ ॥

अतीतानागतवर्त्तमानरूप जगत् जहांतक है 'एतावान्' इतना सर्व भी 'अस्य' इस पुरुषका 'महिमा' आपना सामर्थ्य विशेष है; न कि तिसका वास्तव्य स्वरूप है. क्योंकि, वास्तव स्वरूप तो पुरुष है, अतः (महिम्नोपि) इससें महिमासेभी 'जायान्' अतिशय करके अधिक है, येह दोनों स्पष्ट करते हैं; 'अस्य' इस पुरुषके 'विश्वा भूतानि' त्रिकाल में वर्तनेवाले सर्व प्राणी 'पाद' चौथे हिस्से प्रमाण है 'अस्य' इस पुरुषके 'त्रिपात' शेष तीन हिस्से—भाग 'अमृतं' विनाशरहित हुआ थका दिवि द्योतनात्मके स्वप्रकाशरूपमें व्यवतिष्ठित है. इतिशेषः॥३॥

जो यह त्रिपात् पुरुषः संसारके स्पर्शरहित ब्रह्मस्वरूप है, और जो यह 'ऊर्ध्वः उदैत्' इस अज्ञानकार्य संसारसे वाहिरभूत है, इहांके गुणदोषोंकरी अस्पृष्ट है, उत्कर्षताकरके रहा हुआ है, 'तस्यास्य' तिस इस का 'सोयं पादलेशः' सो यह पादलेश 'इह' इहां मायामें फेर होता भया. सृष्टिसंहार करके पुनः २ वारंवार आता है, 'ततः' तदपीछे माया-

में आयांअनंतर 'विष्वङ्' देवतिर्यगादिरूपकरके विविधप्रकारका हुआ थका, 'व्यक्रामत्' व्याप्तवान् हुआ क्या करके? 'साशनानशने अभिलक्ष्य' (साशनं) भोजनादिव्यवहारसंयुक्त चेतन प्राणिजात लखीए हैं, (अनशनं) तिससें रहित अचेतन गिरिनदीआदिक, येह दोनोंको जैसे होवे तैसें स्वयमेव विविधरूप होके व्याप्त होता भया ॥ ४ ॥

विष्वङ् व्यक्रामदिति यदुक्तं तदेवात्र प्रपंच्यते ॥ 'तस्मात्' तिसआदिपुरुषसें विराट्–ब्रह्मांडदेह उत्पन्न भया । विविधप्रकारकी वस्तु शोभे है इसमें इति विराट् । 'विराजोधि' विराट् देहके ऊपर तिसदेहकोंही अधिकरण करके 'पुरुषः' तिस देहका अभिमानी कोइक पुरुष उत्पन्न होता भया, सो यह सर्ववेदांतोंकरके वेद्य परमात्मा सोही अपनी मायाकरके विराट्देह ब्रह्मांडरूप रचके तिसमें जीवरूप करी प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया. 'सजातः' सो उत्पन्न हुआ विराट् पुरुष 'अत्यरिच्यत-अतिरिक्तोभूत्' विराटसें व्यतिरिक्त देवतिर्यक्मनुष्यादिरूप होता भया. 'पश्चात्' देवादिजीवभावसें पीछे 'भूमिम्' भूमिकों सृजन करता भया, 'अथो' भूमिसृष्टिके अनंतर तिनजीवोंके 'पुरः' शरीर रचता भया ॥ ५ ॥

'यत्' यदा पूर्वोक्त क्रमकरकेही शरीरोंके उत्पन्न हुए थके, 'देवाः' देवते उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेकरके हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनःकरके हविपणे संकल्पकरके 'पुरुषेण' पुरुषनामक 'हविषा' हविःकरके, 'मानसं यज्ञम्' मानस यज्ञकों 'अतन्वत' विस्तारते–करते हुए. 'तदानीम्' तिस अवसरमें 'अस्य' इस यज्ञका 'वसन्तः' वसंतऋतुही 'आज्यम्' घृत 'आसीत्' होता भया, तिस वसंतऋतुकोंही घृतकी कल्पना करते हुए; ऐसेंही 'ग्रीष्म इध्म आसीत्' ग्रीष्मऋतु इध्म होता भया, तिसकोंही इध्मकरके कल्पना करते-हुए; तथा 'शरद्धविरासीत्' शरदृतु हविः होता भया, तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविःकरके कल्पना करते हुए. ऐसें पुरुषकों हविःसामान्यरूपकरके संकल्पकरके तिसते अनंतर वसंतादिकोंकों घृतादिविशेषरूपकरके कल्पन करा, ऐसे जानना योग्य है. ॥ ६ ॥

'यज्ञं' यज्ञके साधनभूत 'तम्' तिस पुरुषकों पशुत्वभावनाकरके यूपमें बांधेहुएकों 'बर्हिषि' मानस यज्ञमें 'प्रौक्षन्' प्रोक्षण करते भये, कैसे पुरुषकों? सोही कहे हैं. 'अग्रतः' सर्वसृष्टिके पहिले 'पुरुषम् जातम्' पुरुषपणे उत्पन्न भयेकों 'तेन' तिस पुरुषरूप पशुकरके 'देवाः' देवते 'अयजन्त' यजन करते भये, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भये इत्यर्थः। कौन वे देवते? सोही कहे हैं. 'साध्याः' सृष्टिके साधनयोग्य प्रजापतिप्रमुख 'ऋषयश्च' और तिनके अनुकूल ऋषि मंत्रोंके देखनेवाले जे हैं, ते सर्व यजन करते भये इत्यर्थः॥७॥

'सर्वहुतः' सर्वात्मक पुरुष जिस यज्ञमें आहवन करीए, सो यह सर्वहुतः, तैसें 'तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' मानसयज्ञसें 'पृषदाज्यम्' दधिमिश्रितघृतकों 'संभृतम्' संपादन करा, दधि और घृत यह आदिभोग्यजात सर्वसंपादन करा इत्यर्थः। तथा 'वायव्यान्' वायुदेवसंबंधी लोकमें प्रसिद्ध 'आरण्यान् पशून्' आरण्य पशुयोंकों 'चक्रे' उत्पन्न करता भया; आरण्यहरिणादिक। तथा 'ये च ग्राम्याः' गौ अश्वादि तिनकोंभी उत्पन्न करता भया ॥ ८ ॥ 'सर्वहुतस्तस्मात्' पूर्वोक्त 'यज्ञात्' यज्ञसें 'ऋचःसामानि जज्ञिरे' ऋच साम उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसेंही 'छंदांसि' गायत्रीआदि 'जज्ञिरे' उत्पन्न भए 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'यजुरप्यजायत' यजुर्वेदभी होता भया. ॥ ९ ॥

'तस्मात्' तिस पूर्वोक्त यज्ञसें 'अश्वा अजायन्त' घोडे उत्पन्न भए, तथा 'ये के च' जे केइ अश्वसें व्यतिरिक्त गर्दभ और खच्चरां 'उभयादतः' उर्ध्व अधोभाग दोनों दंतयुक्त होते हैं जिनके ते भी तिसयज्ञसेंही उत्पन्न हुए हैं, तथा 'तस्मात्' तिस यज्ञसें 'गावश्च जज्ञिरे' गौयां उत्पन्न हुई हैं, किंच 'तस्मात्' तिसयज्ञसें 'अजाः' बकरीयां और 'अवयः' भेडें भी 'जाताः' उत्पन्न भई. ॥ १० ॥

प्रश्नोत्तररूपकरके ब्राह्मणादि सृष्टि कहनेकों ब्रह्मवादियोंके प्रश्न कहते हैं। प्रजापति प्राणरूप देवते 'यत्' यदा 'पुरुषं' विराड्रूप पुरुषकों 'व्यदधुः' रचते भए, अर्थात् संकल्पकरके उत्पन्न करते भए, तब 'कतिधा' कितने प्रकारोंकरके 'व्यकल्पयन्' विविधरूप कल्पना करते भए? 'अस्य'

इस पुरुषका 'मुखं किम् आसीत्' मुख क्या होता भया? 'कौ बाहू अभूताम्' क्या दोनो बाहां होती भई? 'कौ ऊरू कौ च पादौ उच्येते' क्या साथल, और क्या दोनो पग कहीए? प्रथम सामान्य प्रश्न है, पीछे मुखं किम् इत्यादिकरके विशेषविषयक प्रश्न है ॥ ११ ॥

अब पूर्वोक्त प्रश्नोंके उत्तर कहते हैं, 'अस्य' इस प्रजापतिका 'ब्राह्मणः' ब्राह्मणत्वजातिविशिष्ट पुरुष 'मुखमासीत्' मुख होता भया, अर्थात् मुखसें उत्पन्न हुआ है, जो यह 'राजन्यः' क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट है, सो 'बाहूकृतः' बाहांकरके उत्पन्न करा है, अर्थात् बाहांसें उत्पन्न हुआ है, 'तत् तदानीं' तिससमय 'अस्य' इस प्रजापतिके 'यत् यौ ऊरू' जे दो ऊरू थे, तद्रूप 'वैश्यः' वैश्य होता भया, अर्थात् ऊरूयोंसें वैश्य उत्पन्न हुआ, तथा इस पुरुषके 'पद्भ्यां' दोनों पगोंसें 'शूद्रः' शूद्रत्वजातिमान् पुरुष 'अजायत' होता भया, यह कथन यजुर्वेदके सप्तमकांडमें स्पष्टपणें है. ॥ १२ ॥

जैसें दधिघृतादि द्रव्य, गवादि पशु, ऋगादि वेद और ब्राह्मणादि मनुष्य, तिससें उत्पन्न हुए हैं, तैसें चंद्रादि देवते भी तिससेंही उत्पन्न हुए हैं, सोही दिखाते हैं. प्रजापतिके 'मनसः' मनसें 'चंद्रमा जातः' चंद्रमा उत्पन्न भया 'चक्षोः' नेत्रोंसें 'सूर्यः अजायत' सूर्य उत्पन्न भया 'मुखात् इंद्रश्च अग्निश्च' मुखसें इंद्र और अग्नि दो देवते उत्पन्न भए, और 'प्राणाद्वायुरजायत' प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया. ॥ १३ ॥

जैसें चंद्रादिकोंको प्रजापतिके मनःप्रमुखसें कल्पना करते भए, तथा तैसेंही 'लोकान्' अंतरिक्षादिलोकोंको प्रजापतिके नाभि आदिकसें देवते 'अकल्पयन्' उत्पन्न करते भए, सोही दिखाते हैं। 'नाभ्याः' प्रजापतिकी नाभिसें 'अंतरिक्षमासीत्' आकाश उत्पन्न भया 'शीर्ष्णः' शिरसें 'द्यौः समवर्तत' स्वर्ग उत्पन्न हुआ 'पद्भ्यां भूमिरुत्पन्ना' पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और 'श्रोत्राद्दिश उत्पन्ना इति' श्रोत्र-कानोंसें दिशा उत्पन्न भई. ॥ १४ ॥ इत्यादि।

तथा—

यइमा विश्वाभुवनानिजुह्वदृषिर्होतान्यसीदत्पितानः।
सआशिषाद्रविणमिच्छमानःप्रथमच्छदवराँ २॥ ऽआविवेश ॥१७॥
कि॑स्विदासीदधिष्ठानमारम्भणंकतमत्स्वित्कथासीत्।
यतोभूमिंजनयन्विश्वकर्माविद्यामौर्णोन्महिनाविश्वचक्षाः ॥१८॥
विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखोविश्वतोबाहुरुतविश्वतस्पात्।
संबाहुभ्यांधमतिसंपतत्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देवएकः ॥ १९ ॥
कि॑स्विद्वनंकउसवृक्षआसयतोद्यावापृथिवीनिष्टतक्षुः।
मनीषिणोमनसापृच्छतेदुतद्यदध्यतिष्ठद्भुवनानिधारयन्॥ २०॥

यजुर्वेद१७अध्याये.

भावार्थः—प्रजाकों संहार सृजन करते विश्वकर्माकों देखता हुआ ऋषि कहता है। (यः) जो विश्वकर्मा (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि—यह जो सर्व (भुवनानि) भूतजातोंकों (जुह्वत्) संहार करता हुआ (न्यसीदत्) आपही बैठता हुआ, कैसा? (ऋषिः) अतींद्रियद्रष्टा सर्वज्ञ (होता) संहाररूप होमका कर्त्ता (नः) अस्माकम्—हम प्राणियोंका (पिता) जनक है। प्रलयकालमें सर्व लोकोंका संहार करके जो परमेश्वर आप एकेलाही रह गया था, तथा चोपनिषदः। "आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन मिषत्। सदेव सोम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयमित्याद्याः॥" (सः) तैसा पूर्वोक्त स्वरूपवाला सो परमेश्वर (आशिषा) अभिलाषकरके "वहुस्यां प्रजायेयेत्येवंरूपेण" ऐसे रूपकरके पुनः फेर रचनेकी इच्छारूपकरके (द्रविणमिच्छमानः) जगत्रूपधनकी अपेक्षा करता हुआ (अवरान्) अभिव्यक्त उपाधीयोंमें (आविवेश) जीवरूपकरके प्रवेश करता भया. कैसा? (प्रथमच्छत्) प्रथम एक अद्वितीयस्वरूपकों जो छादन करे सो 'प्रथमच्छत्' उत्कृष्ट रूपकों आच्छादन करता हुआ प्रवेश करता भया, (इच्छमानः) सो वांछा करता भया, 'वहु स्यां' बहुतरूप हो जाऊं इत्यादि श्रुतियोंसें जान लेना॥ १७॥

अथ ईश्वर जैसें जगत्कों सृजता है, सो प्रश्नोत्तरोंकरके कहते हैं। लोकमें घटादि करनेकी इच्छावाला कुंभकार, घरादिस्थानमें रहकरके मृत्तिकाआदि आरंभक द्रव्यरूपकरके, और चक्रादि उपकरणोंकरके घटादिक निष्पादन करता है। ईश्वरकों सो आक्षेप करते हैं। (स्विदिति) वितर्कमें है, द्यावाभूमी सृजता हुआ विश्वकर्माका (अधिष्ठानं किमासीत्) आधार क्या था? क्योंकि विना अधिष्ठानके कुछ भी नही कर सक्ता है (स्विदिति वितर्के) तर्क करते हैं, (आरंभणं कतमत् आसीत्) आरंभण क्या था? उपादान कारण क्या था? जैसें मृत्तिका घटोंका (कथा) क्रिया च किम्प्रकारा (आसीत्) क्रिया किसप्रकार थी? निमित्त कारण क्या था? दंडचक्रसलिलसूत्रादिकरके घटादि करते हैं, तिनसमान क्या था? (यतः) जिससें विश्वकर्मा जिस कालमें पृथिवी और स्वर्गकों (जनयन्) रचता हुआ (महिना) स्वसामर्थ्यकरके सृष्टि द्यावापृथिवीकों (और्णोत्) आच्छादित करता भया, कैसा विश्वकर्मा? (विश्वचक्षाः) सर्वद्रष्टा ॥ १८ ॥

उत्तर कहते हैं ॥ (एकः) अकेला असहायी (देवः) विश्वकर्मा (द्यावाभूमी जनयन्) स्वर्ग और भूमिकों रचता हुआ (बाहुभ्यां) बाहुस्थानीय धर्माधर्मकरके (संधमति) संयोगकों प्राप्त होता है, (पतत्रैः) पतनशीलवाले अनित्य पंचभूतोंकरके प्राप्त होता है, धर्माधर्मनिमित्तोंकरके पंचभूतरूप उपादानोंकरके साधनांतरके विनाही सर्व सृजन करता है, अथवा धर्माधर्मकरके च पुनः भूतोंकरके (संधमति) सम्यक् प्रकारकरके प्राप्त करता है जीवोंकों, कैसा है? (विश्वतश्चक्षुः) सर्व ओरसें चक्षु हैं जिसके (विश्वतोमुखः) सर्व ओरसें मुख हैं जिसके (विश्वतोबाहुः) सर्व ओरसें बाहां हैं जिसके (विश्वतःपात्) सर्व ओरसें पग हैं जिसके, सो परमेश्वरकों सर्व प्राण्यात्मक होनेसें जिस जिस प्राणीके जे जे चक्षु आदि हैं, ते सर्व तिस उपाधिवाले परमेश्वरकेही हैं; इसवास्ते सर्व जगे चक्षुआदि प्राप्त होते हैं इति. ॥ १९ ॥

पुनः फेर प्रश्न है (स्विदिति) वितर्कमें है (वनं किम् आस) सो वन कौनसा था? (उ) अपि च (सः वृक्षः कः) और सो वृक्ष कौनसा

था? (यतः) जिस वन, और वृक्षसें विश्वकर्मा, (द्यावापृथिवी) द्यावापृथिवीकों (निष्टतक्षुः) त्राछता घडता रचता अलंकृत करता हुआ; क्योंकि, तैसें वनवृक्षका संभव नही है. लोकमे तो घरादि वनानेकी इच्छावाला किसी वनमें किसी वृक्षकों छेदनकरके त्राछनादिकरके स्तंभादिक करता है, इहां जगत् रचनेमें सो है नही। एक अन्यवात है (मनीषिणः) हे बुद्धिमानो! (मनसा) मनकरके–विचारकरके (तत् इत् उ) सो भी (पृच्छत) तुम पूछो, सो क्या? (भुवनानि) जगत्कों (धारयन्) धारण करता हुआ विश्वकर्मा (यदध्यतिष्ठत्) जिस जगे रहता था सो भी तुम पूछो. कुंभकारादि जैसें घरादिकमें वैठके घटादि करते हैं, सो अधिष्ठान भी पूछो। इन सर्व प्रश्नोंका यह उत्तर है कि, ऊर्णनाभिवत् यह आत्मा (ईश्वर) सर्व जगत्का आरंभ करता है, ऊर्णनाभि (मकडी–करोलीया) अपने अंदरसेंही चेपवस्तु निकालके जाला रचता है, तैसेंही ईश्वर अपने अंदरसेंही सर्व कुछ निकालके जगत् रचता है, इसवास्ते इसजगत्का उपादानकारण, और निमित्तकारण ईश्वर आपही है अन्य नही ॥ २० ॥

॥ इति यजुर्वेदसंहितायां सप्तदशाध्याये ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानन्दसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रन्थे ऋग्वेदाद्यनुसारसृष्टिक्रमवर्णनो नाम सप्तमःस्तम्भः ॥ ७ ॥

॥ अथाष्टमस्तम्भारम्भः ॥

सप्तमस्तंभमें ऋगादिवेदानुसार सृष्टिक्रम वर्णन करा, अथाष्टम स्तंभमें पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकी यत्किंचित् समीक्षा करते हैं; तहां प्रथम हम वहुत नम्रतापूर्वक विनती करते हैं कि, पक्ष-कदाग्रहकों छोडके प्रेक्षावानोंकों यथार्थ तत्त्वका निर्णय करना चाहिये, परंतु यह नही समझना चाहिये कि, यह अमुक धर्म, और अमुक २ शास्त्र हमारे वृद्ध मानते आए हैं तो, अव हम इसकों त्यागके अन्यकों क्योंकर मान लेवे? क्योंकि ऐसी समज प्रेक्षावानोंकी नही है, किंतु यातो अज्ञ होवे, या दृढ कदाग्रही होवे, तिसकी ऐसी समझ होती है. इसवास्ते, वेद, स्मृति, पुराण, तथा जैन

बौद्ध, सांख्य, वेदांत, न्याय, वैशेषिक, पातंजल, मीमांसादि सर्वशास्त्रोंके कहे तत्त्वोंको प्रथम श्रवण पठन मनन निदिध्यासनादि करके जिस शास्त्रका कथन युक्तिप्रमाणसें बाधित होवे, तिसका त्याग करना चाहिये; और जो युक्तिप्रमाणसें बाधित न होवे, तिसकों स्वीकार करना चाहिये; परंतु मतोंका खंडनमंडन देखके द्वेषबुद्धि कदापि किसी भी मतउपर न करनी चाहिये. क्योंकि, सर्वमतोंवाले अपने २ माने मतोंकों पूरा २ सच्चा मान रहे हैं. इन पूर्वोक्त मतोंमेंसे सांख्य, मीमांसक, जैन और बौद्ध ये जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों नही मानते हैं, और वैदिक, नैयायिक, वैशेषिकादिमतोंके माननेवाले जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं; वेदमतवाले अन्यमतोंवालोंसें विलक्षणही जगत् और जगत्कर्त्ताका स्वरूप मानते हैं, और यह भी कहते हैं कि, वेदसमान अन्य कोइ भी पुस्तक प्रमाणिक नहीं है, इसवास्ते प्रथम हम वेदके कथनकोंही विचारते हैं कि, प्रमाणसिद्ध है वा नही? जेकर प्रमाणसिद्ध है, तब तो वाचकवर्गकों सत्य करके मानना चाहिये, और जेकर प्रमाणबाधित होवे तब तो, तिसका त्यागही करना चाहिये. वेदोंमें भी बडा, और प्रथम जो ऋग्वेद है, तिसके कथनकाही सत्य वा असत्यका विवेचन करते हैं.

ऋ० अ ८। अ ७। व १७। मं १०। अनु ११। सू १२९॥ प्रलयदशामें जगत्उत्पत्तिका कारणभूत माया, सत्स्वरूपवाली भी नहीं थी, और असत्स्वरूपवाली भी नही थी, किंतु सत् असत् दोनों स्वरूपोंसें विलक्षण अनिर्वाच्यस्वरूपवाली थी.

उत्तरपक्षः—जहां असत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव सत्का विधि मानना पडेगा; और जहां सत्का निषेध करेंगे, तहां अवश्यमेव असत् मानना पडेगा; और जहां असत् सत् दोनोंका युगपत् निषेध करेंगे, तहां सत् असत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे; और जहां सत् असत् दोनों युगपत् निषेध करेंगे, तहां असत् सत् दोनों युगपत् मानने पडेंगे. असत् और सत् ये दोनों एक स्थानमें रह नही सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो सत् असत् दोनों पक्षोंसें विलक्षण तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, इसवास्ते श्रुतिका कथन सत्य है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुम अनिर्वाच्यत्व मानते हो तो, इसके अक्षरोंका यह अर्थ होता है; निस्शब्द प्रतिषेधार्थमें है, सो प्रतिषेध, या तो भावका होना चाहिये, वा अभावका. नकारप्रतिषेध भी, या तो भावका निषेध करेगा, या अभावका. तव तो, अनिर्वाच्यत्वका अर्थ भी भाव, वा अभाव सिद्ध होवेगा; तो फेर अनिर्वाच्यत्व कहनेसें भाव, वा अभावसें अधिक कुछ भी नहीं सिद्ध होता है, इसवास्ते माया, या तो सत् माननी पडेगी, वा असत् माननी पडेगी.

पूर्वपक्षः—प्रतीतिके जो अगोचर होवे, तिसकों हम अनिर्वाच्यत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—प्रलयदशामें सो प्रतीति अगोचर था, जो जीवोंके प्रतीति अगोचर था कि, ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था? प्रथम पक्ष तो संभव होही नहीं सक्ता है; क्योंकि, प्रतीति करनेवाले जीव तो तिस प्रलयदशामें विद्यमानही नही थे तो, प्रतीति गोचर वा अगोचर किसकी अपेक्षा कहनेमें आवे? जेकर ब्रह्मके प्रतीति अगोचर था, तव तो माया, वा जगत्का कारण, खरशृंगवत् एकांत असत्रूप हुआ. तव तो, तिससें जगत् उत्पत्ति त्रिकालमें भी नही होवेगी. जेकर ब्रह्मके प्रतीति गोचर है, तव तो माया, सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी, तिसके सिद्ध होनेसें अद्वैत ब्रह्म त्रिकालमें भी सिद्ध नही होवेगा; इसवास्ते, 'नासदासीन्नोसदासीत्' यह कहना युक्तिसें बाधित है. तथा 'आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत्' ॥ 'सदेव सौम्येद मग्र आसीत्' ॥ इन दोनों श्रुतियोंसें यह सिद्ध होता है कि, जगत् उत्पत्तिसें पहिले आत्मा, अर्थात् ब्रह्मही एकला था, अन्य कुछ भी नही था. ॥ तथा हे सौम्य! सत्ही यह आगे था, अन्य कुछ भी नही था! प्रथम तो ऋग्वेदकी पूर्वोक्त श्रुतिसें ये दोनों श्रुतियों विरुद्ध मालुम होती हैं. क्योंकि, इन दोनों श्रुतियोंसें तो, विना एक ब्रह्मात्मा सत्स्वरूपसें अन्य कुछ भी नही था, ऐसा सिद्ध होता है. तव तो माया, अपरनाम जगत् उत्पत्तिका कारण, कदापि सिद्ध नही होवे-

गा; तो फेर, ऋग्वेदकी श्रुतिकी कही अनिर्वाच्य माया, प्रलयदशामें क्योंकर सिद्ध होवेगी? जेकर कहोंगे, अव्याकृत, अर्थात् माया, और ब्रह्मके पृथक्रूप न होनेसें एकही आत्मा कहा है; तब तो, ब्रह्मकेसाथ ओतप्रोत होनेसें ब्रह्मके सत्स्वरूपकीतरें, माया भी सत्स्वरूपवाली सिद्ध होवेगी. तब तो ऋग्वेदकी श्रुतिने जो प्रलयदशामें मायाकों सत् असत् स्वरूपसें विलक्षण जो अनिर्वाच्य कथन करी है, यह कहना मिथ्या सिद्ध होवेगा.

और जब एकही ब्रह्म सत्स्वरूप था, तब तो इस जगत्का उपादान कारण भी सत्स्वरूप ब्रह्मही सिद्ध होवेगा, तब तो यह जडचैतन्य पंचरूप जगत् ब्रह्मरूपही सिद्ध हुआ. तब तो, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, ज्ञान, अज्ञान, सत्कर्म, असत्कर्म, स्वर्ग, नरक, धर्मी, अधर्मी, साधु, असाधु, सज्जन, दुर्जन, गुरु, शिष्य, शास्त्र, इत्यादि कुछ भी सिद्ध नही होवेगा. तब तो, चार्वाक, और वेदांतमतवालोंके सदृशपणाही सिद्ध हुआ. क्योंकि, चार्वाक तो, चार भूतोंकाही कार्यरूप यह जगत् मानते हैं, अन्यधर्माधर्मादि ऊपर कहे हुए है नही. और वेदांती, सर्व इस जडचैतन्यरूप जगत्का उपादानकारण एक सत्स्वरूप ब्रह्मही मानते हैं, इसवास्ते तिनके मतमें भी ऊपर कहे धर्माधर्मादिक नही है. इसवास्ते चार्वाक, और वेदांतमतवाले ये दोनों नास्तिक सिद्ध होते हैं. क्योंकि, जो जीवोंकों अविनाशी नही मानता है, और पुण्यपापके हेतु,और पुण्यपापके फल भोगनेके स्थान नही मानता, आत्माकों भवांतर गमन करनेवाला नही मानता है, और देवगुरुधर्मकों नही मानता है, सो नास्तिक है; येह पूर्वोक्त सर्व लक्षण वेदांतमतमें मिलते हैं. क्योंकि, जब सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो सत्स्वरूप ब्रह्ममें अन्य कुछ भी पुण्यपापादि न माने जावेंगे, इसवास्ते असली वेदांतका सिद्धांत, अंतमें नास्तिक सिद्ध हो जाता है.

पूर्वपक्षः—प्रलयदशामें एकही सत्स्वरूप ब्रह्म था, परंतु यजुर्वेदके सप्तदश (१७) अध्यायमें, और उपनिषदोंमें कहा है, और्णनाभि, अर्थात् मकडी कोलिकनामा जीव, जैसें अपने अंदरसेंही चेप जैसी वस्तु नि-

कालके जाल बनाता है, ऐसेंही सत्स्वरूप ब्रह्म, अपने आपहीमेंसे इस जगत्का उपादान कारण निकालके तिससेंही यह जगत् रचना करता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! यह जो और्णनाभि–मकडीका दृष्टांत दिया है, सो भी अयुक्त है, क्योंकि, और्णनाभि–मकडी जो है, सो केवल चैतन्य नही है, किंतु तिसका चैतन्यस्वरूपवाला जीव शरीररूप जड उपाधिवाला है, मनुष्यशरीरवत्; इसवास्ते, सो जंतु जो कुछ शरीरद्वारा आहार करता है, सो तिसके शरीरके अंदर चेप मलमूत्रादिपणे परिणमता है, मनुष्यके आहार करणेसें वात पित्त कफ मल मूत्र लालादिवत् तथा और्णनाभीने जो जाला रचा है, तिसका उपादान कारण और्णनाभि नही है, किंतु जालेका उपादानकारण और्णनाभिके शरीरमें जो चेपादि वस्तु है, सो है; इससें यह सिद्ध हुआ कि, ब्रह्मात्माके अन्य कुछक जडचैतन्यवस्तुयों थी, जिन उपादान कारणोंसें जडचैतन्यकार्यरूप संसार— रचा. परंतु ब्रह्मनें स्वयमेवही जगत्रूपकों धारण स्वीकार नही करा, ऐसें मानोंगे, तब तो अद्वैतकी हानी होवेगी. इसवास्ते, और्णनाभिका दृष्टांत भी असंगत है.

तथा जब प्रलयदशा होती है तब केवल एकही ब्रह्म होताहै? वा माया और ब्रह्म ये दो होते हैं? वा मायाकरके अव्याकृत ब्रह्म, अर्थात् माया और ब्रह्म क्षीरनीरकीतरें अपृथक्पणें मिश्रित होते हैं? प्रथमपक्षमें तो शुद्ध, बुद्ध, सच्चिदानंद, अक्रिय, कूटस्थ, नित्य, सर्वव्यापक, ऐसे ब्रह्मसें तो त्रिकालमें कदापि सृष्टि नही होवेगी, निरुपाधिक होनेसें, मुक्तात्मावत्. ।१। जेकर दूसरा पक्ष मानोंगे, तब तो द्वैतापत्तिसें त्रिकालमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी.।२। जेकर तीसरा पक्ष मानोगे, तब तो तीनोंही कालमें एक शुद्ध ब्रह्मकी सिद्धि न होवेगी.

और ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी श्रुतियोंमें लिखा है कि—ब्रह्मके चार भागोंमेंसें तीन भाग तो सदा मायाप्रपंचसें रहित शुद्ध सच्चिदानंदरूप अपने स्वरूपमेंही प्रकाश करता हुआ व्यवतिष्ठित रहता है, और एक चौथा भाग सो मायामें मायासंयुक्त हो कर, अथवा सदा मायासं-

युक्त हुआ थका सृष्टिसंहार करके वारंवार आता है, मायामें आयांअनंतर देव मनुष्य तिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका जड चैतन्यके रूपकों व्याप्त होता है इत्यादि—अब हे प्रियवाचकवर्गो! तुम विचार करो कि, जब एक अद्वैतही शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप माना, तो फेर तिसका एक भाग तो मायासहित, और तीन भाग मायारहित निरुपाधिक संसारके स्पर्शरहित अमृतरूप कैसें हो सक्ते हैं? तथा चौथा भाग जो मायावाला है, सो क्या ब्रह्मसें भिन्न है? जेकर भिन्न है, तब तो दो ब्रह्म मानने पडेंगे; एक तो तीन गुणाधिक शुद्ध ब्रह्म, और एक चतुर्थांश मायावाला. जेकर तो ये दोनों ब्रह्म अनादिसें भिन्न है, तब तो तीनों कालोंमें भी अद्वैतकी सिद्धि नही होवेगी, जेकर एकही ब्रह्मका चतुर्थांश मायावान् है, शेष तीन भाग निर्मल है, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, यह चौथा भाग अनादिसेंही मायावान् है, वा पीछेसें मायाका संबंध हुआ है? जेकर कहोंगे कि, अनादिसेंही मायावान् है, तब तो ब्रह्म सावयव वस्तु सिद्ध होवेगा, जैसें देवदत्तके पगऊपर कुष्टका रोग है, शेषशरीर निरोग है; ऐसेंही ब्रह्मके तीन अंश तो निर्मल हैं, और एक अंश मायासंयुक्त है. इससें ब्रह्म सावयव सिद्ध होता है. और तीन अंशोंसें तो सच्चिदानंदस्वरूपमें मग्न है, और एक अंशकरके जन्म, मरण, रोग, शोक, जरा, मृत्यु, अनिष्टसंयोग, इष्टवियोगादि अनंत दुःखोंको भोग रहा है; और सदाही जिसकी ये दो अवस्था वनी रहेगी, तो फेर मुक्तरूप कौन ठहरा? और संसाररूप कौन ठहरा? जिस मायाने ब्रह्मके चौथे अंशकी ऐसी दुर्दशा कर रक्खी है, फेर तिस मायाकों सदा न मानना यह कैसी भूल है?

जेकर कहोंगे ब्रह्मका चतुर्थांश मायासंयुक्त आदिवाला है, जब ब्रह्ममें फुरणा होती है; तब चतुर्थांश मायावान् हो जाता है, यह भी ठीक नही, क्योंकि, फुरणेसें पहिलें तो माया नही थी, तो फेर फुरणा किस निमित्तसें हुआ? जेकर कहोंगे ब्रह्मस्वभावसेंही फुरणावाला होता है, तब तो संपूर्ण ब्रह्मकों युगपत् फुरणा होना चाहिये, नतु चतुर्थांशकों. जेकर कहोंगे

चतुर्थांशमेंही फुरणा होता है, नतु तीन अंशोंमें, तीन अंश तो सदा अफु-रही रहते हैं, तब तो ब्रह्ममें स्वभावभेद हुआ, स्वभावभेदसेंही ब्रह्म अनित्य सिद्ध होवेगा, "स्वभावभेदो ह्यनित्यताया लक्षणमितिवचनात्."

पूर्वपक्षः—प्रलयदशामें अव्याकृत ब्रह्म है, जब सर्व जीवोंके करे हुए शुभाशुभ कर्म परिपक्व हुए थके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों साक्षी फलप्रदाता होनेसें सृष्टिकी इच्छा होती है.

उत्तरपक्षः—इस कथनसें तो ऐसा सिद्ध होता है कि, अव्याकृत ब्रह्ममें अनंत जीव, और अनंततरेंके तिन जीवोंकरके पुण्यपाप, और पचं भूतोंका उपादान कारण, ये सर्व सामग्री ब्रह्ममें सूक्ष्मरूप होके लीन हुइ होइ थी; जब ऐसें था, तब तो अद्वैतकी सिद्धि कदापि नही होवेगी. जेकर कहोंगे ये सर्व सामग्री ब्रह्मसें अभेदरूप होके ब्रह्मके साथ रहती थी, तब तो सर्व कुछ ब्रह्मा द्वैतरूपही हुआ; जब अद्वैत ब्रह्मही था, तब तो जीव अनंत पूर्वकल्पके करे अनंततरेंके पुण्यपाप और पुण्यपाप परिपक्व होके फल देनेके उन्मुख होते हैं, तब ईश्वरकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह सर्व कहना महामिथ्या सिद्ध होवेगा. क्योंकि, न तो कोइ ब्रह्मसें अन्य जीव है, न शुभाशुभ कर्म है, न कर्त्ता है, न फल है, और न फल देनेके उन्मुख कर्म होते हैं. क्योंकि, एक ब्रह्माद्वैतही तत्त्व है.

पूर्वपक्षः—ब्रह्मही अनंत जीव है, ब्रह्मही शुभाशुभ कर्म, ब्रह्मही कर्मका कर्त्ता, ब्रह्मही कर्मफल भोक्ता, ब्रह्मही अपने करे कर्मफल भोगनेकी इच्छा करके जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब तुम्हारे कहे प्रमाण सर्व कुछ ब्रह्मही है, तब तो तुम्हारे ब्रह्मसमान अज्ञानी, अविवेकी, आत्मघाती, अन्य कोइ भी नही है. क्यों-कि, जब नानायोनियोंमें नानाप्रकारके शीत, ताप, क्षुधा, तृषा, संयोग, वियोग, कुष्ट, जलोदर, भगंदर, अप्समार, क्षयी, ज्वर, शूल, नेत्रवेदना, मस्तकवेदना, जन्म मरणादि अनंत दुःख अपने करे कर्मोंसें भोगता है, तब तो पाप करनेके अवसरमें ब्रह्मकों यह मालुम नही था कि, इन

कर्मोंका मुझे महादुःखरूप फल होवेगा; इसवास्तेही पाप करे; इस हेतुसें तुह्मारा ब्रह्म अज्ञानी सिद्ध होता है. तथा जेकर ब्रह्म विवेकी होता तो, पुण्यफलरूप शुभकर्मही करता, नतु अशुभ; परंतु उसने तो शुभाशुभ दोनो प्रकारके कर्म करे हैं, इसवास्ते तुह्मारा ब्रह्म अविवेकी सिद्ध होता है. जब आपही अपने दुःख भोगनेवास्ते जगत् रचता हैं, तब तो अपने पगों-में आपही कुहाडा मारता है, इसवास्ते आत्मघाती भी सिद्ध होता है.

प्रलय दशामें माया, जीव, जीवोंके कर्म, सर्व सूक्ष्मरूप होके ब्रह्ममें लीन थे, जब ब्रह्मकों जीवोंके करे कर्म परिपक्व फल देनेमें सन्मुख हुए, तब परमात्माकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है, यह कथन ४ अंककी श्रुतिमें है, इसमें हम यह पूछते हैं कि, प्रथम तो, जे शुभाशुभ कर्म जीवोंने करे थे, ते कर्म रूपी थे कि, अरूपि थे ? जेकर रूपि थे तो, क्या जड थे, वा चेतन थे ? अत्र द्वितीयपक्ष तो स्वीकारही नही है, संभव न होनेसें । अथ प्रथमपक्षः—जेकर जड थे, तब तो परमाणुयोंके कार्य थे, वा अन्य कोइ उनका सपादन कारण था ? जेकर परमाणुयोंके कार्यरूप थे, तव तो अद्वैतकी हानी सिद्ध होती है; जेकर अन्यकोइ उपादान कारण मानोंगे, सो तो है नही; क्योंकि परमाणुयोंके विना अन्य कोइ कारण, रूपी कार्यका नही है; जेकर अरूपि जड थे, तब तो सिद्ध हुआ कि, आकाशकेविना अन्य कोइ वस्तु नही थी, और आकाश कर्मोंका उपादानकारण नही सिद्ध होता है; जेकर अरूपि चेतन थे, तब तो जीव, कर्मोंका उपादान कारण सिद्ध हुआ, जब कर्म चेतन हुए, तब तो जीवोंके ज्ञान विचारोंकेही नाम कर्म हुए. अथ जो वह कर्म ज्ञानरूप है, ते परिपक्व फल देनेके उन्मुख हुए थके, क्या ब्रह्मकों खाज उत्पन्न करते हैं ? जो हम फल देनेके सन्मुख हुए है, इसवास्ते जगत् रचो ! वा अंदर कोइ कर्मकी खेती बोइ हुइ है ? जिसके देखनेसें ब्रह्मकों सृष्टि करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है ! वा वे कर्म ईश्वरकों चुहंडीयां भरते है ? जिसमें ईश्वर जानता है कि, येह परिपक्व होके फल देनेके सन्मुख हुए हैं ! अथवा कर्म ब्रह्मकेसाथ लडाइ करते हैं ? कि, जीवोंकों तूं

हमारा फल क्यों नही देता है? इस हेतुसें ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ ? अथवा वे कर्म ईश्वरके साथ लडके ईश्वरकी आज्ञासें बाहिर हुए चाहते हैं, तिनके राजी रखनेकों ईश्वरकों सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न होवे हैं? इत्यादि अनेक विकल्प कर्मोंमें उत्पन्न होते हैं. परंतु प्रथम तो चारों वेदोंमें, और अन्य मतोंके शास्त्रोंमें, कर्मोंका यथार्थ स्वरूप-ही कथन नही करा है. जेकर कर्मोंका स्वरूप लिखा भी है, तो भी, जीव-हिंसा करनी, मृषा बोलना, चोरी करनी, परस्त्रीगमन करना, क्रोध, लोभ, मद, माया, छल, दंभादि करनेका नाम कर्म लिखा है; परंतु येह तो कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, नतु कर्म. जैसें घट उत्पन्न करनेमें कुलालका चक्रभ्रमणादिव्यापाररूप क्रिया है, तिस क्रियासें घट उत्पन्न होता है; तैसेंही, जीवहिंसादि पूर्वोक्त सर्व कर्मोंके उत्पन्न करनेकी क्रिया है, परंतु कर्म नही. तथा कितनेक कहते हैं, प्रारब्ध कर्म १, संचितकर्म २, और क्रियमाण कर्म ३, ये तीनप्रकारके कर्म है. परंतु कर्म वस्तु क्या है? जब संचित कर्म है, वो संचयिक वस्तु क्या है? जो फल देनेमें उन्मुख होवे, सो कर्म क्या वस्तु है? जे कर्म जीवकेसाथ प्रवाहसें अना-दि संबंधवाले हैं, वे क्या वस्तु है? हे ! प्रियवाचकवर्गो ! किसीमतमें भी यथार्थ कर्मोंका स्वरूप नही लिखा है, इसवास्तेही अर्हन् भगवान्‌के विना सर्वमतोंवाले यथार्थ कर्मस्वरूपके न जाननेसें सर्वज्ञ नही थे.

पूर्वपक्षः—अर्हन् भगवान्‌ने कर्मोंका कैसा स्वरूप कथन करा है ?

उत्तरपक्षः—विस्तार देखना होवे तब तो, षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्म-प्रकृतिआदि शास्त्रोंकों गुरुगम्यतासें पठन करो; और संक्षेपसें देखना होवे तो, हमारी रची जैनप्रश्नोत्तरावलिसें कर्मोंका किंचिन्मात्रस्वरूप देख लेना.

अब हम ऊपर सप्तम स्तंभमें लिखी वेदकी श्रुतियोंकीही किंचित् परी-क्षा करते हैं. तीसरी श्रुतिमें लिखा है कि, सृष्टिसें पहिले प्रलयदशामें भूत भौतिक सर्व जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, अर्थात् आत्मतत्त्वके आवरक होनेसें माया, अपरसंज्ञाभावरूप अज्ञान इहां तमः

ऐसा कहते हैं. ॥ परीक्षा ॥ जब प्रलयदशामें भूत भौतिक जगत् अज्ञानरूप तमःकरके आच्छादित था, तब तो भूत भौतिक जगत् विद्यमान सिद्ध होता है. क्योंकि, कोइ वस्तु ढांकणेसे अभावरूप नही होती है, तब तो ब्रह्मने प्रलयकरके आपही आपना सत्यानाश करा. जैसें कोइ पुरुष नानाप्रकारकी क्रीडारंग विनोद भोग विलासादि करता हुआ, एकदम अपना सर्व ऐश्वर्य नाशकरके आंखोंके आगे पट्टी बांधकर किसी अंधकारवाली पर्वतकी गुफामें जा पडे तो, तिसकों अवश्यमेव मूर्ख कहना चाहिए. क्योंकि, जिसकों अपने आपके हितकी इच्छा नही है, तिससें अधिक अन्य कौन पुरुष मूर्ख है ? कोइ भी नही है.किंच पुरुष तो, किसी पर्वतकी गुफामें जा पडा है, परंतु सृष्टि संहारकरके ब्रह्म अज्ञानाच्छादित होके किस स्थानमें रहता था ? क्योंकि, प्रलयदशामें आकाश तो था नही; और विना आकाशके कोइ जड चेतन वस्तु रह नही सक्ती है. और विना आकाशके वस्तुका रहना मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है, प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे. प्रलय करेनेसें तो जगत् संहारी होनेसें ब्रह्मात्माकों निर्दय और आत्मघाती कहना चाहिए; और प्रलय न करे तो, ब्रह्मकी कुछ हानि नही है, और सृष्टि न करे तो भी कुछ हानि नही है, तो फेर, विनाप्रयोजन पूर्वोक्त काम करनेसें कौन बुद्धिमान् परमात्माकों सर्वज्ञ कृतकृत्य वीतराग करुणासमुद्र इत्यादि विशेषणोंवाला मान सक्ता है ? जेकर परमात्मा सृष्टि न रचे तो, इसमें उसकी क्या हानि है?

पूर्वपक्षः–जेकर ईश्वर सृष्टि न रचे तो, जीवोंके करे शुभाशुभ कर्मोका फल जीवोंके भोगनेमें क्यों कर आवे ?

उत्तरपक्षः—जेकर ईश्वर जीवोंके कर्मोका फल न भुक्तावे तो, ईश्वरकी क्या हानि होवे ? क्योंकि तुमारे मतमूजब जीव आपतो कर्मोका फल भोग सक्तेही नही, और ईश्वर सृष्टि रचे नही, तब तो बहुतही अच्छा काम होवे, न तो जीव पूर्वकर्मका फल भोगे, और न नवीन शुभाशुभ कर्म आगेंकों करे, सदा काल प्रलयदशामेंही परमानंदकों ब्रह्मानंदमें लय होके भोगा करे. क्योंकि, उपनिषदोंमें लिखा है कि, सुषुप्तिमें आत्मा ब-

ह्ममें लय होके परमानंदकों भोगता है, जब सुषुप्तिमें यह दशा है तो, प्रलयरूप महासुषुप्तिमें तो परमानंदका क्या कहना है ? इससें तो जब ईश्वर सृष्टि रचता है, तब जीवोंके परमानंदका नाश करता है, यह सिद्ध होता है. तो फेर, ईश्वर सृष्टि क्यों रचता है ?

पूर्वपक्षः—जेकर ईश्वर सृष्टि रचके जीवोंकों कर्मफल न भुक्तावे, तब तो ईश्वरका न्यायशीलता गुण रहे नही, जगत्में न्यायाधीश होके जो बुरेकों सजा न देवे सो न्यायाधीश नही है.

उत्तरपक्षः—वेदमतमें तो एक ब्रह्मके विना अन्य कोइ जीवात्मा हैही नही तो, क्या ब्रह्म आपही न्यायाधीश बनता है ? और आपही अशुभ कर्म करके सजाका पात्र होके दंड लेता है ? यह तो ऐसा हुआ, जैसे किसीनें आपही पापकर्म करे, और तिनके फल भोगनेवास्ते अपने हाथसेंही अपने नाक कान हाथ पग मस्तकादि छेदन कर डाले; इससें तो, ब्रह्म प्रथम पाप न करता, तथा ईश्वर अन्य जीवोंकों नवीन पाप न करने देता, तब तो सदाकाल प्रलयदशाही रहती. न तो सृष्टि रचनी पडती, और न सृष्टिका संहार करना पडता, और न जीवोंकों कर्मका फल देना पडता, सदाही परमानंद भोगता रहता. यह तो ब्रह्मने सृष्टि क्या रची, आपही अपने पगमें कुहाडा मारा! ऐसे अज्ञानीकों कौन बुद्धिमान् ब्रह्मेश्वर मान सक्ता है ? इसवास्ते जो प्रलयका स्वरूप श्रुतियोंने कहा है, सो केवल प्रलापमात्र है; युक्तिविकल होनेसे. ॥ इति प्रलयसमीक्षा ॥ चौथी श्रुतिमें लिखा है कि, परमात्माके मनमें सृष्टि रचनेकी इच्छा उत्पन्न भइ, यह कहना भी मिथ्या है, क्योंकि, शरीरके विना कदापि मन नही होता है, शरीरविना मन है ऐसा सिद्ध करनेवाला प्रत्यक्ष, वा अनुमानादिप्रमाण नही है. परंतु शरीरविना मन नही, ऐसा तो प्रत्यक्ष अनुमानसें सिद्ध हो सक्ता है. और मनविना इच्छा कदापि सिद्ध नही इसवास्ते प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर होना चाहिए; जेकर प्रलयदशामें भी ब्रह्मके शरीर मानोंगे, तब तो यह प्रश्न उत्पन्न होवेगा कि, शरीर ब्रह्मके साथ अनादिसें संबंधवाला है कि, आदिसंबंधवाला है? जेकर अनादि संबंधवाला है, तब

तो 'नासदासीन्नोसीत्' इत्यादि यह श्रुति मिथ्या ठहरेगी, और ब्रह्म मुक्तरूप न ठहरेगी और तीन भाग ब्रह्मके सदा निर्लेप मुक्तरूप, और चोथा भाग मायावान् यह भी सिद्ध नही होवेगा क्योंकि, एक भाग शरीरवाला, और तीन भाग शरीररहित, यह युक्तिसें विरुद्ध है; इससें तो ब्रह्मके दो भाग हो गए, तब संपूर्ण ब्रह्म मुक्तरूप सिद्ध न हुआ. और अद्वैतमतकी तो, ऐसी जड कटेगी कि, फेर कदापि न उत्पन्न होवेगी. इसवास्ते अनादिशरीरसंबंधवाला ब्रह्म मानना यह प्रथम पक्ष मिथ्या है.

अथ दूसरा पक्ष सादिशरीसंबंधवाला ब्रह्म है, ऐसा मानोंगे, तब तो शरीर भी ब्रह्मने इच्छा पूर्वकही रचा सिद्ध होवेगा, इच्छा मनका धर्म है, और मन शरीरविना नही होता है, इसवास्ते इस शरीरसें पहिले अन्यशरीर अवश्य होना चाहिए; तिससें आगे अन्य, इसतरें माननेसें अनवस्थादूषण होवे है, इसवास्ते दूसरा पक्ष भी मानना मिथ्या है. इस कथनसें यह सिद्ध हुआ कि, प्रलयदशामें ब्रह्मके शरीर नहीं है, और शरीरविना मन नही हो सक्ता है, और मनविना इच्छा नही होती है और इच्छाके विना ब्रह्म कदापि सृष्टि नहीं रच सक्ता है.

पूर्वपक्षः—सृष्टि और प्रलय ये दोनों करनेका ईश्वरका स्वभावही है इसवास्ते सृष्टि रचता है और प्रलय करता है.

उत्तरपक्षः—एकवस्तुमें अन्योन्य विरुद्ध, दो स्वभाव नहीं रह सक्ते हैं.

पूर्वपक्षः—हम तो परस्पर विरुद्धस्वभाव मानते हैं.

उत्तरपक्षः—ये दोनों स्वभाव नित्य है कि, अनित्य है? ईश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? रूपी है कि, अरूपी है? जड है कि, चेतन है? जेकर ये दोनों स्वभाव नित्य है, तब तो ये दोनों स्वभाव युगपत् सदा प्रवृत्त होवेंगे, तब तो ईश्वर सदाही सृष्टि रचेगा, और सदाही प्रलय करेगा; तब तो, न सृष्टि होवेगी; और न प्रलय होवेगी. जैसें एक पुरुष दीपक जलाया चाहता है, तब दुसरा पुरुष जलानेके समयमेंही बुजाया करता है, तब तो दीपक न जलेगा, और न बुजेगा. इसीतरें ईश्वरका सृष्टि रचनेका स्वभाव तो सृष्टि रचेहीगा, और ईश्वरका प्रलय करनेका

स्वभाव तिस समयमेंही प्रलय करेगा, तब तो सृष्टि, और प्रलय, ये दोनोंही होवेंगी; इसवास्ते प्रथम विकल्प मिथ्या है.

जेकर ये दोनों स्वभाव अनित्य है तो, क्या ब्रह्मेश्वरसें भिन्न है कि, अभिन्न है? जेकर भिन्न है तो, ईश्वरके ये दोनों स्वभाव नही है; ईश्वरसें भिन्न होनेसें. जेकर अनित्य, और अभिन्न है, तब तो जैसें स्वभाव उत्पत्तिविनाशवाले है, तैसें ईश्वर भी उत्पत्तिविनाशवाला मानना चाहिए; स्वभावोंसें अभिन्न होनेसें. परं ऐसें मानते नही है, इसवास्ते यह पक्ष भी मिथ्या है.

जेकर स्वभाव रूपी है, तब तो ईश्वर भी रूपीहि होना चाहिए; क्योंकि, स्वभाव वस्तुसें भिन्न नही होता है. तब तो ईश्वरकों रूपी होनेसें जडताकी आपत्ति होवेगी, इसवास्ते यह भी पक्ष मिथ्या है. जेकर दोनो स्वभाव अरूपी है तब तो किसी भी वस्तुके कर्त्ता नही हो सक्ते है, अरूपित्व होनेसें; आकाशवत्. इसवास्ते यह भी पक्ष मानना मिथ्या है.

जड पक्ष, रूपी पक्षकीतरें खंडन करना. और चेतन पक्ष, नित्यानित्य, और भेदाभेद पक्षमें अवतारके उपरकीतरें खंडन जान लेना. इसवास्ते स्वभाव पक्ष मानना केवल अज्ञानविजृंभित है; और श्रुतियोंमें जो सृष्टि रचनेकी इच्छा ईश्वरमें मानी है, सो भी अज्ञानविजृंभित प्रलापमात्रही है; परीक्षाऽक्षमत्वात्. ॥ इतिसृष्टिरचनायामीश्वरेच्छाखंडनम् ॥

छट्ठी श्रुतिमें पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न करे है कि, कौन पुरुष परमार्थसें जानता है, और कौन कह सक्ता है कि, यह दिखलाइ देती नाना प्रकारकी सृष्टि किस उपादानकारणसें, और किस निमित्तकारणसें उत्पन्न भइ है? मनुष्य नही जानते, और नहीं कह सक्ते हैं; परंतु देवते सर्वज्ञ हैं, वे तो जानते होवेंगे, और कह भी सक्ते होवेंगे? इस शंकाके दूर करनेवास्ते कहते हैं, अर्वागिति। इस भौतिक सृष्टिके उत्पन्न करे पीछें सर्व देवते उत्पन्न हुए हैं; इसवास्ते देवते भी नही जान सक्के, और नही कह सक्के हैं. शुक्लयजुर्वेदके १७ अध्यायकी १८।१९।२०। श्रुतियोंमें भी पूर्वपक्षकी तर्फसें प्रश्न पूछे हैं। परंतु ऋगवेदमें तो यह उत्तर दिया है कि, परमात्माने अपनी सामर्थ्यसें

यह जगत् रचा है, और धारण भी परमात्माही करता है.। और यजुर्वेदमें यह उत्तर दिया है कि, और्णनाभिकीतरें जगत् रचता है.। ऋग्वेदसें यह अधिक कहा है, और्णनाभिके दृष्टांतकों तो हम ऊपर खंडन कर आए हैं, और शेष उत्तर तो, श्रुति कहनेवालेकी प्रिय स्त्रीहीं मानेगी परंतु प्रेक्षावान् तो कोइ भी नही मानेगा. क्योंकि, जवतांइ परमात्मा सर्व सामर्थ्यवान् उपादानादि सामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध न होवेगा, तबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसे आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ है, ऐसा सिद्ध नही होवेगा. और जबतांइ यह जगत् विना उपादान निमित्तकारणोंसें आकाशादि अपेक्षाकारणके विनाही ईश्वरका रचा हुआ सिद्ध नही होवेगा, तबतांइ परमात्मा सर्वसामर्थ्यवान् उपादानादिसामग्रीविना अपनी महिमासें जगत् रचनेवाला सिद्ध नही होवेगा. यह इतरेतराश्रय दूषण है; इसवास्ते ऊपर लिखी श्रुतियोंमें जो सृष्टिबाबत कथन है, सो भी प्रलापमात्रही है.

इसवास्तेही अक्षपाद, गौतममुनिनें वेदोंकों अप्रमाणिकपणा मानकेही न्यायसूत्रोंमें, और कणादमुनिनें वैशेषिकसूत्रोंमें आकाशको नित्य, और सर्वव्यापक माना. और दिशा, आत्मा, मन, काल और पृथिवींआदि भूतोंके परमाणुयोंकों नित्य माने. इत्यादि जो वेद विरुद्ध प्रक्रिया रची, सो वेदकी प्रक्रियाकों अप्रमाणिक मानकेही रची सिद्ध होती है. और जैमिनीनें अपने मीमांसाशास्त्रमें जगत्को अनादि माना है, ईश्वर सर्वज्ञ सृष्टिका कर्त्ता मान्याही नही है. वो भी तो, श्रीव्यासजीकाही शिष्य था, और मुख्य सामवेदी यही था; तिसने तो, ईश्वरविषयक मंडल, अष्टक, अध्याय, अनुवाक, सूक्त, सर्व नवीन प्रक्षेपरूप मानके प्रमाणिक नही माने हैं. इसवास्ते वेदोक्त सृष्टि रचना अज्ञानीयोंकी कल्पना करी हुइ है, इसवास्ते वेदका कथन सत्य नही है.

अथ ऋग्वेद अष्टक ८ अध्याय ४ की श्रुतियोंमें जो सृष्टिक्रम लिखा है, तिसकी भी यत्किंचित् समीक्षा लिखते हैं. चौथे अंककी श्रुतिसें लिखा

है, जो ब्रह्मका चौथा अंश है, सो मायामें आकर देवतिर्यगादिरूपकरके विविध प्रकारका हुआ थका व्यास हुआ. क्या करके? चेतन अचेतन रूपकरके, सोही दिखाते हैं; तिस आदि पुरुषसें विराट्, अर्थात् ब्रह्मांड उत्पन्न भया, तिसमें जीवरूपकरके प्रवेशकरके ब्रह्मांडाभिमानी देवात्मा जीव होता भया, पीछें विराट्सें व्यतिरिक्त देव तिर्यङ् मनुष्यादिरूप होता भया, पीछे देवादि जीवभावसें भूमिको सृजन करता भया, अथ भूमि-सृष्टिके अनंतर तिन जीवोंके शरीर रचता भया, शरीरोंके उत्पन्न हुए थके देवते, उत्तर सृष्टिकी सिद्धिवास्ते बाह्यद्रव्यके अनुत्पन्न होनेसें हविके अंतर असंभव होनेसें पुरुषस्वरूपही मनः करी हविपणे संकल्पकरके पुरुषनामक हविकरके मानस यज्ञका विस्तार करते भए; तिस अवसरमें तिस यज्ञका वसंत ऋतु घृत होता भया, ग्रीष्म ऋतु इध्म होता भया, शर-द्दतु हवि होता भया, अर्थात् तिसकोंही पुरोडाशाभिध हविकरके कल्पन करते भए; यज्ञका साधनभूत पुरुष तिसकों पशुत्वभावनाकरके यूपसें बांधते हुए, बर्हिषि मानस यज्ञमें प्रोक्षण करता भया, कैसा पुरुष? सर्वसृष्टिसें पहिले उत्पन्न भया, तिस पशुरूप पुरुषकरके देवते पूजते भए, मानस यज्ञ निष्पन्न करते भए. कौन ते देवते? सृष्टिके साधन योग्य प्रजापति-प्रभृति, तिनके अनुकूल ऋषिमंत्रोंके देखनेवाले यजन करते भए, सर्वहुत पुरुषसें अर्थात् मानस यज्ञसें दधिमिश्रित घृत संपादन करा, वायु देव-संबधी लोकमें प्रसिद्ध हरिणादि आरण्य पशुयोंकों उत्पन्न करता भया, ग्राम्य पशु गौआदि तिनकों उत्पन्न करता भया, तिस यज्ञसें ऋच् साम उत्पन्न भए, तिससेंही गायत्र्यादि छंद उत्पन्न भए, तिस यज्ञसेंही यजुर्वेद होता भया, तिससेंही अश्व घोडे गर्दभ खच्चरां उत्पन्न भए, तिस यज्ञसें गौयां बकरीयां भेडें उत्पन्न भई; प्रजापतिके प्राणरूप देवते जब विराट्रूप पुरुषकों उत्पन्न करते भए, तब तिस पुरुषका मुख क्या होता भया? दोनों बाहु क्या होते भए? ऊरु क्या होते भए? पग क्या होते भए? (उत्तर) ब्राह्मणत्व जातिविशिष्टपुरुष मुखसें उत्पन्न हुए, क्षत्रियत्वजातिविशिष्ट पुरुष बाहोंसें उत्पन्न भए, ऊरु—साथलोंसें वैश्य, और पगोंसें शूद्र उत्पन्न भए.

ऐसाही कथन यजुर्वेदमें है. प्रजापतिके मनसें चंद्रमा उत्पन्न हुआ, नेत्रोंसें सूर्य उत्पन्न भया, मुखसें इंद्र और अग्निदेवते उत्पन्न भए, प्राणोंसें वायु उत्पन्न भया, प्रजापतिकी नाभिसें आकाश उत्पन्न भया, शिरसें स्वर्ग उत्पन्न भया, पगोंसें भूमि उत्पन्न भई, और कानोंसें दिशायां उत्पन्न भई, यह ऋग्वेदके कथनानुसार सृष्टि होनेका क्रम कहा.

अव पूर्वोक्त सृष्टिक्रमकों प्रमाणयुक्तिसें समीक्षापथमें लाते हैं. । प्रथम तो एक निरवयव ब्रह्मके चार अंश कथन करने मिथ्या है, एक अंशने क्या पाप करा? जो अनादि अनंत मायाकरके संयुक्त सृष्टि और प्रलय करता है, और आपही संसारी होके नानाप्रकारके जरा मृत्यु रोग शोक क्षुधा तृषा नरक तिर्यगादिरूपोंसें महासंकट दुःख भोग रहा है; और तीन अंश सदा मुक्त ब्रह्मानंदमें मग्न हो रहे हैं, क्या एक ब्रह्ममें मुक्त और संसार एककालमें संभव हो सक्ते है? आपही सृष्टि रचके आत्मघाती है, उपदेश किसकों करता है? और वेद किसवास्ते रचता है? क्योंकि, तिसकी तो सदाही दुर्दशा रहती है. और व्यास शंकरस्वामीप्रमुख सर्व वेदांती जव ब्रह्मज्ञानी होके ब्रह्ममें लीन होते हैं, तव तीन अंशोंमें लीन होते हैं कि, एक चौथे अंशमें? जेकर तीन अंशमें लीन होते हैं, तव तो यह जो श्रुतिमें लिखा है कि, त्र्यंश तो सदाही संसारकी मायासें अलग रहते हैं; तव तो वेदांतीयोंके मिलनेसें तीन अंशोंमें निर्मल ब्रह्म अधिक हो जावेगा, और चौथा मायावाला अंश न्यून हो जावेगा. जब दोनों हिस्से वधे घटेंगे, तव तो ब्रह्ममें अनित्यतारूप दूषण उत्पन्न होवेगा. जेकर मायावान् चौथे हिस्सेरूप ब्रह्ममें लीन होते हैं, तब तो गर्दभके स्नानतुल्य वेदांतीयोंकी मुक्ति सिद्ध होवेगी. जैसें किसीनें गर्दभकों स्नान करवाया, तदपीछे सो गर्दभ कुरडीकी राखमें जाके फेर लौटने लगा, फेर वैसाही मलीन हो गया; ऐसेंही वेदांतियोंने प्रथम तो ब्रह्मविद्यारूप जलसें स्नान करके प्रपंच धोयके निर्मलता प्राप्त करी, फेर मायावाले ब्रह्ममें लीन होनेसें फेर वैसेही मायाप्रपंचवाले वन गए.

पूर्वपक्षः—शुद्ध ब्रह्ममेंही लीन होते हैं, नतु मायावान्में.

उत्तरपक्षः—तब तो एक २ अंशकी मुक्ति होनेसें संपूर्ण ब्रह्मकी कदापि मुक्ति नही होवेगी, इत्यादि अनेक दूषण होनेसें यह कथन भी मिथ्या है. तथा ब्रह्म जो है, सो ज्ञानस्वरूप है, तिसकों जड विराट्का उपादानकारण मानना यह युक्तिप्रमाणसें विरुद्ध है. क्योंकि, चैतन्यवस्तु कदापि जडका उपादन कारण नही हो सक्ता है ॥ विना परमाणुयोंके भूमिसृजन और शरीर रचे लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, परमाणुयोंकों नित्य मानना है सो तो अद्वैतमतकी जडकों काटना है, और विनाही परमाणुयोंके जडभूमि और जीवोंके शरीरोंका उपादानकारण ज्ञानस्वरूप ब्रह्म मानना, सो तो त्रिकालमें भी युक्तिप्रमाणसें कदापि सिद्ध नही होवेगा. जेकर युक्तिप्रमाणके विनाही मानोंगे, तब तो प्रेक्षावानोंकी पंक्तिसें बाहिर हो जावोंगे, और चार्वाक नास्तिक मतकी प्रवृत्ति भी वेंदसेंही सिद्ध होवेगी. क्योंकि, पंजाब देशमें, फुल्लोरनगरके वासी, पंडित श्रद्धारामजीने सत्यामृतप्रवाह नामक ग्रंथ रचा है, तिसमें इस मतलबका लेख लिखा है—वेदमें दो तरेंकी विद्या कही है, एक अपरा और दूसरी परा, तिनमेंसें संहिता ब्राह्मण उपनिषद प्रमुखमें प्रायः अपरा विद्याही कथन करी है, और परा विद्या प्रायः गुप्तही रक्खी है. मेरेकों परा विद्याकी खबर बहुत दिनोंसें थी, परंतु जगत् व्यवहारीयोंकी शंकासें मैनें प्रकाश नही करी, अब मैं अंतमें परा विद्याका स्वरूप लिखता हूं. यह जो ब्रह्मांड दिखलाइ देता है, यही ब्रह्म है. और श्रुति भी यही बात कहती है—"सर्वं खल्विदं ब्रह्म इत्यादि—" इदं पदकरके यह दृश्यमान जगत्ही ग्रहण करणा, यह जो पंचभौतिक जगत् है, सोही ब्रह्म है, इससें अतिरिक्त अन्य कोइ ब्रह्म नही है, यह ब्रह्मांड अनादि अनंत पंचभूतोंका एक गोलक है, इसकों न किसीने रचा है, और न कोइ इसकी प्रलय करनेवाला है, इस गोलकके अंदरही अनेक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, और इसमेंही लय हो जाते हैं; जैसें समुद्रके जलमें अनेकतरंग चक्रबुद्बुद उत्पन्न होते हैं, और जलमेंही लय हो जाते है, न कोइ आता है, और न कोइ जाता है, पांचभौतिक देहसें अन्य जीवना-

यथा ॥

" श्रीमते शांतिनाथाय नमः शांतिविधायिने ॥
त्रैलोक्यस्यामराधीशमुकुटाभ्यर्च्चितांघ्रये ॥ १ ॥ "

अथवा ॥

" शांतिः शांतिकरः श्रीमान् शांतिं दिशतु मे गुरुः ॥
शांतिरेव सदा तेषां येषां शांतिर्गृहे गृहे ॥ १ ॥ "

पीछे

"॥ श्रुतदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ उससिएणं--यावत्-अप्पाणं वोसिरामि॥ "

कायोत्सर्गमें एक नवकार चिंतन करे. पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' ऐसा कहके स्तुति (थूइ) पढे ।

यथा ॥

" ॥ सुअदेवया भगवई नाणावरणीयकम्मसंघायं ॥
तेसिं खवउ सययं जेसिं सुयसायरे भत्ती ॥ १ ॥"

अथवा ॥

" श्वसितसुरभिगंधालब्धभृंगी कुरंगं मुखशशिनमजस्रं
बिभ्रति या बिभर्ति ॥ विकचकमलमुच्चैः सास्त्वचिंत्यप्र-
भावासकलसुखविधात्री प्राणभाजां श्रुतांगी ॥ १ ॥ "

पुनरपि ॥

" ॥ क्षेत्रदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ उससिएणं-
यावत्--अप्पाणं वोसिरामि ॥ "

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' कहके थूई पढे ।

यथा ॥

यस्याः क्षेत्रं समाश्रित्य साधुभिः साध्यते क्रिया ॥
सा क्षेत्रदेवता नित्यं भूयान्नः सुखदायिनी ॥ १ ॥

पुनरपि ॥

"॥ भुवनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ ऊससिएणं—
यावत्—अप्पाणं वोसिरामि ॥"

कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः' कहके स्तुति पढे.।

यथा. ॥

" ज्ञानादिगुणयुक्तानां नित्यं स्वाध्यायसंयमरतानां ॥
विदधातु भुवनदेवी शिवं सदा सर्वसाधूनाम् ॥ १ ॥"

पुनरपि ॥

"शासनदेवताराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०" कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमोअरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे.

यथा. ॥

"या पाति शासनं जैनं सद्यः प्रत्यूहनाशिनी ॥
साभिप्रेतसमृद्ध्यर्थं भूयाच्छासनदेवता ॥ १ ॥"

पुनरपि. ॥

"समस्तवैयावृत्त्यकराराधनार्थं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०" कायोत्सर्गमें एक नमस्कार चिंतन करे, पीछे 'नमो अरिहंताणं' कहके पारे, पारके 'नमोर्हत्सिद्धा०' कहके स्तुति पढे.

यथा ॥

" ये ये जिनवचनरता वैयावृत्योद्यताश्च ये नित्यम् ॥
ते सर्वे शांतिकरा भवंतु सर्वाणुयक्षाद्याः ॥ १ ॥ "

पीछे. ॥

'नमो अरिहंताणं' कहके बैठके "नमुथ्थुणं० जावंतिचेइयाइं०" और "अर्हणादिस्तोत्र" पढे.

यथा ॥

आरिहाण नमो पूअं अरहंताणं रहस्स रहिआणं ॥
पयओ परमिठ्ठीणं अरुहंताणं धुअरयाणं ॥ १ ॥
निद्दड्ढअठ्ठकम्मिंधणाण वरनाणदंसणधराणं ॥
मुत्ताण नमो सिद्धाणं परमपरमिठ्ठिभूयाणं ॥ २ ॥
आयारधराण नमो पंचविहायारसुट्ठियाणं च ॥
नाणीणायरियाणं आयारुवएसयाण सया ॥ ३ ॥
बारसविहं अपूव्वं दिंताण सुअं नमो सुअहराणं ॥
सययमुवज्झायाणं सज्झायज्झाणजुत्ताणं ॥ ४ ॥
सव्वेसिं साहूणं नमो तिगुत्ताण सव्वलोएवि ॥
तवनियमनाणदंसणजुत्ताणं बंभयारीणं ॥ ५ ॥
एसो परमिठ्ठीणं पंचन्हवि भावओ नमुक्कारो ॥
सव्वस्स कीरमाणो पावस्स पणासणो होइ ॥ ६ ॥
भुवणेवि मंगलाणं मणुयासुरअमरखयरमहियाणं ॥
सव्वेसिमिमो पढमो होइ महामंगलं पढमं ॥ ७ ॥
चत्तारि मंगलं मे हुंतु अरहा तहेव सिद्धा य ॥
साहू य सव्वकालं धम्मो य तिलोयमंगल्लो ॥ ८ ॥

चत्तारि चेव ससुरासुरस्स लोगस्स उत्तमा हुंति॥
अरिहंत सिद्ध साहू धम्मो जिणदेसियमुयारो॥ ९॥
चत्तारिवि अरिहंते सिद्धे साहू तहेव धम्मं च॥
संसारघोररक्खसभएण सरणं पवज्जामि॥ १०॥
अह अरहओ भगवओ महइ महा वद्धमाणसामिस्स॥
पणयसुरेसरसेहरवियालियकुसुमुच्चयकमस्स॥ ११॥
जस्स वरधम्मचक्कं दिणयरबिंबव्व भासुरच्छायं॥
तेएण पज्जलंतं गच्छइ पुरओ जिणंदस्स॥ १२॥
आयासं पायालं सयलं महिमंडलं पयासंतं॥
मिच्छत्तमोहतिमिरं हरेइ तिण्हंपि लोयाणं॥ १३॥
सयलंमिवि जियलोए चिंतियमित्तो करेइ सत्ताणं॥
रक्खं रक्खसडाइणिपिसायगहभूअजक्खाणं॥ १४॥
लहइ विवाए वाए ववहारे भावओ सरंतो अ॥
जूए रणे अ रायंगणे अ विजयं विसुद्धप्पा॥ १५॥
पच्चूसपओसेसुं सययं भव्वो जणो सुहज्झाणो॥
एअं झाएमाणो मुक्खं पइ साहगो होइ॥ १६॥
वेआलरुद्ददाणवनारिंदकोहंडिरेवईणं च॥
सव्वेसिं सत्ताणं पुरिसो अपराजिओ होइ॥ १७॥
विज्जुव्व पज्जलंती सव्वेसुवि अक्खरेसु मत्ताओ॥
पंचनमुक्कारपए इक्किक्के उवरिमा जाव॥ १८॥
ससिधवलसलिलनिम्मलआयारसहं च वन्नियं बिंदुं॥
जोयणसयप्पमाणं जालासयसहस्सदिप्पंतं॥ १९॥
सोलससु अक्खरेसु इक्किक्कं अक्खरं जगुज्जोअं॥
भवसयसहस्समहणो जंमि ठिओ पंच नवकारो॥ २०॥

जो गुणइ हु इक्कमणो भविओ भावेण पंच नवकारं ॥
सो गच्छइ सिवलोयं उज्जोअंतो दसदिसाओ ॥ २१ ॥
तवनियमसंजमरहो पंचनमोक्कारसारहिनिउत्तो ॥
नाणतुरंगमजुत्तो नेइ फुडं परमनिव्वाणं ॥ २२ ॥
सुद्धप्पा सुद्धमणा पंचसु समिईसु संजय तिगुत्तो ॥
जे तम्मि रहे लग्गा सिग्घं गच्छंति सिवलोअं ॥ २३ ॥
थंभेइ जलं जलणं चिंतियमित्तोवि पंच नवकारो ॥
अरिमारिचोरराउलघोरुवसग्गं पणासेइ ॥ २४ ॥
अट्ठेवय अट्ठसयं अट्ठसहस्सं च अट्ठकोडीओ ॥
रक्खंतु मे सरीरं देवासुरपणमिआ सिद्धा ॥ २५ ॥
नमो अरहंताणं तिलोयपुज्जो अ संथुओ भयवं ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २६ ॥
निट्ठविअ अट्ठकम्मो सिवसुहभूओ निरंजणो सिद्धो ॥
अमरनररायमहिओ अणाइनिहणो सिवं दिसउ ॥ २७ ॥
सव्वे पओसमच्छरआहिअहिअया पणासमुवयंति ॥
दुगुणीकयधणुसद्दं सोउपि महाधणुसहस्सं ॥ २८ ॥
इय तिहुअणप्पमाणं सोलसपत्तं जलंतदित्तसरं ॥
अट्ठारअद्धवलयं पंचनमुक्कारचक्कमिणं ॥ २९ ॥
सयलुज्जोइअभुवणं निद्दाविअसेससत्तुसंघायं ॥
नासिअमिच्छत्ततमं विअलियमोहं गयतमोहं ॥ ३० ॥
एयस्स य मज्झत्थो सम्मदिट्ठीवि सुद्धचारित्ती ॥
नाणी पवयणभत्तो गुरुजणसुस्सूसणापरमो ॥ ३१ ॥
जो पंच नमुक्कारं परमो पुरिसो पराइ भत्तीए ॥
परियत्तेइ पइदिणं पयओ सुद्धप्पओगप्पा ॥ ३२ ॥

अट्ठेवय अट्ठसया अट्ठसहस्सं च अट्ठलक्खं च ॥
अट्ठेवय कोडीओ सो तइयभवे लहइ सिद्धिं ॥ ३३ ॥
एसो परमो मंतो परमरहस्सं परंपरं तत्तं ॥
नाणं परमं णेअं सुद्धं ज्झाणं परं ज्झेयं ॥ ३४ ॥
एवं कवयमभेयं खाइयमच्छं पराभुवणरक्खा ॥
जोईसुन्नं बिंदु नाओ तारालवो मत्ता ॥ ३५ ॥
सोलसपरमक्खरबीअबिंदुगप्भो जगुत्तमो जोओ ॥
सुअबारसंगसायरमहच्छपुव्वच्छपरमच्छो ॥ ३६ ॥
नासेइ चोरसावयविसहरजलजलणबंधणसयाइं ॥
चिंतिज्जंतो रक्खसरणरायभयाइं भावेण ॥ ३७ ॥

॥ इतिअरिहणादिस्तोत्रम् ॥

इस अरिहणादि स्तोत्रको पढके " जय वीयराय जगगुरु० " इत्यादि गाथा पढे. । पीछे आचार्य उपाध्याय गुरु साधुयोंको वंदना करे. । यह शक्रस्तवविधि, गुरु और श्रावक दोनोंही करे. । चैत्यवंदनके अनंतर, श्राद्ध, क्षमाश्रमणदानपूर्वक कहे.

" ॥ भगवन् सम्यक्त्वसामायिकश्रुतसामायिकदेशविरतिसामायिकआरोवणिअं नंदिकड्ढावणिअं काउसग्गं करेमि ॥ "

गुरु कहे " करेह " तब श्रावक "सम्मत्ताइतिगारोवणिअं करेमि काउसग्गं अनच्छ० " इत्यादि कहके सत्ताइस उसास प्रमाणअर्थात् 'सागरवरगंभीरा' लग कायोत्सर्ग करे । पीछे नमो अरिहंताणं कहके पारके चतुर्विंशतिस्तव अर्थात् लोगस्स संपूर्ण पढे । पीछे मुखवस्त्रिका प्रतिलेखनपूर्वक श्रावक द्वादशावर्त्त वंदन करे, फिर क्षमाश्रमण देके कहे " भगवन् सम्मत्ताइतिगं आरोवेह " गुरु कहे " आरोवेमि " पीछे श्रावक गुरुके आगे खडा होके, अंजलि करी, मुखवस्त्रिकासें मुखाच्छादन करी, तीन चार परमेष्ठिमंत्र पढे । पीछे सम्यक्त्वदंडक पढे.

सयथा ॥

"॥अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि। तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं मिच्छत्तकारणाइं पच्चक्खामि सम्मत्तकारणाइं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अद्यप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छिअदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि अरिहंतचेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा। खित्तओणं इहेव वा अन्नच्छ वा। कालओणं जावज्जीवाए। भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छालिज्जामि जाव सान्निवाएणं नाभिभविस्सामि जाव अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एअं सम्मद्दंसणं अन्नच्छ रायाभिओगेणं बलाभिओगेणं गणाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारएणं वोसिरामि ॥"

ऐसें तीनवार दंडक पाठ कहना ॥ अन्ये तु दंडकमिच्छमुच्चारयंति ॥ यथा ॥

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्ताओ पडिक्कमामि सम्मत्तं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउच्छिए वा अन्नउच्छियदेवयाणि वा अन्नउच्छियपरिग्गहियाणि चेइआणि वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा अन्नच्छ

रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तीकंतारेणं तं चउव्विहं। तंजहा। दवओ खित्तओ कालओ भावओ। दव्वओणं दंसणदव्वाइं अंगीकयाइं। खित्तओणं उड्ढलोए वा अहोलोए वा तिरिअलोए वा। कालओणं जावज्जीवाए। भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविस्सामि अन्नेण वा केणइ परिणामवसेण परिणामो मे न परिवडइ ताव मे एसा दंसणपडिवत्ती ॥ "

इति गुरुविशेषेण द्वितीयो दंडकः ॥ प्रथम दंडक, वा यह दंडक दोनोंमेंसें कोइ एक दंडक तीन वार उच्चारण करे. ।

पीछे गाथा ॥

"इअ मिच्छाओ विरमिअ सम्मं उवगम्म भणइ गुरुपुरओ॥
अरिहंतो निस्संगो मम देवो दक्खणा साहू ॥ १ ॥"

गुरु तीन वार यह गाथा पढके श्राद्धके मस्तकोपरि वासक्षेप करे. । पीछे गुरु, निषद्याऊपर बैठे, बैठके गंध अक्षत वासांको सूरिमंत्रसें, वा गणिविद्यासें मंत्रे. । पीछे तिन गंधाक्षत वासांको हाथमें लेके जिन चरणोंको स्पर्श करावे. । पीछे तिनको साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओंको देवे. ते साधुआदि, मुट्ठीमें लेलेवे. । पीछे श्राद्ध आसनोपरि बैठे गुरुके आगे क्षमाश्रमण देके कहे ॥ "भयवं तुब्भे अम्हं सम्मत्ताइस माइयं आरोवेह। " गुरुकहे "आरोवेमि" फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "संदिसह किं भणामि" गुरु कहे "वंदित्तु पवेयह" फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "भयवं तुज्झेहिं अम्हं सामाइयतिअमारोविअं" गुरु कहे "आरोवियं २ खमासमणेणं हच्छेणं सुत्तेणंअच्छेणंतदुभएणं गुरुगुणेहिं वड्ढाहि निच्छारगपारगो होहि" श्रावक कहे "इच्छामो अणुसट्ठिं" पुनः श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "तुम्हाणं पवेइयं संदिसह साहूणं

पएवेमि" गुरु कहे "पवेयह" तदपीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्र पढता हुआ, समवसरणको प्रदक्षिणा करे.। और संघ पूर्वे दीने हुए वासांको, तिसके मस्तकोपरि क्षेपण करे.। गुरु निषद्याऊपर बैठे, वहांसें लेके वासक्षेपपर्यंत क्रिया, तीन वार इसहि रीतिसें करना.। फिर श्रावक क्षमाश्रमण देके कहे "तुम्हाणं पवेइयं" फिर क्षमाश्रमण देके कहे "साहूणं पवेइयं संदिसह काउसग्गं करेमि" गुरु कहे "करेह" पीछे श्रावक–सम्मत्ताइतिगस्स थिरीकरणच्छं करेमि काउसग्गं अन्नच्छ०–सागरवरगंभीरातक कायोत्सर्ग करे. पारके संपूर्ण लोगस्स कहे.। पीछे चारथुइवर्जित शक्रस्तवसें चैत्यवंदन करे.। तदपीछे श्रावक, गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे. पीछे निषद्याऊपर बैठा हुआ गुरु, श्रावकको आगे बिठाके नियम देवे.॥

नियमयुक्तिर्यथा। गाथा ॥

पंचुंबरि चउ विगई अणायफलकुसुम हिम विस करे अ ॥
मट्टि अ राइभोयण घोलवडा रिंगणा चेव ॥ १ ॥
पंपुट्टय सिंघाडय वायंगण कायंबाणि य तहेव ॥
बावीसं दव्वाइं अभक्खणीआइं सड्ढाणं ॥ २ ॥

अर्थः–गुलर, प्लक्षण, काकोदुंबरि, वट और पिप्पल, येह पांच जातिके फल ५. मांस, मदिरा, माखण और मधु, ये चार विकृति ४–एवं ९–अज्ञात फल १०, अज्ञात पुष्प ११, हिम (बरफ) १२, विष १३, करहे (ओले–गडे) १४, सर्वसच्चित्तमिट्टी १५, रात्रिभोजन १६, घोलवडा–काचे दूध दहि छाछमें गेरा हुआ विदल १७, बइंगण १८, पंपोटा–खसखसका दोडा १९, सिंघाडे २०, * वायंगण २१, और कायंबाणि २२, येह बावीस द्रव्य श्रावकोंको भक्षण करने योग्य नही है. ॥

---

* यद्यपि सिंघाडे अनंतकाय नही है, तथापि कामवृद्धिजनक होनेसें वर्जनीय है.। तथा पुस्तकांतरमें अन्यप्रकारसें २२ अभक्ष्य लिखे हैं। यथा ॥ पंचुंबरि ५, चउविगई ४, हिम १०, विस ११, करगे अ १२, सवमट्टी अ १३, राइभोयणगं चिय १४, बहुबीय १५, अणंत १६, संधाणा १७, घोलवडां १८, विइंगण १९, अमुणियनामाणि फुल्लफलयाणि २०, तुच्छफलं २१, चलियरसं २२, वज्जेअ अभक्ख बावीसं ॥ इनका विस्तारसहित अर्थ जैनतत्त्वादर्शके अष्टम परिच्छेदसें जाण लेना.

ऐसें नियम देके यह गाथा उच्चारण करवावे ॥

" अरिहंतो मह देवो जावज्जीवं सुसाहुणो गुरुणो ॥
जिणपणत्तं तत्तं इअ समत्तं मए गहिअं ॥ १ ॥ "

सुगमा ॥

तदनंतर अरिहंतको वर्जके अन्यदेवको नमस्कार करनेका, जिनयति महाव्रतधारी शुद्ध प्ररूपकको वर्जके अन्य यति विप्रादिकोंको भावसें अर्थात् मोक्षलाभ जानके वंदना करनेका, और जिनोक्त सप्त तत्त्वको वर्जके + तत्त्वांतरकी श्रद्धा करनेका, नियम करना.

अन्य देव और अन्य लिंगि विप्रादिकोंको नमस्कार और दान, लोकव्यवहारकेवास्ते करना. और अन्यमतके शास्त्रका श्रवण पठन भी, ऐसेंही जानना. । तदपीछे गुरु सम्यक्त्वकी देशना करे. ।

सा यथा ॥

मानुष्यमार्यदेशश्च जातिः सर्वाक्षपाटवम् ॥
आयुश्च प्राप्यते तत्र कथंचित्कर्मलाघवात् ॥ १ ॥
प्राप्तेषु पुण्यतः श्रद्धा कथकः श्रवणेष्वपि ॥
तत्त्वनिश्चयरूपं तद्बोधिरत्नं सुदुर्लभम् ॥ २ ॥

गाथा ॥

कुसमयसुईण महणं सम्मत्तं जस्स सुट्ठिअं हियए ॥
तस्स जगुज्जोयकरं नाणं चरणं च भवमहणं ॥ १ ॥

अर्थः—मनुष्यजन्म १, आर्यदेश २, उत्तमजाति ३, सर्वइंद्रि संपूर्ण ४, आयुः ५, येह कथंचित् कर्मकी लाघवतासें प्राप्त होवे है. । पुण्योदयसें पूर्वोक्त प्राप्ति हुये भी श्रद्धा १, शुद्ध प्ररूपकका जोग २, और सुणनेसें तत्त्वनिश्चयरूप बोधिरत्न सम्यक्त्व ३, येह अतिही दुर्लभ हैं. ॥ कुत्सितसमयएकांतवादियोंके शास्त्र तिनकी श्रुतियोंको मथन करनेवाला सम्यक्त्व,

+ पुण्य और पापको आश्रवतत्त्वके अंतर्गत गिणनेसें सप्त तत्त्व, अन्यथा नव तत्त्व जाणने. जिनोंका स्वरूप जैनतत्त्वादर्शके पंचम परिच्छेदमें है.

जिसके हृदयमें अच्छीतरें स्थित है, तिस पुरुषको जगत्के उद्योत करनेवाले, और भव-संसारको मथनेवाले, ज्ञान और चारित्र प्राप्त होते हैं. ॥

॥ श्लोकाः ॥

या देवे देवताबुद्धिर्गुरौ च गुरुतामतिः॥
धर्मे च धर्मधीः शुद्धा सम्यक्त्वमिदमुच्यते॥ १॥
अदेवे देवबुद्धिर्या गुरुधीरगुरौ च या॥
अधर्म्मे धर्म्मबुद्धिश्च मिथ्यात्वं तद्विपर्ययात्॥ २॥
सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः॥
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥ ३॥
ध्यातव्योयमुपास्योयमयं शरणमिष्यताम्॥
अस्यैव प्रतिपत्तव्यं शासनं चेतनाऽस्ति चेत्॥ ४॥
ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादिरागाद्यंककलंकिताः॥
निग्रहानुग्रहपरास्ते देवा स्युर्न मुक्तये॥ ५॥
नाट्याट्टहाससंगीताद्युपप्लवविसंस्थुलाः॥
लंभयेयुः पदं शांतं प्रपन्नान् प्राणिनः कथं॥ ६॥
महाव्रतधरा धीरा भैक्ष्यमात्रोपजीविनः॥
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः॥ ७॥
सर्वाभिलाषिणः सर्वभोजिनः सपरिग्रहाः॥
अब्रह्मचारिणो मिथ्योपदेशा गुरवो न तु॥ ८॥
परिग्रहारंभमग्नास्तारयेयुः कथं परान्॥
स्वयं दरिद्रो न परमीश्वरी कर्त्तुमीश्वरः॥ ९॥
दुर्गतिप्रपतत्प्राणिधारणाद्धर्म उच्यते॥
संयमादिर्दशविधः सर्वज्ञोक्तो विमुक्तये॥ १०॥

अपौरुषेयं वचनमसंभवि भवेद्यदि ॥
न प्रमाणं भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता ॥ ११ ॥
मिथ्यादृष्टिभिराम्नातो हिंसाद्यैः कलुषीकृतः ॥
स धर्म इति वित्तोपि भवभ्रमणकारणम् ॥ १२ ॥
सरागोपि हि देवश्चेद्गुरुरब्रह्मचार्यपि ॥
कृपाहीनोपि धर्मः स्यात् कष्टं नष्टं हहा जगत् ॥ १३ ॥
शमसंवेगनिर्वेदानुकंपास्तिक्यलक्षणैः ॥
लक्षणैः पंचभिः सम्यक् सम्यक्त्वमुपलक्ष्यते ॥ १४ ॥
स्थैर्यं प्रभावनाभक्तिः कौशलं जिनशासने ॥
तीर्थसेवा च पंचास्य भूषणानि प्रचक्ष्यते ॥ १५ ॥
शंका कांक्षा विचिकित्सा मिथ्यादृष्टिप्रशंसनम् ॥
तत्संस्तवश्च पंचापि सम्यक्त्वं दूषयंत्यमी ॥ १६ ॥

अर्थः—साचे देवके जो देवपणेकी बुद्धि, साचे गुरुके विषे गुरुपणेकी बुद्धि और साचे धर्मके विषे धर्मकी बुद्धि, कैसी बुद्धि? शुद्धा सूधी निश्चल संदेहरहित, इसको सम्यक्त्व कहिये हैं.। ऐसी सम्यक्त्वकी बुद्धि थोडे वखत भी जिसको आजावेगी, सो प्राणि अर्द्धपुद्गलपरावर्तकालमेंही संसारसें निकलके मोक्षको प्राप्त होगा, यह निश्चय जाणना.

यत उक्तम् ॥

अंतोमुहुत्तमित्तंपि फासियं जेहिं हुज्ज सम्मत्तं ॥
तेसिं अवड्ढ पुग्गलपरिअट्टो चेव संसारो ॥ १ ॥

भावार्थः—अंतर्मुहूर्तमात्र भी जिनोंनें सम्यक्त्व स्पर्श किया है, तिनौंका अर्द्धपुद्गलपरावर्त्तही उत्कृष्ट संसार जाणना, तदनंतर अवश्यमेव मोक्षको प्राप्त होवे. इति सम्यक्त्वस्वरूपम् ॥ १ ॥

अथ मिथ्यात्वस्वरूपमाह ॥ जिसमें देवके गुण नही हैं, ऐसे अदेवमें देवकी बुद्धि—जैसें तममें उद्योतकी बुद्धि । जिसमें गुरुके गुण नहीं हैं,

ऐसें अगुरुमें गुरुकी बुद्धि–जैसें नींबमें आम्रकी बुद्धि। अधर्म यागादिमें जीवहिंसादिक, तिसके विषे धर्मकी बुद्धि–जैसें सर्पके विषे पुष्पमालाकी बुद्धि, सो मिथ्यात्व है. सम्यक्त्वसें विपर्यय होनेसें, अर्थात् साचे देवके ऊपर अदेवपणेकी बुद्धि, जैसें कौशिक (घूअड) की सूर्यके तेजऊपर अंधकारकी बुद्धि, साचे गुरुऊपर अगुरुपणेकी बुद्धि, जैसें फूलमालाके ऊपर सर्पकी बुद्धि। और साचे धर्मके ऊपर अधर्मपणेकी बुद्धि, जैसें श्वेतशंखके ऊपर काचकामलरोगवालेकी नीलशंखकी बुद्धि। तिसको मिथ्यात्व कहिये हैं.। सो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है. १ आभिग्रहिक, २ अनाभिग्रहिक, ३ आभिनिवेशिक, ४ सांशयिक, ५ अनाभोगिक.॥

(१) प्रथम आभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो, जो जीव मिथ्या कुशास्त्रोंके पढनेसें कुदेव कुगुरु कुधर्मके ऊपर आस्था करके दृढ हुआ है, और ऐसा जानता है कि, जो कुछ मैंने समझा है सोही सत्य है, औरोंकी समझ ठीक नही है, जिसको सच्चजूठकी परीक्षा करनेका मन भी नहीं है, और जो सच्चजूठका विचार भी नही करता है. यह मिथ्यात्व, दीक्षित शाक्यादि अन्यमतममत्वधारीयोंको होता है. वे अपने मनमें ऐसें जानते हैं कि, जो मत हमने अंगिकार किया है, वोही सत्य है; और सर्व मत झूठे हैं. ऐसें जिसके परिणाम होवे, सो आभिग्रहिक मिथ्यात्व है.

(२) दूसरा अनाभिग्रहिकमिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अच्छा जाणे, सर्व मतोंसें मोक्ष है, इसवास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्व देवोंको नमस्कार करना, ऐसी जो बुद्धि, तिसको अनाभिग्रहिक मिथ्यात्व कहते हैं. यह मिथ्यात्व जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा ऐसें जो गोपाल बालकादि तिनको है. क्योंकि, यह अमृत और विषको एकसरिखे जाननेवाले हैं.

(३) तीसरा आभिनिवेशिक मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जानकरके झूठ बोले, प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछे जब कोइ विद्वान् कहे कि, तुम इस विषयमें भूलते हो, तब अपने मनमें

सत्य विषयको जाणता हुआ भी, झूठे पक्षका कदाग्रह, ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहना, न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियों बनाकरके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे तो भी न माने, ऐसा जीव, अतिपापी, और बहुल संसारी होता है. ऐसा मिथ्यात्व, प्रायः जो जैनी, जैन मतको विपरीतकथन करता है, उसमें होता है, गोष्ठमाहिलादिवत् ॥

(४) चौथा सांशयिकमिथ्यात्व, सो देव गुरु धर्म जीव काल पुद्गलादिक पदार्थोंमें यह सत्य है कि, यह सत्य है? ऐसी बुद्धि, तिसको सांशयिकमिथ्यात्व कहते हैं. यथा क्या वह जीव असंख्य प्रदेशी है? वा नही है? इसतरें जिनोक्त सर्व पदार्थमें शंका करनी। "सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहो जिनोक्ततत्त्वेष्वितिवचनात् ॥"

(५) पांचमा अनाभोगिकमिथ्यात्व, सो जिन जिवोंको उपयोग नही कि, धर्म अधर्म क्या वस्तु है? ऐसें जे एकेंद्रियादि विशेषचैतन्यरहित जीव, तिनको अनाभोगमिथ्यात्व होता है.॥ २ ॥

अथदेवलक्षणमाह ॥ देव सो कहिये, जो सर्वज्ञ होवे, परंतु जैसें लौकिक मतमें विनायकका मस्तक ईश्वरने छेदन कर दिया, पीछे पार्वतीके आग्रहसें सर्वत्र देखने लगा, परं किसी जगे भी मस्तक न देखा, तब हाथीके मस्तकको ल्यायके विनायकके मस्तकके स्थानपर चेप दिया, जिसवास्ते विनायकका (गणेशका) नाम "गजानन" प्रसिद्ध हुआ. इत्यादि—यदि ईश्वर (महादेव) सर्वज्ञ होवे तो, पार्वतीका पुत्र जाणके विनायकका मस्तक कभी न छेदन करे. यदि छेदे, तो जगत्में विद्यमान तिस मस्तकको क्यों न देखे? इसवास्ते ऐसें अधूरेज्ञानवालेको देव न कहिये. । तथा 'जितरागादिदोषः' जे संसारके मूलकारण राग द्वेष काम क्रोध लोभ मोहादिक दोष, तिन सर्वको जिसने जीते हैं, निर्मूल किये हैं, तिसको देव कहिये. जिसमें रागादि दोष होवे, तिसको अस्मदादिवत् संसारी जीवही कहिये, तिसमें देवपणा न होवे. । तथा

'त्रैलोक्यपूजितः' स्वर्गमर्त्यपातालके स्वामी इंद्रादिक परम भक्तिकरके जिसको वांदे, पूजे, नमस्कार करे, सेवे, सो देव कहिये. परंतु कितनेक इस लोकके अर्थीयोंके वांदनेसें, वा पूजनादिकसें देवपणा नही होवे है.। तथा 'यथास्थितार्थवादी' जो यथास्थित सत्यपदार्थका वक्ता, सो देव कहिये, परंतु जिसका कथन पूर्वापरविरोधि होवे, और विचारते हुए सत्य २ मिले नही, सो देव न कहिये. ॥ देवोर्हन् परमेश्वरः ॥ येह पूर्वोक्त चार गुण पूर्ण जिसमें होवे, सो अरिहंत, वीतराग, परमेश्वर, देव, कहिये. इससें अन्य कोइ देव नही है. ॥ ३ ॥

ऐसा पूर्वोक्त साचा देव, पिछाणके आराधना, सोही कहते हैं। ध्यातव्योयमित्यादि–पूर्वे जे देवके लक्षण कहे, तिन लक्षणोंकरी संयुक्त जो देव, तिसको एकाग्र मन करी ध्यावना, जैसें श्रेणिक महाराजने श्रीमहावीरजीका ध्यान किया.। तिस ध्यानके प्रभावसें आगामी चउवीसीमें श्रेणिक महाराज, वर्ण, प्रमाण, संस्थान, अतिशयादिकगुणोंकरके श्रीमहावीरस्वामिसरिषा 'पद्मनाभ,' इस नामकरके प्रथम तीर्थंकर होगा. इसीतरें औरोंनें भी तल्लीनपणे देवका ध्यान करना, तथा 'उपास्योयम्' ऐसे पूर्वोक्त देवकी सेवा करनी श्रेणिकादिवत्.।तथा इसी देवका, संसारके भयको टालनहार जाणके, शरण वांछना.। इसी देवका शासन, मत, आज्ञा, धर्म, अंगीकार करना.। 'चेतनास्ति चेत्' जो कोइ चेतना चैतन्यपणा है तो, सचेतन सजाण जीवको उपदेश दिया सार्थक होवे, परंतु अचेतन अजाणको दिया उपदेश क्या काम आवे? इसवास्ते 'चेतनास्ति चेत्' ऐसें कहा. ॥ ४ ॥

अथादेवत्वमाह ॥ अथ देवके लक्षण कहते है.॥ ये स्त्री० जिनके पास स्त्री (कलत्र) होवे तथा खड्ग धनुष्य चक्र त्रिशूलादिक शस्त्र (हथियार) होवे, तथा अक्षसूत्र जपमाला आदि शब्दसें कमंडलुप्रमुख होवे, येह कैसें है? रा० रागादिकके अंक–चिन्ह है, सोही दिखावे हैं. स्त्री रागका चिन्ह है,। जो पासे स्त्री होवे तो जाणना कि, इसमें राग है.। शस्त्र द्वेषका चिन्ह है, जो पासे हथियार देखीए तो, ऐसा जाणिये कि तिसने किसी

वैरीको मारना, चूरना है, अथवा किसीका भय है, जिस वास्ते शस्त्रधारण किये हैं.। अक्षसूत्र असर्वज्ञपणेका चिन्ह है, जो हाथमें माला धारण करे तो जाणिये कि, इसमें सर्वज्ञपणा नही है. यदि होवे तो, मणके विना गिणतीकी संख्या जाणलेवे. अथवा तिससें अधिक वडा अन्य कोइ है, जिसका वो जाप करता है. यादि अन्य कोई नही है तो, जपमालासें किसका जाप करता है ? । कमंडलु अशुचिपणेका चिन्ह है, यदि हाथमें कमंडलु पाणीका भाजन देखीए तो, ऐसा जाणिये कि, यह अशुचि है.. शौच करणेके वास्ते यह कमंडलु धारण करता है. ।

यत उक्तम् ।

स्त्रीसंगः काममाचष्टे द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥
व्यामोहं चाक्षसूत्रादिरशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥

इन पूर्वोक्त दोषोंकरके जे कलंकित दूषित है, तथा निग्रहा० जिसके उपर रुष्टमान होवे, तिसको निग्रह (वंधनमरणादिक) करें, और जिसके ऊपर तुष्टमान होवे, तिसको अनुग्रह (राज्यादिकके वर) देवें; तेदेवा० जे ऐसें रागादिकोंकरके दूषित हैं, वे देव, मुक्तिके हेतु नही होते हैं. ॥ ५ ॥

ऐसे पूर्वोक्त देव अपने सेवकोंको मोक्ष नही दे सकते हैं, सोही वात फिर कहते हैं. । नाट्याट्ट० जे देव नाटकके रसमें मग्न हैं, अट्टाट्टहास करते हैं, वीणा लेके संगीत गानादिक करते हैं, इत्यादि उपप्लव संसारकी चेष्टा तिनोंकरके जे विसंस्थुल निःप्रतिष्ठ अस्थिर है; लंभयेयुः—जे आपही ऐसे हैं, वे देव, अपने प्रपन्न आश्रित सेवकोंको शांतपद, संसार चेष्टारहित मुक्ति केवलज्ञानादिकपद, कैसें प्राप्त कर सकते हैं ? जैसें एरंडवृक्ष कल्पवृक्षकीतरें इच्छा नही पूर सकता है, यदि किसी मूढ पुरुषने एरंडको कल्पवृक्ष मान लिया तो, क्या वो कल्पवृक्षकीतरें मनोवांछित दे सकता है? ऐसेंही किसी मिथ्या दृष्टीनें पूर्वोक्त दूषणोंवाले कुदेवोंको देव मान लिये तो, क्या वे देव परमेश्वर मोक्षदाता हो सकते हैं? कदापि नही हो सकते हैं. ॥ ६ ॥

अथगुरुलक्षणमाह ॥ अथ गुरुके लक्षण कहते हैं ॥ महाव्र० अहिंसादि पांच महाव्रतके धारने पालनेवाले होवे, और आपदा आ पडे तब धीर साहसिक होवे, अपने व्रतोंको विराधे नही, कलंकित करे नही। बेंतालीश (४२) दूषणरहित भिक्षावृत्ति माधुकरी वृत्ति करी अपने चारित्रधर्मके तथा शरीरके निर्वाहवास्ते भोजन करे, भोजन भी ऊनोदरतासंयुक्त करे, भोजनकेवास्ते अन्न पाणी रात्रिको न राखे, धर्मसाधनके उपकरणविना और कुछ भी संग्रह न करे, तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह, न राखे.। सामा० रागद्वेषके परिणामरहित मध्यस्थ वृत्ति होकर सदा सामायिकमें वर्त्ते.। धर्मोप० जो धर्म जीवोंके उद्धारवास्ते सम्यग् ज्ञानदर्शनचारित्ररूप परमेश्वर अरिहंत भगवंतने स्याद्वाद अनेकांतस्वरूप निरूपण किया है, तिस धर्मका जे भव्य जीवोंकेतांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्टप्रकारका निमित्त शास्त्र, वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवादि अनेकशास्त्र, जिनसें धर्मको बाधा पहुंचे तिनका उपदेश न करे; ऐसे गुरु कहियें.। काष्ठमय वेडीसमान आप भी तरें, और औरोंको भी तारें. ॥ ७ ॥

अथागुरुलक्षणमाह ॥ अथ अगुरुके लक्षण कहते हैं ॥ सर्वा० स्त्री, धन, धान्य, हिरण्य, रूपादि सर्व धातु, क्षेत्र, हाट, हवेली, चतुःपदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अभिलाषा है जिनको, वे सर्वाभिलाषिणः। सर्वभोजिनः। मधु, मांस, मांखण, मदिरा, अनंतकाय, अभक्ष्यादिक सर्व वस्तुके भोजन करनेवाले होवे, किसी भी वस्तुको वर्जे नही,। सपरिग्रहाः। जे पुत्र, कलत्र, धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, क्षेत्रादिककरीसहित हैं,। अब्रह्म० तथा अब्रह्मचारी हैं। मिथ्यो० मिथ्या वितथ झूठे धर्मका उपदेश करें, झूठाधर्म प्रकाशें, ज्योतिष, निमित्त, वैदक, मंत्र तंत्रादिकका उपदेश देवें, वे गुरु नही. लोहमय बेडी (नावा) समान, आप भी डूवें, और औरोंको भी डोवें. ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त वातही कहते हैं ॥ परिग्रहा० स्त्री, घर, लक्ष्मी आदि परिग्रह, और क्षेत्र, कृषी, व्यवसायादि आरंभ इनमें जे मग्न है, आपही

भवसमुद्रमें डूबे हुए हैं, ता० वे, किसतरेंसें दूसरे जीवोंको संसार-सागरसें तार सकते हैं? इसवातमें दृष्टांत कहते हैं.। जो पुरुष आपही दरिद्री है, सो परको ईश्वर, लक्ष्मीवंत करनेको समर्थ नही है; तैसेंही वे कुगुरु, आपही संसारमें डूबे हुए, पर अपने सेवकोंको कैसें तार सके? ॥ ९ ॥

धर्मलक्षणमाह ॥ सत्य धर्मका स्वरूप कहते हैं. ॥ दुर्गति० नरक, तिर्यंच, कुमनुष्य, कुदेवत्वादि दुर्गतिमें गिरते हुए प्राणिकी रक्षा करे, गिरने न देवे, इसवास्ते धारण करनेसें धर्म कहिये. सो, संयमादि दशप्रकार सर्वज्ञका कथन करा हुआ धर्म, पालनेवालेको मोक्षकेवास्ते होता है.। संयमादि दश प्रकार येह हैं. संयम जीवदया १, सत्यवचन २, अदत्तादानत्याग ३, ब्रह्मचर्य ४, परिग्रहत्याग ५, तप ६, क्षमा ७, निरहंकारता ८, सरलता ९, निर्लोभता १०. ॥ इससें उलटा हिंसादिमय असर्वज्ञोक्त धर्म, दुर्गतिकाही कारण है. ॥ १० ॥

अधर्मत्वमाह ॥ अपौरुषेयं० अपौरुषेय वचन, असंभवि—संभवरहित है. क्योंकि, जो वचन है, सो किसी पुरुषके बोलनेसेंही है, विना बोले नही. वच् परिभाषणे इति वचनात्. और अक्षरोत्पत्तिके आठ स्थान नियत हैं, सो भी पुरुषकोंही होते हैं. इसवास्ते वचन पुरुषके विना संभवे नही.। भवेद्यदि—न प्रमाणं। याहि होवे तो, वेदको प्रमाणता नही. क्योंकि,। भवेद्वाचां ह्याप्ताधीना प्रमाणता। वचनोंकी प्रमाणता, आप्त पुरुषोंके अधीन है. ॥ ११ ॥

असर्वज्ञोक्त धर्म प्रमाण नही यह कहते हैं. ॥ मिथ्या० मिथ्यादृष्टि असर्वज्ञोंने अपनी बुद्धिसें कहा हुआ, पशुमेध, अश्वमेध, नरमेधादि यज्ञोंके कथनसें, और अपुत्रस्य गतिर्नास्ति इत्यादि कथनसें, जीववधादिकोंकरके जो धर्म मलीन है, सधर्म० सो धर्म है, अर्थात् यज्ञादि हिंसा धर्मही है, ऐसा अजाण लोकोंमें विशेष प्रसिद्ध है. तो भी, भवभ्रमण (संसारभ्रमण) का कारण है. यथार्थ धर्मके अभावसें ॥ १२ ॥

कुदेवकुगुरुकुधर्मनिंदामाह ॥ सरागोपि० यदि जगत्में सरागः रागद्वेषादिकरी सहित भी देव होवे, अब्रह्मचारी मैथुनाभिलाषी भी गुरु होवे, और दयाहीन भी धर्म होवे, तो, हाहा! इति खेदे बडा भारी कष्ट है, संसारलक्षण जगत् नष्ट हुआ, दुर्गतिमें पडनेसें. क्योंकि, पूर्वोक्त देव गुरु धर्मकरके डूबनाही होवे. ।

यत उक्तम् ॥

रागी देवो दोसी देवो नामिसूमंपि देवो रत्ता मत्ता कंता सत्ता जे गुरू तेवि पुज्जा । मज्जे धम्मो मंसे धम्मो जीव हिंसाइ धम्मो हाहा कट्ठं नट्ठो लोओ अट्टमट्टं कुणंतो ॥ १ ॥ १२ ॥

ऐसें पूर्वोक्त अदेव, अगुरु, अधर्मका परित्याग करके, सत्य देव, गुरु, धर्मकी, आस्था करनी, तिसका नाम सम्यक्त्व है. अर्थात् आत्माका जो शुभ परिणाम है, सोही सम्यक्त्व है. सो सम्यक्त्व हृदयमें है, ऐसा पांच लक्षणोंकरके मालुम होता है, वे पांच लक्षण कहते हैं. ॥

शमसं०—जिस जीवमें अनंतानुबंधि क्रोध मान माया लोभका उपशम देखिये, अर्थात् अपराध करनेवालेके ऊपर जिसको तीव्र कषाय उत्पन्न होवेही नही, यदि उत्पन्न होवे तो, तिस क्रोधादिको निष्फल कर देवे, इस शमरूप लक्षणसें जाणिये कि, इस जीवमें सम्यक्त्व है। १। संवेग—जिसके हृदयमें संवेग संसारसें वैराग्यपणा होवे, तिस जीवमें संवेगरूप लक्षणसें सम्यक्त्व जाणिये हैं. । २। संसारके सुखों ऊपर द्वेषी, वैराग्यवान्, परवशपणेसें कुटुंबादिकके दुःखसें गृहस्थपणेमें रहा हुआ मोक्षाभिलाषी, जो जीव है, तिसमें निर्वेदरूप लक्षणसें सम्यक्त्व है. । ३। जिसके हृदयमें दुःखिजीवोंको देखके अनुकंपा (दया) उत्पन्न होवे, दुःखिजीवोंके दुःखोंको दूर करनेका जिसका मन होवे, जो दुःखिजीवको देखके अपने मनमें दुःखी होवे, शक्तिअनुसार दुःखिजीवके दुःखोंको दूर करे, तिसमें अनुकंपारूप लक्षणसें सम्यक्त्व उपलब्ध होता है. । ४। जिनोक्त तत्त्वोंमें आस्ति-

भावका होना, सो आस्तिक्य । ५ । एतावता शम १, संवेग २, निर्वेद ३, अनुकंपा ४, और आस्तिक्य ५, इन पांचों लक्षणोंसें हृदयगत सम्यक्त्व जाणिये हैं. ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचभूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच भूषण कहते हैं. ॥ स्थैर्य०-स्थैर्य जिनधर्मकेविषे स्थिरता । १ । जिनधर्मकी प्रभावना । २ । जिनधर्ममें भक्ति । ३ । जिनशासनमें कुशलता । ४ । और तीर्थसेवा । ५ । येह पांच सम्यक्त्वके भूषण हैं. ॥ १५ ॥

सम्यक्त्वस्य पंचदूषणान्याह ॥ अथ सम्यक्त्वके पांच दूषण कहते हैं. ॥ शंका०-शंका धर्म है, वा नही ? इत्यादि संदेह । १ । आकांक्षा-अन्य २ धर्मकी अभिलाषा । २ । विचिकित्सा-धर्मके फलका संदेह । ३ । मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसा । ४ । और मिथ्यादृष्टियोंका परिचय । ५ । येह पांच सम्यक्त्वों दूषित करते हैं. ॥ १६ ॥

ऐसें पूर्वोक्त उपदेशकरके श्रेणिक, संप्रति, दशार्णभद्रादि सम्यक्त्वमें दृढ राजायोंके चरित्रोंके व्याख्यान करे. । उस दिनमें श्रावक एकभक्त आचाम्लादि तप करे. । साधुयोंको अन्न, वस्त्र, पुस्तक, वसति, यथायोग्य देना. । मंडलीपूजा करनी. । चतुर्विधसंघवात्सल्य करना. । और संघपूजा करनी. ॥

इतिव्रतारोपसंस्कारे सम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिः ॥
इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदशव्रतारोपसंस्कारांतर्गतसम्यक्त्वसामायिकारोपणविधिवर्णनोनाम सप्तविंशः स्तम्भः ॥ २७ ॥

॥ अथाष्टाविंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ अष्टाविंश (२८) स्तंभमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत देशविरतिसामायिकारोपणविधि लिखते हैं ॥ तदाही-सम्यक्त्व सामायिकारोपणानंतर तत्कालही, तिसकी वासनानुसारें, वा मास वर्षादिके अतिक्रम हुए, देशविरतिमासायिक आरोपण करिये हैं. । तहां नंदि, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग,

वासक्षेप, क्षमाश्रमणआदि, पूर्ववत् जानने. परंतु सर्वत्र सम्यक्त्वसामायिकके स्थानमें देशविरतिसामायिकका नाम ग्रहण करना.। सर्वत्र तैसें करके फिर दूसरी नंदि दंडकोच्चारणसें प्रथम करनी.। व्रतोच्चारकालमें नमस्कार तीन पाठानंतर, हाथमें ग्रहण करे परिग्रह परिमाण टिप्पनक (फहरिस्त–नोंध) ऐसे श्रावकको, गुरु, देशविरतिसामायिकदंडक उच्चरावे.॥

सयथा ॥

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं पाणाइवायं संकप्पओ बीइंदिआइजीवनिकायनिग्गहनियट्टिरूवं निरावराहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥"

यह पाठ तीनवार कहना ॥ १ ॥ इसीतरें सर्व व्रतोंमें तीन २ वार पाठ पढना.॥

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं मुसावायं जीहाच्छेयाइनिग्गहहेऊअं कन्नागोभूमिनिक्खेवावहारकूडसक्खाइपंचविहं दक्खिन्नाइअविसए अहागहिअभंगएणं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं० ॥ २ ॥"

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगं अदिन्नादाणं खत्तखणणाइचोरकारकरं रायनिग्गहकरं सच्चित्ताचित्तवत्थुविसयं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ३ ॥"

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे थूलगमेहुणं उरालियवेउव्वियभेअं अहागहिअभंगएणं तत्थ दुविहं तिविहेणं दिव्वं एगविहं तिविहेणं तेरिच्छं एगविहमेगविहेणं माणुस्सं पच्चक्खामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ४ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अपरिमिअं परिग्गहं धण-धन्नाइनवविहवत्थुविसयं पच्चक्खामि इच्छापरिमाणं अहागहिअभंगएणं उवसंपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ५ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पढमं गुणव्वयं दिसिपरिमाणरूवं पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ६ ॥"

"॥अहणं भंते तुम्हाणं समीवे उवभोगपरिभोगवयं भोयणओ अणंतकायबहुबीयराईभोयणाइबावीसवत्थुरूवंकम्मणापन्नरसकम्मादाणइंगालकम्माइबहुसावज्जंखरकम्माइरायनिओगं च परिहरामि परिमिअं भोगउवभोगं उवसंपज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ७ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अणत्थदंडगुणव्वयं अट्टरुद्दज्झाणपावोवएसहिंसोवयारदाणपमायकरणरूवं चउव्विहं जहासत्तीए पडिवज्जामि दुविहं तिविहेणं० ॥ ८ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे सामाइयं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ९ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे देसावगासिअं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १० ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे पोसहोववासं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ ११ ॥"

"॥ अहणं भंते तुम्हाणं समीवे अतिहिसंविभागं जहासत्तीए पडिवज्जामि जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं० ॥ १२ ॥"

" ॥ इच्चेयं सम्मत्तमूलं पंचाणुव्वइयं तिगुणव्वइयं चउसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ॥ इति ॥ "

दंडकोच्चारणानंतर कायोत्सर्ग, वंदनक, क्षमाश्रमण, प्रदक्षिणा, वासक्षेपादिक पूर्ववत्.

परिग्रहप्रमाणटिप्पनकयुक्तिर्यथा ॥

पणमिअ अमुगजिणंदं अमुगा सड्ढी य अमुग सड्ढो वा॥
गिहिधम्मं पडिवज्जइ अमुगस्स गुरुस्स पासंमि ॥ १ ॥
अरहंतं मुत्तूणं न करेमि अ अन्नदेवयपणामं ॥
मुत्तूणं जिणसाहू न चेव पणमामि धम्मत्थं ॥ २ ॥
जिणवयणभाविआइं तत्ताइं सच्चमेव जाणामि ॥
मिच्छत्तसत्थसवणे पढणे लिहणे अ मे नियमो ॥ ३ ॥
परतित्थिआण पणमण उज्झावण थुणण भत्तिरागं च ॥
सक्कारं सम्माणं दाणं विणयं च वज्जेमि ॥ ४ ॥
धम्मत्थमन्नतित्थे न करे तवदाणन्हाणहोमाई ॥
तेसिं च उचियकम्मे करणिज्जे होउ मे जयणा ॥ ५ ॥
तिअपंचसत्तवेलं चियवंदणयं जहाणुसत्तीए ॥
इगदुन्निअवाराओ सुसाहूनमणं च संवासो॥ ६ ॥
इगदुन्नितिन्निवेलं जिणपूआ निच्च पव्वन्हवणं च ॥
जयणा य कुलायारे पाणवहं सव्वजीवाणं ॥ ७ ॥
न करेमि अकज्जेणं कज्जे एगिंदिआण मह जयणा ॥
कन्नाईविसयअलियं वज्जेमि अ पंच नियमेणं ॥ ८ ॥
वज्जेमि धणं चोरंकारकरं रायनिग्गहकरं च ॥
दुविहतिविहेण दिव्वं एगविहं तिविहतेरिच्छं ॥ ९ ॥

नियमुत्ति अणुभवेणं बंभवयं नियमणंमि धारेमि ॥
माणुस्से जाजीवं काएणं मेहुणं वज्जे ॥ १० ॥
परनारिं परपुरिसं वज्जेमि अ अन्नओ अ जयणा मे ॥
अह य परिग्गहसंखा परिग्गहे नवविहे एसा ॥ ११ ॥
इत्तिअमित्ता टंका इत्तिअमित्ताइं अहव दम्मा वा ॥
तेसिं च वत्थुगहणे इत्तिअमित्ताइं संखा वा ॥ १२ ॥
इत्तियमित्ताण टंकयाण गणिमस्स वत्थुणो गहणं ॥
तुलिमस्स इत्तिआण य मेअस्स य इत्तिआणं च ॥ १३॥
हत्थंगुलमेयाणं इत्तिअमित्ताण मज्झ संगहणं ॥
तहदिट्ठिमुल्लयाणं इत्तिअमित्ताण टंकाणं ॥ १४ ॥
इत्तिअखारी अन्नाण इत्तिअ मह परिग्गहे भूमी ॥
पुरगामहट्टगेहा खित्ता मह इत्तिअपमाणा ॥ १५ ॥
इत्तिअमित्तं कणयं इत्तिअमित्तं तहेव रूप्पं च ॥
कंसं तंबं लोहं तउं सीसं इत्तियं च घरे ॥ १६ ॥
इत्तिअमित्ता दासा दासीओ इत्तिआओ मह संखा ॥
संखा सेवयचेडाण इत्तिआणं च मह होउ ॥ १७ ॥
इत्तिअमित्ता करिणो इत्तिअ तुरया य इत्तिआ वसहा ॥
इत्तिअ करहा य सगडा गोमहिसीओ इअपमाणा ॥ १८ ॥
इत्तिअमित्ता मेसा इत्तिअ छगलाओ इत्तिआ य हला ॥
अमुगस्स य अमुगस्स य कम्मस्स उ होइ मे नियमो ॥१९॥
दससुवि दिसासु इत्तिअजोअणगमणं च जावजीवं मे ॥
अप्पस्स वसेणं चिअ जयणा पुण तित्थजत्तासु ॥ २० ॥
कम्मे भोगुवभोगे खरकम्मं कम्मदाणपनरसगं ॥
दुप्पोलाहारं चिअ अण्णायपुप्फं फलं वज्जे ॥ २१ ॥

पंचुंबरि चउ विगई हिम विस करगे अ सव्वमट्टी अ ॥
राईभोयणगं चिय बहुबीअ अणंत संधाणा ॥ २२ ॥
घोलवडा वायंगण अमुणिअनामाइं पुप्फफलयाइं ॥
तुच्छफलं चलिअरसं वज्जे वज्जाणि बावीसं ॥ २३ ॥
एआइं मुत्तूणं अन्नाण फलाण पुप्फपत्ताणं ॥
एआइं एआइं पाणंतेवि हु न भक्खेमि ॥ २४ ॥
इत्तिअमित्तअणंते फासुअरईएण होउ मे जयणा ॥
इत्तिअफले अपक्के अखंडिएवि हु न भक्खेमि ॥ २५ ॥
आजम्मं सच्चित्ता इत्तिअमित्ता य भक्खणिज्जा मे ॥
इत्तिअमित्ता दव्वा वंजणघिअदुद्धदहिपभिई ॥ २६ ॥
इत्तिअमित्ता विगई इत्तिअमित्ता य मे पइत्ताणा ॥
इत्तिअमित्ता गयतुरयरहवरा हुंतु जयणा मे ॥ २७ ॥
इत्तिअमित्ता पूगा इत्तिअमित्ता लवंग पत्ता य ॥
एला जाइफलाइ अ मह निच्चं इत्तिअपमाणा ॥ २८ ॥
चउव्विहवत्थाणंपि अ इत्तिअमत्ताण मज्झ परिहाणं ॥
इअजाई इअसंखा पुप्फाणं अंगभोगे मे ॥ २९ ॥
आसंदी सीहासण पीढय पट्टा य चउक्किआओ अ ॥
इत्तिअमित्ता पल्लंक तूलिया खट्टमाईओ ॥ ३० ॥
कप्पूरागरुकच्छूरिआओ सिरिहंडकुंकुमाई अ ॥
इत्तिअमित्ता मह अंगलेवणे पूयणे जयणा ॥ ३१ ॥
इत्तिअमित्ता नारीओ मज्झ संभोगमित्तिअं कालं ॥
इत्तिअघडेहि पूएहि फासुएहिं च मे न्हाणं ॥ ३२ ॥
इत्तिअवारा इत्तिअतिल्लेहिं इत्तिअप्पयारेहिं ॥
इत्तिअमित्तं भत्तं इत्तिअवाराइं भुंजामि ॥ ३३ ॥

इअ जावज्जीवं चिय सचित्ताईण भोगपरिभोगा ॥
एएसिं पुण संखं दिवसे दिवसे करिस्सामि ॥ ३४ ॥
इत्तिअमित्तं मणिकणयरूप्पमुत्ताइभूसणं अंगे ॥
इत्तिअमित्तं गीअं नट्टं वज्जं च उवभुज्जं ॥ ३५ ॥
वज्जेमि अट्टरुद्दं झाणं अरिघायवयरमाईयं ॥
दक्खिन्नाविसए पुण सावज्जुवएसदाणं च ॥ ३६ ॥
तह दक्खिणाविसए हिंसगगिहोवगरणाइदाणं च ॥
तह कामसत्थपढणं जूयं मज्जं परिहरेमि ॥ ३७ ॥
हिंडोलायविणोअं भत्तित्थीदेसरायथुइनिंदं ॥
पसुपक्खिजोहणं चिय अकालनिद्दं सयलरयणी ॥ ३८ ॥
इच्चाइपमायाइं अणत्थदंडे गुणव्वए वज्जे ॥
वरिसे इत्तिअसामाइआइं तह पोसहाइं इत्ताइं ॥ ३९ ॥
इत्ताइं जोअणाइं मह दिवसे दसदिसासु गमणं च ॥
साहूण संविभागं भोयणवत्थाइसु करेमि ॥ ४० ॥
पढमं जईण दाउण अप्पणा पणमिऊण पारेमि ॥
असईइ सुविहिआणं भुंजेमि अ कयदिसालोओ ॥ ४१ ॥
इअबारसविहमिमिणा विहिणा पालेमि सावगं धम्मं ॥
अगलिअजलस्सपाणं न्हाणं मरणेवि वज्जेमि ॥ ४२ ॥
कंदप्पदप्पनिट्ठीवणाइं सुअणं चउव्विहाहारं ॥
सजिणजिणमंडवंते विकहं कलहं च मुंचामि ॥ ४३ ॥
अमुगंमि महागच्छे अमुगस्स गुरुस्स सूरिसंताणे ॥
अमुगस्स सीसपासे पायंते अमुगसूरिस्स ॥ ४४ ॥
अमुगम्मि वच्छरे अमुगमासि अमुगम्मि पक्खसमयंमि ॥
अमुगतिथि अमुगवारे अमुगे रिक्खे अ अमुगपुरे ॥ ४५ ॥

अमुगस्स सुओ अमुगो सड्ढो गिण्हेइ इत्थ गिहिधम्मं ॥
अमुगस्स अमुगकंता अमुगा वा साविआ चेव ॥ ४६ ॥
जुज्झंमि गोगहम्मि अ चेइअगुरुसाहुसंघउवसग्गे ॥
तह दुट्ठनिग्गहे चिअ जीवविघाए न मह दोसो ॥ ४७ ॥
जणदेसरक्खणत्थं हणणे मह सीहवग्घसत्तूणं ॥
नहु दोसो जलपिअणे गलणं अन्नत्थ जहसत्ती ॥ ४८ ॥
इत्थेव पमाएणं घुरुवयणेणं इमं तवं कुव्वे ॥
अप्पबहुभंगएणं तेणं जायइ मह विसोही ॥ ४९ ॥

भाषार्थः—अमुक जिनेंद्रको नमस्कार करके, अमुक श्राविका, वा अमुक श्रावक अमुक गुरुके पासे, गृहस्थधर्मको अंगीकार करता है. ॥ १ ॥

श्री अरिहंतको वर्जके अन्य देवको नमस्कार न करुं, जिनमतके सुसाधुको छोडके अन्य लिंगिको धर्मार्थे नमस्कार न करुं. । २ । जिन वचन स्याद्वादयुक्त जो सप्त वा नव तत्त्व तिनको सत्य करी जानता हुं, मिथ्याशास्त्रोंके श्रवण पठन लिखनेका मुझको नियम होवे. । ३ । परतीर्थियांको प्रणाम, उद्भावन, स्तवन, भक्ति, राग, सत्कार, सन्मान, दान, विनय, वर्जुं—न करुं. । ४ । धर्मकेवास्ते अन्य तीर्थमें तप, दान, स्नान, होमादिक नही करुं. तिनके उचित करने योग्य कर्ममें जयणा मुझको होवे. । ५ । तीन, वा पांच, वा सातवार यथाशक्तिसें चैत्यवंदन करुं; एक, वा दो वा तीन वार, प्रतिदिन सुसाधुको नमस्कार करुं, और तिसकी सेवा करुं. । ६ । एक, वा दो, वा तीनवार प्रतिदिन जिनपूजा करुं; और पर्वदिनमें स्नात्रादि अधिक अधिकतर पूजा करुं. इतिसम्यक्त्वम् ।

कुलाचार विवाहादि कृत्यमें जीवबध होते जयणा करुं । ७ । विना प्रयोजन एकेंद्रियका भी वध न करुं, प्रयोजनके हुए जयणा करुं. । इतिप्रथमव्रतम् ।

कन्या आदि पांच प्रकारका मृषावाद, नियमकरके वर्जता हुं. । इति-द्वितीयव्रतम् ।

जिससें चोर नाम पडे, और राजदंड होवे, ऐसा धन वर्जु, अर्थात् चोरी वर्जु. । इतितृतीयव्रतम् ।

दो करण तीन योगसें देवतासंबंधि, एकाविध त्रिविधें करी तिर्यंच संबंधि मैथुनका नियम करता हुं. । ९ । अनुभव करके स्तंभसमान ब्रह्मव्रतको अपने मनमें धारण करुं, और जावजीव मनुष्यसंबंधि मैथुन कायाकरके वर्जु. । १० । परनारीको, और परपुरुषको (स्त्री व्रतग्राहिता आश्रित) वर्जु. इनके उपरांत अन्यकी मुझको जयणा. । इतिचतुर्थव्रतम् ।

अथ च नव प्रकारके परिग्रहमें परिग्रहकी संख्याका प्रमाण यह है. । ११ । इतने मात्र रूप्यक, इतने द्रम्म, तिनसें वस्तुका ग्रहण करना, इतने मात्र गिणतिमें. । १२ । इतने गिणतिमें रूप्यक, यह गणिमवस्तुका ग्रहण है. ॥ तोलमें इतनी वस्तु और मापसें इतनी वस्तु. । १३ । हाथ अंगुलसें मेय वस्तुका इतने प्रमाण मात्रसें मुझको संग्रह करना कल्पे, तथा दृष्टिसें देखके जिनका मोल करा जावे ऐसे पदार्थ इतने रूपइयोंके मोलके रखने. । १४ । इतनी खारीयां अन्नकी एक वर्षमें रखनी, इतनी मुझको परिग्रहमें भूमि रखनी कल्पे; इतने पुर, इतने गाम, इतनी हट्टां, इतने घर, और इतने प्रमाण क्षेत्र, मुझको कल्पे. । १५ । इतने सेर, वा इतने तोले प्रमाण सोना, इतने मात्र रूपा, इतना कांसा, इतना ताम्र (तांबा), इतना लोहा, इतना तरुया, इतना सीसा, अपने घरमें रखना. । १६ । इतने दास, इतनी दासी, इतने सेवक—नौकर और इतने दासचेटकोंकी संख्या मुझको रखनी कल्पे. । १७ । इतने हाथी, इतने घोडे, इतने बलद, इतने ऊंट, इतने गाडे, इतनी गौयां, इतनी महिषीयां (भैंसां) । १८ । इतनी बकरीयां, इतनी भेडें, और इतने हल रखने मुझको कल्पे. और अमुक अमुक कर्मका मुझको नियम होवे. । १९ । इति पंचमव्रतम् ।

दसोंही दिशायोंमें अपने वशसें इतने योजन प्रमाण जावजीव गमन करना, और तीर्थयात्रामें जानेकी जयणा. । २० । इतिषष्ठव्रतम् ।

कर्ममें भोगोपभोगमें, खरकर्ममें, पंदरा कर्मादानमें, दुप्पोल आहार अज्ञात फूल फल इनको वर्जुं.।२१। पांच ऊंबर ५, चार महाविगइ ४, हिम १०, विष ११, करक १२, सर्व जातकी मट्टी १३, रात्रिभोजन १४, बहुबीजा १५, अनंतकाय १६, संधान (आचार) १७.।२२। घोलवडां (विदल) १८, वृंताक १९, अज्ञात फल फूल २०, तुच्छ फल २१, और चलितरस २२, येह बावीस वस्तुयोंको वर्जुं.।२३। इनको वर्जके अन्य फल फूल पत्रमेंसें अमुक अमुक प्राणांतमें भी, भक्षण न करुं. २४। इतने मात्र प्रासुक अनंतकी मुझको जयणा होवे, इतने अपक्व फल और अखंडित भी भक्षण न करुं.।२५। आ जन्मतांइ इतनी सच्चित्त वस्तुयों मेरेको भक्षण करने योग्य है, इतने पुष्टिकारक द्रव्य, और इतने व्यंजन शाकादि मुझको कल्पे; तथा घृत, दुग्ध, दहि प्रभृति-। २६। इतनी विगइयां मुझको कल्पे. इतने पियादे, इतने गज, इतने तुरग और इतने प्रधान रथोंकी मुझको जयणा होवे.।२७। इतने पूगफल (सुपारी), इतने लवंग, इतने पत्र, इतने एलाफल (इलायची) जायफल आदि मेरेको नित्य इतने प्रमाण कल्पे.।२८। सौत्र, कौशेय, और्ण, तार्ण, इन चार प्रकारके वस्त्रोंमें भी इतने वस्त्र पहिरने मुझको कल्पे; और इतनी जातिके फूल मेरे अंगके भोगवास्ते कल्पे.।२९। आसंदी, सिंहासण, पीढी, पट्टे, चौकीयां, पल्लंक, तुलिका (तूलाई) और खाट आदि, येह सर्व इतने प्रमाण मुझको कल्पे.।३०। कर्पूर, अगर, कस्तूरी, श्रीखंड, कुंकुमादि इतने मात्र मेरे अंगके लेपवास्ते कल्पे; और पूजामें जयणा.।३१। इतनी नारीयां मेरे संभोगमें इतने कालमात्र, इतने घडे, छाणे हुए जलके और प्रासुक जलके मेरेको स्नानवास्ते कल्पे.।३२। इतनी वार दिनमें इतनी जातिके तेल अभ्यंग (मर्दन) वास्ते, इतने प्रकारके भात रोटी आदिक भोजन, और दिनमें इतनी वार भोजन करना.।३३। यह सच्चित्तादिका भोग परिभोग जावजीवतांइ है, इनका भी फेर प्रमाण दिनदिनमें करुं. *।३४। इतने मात्र मणि, कनक, रूपा, मोती भूषण,

* दिन २ में जो प्रमाण करना है, सो दशम देसावकाशिकव्रतांतर्गत जाणना.॥

अंगऊपर धारण करुं. इतने मात्र गीत, नृत्य, वाजंत्र, मुझको उपभोग-वास्ते कल्पे. । ३५ ॥ इतिसप्तमव्रतम् ॥

वैरिका घात वैर लेना इत्यादिक आर्त्त रौद्र ध्यान अदाक्षिण्यताविषे पापोपदेशका देना, इनको वर्जु. । ३६ । अदाक्षिण्यताविषे हिंसाकारी गृहोपकरणादि देना तथा कामशास्त्रका पढना, जूया खेलना, मद्य पीना, इनको परिहरुं. । ३७ । हिंडोलेका विनोद, भक्त (भोजन), स्त्री, देश, और राजा, इनकी स्तुति, वा निंदा; पशु पक्षीका युद्ध, अकालमें नींद लेनी, संपूर्ण रात्रिमें सोना, । ३८ । इत्यादि प्रमादस्थानक, अनर्थादंडनामक गुण व्रत में वर्जु. । इत्यष्टमव्रतम् ॥

एक वर्षमें इतने सामायिक करुं. । इतिनवमव्रतम् ॥

इतने योजन मेरेको दिन, वा रात्रिमें दशोदिशायोंमें जाना कल्पे. । इतिदशमव्रतम् ।

एक वर्षमें इतने पौषध करुं. । इत्येकादशव्रतम् ॥

साधुयोंको संविभाग भोजन वस्त्र आदिकसें करुं. । ४० । प्रथम यतिको देके और नमस्कार करके पीछे आप पारणा करुं; जेकर सुविहित साधुयोंका योग न होवे तो, दिशावलोकन करके भोजन करुं. । ४१। इतिद्वादशव्रतम् ॥

यह द्वादश व्रतरूप श्रावकधर्म, पूर्वोक्त विधिसें पालुं, विना छाण्या जलका पान और स्नान, मरणांतमें भी न करुं. । ४२ । कंदर्प, दर्प, थूकना, सोना, चार प्रकारका आहार करना, विकथा, कलह, इत्यादि जिनमंडपमें वर्जु. । ४३ ।

असुक महागच्छमें, असुक गुरु सूरिके संतानमें,असुकके शिष्यके पास, असुक सूरिके पादांतमें-। ४४। असुक संवत्सरमें, असुक मासमें, असुक पक्षमें, असुक तिथिमें, असुक वारमें, असुक नक्षत्रमें, असुक नगरमें-। ४५ । असुकका पुत्र, असुक नामका श्रावक, यहां गृहस्थधर्म ग्रहण करता है. असुककी पुत्री, असुककी भार्या, असुक नामकी श्राविका, वा व्रत ग्रहण करती है. । ४६ ।

नवरं क्षत्रियकेवास्ते प्राणातिपात स्थानमें प्रथम व्रतमें ४७ । ४८ । यह दो गाथा, अधिक जाननी. । युद्धमें, कोइ गौयांको चुरा ले जाता होवे तिसके हटानेमें, चैत्य, गुरु, साधु, संघको उपसर्ग्ग हुए. उपसर्ग देनेवाले-को हटानेमें तथा दुष्टके निग्रहमें, जीवके बध हुए मुझको दोष नही । ४९। जनोंके, और देशके रक्षणवास्ते सिंह, वाघ, शत्रुयोंके हननेमें मुझको दोष नही; अर्थात् इन कामोंके करनेसें मेरा व्रत भंग न होवे. । जल पीनेमें छाणना, अन्यत्र स्नानादिमें यथाशक्ति. । ४८ । इनमें प्रमादके होनेसें, गुरुके वचनसें यह तप करुं; अल्प बहुत भांगेसें, तिससें मेरी विशुद्धि होवे. । ४९ ॥ इति परिग्रहप्रमाणटिप्पनकाविधिः ॥

इन बारांही व्रतोंमेंसें कोइ कितनेही व्रत अंगीकार करे, तिसको तित-नेही उच्चार करावने. । जिसको छ मासिक सामायिक व्रत आरोपीये हैं, तिसका यह विधि है. ॥ चैत्यवंदना, नंदि, क्षमाश्रमणादि सर्व, पूर्ववत् सामायिकके अभिलाप करके; । और विशेष यह है; । कायोत्सर्गके अनंतर तिसके हस्तगत नूतन मुखवस्त्रिकाके ऊपर वासक्षेप करना. । तिसही मुखवस्त्रिकाकरके षट् (६) मासपर्यंत उभयकाल सामायिक ग्रहण करे. । पीछे तीनवार नमस्कारका पाठ करके दंडक पढावे.

सयथा ॥

"॥ करेमि भंते सामाइयं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जाव-
नियमं पज्जुवासामि दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए
काएणं न करेमि न कारवेमि तस्स भंते पडिक्कमामि
निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि । से सामाइए
चउव्विहे तंजहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं
सामाइअं पडुच्च खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा काल-
ओणं जाव च्छम्मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि
जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्नि वाएणं नाभिभ-
विज्जामि ताव मे एसासामाइयपडिवत्ती ॥ "

ऐसें तीनवार पढावना. । मस्तकोपरि वासक्षेप करना, अक्षतवासांका अभिमंत्रणा, और संघके हाथमें वासक्षेप देना, यहां नही है. परंतु प्रदक्षिणा तीन, करवावनी.। इतिषाण्मासिक सम्यक्त्वारोपणाविधिः॥

इसीतरें सम्यक्त्वका, और द्वादश व्रतोंका भी इसही दंडकसें तिस २ अभिलापसें मास, षट् (६) मास, वा वर्ष पर्यंत, सम्यक्त्व व्रतोंका उच्चारण करना. । नवरं सम्यक्त्वका सम्यक्त्वदंडसें उच्चार करना. नवरं इतना विशेष है कि, सम्यक्त्वकी अवधिमें ' जावज्जीवाए ' यह पाठ न कहना. किंतु, ' मासं छम्मासं वरिसं ' इत्यादि कहना. शेष व्रतोंमें भी जावज्जीवाएके स्थानमें ' मासं छम्मासं वरिसं ' इत्यादि कहना. ॥

अथ प्रतिमोद्वहनविधिः ॥ यावज्जीवतांइ नियम स्थिरीकरण प्रतिज्ञा जो है, तिसको प्रतिमा कहते हैं. तिनमें कालादिमें नियमव्यवच्छेद नही है. । ते प्रतिमा एकादश (११) गृहस्थोंकी हैं. ।

तद्यथा ॥

"॥ दंसण १, वय २, सामाइय ३, पोसह ४, पडिमाय ५, बंभ ६, अचित्ते ७,॥ आरंभ ८, पेस ९, उद्दिठ्ठवज्जए १०, समणभूए य ११, ॥१॥"

अर्थः—तहां जिस प्रतिमामें मासतांइ श्रावक निःशंकितादि सम्यग् दर्शनवाला होवे, सा प्रथमदर्शनप्रतिमा १. व्रतधारी द्वितीया २. कृतसामायिक तृतीया ३. अष्टमी चतुर्दश्यादिमें चतुर्विध पौषध करना, चतुर्थी ४. पौषधकालमें, रात्रिकी आदि प्रतिमा, अंगीकार करनी, अस्नान, प्रासुकभोजी, दिनमें ब्रह्मचारी, रात्रिमें परिमाण करे, और कृतपौषध तो, रात्रिमें भी ब्रह्मचारी, इति पंचमी ५. सदा ब्रह्मचारी षष्ठी ६. सचित्ताहारवर्जक सप्तमी ७. आप आरंभ नही करना, अष्टमी ८. नौकरोंसें आरंभ नही करावना, नवमी ९. उद्दिष्टकृताहारवर्जक, क्षुरमुंडित, शिखासहित, वा निराधारीकृतधनका, पुत्रादिकोंको बतलानेवाला, इतिदशमी १०.

क्षुरमुंडित, लुंचितकेश, वा रजोहरणपात्रधारी, साधुसमान, निर्ममत्व, अपनी जातिमें आहारादिकेवास्ते विचरे, इत्येकादशी. ॥ ११ ॥

यहां पहिली एक मास, दूसरी दो मास, तीसरी तीन मास, एवं यावत् इग्यारहमी इग्यारह मास पर्यंत. तथा जो अनुष्ठान पूर्व प्रतिमामें कहा है, सोही अनुष्ठान, आगेकी सर्व प्रतिमायोंमें जानना. इनमें वितथ प्ररूपणा श्रद्धानादि करना, सो अतिचार है. । तिनमें पहिली 'दर्शन प्रतिमा' तिसमें नंदि, चैत्यवंदन, क्षमाश्रमण, वासक्षेप, इनोंका विधि दर्शनप्रतिमाके अभिलापसें सोही पूर्वोक्त जानना.

और दंडक ऐसें हैं।

"॥ अहण्णं भंते तुम्हाणं समीवे मिच्छत्तं दव्वभावभिन्नंपच्चक्खामि दंसणपडिमं उवसंपज्जामि नो मे कप्पइ अज्जप्पभिई अन्नउत्थिए वा अन्नउत्थिअदेवयाणि वा अन्नउत्थिअपरिग्गहिआणि वा अरिहंतचेइआणि वा वंदित्तए वा नमंसित्तए वा पुव्विंअणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पयाउं वा तिविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि तहा अईअं निंदामि पडुप्पन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खिअं सिद्धसक्खिअं साहुसक्खिअं अप्पसक्खिअं वोसिरामि तहा दव्वओ खित्तओ कालओ भावओ दव्वओणं एसा दंसणपडिमा खित्तओणं इहेव वा अन्नत्थ वा कालओणं जाव मासं भावओणं जाव गहेणं न गहिज्जामि जाव छलेणं न छलिज्जामि जाव सन्निवाएणं नाभिभविज्जामि ताव मे एसा दंसणपडिमा ॥"

शेषं पूर्ववत् । प्रदक्षिणात्रयादिक, दर्शनप्रतिमास्थिरीकरणार्थं कायोत्सर्गादि. यहां अभिग्रह मासतक यथाशक्ति आचाम्लादि प्रत्याख्यान

करना. तीनों संध्यामें विधिसें देवपूजन करणा. पार्श्वस्थादिवंदनका परिहार करना. शंकादि पांच अतिचारोंका त्याग करना. राजाभियोगादि छ (६) कारणोंसें भी यह दर्शनप्रतिमा नही त्यागनी. ॥ इतिदर्शनप्रतिमा. १।

अथ दूसरी व्रतप्रतिमा, सा, मास दोतक यावत् निरतिचार पांच अणुव्रत पालनविषया, गुणव्रत ३, शिक्षाव्रत ४, इनका पालना भी साथही जानना. अर्थात् दो मासपर्यंत निरतिचार द्वादश (१२) व्रतोंका पालना. यहां नंदिक्षमाश्रमणादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें पूर्ववत् । प्रत्याख्यान नियमचर्यादि सर्व तैसेंही जानने. दंडक भी तिसके अभिलापसें सोही जानना. ॥ इतिव्रतप्रतिमा ॥ २ ॥

अथ तीसरी सामायिक प्रतिमा, सा, तीन मासतक उभयसंध्यामें सामायिक करनेसें होती है. शेष नंदिनियम व्रतादिविधि सोइ अर्थात् पूर्वोक्तही जानना. और दंडक सामायिकके अभिलापसें कहना. ॥ इतिसामायिकप्रतिमा ॥ ३ ॥

अथ चौथी पौषधप्रतिमा, सा, चार मास यावत् अष्टमी चौदशको चार प्रकारके आहारके त्यागमें रक्तको चार प्रकारके पौषधके करनेसें होवे है. द्रव्यादिभेदसें दो आदि मासपर्यंत इस कथनसें यथाशक्ति सूचन किइ गइ. यहां नंदिव्रत नियमादिविधि सोही सोही और दंडक तिसके (पौषधप्रतिमाके) अभिलापसें कहना. ॥ इतिपौषधप्रतिमा ॥४॥

ऐसें पांचमासादिकालवालीयां शेषप्रतिमायोंमें भी यही पूर्वोक्त विधि है. नंदिक्षमाश्रमण दंडकादि तिसतिस प्रतिमाके अभिलापसें. व्रतचर्या सोही है, परं संप्रतिकालमें, पर्यायसें, वा संहननकी शिथिलतासें, पांचमी प्रतिमासें लेके इग्यारहमीतांइ प्रतिमाके अनुष्ठानका विधि शास्त्रोंमें नही दीखता है. प्रतिमाका आरंभ शुभ मुहूर्त्तमें करना. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे देशविरतिसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदश व्रतारोपसंस्कारांतर्गतदेशविरतिसामायिकारोपणविधिवर्णनो नामाष्टाविंशः स्तम्भः ॥ २८ ॥

॥ अथैकोनत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ एकोनत्रिंशस्तंभमें व्रतारोपसंस्कारांतर्गत श्रुतसामायिकारोपणविधि कहते हैं. ॥ तहां यति (साधु)योंको श्रुतसामायिकारोपण, योगोद्वहनविधिकरके होता है. और श्रुतारोपण, आगम पाठसें होता है. और योगोद्वहन आगमपाठ रहित गृहस्थोंको, श्रुतसामायिकारोपण, उपधानोद्वहनकरके होता है. और सुधारोपण, परमेष्ठिमंत्र, ईर्यापथिकी, शक्रस्तव, चैत्यस्तव, चतुर्विंशतिस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तवादि पाठकरके होता है. ॥

उपधीयते ज्ञानादि परीक्ष्यते अनेनेत्युपधानं—जिससें ज्ञानादिकी परीक्षा करिये, तिसको उपधान कहते हैं. अथवा चार प्रकारके संवर समाधिरूप सुखशय्यामें उत्तम होनेसें उत्सीर्षक स्थानमें उपधीयते स्थापन करिये, तिसको उपधान कहिये. तिस उपधानमें छ (६) श्रुतस्कंधोंका उपधान होता है, सोही दिखाते हैं. परमेष्ठिमंत्रका १, ईर्यापथिकीका २, शक्रस्तवका ३, अर्हत् चैत्यस्तवका ४, चतुर्विंशतिस्तवका ५, श्रुतस्तवका ६. सिद्धस्तवकी वाचना उपधानविना होवे है.

प्रथम परमेष्ठिमंत्र महाश्रुतस्कंधके पांच अध्ययन हैं, और एक चूलिका है. दो दो पदके आलापक (आलावे) पांच है, सात २ अक्षरके अर्हत् आचार्य उपाध्याय नमस्कृति (नमस्कार) रूप तीन पद हैं, सिद्धनमस्कृतिरूप दूसरा पद पांच अक्षरोंका है, साधुयांको नमस्काररूप पांचमा पद नव अक्षरोंका है, एवं पांच पद. तिसके पीछे चूलिका, तिसमें दो पदरूप प्रथम आलापक सोलां (१६) अक्षरोंका है, तृतीय पदरूप दूसरा आलापक आठ (८) अक्षरोंका है, और चौथे पदरूप तीसरा आलापक नव (९) अक्षरोंका है. तहां पंचपरमेष्ठिमंत्रमें पांचो पदोंमें तीन उद्देशे है, और चूलिकामें भी उद्देशे तीन हैं, एवं उद्देशे ६. ॥ प्रथमके पांचो पदोंमें पैंतीस (३५) अक्षर है, और चूलिकामें तेतीस (३३) अक्षर है.

पांच अध्ययन ऐसें है ॥

नमो अरिहंताणं १। नमो सिद्धाणं २। नमो आयरिआणं ३। नमो उवज्झायाणं ४। नमो लोए सव्वसाहूणं ॥५॥

एका चूलिका यथा ॥

एसो पंच नमुकारो सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

दो दो पदके आलापक यह है ॥

नमो अरिहंताणं। नमोसिद्धाणं। इत्येक आलापकः ॥ १ ॥

नमो आयरिआणं नमो उवज्झायाणं। इति द्वितीयालापकः ॥२॥

नमो लोए सव्वसाहूणं। इतितृतीयालापकः ॥ ३ ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो। इति चतुर्थालापकः॥४॥

मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं। इतिपंचमालापकः॥५॥

सात २ अक्षरके तीन पद यह है॥

नमो अरिहंताणं। ७। नमो आयरिआणं। ७।

नमो उवज्झायाणं। ७। यह एक उद्देशक है ॥ १ ॥

पांच अक्षरोंका दूसरा पद नमो सिद्धाणं। इति द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

पांचमा पद नव अक्षरप्रमाण नमो लोएसव्वसाहूणं। इति तृतीय उद्देशकः ॥ ३ ॥

चूलिकामें सोलां (१६) अक्षरप्रमाण प्रथम आलापक ॥

एसो पंच नमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो। इति चूलिकायां प्रथम उद्देशः ॥ १ ॥

चूलिकामें आठ अक्षरप्रमाण दूसरा आलापक ॥

मंगलाणं च सव्वेसिं। इति चूलिकायां द्वितीय उद्देशकः ॥ २ ॥

चूलिकामें नव अक्षरप्रमाण तीसरा आलापक॥

पढमं हवइ मंगलं। इति चूलिकायां तृतीय उद्देशः ॥ ३ ॥

सर्व अक्षर अडसठ (६८) तिसका उपधान ऐसें है. ॥

नंदि, देववंदन, कायोत्सर्ग, क्षमाश्रमण, वंदनक, प्रमुख नमस्कारश्रुतस्कंधके अभिलापसें पूर्ववत् जाणना. और अभिमंत्रित वासक्षेप भी पूर्ववत् जाणना. । तहां पूर्वसेवामें एकभक्तके अंतरे उपवास पांच, एवं दिन ११, तहां प्रथम नंदिदिनमें एकभक्त, वा निविगइ, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्टे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त, आठमे दिन उपवास, नवमे दिन एकभक्त, दशमे दिन उपवास, एकादशमे दिन एकभक्त. ऐसें द्वादशम तप पूर्व सेवामें करना. । तहां पंचपरमेष्ठि पदांकी वाचना नंदिविना भी देनी. शक्रस्तवका पढना, वासक्षेपपूर्वक तीन नमस्कारोंका पढना, सर्व वाचनायोंमें जाणना. । तहां श्रेणिबद्ध आठ आचाम्ल करने, ऐसें एकोनविंशति (१९) दिन. तदपीछे वीसमे दिन एकभक्त, इकवीसमे दिन उपवास, बावीसमे दिन एकभक्त, तेइवीसमे दिन उपवास, चौवीसमे दिन एकभक्त, पच्चीसमे दिन उपवास. । ऐसें अष्टम तप उत्तर सेवामें. ।

तदपीछे चूलिकाकी वाचना ॥

एसो पंच यहांसें लेके हवइ मंगलं । इति नमस्कारस्योपधानं ॥

तदपीछे तिसकी वाचना, तिसका विधि यह है. ॥ पहिलां सामाचारीका पुस्तक पूजना, पीछे मुखवस्त्रिकासें मुख ढांकके ऐर्यापथिकी (इरियावहियं) पडिक्कमके क्षमाश्रमणपूर्वक कहें. ॥

"॥ भगवन् नमुक्कारवायणासंदिसावणियं वायणाले-
वावणियं वासक्खेवं करेह । चेइयाइं च वंदावेह ॥"

ऐसें नंदि करके छव्वीसमे दिनमें एकभक्त करें, वाचना देनी. चूलिकाके चारों पदोंके सर्व उपधानोंमें प्रतिदिन अव्यापार पौषध करना, सवेरे २ पौषध पारके पुनः २ (फिर२) नित्य पौषध ग्रहण करना, और नमस्कार सहस्र गुणना. ॥ इतिप्रथममुपधानम् ॥ १ ॥

ऐर्यापथिकीका भी उपधान ऐसेंही है. आदिकी, और अंतकी, दोनोंही नंदि तिसके–ऐर्यापथिकीके अभिलापसें करनी.। तहां वाचनामें आठ अध्ययन, और वाचना दो,–एक पांच पदोंकी और दूसरी तीन पदोंकी; पांच पदोंकी एक चूलिका ॥

"॥ इच्छामि पडिक्कमिउं इरिआवहिआए विराहणाए। १। गमणागमणे। २। पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे। ३। ओसाउत्तिंगपणगदगमट्टीमक्कडासंताणासंकमणे। ४। जे मे जीवा विराहिया। ५। यह एक वाचना, द्वादशम तपके पीछे देते हैं. ॥ १ ॥

"॥ एगिंदिया, बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया, पंचिंदिया। ६। अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं। ७। तस्स उत्तरीकरणेणं, पायच्छित्तकरणेणं, विसोहीकरणेणं, विसल्लीकरणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्टाए, ठामि काउस्सग्गं। ८॥" यह दूसरी वाचना, आठ आचाम्लके अंतमें देनी. ॥ २ ॥

इसके पीछे ॥

"॥अन्नथ्थ उससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं उड्डुएणं, वायनिसग्गेणं, भमलिए, पित्तमुच्छाए। १। सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं, सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं। २। एवमाइएहिं, आगारेहिं, अभग्गो, अविराहिओ, हुज्ज मे काउस्सग्गो। ३। जाव अरिहंताणं, भगवंताणं, न मुक्कारेणं, न पारेमि। ४। ताव कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं, अप्पाणं वोसिरामि। ५॥" यह चूलिकाकी

वाचना, अंत दिनमें देनी. ॥ इत्यैर्यापथिक्याउपधानम् ॥ २ ॥

अथ शक्रस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ तहां नंदिआदि सर्व शक्रस्तवके अभिलापसें पूर्ववत्. । तथा प्रथम दिनमें एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्ठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त; । तहां तीन संपदायोंकी प्रथम वाचना देते हैं. ॥

यथा ॥

" ॥ नमुथ्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं । १ । आइगराणं तिथ्थयराणं सयंसंबुद्धाणं । २ । पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीआणं पुरिसवरगंधहथ्थीणं । ३ । इत्येका वाचना ।

यह एक वाचना । नमुथ्थुणं । यह पद भिन्न है. । तीनोंही संपदा अनुक्रमे दो, तीन, चार पदवाली हैं. । तदपीछे एकश्रेणिकरके निरंतर सोलां (१६) आचाम्ल करने. । तिसमें पांच २ पदोंवाली तीन संपदाकी वांचना देते हैं. ॥

यथा ॥

॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहिआणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं । ४ । अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं । ५ । धम्मदयाणं धम्मदेसियाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं । ६ । यह दूसरी वाचना ॥ २ ॥

तदपीछे फिर भी तिसही श्रेणिकरके सोलां आचाम्ल करने. । तिसमें दो तीन पदोंवाली तीन संपदाकी वाचना देनी. ॥

यथा ॥

॥ अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं । ७ । जिणाणं जावयाणं तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं

मोअगाणं । ८ । सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं सिवमयलमरु-
अमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्तिसिद्धिगइनामधेयंठाणं
संपत्ताणं नमो जिणाणं जिअभयाणं । ९ ॥" यह तीसरी
वाचना ॥ ३ ॥

"॥ जे अ अईआ सिद्धा जे अ भविस्संतिणागए काले ॥
संपइ अ वट्टमाणा सव्वे तिविहेण वंदामि ॥" इस अंतिमगाथाकी वाचना भी, तीसरी वाचनाके साथही देनी. ॥ इतिशक्रस्तवोपधानम् ॥ ३ ॥

अथ चैत्यस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ नंदिआदिपूर्ववत्. । प्रथम दिने एक भक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एक भक्त; तदपीछे श्रेणिकरके लगतसार तीन आचाम्ल करने. अंतमें तीनोंही अध्ययनोंकी समकालं एकही साथ एक वाचना देनी. ॥

यथा ॥

"॥ अरिहंतचेइआणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तिआए पू-
अणवत्तिआए सक्कारवत्तिआए सम्माणवत्तिआए बोहिला-
भवत्तिआए निरुवसग्गवत्तिआए । १ । सद्धाए मेहाए
धीईए धारणाए अणुप्पेहाए वड्ढमाणीए ठामिकाउस्सग्गं
। २ । अन्नथ्थउससिएणं–यावत्–वोसिरामि । ३ ॥" यह एकही वाचना है. ॥ इति चैत्यस्तवोपधानम् ॥ ४ ॥

अथ चतुर्विंशतिस्तवका उपधान कहते हैं. ॥ नंदि, दो पूर्ववत् । प्रथम दिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, चौथे दिन उपवास, पांचमे दिन एकभक्त, छट्ठे दिन उपवास, सातमे दिन एकभक्त. । ऐसें अष्टम तप । अंतमें प्रथम गाथाकी एक वाचना. ॥

यथा ॥

"॥ लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे। अरिहंते कित्त-
इस्सं चउवीसंपि केवली । १ ।" यह एक वाचना. ॥ १ ॥

तद्पीछे श्रेणिकरकेही बारां (१२) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीन गाथाकी वाचना. ॥

यथा ॥

॥ उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे । २ । सुविहिं च
पुप्फदंतं सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च। विमलमणंतं च जिणं
धम्मं संतिं च वंदामि । ३ । कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणि-
सुव्वयं नमिजिणं च वंदामिरिट्ठनेमिं पासं तह वद्धमाणं च।४। यह दूसरी वाचना. ॥ २ ॥

तद्पीछे तिस श्रेणिकरकेही तेरा (१३) आचाम्ल करने. तिसके अंतमें तीसरी वाचना ॥

यथा ॥

॥ एवं मए अभिथुआ विहुरयमला पहीणजरमरणा चउवी-
संपि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु । ५ । कित्तियवंदिय-
महिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा । आरुग्गबोहिलाभं
समाहिवरमुत्तमं दिंतु । ६ । चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु
अहियं पयासयरा । सागरवरगंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम
दिसंतु ॥ ७ ॥" यह तीसरी वाचना. ॥ ३ ॥ इति चतुर्विंशतिस्तवोपधानम् ॥ ५ ॥

अथ श्रुतस्तवका उपधान कहते हैं. । नंदि, दो पूर्ववत्. । प्रथमदिने एकभक्त, दूसरे दिन उपवास, तीसरे दिन एकभक्त, पीछे श्रेणिकरके पांच आचाम्ल करने. तिसके अंतमें दो गाथायोंकी, और दोनों वृत्तोंकी

समकालही वाचना. । तिसमें पांच अध्ययन है. । तिसमें प्रथमकी दो गाथायोंके दो अध्ययन ॥

यथा ॥

"॥ पुक्खरवरदीवढ्ढे धायइसंडे अ जंबुदीवेअ। भरहेरवयविदेहे धम्माइगरे नमंसामि । १ । तमतिमिरपडलविद्धंसणस्स सुरगणनरिंदमहिअस्स । सीमाधरस्स वंदे पप्फोडिअमोहजालस्स। २ ।

तीसरा अध्ययन वसंततिलका वृत्तसें । यथा ॥

॥ जाईजरामरणसोगपणासणस्स कल्लाणपुक्खलविसालसुहावहस्स । को देवदाणव । नरिंदगणच्चिअस्स धम्मस्स सारमुवलप्भ करे पमायं । ३ ।

चौथा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके पूर्वार्द्धसें । यथा ॥

॥ सिद्धे भो पयओ णमो जिणमए नंदीसयासंजमे देवंनागसुवन्नकिन्नरगणस्सप्भूयभावच्चिए । ४ ।

पांचमा अध्ययन शार्दूलविक्रीडितवृत्तके उत्तरार्द्धसें । यथा ॥

॥ लोगो जथ्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुरं धम्मो वढ्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तरं वढ्ढउ । ४ । –५ ॥" इति श्रुतस्तवोपधानम् । ६ । इति षडुपधानानि ॥

तथा सिद्धस्तवमें प्रथम तीन गाथाकी वाचना यथा ॥

"॥ सिद्धाणं बुद्धाणं पारगयाणं परंपरगयाणं । लोअग्गमुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं । १ । जो देवाणविदेवो जं देवा पंजली नमंसंति ।तं देवदेवमहिअं सिरसा वंदे महावीरं । २। इक्कोवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स।वद्धमाणस्स । संसारसागराओ तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥"

शेष दो गाथा । यथा ॥

॥ उज्जिंतसेलसिहरे दिक्खा नाणं च निसीहिआ जस्स। तं धम्मचक्कवट्टिं अरिट्ठनेमिं नमंसामि । ४ । चत्तारि अट्ठ दस दो अ वंदिआ जिणवरा चउव्वीसं । परमट्ठनिट्ठिअट्ठा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥ ५॥ ” इत्युपधानवाचनास्थितिः ॥

अथ विस्तार, निशीथसिद्धांतसें उध्धृत उपधानप्रकरणसें जानना. । सयथा ॥

पंचनमुक्कारे किल दुवालसतवो उ होइ उवहाणं ॥
अट्ठ य आयामाइं एगं तह अट्ठमं अंते ॥ १ ॥
एवंचिय नीसेसं इरियावहिआइ होइ उवहाणं ॥
सक्कच्छयंमि अट्ठममेगं बत्तीस आयामा ॥ २ ॥
अरिहंतचेइअथए उवहाणमिणं तु होइ कायव्वं ॥
एगं चेव चउथ्थं तिन्नि अ आयंबिलाणि तहा ॥ ३ ॥
एगंचिय किर छट्ठं चउथ्थमेगं तु होइ कायव्वं ॥
पणवीसं आयामा चउवीसथ्थयम्मि उवहाणं ॥ ४ ॥
एगं चेव चउथ्थं पंच य आयंबिलाणि नाणथए ॥
चिइवंदणाइसुत्ते उवहाणमिणं विणिदिट्ठं ॥ ५ ॥
अव्वावारो विकहा विवज्जिओ रुद्दझाणपरिमुक्को ॥
विस्सामं अकुणंतो उवहाणं कुणइ उवउत्तो ॥ ६ ॥
अह कहवि हुज्ज बालो बुड्ढो वा सत्तिवज्जिओ तरुणो ॥
सो उवहाणपमाणं पूरिज्जा आयसत्तीए ॥ ७ ॥
राईभोयणविरई दुविहं तिविहं चउव्विहं वावि ॥
नवकारसाहिअमाई पच्चक्खाणं विहेऊणं ॥ ८ ॥
एगेए सुद्धआयंबिलेण इयरेहिं दोहिं उववासो ॥
नवकारस्साहिएहिं पणयालीसाइं उववासो ॥ ९ ॥

पोरसिचउवीसाए होइ अवट्ठेहिं दसहिं उववासो ॥
विगईचाएहिं तिहिं एगट्ठाणेहि अ चऊहिं ॥ १० ॥
आयरणाओ नेअं पुरिमट्ठा सोलसेहिं उववासो ॥
एगासणगा चउरो अट्ठ य बेकासणा तहय ॥ ११ ॥
भयवं बहू अ कालो एवं कारिंतस्स पाणिणो हुज्जा ॥
तो कहवि हुज्ज मरणं नवकारविवज्जिअस्सावि ॥ १२ ॥
नवकारवज्जिओ सो निव्वाणमणुत्तरं कह लभिज्जा ॥
तो पढमं चिअ गिएहओ उवहाणं होओ वा मा वा ॥१३॥
गोअम जं समयं चिअ सुओवयारं करिज्ज जो पाणी
तं समयं चिअ जाणसु गहिअवयट्ठं जिणाणाए ॥ १४ ॥
एवं कयउवहाणो भवंतरे सुलहबोहिओ होज्जा ॥
एअज्झवसाणोविहु गोअम आराहओ भणिओ ॥ १५ ॥
जो उ अकाऊणमिणं गोअम गिह्णिज्ज भत्तिमंतोवि ॥
सो मणुओ दट्ठव्वो अगिएहमाणोण सारिच्छो ॥ १६ ॥
आसायइ तिथ्थयरं तव्वयणं संघगुरुजणं चेव ॥
आसायणबहुलो सो गोयम संसारमणुगामी ॥ १७ ॥
पढमं चिअ कन्नाहेडएण जं पंचमंगलमहीअं ॥
तस्सवि उवहाणपरस्स सुलहिआ बोहि निद्दिट्ठा ॥ १८ ॥
इअ उवहाणपहाणं निउणं सयलंपि वंदण विहाणं ॥
जिणपूआपुव्वं चिअ पढिज्ज सुअभणिअनीईए ॥ १९ ॥
तं सरवंजणमत्ता बिंदुपयच्छेअठाणपरिसुद्धं ॥
पढिऊणं चिइवंदणसुत्तं अथ्थं वियाणिज्जा ॥ २० ॥
तथ्थ य जथ्थेव सिआ संदेहो सुत्तअथ्थविसयंमि ॥
तं बहुसो वीमंसिअ सयलं निस्संकियं कुज्जा ॥ २१ ॥

अह सोहणतिहिकरणे मुहुत्तनरकत्तजोगलग्गंमि ॥
अणुकूलंमि ससिबले सस्से सस्से अ समयम्मि ॥ २२ ॥
नियविहवाणुरूवं संपाडिअभुवणनाहपूएण ॥
परमभत्तीइ विहिणा पडिलाभिअसाहुवग्गेण ॥ २३ ॥
भत्तिभरनिप्भरेणं हरिसवसुल्लसिअबहलपुलएणं ॥
सद्धासंवेगविवेगपरमवेरग्गजुत्तेणं ॥ २४ ॥
विणिहयघणरागदोसमोहमिच्छत्तमलकलंकेणं ॥
अइउल्लसंतनिम्मल अज्झवसाणेण अणुसमयं ॥ २५ ॥
तिहुअणगुरुजिणपडिमाविणिवेसिअनयणमाणसेण तहा ॥
जिणचंदवंदणाओ धन्नोहं मन्नमाणेणं ॥ २६ ॥
नियसिरिरइयकरकमलमउलिणा जंतुविरहिओगासे ॥
निस्संकं सुत्तत्थं पए पए भावयंतेण ॥ २७ ॥
जिणनाहदिट्ठगंभीरसमयकुसलेण सुहचरित्तेणं ॥
अपमायाईबहुविहगुणेण गुरुणा तहा सद्धिं ॥ २८ ॥
चउविहसंघजुएणं विसेसओ नियबंधुसहिएणं ॥
इअविहिणा निउणेणं जिणबिंबं वंदणिज्जंति ॥ २९ ॥
तयणंतरं गुणड्ढे साहू वंदिज्ज परमभत्तीए ॥
साहम्मियाण कुज्जा जहारिहं तह पणामाई ॥ ३० ॥
जावय महग्घ मुक्किट्ठ चुक्खवथ्थप्पयाणपुव्वेणं ॥
पडिवत्तिविहाणेणं कायव्वो गरुअसम्माणो ॥ ३१ ॥
एआवसरे गुरुणा सुविइअगंभीरसमयसारेण ॥
अक्खेवणिविक्खेवणि संवेइणिपमुहाविहिणा उ ॥ ३२ ॥
भवनिव्वेअपहाणा सद्धासंवेगसाहणे णिउणा ॥
गरुएण पबंधेणं धम्मकहा होइ कायव्वा ॥ ३३ ॥

सद्धासंवेगपरं सूरी नाऊण तं तओ भव्वं ॥
चिइवंदणाइकरणे इअ वयणं भणइ निउणमई ॥ ३४ ॥
भो भो देवाणुपिया संपाविअ नियय़जम्मसाफल्लं ॥
तुमए अज्जप्पभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ ३५ ॥
वंदेअव्वाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥
खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ ३६ ॥
तत्थ तुमे पुव्वण्हे पाणंपि न चेव ताव पायव्वं ॥
नो जाव चेइआइं साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३७ ॥
मज्झण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥
अवरण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण सुअणंति ॥ ३८ ॥
एवमभिग्गहबंधं काउं तो वद्धमाणविज्जाए ॥
अभिमंतिऊण गिण्हइ सत्त गुरु गंधमुट्ठीओ ॥ ३९ ॥
तस्सुत्तमंगदेसे नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
उच्चारेमाणोविअ निक्खिवइ गुरु सपणिहाणं ॥ ४० ॥
एआए विज्जाए पभावजोगेण एस किर भव्वो ॥
अहिगयकज्जाण लहुं नित्थारगपारगो होउ ॥ ४१ ॥
अह चउविहोवि संघो नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं ॥
धन्नो सलक्खणो जंपिरोत्ति निक्खिवइ से गंधे ॥ ४२ ॥
तत्तो जिणपडिमाए पुआदेसाओ सुरभिगंधट्टं ॥
अमिलाणं सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहत्थेणं ॥ ४३ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ ४४ ॥
भो भो सुलद्धनिअजम्म निंचिअअइगरुअपुन्नपब्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ४५ ॥

नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयसनीअगुत्ताणं ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४६ ॥
पंचनमुक्कारपभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवारुग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ४७ ॥
अन्नं च इमाओच्चिय न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ४८ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
सुअभणिअविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ४९ ॥
नो ते जइ तेणं चिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
तोणुत्तरगेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ५० ॥
उत्तमकुलम्मिउक्किट्ठलट्ठसव्वंगसुंदरा पयडा ॥
सव्वकलापत्तट्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ५१ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविणयसंपन्ना ॥
निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुट्ठेउं ॥ ५२ ॥
सुहज्झाणानलनिदड्ढघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ५३ ॥
इअ विमलफलं मुणिउं जिणस्स महमाणदेवसूरिस्स ॥
वयणा उवहाणमिणं साहेह महानिसीहाओ ॥ ५४ ॥

॥ इत्युपधानप्रकरणम् ॥

भावार्थः—पांच नमस्कारमें पांच उपवासका उपधान होता है, आठ आचम्ल तथा अंतमें एक अष्टमतप. । ऐसेंही संपूर्ण उपधान इरियावहिका है; शक्रस्तवमें एक अष्टमतप, और बत्तीस आचाम्ल. चैत्यस्तवमें एक उपवास, और तीन आचाम्ल करणे. । चतुर्विंशतिस्तवमें एक षष्ठ-

तप, एक उपवास, और पंचवीस (२५) आचाम्ल करणे. । श्रुतस्तवमें एक उपवास, और पांच आचाम्ल. । चैत्यवंदनादि सूत्रमें यह उपधान कथन करा है. । तीर्थंकर गणधरोंने. ॥ ५ ॥ व्यापाररहित, विकथाविवर्जित, रौद्र ध्यालकरके रहित, विश्राम नही करता हुआ, उपयोगसहित, उपधान करे. ॥ ६ ॥ यह उत्सर्ग कहा. अब अपवाद कहते हैं. । अथ कदापि उपधानवाही बालक होवे, वा वृद्ध होवे, वा शक्तिरहित तरुण (युवा) होवे तो, सो अपनी शक्तिप्रमाण उपधानप्रमाण पूर्ण करे. । रात्रिभोजनकी विरति, चतुर्विधाहार, वा त्रिविधाहार, वा द्विविधाहार प्रत्याख्यानरूप करे; नवकारसहिआदि पच्चक्खाण करके. । एक शुद्ध आंबिलकरके, और इतर दो आंबिलकरके, एक उपवास होता है. पणतालीस (४५) नवकारसहि करनेसें एक उपवास होता है. चौवीस (२४) पोरसि करनेसें, और दश (१०) अपार्द्ध करनेसें, एक उपवास होता है. तीन निविकृति करनेसें, और चार एकलठाणे करनेसें, एक उपवास होता है. आचरणासें सोलां (१६) पुरिमार्द्ध करनेसें उपवास होता है. चार एकासननेसें, और आठ बियासणे करनेसें भी, उपवास होता है. अर्थात् उपवासका जो फल है, सोही प्रायः पूर्वोक्त तपका फल है. इसवास्ते जिसकी पूर्वोक्त उपधानकी शक्ति न होवे सो, इन तपोंमेसें किसी भी तपके करनेसें उपधान प्रमाण पूर्ण करे. ॥ ११ ॥

गौतमस्वामी कहते हैं. हे भगवन् ! ऐसें करतेहुए प्राणीको बहोत काल होवे तो, कदापि नवकारवर्जित भी, तिसका मरण हो जावे, और नवकारवर्जित सो प्राणी अनुत्तर निर्वाण कैसें प्राप्त करें? तिसवास्ते नवकार प्रथमही ग्रहण करो, उपधान होवे, वा न होवे. ॥ १२ ॥

महावीर स्वामी कहते हैं. हे गौतम ! जो प्राणी जिस समयमें व्रतोपचार (उपधान) करे, तिसही समयमें, तूं जिनाज्ञाकरके ग्रहण करा है व्रतार्थ जिसनें, ऐसा तिसको जाण. ॥ १४ ॥ ऐसें जिसने उपधान करा है, सो प्राणी भवांतरमें सुलभबोधि होवे है. और इसके (उपधानके) अध्यवसायवालेको भी, हे गौतम ! आराधक कहा है. परंतु हे गौतम !

भक्तिवाला भी जो प्राणी, उपधानविना श्रुतको ग्रहण करे, तिसको नही ग्रहण करनेवालेके सदृश जाणना. तथा सो जीव, तीर्थंकरकी, तीर्थंकरके वचनोंकी, संघकी, और गुरुजनकी, आशातना करता है. सो आशातना बहुल प्राणी, हे गौतम संसारमें भ्रमण करता है. प्रथमही जिसने सुणके, पांच मंगल पढ लिया है, तिसको भी उपधानमें तत्पर होनेसें बोधि, जिनधर्मप्राप्ति, सुलभ कही है. यह उपधानकरके प्रधान, निपुण, संपूर्ण भी वंदनविधान, जिनपूजा, पूर्वकही श्रुतोक्त नीतिकरके पढना. तिस पंच मंगलको स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिंदु, पदच्छेद, स्थानोंकरके शुद्ध पढके, चैत्यवंदन सूत्रको, और अर्थको विशेषकरके जाणे. तिसमें जहां सूत्रविषे, वा अर्थविषे, संदेह होवे तो, तिसको बहुशः विचारके संपूर्ण निःशंक संदेहराहित करना. ॥ २१ ॥

अथ शुभतीथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, जोग, लग्नमें, चंद्रबलके अनुकूल हुए, कल्याणकारी प्रशस्त समयमें, अपने विभवानुसार भगवान्का पूजन करा है जिसने, परम भक्तिसें विधिपूर्वक साधुवर्गको प्रतिलंभ करा है जिसने, भक्तिके अतिसमूहकरके सहित, हर्षवशसें खिडे हैं, वहोत पुलक (रोम) जिसके, श्रद्धासंवेगाविवेक परम वैराग्ययुक्त, दूर करे हैं, निविडरागद्वेषमोहमिथ्यात्वमलरूप कलंक जिसने, अति उल्लसायमान निर्मल अध्यवसाय करके, अनुसमय, त्रिभुवनगुरु जिन भगवान्की प्रतिमामें स्थापन किये हैं, नेत्र, और मन, जिसने, तथा जिन चंद्रको वंदना करनेसें मैं धन्य हूं ऐसें मानते हुए, अपने मस्तकके ऊपर रचा है, करकमलरूप मुकुट जिसने, जंतुरहित स्थानमें पदपदमें निःशंक सूत्रार्थको भावते (विचारते) हुए, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणवाले उपधानवाहिने, जिननाथके कथन करे गंभीर समयसिद्धांतमें कुशल, शुभचारित्रसंयुक्त, अप्रमादादि बहुविध गुणोंकरी संयुक्त, ऐसें गुरुके साथ, चतुर्विध संघसंयुक्त, विशेषसें निजबंधुसहित, इस निपुणविधिकरके जिनबिंबको वंदना करनी. ॥ २९ ॥

तदनंतर उपधानवाही, गुणाढ्यसाधुयोंको परम भक्तिसें वंदना करे. तथा साधर्मियोंको यथायोग्य प्रणामादि करे. पीछे जितने बहुमोलके

उत्कृष्ट चोक्ष वस्त्र तिनके प्रदानपूर्वक भक्तिविधानकरके उपधानवाहिने, श्रीसंघका भारी सन्मान करना. ॥ ३१ ॥

इस अवसरमें अच्छीतरें जान्या है गंभीर समयसिद्धांतका सार जिसने, ऐसे गुरुने, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी, और निर्वेदिनी, यह चार प्रकारकी धर्मकथा श्रद्धासंवेग साधनेमें निपुण भारी प्रबंध करके करनी. ॥ ३३ ॥

तदपीछे तिस भव्यजीवको श्रद्धासंवेगमें तत्पर जाणके, निपुणमति आचार्य, चैत्यवंदनादि करनेमें यह वचन कहे. ॥ ३४ ॥

भो भो देवानुप्रिय! निज जन्म साफ़ल्यताको प्राप्त करके तैंनें आजसें लेके जावजीवपर्यंत तिनोंही कालमें एकाग्र सुस्थिर चित्तकरके अर्हत्प्रतिमायोंको वंदना करनी. क्योंकि, क्षणभंगुर मनुष्यपणेसें यही सार है, तहां तैंने पुर्वान्हमें जबतक जिनप्रतिमाको और साधुयोंको वंदना विधिपूर्वक नही करी है, तबतक पानी भी नही पीना. मध्यान्हमें फिर वंदना करकेही भोजन करना कल्पे, और अपरान्हमें भी फिर वंदना करकेही सोना कल्पे, अन्यथा नही. ॥ ३८ ॥

ऐसें अभिग्रहबंधन करके पीछे वर्द्धमान विद्यासें अभिमंत्रके गुरु सात मुट्ठीप्रमाण गंध (वासक्षेप) ग्रहण करे. पीछे तिस उपधानवाहीके मस्तकऊपर " नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं " ऐसें उच्चारण करता हुआ गुरु, नमस्कारपूर्वक निक्षेप करे (डाले) इस विद्याके प्रभावके जोगसें निश्चय, यह भव्य अधिकृत प्रारंभित कार्योंका शीघ्र निस्तार करनेवाला, और पार होनेवाला होवे. ॥ ४१ ॥

अथ चतुर्विध संघ, तूं, निस्तारक पारग हो, तूं धन्य है, सलक्षण है, इत्यादि बोलता हुआ, तिसके मस्तकऊपर वासक्षेप करे. ॥ ४२ ॥

तदपीछे जिनप्रतिमाके पूजादेशसें सुरभिगंधसंयुक्त अम्लान श्वेतमाला ग्रहण करके, गुरु अपने हाथोंसें तिस उपधानवाहीके दोनों खंधोंऊपर आरोपण करता हुआ, शुद्ध चित्तकरके निसंदेह ऐसा वचन कहे. ॥ ४४ ॥

अच्छीतरें प्राप्त किया निज जन्म जिसने, तथा संचय करा है अतिभारी पुण्यका समूह जिसने, ऐसें भो भो भव्य ! तेरी नरकगति, और तिर्यग्गति, अवश्यमेव बंद होगई. हे सुंदर ! आजसें लेके, तूं, अपजस, नीच गोत्रोंका बंधक नही है. तथा जन्मांतरमें भी, यह पंचनमस्कार तुझको दुर्लभ नही है. पांच नमस्कारके प्रभावसें जन्मांतरमें भी तुझको प्रधान जाति, कुल, आरोग्य संपदाएं प्राप्त होंगी. और इसके प्रभावसें मनुष्य कदापि संसारमें दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच, और विकलेंद्रिय नही होते हैं. किं बहुना. जे इस विधिसें इस श्रुतज्ञानको पढके श्रुतोक्त विधिसें शुद्ध शील आचारमें रमे—क्रिडा करे, वे, यदि तिसही भवमें उत्तम निर्वाणको प्राप्त न होवे तो, अनुत्तर ग्रैवेयकादि देवलोकोंमें चिरकाल क्रीडा करके उत्तम कुलमें उत्कृष्ट प्रधान सर्वांगसुंदर प्रकट सर्वकला प्राप्त करे हैं, अर्थ जिनोंने, ऐसें लोकोंके मनको आनंद देनेवाले होयके, देवेंद्रसमान ऋद्धिवाले, दयामें तत्पर, दानविनयसंयुक्त, कामभोगोंसें निर्विन्न-विरक्त संपूर्ण धर्मका अनुष्ठानकरके शुभ ध्यानरूप अग्निकरके चार घातिकर्मरूप इंधनकौ दग्ध किये हैं—जला दिये हैं जिनोंनें, ऐसें महासत्त्व, उत्पन्न हुआ है, विमल निर्मल केवल ज्ञान जिनोंको, सर्व मलकर्मसें रहित होकर शीघ्र सिद्ध होते हैं. ॥ ५३ ॥ यह निर्मल फल जाणके वहोत मान देने योग्य जो देव, सोही भये सूरि, ऐसें जो जिन तिनके वचनसें यह उपधान महानिशीथ सूत्रसें सिद्ध करो.—इस अंतिम गाथामें प्रकरणकर्त्ता श्रीमान देवसूरिने भगवान्‌के 'महमाणदेवसूरिस्स' इस विशेषणद्वारा अपना भी नाम, सूचन करा है. ॥ ५४ ॥ इत्युपधानप्रकरणभावार्थः ॥

॥ इत्युपधानविधिः ॥

अथ उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि कहते हैं. ॥ तहां पिछलाही नंदि क्रम जाणना. । और इतना विशेष हे कि, मालारोपण उपधानतपके पूर्ण हुए तत्कालही, वा दिनांतरमें होता है. तहां यह विधि है. ॥ मालारोपणसें पहिले दिनमें साधुयोंको अन्न पान वस्त्र पात्र वसति पुस्तक दान देवे, संघको भोजन देवे, वस्त्रादिकसें संघकी

तप, एक उपवास, और पंचवीस (२५) आचाम्ल करणे. । श्रुतस्तवमें एक उपवास, और पांच आचाम्ल. । चैत्यवंदनादि सूत्रमें यह उपधान कथन करा है. । तीर्थंकर गणधरोंने. ॥ ५ ॥ व्यापाररहित, विकथाविवर्जित, रौद्र ध्यानकरके रहित, विश्राम नही करता हुआ, उपयोगसहित, उपधान करे. ॥ ६ ॥ यह उत्सर्ग कहा. अब अपवाद कहते हैं. । अथ कदापि उपधानवाही बालक होवे, वा वृद्ध होवे, वा शक्तिरहित तरुण (युवा) होवे तो, सो अपनी शक्तिप्रमाण उपधानप्रमाण पूर्ण करे. । रात्रिभोजनकी विरति, चतुर्विधाहार, वा त्रिविधाहार, वा द्विविधाहार प्रत्याख्यानरूप करे; नवकारसहिआदि पच्चक्खाण करके. । एक शुद्ध आंबिलकरके, और इतर दो आंबिलकरके, एक उपवास होता है. पणतालीस (४५) नवकारसहि करनेसें एक उपवास होता है. चौवीस (२४) पोरसि करनेसें, और दश (१०) अपार्द्ध करनेसें, एक उपवास होता है. तीन निविकृति करनेसें, और चार एकलठाणे करनेसें, एक उपवास होता है. आचरणासें सोलां (१६) पुरिमार्द्ध करनेसें उपवास होता है. चार एकासनेसें, और आठ बियासणे करनेसें भी, उपवास होता है. अर्थात् उपवासका जो फल है, सोही प्रायः पूर्वोक्त तपका फल है. इसवास्ते जिसकी पूर्वोक्त उपधानकी शक्ति न होवे सो, इन तपोंमेसें किसी भी तपके करनेसें उपधान प्रमाण पूर्ण करे. ॥ ११ ॥

गौतमस्वामी कहते हैं. हे भगवन् ! ऐसें करतेहुए प्राणीको वहोत काल होवे तो, कदापि नवकारवर्जित भी, तिसका मरण हो जावे, और नवकारवर्जित सो प्राणी अनुत्तर निर्वाण कैसें प्राप्त करे ? तिसवास्ते नवकार प्रथमही ग्रहण करो, उपधान होवे, वा न होवे. ॥ १३ ॥

महावीर स्वामी कहते हैं. हे गौतम ! जो प्राणी जिस समयमें व्रतोपचार (उपधान) करे, तिसही समयमें, तूं जिनाज्ञाकरके ग्रहण करा है व्रतार्थ जिसनें, ऐसा तिसको जाण. ॥ १४ ॥ ऐसें जिसने उपधान करा है, सो प्राणी भवांतरमें सुलभबोधि होवे है. और इसके (उपधानके) अध्यवसायवालेको भी, हे गौतम ! आराधक कहा है. परंतु हे गौतम !

भक्तिवाला भी जो प्राणी, उपधानविना श्रुतको ग्रहण करे, तिसको नही ग्रहण करनेवालेके सदृश जाणना. तथा सो जीव, तीर्थंकरकी, तीर्थंकरके वचनोंकी, संघकी, और गुरुजनकी, आशातना करता है. सो आशातना वहुल प्राणी, हे गौतम संसारमें भ्रमण करता है. प्रथमही जिसने सुणके, पाँच मंगल पढ लिया है, तिसको भी उपधानमें तत्पर होनेसें बोधि, जिनधर्मप्राप्ति, सुलभ कही है. यह उपधानकरके प्रधान, निपुण, संपूर्ण भी वंदनविधान, जिनपूजा, पूर्वकही श्रुतोक्त नीतिकरके पढना. तिस पंच मंगलको स्वर, व्यंजन, मात्रा, बिंदु, पदच्छेद, स्थानोंकरके शुद्ध पढके, चैत्यवंदन सूत्रको, और अर्थको विशेषकरके जाणे. तिसमें जहां सूत्रविषे, वा अर्थविषे, संदेह होवे तो, तिसको बहुशः विचारके संपूर्ण निःशंक संदेहरहित करना. ॥ २१ ॥

अथ शुभतीथि, करण, मुहूर्त्त, नक्षत्र, जोग, लग्नमें, चंद्रबलके अनुकूल हुए, कल्याणकारी प्रशस्त समयमें, अपने विभवानुसार भगवान्का पूजन करा है जिसने, परम भक्तिसें विधिपूर्वक साधुवर्गको प्रतिलंभ करा है जिसने, भक्तिके अतिसमूहकरके सहित, हर्षवशसें खिडे हैं, वहोत पुलक (रोम) जिसके, श्रद्धासंवेगाविवेक परम वैराग्ययुक्त, दूर करे हैं, निविडरागद्वेषमोहमिथ्यात्वमलरूप कलंक जिसने, अति उल्लसायमान निर्मल अध्यवसाय करके, अनुसमय, त्रिभुवनगुरु जिन भगवान्की प्रतिमामें स्थापन किये हैं, नेत्र, और मन, जिसने, तथा जिन चंद्रको वंदना करनेसें मैं धन्य हूं ऐसें मानते हुए, अपने मस्तकके ऊपर रचा है, करकमलरूप मुकुट जिसने, जंतुरहित स्थानमें पदपदमें निःशंक सूत्रार्थको भावते (विचारते) हुए, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणवाले उपधानवाहिने, जिननाथके कथन करे गंभीर समयसिद्धांतमें कुशल, शुभचारित्रसंयुक्त, अप्रमादादि वहुविध गुणोंकरी संयुक्त, ऐसें गुरुके साथ, चतुर्विध संघसंयुक्त, विशेषसें निजवंधुसहित, इस निपुणविधिकरके जिनबिंबको वंदना करनी. ॥ २९ ॥

तदनंतर उपधानवाही, गुणाढ्यसाधुयोंको परम भक्तिसें वंदना करे. तथा साधर्मियोंको यथायोग्य प्रणामादि करे. पीछे जितने वहुमोलके

उत्कृष्ट चोक्ष वस्त्र तिनके प्रदानपूर्वक भक्तिविधानकरके उपधानवाहिने, श्रीसंघका भारी सन्मान करना. ॥ ३१ ॥

इस अवसरमें अच्छीतरें जान्या है गंभीर समयसिद्धांतका सार जिसने, ऐसे गुरुने, आक्षेपिणी, विक्षेपिणी, संवेदिनी, और निर्वेदिनी, यह चार प्रकारकी धर्मकथा श्रद्धासंवेग साधनेमें निपुण भारी प्रबंध करके करनी. ॥ ३३ ॥

तदपीछे तिस भव्यजीवको श्रद्धासंवेगमें तत्पर जाणके, निपुणमति आचार्य, चैत्यवंदनादि करनेमें यह वचन कहे. ॥ ३४ ॥

भो भो देवानुप्रिय! निज जन्म साफ़ल्यताको प्राप्त करके तैनें आजसें लेके जावजीवपर्यंत तिनोंही कालमें एकाग्र सुस्थिर चित्तकरके अर्हत्प्रतिमायोंको वंदना करनी. क्योंकि, क्षणभंगुर मनुष्यपणेसें यही सार है, तहां तैंने पुर्वान्हसें जबतक जिनप्रतिमाको और साधुयोंको वंदना विधिपूर्वक नही करी है, तबतक पानी भी नही पीना. मध्यान्हमें फिर वंदना करकेही भोजन करना कल्पे, और अपरान्हमें भी फिर वंदना करकेही सोना कल्पे, अन्यथा नही. ॥ ३८ ॥

ऐसें अभिग्रहबंधन करके पीछे वर्द्धमान विद्यासें अभिमंत्रके गुरु सात मुट्ठीप्रमाण गंध (वासक्षेप) ग्रहण करे. पीछे तिस उपधानवाहीके मस्तकऊपर "नित्थारगपारगो हविज्ज तुमं" ऐसें उच्चारण करता हुआ गुरु, नमस्कारपूर्वक निक्षेप करे (डाले) इस विद्याके प्रभावके जोगसें निश्चय, यह भव्य अधिकृत प्रारंभित कार्योंका शीघ्र निस्तार करनेवाला, और पार होनेवाला होवे. ॥ ४१ ॥

अथ चतुर्विध संघ, तूं, निस्तारक पारग हो, तूं धन्य है, सलक्षण है, इत्यादि बोलता हुआ, तिसके मस्तकऊपर वासक्षेप करे. ॥ ४२ ॥

तदपीछे जिनप्रतिमाके पूजादेशसें सुरभिगंधसंयुक्त अम्लान श्वेतमाला ग्रहण करके, गुरु अपने हाथोंसें तिस उपधानवाहीके दोनों खंधोंऊपर आरोपण करता हुआ, शुद्ध चित्तकरके निसंदेह ऐसा वचन कहे. ॥ ४४ ॥

अच्छीतरें प्राप्त किया निज जन्म जिसने, तथा संचय करा है अतिभारी पुण्यका समूह जिसने, ऐसें भो भो भव्य ! तेरी नरकगति, और तिर्यग्गति, अवश्यमेव बंद होगई. हे सुंदर ! आजसें लेके, तूं, अपजस, नीच गोत्रोंका बंधक नही है. तथा जन्मांतरमें भी, यह पंचनमस्कार तुझको दुर्लभ नही है. पांच नमस्कारके प्रभावसें जन्मांतरमें भी तुझको प्रधान जाति, कुल, आरोग्य संपदाएं प्राप्त होंगी. और इसके प्रभावसें मनुष्य कदापि संसारमें दास, प्रेष्य, दुर्भग, नीच, और विकलेंद्रिय नही होते हैं. किं बहुना. जे इस विधिसें इस श्रुतज्ञानको पढके श्रुतोक्त विधिसें शुद्ध शील आचारमें रमे–क्रिडा करे, वे, यदि तिसही भवमें उत्तम निर्वाणको प्राप्त न होवे तो, अनुत्तर ग्रैवेयकादि देवलोकोंमें चिरकाल क्रीडा करके उत्तम कुलमें उत्कृष्ट प्रधान सर्वांगसुंदर प्रकट सर्वकला प्राप्त करे हैं, अर्थ जिनोंने, ऐसें लोकोंके मनको आनंद देनेवाले होयके, देवेंद्रसमान ऋद्धिवाले, दयामें तत्पर, दानविनयसंयुक्त, कामभोगोंसें निर्विन्न-विरक्त संपूर्ण धर्मका अनुष्ठानकरके शुभ ध्यानरूप अग्निकरके चार घातिकर्मरूप इंधनको दग्ध किये हैं–जला दिये हैं जिनोंनें, ऐसें महासत्त्व, उत्पन्न हुआ है, विमल निर्मल केवल ज्ञान जिनोंको, सर्व मलकर्मसें रहित होकर शीघ्र सिद्ध होते हैं. ॥ ५३ ॥ यह निर्मल फल जाणके वहोत मान देने योग्य जो देव, सोही भये सूरि, ऐसें जो जिन तिनके वचनसें यह उपधान महानिशीथ सूत्रसें सिद्ध करो.–इस अंतिम गाथामें प्रकरणकर्त्ता श्रीमान देवसूरिने भगवान्के 'महमाणदेवसूरिस्स' इस विशेषणद्वारा अपना भी नाम, सूचन करा है. ॥ ५४ ॥ इत्युपधानप्रकरणभावार्थः ॥

॥ इत्युपधानविधिः ॥

अथ उपधान तपके उद्यापनरूप मालारोपणका विधि कहते हैं. ॥ तहां पिछलाही नंदि क्रम जाणना. । और इतना विशेष हे कि, मालारोपण उपधानतपके पूर्ण हुए तत्कालही, वा दिनांतरमें होता है. तहां यह विधि है. ॥ मालारोपणसें पहिले दिनमें साधुयोंको अन्न पान वस्त्र पात्र वसति पुस्तक दान देवे, संघको भोजन देवे, वस्त्रादिकसें संघकी

पूजा करे, तिस दिनमें शुभ तिथि वार नक्षत्र लग्नमें दीक्षाके उचित दिनमें परम शुक्तिसें बृहत्स्नात्रविधिसें जिनपूजा करे, माता पिता परिजन साधर्मिकादिकोंको एकट्ठे करे, तदपीछे मालाग्राही कृतउचितवेष कृतधम्मिल उत्तरासंगवाला निजवर्णानुसारसें जिनोपवीत उत्तरीयादिधारी सज करके प्रचुरगंधादि उपकरण अक्षत नालिकेर हाथमें लेके पूर्ववत् समवसरणको तीन प्रदक्षिणा करे. । तदपीछे गुरुके समीपे क्षमाश्रमणपूर्वक कहे ॥ "इच्छाकारेण तुम्भे अम्हं पंचमंगलमहासुअक्खंध इरिआवहिआसुअक्खंधसक्कथ्थयसुअक्खंधचेइअथ्थयसुअक्खंध चउवीसथ्थयसुअक्खंध सुयथ्थयसुअक्खंध अणुजणावणिअं वासक्खेवं करेह"॥ तदपीछे गुरु भी अभिमंत्रित वासक्षेप करे. । फिर श्राद्ध क्षमाश्रमणपूर्वक कहे "चेइआई च वंदावेह" तदपीछे वर्द्धमानस्तुतियोंसें चैत्यवंदन करना, शांतिदेवादि स्तुतियां पूर्ववत्. फिर शक्रस्तव अर्हणादि स्तोत्र कहना. पूर्ववत्. । तदपीछे ऊठके "पंचमंगलमहासुअक्खंध पडिक्कमणसुअक्खंध भावारिहंतथ्थय ठवणारिहंतथ्थय चउवीसथ्थय नाणथ्थय सिद्धथ्थय अणुजाणावणिअं करेमि काउस्सग्गं अन्नथ्थ उससिएणं—यावत्—अप्पाणं वोसिरामि" कहके चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट चतुर्विंशतिस्तव पढे. । गुरु तीनवार परमेष्ठिमंत्र पढके निषद्याऊपर बैठ जावे, संघ और परिजनसहित श्राद्धको

भो भो देवाणुपिया संपाविअ निययजम्मसाफल्लं ॥
तुमए अज्जप्पाभिई तिक्कालं जावजीवाए ॥ १ ॥
वंदे अव्वाइं चेइआइं एगग्गसुथिरचित्तेणं ॥
खणभंगुराओ मणुअत्तणाओ इणमेव सारंति ॥ २ ॥
तथ्थ तुमे पुव्वण्हे पाणंपि न चेव ताव पायव्वं ॥
नो जाव चेइआई साहूविअ वंदिआ विहिणा ॥ ३ ॥
मज्झण्हे पूणरवि वंदिऊण निअमेण कप्पए भुत्तुं ॥
अवरण्हे पुणरवि वंदिऊण निअमेण सुअणंति ॥ ४ ॥

इत्यादि महानिशीथमध्यगत वीस गाथामें कही हुई देशना देके, तीन संध्यामें चैत्यवंदन साधुवंदन करनेके अभिग्रह विशेषोंको देवे. । तदपीछे वासमंत्रके सात गंधकी मुष्ठी "निथ्थारगपारगो होहि" ऐसें कहता हुआ गुरु, तिसके शिरमें प्रक्षेप करे. । तदपीछे अक्षतसहित वासक्षेपको मंत्रे । तिस समयमें सुरभिगंध अम्लान श्वेत पुष्पोंके समूहसें ग्रंथन करी हुई मालाको जिनप्रतिमाके पगोंऊपर स्थापन करे । सूरि खडा होके अभिमंत्रित वासांको जिनपगोंके ऊपर क्षेप करे, पास रहे साधु साध्वी श्रावक श्राविका जनको गंधाक्षत देवे. । श्राद्ध नमस्कारअनुज्ञाकेवास्ते तीन प्रदक्षिणा देवे. । तब गुरु "निथ्थारगपारगो होहि गुरुगुणेहिं वुड्ढाहि" ऐसें कहे. और जन (संघ) "पूर्णमनोरथवाला तूं हुआ है, तूं धन्य है, तूं पुण्यवान् है" ऐसें कहे. । ऐसें कहते हुए क्रमसें गुरुसंघादि वासक्षेप करे । तदपीछे फिर श्राद्ध समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे । पीछे गुरुसंघसहित समवसरणको तीन प्रदक्षिणा देवे, पीछे नमस्कारादिश्रुतस्कंध अनुज्ञापनार्थ कायोत्सर्ग करे, चतुर्विंशतिस्तव चिंतन करे, पारके प्रकट लोगस्स कहे. । तदपीछे माला धारण करनेवाले तिसके स्वजनोंकेसाथ प्रतिमाके आगे जाके शक्रस्तव पढके "अणुजाणउ मे भयवं अरिहा" ऐसें कहके जिनपादऊपरि पूर्व स्थापित मालाको लेके निजबंधुके हाथमें स्थापन करके नंदिके समीप आय कर, श्राद्ध, मालाको गुरुसें मंत्रण करावे. । पीछे गुरु खडा होकर उपधानविधिका व्याख्यान करे. सो श्राद्ध भी, खडा होकर श्रवण करे. "परमपयपुरिपथ्थि" इत्यादि मालोबृंहण गाथायोंकरके गुरु देशना करे. ।

तदनु ॥

तत्तो जिणपडिमाए पूआदेसाओ सुरभिगंधड्ढं ॥
अमिलाण सिअदामं गिण्हिअ गुरुणा सहथ्थेणं ॥ १ ॥
तस्सोभयखंधेसुं आरोवंतेण सुद्धचित्तेणं ॥
निस्संदेहं गुरुणा वत्तव्वं एरिसं वयणं ॥ २ ॥

भो भो सुलद्धनिअजम्म निचिअअइगरुअपुन्नपप्भार ॥
नारयतिरिअगईओ तुज्झावस्सं निरुद्धाओ ॥ ३ ॥
नो बंधगोसि सुंदर तुममित्तो अयकनीअगुत्ताणं ॥
नो दुल्लहो तुह जम्मंतरेवि एसो नमुक्कारो ॥ ४ ॥
पंचनमुक्कारभावओ अ जम्मंतरेवि किर तुज्झ ॥
जाईकुलरूवाग्गसंपयाओ पहाणाओ ॥ ५ ॥
अन्नं च इमाओच्चिअ न हुंति मणुआ कयावि जीअलोए ॥
दासा पेसा दुभगा नीआ विगलिंदिआ चेव ॥ ६ ॥
किं बहुणा जे इमिणा विहिणा एअं सुअं अहिजित्ता ॥
सुअभणि अविहाणेणं सुद्धे सीले अभिरमिज्जा ॥ ७ ॥
नो ते जइ तेणंचिअ भवेण निव्वाणमुत्तमं पत्ता ॥
तोणुत्तर गेविज्जाइएसु सुइरं अभिरमेउं ॥ ८ ॥
उत्तमकुलम्मि उक्किठ्ठलठ्ठसव्वंगसुदरापयडा ॥
सव्वकलापतठ्ठा जणमणआणंदणा होउं ॥ ९ ॥
देविंदोवमरिद्धी दयावरा दाणविनयसंपन्ना ॥
निव्विणकामभोगा धम्मं सयलं अणुठ्ठेउं ॥ १० ॥
सुहज्झाणानलनिदद्धघाइकम्मिंधणा महासत्ता ॥
उप्पन्नविमलनाणा विहुयमला झत्ति सिज्झंति ॥ ११ ॥

यह गाथा तीनवार गुरु कहे । इन गाथायोंका भावार्थ उपधानप्रकरणभावार्थमें लिख दिया है. ॥

तदपीछे तिसके स्कंधमें मालाप्रक्षेप करनी. ॥ पीछे श्राद्धवर्ग आरात्रिक (आरती) गीतनृत्यादि बहुत करे. । उपधानवाही श्रावकने तिस दिनमें आचाम्लादि तप करना; यदि पौषधशालामें मालारोपण होवे, तदा संघसहित जिनमंदिरमें जावे, चैत्यवंदना करके फिर पौषधागारमें आयकर मंडलीपूजादि करे. ॥ इस उपधानविधिको निशीथ, महानिशीथ,

सिद्धांतके पढनेवालोंने श्रुतसामायिककरके माना है. और निशीथ महानिशीथके तिरस्कार करनेवालोंने नही अंगीकार करा है. तिनोंने तो प्रतिमोद्वहनविधिकोही श्रुतसामायिककरके कथन करा है. ॥ माला भी कितनेक कौशेयपट्टसुत्रमयी (रेशमी) स्वर्ण, पुष्प, मोति, माणिक्य गर्भित, आरोपते हैं. और कितनेक श्वेत पुष्पमयी आरोपते हैं. तिसमें तो, अपनी संपत्तिही प्रमाण है. ॥ इतिव्रतारोपसंस्कारे श्रुतसामायिकारोपणविधिः ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे पंचदशव्रतारोपसंस्कारांतर्गतश्रुतसामायिकारोपणविधिवर्णनोनामैकोनत्रिंशःस्तंभः ॥ २९ ॥

॥ अथत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अथ त्रिंशस्तंभमें व्रतसंस्कारांतर्गत प्रसंगसें कथन करी श्रावकोंकी दिनचर्या कहते हैं. दो मुहुर्त्त शेष रात्रि रहे श्रावक सूता ऊठे, मलमूत्रकी शंका दूर करे, और शुचि होकर पवित्र आसनऊपर स्थित हुआ यथाविधिसें परमेष्ठि महामंत्रका जाप करे. पीछे कुलका, धर्मका, व्रतका, श्रद्धाका, विचार करके, और स्तोत्रपाठसंयुक्त चैत्यवंदन करके, अपने घरमें, वा धर्मघर (पौषधशालादि) में स्थित होकर, आवश्यक (प्रतिक्रमणादि) करे.। तदपीछे प्रत्युष कालमें अपने घरमें स्नान करके, शुचि होके, शुचि वस्त्र पहिरके, भोग संसारिक सुख, और मोक्ष देनेवाले, ऐसें अरिहंतकी पूजा करे.। तिसवास्ते जिनार्चनविधि, अर्हत्कल्पके कथनानुसारें कहते हैं. सोयथा ॥ श्राद्ध केवल दृढसम्यक्त्व, प्राप्तगुरुउपदेश, निजघरमें, वा चैत्यमें अर्थात् बडे मंदिरमें, धम्मिल (शिखा) बांधी, शुचि वस्त्र पहरि, उत्तरासंग करी, स्ववर्णानुसारकरके जिनोपवीत, उत्तरीय, उत्तरासंगधारी, मुखकोश बांधी, एकाग्रचित्त, एकांतमें जिनार्चन, जिनपूजन, करे.। प्रथम जल, पत्र, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, अग्नि, दीपक, गंधादिकोंको निःपापता करे. ॥

"॥ ॐ आपोऽप्कायाः एकेंद्रिया जीवा निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनाहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥" इति जलाभिमंत्रणम् ॥

"॥ ॐ वनस्पतयो वनस्पतिकाया जीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनाहिंसापापमर्हदर्च्चने ॥" इतिपत्रपुष्पफलधूपचंदनाद्यभिमंत्रणम् ॥

"॥ ॐ अग्नयोऽग्निकायाजीवा एकेंद्रिया निरवद्यार्हत्पूजायां निर्व्यथाः संतु निरपायाः संतु सद्गतयः संतु न मेस्तु संघट्टनाहिंसापापमर्हदर्च्चने॥" इति वन्हिदीपाद्यभिमंत्रणम् ॥

सर्वका अभिमंत्रण वासक्षेपसें तीन तीन वार करना. ॥

तदपीछे। पुष्पगंधादि हाथमें लेके।

"॥ ॐ त्रसरूपोहं संसारिजीवः सुवासनः सुमेध एकचित्तो निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथो भूयासं निःपापो भुयासं निरुपद्रवो भुयासं मत्सं श्रिता अन्येपि संसारिजीवा निरवद्यार्हदर्च्चने निर्व्यथा भूयासुः निःपापाभूयासुः ॥"

ऐसें कहके अपने आपको तिलक करना, पुष्पादिकरके अपना शिर अर्चन करना. ।

फिर पुष्प अक्षतादि हाथमें लेके।

"॥ ॐ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतित्रसकाया एकद्वित्रिचतुःपंचेंद्रियास्तिर्यङ्मनुष्यनारकदेवगतिगताश्चतुर्द्दशरज्ज्वात्मकलोकाकाशनिवासिनः इह जिनार्च्चने कृतानुमोदनाः संतु निःपापाः संतु निरपायाः संतु सुखिनः संतु प्राप्तकामाः संतु मुक्ताः संतु बोधमाप्नुवंतुः ॥"

ऐसें पढके दशों दिशायोंमें गंध, जल, अक्षतादि क्षेप करना.
तदपीछे ।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहितनिरता भवंतु भूतगणाः ॥
दोषा प्रयांतु नाशं सर्वत्र सुखीभवंतु लोकाः ॥ १ ॥
सर्वेपि संतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः ॥
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखभाग् भवेत् ॥ २ ॥

यह आर्या और अनुष्टुप् छंद पढने. ।
तदपीछे ।

"॥ ॐ भूतधात्री पवित्रास्तु अधिवासितास्तु सुप्रोषितास्तु ॥"

ऐसें पढके प्रथम लीपी हुई भूमिमें जलसें प्रोक्षण (सेचन) करे. ।
तदपीछे ।

"॥ ॐ स्थिराय शाश्वताय निश्चलाय पीठाय नमः ॥"

ऐसें पढके धोयके चंदनसें लेपन करके स्वस्तिक करके अंकित (चिन्हित) ऐसा पूजापट्टस्थालादि स्थापन करे, और चैत्यमें तो स्थिरबिंब होनेसें इन दोनों मंत्रोंकरी तिसके भूमिजलपट्टादिकोंको अधिवासन करने. ।

तदपीछे ।

"॥ ॐ अत्र क्षेत्रे अत्र काले नामार्हतो रूपार्हतो द्रव्यार्हतो भावार्हतः समागताः सुस्थिताः सुनिष्ठिताः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें पढके अर्हत् प्रतिमाको स्थापन करे निश्चलबिंबके हुए, चरण अधिवासन करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ नमोर्हद्भ्यः सिद्धेभ्यस्तीर्णेभ्यस्तारकेभ्यो बुद्धेभ्यो बोधकेभ्यः सर्वजंतुहितेभ्यः इह कल्पनबिंबे भगवंतोर्हंतः सुप्रतिष्ठिताः संतु ॥"

ऐसें मौन करके कहके भगवत्के चरणोपरि पुष्प स्थापन करे. । फिर भी जलार्द्र फूलोसें पूजापूर्वक कहे. ॥

यथा ॥

" ॥ स्वागतमस्तु सुस्थितमस्तु सुप्रतिष्ठास्तु ॥ "

तदपीछे फिर पुष्पाभिषेक करके।

" ॥ अर्घ्यमस्तु पाद्यमस्तु आचमनीय मस्तु सर्वोपचारै पूजास्तु ॥ "

इन वचनोंकरके वारंवार जिनप्रतिमाके ऊपर जलार्द्र पुष्पारोपण करे. ।

तदपीछे जल लेके ।

ॐ अर्हँ वं। जीवनं तर्पणं हृद्यं प्राणदं मलनाशनं ॥
जलं जिनार्च्चनेत्रैव जायतां सुखहेतवे ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जलकरके प्रतिमाको भिषेक और स्नपन (स्नात्र) करे. ॥

तदपीछे चंदन कुंकुम कर्प्पूर कस्तूरी आदि सुगंध हाथमें लेके।

ॐ अर्हँ लं। इदं गंधं महामोदं बृहणं प्रीणनं सदा ॥
जिनार्चने च सत्कर्म्मसंसिद्ध्यै जायतां मम ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके विविध गंधकरी जिनप्रतिमाको विलेपन करे. ॥

तदपीछे पुष्पपत्रादि हाथमें लेके ।

ॐ अर्हँ क्षं । नानावर्णं महामोदं सर्वत्रिदशवल्लभं ॥
जिनार्चनेत्र संसिद्ध्यै पुष्पं भवतु मे सदा ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर सुगंधमय विविध वर्णके पुष्प चढावे. ॥

तदपीछे अक्षत (चावल) हाथमें लेके।

ॐ अर्हँ तं। प्रीणनं निर्मलं बल्यं मांगल्यं सर्वसिद्धिदं ॥
जीवनं कार्यसंसिद्ध्यै भूयान्मे जिनपूजने ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनप्रतिमाके ऊपर अक्षत आरोपण करे. ॥

तदपीछे पूग (सुपारी) जायफल आदि वा वर्त्तमान ऋतुके (मोसमी) फल हाथमें लेके ।

ॐ अर्हँ फुं । जन्मफलं स्वर्गफलं पुण्यमोक्षफलं फलं ॥
दद्याज्जिनार्च्चनेत्रैव जिनपादाग्रसंस्थितम् ॥ १ ॥

यह मंत्र पढके जिनपादाग्रे फल ढोवे. ॥

तदपीछे धूप लेके ।

ॐ अर्हँ रं । श्रीखंडागरुकस्तूरीद्रुमनिर्यासंसंभवः ॥
प्रीणनः सर्व देवानां धूपोस्तु जिनपूजने ॥ १ ॥

यह पढके अग्निमें धूपक्षेप करे. ॥

पीछे फूल लेके ।

ॐ अर्हँ रं। पंचज्ञानमहाज्योतिर्म्मयाय ध्वांतघातिने ॥
द्योतनाय प्रतिमायादीपो भूयात्सदार्हते ॥१॥

यह पढके दीपमध्ये पुष्प स्थापन करे. ॥

तदपीछे फुलोंको लेके ।

"॥ॐ अर्हँ भगवद्भ्योर्हद्भ्यो जलगंधपुष्पाक्षतफलधूपदीपैः संप्रदानमस्तु ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयंतां प्रीयंतां भगवंतोर्हतस्त्रिलोकस्थिताः नामाकृतिद्रव्यभावयुताः स्वाहा ॥" यह पढके फिर जिनपूजन करे. ॥

तदपीछे वासक्षेप लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहाः इह जिनपादाग्रे समायांतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥" ऐसें पढके जिनपादसें नीचे स्थापित ग्रहोंके ऊपर, वा स्नानपट्टके ऊपर वासक्षेप करे. ॥

तदपीछे ।

"॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु ॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत,

फल, धूप, दीपसें ग्रहोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिअग्रमें फूल लेके ।

"॥ ॐ सूर्यसोमांगारकबुधगुरुशुक्रशनैश्चरराहुकेतुमुखाग्रहाः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" ऐसें कहके ग्रहोंके ऊपर पुष्पारोप करे. ॥

फिर इसी रीतिकरके ।

"॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः इह जिनपादाग्रे समागच्छंतु पूजां प्रतीच्छंतु ॥" ऐसें कहके पूजापट्टोपरि लोकपालोंको वासक्षेप करे. ॥

तदपीछे ।

"॥ आचमनमस्तु गंधमस्तु पुष्पमस्तु अक्षतमस्तु फलमस्तु धुपोस्तु दीपोस्तु ॥" ऐसें पढके क्रमसें जल, गंध, पुष्प, अक्षत, फल, धूप, दीपसें लोकपालोंका पूजन करे. ॥

तदपीछे अंजलिमें पुष्प लेके ।

"॥ ॐ इंद्राग्नियमनिर्ऋतिवरुणवायुकुबेरेशाननागब्रह्मणो लोकपालाः सविनायकाः सक्षेत्रपालाः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" यह पढके लोकपालोपरि पुष्पारोपण करे.॥

तदपीछे पुष्पांजलि लेके ।

"॥ अस्मत्पूर्वजा गोत्रसंभवा देवगतिगताः सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु ॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे पुष्पांजलिक्षेप करे.॥

तदपीछे फिर भी पुष्पांजलि लेके ।

"॥ॐ अर्हँ अर्हद्भक्ताष्टनवत्युत्तरशतदेवजातयः सदेव्यः पूजां प्रतिच्छंतु सुपूजिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महोत्सवदाः संतु॥" ऐसें कहके जिनपादाग्रे अंजलिक्षेप करे. ॥

तदपीछे अंजलिके अग्रभागमें पुष्प धारण करके अर्हन्मंत्र स्मरण करके तिस फूलसें जिनप्रतिमाको पूजे।

अर्हन्मंत्रो यथा ॥

"॥ॐ अर्हँ नमो अरहंताणं ॐ अर्हँ नमो सयंसंबुद्धाणं ॐ अर्हँ नमो पारगयाणं ॥"

यह त्रिपद मंत्र श्रीमत् अर्हन् भगवंतोंके आगे नित्य स्मरण करे. कैसा है मंत्र? भोगदेवलोकादि सुख और मोक्षका देनेवाला है. तथा सर्व पापोंका नाश करनेवाला है. । विशेष इतना है कि, यह मंत्र अपवित्र पुरुषोंने, अन्यचित्तवाले अर्थात् उपयोगरहित पुरुषोंने, नही स्मरण करना. तथा सस्वर अर्थात् उच्चशब्दसें नही स्मरण करना, नास्तिकोंको नही सुनावना, और मिथ्यादृष्टियोंको भी नही सुनावना. । यह पूर्वोक्त अर्हन्मंत्र एकसौआठ (१०८) वार, वा तदर्द्ध अर्थात् ५४ वार जपे. ॥

तदपीछे दो पात्रोंकरके नैवेद्य ढौकन करे. पीछे एक पात्रमें जलका चुलुक लेके ।

ॐ अर्हँ । नानाषड्रससंपूर्णं नैवेद्यं सर्वमुत्तमं ॥
जिनाग्रे ढौकितं सर्वसंपदे मम जायतां ॥ १ ॥

यह पढके एकत्र नैवेद्यमें चुलुकक्षेप करे. ।

फिर दूसरा जलचुलुक लेके।

"॥ ॐ सर्वे गणेशक्षेत्रपालाद्याः सर्वेग्रहाः सर्वे दिक्पालाः सर्वेऽस्मत्पूर्वजोद्भवादेवाः सर्वे अष्टनवत्युत्तरशतं देवजातयः सदेव्योऽर्हद्भक्ताः अनेन नैवेद्येन संतर्पिताः संतु सानुग्रहाः संतु तुष्टिदाः संतु पुष्टिदाः संतु मांगल्यदाः संतु महो-

त्सवदाः संतु ॥ " ऐसें कहके दूसरे नैवद्यके ऊपर चुलुकक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

यो जन्मकाले पुरुषोत्तमस्य सुमेरुशृंगे कृतमज्जनैश्च ॥
देवैः प्रदत्तः कुसुमांजलिस्स ददातु सर्वाणि समीहितानि ॥१॥

॥ वसंततिलका ॥

राज्याभिषेकसमये त्रिदशाधिपेन ।
छत्रध्वजांक तलयोः पदयोर्जिनस्य ॥
क्षिप्तोतिभक्तिभरतः कुसुमांजलिर्यः ।
स प्रीणयत्वनुदिनं सुधियां मनांसि ॥ २ ॥

॥ शार्दूल ॥

देवेंद्रैः कृतकेवले जिनपतौ सानंदभक्त्यागतैः ।
संदेहव्यपरोपणक्षमशुभव्याख्यानबुद्ध्याशयैः ॥
आमोदान्वितपारिजातकुसुमैर्यः स्वामिपादाग्रतो ।
मुक्तस्स प्रतनोतु चिन्मयहृदां भद्राणि पुष्पांजलिः ॥३॥

इन तीनों वृत्तोंकरके तीन वार पुष्पांजलिक्षेप करे. ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

लावण्यपुण्यांगभृतोर्हतो यस्तद्वृष्टिभावं सहसैव धत्ते ॥
सविश्वभर्त्तुर्लवणावतारो गर्भावतारं सुधियां विहंतु ॥ १ ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

लावण्यैकनिधेर्विश्वभर्त्तुस्तद्वृद्धिहेतुकृत् ॥
लवणोत्तरणं कुर्याद्भवसागरतारणम् ॥ २ ॥

इन दो वृत्तोंकरके दो वार लवण उत्तारना. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सक्षारतां सदासक्तां निहंतुमिव सोद्यमः ॥
लवणाब्धिर्लवणांबुमिषात्ते सेवते पदौ ॥ १ ॥

यह पढके लवणमिश्र जल उत्तारना. ॥

॥ आर्या ॥

भुवनजनपवित्रिताप्रमोदप्रणयनजीवनकारणं गरीयः
जलमविकलमस्तु तीर्थनाथक्रमसंस्पर्शिसुखावहं जनानाम्॥ १॥

यह पढके केवल जलक्षेप करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

सप्तभीतिर्विघातार्हं सप्तव्यसननाशकृत् ॥
यत् सप्तनरकद्वारसप्तारारितुलां गतम् ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

सप्तांगराज्यफलदानकृतप्रमोदं। सत्सप्ततत्त्वविदनंतकृतप्रबोधम्॥
तच्छक्रहस्तधृतसंगतसप्तदीपमारात्रिकं भवतु सप्तमसद्गुणाय ॥२॥

यह पढके आरात्रिकावतारण करे. ॥

॥ अनुष्टुप् ॥

विश्वत्रयभवैर्जीवैः सदेवासुरमानवैः ॥
चिन्मंगलं श्रीजिनेंद्रात् प्रार्थनीयं दिने दिने ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

यन्मंगलं भगवतः प्रथमार्हतः श्री-
संयोजनैः प्रतिबभूव विवाहकाले ॥
सर्वासुरासुरवधूमुखगीयमानं ।
सर्वर्षिभिश्च सुमनोभिरुदीर्यमाणम् ॥ २ ॥

दास्यंगतेषु सकलेषु सुरासुरेषु ।
राज्येर्हतः प्रथमसृष्टिकृतो यदासीत् ॥
सन्मंगलं मिथुनपाणिगतीर्थवारि ।
पादाभिषेक विधिनात्युपचीयमानम् ॥ ३ ॥

॥ शार्दूल ॥

यद्विश्वाधिपतेः समस्ततनुभृत्संसारनिस्तारणे ।
तीर्थे पुष्टिमुपेयुषि प्रतिदिनं वृध्धिं गतं मंगलम् ॥
तत् संप्रत्युपनीतपूजनविधौ विश्वात्मनामर्हतां ।
भूयान्मंगलमक्षयं च जगते स्वस्त्यस्तु संघाय च ॥ ४ ॥

इन चारों वृत्तोंकरके मंगलप्रदीप करे। पीछे शक्रस्तव पढे॥ इतिजिनार्चनविधिः॥

अथ आतिशय करी अर्हद्भक्तिवाला कोइक श्रावक, नित्य, वा पर्वदिनमें, वा किसी कार्यांतरमें, जिनस्नात्र करनेकी इच्छा करे, तिसका विधि यह है।

प्रथम स्नात्रपीठके ऊपर, दिक्पालग्रह अन्य देवतपूजन वर्जके, पूर्वोक्त प्रकारकरके जिनप्रतिमाको पूजके, मंगलदीप वर्जित आरात्रिक करके, पूर्वोपचारयुक्त श्रावक, गुरुसमक्ष संघके मिले हुए, चार प्रकारके गीतवाद्यादि उत्सवके हुए पुष्पांजलि हाथमें लेके।

"॥नमो अरहंताणं' नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यः॥" यह पढके दो वृत्त (छंद) पढे।

यथा॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कल्याणं कुलवृद्धिकारि कुशलं श्लाघार्हमत्यद्भुतं ।
सर्वाघप्रतिघातनं गुणगणालंकारविभ्राजितम् ॥
कांतिश्रीपरिरंभणं प्रतिनिधिप्रख्यं जयत्यर्हतां ।
ध्यानं दानवमानवैर्विरचितं सर्वार्थसंसिद्धये ॥ १ ॥

॥ मालिनीवृत्तम् ॥

भुवनभविकपापध्वांतदीपायमानं ।
परमतपरिघातप्रत्यनीकायमानम् ॥
धृतिकुवलयनेत्रावश्यमंत्रायमानं ।
जयति जिनपतीनां ध्यानमत्युत्तमानाम् ॥ २ ॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेपण करे. ॥ इतिपुष्पांजलिक्षेपः ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

कर्पूरसिल्हाधिककाकतुंडकस्तुरिकाचंदनवंदनीयः ॥
धूपो जिनाधीश्वरपूजनेऽत्र सर्वाणि पापानि दहत्वजस्रम् ॥ १ ॥

यह पढके सर्वपुष्पांजलियोंके बीचमें धूपोत्क्षेप करे. ॥ और शक्रस्तव पढे. ॥ तदपीछे जलपूर्ण कलश लेके, श्लोक और वसंततिलका पढे. ॥

यथा ॥ ॥ अनुष्टुप् ॥

केवली भगवानेकः स्याद्वादी मंडनैर्विना ॥
विनापि परिवारेण वंदितः प्रभुतोर्जितः ॥ १ ॥

॥ वसंततिलका ॥

तस्येशितुः प्रतिनिधिः सहजश्रियाढ्यः ।
पुष्पैर्विनापि हि विना वसनप्रतानैः ॥
गंधैर्विना मणिमयाभरणैर्विनापि ।
लोकोत्तरं किमपि दृष्टिसुखं ददाति ॥ २ ॥

यह पढके प्रतिमाको कलशाभिषेक करे. ॥ इतिप्रतिमायाः कलशाभिषेकः ॥ पुष्प अलंकारादि उत्तारके, कलशाभिषेक करके, पीछे फिर पुष्पांजलि लेके, दो काव्य पढे. ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

विश्वानंदकरी भवांबुधितरी सर्वापदां कर्त्तरी ।
मोक्षाध्वैकविलंघनाय विमला विद्या परा खेचरी ॥
दृष्ट्या भावितकल्मषापनयने बद्धाप्रतिज्ञा दृढा ।
रम्यार्हत्प्रतिमा तनोतु भविनां सर्वं मनोवांछितम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

परमतररमासमागमोत्थप्रसृमरहर्षविभासिसंन्निकर्षा ॥
जयति जगति जिनेशस्य दीप्तिः प्रतिमा कामितदायिनी जनानाम् २

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । पीछे पूर्वोक्त 'कर्पूरसिल्हा' वृत्तकरके धूपोत्क्षेप करे, और शक्रस्तव पढे. । पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके, दो काव्य पढे. ॥

यथा ॥ ॥ पृथिवीवृत्तम् ॥

न दुःखमतिमात्रकं न विपदां परिस्फूर्जितं ।
न चापि यशसां क्षितिर्न विषमा नृणां दुस्थता ॥
न चापि गुणहीनता न परमप्रमोद क्षयो ।
जिनार्च्चनकृतां भवे भवति चैव निःसंशयम् ॥ १ ॥

॥ मंदाक्रांता ॥

एतत्कृत्यं परममसमानंदसंपन्निदानं ।
पातालौकः सुरनरहितं साधुभिः प्रार्थनीयम् ॥
सर्वारंभापचयकरणं श्रेयकां सं निधानं ।
साध्यं सर्वैर्विमलमनसा पूजनं विश्वभर्त्तुः ॥ २ ॥

यह पढके फिर पुष्पांजलिक्षेप करे. । तदपीछे धूप हाथमें लेके पढे ।

यथा ॥ ॥ शार्दूल ॥

कर्प्पूरागरुसिल्हचंदनबलामांसीशशैलेयक ।
श्रीवासद्रुमधूपरालघुसृणैरत्यंतसामोदितः ॥
व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ।
धूपोत् क्षेपकृतो जगत्त्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्च्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धूपोत्क्षेप करे. । शक्रस्तव पढे. ॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके ॥

व्योमस्थप्रसरच्छशांककिरणज्योतिःप्रतिच्छादको ॥
धुपोत्क्षेपकृतो जगत्त्रयगुरोस्सौभाग्यमुत्तंसतु ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

सिद्धाचार्यप्रभृतीन् पंच गुरून् सर्वदेवगणमधिकम् ॥
क्षेत्रे काले धूपः प्रीणयतु जिनार्च्चने रचितः ॥ २ ॥

यह पढके धुपोत्क्षेप करे। शक्रस्तव पढे.॥ पीछे फिर पुष्पांजलि लेके।

॥ वसंततिलका ॥

जन्मन्यनंतसुखदे भुवनेश्वरस्य।
सुत्रामभिः कनकशैलशिरःशिलायाम् ॥
स्नात्रं व्यधायि विविधांबुधिकूपवापी।
कासारपल्वलसरित्सलिलैः सुगंधैः ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

तां बुद्धिमाधाय हृदीहकाले स्नात्रं जिनेंद्रप्रतिमागणस्य ॥
कुर्वंति लोकाः शुभभावभाजो महाजनो येन गतः स पंथाः ॥२॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे।

तदपीछे ॥ ॥ वृत्तपाठः ॥

परिमलगुणसारसद्गुणाढया बहुसंसक्तपरिस्फुरद्द्विरेफा ॥
बहुविधबहुवर्णपुष्पमाला वपुषि जिनस्य भवत्वमोघयोगा॥१॥

यह वृत्त पढके पगोंसें लेके मस्तकपर्यंत जिनप्रतिमाको पुष्पारोपण करे.। पीछे 'कर्पूरसिल्हाधि०' इसकरके धूपोत्क्षेप करे.। पीछे शक्रस्तव पढे.। पीछे फिर पुष्पांजलि हाथमें लेके।

॥ शार्दूल ॥

साम्राज्यस्य पदोन्मुखे भगवति स्वर्गाधिपैर्गुंफितो।
मंत्रित्वं बलनाथतामधिकृतिं स्वर्णस्य कोशस्य च ॥
बिभ्रद्भिः कुसुमांजलिर्विनिहितो भक्त्या प्रभोः पादयो-

दुःखौघस्य जलांजलिं सततनुतादालोकनादेव हि ॥ १ ॥

॥ इंद्रवज्रा ॥

चेतः समाधातुमनिंद्रियार्थं पुण्यं विधातुं गणनाव्यतीतम् ॥
निक्षिप्यतेर्हत्प्रतिमापदाग्रे पुष्पांजलिः प्रोद्गतभक्तिभावैः ॥ २ ॥

यह पढके पुष्पांजलिक्षेप करे. । सर्व पुष्पांजलियोंके अंतमें धूपोत्क्षेप, और शक्रस्तवपाठ अवश्य करना. ॥ तदनंतर पुष्पादिकरके प्रतिमा पूजे.। तदपीछे मणि, स्वर्ण, रूप्य, ताम्र, मिश्रधातु, माटीमय, कलशे स्नात्रकी चौकीऊपरि स्थापन करना. तिनसें गंगोदकमिश्रित सर्व जलाशयोंके पानी स्थापन करे. चंदन, कुंकुम, कर्प्पूरादि सुगंध द्रव्योंकरके वासित करे. चंदनादि करके, और पुष्पमालायोंकरके, कलशोंको पूजे. जल पुष्पादिअभिमंत्रणमंत्र पूर्वे कहे हैं ते जानने. । तदपीछे सो एक श्रावक, अथवा बहुत श्रावक, पूर्वोक्त वेष शौचवाले गंधसें हस्तको लेपन करके, मालाभूषित कंठवाले तिन कलशोंको हाथऊपरि रक्खे. । तदपीछे स्वस्वबुद्धिअनुसारसें जिनजन्माभिषेकचिन्हित स्तोत्रोंको जिनस्तुतिगर्भित षट्पदादि (छप्पयआदि) को पढे । तदपीछे शार्दूलवृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ शार्दूलवृत्त ॥

जाते जन्मनि सर्वविष्टपपतेरिंद्रादयो निर्जरा ।
नीत्वा तं करसंपुटेन बहुभिः सार्द्धं विशिष्टोत्सवैः ॥
शृंगे मेरुमहीधरस्य मिलिते सानंददेवीगणे ।
स्नात्रारंभमुपानयंति बहुधा कुंभांबुगंधादिकम् ॥ १ ॥

॥ आर्या ॥

योजनमुखान् रजतनिष्कमयान् मिश्रधातुमृद्रचितान् ॥
दधते कलशान् संख्या तेषां युगषट्खदंतिमिता ॥ २ ॥
वापीकूपह्रदांबुधितडागपल्वलनदीझरादिभ्यः ॥
आनीतैर्विमलजलैः स्नानाधिकं पूरयंति च ते ॥ ३ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

कस्तूरीघनसारकुंकुममुराश्रीखंडकंकोल्लकै- ।
र्ह्रीबेरादिसुगंधवस्तुभिरलंकुर्वंति तत्संवरम् ॥
देवेंद्रा वरपारिजातबकुलश्रीपुष्पजातीजपा ।
मालाभिः कलशाननानि दधते संप्राप्तहारस्रजः ॥ ४ ॥
ईशानाधिपतेर्निजांककुहरे संस्थापितं स्वामिनं ।
सौधर्माधिपतिर्म्मिताद्भुतचतुःप्रांशूक्षशृंगोद्गतैः ॥
धारावारिभरैः शशांकविमलैः सिंचत्यनन्याशयः ।
शेषाश्चैव सुराप्सरस्समुदयाः कुर्वंतिकौतूहलम् ॥ ५ ॥

॥ वसंततिलका ॥

वीणामृदंगतिमिलार्द्रकटार्द्दनूर ।
ढक्काहुडुक्कपणवस्फुटकाहलाभिः ॥
सद्वेणुझज्झरकदुंदुभिघुंघुणीभि-
र्वाद्यैः सृजंति सकलाप्सरसो विनोदम् ॥ ६ ॥

॥ श्लोकः ॥

शेषाः सुरेश्वरास्तत्र गृहीत्वा करसंपुटे ॥
कलशांस्त्रिजगन्नाथं स्नपयंति महामुदः ॥ ७ ॥

॥ शार्दूलवृत्तम् ॥

तस्मिंस्तादृशउत्सवे वयमपि स्वर्लोकसंवासिनो ।
भ्रांता जन्मविवर्त्तनेन विहितश्रीतीर्थसेवाधियः ॥
जातास्तेन विशुद्धबोधमधुना संप्राप्य तत्पूजनं ।
स्मृत्वैतत्करवाम विष्टपविभोः स्नात्रं मुदामास्पदम् ॥ ८ ॥

॥ गाथा ॥

बालत्तणम्मि सामिअ सुमेरुसिहरम्मि कणयकलसेहिं ॥

तियसासुरेहिं ण्हविओ ते धन्ना जेहिं दिट्ठोसि ॥ ९ ॥

यह पढके कलशोंकरके जिनप्रतिमाको अभिषेक करे. । तदपीछे बडे छोटेके क्रमकरके सर्व पुरुष स्त्रियां भी गंधोदकोंकरके स्नात्र करे. । तदपीछे अभिषेकके अंतमें गंधोदकपूर्ण कलश लेके वसंततिलकावृत्त पढे.।

यथा ॥ ॥ वसंततिलका ॥

संघे चतुर्विध इह प्रतिभासमाने श्रीतीर्थपूजनकृतप्रतिभासमाने ॥
गंधोदकैः पुनरपि प्रभवत्वजस्रं स्नात्रं जगत्त्रयगुरोरतिपूतधारैः ॥१॥

यह पढके जिनपादोपरि कलशाभिषेक करके स्नात्रनिवृत्ति करे. । तदपीछे पुष्पांजलि लेके वृत्त पढे ।

यथा ॥ ॥ प्रहर्षिणी ॥

इंद्राग्ने यम निर्ऋते जलेश वायो
वित्तेशेश्वर भुजगा विरंचिनाथ ॥
संघट्टाधिकतमभक्तिभारभाजः
स्नात्रेऽस्मिन् भुवनविभोः श्रीयं कुरुध्वम् ॥ १ ॥

यह पढके स्नात्रपीठके पास रहे कल्पित दिक्पालपीठऊपरि, पुष्पांजलिक्षेप करे. । तदपीछे प्रत्येक दिशामें यथाक्रमकरके दिक्पालोंको स्थापन करे. । पीछे एकैक दिक्पालका पूजन करे ।

यथा ॥ ॥ शिखरिणी ॥

सुराधीश श्रीमन् सुदृढतरसम्यक्त्ववसते ।
शचीकांतोपांतस्थितविबुधकोट्यानतपद ॥
ज्वलद्वज्राघातक्षपितदनुजाधीशकटक ।
प्रभोः स्नात्रे विघ्नं हर हर हरे पुण्यजयिनाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ शक्र इह जिनस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ २ । इदं जलं गृहाण २ । गंधं गृहाण २ । पुष्पं गृहाण २ । धूपं गृहाण २ ।

दिपं गृहण २। नैवेद्यं गृहाण २। विघ्नं हर २। दुरितं हर २। शांतिं कुरु २। तुष्टिं कुरु २। पुष्टिं कुरु २। ऋद्धिं कुरु २। वृद्धिं कुरु २। स्वाहा ॥ " इति पुष्पगंधादिभिरिंद्रपूजनम् ॥ १ ॥

॥ वपछंदसिकवृत्तपाठ. ॥

बहिरंतरनंततेजसा विदधत्कारणकार्यसंगतिः ॥
जिनपूजनआशुशुक्षणे कुरु विघ्नप्रतिघातमंजसा ॥ १ ॥

"॥ ॐ अग्ने इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " ॥ इत्यग्निपूजनम् ॥ २ ॥

॥ वसंततिलका ॥

दीप्तांजनप्रभतनो तनुसंनिकर्षं ।
वाहारिवाहनसमुद्धुरदंडपाणे ॥
सर्वत्र तुल्यकरणीयकरस्थधर्मं ॥
कीनाश नाशय विपद्विसरं क्षणेत्र ॥ १ ॥

" ॐ यम इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति यमपूजनम् ॥ ३ ॥

॥ आर्या ॥

राक्षसगणपरिवेष्टितचेष्टितमात्रप्रकाशहतशत्रो ॥
स्नात्रोत्सवेत्र निर्ऋते नाशय सर्वाणि दुःखानि ॥ १ ॥

"॥ ॐ निर्ऋते इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति निर्ऋतिपूजनम् ॥ ४ ॥

॥ स्रग्धरा ॥

कल्लोलानीतलोलाधिककिरणगणस्फीतरत्नप्रपंच ।
प्रोद्भूतौर्वाग्निशोभं वरमकरमहापृष्टदेशोक्रमानम् ॥
चंचच्चीरिल्लिशृंगिप्रभृतिझषगणैरंचितं वारुणं नो ।
वर्ष्मच्छिद्यादपायं त्रिजगदधिपतेः स्नात्रसत्रे पवित्रे ॥ १ ॥

"॥ ॐ वरुण इह० शेषं पूर्ववत् ॥ " इति वरुणपूजनम् ॥ ५ ॥

॥ मालिनी ॥

ध्वजपटकृतकीर्त्तिस्फूर्त्तिदीप्यद्विमान ।
प्रसृमरबहुवेगत्यक्तसर्वोपमान ॥
इह जिनपतिपूजासंनिधौ मातरिश्व-
न्नपनयसमुदायं मध्यबाह्यातपानाम् ॥ १ ॥

"॥ ॐ वायो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति वायुपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वसंततिलका ॥

कैलासवास विलसत्कमलाविलास ।
संशुद्धहासकृतदौस्थ्यकथानिरास ॥
श्रीमत्कुबेरभगवत्स्नपनेत्र सर्वं ।
विघ्नं विनाशय शुभाशय शीघ्रमेव ॥ १ ॥

"॥ ॐ कुबेर इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति कुबेरपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वसंततिलका ॥

गंगातरंगपरिखेलनकीर्णवारि प्रोद्यत्कपर्द्दपरिमंडितपार्श्वदेशम् ॥
नित्यं जिनस्नपनहृष्टहृदः स्मरारे विघ्नं निहंतु सकलस्य जगत्रयस्य १

"॥ ॐ ईशान इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इतीशानपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ वृत्तपाठः ॥

फणमणिमहसा विभासमानाः। कृतयमुनाजलसंश्रयोपमानाः॥
फणिन इह जिनाभिषेककाले। बलिभवनादमृतंसमानयंतु ॥१॥

"॥ ॐ नागा इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति नागपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

विशदपुस्तकशस्तकरद्वयः । प्रथितवेदतया प्रमदप्रदः ॥
भगवतः स्नपनावसरे चिरं । हरतु विघ्नभरं द्रुहिणो विभुः ॥१॥

"॥ ॐ ब्रह्मन् इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति ब्रह्मणः पूजनम् ॥ १० ॥

ऐसें क्रमसें दिकपालपूजन करे। तदपीछे फिर भी हाथमें पुष्पांजलि लेकर आर्या पढे॥

यथा॥ ॥ आर्या ॥

दिनकरहिमकरभूसुतशशिसुतबृहतीशकाव्यरवितनयाः॥
राहो केतो क्षेत्रप जिनार्च्चने भवत सन्निहिताः॥ १॥

यह पढके ग्रहपीठोपरि पुष्पांजलिक्षेप करे। तदपीछे पूर्वादिक्रमसें सूर्य, शुक्र, मंगल, राहु, शनि, चंद्र, बुध, बृहस्पति, इनको स्थापन करे. हेठ केतुको, और ऊपर क्षेत्रपालको स्थापन करे.। तदपीछे प्रत्येक ग्रहका पूजन करे.।

तद्यथा॥ ॥ वसंततिलका ॥

विश्वप्रकाशकृतभव्यशुभावकाश।
ध्वांतप्रतानपरिपातनसद्विकाश॥
आदित्य नित्यमिह तीर्थकराभिषेके।
कल्याणपल्लवनमाकलय प्रयत्नात्॥ १॥

"॥ ॐ सूर्य इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति सूर्यपूजनम्॥ १॥

॥ मालिनी ॥

स्फटिकधवलशुद्धध्यानविध्वस्तपाप।
प्रमुदितदितिपुत्रोपास्यपादारविंद॥
त्रिभुवनजनशश्वज्जंतुजीवानुविद्य।
प्रथय भगवतोच्चर्चां शुक्र हे वीतविघ्नाम्॥ १॥

"॥ ॐ शुक्र इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति शुक्रपूजनम्॥ २॥

॥ आर्या ॥

प्रबलबलमिलितबहुकुशललालनाललितकलितविघ्नहते।
भौमजिनस्नपनेऽस्मिन् विघटय विघ्नागमं सर्वम्॥ १॥

"॥ ॐ मंगल इह० शेषं पूर्ववत्॥" इति मंगलपूजनम्॥ ३॥

॥ अनुष्टुप् ॥

अस्तांहः सिंहसंयुक्तरथ विक्रममंदिर ॥
सिंहिकासुत पूजायामत्र संनिहितो भव ॥ १ ॥

"॥ ॐ राहो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति राहु पूजनम् ॥ ४ ॥

॥ वृत्तम् ॥

फलिनीदलनील लीलयांतःस्थगितसमस्तवरिष्ठविघ्नजात॥
रवितनय प्रबोधमेतात् जिनपूजाकरणैकसावधानान् ॥ १ ॥

"॥ ॐ शने इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति शनिपूजनम् ॥ ५ ॥

॥ द्रुतविलंबितपाठः ॥

अमृतवृष्टिविनाशितसर्वदोपचितविघ्नविषः शशलांछनः ॥
वितनुतात्तनुतामिह देहिनां प्रसृततापभरस्य जिनार्चने ॥ १ ॥

"॥ ॐ चंद्र इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति चंद्रपूजनम् ॥ ६ ॥

॥ वृत्तम् ॥

बुधविबुधगणार्च्चितांघ्रियुग्म प्रमथितदैत्य विनीतदुष्टशास्त्र ॥
जिनचरणसमीपगोधुनात्वं रचय मतिं भवघातनप्रकृष्टाम् ॥ १॥

"॥ ॐ बुध इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति बुधपूजनम् ॥ ७ ॥

॥ वृत्तम् ॥

सुरपतिहृदयावतीर्णमंत्रप्रचुरकलाविकलप्रकाश भास्वन् ॥
जिनपरिचरणाभिषेककाले कुरु बृहतीवर विघ्नविप्रणाशम्॥ १॥

"॥ ॐ गुरो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति गुरुपूजनम् ॥ ८ ॥

॥ द्रुतविलंवित ॥

निजनिजोदययोगजगत्रयीकुशलविस्तरकारणतां गतः ॥
भवतुकेतुरनश्वरसंपदां सततहेतुरवारितविक्रमः॥ १ ॥

"॥ ॐ केतो इह० शेषं पूर्ववत् ॥" इति केतुपूजनम् ॥ ९ ॥

॥ आर्या ॥

कृष्णासितकपिलवर्णप्रकीर्णकोपासितांघ्रियुग्मसदा॥
श्रीक्षेत्रपाल पालय भविकजनं विघ्नहरणेन ॥ १ ॥

"॥ ॐ क्षेत्रपाल इह० शेषं पूर्ववत्॥ " इति क्षेत्रपालपूजनम् ॥१०॥

तदपीछे गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीपसें पूर्व कहे मंत्रोंसेंही जिनप्रतिमाकी पूजा करे. तदपीछे हाथमें वस्त्र लेके वसंततिलकावृत्तपाठ पढे.। यथा ॥

॥ वसंततिलकावृत्त ॥

त्यक्त्वाखिलार्थवनितादिकभूरिराज्यं
निःसंगतामुपगतो जगतामधीशः॥
भिक्षुर्भवन्नपि स वर्ष्मणि देवदूष्य-
मेकं दधाति वचनेन सुरेश्वराणाम् ॥ १ ॥

यह पढके वस्त्र चढावे. ॥ इति वस्त्रपूजा ॥

तदपीछे नानाविध खाद्य, पेय, भक्ष्य, लेह्यसंयुक्त नैवेद्य, दो स्थानमें करके तिनमेंसें एक पात्र जिनके आगे स्थापके, श्लोक पढे.। यथा ॥

॥ श्लोक ॥

सर्वप्रधानसद्भूतं देहिदेहिसुपुष्टिदम् ॥
अन्नं जिनाग्रे रचितं दुःखं हरतु नः सदा ॥ १ ॥

यह पढके जलचुलुककरके जिनप्रतिमाको नैवेद्य देवे.। तदपीछे दूसरे पात्रमें चुलुककरकेही, ग्रहदिक्पालादिकोंको श्लोक पढके नैवेद्य देवे.। श्लोको यथा ॥

भोभो सर्वेग्रहालोकपालाः सम्यग्दृशः सुराः ॥
नैवेद्यमेतद्गृह्णन्तु भवंतो भयहारिणः ॥ १ ॥

स्नान करायाविना भी पूजामें जिनप्रतिमाको इसही मंत्रकरके नैवेद्य देना. ॥ तदपीछे आरात्रिक मंगलदीपक पूर्ववत्। और शक्रस्तव भी

पढना. ॥ जिस प्रतिमाका स्थानस्थितहीका स्नपन कराया जावे, तिसके वास्ते सर्वकुछ तहांही करना. ॥

श्रीखंडकर्प्पूरकुरंगनाभिप्रियंगुमांसीनखकाकतुंडैः ॥
जगत्रयस्याधिपतेः सपर्याविधौ विदध्यात्कुशलानि धूपः॥ १॥

इस वृत्तकरके सर्वपुष्पांजलियोंके बिचाले धूपोत्क्षेप करना, और शक्रस्तवपाठ पढना. ॥

प्रतिमाविसर्जनं यथा ॥

"॥ ॐ अर्हँ नमो भगवतेर्हते समये पुनः पूजां प्रतीच्छ स्वाहा॥"

इति पुष्पन्यासेन प्रतिमाविसर्ज्जनं ॥

"॥ ॐ ऱ्हः इंद्रादयोलोकपालाः सूर्यादयो ग्रहाः सक्षेत्रपालाः सर्वदेवाः सर्वदेव्यः पुनरागमनाय स्वाहा ॥" इति पुष्पादिभिर्दिक्पालग्रहविसर्ज्जनम् ॥

तदपीछे ॥

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं च यत्कृतम् ॥
तत्सर्वं कृपया देवाः क्षमंतु परमेश्वराः ॥ १ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्ज्जनम् ॥
पूजां चैव न जानामि त्वमेव शरणं मम ॥ २ ॥

कीर्त्तिः श्रियो राज्यपदं सुरत्वं न प्रार्थये किंचन देवदेव ॥
मत्प्रार्थनीयं भगवत्प्रदेयं स्वदासतां मां नय सर्वदापि ॥३॥

इति सर्वकरणीयांते जिनप्रतिमादेवादिविसर्ज्जनाविधिः ॥
अर्हदर्चनाविधिमें भी ऐसेंही विसर्ज्जन जानना. ॥ इति लघुस्नात्रविधिः ॥

तदपीछे (गृहचैत्यपूजानंतर) वडे देवमंदिरमें जाकर, शक्रस्तवादि-स्तोत्रोंकरके जिनराजकी स्तवना करके, और जिनराजका पूजन करके,

प्रत्याख्यान चिंतवन करे. । पीछे चैत्यको प्रदक्षिणा करके, पौषधशाला (उपाश्रय) में जाकर, देवकीतरें बडे आनंदसें साधुयोंको वंदन करे. सुंदरबुद्धिवाला होकर, पूजासत्कार करे. । पीछे एकाग्रचित्त होकर साधुके मुखसें धर्मदेशना श्रवण करे. पीछे मनसें धारा हुआ प्रत्याख्यान करे. पीछे गुरुको नमस्कार करके कर्मादानको अच्छीतरें त्यागके, धन उपार्जन करे. यथायोग्य स्थानमें व्यापार समाचरे. कुत्सित बुरा कर्म प्राणोंके नाश हुए भी न करना. । पीछे अपने घरदेहरासें अर्हत्की मध्यान्हपूजा करके, अन्नपानी समाचरे. भक्तिसें साधुयोंको दान देके, अतिथीयोंकी पूजा आदरसत्कार करके, और दीन अनाथ मार्गणगणको संतोषके, अपने व्रत और कुलके उचित भोज्य वस्तुका भोजन करे. ॥ साधुको आमंत्रण ऐसें करे. ॥

क्षमाश्रमण पूर्वक गृहस्थ कहें ।

" ॥ हे भगवन् फासुएणं एसणिज्जेणं असणपाणखाइम-साइमेणं वथ्थकंबलपायपुच्छणपडिग्गहेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहेररूवेण सिज्जासंथारएणं भयवं मम गेहे अणुग्गहो कायव्वो ॥ "

तदपीछे (भोजनानंतर) गुरुके पास शास्त्रका विचार करे, पढे, सुने. । पीछे धन उपार्जन करके घरको जाकर संध्यापूजा करके सूर्यके अस्त होनेसें दो घडी पहिले, निजवांछित भोजन करे. सायंकालमें धर्मा-गारमें सामायिककरके षडावश्यक प्रतिक्रमण करे. पीछे अपने घरमें आके शांतबुद्धिवाला हुआ, जब एक पहर रात्रि जावे तब अर्हत्स्तवादिक पढके प्रायः ब्रह्मचर्यव्रतधारी होके सुखसें निद्रा लेवे. जब नींदका अंत आवे तव परमेष्ठिमंत्रस्मरणपूर्वक जिन, चक्री, अर्द्धचक्री, आदिके चरि-तोंको चिंतन करे. और व्रतादिकोंके मनोरथ अपनी इच्छासें करे, ऐसें अहोरात्रिकी चर्या अप्रमत्त होके समाचरता हुआ, और यथावत् कहे व्रतमें रहा हुआ, गृहस्थ भी शुद्ध अर्थात् कल्याणभागी होता है. । इति व्रतारोपसंस्कारे गृहिणां दिनरात्रिचर्या ॥

वासनागुरुसामग्री विभवो देहपाटवम्॥
संघश्चतुर्विधो हर्षो व्रतारोपे गवेष्यते ॥ १ ॥
वरकुसुमगंधअक्खयफलजलनेवज्जधूवदीवेहिं ॥
अट्ठविहकम्ममहणी जिणपूआ अट्ठहा होइ ॥ २ ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्मप्रतिबद्धपंचदशमव्रतारोपसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचितोबालावबोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तोयं त्रिंशः स्तंभः ॥ ३० ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरविरचितेतत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथेपंचदशमव्रतारोपसंस्कारवर्णनोनामत्रिंशःस्तंभः ॥ ३० ॥

॥ अथैकत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

पूर्वोक्त २७।२८।२९।३०। स्तंभोंमें पंचदशम (१५) व्रतारोपसंस्कारका वर्णन किया, अब इस इकतीस (३१) स्तंभमें षोडशम (१६) अंत्यसंस्कारका वर्णन करते हैं. ॥

श्रावक यथावृत् वृत्तोंकरके निज भवको पालके कालधर्मके प्राप्त हुए, उत्कृष्ट प्रधान आराधना करे, तिसका विधि यह है. । जिन अरिहंतोंके कल्याणक स्थानोंमें निर्जीव शुचि पवित्र स्थंडिल–जगामें, वा अरण्यमें, वा अपने घरमें, विधिसें अनशन करना. । तहां शुभस्थानमें ग्लानकोपर्यंत आराधना करावनी । तथा अवश्यमेव असुकवेला निकट मरण होवेगा ऐसें ज्ञानके हुए, तिथिवारनक्षत्रचंद्रबलादि न देखना । तहां संघका मीलना करना । गुरु, ग्लानको जैसें सम्यक्त्वारोपणमें तैसेंही नंदि करे. । नवरं इतना विशेष है. सर्व नंदि देववंदन कायोत्सर्गादि पूर्वोक्त विधि 'संलेहणा आराहणा' इस अभिलापकरके करावणा. और वैयावृत्त्य कर कायोत्सर्गानंतर ।

"॥ आराधना देवता आराधनार्थं करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थउससिएणं० जाव–अप्पाणं वोसिरामि ॥" कहके कायोत्सर्ग करे. कायोत्सर्गमें चार लोगस्स चिंतवन करना, पारके आराधना स्तुति कहनी. ।

सा यथा ॥

यस्याः सान्निध्यतो भव्या वांछितार्थप्रसाधकाः ॥
श्रीमदाराधना देवी विघ्नव्रातापहास्तु वः ॥ १ ॥ शेषं पूर्ववत् ॥

तदपीछे तिसही पूर्वोक्तविधिसें सम्यक्त्वदंडकका उच्चारण, द्वादशव्रतोंका उच्चारण करावणा. । वासक्षेपकायोत्सर्गादि भी, 'संलेखना आराधना' के आलापककरके तैसेंही जाणना. । प्रदक्षिणा करनी, ग्लानकी शक्तिके अनुसार होवे भी, और नही भी होवे. । दंडकादिमें 'जावनियमंपज्जुवासामि' के स्थानमें 'जावज्जीवाए' ऐसें कहना. । तदपीछे सर्व जीवोंकेसाथ अपराधकी क्षामणा करनी । पीछे श्रावक परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक गुरुके सन्मुख हाथ जोडके कहें ।

खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ १ ॥

गुरु कहें ।

" ॥ खामेह जो खमइ तस्स अथ्थी आराहणा जो न खमइ तस्स नथ्थि आराहणा ॥ " तदपीछे श्रावक क्षमाश्रमणपूर्वक कहें " । भयवं अणुजाणह । " गुरु कहें " । अणुजाणामि । " श्रावक परमेष्ठिमंत्रपाठपूर्वक कहें ।

" ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पुढविकाइआ आउकाइआ तेउकाइआ वाउकाइआ वणस्सइकाइआ एगिंदिआ सुहमा वा बायरा वा पज्जत्ता वा अपज्जत्ता वा कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा घाइआ वा पीडिआ वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

" ॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं बेइंदिआ वा सुहमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥ "

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं तेइंदिया सुहमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं चउरिंदिआ सुहुमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहें।

"॥ जे मए अणंतेणं भवप्भमणेणं पंचिंदिआ देवा वा मणुआ वा नेरइआ वा तिरिक्खजोणिआ वा जलयरा वा थलयरा वा खयरा वा सन्निआ वा असन्निआ वा सुहमा वा बायरा वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक श्रावक कहें।

"॥ जं मए अणंतेणं भयप्भमणेणं अलिअं भणिअं कोहेण वा माणेण वा मायाए वा लोहेण वा पंचिंदिअट्टेण वा रागेण वा दोसेण वा मणेणं वायाए काएणं तस्स मिच्छामि दुक्कडं ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके कहें।

"॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अदिन्नं गहिअं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके।

"॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं दिव्वं माणुस्सं तिरिच्छं मेहुणं सेविअं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके।

"॥ जं मए अणंतेणं भवप्भमणेणं अट्ठारस पावट्ठाणाइं कयाइं कोहेण वा माणेण वा० शेषं पूर्ववत् ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके।

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्ठुसक्करासन्हावालुआगेरिअ-सुवन्नाइमहाधाउरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि॥"

"॥ जं मे पुढविकायगयस्स सिलालेट्ठुसक्करासन्हावालुआगे-रिअवसुन्नाईमहाधाउरूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्म-ट्ठाणेसु जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि॥"

फिर परमेष्टिमंत्र पढके।

"॥ जं मे आउकायगयस्स जलकरगमहिआओस्साहिमहरत-णुरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मि-च्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि॥"

"॥ जं मे आउकागयस्स जलकरगमहिआओस्साहिमहरतणु-रूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु जंतुरक्ख-णट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु जिणन्हाणेसु तन्हदाहावहरणेसु संलग्गं तं अणुमोआमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि॥"

फिर परमेष्टिमंत्र पढके।

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायविज्जु-उक्कातेअरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववट्टणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गिरिहामि वोसिरामि॥"

"॥ जं मे तेउकायगयस्स अगणिइंगालमम्मुरजालाअलायवि-ज्जुउक्कातेअरूवं सरीरं सीआवहारे जिणपूआधूवकरणे नेवेज्जपाए

छुहाहरणाहारपाए संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनं-देमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“ ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववड्ढणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे वाउकायगयस्स वाउझंझासासरूवं सरीरं पाणिरक्खणे पाणिजीवणे साहूण वेयावच्चे धम्मावहारे संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठछल्लिपत्तपुप्फफलबीअरसनिज्जासरूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववड्ढणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“ ॥ जं मे वणस्सइकायगयस्स मूलकट्ठछल्लिपत्तपुप्फफलबीअरसनिज्जासरूवं सरीरं छुहाहरणेसु अरिहंतचेइअपूयणेसु धम्मट्ठाणेसु नेवज्जकरणेसु जंतुरक्खणेसु संलग्गं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥ ”

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके ।

“॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरोमनहनसारूवं सरीरं पाणिवहे पाणिसंघट्टणे पाणिपीडणे पाववड्ढणे मिच्छत्तपोसणे ठाणे संलग्गं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥ ”

“॥ जं मे तसकायगयस्स रसरत्तमंसमेअअट्ठिमज्जासुक्कचम्मरोमनहनसारूवं सरीरं अरिहंतचेइएसु अरिहंतबिंबेसु धम्मट्ठाणेसु

जंतुरक्खणट्ठाणेसु धम्मोवगरणेसु संलग्गंतं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

फिर परमेष्ठिमंत्र पढके।

"॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं दुट्टं चिंतिअं दुट्टं भासिअं दुट्टं कयं तं निंदामि गरिहामि वोसिरामि ॥"

"॥ जं मए इथ्थ भवे मणेणं वायाए काएणं सुट्टु चिंतिअं सुट्टु भासिअं सुट्टु कयं तं अणुमोएमि कल्लाणेणं अभिनंदेमि ॥"

यहां पहिलां समारोपितसम्यक्त्व व्रतको भी, फिर सम्यक्त्व व्रतारोप करना. और जिसको पहिलें सम्यक्त्व व्रतारोप न करा होवे, तिसको भी अंतकालमें सम्यक्त्व व्रतारोप करना योग्य है.। जिसको पहिलां व्रतारोप करा होवे, तिसको इस अंतसमयमें एकसौचौवीस अतिचारोंकी आलोचना करनी.। वे अतिचार आवश्यकादि सूत्रोंसें जान लेने.। तदपीछे आलोचनाविधि करना, सो प्रायश्चित्तविधिसें जानना.। तदपीछे गुरु सर्व संघसहित वासअक्षतादि ग्लानके शिरमें निक्षेप करे.॥ इत्यंतसंस्कारे आराधनाविधिः॥

तदपीछे ग्लान (रोगी—बीमार) क्षमाश्रमण परमेष्ठिमंत्र पाठपूर्वक कहे॥

आयरियउवज्झाए सीसे साहम्मिए कुलगणे अ॥
जे मे कया कसाया सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ १ ॥
सव्वस्स समणसंघस्स भगवओ अंजलिं करिय सीसे॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ २ ॥
सव्वस्स जीवरासिस्स भावओ धम्मनिहियनियचित्तो॥
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयंपि ॥ ३ ॥

"॥ भयवं जं मए चउगइगएणं देवा तिरिआ मणुस्सा नेरइआ चउकसाओवगएणं पंचिंदिअवसट्टेणं इहम्मि भवे अन्नेसु वा भवग्गहणेसु मणेणं वायाए काएणं दूमिआ संताविआ अभिताइया

तस्स मिच्छामि दुक्कडं तेहिं अहं अभिदूमिओ संताविओ अभिहओ तमहंपि खमामि ॥ "

तदपीछे गुरु दंडकसहित इन तीनों गाथाका विस्तारसें व्याख्यान करे। तदपीछे ग्लान, गुरु साधु साध्वी श्रावक श्राविकायोंको प्रत्येकक्षामणां करे.। यहां गुरुयोंको वस्त्रादि दान, और संघको पूजासत्कार जानना.॥ इत्यंतसंस्कारे क्षामणाविधिः ॥

अथ मृत्युकालके निकट हुए, ग्लान, पुत्रादिकोंसें जिनचैत्योंमें महापूजा स्नात्रमहोत्सव ध्वजारोपादि करवावे, चैत्यधर्मस्थानादिमें धन लगवावे.। तदपीछे परमेष्ठिमंत्रोच्चारपूर्वक पढे.।

यथा ॥

जे मे जाणंतु जिणा अवराहा जेसुर ठाणेसु ॥
तेहं आलोएमि उवट्ठिओ सव्वकालंपि ॥ १ ॥
छउमथ्थो मूढमणो कित्तियमित्तंपि संभरइ जीवो ॥
जं च न सुमरामि अहं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ २ ॥
जं जं मणेण बद्धं जं जं वायाइ भासिअं किंचि जं जं ॥
काएण कयं मिच्छामि दुक्कडं तस्स ॥ ३ ॥
खामेमि सव्वजीवे सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ ॥ ४ ॥

इति ग्लानपाठः ॥

तदपीछे तीन नमस्कार पाठपूर्वक कहे।

" ॥ चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगलं सिद्धा मंगलं साहू मंगलं केवलिपन्नत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा अरिहंता लोगुत्तमा सिद्धा लोगुत्तमा साहू लोगुत्तमा केवलिपन्नत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पवज्जामि अरिहंते सरणं पवज्जामि सिद्धे सरणं पवज्जामि साहू सरणं पवज्जामि केवलिपन्नत्तं धम्मं सरणं पवज्जामि ॥ "

यह पाठ तीन वार पढे। पीछे गुरुके वचनसें अष्टादश (१८) पापस्थानकोंको वोसरावे व्युत्सर्जन करे.।

यथा ॥

"॥ सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि । सव्वं मुसावायं पच्चक्खामि । सव्वं अदिन्नादाणं प० । सव्वं मेहुणं प० । सव्वं परिग्गहं प० । सव्वं राईभोअणं प० । सव्वं कोहं प० । सव्वं माणं प० । सव्वं मायं प० । सव्वं लोहं प० । सव्वं पिज्जं प० । सव्वं दोसं कलहं अप्भक्खाणअरईरईपेसुन्नं परपरिवायं मायामोसं मिच्छादसंणसल्लं इच्चेइआइं अट्ठारस पावट्ठाणाइं दुविहं तिविहेणं वोसिरामि अपच्छिमम्मि ऊसासे तिविहं तिविहेणं वोसिरामि ॥"

तदपीछे गीतार्थगुरु, श्रीयोगशास्त्रके पांचमे प्रकाशके कथनसें, और कालप्रदीपादिशास्त्रके कथनसें, ग्लानके आयुका क्षय जानके * संघकी, ग्लानके संबंधियोंकी, तथा नगरके राजादिकी अनुमति लेके, अनशनका उच्चार करे.। ग्लान, शक्रस्तव पढके तीनवार परमेष्ठिमंत्रको पढके गुरुके मुखसें उच्चरे.।

यथा ॥

"॥ भवचरिमं पच्चक्खामि तिविहंपि आहारं असणं खाइमं साइमं अन्नथ्थणाभोगेणं सहसागारेणं महत्तरागारेणं सव्वसमाहिवत्तियागारेणं वोसिरामि ॥" इति सागारानशनम् ॥

अंतर्मुहूर्त्त शेष रहे हूए, निरागार अनशन कराना.॥

---

* भक्तप्रत्याख्यानप्रकीर्णकशास्त्रमें लिखा है कि, यदि कोइ तथ्यज्ञानी कहे, अथवा कोइ सम्यग्दृष्टि देवता कहे कि, अमुकदिन तेरा अवश्य मरण है, तवतो अपना संहननधृतिबल जानके यावत् जीवका अनशन करना, अन्यथा सागारिक अनशन करना. परंतु, जो कोइ मरणदिनके निश्चयविना यावत् जीवका अनशन करे, करावे, सो आत्मघाती साधुश्रावकघाती पंचेंद्रियघाती है; इससें प्रायः इस कालमें यावज्जीवका अनशन नहीं कराना सिद्ध होता है. ॥

यथा ॥

"॥ भवचरिमं निरागारं पच्चक्खामि सव्वं असणं सव्वं पाणं सव्वं खाइमं सव्वं साइमं अन्नथ्थणाभोगेणं सहसागारेणं अईयं निंदामि पडिपुन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि अरिहंतसक्खियं सिद्धसक्खियं साहुसक्खियं देवसक्खियं अप्पसक्खियं वोसिरामि ॥"

जइ मे हुज्ज पमाओ इमस्स देहस्स इमाइ वेलाए ॥
आहारमुवहिदेहं तिविहं तिविहेण वोसिरिअं ॥ १ ॥

तब गुरु "निथ्थारगपारगो होहि" ऐसें कहता हुआ संघसहित वासअक्षतादि ग्लानके सन्मुख क्षेप करे.। शांतिके वास्ते 'अट्ठावयंमि उसहो' इत्यादि स्तुति पढनी. और, 'चवणं जम्मणभूमी' इत्यादि स्तव पढना.। गुरु निरंतर ग्लानके आगे तीनभुवनके चैत्योंका व्याख्यान करे, अनित्यतादि बारां भावनाका व्याख्यान करे, अनादिभवस्थितिका व्याख्यान करे, अनशनके फलका व्याख्यान करे. । और संघ गीतनृत्यादि उत्सव करे.। ग्लान जीवितमरणइच्छाको त्यागके समाधिसहित रहे. । तदपीछे अंतर्मुहूर्त्तके आयां, ग्लान 'सव्वं आहारं सव्वं देहं सव्वं उवहिं वोसिरामि' ऐसें कहें । पीछे ग्लान पंचपरमेष्ठिस्मरणश्रवणयुक्त शरीरको त्यागे ॥ इत्यंतसंस्कारेऽनशनाविधिः ॥

मरणकालमें ग्लानको कुशकी शय्याऊपर स्थापन करना।"।जन्ममरणे भूमावेव इति व्यवहारः।"

अथ सर्वभावके भोक्ता कर्मके जोडनेवाले चेतनारूप जीवके गये हुए, अजीव पुद्गलरूप तिसके शरीरको सनाथता ख्यापनार्थें, तिसके पुत्रादिकोंकेवास्ते, तीर्थसंस्काराविधि कहते हैं. । सर्व ब्राह्मणको शिखा वर्जके शिर दाढी मूंछ मुंडन कराना चाहिये, कितनेक क्षत्रियवैश्यको भी कहते हैं. । तथा शबका संस्कार सर्व स्ववर्णज्ञातियोंने करना, अन्यवर्ण ज्ञातिवालोंने तिसका स्पर्श नही करना. । तदपीछे गंधतैलादिसें और भले गंधोदककरके शवको स्नान करावे, गंधकुंकुमादिसें विलेपन करे, मालाकरके अर्च्चे,

स्वस्वकुलोचित वस्त्राभरणेकरी विभूषित करे. शूद्र जातिका सर्वथा मुंडन नही. । तदपीछे नवीन काष्टकी पगविनाकी कुश संथरी भले वस्त्रसें ढांकी हुई शय्याके ऊपर शय्याके उपकरणसहित शबको स्थापन करे. । यहां गृहस्थके मृत्युनक्षत्रके नक्षत्रपूतलेका विधान, कुशसूत्रादिसें यति-कीतरें जानना. नवरं कुशपुत्रक गृहस्थवेषधारी करणे । वर्णानुसार तिसके ऊपर नानाविध वस्त्र सुवर्ण मणि विचित्र वस्त्रका करा प्रासाद स्थापन करे. । तदपीछे स्वज्ञातीय चारजणे परिजनके साथ स्कंधऊपर उठाए शबको,स्मशानमें ले जावे.। तहां उत्तरभागमें शबका शिर रखके चितामें स्थापन करके, पुत्रादि अग्निसें संस्कार करे. । अन्न नही खानेवाले बालकोंको भूमिसंस्कार इच्छते हैं. । तहां प्रेतप्रतिग्राहियोंको दान देवे । तदपीछे सर्व स्नान करके, अन्यमार्गे होकर अपने घरको आवे. तीसरे दिनमें चिताभस्मका, पुत्रादि नदीमें प्रवाह करे. । तिसके हाड, तीर्थोंमें स्थापन करे. । तिसके अगले दिनमें स्नान करके शोक दूर करे. । जिनचैत्योंमें जाके, परिजनस-हित, जिनविंवको विनास्पर्शे, चैत्यवंदन करे. । पीछे धर्मागारमें आके गुरुको नमस्कार करे. गुरु भी संसारकी अनित्यतारूप धर्मदेशना करे. । तदपीछे स्वस्वकार्यमें सर्व तत्पर होवे. । अंत्य आराधनासें लेके, शोक दूर करनेतक मुहूर्त्तादि न देखना, अवश्य कर्त्तव्य होनेसें. । यमलयोगसें, त्रिपुष्करयो-गमें, आर्द्रा, मूल, अनुराधा, मिश्र, क्रूर और ध्रुव, इन नक्षत्रोंमें प्रेत-क्रिया नही करनी. । * धनिष्ठासें लेके पांच नक्षत्रोंमें तृणकाष्ठादि संग्रह नही करना । शय्या, दक्षिणदिशाकी यात्रा, मृतककार्य, गृहोद्यम, घर ब-नाना आदि नही करना. । रेवती, श्रवण, अश्लेषा, अश्विनी, पुष्प, हस्त, स्वाति, मृगशिर, इन नक्षत्रोंमें, और सोम, गुरु, शनि, इन वारोंमें प्रेतकर्म करना बुद्धिमान् कहते हैं. । स्वस्ववर्णके अनुसार जन्समरणका सूतक एकसदृश होता है, और गर्भपातसें तीन दिनका सुतक होवे है. ।

* मृगशिर । चित्रा । धनिष्टा । मंगल । गुरु । शनि । २ । १२ । ७ । इति यात्राणां योगे यमलयोगः ॥ कृतिका । पूर्वाफाल्गुनी । विशाखा । उत्तराषाढा । पूर्वाभाद्रपदा । पुनर्वसु । मंगल । गुरु । शनि । २।१२।७। इति त्रिपुष्करयोगः ॥ कृतिका । विशाखा । भरणी । इति मिश्रनक्षत्राणि ॥ भरणी । मघा । पूर्वाफाल्गुनी । पूर्वाषाढा । पूर्वाभाद्रपदा । इति क्रूरनक्षत्राणि ॥ रोहिणी । उत्तराफा० । उत्तराषा० । उत्तराभा० । इति ध्रुवनक्षत्राणि ॥

अन्य वंशवालेके मृत्यु हुए, वा जन्म हुए, विवाहित पुत्रिको सूतकवालेके अन्नके खानेसें, इन सर्वसें तीन दिनका सूतक होवे है. । अन्न नही खानेवाले बालकका सूतक तीन दिनका होवे है । आठ वर्षसें कम ऐसें बालकका भी त्रिभागोन सूतक होवे है. । स्वस्ववर्णानुसार सूतकके अंतमें जिनस्तव महोत्सवादि और साधर्मिकवात्सल्यादि करना, जिससें कल्याणप्राप्ति होवे. ॥

इत्याचार्यश्रीवर्द्धमानसूरिकृताचारदिनकरस्य गृहिधर्म्मप्रतिवद्धस्य षोडशमांत्यसंस्कारस्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविचितोवालाववोधस्समाप्तस्तत्समाप्तौ च समाप्तमिदं षोडशसंस्कारविवरणम्म् ॥

इंदुबाणांकचंद्राद्वे (१९५१) श्रावणिकेसितच्छदे ॥
कृतोबालावबोधोयं विजयानंदसूरिणा ॥ १ ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे
षोडशमांत्यसंस्कारवर्णनोनामैकत्रिंशः स्तंभः ॥ ३१ ॥

॥ विज्ञापनम्म् ॥

यह पूर्वोक्त सोळां संस्कारका विधि श्रीआचारदिनकरके अनुसार लिखा है, इसके लिखनेका यह प्रयोजन है कि, यह सांसारिक व्यवहारोंके संस्कारोंका विधि, श्रीऋषभदेवसें प्रचलित हूआ है, और जैसा श्रीऋषभदेवजीने प्रचलित करा था, तैसेंही श्री जैनाचार्योंने लिख दिखलाया है. । इनमें जो व्रतारोपसंस्कार है, सो तो गृहस्थका धर्मही जानना. शेष संस्कारोंमें धर्ममिश्रित जगत्‌व्यवहारकी रीति कथन करी है. । इस कालमें कोई यह नियम नही है कि, सर्व श्रावकोंने यह विधि अवश्य कर्त्तव्यही है; तथापि यदि यह विधि प्रचलित होवे तो अच्छी वात है. क्योंकि, श्रीजैनाचार्योंको यही विधि सम्मत है, और इसी वास्ते मुंवाइके श्रीजैनयुनियनक्लबके मेंबरोंकी, भरुचवाले शेठ अनुपचंद मलूकचंदकी, भावनगरकी श्रीजैनधर्मप्रसारकसभाके शाह कुंवरजी आनंदजीकी, वडोदेवाले शेठ गोकलभाइ दुल्लभदासकी, और कितनेक साधुओंकी सम्मतिसें हम-

ने यह विधि इस ग्रंथमें गुंथन किया है. जिससें कि, लोकोकों मालुम होवे कि, जैनमतमें भी षोडशसंस्कारोंका वर्णन है.। तथा इस जैनसंस्कारविधिको, मिथ्यात्व भी नही जानना. क्योंकि यह लौकिकव्यवहाररूप प्रायः है, धर्मरूपही नही है. और आगममें चरितानुवादसें किसी किसी संस्कारविधिका संक्षेपसें कथन भी है.। श्रीभगवतीसूत्र, ज्ञातासूत्र, आचारांगसूत्र, दशाश्रुतस्कंधसूत्रादि शास्त्रानुसारें चरितानुवाद जानना.

अव मैं श्रीसंघसें नम्रतापूर्वक विनती करता हूं कि, यह विधि लिखनेके समयमें एकही ग्रंथ विद्यमान था, और नकल करनेके समय दूसरा मिला था, तिससें प्रायः स्वमत्यनुसार शुद्ध करके लिखा है, तथापि, किसी स्थानपर द्रष्ट्यादिदोषसें अशुद्ध लिखा गया होवे, वा जिनाज्ञाविरुद्ध लिखा गया होवे, सो मुझे माफ करेंगे, और शुद्ध करके वांचेंगे.। इत्यलम्म् ॥

॥ अथद्वात्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

अव इस स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका थोडासा खुलासा करते हैं. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमत जेकर प्राचीन होवे तो, तिसका लेख, वा नाम, वेदोंमें होना चाहिये; परं है नही, इसवास्ते जैनमत नवीन है, प्राचीन नही है. ॥

उत्तरपक्षः—प्रियकर ! प्रथम तो वेदकाही कुछ ठिकाना नही है. क्योंकि, प्रथम ऋगवेदकी ८, कृष्णयजुर्वेदकी ८६, शुक्लयजुर्वेदकी १७, सामवेदकी १०००, और अथर्ववेदकी ९ शाखा. ये सर्व शाखायोंके वेदपाठमें परस्पर अन्यत्व है. जैसें जर्मनीके छपे शुक्लयजुर्वेदमें माध्यंदिनी, और काण्वशाखाके वेदपाठ पृथक् २ है. ऐसेंही सर्व शाखायोंमें जानना. इन शाखायोंमेंसें बहुत शाखा तो नष्ट होगइ हैं, तो फिर,

ऐसा ज्ञानी कौन है ? कि, जो कह देवे कि, किसी भी वेदकी शाखामें अर्हन्मतका नाम नही है !!

जब शंकराचार्य, जिसको हुए लगभग बारांसौ वर्ष व्यतीत हुए हैं, तिसके समयमें वेदादि पुस्तकोंमें बहुत गडबड करी गइ, पुराणे पुस्तकोंमेंसें कितनेही हिस्से निकाले गए, और कितनेक हिस्से नवीन दाखल करे गए हैं, यह कथन इतिहास तिमिरनाशकमें है. और वेदोंके अर्थ करनेमें भी शंकर, माधव, सायणाचार्यादिकोंने अपने २ भाष्यमें बहुत अर्थ मनःकल्पित लिखे हैं. क्योंकि, प्राचीन वेदभाष्य इनको नही मिले हैं. इसवास्ते इनके करे अर्थ कितनेही अनन्वित है. और जो भाष्य इनोंने रचे हैं, तिनोंमें भाष्यके लक्षण भी नही है. केवल टीकाका नामही भाष्य रख दिया है. भाष्य तो वह होता है कि, जिसमें मूलसूत्रकारका जो अभिप्राय होवे, सो सर्व प्रकट करा होवे "। सूत्रं सूचनकृत भाष्यं सूत्रोक्तार्थप्रपंचकम् । " इति वचनात् । जैसें आवश्यक सूत्रके प्रथमाध्ययनके ८६ अक्षर है, तिसकी निर्युक्तिका भाष्य ५०००, श्लोकप्रमाण प्राकृतगाथाबद्ध है, और तिसकी टीका २८०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. ऐसेंही कल्पसूत्र (बृहत्) मूल ४७३, भाष्य १२०००, प्राकृतगाथाबद्ध, टीका ४२०००, श्लोकप्रमाण संस्कृतमें है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंके इसीतरेंके भाष्य है. तथा जैसें पाणिनीयसूत्रोपरि पतंजलिकृत भाष्य हैं, येह तो भाष्य है. परंतु जो नवीन भाष्य रचे गये हैं, वे तो, अभिमानके उदयसें रचे मालुम होते हैं. जैसें दयानंदसरस्वतीजीने वेदोंपर नवीन भाष्य रचा है, यह भाष्य नहीं हैं, किंतु शास्त्रोंके सत्यार्थ विगाडनेसें विटंवनारूप है. और दयानंदजीका भाष्य तो ऐसा है कि—

चार सुहाली सोले थाली, वांटणवाली अस्सी जणी;
सारे गाम ढंढोरा फेर्या, हंदि थोडी ने हलहल घणी. ।

और इस समयमें ऋग्वेदकी शाखा संख्यायनी १, शाकल २, वाष्कल ३, अश्वलायनी ४, मांडुक ५; कृष्णयजुर्वेद तैत्तिरीय तिसकी

शाखा आपस्तंब १, हिरण्यकेशी २, मैत्राणि ३, सत्याषाड ४, बौद्धायनी ५; शुक्लयजुर्वेद याज्ञवल्क्यने रचा तिसकी शाखा काण्व १, माध्यंदिनी २, कात्यायनी ३, ये तीन हैं; सर्व यजुर्वेदकी शाखा ८; सामवेदकी शाखा कौथुमी १, राणायणी २, गोभील ३, ये तीन है. अथर्ववेदकी शाखा पिप्पलाद १, शौनकी २, ये दो है. इतनी शाखाके ब्राह्मण मालुम होते हैं. परंतु शाखासमान वेदपाठ, इतनेतरेंके मालुम नही होते हैं. माध्यंदिनी काण्ववत्. अब कौन जाने कि, किस शाखामें, किस वेदपाठमें क्या कथन था? और इस समयमें भी, तैत्तिरीय आरण्यककी भाष्यमें सायणाचार्य लिखते हैं कि, इससें द्रविडदेशके ब्राह्मणोंके चौसट्ठ (६४) अनुवाकका पाठ है; अंध्रोंके ८०, कितनेक कर्णाटकोंके ७४, और कितनेकके नवाशी, (८९) अनुवाकका पाठ है. परंतु हम अस्सी (८०) पाठवालेका व्याख्यान, पाठांतर सूचनासहित, प्रधानताकरके करेंगे.

तथाच तत्पाठः ॥

"॥ तत्र द्रविडानां चतुःषष्ट्यनुवाकपाठः। आंध्राणामशीत्यनुवाकपाठः । कर्णाटकेषु केषांचिच्चतुःसप्ततिपाठः । अपरेषां नवाशीतिपाठः। तत्र वयं पाठांतराणि यथासंभवं सूचयंतोशीतिपाठं प्राधान्येन व्याख्यास्यामः ॥"

तथा कलकत्ताके छापेका पुस्तक तैत्तिरीय आरण्यकका जो हमारे पास है, तिसमें लिखा है कि, कितनेही पाठ भाष्यकारने त्यागे हैं, तिनका भाष्य नही करा है. और कितनेक पाठोंका भाष्य करा है, वे पाठ मूलपुस्तकमें नही है.

और तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथमाष्टक प्रथम प्रपाठक प्रथमानुवाकके प्रथम मंत्रके भाष्यमें भी सायणाचार्य लिखते हैं कि "॥ वाजसनेयिनश्च विज्ञानमानंदं ब्रह्म—इति ॥" परंतु यह श्रुति वाजसनेयसंहितामें मालुम नही होती है. इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदोंमें बहुत गडबड हुइ है; और बहुत हिस्से नष्ट हो गए हैं. और शेष रहे

हुएके भी अर्थोंमें, सायणाचार्य शंकराचार्यादिकोंने गडबड कर दीनी हैं.

अन्य एक यह भी प्रमाण है कि, जैनमतके आचार्य श्रीभद्रबाहुस्वामी, शब्दांभोनिधि महाभाष्यके कर्त्ता श्रीजिनभद्रगणि क्षमाश्रमण, इत्यादिकोंने तथा आवश्यकवृत्तिकार श्रीहरिभद्रसूरि, श्रीमलयगिरिजीने, जे जे श्रुतियां वेदोंकी लिखी हैं, तथा कल्पलता टीका, विधिकंदली, और उत्तराध्ययनसूत्रके पच्चीसमे अध्ययनमें, जे जे श्रुतियां आरण्यकादिकोंकी लिखी हैं; तिन पूर्वोक्त श्रुतियोंमेंसें कितनीक श्रुतियां, ऋग्वेद, यजुर्वेद, तैत्तिरीयारण्यक, बृहदारण्यक उपनिषदादिकोंमें मिलति हैं; और कितनीक श्रुतियां तिन पुस्तकोंमें नही मिलती हैं. इससें भी यही सिद्ध होता है कि, वे मंत्र श्रुतियां व्यवच्छेद होगइ होवेगी, वा ब्राह्मणोंने जानबूझके निकाल दीनी होवेगी, वे सर्व श्रुतियां आगे लिख दिखाते हैं. ॥

१ ॥ विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थायतान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य संज्ञास्ति ॥

२ ॥ सवै अयमात्मा ज्ञानमयः ॥

३ ॥ नहवै सशरीरस्य प्रियाप्रिययोरपहीतिरस्त्यशरीरं वा वसंतं प्रियाप्रिये न स्पृशत इति ॥

४ ॥ अग्निहोत्रं जुहुयात्स्वर्गकामः ॥

५ ॥ अस्तमिते आदित्ये याज्ञवल्क्यः चंद्रमस्यस्तमिते शांतेग्नौ शांतायां वाचि किं ज्योतिरेवायं पुरुषः आत्मा ज्योतिः साम्राडितीहोवाच ॥

६ ॥ पुरुष एवेदंग्निं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यं उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति यदेजति यन्नेजति यद्दूरे यदु अंतिके यदंतरस्य सर्वस्य यदु सर्वस्यास्य बाह्यत इत्यादि ॥

७ ॥ ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम्। छंदांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥

८ ॥ तत्र स सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्नात्मा सुप्रतिष्ठितस्तमक्षरं वेदयतेथ यस्तु स सर्वज्ञः सर्ववित् सर्वमेवाविवेश ॥

९ ॥ एकया पूर्णाहुत्या सर्वान् कामानवाप्नोति ॥

१० ॥ प्रथमो यज्ञो योग्निष्टोमः योनेनानिष्ट्वान्येन यजते स गर्त्तमभ्यपतत् ॥

११ ॥ द्वादश मासाः संवत्सरोग्निरुष्णोग्निर्हिमस्य भेषजमित्यादि ॥

१२ ॥ पुण्यः पुण्येन कर्मणा पापः पापेनेत्यादि ॥

१३ ॥ सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष ब्रह्मचर्येण नित्यं ज्योतिर्मयो हि शुद्धोयं पश्यंति धीरा यतयः संयतात्मान इत्यादि ॥

१४ ॥ स्वप्नोपमं वै सकलमित्येष ब्रह्मविधिरंजसा विज्ञेय इत्यादि ॥

१५ ॥ द्यावापृथिवी इत्यादि ॥

१६ ॥ पृथिवी देवता आपो देवता इत्यादि ॥

१७ ॥ पुरुषो वै पुरुषत्वमश्नुते पशवः पशुत्वमित्यादि ॥

१८ ॥ शृगालो वै एष जायते यः सपुरीषो दह्यते इत्यादि ॥

१९ ॥ अग्निष्टोमेन यमराज्यमभिजयत इत्यादि ॥

२० ॥ स एष विगुणो विभुर्न बध्यते संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा न वा एष बाह्यमाभ्यंतरं वा वेद इत्यादि ॥

२१ स एष यज्ञायुधी यजमानोंजसा स्वर्गलोकं गच्छतीत्यादि ॥

२२ ॥ अपामसोमं अमृता अभूम अगमामज्योतिरविदाम-
देवान् किं नूनमस्मात्तृणवदरातिः किमुधूर्त्तिरमृतमर्त्यस्ये-
त्यादि ॥

२३ ॥ को जानाति मायोपमान् देवानिंद्रयमवरुणकुबेरादी-
नित्यादि ॥

२४ ॥ सोमसूर्यसुरगुरुस्वाराज्यानि जयतीत्यादि ॥

२५ ॥ इंद्र आगच्छ मेधातिथे मेषवृषणेत्यादि ॥

२६ ॥ नारको वै एष जायते यः शूद्रान्नमश्नाति इत्यादि ॥

२७ ॥ न ह वै प्रेत्य नरके नारकाः संति ॥

२८ ॥ जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्निहोत्रम् ॥

२९ ॥ द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञान-
मनंतं ब्रह्मेति ॥

३० ॥ सैषा गुहा दुरवगाहा ॥

३१ ॥ मषिरपि न प्रज्ञायत इति ॥

३२ ॥ ॐ लोकश्रीप्रतिष्ठान् चतुर्विंशतितीर्थकरान् ऋषभादि-
वर्द्धमानांतान् सिद्धांतान् शरणं प्रपद्यामहे । ॐ पवित्र-
मग्निमुपस्पृशामहे येषां जातं सुप्रजातं येषां धीरं सुधीरं येषां
नग्नं सुनग्नं ब्रह्मसुब्रह्मचारिणं उदितेन मनसा अनुदि-
तेन मनसा देवस्य महर्षयो महर्षिभिर्जुहोति याजकस्य
यजंतस्य च सा एषा रक्षा भवतु शांतिर्भवतु तुष्टिर्भवतु
वृद्धिर्भवतु शक्तिर्भवतु स्वस्तिर्भवतु श्रद्धा भवतु निर्व्याजं
भवतु ॥ [यज्ञेषु मूलमंत्र एष इति विधिकंदल्याम्]

३३ ॥ जिनप्रमाणांगुलादवीति ॥

३४ ॥ ऋषभं पवित्रं पुरुहूतमध्वरं यज्ञेषु यज्ञपरमं पवित्रं श्रुतधरं यज्ञं प्रति प्रधानं ऋतुयजनपशुमिंद्रमाहवेतिस्वाहा ॥

३५ ॥ त्रातारमिंद्रं ऋषभं वदंति अतिचारमिंद्रं तमरिष्ठनेमिं भवे भवे सुभवं सुपार्श्वमिंद्रं हवे तु शक्रं अजितं जिनेंद्रं तद्वर्द्धमानं पुरुहूतमिंद्रं स्वाहा ॥

३६ ॥ नग्नं सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनम् ॥

३७ ॥ उपैति वीरं पुरुषमरुहंतमादित्यवर्णं तमसः पुरस्तात् ॥

३८ ॥ नैंद्रं तद्वर्द्धमानं स्वस्तिन इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पुरुषा विश्ववेदाः स्वस्ति नस्तार्क्ष्योरिष्ठनेमिः स्वस्तिनः ॥ [यजुर्वेदे वैश्वदेवऋचौ]

३९ ॥ दधातु दीर्घायुस्त्वायबलायवर्चसे सुप्रजास्त्वाय रक्षरक्षरिष्टनेमिस्वाहा ॥ [बृहदारण्यके]

४० ॥ ऋषभएव भगवान् ब्रह्मा तेन भगवता ब्रह्मणा स्वयमेवाचीर्णानि ब्रह्माणि तपसा च प्राप्तः परं पदम् ॥

[आरण्यके]

और भी कइ एसी श्रुतियां जैनाचार्योंने लिखी है, जो कितनीक मिलती हैं, और कितनीक नही मिलती हैं.

अव जैनाचार्योंने जे जे पाठ पुराणादिके लिखे हैं, तिनमेसें थोडेकसें पाठ लिख दिखाते हैं. इनमेसें भी कितनेक पाठ सांप्रतकालके विद्यमान पुस्तकोंमें मालुम नही होते हैं. पुराणोंके पाठ लिखनेका प्रयोजन यह है कि, पुराण भी वेदव्यासजीके बनाये कहे जाते हैं।

१ ॥ नाभिस्तुजनयेत्पुत्रं मरुदेव्यां महाद्युतिं ॥
ऋषभं क्षात्रियज्येष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजं ॥ १ ॥

ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरपुत्रशताग्रजः ॥
अभिषिच्य भरतं राज्ये महाप्रव्रज्यमाश्रितः ॥ २ ॥

२ ॥ इह हि इक्ष्वाकुकुलवंशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्यानंदनेन महादेवेन ऋषभेण दशप्रकारो धर्मः स्वयमेवाचीर्णः केवलज्ञानलाभाच्च प्रवर्त्तितः ॥ [ब्रह्मांडपुराणे]

३ ॥ युगेयुगे महापुण्या दृश्यते द्वारिका पुरि ॥
अवतीर्णो हरिर्यत्र प्रभासे शशिभूषणं ॥ १ ॥
रेवताद्रौ जिनो नेमिर्युगादिर्विमलाचले ॥
ऋषीणामाश्रमादेव मुक्तिमार्गस्य कारणम् ॥ २ ॥
पद्मासनसमासीनः श्याममूर्तिर्दिगंबरः ॥
नेमिनाथ शिवेत्याख्या नाम चक्रेस्य वामनः ॥ ३ ॥

४ ॥ वामनावतारेहि–"वामनेन रैवते श्रीनेमिनाथाग्रे बलिबंधनसामर्थ्यार्थं तपस्तेपे ॥" इतितत्रकथास्ति ॥

५ ॥ ईशो गौरींप्रति–
कलिकाले महाघोरे सर्वकल्मषनाशनः ॥
दर्शनात् स्पर्शनादेव कोटियज्ञफलप्रदः ॥ १ ॥
उज्जयंतगिरौ रम्ये माघे कृष्णचतुर्दशी ॥
तस्यां जागरणं कृत्वा संजातो निर्मलो हरिः ॥ २ ॥ इत्यादि ॥
[प्रभासपुराणे]

६ ॥ कैलासे पर्वते रम्ये वृषभोयं जिनेश्वरः ॥
चकार स्वावतारं यः सर्वज्ञः सर्वगः शिवः ॥ १ ॥ [शिवपुराणे]

७ ॥ स्कंदपुराणे १८ सहस्रसंख्ये नगरपुराणे अतिप्रसिद्धनगरस्थापनादिवक्तव्यताधिकारे भवावताररहस्ये षट्सहस्रैः श्रीऋषभचरित्र समग्रमस्ति तत्र ॥

स्पृष्ट्वा शत्रुंजयं तीर्थं नत्वा रैवतकाचलम् ॥
स्नात्वा गजपदे कुंडे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १ ॥
पंचाशदादौ किल मूलभूमेर्दशोर्द्ध्वभूमेरपि विस्तरोस्य ॥
उच्चत्वमष्टैव तु योजनानि मानं वदंतीह जिनेश्वराद्रेः॥ २॥
सर्वज्ञः सर्वदर्शी च सर्वदेवनमस्कृतः ॥
छत्रत्रयाभिसंयुक्तां पूज्या मूर्त्तिमसौ वहन् ॥ ३ ॥
आदित्यप्रमुखाः सर्वे बद्धांजलय इदृशं ॥
ध्यायंति भावतो नित्यं यदंघ्रियुगनीरजं ॥ ४ ॥
परमात्मानमात्मनं लसत्केवलनिर्मलम् ॥
निरंजनं निराकारं ऋषभं तु महाऋषिम् ॥ ५॥ [स्कंदपुराणे]

८॥ अष्टषष्ठिषु तीर्थेषु यात्रायां यत्फलं भवेत् ॥
आदिनाथस्य देवस्य स्मरणेनापि तद्भवेत ॥१॥ [नागपुराणे]

इत्यादि अनेक प्रमाणोंसें सिद्ध होता है कि, वेदादिशास्त्रोंमें बहुत गडबड हो गइ है. तथा इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसें जैनमत वेदसें पहिलेका सिद्ध होता है, वेदमें जैनतीर्थंकरादिकोंके लेख होनेसें.

और ब्राह्मणोंके माननेमूजब, तथा इतिहास लिखनेवालोंकी मतिमूजब, श्रीकृष्णवासुदेवजीको हुए पांचसहस्र (५०००) वर्ष माने जाते हैं. तिनके समयमें व्यासजी, वैशंपायन, याज्ञवल्क्यादि, वेदसंहिताके बांधनेवाले, और शुक्लयजूर्वेद, शतपथ ब्राह्मणादि शास्त्रोंके कर्त्ता हुए हैं. तिन सर्व ऋषियोंमें मुख्य व्यासजी हैं, तिनोंने वेदांतमतके ब्रह्मसूत्र रचे हैं. तिसके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके तेतीसमे सूत्रमें जैनमतकी स्याद्वादसप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो सूत्र यह है. "नैकस्मिन्नसंभवात्" इस सूत्रका भाष्यमें शंकरस्वामीने, सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, आगे लिखेंगे. जब व्यासजीके समयमें जैनमत विद्यमान था, तो फिर व्यास-

स्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, शुक्लयजुर्वेद, शतपथब्राह्मणादिकोंमें जैनमतका नाम नही लिखा; ऐसेंही अन्यवेदोंके बनानेके समयमें भी वेदोंमें जैनमतका नाम विद्यमान था, तो भी नही लिखा. इससें जैनमत, क्या नवीन सिद्ध हो सक्ता है? कदापि नही.

तथा व्यासजीसें पहिलें तो चारों वेदोंकी संहितायोंही नही थी, किंतु ऋषियोंपास यजन याजन करनेकी हिंसक श्रुतियां थी; वे श्रुतियां, और ऋग्वेदके दश (१०) मंडल, जिन जिन ऋषियोंने श्रुतियां रचि हैं, और जिन २ ऋषियोंने तिन श्रुतियांके मंडल बांधे हैं, तिनके नाम ऋग्वेदभाष्यमें प्रकट लिखे हैं. तिन प्रार्थना अश्वमेधादि यज्ञवाली सर्व श्रुतियांकी, चार संहिता, व्यासजीने बांधी और तिनके नाम ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, रक्खे. तिन हिंसक श्रुतियोंमें, वा पुस्तकोंमें अहिंसक जैनधर्मके लिखनेका क्या प्रयोजन था? कदापि लिखा होवेगा तो, निंदारूप लिखा होगा. जैसें यज्ञविध्वंसकारक, राक्षस, वेदबाह्य, दैत्य, इत्यादि।

पूर्वोक्त व्यासजीके कथन करे सूत्रोंसें तो, जैनमत, चारों वेदोंकी संहिता बांधनेसें पहिलें विद्यमान था. क्योंकि, ग्रंथकार जिस मतका खंडन लिखता है, सो मत, तिसके समयमें प्रवल विद्यमान होता है, और ग्रंथकारके मतका विरोधि होता है, तब लिखता है. इससें भी यही सिद्ध होता है कि, जैनधर्म, सर्व मतोंसें पहिला सच्चा मत है.

पूर्वपक्षः—अनेक व्यासजी हो गए हैं, क्या जाने किस व्यासजीने, किस समयमें येह ब्रह्मसूत्र रचे हैं?

उत्तरपक्षः—आर्यावर्त्तके सर्व प्राचीन वैदिकमतवाले तो, जे कृष्णमहाराजके समयमें कृष्णद्वैपायन बादरायण नामसें प्रसिद्ध थे, तिन व्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता मानते हैं, अन्यको नही. और शंकरदिग्विजयमें तो प्रकटपणें वेदव्यासजीकोही ब्रह्मसूत्रोंके कर्त्ता लिखे हैं.

पूर्वपक्षः—व्याससूत्रोंमें यह सप्तभंगीके खंडनेवाला सूत्र, किसीने पीछेसें दाखल करा है.

उत्तरपक्षः–यह कथन तुह्मारा मिथ्या है. क्योंकि, इस कथनके सच्चे करनेवाला तुह्मारे पास कोइ भी प्रमाण नही है.

पूर्वपक्षः–'नैकस्मिन्नसंभवात्' इस सूत्रके अर्थमें जो शंकरस्वामीने सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो अर्थ, इस सूत्रका नही, किंतु अन्य है.

उत्तरपक्षः–वाहजीवाह!! इस कथनसें तो तुमने शंकरस्वामीको अज्ञानी सिद्ध करे कि, जिनोंने अन्यार्थके स्थानमें अन्यार्थ समझा, और लिख दिया. इससें अधिक अन्य अज्ञान क्या होता है? और ऋग्वेदादि चारों वेदोंऊपरी भाष्यकर्त्ता, सायणमाधवाचार्य, अपने रचे शंकरदिग्विजयमें लिखते हैं कि, शंकरस्वामी, मतोंका खंडन करके, और व्याससूत्रोपरि शारीरक भाष्य रचके, बद्रीनाथ केदारनाथ हिमालयके शृंगोपरि गए. तहां व्यासजी आप आए, और शंकरस्वामीको सम्मति दीनी कि, जो तुमने मेरे रचे सूत्रोपरि भाष्य रचा है, सो मेरे अभिप्रायकेसमान है. तथा यह भी व्यासजीने कहा कि, मेरे इन सूत्रोंऊपर कइ जनोंने भाष्य पीछे रचे, और आगेंको कइ जन रचेंगे, परंतु तुमारे भाष्यसदृश कोइ भी नही. क्योंकि, तुम सर्वज्ञ हो. इत्यादि–इस लेखसें भी, सप्तभंगीका खंडन, व्यासजीनेही करा सिद्ध होता है, इसवास्ते वेदसंहितासें पहिलेही, जैनमत विद्यमान था.

तथा महाभारतके आदिपर्वके तीसरे अध्यायमें यह पाठ है.॥

"साधयामस्तावदित्युक्त्वाप्रातिष्ठतोत्तंकस्ते कुंडले गृहीत्वा सोपश्यदथ पथि नग्नं क्षपणकमागच्छंतं मुहुर्मुहुर्दृश्यमानमदृश्यमानं च॥१२६॥"

भावार्थः–इसका यह है कि, उत्तंकनामा विद्यार्थी, उपाध्यायकी स्त्रीकेवास्ते कुंडल लेनेको गया; रस्तेमें पौष्यके साथ वार्त्तालाप हुआ, अन्ननिमित्त उत्तंकने पौष्यको अंधा होनेका शाप दिया, पौष्यने बदलेका शाप दिया कि, तूं अनपत्य (संतानरहित) होवेगा–अंतमें, हम शापाभावका निश्चय करते हैं. ऐसा कहके, कुंडलोंको लेके, उत्तंक चलता भया. तिस अवसरमें मार्गमें, उत्तंक, वारंवार दृश्यमान अदृश्मान, ऐसे, नग्न क्षपणकको आता हुआ, देखता भया.

इस लेखसें भी यही सिद्ध होता है कि, जैनमत वेदसंहितासें भी पूर्व विद्यमान था. क्योंकि 'नग्नक्षपणक' इस शब्दका यह अर्थ है–क्षपणक नाम साधुका है, साथमें 'नग्न' इस विशेषणसें जैनमतका साधु सिद्ध होता है. जैनमतमें दो प्रकारके साधु होते हैं, स्थविरकल्पी, और जिनकल्पी. जिनकल्पी आठ प्रकारके होते हैं. जिनमें केइ जिनकल्पी, ऐसें होते हैं, जे, रजोहरण, मुखवस्त्रिकाके विना, अन्यकोइ वस्त्र नही रखते हैं, और प्रायः जंगलमेंही रहते हैं. तथा टीकाकार नीलकंठजीने भी, क्षपणकपदका अर्थ, पाषंड भिक्षु करा है.

पूर्वपक्षः–आपने जो नग्न क्षपणक पदका अर्थ, जिनकल्पी साधु, ऐसा करके जैनमतकी सिद्धि वेदव्यासजीसें, और वेदसंहितासें पहिलें करी, सो ठीक नही है. क्योंकि, वास्तविकमें वह साधु नही था, किंतु पातालभुवननिवासी नागदेवता था. और यही वर्णन, आगले पाठमें लिखा है.

उत्तरपक्षः–आपका कहना सत्य है, परंतु उस नागदेवताने जो नग्न क्षपणकका रूप धारण किया, सो तिस रूपधारी साधुयोंके विद्यमान हुए विना, कैसें धारण किया? और नग्न क्षपणक यह शब्द भी कैसें प्रवृत्त हुआ? तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत वेदव्यासजीके समयमें तो विद्यमान थाही, परंतु वेदव्यासजीके, और वेदसंहितासें पहिलें भी, विद्यमान था, उत्तंकके देखनेसें.

तथा महाभारतके शांतिपर्वके २१८ अध्यायमें बौद्धमतका खंडन लिखा है, और जैनमत, बौद्धमतसें प्राचीन है, यह आगे सिद्ध करेंगे. तो इससें भी जैनमत वेदसंहिता, और वेदव्यासजीसें पहिलेंका सिद्ध होता है.

तथा मत्स्यपुराणके २४ अध्यायमें ऐसा पाठ है.

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः ।
जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित् ॥

भाषाटीकाः—और उन रजिके पुत्रोंको भी बृहस्पतिजीने उनके पास जाकर मोहा, और आज्ञा दी कि, तुम सब जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. ऐसा कह कर बृहस्पतिजी भी, वेदसें बाह्य मतको चलाते भये, और वेदसेंरहित वेदत्रयी भी बनाते भये.

अब विचारना चाहिये कि, वेदव्यासजीसें प्रथम जैनमतके होनेमें कुछ भी शंका है? तथा इस पाठसें तो, जैनमत, वेदसंहितासें तो क्या, परंतु वेद श्रुतियोंसें भी, पूर्वका सिद्ध हो गया. क्योंकि, बृहस्पतिजीने रजिके पुत्रोंको कहा कि, तुम जैनधर्मके आश्रय हो जाओ. और वेदकी श्रुतियोंमें बृहस्पतिजीकी स्तुति है, तो सिद्ध हुआ कि, वेदकी श्रुतियोंसें बृहस्पतिजी प्रथम हुए. और, जैनधर्म बृहस्पतिजीसें भी, प्रथम हुआ.

पूर्वपक्षः—युक्ति प्रमाणोंसें, और स्वमतपरमतके पुस्तकोंसें तो, तुमने जैनमतको प्राचीन सिद्ध करा. परंतु वर्त्तमानमें जो वेदसंहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषदादि विद्यमान है, तिनमें भी, कोइ ऐसा लेख है, जिससें हम जैनमतको प्राचीन माने?

उत्तरपक्षः—प्रियवर! लेख तो इनमें भी जैनमतबाबतके बहुत मालुम होते हैं, परंतु भाष्यकारोंने कुछ अन्यके अन्यही अर्थ लिख दीए हैं. जैसें दयानंदसरस्वतिस्वामीने वेदोंके स्वकपोलकल्पित अर्थ, अपने वेदभाष्यमें लिखे हैं. तिनमेसें कितनेक पाठ संहिता आरण्यकके लिख दिखाते हैं.

यजुर्वेदसंहिता अध्याय ९ श्रुति ॥ २५ ॥

"॥ वाजस्य नु प्रसव आवभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्द्धमानो अस्मे स्वाहा॥"

नुइत्यादिमहीधरकृतभाष्यकी भाषाः—'नु' ऐसा विस्मयार्थक अव्यय है, 'वाजस्य' अन्नका 'प्रसवः' उत्पादक प्रजापति ईश्वर 'इमा' इमानि 'विश्वा' विश्वानि भुवनानि—सर्वभूतप्राणी सर्वतः सर्वओरसें रहे

हुए, हिरण्यगर्भसें लेके स्तंब (सरकडे) पर्यंत सर्वको जो उत्पन्न करता हुआ है, 'सनेमि' चिरंतन राजा दीपता हुआ, सर्व स्थानोंमें अपनी इच्छासें जाता है. कैसा नेमि राजा? 'विद्वान्' अपने अधिकारको जानता हुआ, तथा हमारेविषे पुत्रादिसंततिको, और धनपोषको वृद्धि करता हुआ, सनेमि सुहुतमस्तु, तिसको आहूति होवे. ॥

अब इसही श्रुतिके भाष्यमें दयानंदसरस्वतिस्वामी ऐसा अर्थ लिखते हैं. ॥

(वाजस्य) वेदादिशास्त्रोंसें उत्पन्न हुए बोधको (नु) शीघ्र (प्रसवः) जो उत्पन्न करता है सो (आ) सर्वओरसें (बभूव) होवे (इमा) यह (च) (विश्वा) सर्व (भुवनानि) मांडलिकराजायोंके निवास करनेके स्थानक (सर्वतः) (सनेमि) सनातननेमिना धर्मेण धर्मकरके सहित वर्त्तमान जो होवे राज्यमंडल (राजा) वेदोक्त राजगुणोंकरके प्रकाशमान (परि) (याति) प्राप्त होता है (विद्वान्) सकल विद्याका जानकार (प्रजाम्) पालने योग्य (पुष्टिम्) पोषणको (वर्धयमानः) (अस्मे) हमारा (स्वाहा) सत्यनीतिकरके ॥

अब पक्षपातरहित होकर पाठक जनोंको विचार करना चाहिये कि, महीधरजीने इसही अध्यायकी सोलमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ क्षिप्र करा है, और पच्चीसमी श्रुतिमें 'सनेमि' शब्दका अर्थ निघंटुके प्रमाणसें पुराणनाम तिसका अर्थ चिरंतन राजा करा है. दयानंदसरस्वतिजीने इस 'नेमि' शब्दका अर्थ सनातन धर्म करा है. अब इनमेंसें कौनसा अर्थ सत्य है? और कौनसा मिथ्या है? यह निश्चय, कदापि न होवेगा. क्योंकि, नेमिशब्दकी व्युत्पत्तिसें पूर्वोक्त तीनों अर्थोंमेंसें एक भी, नही निकलता है. इसवास्ते वेदोंकी श्रुतियोंके अर्थ, ठीकठीक प्रायः नही मालुम होते हैं. सो, प्रायः लिखही आये हैं. विशेषतः इस श्रुतिका अर्थ, जैसा पूर्वे लिखा है, वैसा घटमान भी नही लगता है, यथार्थ अभिप्रायके न ज्ञात होनेसें.

पूर्वपक्षः—आपके अभिप्रायमुजब इस श्रुतिका कैसा अर्थ होना चाहिये?

उत्तरपक्षः–हमारे अभिप्रायमुजब तो, इस श्रुतिका अर्थ, श्रीनेमि (२२) बावीसमे तीर्थंकरकी स्तुतिकरके तिनको आहुति दीनी है. यथा– (नु) विस्मयार्थमें है (वाजस्य) भावयज्ञस्य–भावयज्ञका * (प्रसवः) उत्पत्तिकारक, जिनकी प्ररूपणासें भावयज्ञ उत्पन्न हुआ है. क्योंकि, जो भावयज्ञ है, सोही पारमार्थिक यज्ञ है. भावयज्ञका स्वरूप ऐसा है.।

"॥ अग्निहोत्रमग्निकारिका सा चेह। कर्मैधनं समाश्रित्य दृढा सद्भावनाहुतिः। कर्मध्यानाग्निना कार्या दीक्षितेनाग्निकारिका ॥१॥"

भावार्थः–कर्मरूप इंधनको आश्रित्य अर्थात् कर्मरूप इंधनकरके दृढ-निश्चलसत् अच्छीभावनारूप आहुति, धर्मध्यानरूप अग्निकरके करणी. ऐसी अग्निकारिका, दीक्षित ब्राह्मणने करणी.। इत्यादि भावयज्ञका कथन, आरण्यकमें है.

तथा ॥

इंद्रियाणी पशून् कृत्वा वेदीं कृत्वा तपोमयीम् ॥
अहिंसामाहुतिं कृत्वा आत्मयज्ञं यजाम्यहम् ॥ १ ॥
ध्यानाग्निकुंडजीवस्थे दममारुतदीपिते ॥
असत्कर्मसमित्क्षेपे अग्निहोत्रं कुरुत्तमम् ॥ २ ॥
यूपं कृत्वा पशून् हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ॥
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥ ३ ॥

भावार्थः–इंद्रियोंको पशूकरके, तपोमयी वेदीकरके, अहिंसाको आहुतिकरके, आत्मयज्ञको, मैं करता हूं. वास्तविक यज्ञ तो यही है; बाकी, अनाथ पशुकों मारके यज्ञ करना, यह मोक्षार्थी पुरुषोंका काम नही है. महाभारतके शांतिपर्वके २६६ अध्यायमें भी, हिंसक

* श्रीमत्हेमचंद्रसूरिने नानार्थद्वितीयकांडमें वाजनाम यज्ञका लिखा है। तथा पंडित भानुदत्तविशारदने शब्दार्थभानुके २८४ पृष्ठोपरि वाजशब्दका अर्थ यज्ञ लिखा है। तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचितशब्दस्तोममहानिधिमें भी १०११ पत्रोपरि लिखा है ॥

यज्ञको धूर्त्तनिर्मित कहा है. । ध्यानरूप अग्नि है जिसमें, ऐसें जीवरूपकुंडमें, दमरूप पवनकरके दीपित अग्निमें, असत्कर्मरूप काष्ठके क्षेपन करे हुए, उत्तम अग्निहोत्र कर. । यूप करके, पशुयोंको मारके, रुधिरका कर्दम (चिक्कड) करके, यदि स्वर्गमें जाइए-गमन करिये, तो नरकमें किस कर्मकरके गमन करिये ! ! ! ॥ तथा जैनसिद्धांतमें भावयज्ञका स्वरूप, ऐसा कहा है. । यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंको, हरिकेशबलमुनि यज्ञका स्वरूप कहते हैं. । हिंसा १, मृषावाद २, अदत्तादान ३, मैथुन ४, परिग्रह ५, ये पांचो आश्रवद्वारोंको, पांच संवर, प्राणातिपातविरत्यादिव्रतोंकरके, इस नरभवमें आच्छादन करे—रोके; असंयमजीवितव्यकी इच्छा न करे, देहका ममत्व त्यागे, शुचि महाव्रतोंमें मलीनता न होवे, यह भावयज्ञ है. इसको यतिजन करते हैं. ।

ब्राह्मण पूछते हैं कि, हे मुने! इस भावयज्ञके करनेके उपकरण कौनसें हैं ? यज्ञ करनेका विधि क्या है? भावयज्ञ जो तेरे मतमें है, तिसमें अग्नि कैसा है ? अग्निके रहनेका स्थान कौनसा है ? शुचः घृतादिप्रक्षेप करनेवाली कडच्छी—चाटुआ कौनसा है? करीषांग कौनसा है ? अग्निका उद्दीपक जिसकरके अग्निको संधु खाते हैं, सो क्या है ? इंधन कौनसें हैं? जिनोंकरके अग्नि प्रज्वालिये हैं. । दुरितके उपशमन करनेका हेतु, ऐसा शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप कौनसा है ? और हे मुने ! तूं किस विधिसें आहुतियोंकरके अग्निको तर्पण करता है ?

मुनि उत्तर देते हैं ॥

"॥ तवो जोई जीवो जोईठाणं जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मं संजमजोगसंति होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥"

भावार्थः—बाह्य अभ्यंतरभेदभिन्न बारां प्रकारका जो तप है, सो अग्नि है, भावेंधन कर्म दाहक होनेसें. जीव है, सो अग्निके रहनेका स्थान है; तपरूप अग्निका आश्रय जीव होनेसें. मन, वचन, कायारूप तीनों योग जे हैं, वे शुच है; तिन्होंकरकेही, घृतस्थानीय शुभव्यापार होते हैं.

शरीर करीषांग है, तिसकरकेही तपरूप अग्निको दीपन करिये हैं, तद्भावभावित होनेसें तिसको. ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म, इंधन है, तिस कर्मकोही तप करके भस्मीभाव करनेसें. जे संयम योग हैं, संयमके व्यापार हैं, वेही शांतिपाठ अध्ययनपद्धतिरूप हैं, सर्व प्राणियोंके विघ्नोंको दूर करनेवाले होनेसें. जीवहिंसारहित होनेसें, जो होम, सर्वऋषियोंको प्रशस्त है, तिस होमकरके तपरूप अग्निको, मैं तर्प्पण करता हूं. । यह भावयज्ञ अरिहंतके उपदेशसेंही प्रकट हुआ है, अन्यसें नही. यह आश्चर्य है. । (इमा) इमानि (विश्वा) विश्वानि सर्वाणि (भुवनानि) भूतानि और जो इन सर्वभूतजीवोंको (सर्वतः) सर्वओरसें (आवभूव) यथार्थस्वरूप कथन करनेसें प्रकट करता हुआ (सनेमि) सो नेमि वावीसमा जिनतीर्थंकर * (राजा) अपने घातिकर्मचारके नष्ट करनेसें, और केवलज्ञानादि शुद्ध स्वरूपसें दीपता हुआ (परियाति) सर्वओरसें अप्रतिबद्ध विहारी होके जाता है—देशोंमें विचरता है. कैसा है नेमि (विद्वान्) सर्वज्ञ है, मेरे कथन करे धर्मका यह रहस्य है, और इस हेतुसें मैनें जगतको उपदेश करना है, ऐसे अपने अधिकारको जानता है. तथा (प्रजां—पोषं—वर्धयमानः) प्रकर्षेण जायंते कर्मवशवर्त्तिनः प्राणिनोस्मिन् जगति इति प्रजा जीवसंघात इत्यर्थः तिसकी दयाके उपदेशसें, और धर्मकी पुष्टिकी वृद्धि करनेवाला (अस्मे) अस्मै नेमये—इस नेमिको हुत होवे अर्थात् आहुति होवे। इति ॥

तथा तैत्तिरीय आरण्यकके प्रथम प्रपाठकके प्रथमानुवाककी आदिमें शांतिकेवास्ते मंगलाचरण करा है, तिसमें ऐसा पाठ है । '। स्वस्तिनस्तार्क्ष्योअरिष्टनेमिः। ' इसका भाष्यकारने ऐसा अर्थ करा है. । अरिष्टम् अहिंसा तिसको नेमीस्थानीयः नोमिसमान, जैसें लोहमयी नेमि काष्ठमय चक्रके भंगाभावकेवास्ते होती है, अर्थात् चक्रकी रक्षा करती है; ऐसेंही यह तार्क्ष्यः—गरुड भी सर्पादिकोंकी करी हुई हिंसाको निवारण करके, तिस-

* नमिर्नेमिः पार्श्वो वीरः इतिश्रीमद्धेमचंद्रविरचितायामभिधानचिंतामणिनाममालायाम् ॥ तथा शब्दार्थभानुके १९५ पत्रोपरि । नेमिः (पु.) जिनविशेष, एक जिनका नाम ॥

का पालक होनेसें, अरिष्टनेमि है. ऐसा गरुड हमको कल्याण निरुपद्रव करो.। यह भाष्यकी व्याख्या, असमंजस मालुम होती है. क्योंकि, प्रथम तो, गरुड पक्षी, तिर्यंचजाति है; सो कल्याण, शांति, निरुपद्रव, कैसें कर सकता है?

पूर्वपक्षः—गरुड विष्णुका वाहन है, इसवास्ते बडा सामर्थ्यवाला है; सो कल्याण शांति कर सकता है.

उत्तरपक्षः—तब तो वाहनकी स्तुतिसें विष्णुकीही स्तुति करनी उचित थी. क्योंकि, वो तो, कदापि सर्व सामर्थ्यवाला होनेसें कल्याण शांति कर सकता है, परंतु पक्षी नही. तथा अरिष्टनेमिरूप विशेषण रखके जो अर्थ चक्रकी नेमिका करा है, सो भी, अघटितही मालुम होता है. क्योंकि, विष्णुआदि अनेक पुरुष रक्षक माने हैं, तिन सर्वको छोडके उपमामें लोहमय नेमिको जा पकडा! जैसें कोइ कहें कि, सुवर्ण कैसा पीत है, जैसा सरसव शणका पुष्प तैसा है. यह तो उपमा ठीक है. परंतु जो कोइ कहे कि, सुवर्ण ऐसा पीत है, जैसा निःकेवल स्तनपान करनेवाले बालकका पुरीष पीत होता है, यह उपमा अघटित है. ऐसाही चक्रकी नेमिका विशेषण है; इसवास्ते यह सत्यार्थ नही मालुम होता है.

पूर्वपक्षः—आप इसका अर्थ कैसें कर सकते हैं?

उत्तरपक्षः—अरिष्टनेमिः यह विशेष्य है, और तार्क्ष्यः यह विशेषण है; कहीं कहीं विशेष्य, विशेषण, आगे पीछे भी होते हैं.। तब तो, तार्क्ष्यःसमान अरिष्टनेमि, हमको कल्याण—शांति करो। तहां अरिष्टनेमिपदका यह अर्थ है.। '।धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमिः।' धर्मरूप चक्रकी नेमिसमान, जैसें नेमि चक्रकी रक्षा करे हैं—बिगडने नही देवे हैं, तैसेंही भगवान् बावीसमे—धर्म अरिष्ट अहिंसा निरुपद्रवरूप तिसके पालनेवास्ते नेमिसमान, सो कहिये अरिष्टनेमिः; सो अरिष्टनेमि, तार्क्ष्यो—गरुडसमान है.। जहां जहां गरुड संचार करता है, तहां तहां सर्पादिकोंके विषादि उपद्रवोंका नाश होता है, तैसेंही अरिष्टनेमि बावीसमा अरिहंत विचरता है, तहां इति

उपद्रवादि नाश हो जाते हैं; इसवास्ते तार्क्ष्य अरिष्टनेमि भगवान् हमको कल्याण–शांति करो. । इति ।

दूसरा अर्थ रिष्टनाम पाप उपद्रवका है, तिसके काटनेवास्ते नेमि चक्रकी धारासामान, सो कहिये रिष्टनेमि; अकार, रिष्टशब्द अमंगलवाचक होनेसें लगाया है.। यथा अपच्छिमा मारणंतिसंलेहणा । तथा तित्थयराणं अपच्छिमो इत्यादिवत् । शेषार्थ पूर्ववत् जानना ॥ येह दोनों अर्थ सम्यक् प्रकारसें घट सकते हैं. इसतरेंकी अनेक श्रुतियां सामवेदादि संहिताओंमें हैं, तहां भी, इसी रीतिसें अर्थोंकी घटना करलेनी ।

पूर्वपक्षः–अन्य सर्व तिर्थंकरोंको छोडके, 'श्रीनेमि' और 'अरिष्टनेमि' इन दोनों नामोंसें बावीसमे अर्हन् अरिष्टनेमिकी स्तुति वेदमें करनेका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरपक्षः–जिस समयमें वेदोंकी संहिता बांधी गइ थी, शुक्ल यजुर्वेद और यजुर्वेदके ब्राह्मण, आरण्यक, रचे गये थे, तिस समयमें श्री अरिष्टनेमि २२ मे अरिहंत विद्यमान थे. और श्रीकृष्ण वासुदेवके ताए समुद्रविजयके पुत्र थे. तिनोंने संसार त्यागके दीक्षा लेके, केवलज्ञान उत्पन्न करके, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तन करा. और श्रीकृष्ण वासुदेवजीने जिनकी भक्ति और मुनियोंको वंदना करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करा, जिसके प्रभावसें आगामि उत्सर्प्पिणीकालमें अमम नामा अरिहंत होके निर्वाणपदको प्राप्त होवेंगे. ऐसे अरिष्टनेमि भगवान्की तिन वेदोंमें स्तुति करनी असंभव नही है.

तथा तैत्तिरीय आरण्यक प्र० ४, अ० ५, मंत्र १७ मेमें प्रकटकरके अरिहंतकी स्तुति करी है.

यथा ॥

अर्हन् बिभर्षि सायकानिधन्व अर्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपं ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमब्भुवं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

व्याख्याः–हे अर्हन्! हे रुद्र! रोदयत्यसुरावतारभूतान् नृपान् वैदिकयज्ञादिकर्म्मानुष्ठानध्वंसनेनेति रुद्रः। सो हे रुद्र! तुम (अर्हन्) योग्यतासें विमोहनात्मक शास्त्ररूपी (सायकान्) बाणोंको (बिभर्षि) धारण करते हो तथा (धन्व) अर्थात् पुरुषार्थरूप धनुषको भी धारण करते हो और (हे अर्हन्) अपनी योग्यताहीसें (यजतं) अर्थात् पूजाके साधन (विश्वरूपम्) नानाप्रकारके मंत्रयंत्रादि धारण करते हो तथा (निष्कम्) नानाप्रकारके स्वर्णमय भूषणोंको (बिभर्षि) धारण करते हो और तैसेंही (विश्वम् अबूभुवम्) संपूर्ण जल और पृथिवीमें जो जीतने जीव हैं तिनको (दयसे–मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि) इत्यादि वेदवाक्यानुकूल दयाकरके पालन करते हो इसीकारणसें (हे रुद्र) (त्वत्) तुह्मारे समान (ओजीयो) बलवान् (नवै अस्ति) कोई नहीं है, इससें आप हमारी भी रक्षा कीजिये–यहां जो कोई यह शंका करे कि मंत्रमें तो (अर्हन् विभर्षि सायकानिधन्व) इससें मोहनादि शास्त्रोंका धारण नही पाया जाता (सायक) पदसें तो बाणोंकाही धारण पाया जाता है सो कहना ठीक नही. क्योंकि, कुछ अर्हन्मतानुयायी आजकल भी बडे यत्नसें जीवरक्षा करते हैं, तो फिर, उनसें धनुषबाणका धारण करना कैसें घट सकता है? कदापि नहीं. इससें यह जानना चाहिये कि, फिर जो इनको सायक और धनुषका धारण लिखा है, सो केवल प्रशंसार्थक है, वास्तवमें नही. सो इसी आरण्यकके प्र० ५, अनु० ४ में लिखा है।

यथा ॥

"॥ अर्हन् बिभर्षिसायकानिधन्वेत्याह स्तौत्येवैनमेतत् ॥"

यह अर्हन् भगवान्में जो (बिभर्षिसायकानिधन्व) यह लिखा है, सो (स्तैत्येवैनमेतत्) यह केवल स्तुतिमात्रही है, वास्तवमें नहीं. इससें विमोहनात्मक शास्त्रास्त्रोंका धारण अर्थ करनाही उचित है, अन्य नहीं.। इति ॥ इस मंत्रमें रुद्र, शिव, महावीर (हनुमान्), आदि किसीका भी अर्थ नही घट सकता है. क्योंकि, वे तो, सर्व शस्त्रधारीही है, और इस मंत्रमें तो, जो शस्त्रधारी नही है, तिसको शस्त्रधारी कहा है; जिसका

शंकासमाधान लिख आए हैं. तथा तैत्तिरीय आरण्यकके १० मे प्रपाठकके अनुवाक ६३ में सायनाचार्य लिखते हैं.।

यथा ॥

" ॥ कंथाकौपीनोत्तरासंगादीनां त्यागिनो यथाजातरूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहाः ॥ " इति संवर्त्तश्रुतिः ॥

भावार्थः-शीतनिवारणकंथा, कौपीन, उत्तरासंगादिकोंके त्यागि, और यथा जातरूपके धारण करनेवाले, जे हैं, वे, निर्ग्रंथ, और निष्परिग्रह, अर्थात् ममत्वकरके रहित होते हैं. यह लक्षण उत्कृष्ट जिनकल्पिका है. क्योंकि निर्ग्रंथ जो शब्द है, सो जैनमतके शास्त्रोंमेंहि साधुपदका बोधक है, अन्यत्र नहीं. और अंग्रेज लोकोंने भी, यह सिद्ध करा है कि, 'निर्ग्रंथ' शब्द जैनमतके साधुयोंकाही वाचक है. बौद्धलोकोंके शास्त्रमें भी 'निग्गंथनातपुत्त' अर्थात् निर्ग्रंथज्ञातपुत्र इस नामसें जैनमतके २४ मे वर्द्धमान महावीरस्वामिको कथन करे हैं. और जैनमतके शास्त्रमें तो, ठिकाने २ 'नो कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-कप्पइ निग्गंथाण वा निग्गंथीण वा-निग्गंथाण महेसीणं'-इत्यादि पाठ आवे हैं. तथा प्रायः-करके पूर्वकालमें जैनमतके साधुयोंको निर्ग्रंथही कहते थे, और सुधर्मास्वामी, जो श्रीमहावीरस्वामीके पांचमे गणधर हुए, उनोंकी शिष्यपरंपरामें जे साधु हुए, वे कितनेक कालपर्यंत निर्ग्रंथगच्छके साधु कहाते थे; पीछे कारण प्राप्त होकर तिस निर्ग्रंथगच्छका और नाम प्रसिद्ध हुआ, यावत् अद्यतन कालमें तपगच्छादि गच्छोंके नामसें कहे जाते हैं. तथा सिद्धांतसारमें मणिलाल नभुभाइ द्विवेदी भी लिखते हैं कि, ब्राह्मणोंके प्राचीन ग्रंथोंमें 'जैन' ऐसा नाम नही आता है; परंतु, विवसन, निर्ग्रंथ, दिगंबर, ऐसा नाम वारंवार आता है. इससें भी निर्ग्रंथशब्द, जैनमतानुयायी सिद्ध होता है. तब तो सिद्ध हुआ कि, जैनमत, श्रुतिस्मृतिसें भी प्राचीन है. तथा पूर्वोक्त हमारा लेख, "क्या जाने, कौनसी शाखामें क्या लिखा है?" इत्यादि सत्य हुआ. तबतो, कोइ भी कहनेको सामर्थ्य नही है कि, जैनमत नूतन है, वा जैनमतका वेदादिकोंमें नाम भी नही है.

पूर्वपक्षः—कितनेक सुज्ञजन कहते और लिखते हैं कि, जैनमतवालोंके, जे जे, वेदबाबत लेख हैं, वे सर्व, द्वेषबुद्धिपूर्वक मालुम होते हैं, सो कैसें है?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर! जो जो वेदोंमें निवृत्तिमार्गका कथन है, सो सर्व जैनमतवालोंको सम्मत है. क्योंकि, जो जो युक्तिप्रमाणसें सिद्ध, संसारसें निवृत्तिजनक, और वैराग्यउत्पादक वाक्य, वेद, उपनिषद, ब्राह्मण, आरण्यक, स्मृति, पुराणदिकोंमें हैं, वे सर्व सर्वज्ञ भगवान्के वचन हैं. इस कथनमें श्रीसिद्धसेनदिवाकर, और श्रीभोजराजाका पंडित श्रीधनपालजी लिखते हैं।

यथा ॥

सुनिश्चितं नः परतंत्रयुक्तिषु स्फुरंति याः कश्चन सूक्तिसंपदः ॥
तवैव ताः पूर्वमहार्णवोत्थिता जगत्प्रमाणं जिनवाक्यविप्रुषः॥१॥
उदधाविव सर्वसिंधवः समुदीरणास्त्वयि नाथ दृष्टयः ॥
न च तासु भवान् दृश्यते प्रविभक्तसरित्स्विवोदधिः ॥ २ ॥
पावंति जसं असमंजसावि वयणेहिं जेहिं परसमया ॥
तुहसमयमहोअहिणो ते मंदा बिंदुनिस्संदा ॥ ३ ॥

भावार्थः—हे नाथ! हमने यह निश्चित किया है कि, परतंत्रयुक्तियोंमें अर्थात् परमतके शास्त्रोंमें जे केई सूक्तिसंपदा, श्रेष्ठ वचन रचना हैं, वे सर्व, हे जिन! तुमारेहि चतुर्दशपूर्वरूप महासमुद्रसें उठे हुए, वाक्यबिंदु हैं.। तथा हे नाथ! जैसें समुद्रमें सर्व नदीयें प्रवेश करती हैं, तैसें तुमारेविषे सर्व दृष्टियें प्रवेश करती हैं, परंतु तिन दृष्टियोंकेविषे आप नहीं दीखते हो. जैसें पृथक् २ हुई नदीयोंकेविषे समुद्र नही दीखता है. अर्थात् समुद्रमें सर्व नदीयें समा सक्ती हैं, परंतु समुद्र किसी भी एक नदीमें नहीं समा सक्ता है; ऐसेंही सर्व मत नदीयेंसमान है, वे सर्व तो, स्याद्वादसमुद्ररूप तेरे मतमें समा सक्ते हैं; परंतु हे नाथ! तेरा स्याद्वादसमुद्ररूप मत, किसी मतमें भी संपूर्ण नहीं समा सक्ता है.। हे नाथ! असमंजस भी जे परसमय, जैनमतके विना अन्यमतके शास्त्र, जगत्में जिन

वचनोंसें यशको प्राप्त करे हैं, वे सर्व वचन, तुमारे स्याद्वादसिद्धांतरूप समुद्रके मंद थोडेसें बिंदुनिस्संद बिंदुओंसें झरे हुए पाणीसदृश है; अर्थात् वे सर्व वचन स्याद्वादरूप महोदधिके बिंदु उडके गए हैं. ॥ इसवास्ते पूर्वोक्त वेदादिवचन जैनोंको सर्व प्रमाण हैं; परंतु जे हिंसक, और अप्रमाणिक वचन हैं, वे सर्व, जैनोंको सम्मत नहीं हैं, असर्वज्ञ मूलक होनेसें. ।

यथा मनुस्मृतौ पंचमाध्याये ॥

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ॥
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ३९ ॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृदैवतकर्मणि ॥
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीन्मनुः ॥ ४१ ॥
एष्वर्थेषु पशून् हिंसन् वेदतत्त्वार्थविद् द्विजः ॥
आत्मानं च पशुं चैव गमयत्युत्तमां गतिम् ॥ ४२ ॥
या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिंश्चराचरे ॥
अहिंसामेव तां विद्याद्वेदाद्धर्मो हि निर्बभौ ॥ ४४ ॥

भावार्थः—स्वयंभु परमात्माने आप यज्ञकेवास्ते पशुयोंको उत्पन्न करे हैं, सर्व यज्ञकी भूतिकेवास्ते, तिसवास्ते, यज्ञमें जो बध है, सो, अवध है, अर्थात् वध नहीं है. । ३९ । मधुपर्कमें, यज्ञमें, पितृकर्ममें, दैवतकर्ममें, इनमेंही पशुयोंको मारने; अन्यत्र नहीं. ऐसें मनुजी कहते हैं. । ४१ । इन पूर्वोक्त कार्योंमें पशुयोंको मारता हुआ, वेदतत्त्वार्थका जानकार ब्राह्मण, आत्माको, और पशुको, उत्तम गतिमें प्राप्त करता है. । ४२ । जो वेदकथित हिंसा इस चराचर जगत्में नियत करी है, तिसको अहिंसाही जानो. क्योंकि, वेदसेंही धर्म दीपता है. । ४४ । इत्यादि हिंसक श्रुतियांऊपरही जैनोंका आक्षेपहै; इन आक्षेप वचनोंकोंही, कितनेक वैदिकमतवाले द्वेषयुक्त वचन कहते हैं. क्योंकि, उनको वैदिकमतके पक्षपातसें यथार्थ वचन भी, द्वेषयुक्त मालुम होते हैं. परंतु पक्षपात छोडके

विचार करे तो सर्व सत्य २ वचन प्रतीत होते हैं, योगजीवानंदसरस्वति स्वामीवत्.

पूर्वपक्षः–ऐसे महात्मा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामीजी कौन है ?

उत्तरपक्षः–संवत् १९४८ आषाढ सुदि १० मीका लिखा, एक पत्र, गुजरांवाले होके हमारेपास आज्ञापट्टीमें पहुंचा. तिस पत्रको वांचके हमने तिस लिखनेवाले निःपक्षपाती और सत्यके ग्रहण करनेवाले, महात्माकी बुद्धिको, कोटिशः धन्यवाद दीया, और तिसके जन्मको सफल माना. सो असलीपत्र तो, हमारे पास है; तिसकी नकल, अक्षर २, हम यहां भव्यजन पाठकोंके वाचनेवास्ते दाखिल करते हैं. ॥

"॥ स्वस्ति श्रीमज्जैनेंद्रचरणकमलमधुपायितमनस्क श्रीलश्रीयुक्तपरिव्राजकाचार्य परमधर्मप्रतिपालक श्रीआत्मारामजी तपगच्छीय श्रीन्मुनिराज । बुद्धिविजयशिष्यश्रीमुखजीको परिव्राजकयोगजीवानंदस्वामीपरमहंसका प्रदक्षिणत्रयपूर्वक क्षमाप्रार्थनमेतत् ॥ भगवन् व्याकरणादि नानाशास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनद्वारा वेदमत गलेमें वांध मैं अनेक राजा प्रजाके सभाविजय करे देखा व्यर्थ मगज मारना है । इतनाही फल साधनांश होता है कि राजेलोग जानते समझते हैं फलाना पुरुष वडा भारी विद्वान् है परंतु आत्माको क्या लाभ हो सकता देखा तो कुछ भी नहीं। आज प्रसंगवस रेलगाडीसें उतरके वठिंडा राधाकृष्णमंदिरमें वहुत दूरसें आनके डेरा कीया था सो एक जैनशिष्यके हाथ दो पुस्तक देखे तो जो लोग (दो चार अच्छे विद्वान् जो मुझसे मिलने आये) थे कहने लगे कि ये नास्तिक (जैन)ग्रंथ है इसे नही देखना चाहिये अंत उनका मूर्खपणा उनके गले उतारके निरपेक्ष बुद्धिके द्वारा विचारपूर्वक जो देखा तो वो लेख इतना सत्य वो निष्पक्षपाती लेख मुझे देख पडा कि मानो एक जगत् छोडके दूसरे जगत्में आन खडे हो गये ओ आबाल्यकाल आज ७० वर्षसें जो कुछ अध्ययन करा वो वैदिक धर्म वांधे फिरा सो व्यर्थसा मालूम होने लगा जैनतत्त्वादर्श वो अज्ञानतिमिरभास्कर इन दोनों ग्रंथोंको तमामरात्रिंदिव मनन करता वैठा वो ग्रंथकारकी प्रशंसा वखानता वठिंडेमें वैठा हूं । सेतुवंधरामेश्वर-

यात्रासे अब मैं नैपालदेश चला हूं परंतु अब मेरी ऐसी असामान्य महती इच्छा मुझे सताय रही है कि किसी प्रकारसे भी एकवार आपका मेरा समागम वो परस्परसंदर्शन हो जावे तो मैं कृतकर्म्मा होजाउं॥ महात्मन् हम संन्यासी है। आजतक जो पांडित्यकीर्त्तिलाभद्वारा जो सभाविजयी होके राजा महाराजोंमें ख्यातिप्रतिपत्ति कमायके एकनाम पंडिताईका हांसल करा है। आज हम यदि एकदम आपसे मिले तो वो कमायी कीर्त्ति जाती रहेगी ये हम खूब समझते वो जानते हैं परंतु हठधर्म्म भी शुभ परिणाम शुभ आत्माका धर्म्म नही। आज मैं आपके पास इतनामात्र स्वीकार कर सकता हूं कि प्राचीन धर्म्म परम धर्म अगर कोई सत्य धर्म रहा हो तो जैनधर्म्म था जिसकी प्रभा नाश करनेको वैदिक धर्म्म वो षट् शास्त्र वो ग्रंथकार खडे भये थे परंतु पक्षपातशून्य होके कोई यदि वैदिक शास्त्रोंपर दृष्टि देवे तो स्पष्ट प्रतीत होगा कि वैदिक वातें कही वो लीई गई सो सब जैनशास्त्रोंसे नमूना इकठी करी है। इसमें संदेह नही कितनीक वातें ऐसी हैं कि जो प्रत्यक्ष विचार करेविना सिद्ध नही होती हैं। संवत् १९४८ मिती आषाढ सुदि १०॥

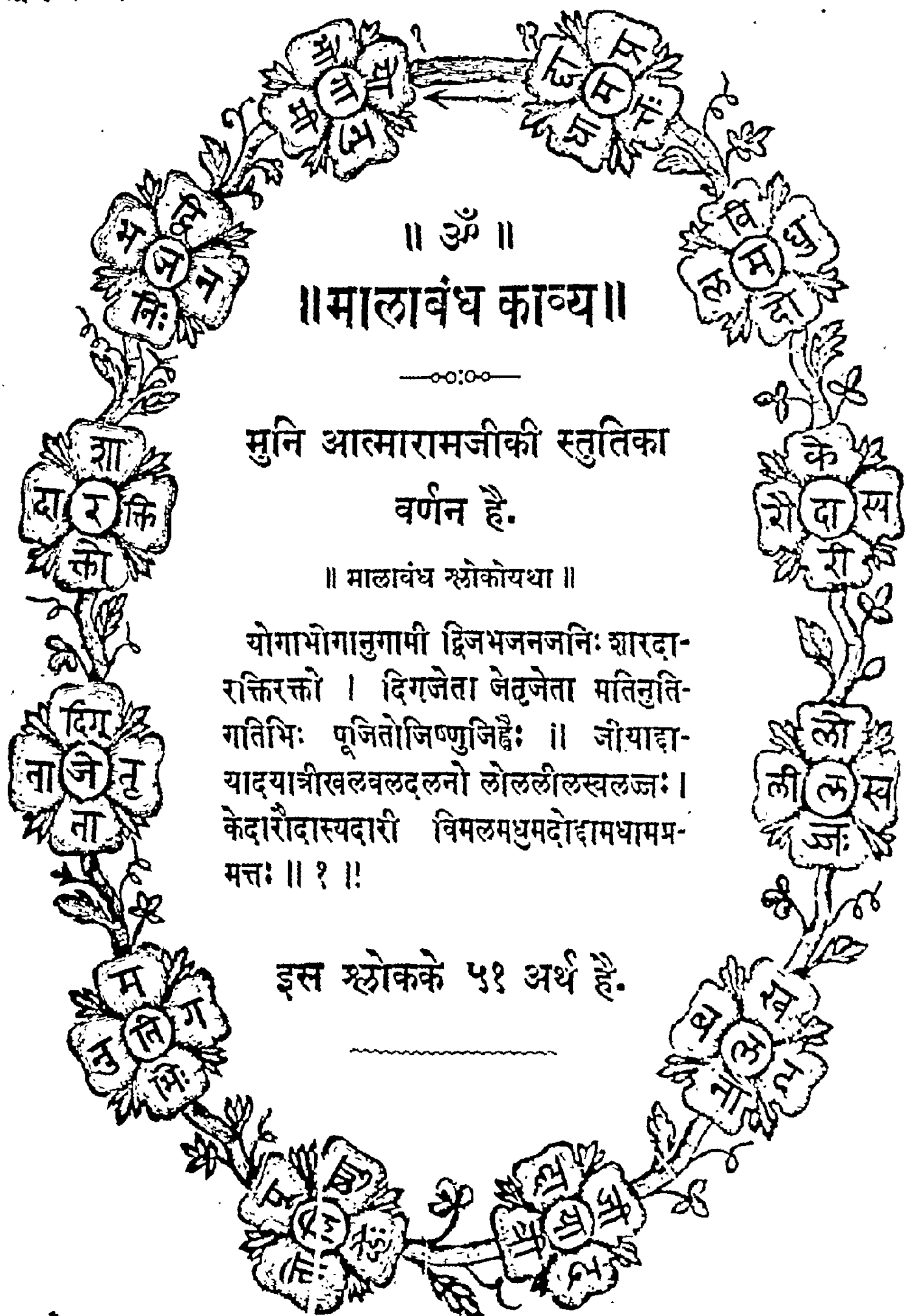
पुनर्निवेदन यह है कि यदि आपकी कृपापत्री पाइ तो एकदफा मिलनेका उद्यम करुंगा। इति योगानंदस्वामी। किंवा योगजीवानंदसरस्वतिस्वामि॥

मालाबंधश्लोकोयथा॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो।
दिग्जेता जेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितो जिष्णुजिह्वैः॥
जीयादायादयात्री खलबलदलनो लोललीलस्वलज्जः।
केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोद्दामधामप्रमत्तः॥ १॥

इस श्लोकके सब अर्थ जैनप्रशंसा वो श्रीआत्मारामजीकी विभूतिकी प्रशंसा निकले है, प्रत्येक पुष्पोंके वीचका जो अक्षर है वो तीनवार एक अक्षरको कहना चाहिये ऐसा काव्य दश वीस श्लोक वनायके जरूर

चाहता था कि जैनतत्त्वादर्श वो अज्ञानतिमिरभास्करमें जैनदेव प्रशंसा होनी चाहेती थी। एकवार आपको मिलनेवाद अपना सिद्धांतका निश्चय फिर करना बने तो देखी जायगी ॥"



॥ ॐ ॥

॥मालावंध काव्य॥

मुनि आत्मारामजीकी स्तुतिका वर्णन है.

॥ मालावंध श्लोकोयथा ॥

योगाभोगानुगामी द्विजभजनजनिः शारदारक्तिरक्तो। दिगजेता जेतृजेता मतिनुतिगतिभिः पूजितोजिष्णुजिद्वैः ॥ जीयाद्यादयात्रीखलवलदलनो लोललीलस्वलज्जः। केदारौदास्यदारी विमलमधुमदोद्दामधामप्रमत्तः ॥ १ ॥

इस श्लोकके ५१ अर्थ है.

यह लेख उनका एक कागजके टुकडेमें अलग था॥ यह सर्व लेख पूर्वोक्त महात्माका है ॥ अब विचार करना चाहिये कि, इस कालमें

वैदिकमतवाले जैनमतको द्वेषबुद्धिसें नास्तिक कहते हैं, और महाविद्वान् परमहंस परिव्राजकजी निःपक्षपाती सद्बुद्धिवाले जैनमतकी वावत कैसा विचार रखते हैं!! इससें हे प्रियवरो! जैनाचार्योंने जो जो वेदवावत लेख लिखे हैं, वे सर्व यथार्थ तत्त्वके बोधवास्ते लिखे हैं, न तु द्वेषबुद्धिसें. और द्वेषयुक्त भी, मताग्रही पुरुषोंकोही मालुम होते हैं, नतु पक्षपातरहित पुरुषोंको. ॥

पूर्वपक्षः—जैनमतमें प्राचीन व्याकरण तर्कशास्त्र नहीं है, इससें जैनमत प्राचीन नहीं है. ऐसे कितनेक कहते हैं तिसका क्या उत्तर है?

उत्तरपक्षः—संप्रतिकालमें जो पाणिनीय अष्टाध्यायी व्याकरण है, तिससें तो जैनके व्याकरण प्राचीन है. क्योंकि, पाणिनीय व्याकरणके कर्त्ता पाणिनी, नवमे नंदके समयमें हुए हैं. सो पाणिनी, अपने रचे व्याकरणमें कहते हैं, यथा—" त्रिप्रभृतिषु शाकटायनस्य" और शाकटायनके कर्त्ता, तथा न्यासके कर्ता, शाकटायन और न्यासकी आदिसें मंगलाचरणमें ऐसें लिखते हैं.

" ॥ शाकटायनोपि यपयापनाय यतिग्रामाग्रणीः स्वोपज्ञशब्दानुशासनवृत्तावादौ भगवतः स्तुतिमेवमाह । श्रीवीरममृतं ज्योतिर्नत्वादिसर्ववेदसाम् । अत्र च न्यासकृता व्याख्या । सर्ववेदसां सर्वज्ञानानां स्वपरदर्शनसंबंधिसकलशास्त्रानुगतपरिज्ञानानामादिप्रभवमुत्पत्तिकारणमिति ॥ "

यह पाठ नंदिसूत्रवृत्तिमें है।

न्यासकी भाषाः—(सर्ववेदसाम्) सर्वप्रकारके ज्ञानोंका स्वपरदर्शनसंबंधी सकलशास्त्रानुगत परिज्ञानोंका (आदिप्रभवम्—प्रथमम्) पहिला उत्पत्तिकारण, ऐसे श्रीवीरं अर्थात् श्रीमहावीरको नमस्कार करके, कैसें श्रीमहावीरको (अमृतज्योतिम्)।

इससें सिद्ध होता है कि, पाणिनीसें पहिलेके शाकटायन और न्यासकर्त्ता जैनमती थे.।* तथा जैनेंद्र व्याकरण और इंद्रव्याकरण, येभी पाणिनीसें

* प्रसिद्धकर्ताकी प्रस्तावना देखो.

पहिले रचे गये हैं. और चतुर्दशपूर्वमें शब्दप्राभृत १, नाट्यप्राभृत २, वाद्य-प्राभृत ३, संगीतप्राभृत ४, स्वरप्राभृत ५, योनिप्राभृत ६, इत्यादि सर्वजगत्की विद्याके प्राभृत थे. तिनमेसें शब्दप्राभृतमें सर्व शब्दोंके रूपोंकी सिद्धि थी, नाट्यप्राभृतमें सर्व नाटकोंके विधिका कथन था, और प्रमाणनयप्रा-भृतमें सप्तशतार नयचक्रकी सवालक्ष कारिका थी, तिसकी एक कारिका ऊपरसें श्रीमल्लवादि आचार्यने द्वादशारनयचक्रतुंब नामक तर्कशास्त्र रचा, सो वृत्तिसहित अष्टादश सहस्र (१८०००,) श्लोकसंख्या है. तिसकी प्रथम कारिका यह है. ॥

विधिनियमभंगवृत्तिव्यतिरिक्तत्वादनर्थकमबोधं ।
जैनादन्यच्छासनमनृतं भवतीति वैधर्म्म्यम् ॥ १ ॥

तथा सम्मतितर्क मूल १६८, कारिका वृत्तिसहित २५००० श्लोक प्रमाण हैं. यह भी, पूर्वके प्रमाणनयप्राभृतसें उद्धार करके विक्रमादित्य राजाके समयमें वीरात् (वीर—महावीरका संवत्) ४७० वर्षके लगभग श्री सिद्धसेनदिवाकरने रचा है. । तथा शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य १, अनेकांतजय पताका २, धर्मसंग्रहणी ३, शास्त्रवार्त्तासमुच्चय ४, न्यायावतार ५, न्यायप्रवेश ६, सर्व-ज्ञसिद्धि ७, प्रमाणसमुच्चय ८, तत्वार्थ ९, षट्दर्शनसमुच्चय १०, इत्यादि अनेक प्रमाणग्रंथ पूर्वधारीयोंके समयमें रचे गए हैं. । तथा प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकारसूत्र तिसकी ८४००० श्लोकप्रमाण स्याद्वादरत्नाकरनामा-वृत्ति १, लघुवृत्ति ५००० श्लोकप्रमाण रत्नाकरावतारिकानामा २, प्रमेयरत्न-कोश ३, लक्ष्मलक्षण ४, खंडनतर्क ५, नयप्रदीप ६, स्याद्वादकल्पलता ७, नयरहस्योपदेश ८, खंडखाद्य ९, स्याद्वादमंजरी १०, प्रमाणमीमांसा ११, प्रमाणसुंदर १२, इत्यादि सैंकडो प्रमाणग्रंथ पूर्वोक्त ग्रंथानुयायी रचे गए हैं. । और व्याकरणके ग्रंथ, जैनेंद्र इंद्रादि व्याकरणानुसारे बुद्धिसागर व्याकरण, और तिसका न्यास श्रीबुद्धिसागरसूरिने रचा है. और विद्या-नंदसूरिने विद्यानंदव्याकरण रचा है, श्रीमलयगिरिजीने शब्दानुशासन-व्याकरण रचा है, और श्रीसिद्धहेमव्याकरण श्रीहेमचंद्रसूरिजीने रचा है. तिसकी बावत किसी कविने तिस व्याकरणको देखके यह श्लोक कहा है।

यथा ॥

भ्रातः संवृणु पाणिनिप्रलपितं कातंत्रकंथा वृथा ।
माकार्षीः कटुशाकटायनवचः क्षुद्रेण चांद्रेण किम् ॥
कः कंठाभरणादिभिर्बठरयत्यात्मानमन्यैरपि ।
श्रूयंते यदि तावदर्थमधुराः श्रीहेमचंद्रोक्तयः ॥ १ ॥

भावार्थः—हे भाइ! जबतक अर्थोंकरके मधुर, ऐसी श्रीहेमचंद्रजीकी उक्तियों सुणते हैं, तबतक पाणिनिके प्रलापको बंद कर, कातंत्रको वृथा कंथा (गोदडी) समान जान, कौडे (कटुक) शाकटायनके वचन मत कर अर्थात् उच्चारण न कर, तुच्छ चांद्रकरके क्या है? कुछ भी नही, तथा कंठाभरणादि अन्य व्याकरणोंसें भी कौन पुरुष अपने आत्माको पीडित करे? कोई भी नही. ॥ तथा शिशुपालवधके सर्ग २ के श्लोक ११२ में माघकवि, न्यासग्रंथका स्मरण करते हैं; इसवास्ते माघकवि, न्यासके प्रणेता जिनेंद्र, और बुद्धिपाद बुद्धिसागर आचार्योंसें पीछे हुए हैं.

ऐसे माघकाव्यके उपोद्घातके षष्ठ (६) पत्रोपरि जयपुरमहाराजाश्रित पंडित व्रजलालजीके पुत्र पंडित दुर्गाप्रसादजीने लिखा है,।

इस लेखसें भी जैनव्याकरणोंके न्यास अतिचमत्कारी है, और प्राचीन पंडितोंको सम्मत है. नही तो, माघसरिखे महाकवि, न्यासका स्मरण किसवास्ते करते?

पाणिनिकी उत्पत्तिका स्वरूप, सोमदेवभट्टविरचित कथासरित्सागर, तथा तारानाथतर्कवाचस्पतिभट्टाचार्यविरचित कौमुदीकी सरला नाम टीका, और इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके अनुसारसें लिखते हैं.॥— पाटलिपुत्रनगरके नवमे नंदके वखतमें वर्ष उपवर्षनामा पंडित थे, तिनके तीन मुख्य विद्यार्थी थे, वररुचि (कात्यायन), व्याडी इंद्रदत्त, और एक जडबुद्धि पाणिनिनामा छात्र था. सो तहांसें हिमालयपर्वतमें जाके तप करता हुआ, तिसके तपसें तुष्टमान होके किसी शिवनामा देवताने

तिसकी इच्छानुसार नवीन व्याकरण रचनेका वर दीया, तब तिसने व्याकरणकी अष्टाध्यायी रची. और वररुचि आदिकोंको कहने लगा कि, मेरे साथ व्याकरणविषयमें शास्त्रार्थ करो. तब वररुचि आदिकोंने तिसकेसाथ शास्त्रार्थ करके सात दिनसें पाणिनिका पराजय करा; तब तिसकालमें महादेवने आकाशमें आके हुंकारशब्द करा, तब तिन पंडितोंका इंद्रव्याकरण नष्ट हो गया; तब पाणिनिने तिन सर्वपंडितोंको जीत लीये. तद पीछे वररुचिने हिमालय पर्वतमें जाके, शिवकी आराधनासें वर पाके, तिस अष्टाध्यायीकी न्यूनता पूरणेवास्ते वार्तिक रचा. ॥

इससें सिद्ध हुआ कि, पाणिनि नंदराजाके समय होनेसें श्रीवीरात् १५५ वर्ष पीछे लगभग हुआ. तो, क्या, पाणिनिसें पहिलें पंडितजन व्याकरणसें शून्य थे ? शून्य नही थे, किंतु जैनेंद्र, इंद्र, शाकटायनादि जैनव्याकरण प्रचलित थे, तो फिर, जैनमत व्याकरणशून्य कैसें सिद्ध होवे ? कदापि न होवे. तथा पातंजलिने जो अष्टाध्यायीके ऊपर भाष्य रचा है, सो भी प्रायः जैनेंद्र इंद्र शाकटायनादिव्याकरणानुसार रचा है.

पूर्वपक्षः—आपने कितनेही प्रमाणोंद्वारा जैनमतको प्राचीन ठहराया सो ठीक है; परंतु 'जैन' शब्द जिनशब्दसें तद्धित होके बनता है, और 'जिन' शब्द 'जि जये' धातुका बनता है, और 'जि' धातु प्राचीन नही है. क्योंकि, श्री बाबु शिवप्रसादजी सितारेहिंद अपने रचे इतिहासतिमिरनाशकके तीसरे खंडके पृष्ठ १७ में लिखते हैं कि, 'जि जय' धातु प्रमाणिक नही है. क्योंकि सायन और नृसिंहने अपने रचे उणादि और स्वरमंजरीमें इस धातुको छोड दिया है. यह धातु किसी प्रमाणिक ग्रंथमें नही मिलता है.

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! बाबुसाहबने जो लिखा है, सो, क्या जाने किस अनुभवज्ञानसें लिखा है !! क्या बाबुजी सितारेहिंद वेदोंको प्रमाणिकग्रंथ नही मानते हैं ? क्योंकि, यजुर्वेद अध्याय १९ मंत्र ४२। ५७ में जि जयधातुके प्रयोग है. जिसको शंका होवे सो, यजुर्वेद देख लेवे. वेदोंके अप्रमाणिक होनेसें, फिर वो ऐसा वेदोंसें पुराना पुस्तक कौनसा है, जिसने जि जयधातुको अप्रमाणिक जानके छोड दिया है ? यह लेख

तो, किसीने जैनमतोपरि द्वेषवुद्धिसें लिखा मालुम होता है. किसी मताग्रहीको यह सूझा कि, जिस जि जयधातुसें जिन सिद्ध होता है. तिसधातुकोही उडा दो. इसीतरें द्वेषबुद्धिसें वेदोंमेंसें कितनीही ऋचा, मंत्र और शाखायोंको गुम्म करदी हैं. तो विचारा जि जयधातु तो किस गिणतीमें है ?

पूर्वपक्षः–जैनमत वेदमतकी बातें लेकर रचा गया है, ऐसे कितनेक कहते हैं, तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः–हे प्रेक्षावानो ! तुमको विचारना चाहिये कि, जेकर जैनमत वेदकी कितनीक बातें लेकर रचा गया होवे, तव तो जो कथन, जैनमतमें है, सो सर्व वेदोंमें होना चाहिये. परंतु, कर्मकी ८ मूलप्रकृति, और १४८ उत्तरप्रकृतियोंके स्वरूपके कथन करनेवाले षट्कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, प्राभृतकी संग्रहणी, प्राचीन पांच कर्मग्रंथ, शतक, षडशीतिं कर्मग्रंथ, प्रज्ञापना उपांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, आदिमें लगभग अशीतिसहस्त्र (८००००) श्लोकोंका प्रमाण है. तिनको कथनका गंधभी, चार वेदसंहिता, ब्राह्मण, उपनिषत्, कल्पादिमें नही है, और साधुकी पदविभागसमाचारी, जिसके कथन करनेवाले सवालक्ष (१२५०००) श्लोक लगभग हैं; और जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष, इन पदार्थोंका जैसा स्वरूप, जैन मतके शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसा स्वरूप वेदोंमें स्वप्नमें भी कदी नही दीख पडेगा. इसवास्ते प्रेक्षावानोंको चाहिये कि, वेद और जैनमतके शास्त्र पढके तिनका मुकावला करें और विचारें, तव यथार्थ मालुम हो जावेगा कि, जैनमत वेदमेंसें रचा गया है, वा, वेदोंमें जे जे अच्छी बातें है, वे जैनमतमेंसें लेके रची गई हैं ? जो पूर्वोक्त ग्रंथोंका मुकावला करके तत्त्व निश्चय करके धारेगा, तिसका कल्याण होवेगा.

तथा जैनमतके प्राचीन होनेमें एक अन्य भी प्रमाण मिला है सो ऐसें है. । श्रीकांतानामा नगरीका रहनेवाला धनेशनामा श्रावक यानपात्रकरके समुद्रमें जाता था; तिनके अधिष्ठायक देवताने तिस जहाजको

स्तंभन कर दीया. तदपीछे धनेशने तिस व्यंतरदेवताकी पूजा करी, तव तिस समुद्रकी भूमिसें तिस व्यंतरके उपदेशसें स्यामवर्णकी तीन प्रतिमा निकाली; तिनमेंसें एक प्रतिमा तो चारूपग्राममें तीर्थप्रतिष्ठित करी, अन्य श्रीपत्तनमें आमलीके वृक्षके हेठ प्रासादमें श्रीअरिष्टनेमिकी प्रतिमा प्रतिष्ठित करी, और तीसरी प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी स्थंभन ग्रामके पास सेढिकानदीके कांठे ऊपर तरुजाल्यांतरभूमिसें स्थापन करी.

पुरा गये कालमें शालिवाहनराजाके राज्यसें पहिले वा लगभग, नागार्जुन विद्यारससिद्धिवाला, बुद्धिका निधान, भूमिसें रहे हुए विंवके प्रभावसें रसको स्थंभन करता हुआ; तदपीछे तिसने तहां स्थंभनक ग्राम निवेशन करा. । और तिस श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमाके, जो खंभातवंदरमें संप्रतिकालमें विद्यमान है, विंवासनके पीछेके भागमें ऐसी अक्षरोंकी पंक्ति लिखी हुई परंपरायसें हम सुनते हैं; और यह वात लोकोंमें भी प्रायः प्रसिद्ध है. । सो लेख यह है ॥

नमेस्तीर्थकृतस्तीर्थे वर्षे द्विकचतुष्टये २२२२
आषाडश्रावको गौडोकारयत्प्रतिमात्रयम् ॥ १ ॥

अर्थः—जैनमतमें ऐसी दंतकथा चलती है कि, गत चौवीसीके सतारमे नमिनामा तीर्थकरके शासन चलां पीछे २२२२ इतने वर्ष गए, आषाडनामा श्रावक, गौडदेशका वासी, तिसने तीन प्रतिमा वनवाई थीं, तिसमें यह रत्नमयी प्रतिमा भी, तिसनेही वनवाई थी.

जेकर इस चौवीसीके २१ के नमिनाथके शासन चलां पीछे २२२२, इतने वर्ष गए बनवाइ होवे, तो भी, ५८६६५० वर्षके लगभग व्यतीत हुए हैं।

यह लेखसंबंधि कथन प्रभावकचरित्र, और प्रवचनपरीक्षा, अपरनाम कुमतिमत कौशिक सहस्रकिरणनामक ग्रंथोंमें है. इससें भी सिद्ध होता है कि, जैनमत अतीव प्राचीन है. इत्यलं विद्वज्जनपर्षत्सु ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथे जैनमतप्राचीनतावर्णनो नाम द्वात्रिंशः स्तम्भः ॥ ३२ ॥

॥ अथत्रयस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

बत्तीसमें स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनता सिद्ध करी, अब इस तेतीसमें स्तंभमें जैनमत, बौद्धमतसें भिन्न, और प्राचीन है, सो सिद्ध करते हैं. ।

पूर्वपक्षः—कितनेक मानते हैं कि, जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, वा, बौद्धमतकी एक शुद्ध शाखा है; तिसका क्या उत्तर है ?

उत्तरपक्षः—हे प्रियवर ! इस वातका निश्चय, पाश्चात्य विद्वानोंनें अच्छी तरेसें करा है कि, जैनमत, बौधमतसें पुराना और अलग मत है. आचारांग सूत्रका तरजुमा जर्मन देशके वासी हरमॅनजाकोबी विद्वान (Hermann Jocabi)ने करा है, सो पुस्तक प्रोफेसर मेक्समुल्लर भट्टजी (Professor F. Max Müller)ने छपवाया है, तिसकी प्रस्तावनामें अनेक प्रमाणोंसें जैनमतको, वौद्धमतसें प्राचीन और भिन्नमत सिद्ध करा है. तिसमेंसें थोडीसी वातें नमूनेमात्र लिख दिखाते हैं.

वे लिखते हैं कि, जैनमतका मूल, और तिसकी वृद्धि, इन दोनों वातोंमें जो कितनेक यूरोपीयन विद्वान् वहेम (शंका) रखते हैं, सो ठीक नहीं. क्योंकि, वडाभारी, और प्राचीन, ऐसा जैन पुस्तकोंका जथा (समूह) हमारे हाथमें आया है; और तिनमेंसें जैनमतके प्राचीन इतिहासके पूरेपूरे साधन, जो कोइ एकट्ठे करनेको चाहे तो तिसको मिल सकते हैं और ये साधन ऐसे भी नहीं हैं कि, जिनके ऊपर अपनेको प्रतीत न आवे. हम जानते हैं कि, जैनोंके पवित्र पुस्तक प्राचीन हैं, और जिन संस्कृतग्रंथोंको तुम हम प्राचीन कहते हैं, तिन ग्रंथोंसें भी येह ग्रंथ अधिक प्राचीन, युरोपीयन विद्वानोंमें कबूल हुए हैं. इन पुस्तकोंमेंसें वहुते प्राचीन होनेकी बाबतमें उत्तरके वुद्धलोकोंके प्राचीनोंमें प्राचीन पुस्तकोंसें अधिकता करें ऐसे हैं, बुद्धमत और बुद्धमतके इतिहासके साधनोवास्ते उत्तरके बुद्धलोकोंके प्राचीन ग्रंथोंका उपयोग फतेहमंदीसें करमें आया है; तैसेंही जैनीयोंके इतिहासवास्ते प्रमाण करने योग्य मूलतरीके तिनके पवित्र पुस्तकों ऊपर हम तुम किसवास्ते अविश्वास रखते हैं ? तिसका कारण अपनेको कुछ भी मालुम नही होता है.

जेकर जैनग्रंथोंका लेख संपूर्ण विरोधी होवे, अथवा इसमें लिखे संवत् मिति ऊपरसें विरोधि अनुमान होता होवे तो, ऐसे साधनों ऊपर आधार राखनेवाली सर्व कल्पनाओंको शंकासहित माननी अपनेको ठीक है; परंतु फिर बुद्धलोकोंके बलकि उत्तरके बुद्धलोकोंके ग्रंथोंसें इस बाबतमें जैनग्रंथोंका वर्ताव कुछ भी विशेष नही मालुम होता है, तब तो किसवास्ते खुद जैनमतके शास्त्रोंकी वातें अनुमानसें माननेमें आतीं हैं? तिससें जैनमतके पुस्तकोंके कथनसें जुदा (अन्यही) समय–काल और मूल जैनमतको अर्पित (आरोप) करनेको इतने सर्व ग्रंथकारोंकी प्रवृत्ति हुई है. इस प्रवृत्तिका प्रकट कारण तो यूरोपीयन पंडितोंको यह मालुम होता है कि, जैन और बुद्धमतमें कितनीक ऊपरऊपरकी व्यवहारिक वातोंका मिलतापणा देखके ऐसा धारण करनेमें आया है कि, जो ये दोनों पंथोंमें इतना मिलतापणा है, तो एकपंथ दूसरेसें स्वतंत्र (अन्य) होना नही चाहिये; परंतु एकपंथको अवश्य दूसरे पंथमेंसें निकलना चाहिये. इस आनुमानिक अभिप्रायसें वहुत यूरोपीयन परीक्षकोंकी बुद्धि लुप्त होगई है, अब भी लुप्तही होरही है. ऐसें भूलसें भरे हुए अभिप्रायको असत्य करनेवास्ते, और जैनोंके पवित्र पुस्तक जे सत्यता और प्रतिष्ठाके पात्र हैं, तिनकी सत्यता और प्रतिष्ठा स्थापन करनेवास्ते, मैं, अगले पत्रोंमें प्रयत्न करुंगा. जैनसंप्रदायका प्रवर्त्तावनेवाला, अथवा सर्वसें पीछेका तीर्थंकर महावीर (स्वामी), तिस विषयतक हकीकातसें लेके हम अपनी चरचाका प्रारंभ करते हैं–इत्यादि वहुत लेख लिखके पीछे लिखते हैं कि–बुद्ध तहांसें वैशालीमें गया, जहां लच्छवीयोंका अग्रेश्वरी जो निर्ग्रंथोंका (जैनके साधुयोंका) श्रावक था, तिसको बुद्धने प्रतिवोध करा– इत्यादि लिखके फेर लिखते हैं कि–बुद्धमतकेही शास्त्रसें लिखा है कि, बुद्धका प्रतिस्पर्द्धि (शत्रु), और जैनसाधु अथवा निर्ग्रंथोंके अग्रेश्वरीतरीके महावीर (स्वामी) को तिनका प्रसिद्ध नाम नातपुत्तकरके लिखा है. इनका गोत्र बुद्धलोकोंने अग्निवैशायन लिखा है, सो तिनका लिखना असत्य है. क्योंकि, यह गोत्र तो, इनके मुख्य गणधर सुधर्मा स्वामीके साथ संबंध रखता है, महावीर (स्वामी) के सर्व गणधरमेंसें यह सुधर्मा

स्वामी, एकलेही महावीरस्वामीके पीछे जीते रहे थे; और अपने गुरुके निर्वाणपीछे इनोंहीने अग्रेश्वरीपणा धारण करा था.

महावीरस्वामी बुद्धके सहकाली होनेसें, इन दोनोंके एकसदृशही सहकालिक थे, तिनका व्योरा (खुलासा) बिंबीसार, और तिसका पुत्र अभयकुमार, और अजातशत्रु लच्छवी और मल्लि, और मंखलिपुत्र गोशालक, इन पुरुषोंके नाम, दोनों मतोंके पवित्र पुस्तकोंमें हम तुम देखते हैं. अपनेको पीछेसें खबर हुई है, तैसेंही बुद्धलोककी पीठिकामेंसें ऐसा मालुम होता है कि, वैशालीसें महावीरस्वामीके भक्त श्रावक बहुत थे. यह बात जैनलोक कहते हैं कि, इस नगरके पासही महावीरस्वामीका जन्म हुआ था, तिसके साथ संपूर्ण, और फिर इस नगरीके मुख्य अधिकारीके साथ महावीरका संबंध था, सो पीठिकाके कथनके साथ अच्छीतरें मिलता आता है; इसके विना भी पीठिकामें निर्ग्रंथोंका मत, जैसें क्रियावाद, (आत्मा नित्य है, तिसको अपने करे कर्मका फल इसलोक परलोकमें भोगना पडता है.) और पाणीमें जीव है, ऐसा मानना बुद्धलोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, सो जैनमतके साथ संपूर्ण मिलता आता है. सबसें पीछे नातपुत्तके निर्वाणका स्थल बुद्धलोक पापापुरमें मानते हैं, सो सच्च है–इत्यादि अनेक बुद्धके, और महावीरके वृत्तांतका परस्परविशेष दिखलाके, बुद्ध पुरुष बौद्धमतके चलानेवाला, और महावीर जैनमतका चलानेवाला, ये दोनों पुरुष अलग अलग थे. और बुद्धके मतसें जैनमत पहिलेंका है, ऐसा सिद्ध करा है. इससें जैनमत बुद्धमतसें नही निकला है, और न बुद्धमतकी शाखा है; किंतु बुद्धमतसें पहिलेंका प्राचीन मत है.

तथा "सेक्रेडबुक्स आफ धी इस्ट" के ४५ मे भागतरीके उत्तराध्ययन, और सूत्रकृतांगके भाषांतर करनार प्रोफेसर हरमॅन जाकोबी, प्रसिद्ध करनार प्रोफेसर मॅक्ष मुल्लर, तिस पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं कि— बौद्धसिद्धांतका लिखान, नातपुत्तके पूर्वे निर्ग्रंथोंके अस्तित्वसंबंधी अपने विचारोंसें विरुद्ध नहीं है; क्योंकि, जब बुद्धधर्म सुरु हुआ, तिस वखतमें

निर्ग्रंथ एक अगत्यकी कोम होनी चाहिये. इस अनुमानका हेतु यह है कि, वौद्धोंके पिटकोंके वीच वारंवार कथन करनेमें आया है कि, निर्ग्रंथ बुद्धके, वा तिसके शिष्योंके विरुद्ध पक्षवाले हैं. अथवा तिनमेंसें कितनेकको बौद्धमतमें लेनेमें आए. तथा निर्ग्रंथ एक नवीन स्थापन करी हुई कोम है, ऐसा किसी जगे भी कहनेमें आया नही है; और अनुमान भी करनेमें नही आया है. तिससें हम तुम निश्चय कर सकते हैं कि, बुद्धके जन्म पहिलें वहुत वखत हुए निर्ग्रंथ होने चाहिये. इस निर्णयको दूसरी एक बातका आधार मिलता है. वुद्ध, और महावीरस्वामीके वखतमें हुए मंखलिगोशालेका कहना ऐसा है कि, मनुष्यजातिके छ (६) विभाग है. (देखो वौद्धोंका दीर्घनिकायका सामान्यफलसूत्र) इस सूत्रके ऊपर बुद्धघोषने सुमंगलविलासिनी इस नामकी टीका रची है, तिसके अनुसारें मनुष्यजातिके छ विभागमेंसें तीसरे विभागमें निर्ग्रंथोंका समावेश करनेमें आया है. निर्ग्रंथ, तिसही समयकी नवीन उत्पन्न हुई कोम होती तो, तिनको गोशाला मनुष्यजातिका एक पृथक् जुदा अर्थात् अगत्यका विभाग गिणे, ऐसा संभव नही होता है.

मेरे मत (मानने) मूजव जैसें प्राचीन वौद्ध, निर्ग्रंथोंको, एक अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानते थे, तैसेंही गोशालेने भी निर्ग्रंथोंको वहुत अगत्यकी, और पुरानी कोमतरीके जानी हुई होनी चाहिये. इस मेरे मतकी तरफेणमें आखिर दलील यह है कि, वौद्धोंके मज्झिम (मध्यम) निकायके ३५ मे प्रकरणमें वुद्ध, और निर्ग्रंथके पुत्र सच्चकके साथ हुई चर्चाकी वात लिखि हुई है. सच्चक आप निर्ग्रंथ नही है. क्योंकि, वो आप वादमें नातपुत्त (ज्ञातपुत्र महावीर) को हरानेका अभिमान जनाता है. और जिन तत्त्वोंका आप वचाव करता है, वे तत्त्व जैनोंके नहीं हैं. जब एक नामांकितवादी, जिसका पिता निर्ग्रंथ था, सो बुद्धके वखतमें हुआ, तव निर्ग्रंथोंकी कोम वुद्धकी जिंदगीकी अंदर स्थापनेमें आई होवे, यह वन सकता नहीं है.

तथा पूर्वोक्त पुस्तकमेंही लिखा है कि--उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथामें कहा है कि, पार्श्वनाथकी सामाचारीमूजब साधु ऊपरका और नीचेका कपडा पहरते थे; परंतु महावीरस्वामीकी सामाचारीमें कपडेकी मनाइ थी. जैनसूत्रोंमें नग्नसाधुका नाम वारंवार अचेलक लिखा है, जिसका अक्षरार्थ कपडेविनाके ऐसा होता है.

वौद्धलोक अचेलक, और निर्ग्रंथके बीचमें कुछक तफावत रखते हैं. वौद्धोंके धम्मपद (धर्मपद) नामके पुस्तकऊपर बुद्धघोषकी करी हुई टीकामें कितनेक भिक्षुसंबंधि ऐसें कहनेमें आया है कि, वे, अचेलकसें निर्ग्रंथोंको विशेष पसंद करते हैं. क्योंकि, अचेलक तदन नग्न होते हैं, (सव्वासोअपटिच्छन्ना) परंतु निर्ग्रंथ एक जातका कपडा नीतिमर्यादाके वास्ते रखते हैं.

कपडा रखनेका कारण बौद्धभिक्षुयोंने यह दिया है कि, नीतिमर्यादा सचवाती है-रहती है. यह कारण खोटा है; बौद्ध अचेलक, अर्थात् मंखलिगोशालेके और तिसके पहिलें हुए किस संकिच्च तथा नंदवच्छके अनुयायी समझने, ऐसें जानते हैं. और तिनके मज्झिमनिकायके ३६ मे प्रकरणमें अचेलकोंकी धर्मसंबंधीं क्रियाओंका वर्णन भी लिखा है.

इस ऊपरके लेखसें यह सिद्ध हुआ कि, निर्ग्रंथमत, अर्थात् जैनमत, वौद्धमतसें पृथक् भिन्न मत है, और बौद्धमतसें प्राचीन है.

अव हम प्रोफेसर हरमॅन जाकोबीके करे उत्तराध्ययनके २३ मे अध्ययनकी १३ मी गाथाके तरजुमेकी समालोचना करते हैं. । क्योंकि, उन्होंने जो अर्थ करा है, सो अपनी बुद्धीसें करा है, न तु जैनसंप्रदायानुसार; क्योंकि, जैनमतमें निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकादिके अनुसार अर्थ करा हुआ मान्य है, नतु स्वबुद्धिउत्प्रेक्षित. जेकर स्वबुद्धिकी कल्पनासें अर्थ करे जावें, तब तो, अन्यमतोंके शास्त्रोंकीतरें जैनमतके शास्त्रोंके अर्थ भी, नाना पुरुषोंकी नाना कल्पनासें नाना प्रकारके हो जावेंगे; तब तो असली सर्व सच्चे अर्थ व्यवच्छेद हो जावेंगे; और उत्सूत्रार्थकी प्रवृत्ति होनेसें जैनमतही नष्ट हो जावेगा.

इसवास्ते अव्यवच्छिन्नसंप्रदायसें पंचांगी अनुसारही, अर्थ सुज्ञ जनोंको माननां चाहिये, परंतु अन्य प्रकारसें नहीं. *

ऊपर लिखि गाथाका यथार्थ अर्थ ऐसा है. "अचेलगो य जे धम्मो" इत्यादि—अचेलकश्चाविद्यमानचेलकः । परिजुन्नमप्पमुल्लं इत्यागमान्नञः कुत्सार्थत्वात् कुत्सितचेलको वा यो धर्मो वर्द्धमानेन देशित इत्यपेक्षते । जो इमोत्ति । यश्चायं सांतराणि वर्द्धमानशिष्यवस्त्रापेक्षया कस्यचित् कदाचित् मानवर्णविशेषितानि उत्तराणि च बहुमूल्यतया प्रधानानि वस्त्राणि यस्मिन्नसौ सांतरोत्तरोधर्मः पार्श्वेन देशितः । इतिटीका ।

भाषार्थः—अचेलक कहिये, अविद्यामानचेलक, अर्थात् वस्त्ररहित; अथवा पक्षांतरमें दूसरा अर्थ, परिजीर्ण सर्वथा पुराने वस्त्र, अल्पमोलके, इस आगमके वचनसें नकारको कुत्सार्थवाचक होनेसें कुत्सितवस्त्रवाला जो धर्म, तिसको अचेलक धर्म कहिये; ऐसा अचेलक धर्म, वर्द्धमान महावीरस्वामीने उपदेश्या है. और यह, जो, सांतर, वर्द्धमानस्वामीके शिष्योंकी अपेक्षासें किसीको किसी वखत मान, वर्ण, विशेषसहित; उत्तर बहुमोले होनेकरके प्रधानवस्त्र है जिसमें, ऐसा सांतरोत्तर धर्म, पार्श्वनाथने उपदेश्या है.

भावार्थः—इसका यह है कि, मुखवस्त्रिका रजोहरण वर्जके पहिरनेके सर्ववस्त्ररहित सर्वोत्कृष्ट जिनकल्पीकी अपेक्षा अचेल धर्म है; और जीर्ण अल्पमोलके वस्त्र रखने यह भी अचेल धर्मही है, परंतु एकांत वस्त्ररहितकाही नाम अचेलधर्म है, ऐसा जैनमतके शास्त्रोंका अभिप्राय नहीं है. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें ठिकाने ठिकाने वस्त्रादि ग्रहण करनेका विधि कथन करा है, यदि अचेल शब्दका अर्थ नग्न ऐसाही जैनमतके शास्त्रोंको सम्मत होवे तो, वस्त्रग्रहणविधि क्यों लिखते हैं? इसवास्ते अचेल शब्दसें कुत्सित अर्थात् जीर्णप्रायः वस्त्रकाही अर्थ करना उचित है. क्योंकि, नञ् (नकार) को षट् (६) अर्थमें सर्व विद्वानोंने माना है. इसवास्ते यूरोपीयन (पाश्चात्य) पंडित जो स्वकल्पनासें जैनमतादि शास्त्रोंका

* जैसें कल्पसूत्र, आचारांग, उपासकदशांग उपोद्घातादिमें केइ पाश्चात्यविद्वानोंने करे हैं.

तरजुमा करते हैं, सो वडी भूल करते हैं; इसवास्ते उनको चाहिये कि टीकाके अनुसारही तरजुमा करें.

अव यहां प्रसंगोपात हम बहुत नम्रतासें दिगंबर जैनमतके माननेवालोंसें विनती करते हैं कि, हे प्रियबांधवो! तुम भी अपने मतके कदाग्रहको छोडके पक्षपातसें रहित होकर जरा विचार करो कि, जैनमतकी वडी भारी दो शाखायें हो रही हैं; श्वेतांबर १, दिगंबर २, इन दोनोंमेंसें यथार्थ जैनमत कौनसा है?

दिगंबरः—यह जो श्वेतांबर मत है, सो तो विक्रम राजाके मरे पीछे एकसोछत्तीस (१३६) वर्षपीछे सौराष्ट्रदेशकी वल्लभीनगरीमें उत्पन्न हुआ है. ऐसा कथन हमारे देवसेनाचार्य दर्शनसार ग्रंथमें कर गए हैं. तथाहि ॥

छत्तीसे वरिससए, विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
सोरट्ठे वलहीए, सेवडसंघो समुप्पण्णो. ॥ ११ ॥
सिरिभद्दबाहुगणिणो, सीसो णामेण संतिआयरिओ ॥
तस्स य सीसो दुट्ठो, जिणचंदो मंदचारित्तो. ॥ १२ ॥
तेण कियं मदमेदं इत्थीणं अत्थि तप्भवे मोरको॥
केवलणाणीण पुणो, अट्ठक्खाणं तहा रोओ. ॥ १३ ॥
अंवरसहिओवि जइ, सिज्झइ वीरस्स गप्भचारित्तं ॥
परलिंगेवि य मुत्ती, पासुयभोज्जं च सव्वत्थ ॥ १४ ॥
अण्णं च एवमाई, आगमउट्ठाइ मिच्छसत्थाइं ॥
विरइत्ता अप्पाणं, पडिठवियं पढमए णिरए. ॥ १५ ॥

भाषार्थः—विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुएपीछे १३६ वर्षे सोरठदेशमें वल्लभीनगरीमें श्वेतपट श्वेतांवरसंघ उत्पन्न हुआ, श्रीभद्रबाहुगणिका शांतिसूरिनामा शिष्य हुआ, तिसका मंदचारित्रवाला जिनचंद्रनामा दुष्ट शिष्य हुआ, तिसने यह मत उत्पन्न किया. स्त्रीको तिसही भवमें मोक्षप्राप्ति १, केवलज्ञानिको आहार तथा रोग २, वस्त्रसहित ऐसा भी यति

सिद्ध होता है ३, वीर भगवानका गर्भपरावर्त्तन ४, परलिंगमें भी मुक्ति ५, प्रासुकभोजन ऊंच नीच सर्व कुलोंका साधुको कल्पे ६, इत्यादि और भी आगमको उत्थापके मिथ्याशास्त्र बनायके अपने आत्माको प्रथम नरकमें स्थापन करा. इति–तथा मुनि वस्त्र रक्खे १, केवली आहार करे २, स्त्रीकी मुक्ति होवे ३, इत्यादि श्वेतांबरमतके माने कितनेही पदार्थोंका खंडन हमारे अकलंक देवविरचित लघुत्रयी वृद्धत्रयीमें, तथा प्रमेयकमलमार्त्तंड, षट्पाहुडादि अनेक ग्रंथोंमें प्रमाण युक्तिसें करा है, तो फिर हम श्वेतांबरमतको असली सच्चा जैनमत कैसें माने ?

श्वेतांबरः–प्रियवर! जैसें तुम्हारे देवसेनाचार्य, जो कि विक्रमसंवत् ९९० के लगभगमें हुए हैं, तिनोंने दर्शनसारमें–जो कि विक्रमसंवत् ९९० में बनाया है–श्वेतांबरमतकी उत्पत्ति विक्रमके मृत्युपीछे १३६ वर्षे लिखि है; तैसेंही पूर्वोंके ज्ञानधारी श्वेतांबरीयोंने आवश्यकनिर्युक्ति, भाष्य, चूर्णिमें दिगंबरमतकी उत्पत्ति लिखि है, सो ऐसें है.

छव्वाससयाइं नवुत्तराइं तईया सिद्धिं गयस्स वीरस्स ॥
तो बोडियाण दिट्ठी, रहवीरपुरे समुप्पण्णा ॥ ९२ ॥
रहवीरपुरं नगरं, दीवगमुज्जाणमज्जकण्हेय ॥
सिवभूईस्सुवहिम्मि, पुच्छा थेराण कहणा य ॥ ९३ ॥
ऊहाएपन्नत्तं, बोडियसिवभूइउत्तराहि इमं ॥
मिच्छादंसणमिणमो, रहवीरपुरे समुप्पण्णं ॥ ९४ ॥
बोडियसिवभूईओ, बोडियलिंगस्स होइ उप्पत्ती ॥
कोडिन्नकोट्टवीरा, परंपराफासमुप्पन्ना ॥ ९५ ॥

भाषार्थः—श्रीमहावीर भगवंतके निर्वाण हुआ पीछे ६०९ वर्षे बोटिकोंके मतकी दृष्टि अर्थात् दिगंबरमतकी श्रद्धा रथवीरपुर नगरमें उत्पन्न हुई । अब जैसें बोटिकोंकी दृष्टि उत्पन्न हुई है तैसें संग्रहगाथाकरके दिखलाते हैं । रहवीर–रथवीरपुर नगर तहां दीपकनामा उद्यान तहां कृष्णनामा आचार्य समोसरे, तहां रथवीरपुर नगरमें

एक सहस्रमल्लशिवभूतिनामकरके पुरुष था, तिसकी भार्या तिसकी माताकेसाथ (सासुकेसाथ) लडती थी कि, तेरा पुत्र दिन २ प्रति आधी रात्रिको आता है; मैं, जागती, और भूखी पियासी तवतक वैठी रहती हूं. तव तिसकी माताने अपनी वहुसें कहा कि, आज तूं दरवाजा वंद करके सो रहे, और मैं जागुंगी. वहु दरवाजा वंद करके सो गई, माता जागती रही; सो अर्द्धरात्रि गए आया, दरवाजा खोलनेकों कहा, तव तिसकी माताने तिरस्कारसें कहा कि, इस वखतमें जहां उघाडे दरवाजे हैं, तहां तूं जा. सो वहांसे चल निकला, फिरते फिरतेने साधुयोंका उपाश्रय उघाडे दरवाजेवाला देखा, तिसमें गया. नमस्कार करके कहने लगा, मुझको प्रव्रजा (दीक्षा) देओ. आचार्योंने ना कही, तव आपही लोच करलिया, तव आचार्योंने तिसको जैनमुनिका वेष दे दीया. तहांसें सर्व विहार कर गए. कितनेक कालपीछे फिर तिसी नगरमें आए, राजाने शिवभूतिको रत्नकंवल दीया, तव आचार्योंने कहा, ऐसा वस्त्र यतिको लेना उचित नहीं; तुमने किसवास्ते ऐसा वस्त्र ले लीना? ऐसा कहके तिसको विनाहीपूछे आचार्योंने तिस वस्त्रके टुकडे करके रजोहरणके निशीथिये कर दीने. तव, सो गुरुयोंके साथ कषाय करता हुआ.

एकदा प्रस्तावे गुरुने जिनकल्पका स्वरूप कथन करा, जैसें जिनकल्पि-साधु दो प्रकारके होते हैं; एक तो पाणिपात्र, और ओढनेके वस्त्रोंरहित होता है; दूसरा पात्रधारी, और वस्त्रोंकरके सहित होता है. जो वस्त्रधारी होता है, सो आठ तरेंका होता है. रजोहरण, मुखवस्त्रिका, एवं दो उपकरणधारी । १ । दो पीछले और एक पछेवडी (चादर) एवं तीन उपकरणधारी । २ । दो पछेवडी होवें तो चार । ३ । तीन पछेवडी होवे तो पांच । ४ । रजोहरण मुखवस्त्रिका २, पात्र ३, पात्रवंधन ४, पात्रस्थापन ५, पात्रकेसरिका ६, तीन पडले ७, रजस्त्राण ८, गोच्छक ९, एवं नव उपकरणधारी । ५ । पूर्वोक्त नव, और एक पछेवडी, एवं दश उपकरणधारी । ६ । दो पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं इग्यारह उपकरणधारी । ७ । तीन पछेवडी और पूर्वोक्त नव, एवं वारां उपकरण-

धारी ।८। एवं सर्व आठ विकल्प होते हैं. पहिला भेद जो पाणिपात्र, और वस्त्ररहित कहा है, सोही आठ विकल्पोंमेंसें प्रथम विकल्पवाला जानना.

जब आचार्योंने जिनकल्पका ऐसा स्वरूप कथन करा, तब शिवभूतिने पूछा कि, किसवास्ते आप अब इतनी उपाधि रखते हों ? जिनकल्प क्यों नही धारण करते हो ? तब गुरुने कहा कि, इस कालमें जिनकल्पकी सामाचारी नही कर सकते हैं. क्योंकि, जंबूस्वामिके मुक्ति गमनपीछे जिन-कल्प व्यवच्छेद हो गया है. तब शिवभूति कहने लगा कि, जिनकल्प व्यवच्छेद हो गया क्यों कहते हो ? मैं करके दिखाता हूं. जिनकल्पही परलोकार्थीको करना चाहिये. तीर्थंकर भी अचेल थे, इसवास्ते अचेलताही अच्छी है. तब गुरुयोंने कहा, देहके सद्भाव हुए भी कषायमूर्च्छादि किसीको होते हैं, तिसवास्ते देह भी तेरेको त्यागने योग्य है. और जो अपरिग्रहपणा मुनिको सूत्रमें कहा है, सो धर्मोपकरणोंमें भी मूर्च्छा न करनी; और तीर्थंकर भी एकांत अचेल नही थे. क्योंकि, कहा है कि, सर्व तीर्थंकर एक देव दूष्यवस्त्र लेके संसारसें निकले हैं; यह आगमका वचन है. ऐसें स्थविरोंने तिसको कथन करा, यह गाथाका अर्थ हुआ. ।९३। ऐसें गुरुयोंने तिसको समझाया भी, तो भी, कर्मोदयकरके वस्त्र छोडके नग्न होके जाता रहा. तिस शिवभूतिकी उत्तरा नामा बहिन जो आर्या हुइ थी, उद्यानमें रहे शिवभूतिको वंदना करनेको गई. तिसको नग्न देखके तिसने भी वस्त्र उतार दीने, और नग्न हो गई, और नगरसें भिक्षाको गई, तब गणिकाने देखी, तब विचारा कि, इसका कुत्सिताकार देखके लोक हमारे ऊपर विरक्त न हो जावें, इसवास्ते तिसकी उरः (छाती) ऊपर वस्त्र बांधा. * वो तो वस्त्र नही चाहती है; तब शिवभूतिने कहा कि, यह वस्त्र तूं रहने दे, देवताने तुझको यह वस्त्र दीना है, इसवास्ते. । तिस शिवभूतिने दो चेले करे. कौडिन्य १, कोट्टवीर २, इन दोनोंकी शिष्य-परंपरासें कालांतरमें मतकी वृद्धि होगई. ऐसें दिगंबरमत उत्पन्न हुआ.

* किसी जगह ऐसे भी लिखा है कि तिसके ऊपर झरोखेसें एक वस्त्र ऐसें गेरा जिस्सें उसका नग्नपणा ढांका गया.

यह अर्थ मैंने श्रीहरिभद्रसूरिकृत टीकासें लिखा है. ऐसाही अर्थ, मूलभाष्यकारने करा है. विशेषार्थ देखना होवे तो, श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमणकृतशब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्य, और तिसकी वृत्तिसें देखना.

तथा दिगंबरीय मूलसंघ नंद्याम्नाय सरस्वतिगच्छ बलात्कारगणकी पट्टावलीमें, और श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारकाव्यमें ऐसें लिखा है।

यथा ॥

पूर्वं श्रीमूलसंघस्तदनुसितपटः काष्टसंघस्ततोहि।
तत्राभूद्द्राविडाख्यः पुनरजनि ततो यापुलीसंघ एकः॥
तस्मिन् श्रीमूलसंघे मुनिजनविमले सेननंदी च संघौ।
स्यातां सिंहाख्यसंघोभवदुरुमहिमा देवसंघश्चतुर्थः ॥१॥

भाषार्थः–पहिले श्रीमूलसंघविषे प्रथम दूसरा श्वेतपटीगच्छ हुआ। १। तिसपीछे काष्टसंघ हुआ। २। तिस पीछे द्राविडगच्छ हुआ। ३। तिसके पीछे यापुलीयगच्छ हुआ ॥ ४॥ इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांवरमत हुआ। ५। और यापनीय गच्छ। १। केकिपिच्छ। २। श्वेतवास। ३। निःपिच्छ। ४। द्राविड। ५। येह पांच संघ जैनाभास कहे हैं. जैनसमान चिन्हभास दीखे हैं, सो इन पांचोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनुसारें सिद्धांतोंका व्यभिचार कथन करा है. श्रीजिनेंद्रके मार्गको व्यभिचाररूप करा. यह कथन श्रीइंद्रनंदिसिद्धांतीकृत नीतिसारमें है.

तथाहि श्लोकाः ॥

कियत्यपि ततोतीते काले श्वेतांबरोभवत् १ ॥
द्राविडो २ यापनीयश्च ३ केकिसंघश्च नामतः ॥ १ ॥
केकिपिच्छः १ श्वेतवासाः २ द्राविडो ३ यापुलीयकः ४ ॥
निःपिच्छश्चेति ५ पंचैते जैनभासाः प्रकीर्त्तिताः ॥ २ ॥
स्वस्वमत्यानुसारेण सिद्धांतव्यभिचारिणं ॥
विरचय्य जिनेंद्रस्य मार्गं निर्भेदयंति ते ॥ ३ ॥

इन तीनों श्लोकोंका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

तिस मूलसंघमेंही चार संघ उत्पन्न हुए, सेनसंघ । १ । नंदिसंघ । २। सिंहसंघ । ३ । देवसंघ । ४ । दूसरे भद्रबाहुके शिष्य अर्हद्बलि, तिसके चार शिष्योंने चार संघ स्थापन करे. प्रथम शिष्य माघनंदि, तिसने नंदिवृक्षके नीचे चतुर्मास करा, तिसने नंदिसंघ स्थापन करा । १ । दूसरा शिष्य चंद्र, तिसने तृणके नीचे चतुर्मास करा, तिसने सेनसंघ स्थापन करा ।२। तीसरा कीर्ति, तिसने सिंहकी गुफामें चतुर्मास करा, तिसने सिंहसंघ स्थापन करा । ३ । चौथा भूषण, तिसने देवदत्ता वेश्याके घरमें वर्षायोग धारा सो देवसंघ हुआ । ४ ।

तथा च नीतिसारका श्लोक ॥

अर्हद्बलिगुरुश्चक्रे संघसंघट्टनं परं ॥
सिंहसंघो नंदिसंघः सेनसंघो महाप्रभः ॥ १ ॥
देवसंघ इतिस्पष्टं स्थानस्थितिविशेषतः ॥

इसका भावार्थ उपर लिख आए हैं.

अब विचार करना चाहिये कि, पूर्वोक्त लेखमें श्वेतांवरोत्पत्तिका संवत् नही लिखा है. तथा इस मूलसंघकी पट्टावलिमें, और नीतिसारमें प्रथम श्वेतपटीगच्छ । १ । पीछे काष्टसंघ । २ । पीछे द्राविडगच्छ । ३ । पीछे यापुलीयगच्छ । ४ । इन गच्छोंके कितनेक कालपीछे श्वेतांवर मत हुआ, ऐसें लिखा है. यह कथन देवसेनाचार्यकृत दर्शनसारके कथनसें विरोधि है. क्योंकि, दर्शनसारमें प्रथम श्वेतांवर । १ । पीछे यापुलीय । २ । पीछे श्वेतपट । ३ । पीछे द्राविड । ४ । पीछे काष्ठसंघ, ऐसें लिखा है.

तथा च तत्पाठः ॥

छत्तीसे वरीससए विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
सोरट्ठे वलहीए सेवडसंघो समुप्पण्णो ॥ ११ ॥
कल्लाणे वरणयरे दुण्णिसए पंच उत्तरे जादो ॥
जाउलियसंघभेओ सिरिकलसादोहु सेवडदो ॥ २९ ॥

पंचसए छव्वीसे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
दक्खिणमहुरा जादो दाविडसंघो महामोहो ॥ २८ ॥
सत्तसये तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
णंदियडेवरगामे कट्ठो संघो मुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—एकादश (११) गाथाका अर्थ प्रथम लिख आए हैं, दिगंबरके पक्षमें कल्याणी नगरीमें २०५ वर्षे यापुलीय संघका भेद हुआ, और श्रीकलशसें श्वेतपट हुआ. ॥ २९ ॥ विक्रमराजाके मरण प्राप्त हुए पीछे ५२६ वर्षे दक्षिणमथुरासें महामोहसें द्राविडनामा संघ उत्पन्न हुआ. ॥ २८ ॥ विक्रमराजाके मरण पीछे ७५३ वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्ठसंघ उत्पन्न हुआ जानना. ॥ ३८ ॥

इस काष्ठसंघकी मूलसंघकी पट्टावलिमें तथा नीतिसारमें निंदा नही लिखि है, परंतु देवसेनने काष्ठसंघकी दर्शनसारमें बहुत निंदा लिखि है.।

तथाहि ॥

सिरिवीरसेणसीसो जिणसेणो सयलसत्थविन्नाणी ॥
सिरिपउमनंदि पच्छा चउसंघसमुद्धरो धीरो ॥ ३० ॥
तस्स य सीसो गुणवं गुणभद्दो दिव्वणाणपरिपुण्णो ॥
परक्खूसयहमद्दी महातवो भावलिंगो य ॥ ३१ ॥
तेणप्पणोवि मच्चुं णाऊण मुणिस्स विणयसेणस्स ॥
सिद्धंते घोसित्ता सयं गयं सग्गलोयस्स ॥ ३२ ॥
आसी कुमारसेणो णंदियरे विणयसेणमुणिसीसे ॥
सण्णासभंजणेण य अगहियपुणुदिक्खओ जादो ॥ ३३ ॥
परिवज्जिऊण पिच्छं चमरं घित्तूण मोहकलिदेण ॥
उम्मग्गं संकलियं वागडविसएसु सव्वेसु ॥ ३४ ॥
इत्थीणं पुण दिक्खा खुल्लयलोमस्स वीरचरियत्तं ॥
कक्कसकेसग्गहणं छट्ठं गुणव्वदं णाम ॥ ३५ ॥

आयमसत्थपुराणं पायच्छित्तं च अण्णहा किंपि ॥
विरइत्ता मिच्छत्तं पवत्तियं मूढलोएसु ॥ ३६ ॥
सो सवणसंघबज्झो कुमारसेणो हु समयमिच्छत्तो ॥
चत्तोवसमो रुद्दो कट्ठं संघं पवत्तवेदि ॥ ३७ ॥
सत्तसए तेवण्णे विक्कमरायस्स मरणपत्तस्स ॥
णंदियडेवरगामे कट्ठो संघोमुणेयव्वो ॥ ३८ ॥

भाषार्थः—श्रीवीरसेनका शिष्य सकल शास्त्रका ज्ञाता जिनसेन हुआ, तिसके पीछे चार संघका उद्धार करनेवाला धीर पुरुष श्री पद्मनंदि हुआ, तिसका गुणवान् दिव्यज्ञानपरिपूर्ण परकाव्यको मर्दन करनेवाला महातपस्वी भावलिंगी गुणभद्र नामा शिष्य हुआ, तिसने अपना मृत्यु जानके विनयसेन मुनिको सिद्धांत पढाके स्वयं स्वर्गलोकको गमन किया. विनयसेन मुनिका शिष्य कुमारसेन हुआ, तिसने संन्यास भांग दीया, फिर विनाही गुरुके ग्रहण करे दीक्षित हुआ, पिच्छको त्यागके चामर ग्रहण करके मोहसंयुक्त होके तिसने सर्ववागडदेशमें उन्मार्ग चलाया; स्त्रीको दीक्षा क्षुल्लकलोमको वीरचारियत्त कर्कशकेशग्रहण छट्ठागुणव्रत आगमशास्त्रपुराणप्रायश्चित्त इत्यादि कितनीक अन्यथा रचना करके मूढलोकोंमें मिथ्यात्व प्रवर्त्ताया, सो सर्वसंघसें बाह्य ऐसा कुमारसेन रुद्र उपशमको त्यागके मिथ्यासिद्धांत, और काष्टसंघको प्रवर्त्तावता हुआ. विक्रमराजाके मरण पीछे सातसौ त्रेपन (७५३) वर्षे नंदियडेवरगाममें काष्टसंघ उत्पन्न हुआ जानना. इति ॥

तथा अन्य दिगंबर ग्रंथोंमें लोहाचार्यसें काष्टसंघकी उत्पत्ति लिखि है, और दर्शनसारमें कुमारसेनसें काष्टसंघकी उत्पत्ति लिखि है.

मूलसंघकी बलात्कारगणकी पट्टावलिमें भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्ष पट्टस्थ हुए लिखा है. तथाहि । बहुरि श्रीवीरस्वामीकूं मुक्ति गयें पीछें च्यारिसैं सत्तरि (४७०) वर्ष गये पीछें श्रीमन्महाराज विक्रमराजाका जन्म भया, बहुरि पूर्वोक्त सुभद्राचार्यतें विक्रमराजाको जन्म हैं.

बहुरि विक्रमके राज्यपदसें वर्षचत्वारि (४) पीछैं पूर्वोक्त दूसरा भद्रबाहुकूं आचार्यका पट्ट हुवा. । बहुरि श्रीमहावीरस्वामी पीछैं च्यारिसैं बाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४) सो विक्रमजन्मतैं बावीस (२२) वर्ष, बहुरि ताका राज्यतैं वर्ष च्यार (४) दूसरा भद्रबाहु हुवा जांणना. बहुरि श्रीमहावीरतैं च्यारसैंसत्तरि (४७०), वर्ष पीछैं विक्रम राजा भयो, ताके पीछैं आठ वर्षपर्यंत बालक्रीडा करि, ताके पीछैं सोलह वर्षतांई देशांतरविषैं भ्रमण करि, ताके पीछैं छप्पनवर्षतांई राज कीयो नानाप्रकार मिथ्यात्वके उपदेश करि संयुक्त रह्यो, बहुरि ताके पीछैं चालीसवर्षतांई पूर्व मिथ्यात्वको छोडि जिनधर्मकूं पालिकरि देवपदवी पाई, ऐसें विक्रमराजाकी उत्पत्ति आदि है.

तदुक्तं विक्रमप्रबंधे गाथा ॥

सत्तरिचदुसदजुत्तो तिणकाले विक्कमो हवइ जम्मो ॥
अठवरसबाललीला सोडसवासेहिं भम्मिए देसे ॥ १ ॥
रसपणवासारज्जं कुणंति मिच्छोपदेससंजुत्तो ॥
चालीसवासजिणवरधम्मं पालेय सुरपयं लहियं ॥ २ ॥

इससें सिद्ध होता है कि, दूसरे भद्रबाहु श्रीवीरनिर्वाणसें ४९८ वर्षे पट्टपर हुए. क्योंकि, श्रीवीरनिर्वाणसें ४७० वर्षे विक्रमराजाका जन्म हुआ, ८ वर्ष विक्रमराजाने बालक्रीडा करी, १६ वर्ष देशाटन करा, एवं सर्व मिलाके ४९४ वर्ष हुए; पीछे विक्रमका राज्यपद हुआ, तिसके राज्यके ४ संवत्‌में भद्रबाहुका पट्टपर होना, एवं ४९८ वर्ष हुए. और सर्वार्थसिद्धिकी भाषाटीकामें श्रीवीरनिर्वाणसें ६४३ वर्षे भद्रबाहु हुए लिखे हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमें प्रथम ऐसें लिखा है, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं अडसठि (४६८) वर्ष गए सुभद्राचार्य भया, ताके वर्त्तमानकालके वर्ष छह (६) बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारसैं चहोत्तरि (४७४) वर्ष गये यशोभद्राचार्य भये, ताका वर्त्तमानकालके वर्ष अठारह (१८) है. और आगे जाके लिखा है कि, बहुरि श्रीमहावीरस्वामीपीछैं च्यारिसैं वाणवैं (४९२) वर्ष गये सुभद्राचार्यका वर्त्तमान वर्ष चोईस (२४).

तथा "बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीवीरनाथकूं मुक्ति हुवां पीछैं च्यारसैं वाणवैं (४९२) वर्ष गये दूसरा भद्रबाहु नामा आचार्य भया, याका वर्त्तमान कालका वर्ष तेईस (२३) का हैं." ऐसें प्रथम लिखा है. पीछे "विक्रम राजकूं राज्यपदस्थके दिनतैं संवत् केवल ४ के चैत्रशुक्ल १४ चतुर्दशीदिने श्रीभद्रबाहुआचार्य भये" ऐसें लिखा है, सो भी पूर्वापरविरोधवाला है. इसकी गिणती पूर्वे लिख आए हैं.

पूर्वोक्त पट्टावलिमेंही "बहुरि ताके पीछैं तथा श्रीवीरस्वामीपीछैं पांचसैं पंदरह (५१५) वर्ष गयें लोहाचार्य भये ताका वर्त्तमान काल पचास (५०) वर्षका है"–ऐसें लिखके फिर लिखा है कि–"श्रीवर्द्धमानस्वामीको मुक्ति हुये पांचसैं पैंसठि (५६५) वर्ष गयें अर्हद्बलिआचार्य भये ताका वर्त्तमान काल वर्ष अष्टाविंशति (२८) का है" प्रथम ऐसें लिखके फिर आगे जाके भद्रबाहुस्वामीसें पाटानुक्रम लिखा है, तिसमें ऐसें लिखा है, "बहुरि ताके पीछैं संवत् केवल छहवीस (२६) का फाल्गुनशुक्ल १४ दिनमें गुप्तगुप्तिनामा आचार्य जातिपरवार भये" यह लेख भी विरोधी है, क्योंकि, प्रथमके लेखमें भद्रबाहुके पीछैं लोहाचार्य, और पीछे अर्हद्बलिको कथन करा; और पिछले लेखमें भद्रबाहुके पीछेही अर्हद्बलिको कथन करा.–गुप्तगुप्तिकाही नाम अर्हद्बलि है, विशाखाचार्य भी इसहीका नाम हैं.–तथा पूर्वोक्त लेखमें अर्हद्बलिको श्रीवीरनिर्वाणसें ५६५ में पट्टपर हुआ लिखा है, और पिछले लेखसें श्रीवीरनिर्वाणसें ५२० वर्षे अर्हद्बलिपट्टऊपर हुआ सिद्ध होता है.

तथा प्रश्नचरचा समाधानमें लिखा है कि "महावीर भगवान्के निर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे धरसेनमुनि गिरनारकी गुफामें बैठे थे, तिस कालमें ग्यारां (११) अंग विच्छेद गये थे" यह लेख विक्रमप्रबंध, और पूर्वोक्त मूलसंघकी पट्टावलिसें विरोधी है. क्योंकि, पट्टावलिमें ऐसें लिखा है "बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीसन्मतिनाथ (महावीर) पीछैं छहसैं चउदह (६१४) वर्ष गयें धरसेनाचार्य भयें, ताका वर्त्तमान वर्ष इकईसका है" तथा पूर्वोक्त पट्टावलिमेंही भूतबलि आचार्यतक एक अंगके धारी मुनि लिखे हैं, सो आगे लिख दिखावेंगे.

पुनः पूर्वोक्त चरचासमाधानमें लिखा है, "धरसेनमुनि ज्ञानवान रहै कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्रथा, तिनके अल्पायु अपनी जानकर ज्ञानके अविवच्छेद होनेके कारणते जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेजकर, तिक्ष्ण बुद्धिमान् भूतवलि, पुष्पदंत, नामे दो मुनि बुलवाये, तिनकूं ज्ञान सिखाया, तिनकूं विदाय करा." यह लेख भी पूर्वोक्त ग्रंथोंसें विसंवादी है. क्योंकि, पूर्वोक्त ग्रंथोंमें ऐसें लिखा है. बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीवीर भगवान्कूं निर्वाण भये पीछैं छहसै तेतीस वर्ष भुक्ते पुष्पदंताचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वर्ष तीस (३०) का भया, बहुरि ताकै पीछैं तथा श्रीमहावीरपीछैं छहसैं तिरेसठि (६६३) वर्ष गये भूतवल्याचार्य भये, ताका वर्त्तमान काल वीस (२०) वर्षका भया, ऐसैं अनुक्रमसैं अनुक्रमतै भये बहुरि श्रीमहावीरस्वामीकूं मुक्ति गयें पीछैं छहसैं तियांसी (६८३) वर्ष तांई पूर्व अंगकी परिपाटी चाली, फिरि अनुक्रमकरि घटती रही. और पूर्वोक्त अर्हद्बल्याचार्यादि पांच आचार्यका वर्त्तमान काल एकसो अठारह (११८) वर्षका है, इहांतांई एकांगके धारी मुनि भये हैं, बहुरि ताकै पीछैं श्रुतिज्ञानी मुनि भये, ऐसैं आचार्यनिकी परिपाटी है.

तथा च विक्रमप्रबंधे ॥

पंचसये पण्णट्ठे अंतिमजिणसमयजादेसु ॥
उप्पण्णा पंचजणा इयंगधारी मुणेयव्वा ॥ १२ ॥
अहवल्लि माहणंदि य धरसेणं पुप्फयंत भूतबली ॥
अडवीसं इगवीसं उगणीसं तीस वीस पुण वासा ॥ १३ ॥
इगसयअठारवासे इगंगधारी य मुणिवरा जादा ॥
छस्सयतिगसियवासे णिव्वाणा अंगछित्ति कहिय जिणे॥१४॥

इसका भावार्थ ऊपर लिख आए हैं.

अब विचार करो कि श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे धरसेन मुनि कहांसें आए? भूतवलि पुष्पदंतको किसने बुलवाया? भूतवलि पुष्पदंत कहांसें

आए? किसने पढाये? कौन पढे? क्योंकि, धरसेनका मृत्यु ६३३ में हुआ, पुष्पदंतका मृत्यु ६६३ में हुआ, और भूतवलिका मृत्यु ६८३ में हुआ, पूर्वोक्त लेखसें सिद्ध होता है, तो फिर, चरचासमाधान बनानेवालेने श्रीवीरनिर्वाणसें ६८३ वर्षे तीनोंका मिलाप कैसें कराय दिया? और तिन दोनों भूतबलिपुष्पदंतने जेष्ठसुदि ५ को तीन सिद्धांत बनाये यह कैसें लिख दिया? यह तो ऐसें हुआ, जैसें कोइ कहे—"मम मुखे रसना नास्ति, वा मम माता वंध्या वर्त्तते"—इसवास्तेही श्वेतांबरमतोत्पत्तिकी बाबत जो लेख लिखा है,सो स्वकपोलकल्पित है; सत्य नही है. तथा मथुराके पुराने टीलेमेंसें खोदनेसें स्तंभ तथा महावीरस्वामीकी मूर्ति ऊपर शिलालेख निकले हैं, तिन लेखोंके वाचनेसें जो कल्पना दिगंबराचार्योंने श्वेतांबरमतकी उत्पत्तिबाबत लिखी है, सो सर्व मिथ्या सिद्ध होती है; वे सर्व लेख आगे चलकर लिखेंगे.

दिगंबरः—तत्त्वार्थसूत्रकी सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके प्रारंभमेंही श्वेतांबरमतकी बाबत ऐसा लेख लिखा है—तथाहि—श्रीवर्द्धमान अंतिम तीर्थंकरके निर्वाण भया पीछे तीन केवली तथा पांच श्रुतकेवली इस पंचमकालविषे भये, तिनमें अंतके श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीके देवलोक गया पीछे कालदोषतें केतेइक मुनि शिथलाचारी भये, तिनका संप्रदाय चल्या, तिनमें केतेइक वर्षपीछे एकदेवार्धिगणि नामा साधु भया, तिन विचारी जो हमारा संप्रदाय तो बहुत वध्या, परंतु शिथलाचारी कहावे है, सो यहु शक्ति नही, तथा आगामी हमतें भी हीनाचारी होयगे, सो ऐसा करीये जो इस शिथलाचारकूं कोइ बुद्धिकल्पित म कहे. तब तिसके साधनेनिमित्त सूत्र रचना करी, चौरासी सूत्र रचे, तिनमें श्रीवर्द्धमानस्वामी और गौतमस्वामी गणधरका प्रश्नोत्तरका प्रसंग ल्याय शिथलाचारपोषणके हेतु दृष्टांतयुक्ति बनाय प्रवृत्ति करी, तिन सूत्रनिके आचारांगादि नाम धरे, तिनमें केतेइक विपरीत कथन कीये; केवली कवलाहार करे, स्त्रीकूं मोक्ष होय, स्त्री तीर्थंकर भया, परीग्रहसहितकूं मोक्ष होय, साधु उपकरण वस्त्र पात्र आदि चौदह राषे, तथा रोगग्लान आदि वेदनाकरी

पीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही, इत्यादि लिखा. तथा तिनकी साधककल्पित कथा बनाय लिखी. एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी तब केवलज्ञान उपज्या, एक कन्याको उपाश्रयमें बुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, एक साधु रोगी गुरुको कांधे लेचल्या आखडता चाल्या गुरु लाठीकी दई तब आत्मनिंदा करी ताको केवलज्ञान उपज्या तब गुरु वाके पग पड्या; मरुदेवीको हस्तीपरी चढेही केवलज्ञान उपज्या, इत्यादिक विरुद्ध कथा, तथा श्रीवर्द्धमानस्वामी ब्राह्मणीके गर्भमें आये, तब इंद्र वहांते काढि सिद्धार्थ राजाकी राणीके गर्भमें थापे, तथा तिनकूं केवल उपजे पीछै गोसालानाम गरूड्याकूं दिख्या दइ, सो वाने तप बहुत किया, वाके ज्ञान वध्या, रिद्ध फुरी, तब भगवानसूं वाद किया, तब वादमें हाऱ्या, सो भगवानसूं कषाय करि तेजूलेश्या चलाइ सो भगवानके पेचसका रोग हुवा, तब भगवानके खेद बहुत हुवा, तब साधानें कही एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्याहै, सो वै महारेंताई ल्यावो, तब यह रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या; इत्यादि अनेक काल्पित कथा लिखी. अर स्वेतवस्त्र पात्रा दंडआदि भेषधारी स्वेतंवर कहाये, पीछै तिनकी संप्रदायमें केइ समझवार भये, तिननैं विचारी ऐसे विरुद्ध कथनते लोक प्रमाण करसी नही, तब तिनके साधनेकूं प्रमाणनयकी युक्ति वणाय नयविवक्षा खडी करी. ऐसे जैसें तैसें साधी, तथापि कहांताइ साधै, तब केइ संप्रदायी तिन सूत्रनमें अत्यंत विरुद्ध देखे, तिनकूं तो अप्रमाण ठहराय गोपि कीये, कमि राखें, तिनमैं भी केइकने पैंतालीस राखे, केइकने बत्तीस राषे, ऐसे परस्पर विरोध वध्या तब अनेक गच्छ भये, सो अवताई प्रसिद्ध है. इनिके आचार विचारका कछू ठिकाणा नही. इनहींमें ढूंढिये भये हैं, तिने निपटही निंद्य आचरण धाऱ्या है, सो कालदोष है, किछू अचिरज नांही, जैनमतकी गोणता इसकालमें होणी है ताके निमित्त ऐसे वणे.

श्वेतांबरः—यह सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकामें जो लेख लिखा है, प्रायः द्वेषबुद्धिसें लिखा मालुम होता है. जैसें देवसेनाचार्य दर्शनसारमें लिखते

हैं कि, श्वेतांवरमत चलानेवाला जिनचंद्र प्रथम नरकमें गया. अब विचार करो कि, देवसेनने संवत् ९९० में दर्शनसार बनाया तो, क्या उस वखत देवसेनको कोइ अवधिज्ञान हुआ था कि, जिससें उसने जाना कि, जिनचंद्र पहिली नरकमें गया ? इस देवसेनके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, श्वेतांवरमतकी वावत जो कल्पना करी है सर्व असत्य और द्वेष-संयुक्त है. ऐसेंही सर्व दिगंबराचार्योंकी कल्पनावावत जान लेना चाहिये. तथापि सर्वार्थसिद्धिभाषाटीकाके पाठकी समालोचना दिङ्मात्र करते हैं. इस लेखमें बहुत मुनि शिथिलाचारी हो गए, तिनका संप्रदाय चला लिखा है, और अंतके श्रुतकेवली प्रथम भद्रवाहुस्वामीके पीछे चला लिखा है, यह श्वेतांवरमतकी मूल उत्पत्ति लिखी है. परंतु जिनचंद्रका नाम, वा उत्पत्तिका संवत् यह कुछ भी नही लिखा है. तथा दिगंबरपट्टावलिमें, और विक्रमप्रबंधादि ग्रंथोंमें श्रीवीरनिर्वाणसें १६२ वर्षे प्रथम भद्रबाहु अंतिम श्रुतकेवलीको स्वर्गवासी लिखे हैं; और देवसेनने श्वेतांवरमत चलानेवाले जिनचंद्रको श्रीवीरनिर्वाणसें ७२६ वर्षे हुआ लिखा है, इसवास्ते यह लेख भी परस्पर विरोधी है, इसीवास्ते स्वकपोलकल्पित है.

तथा देवर्षिगणिने शिथिलाचारके पोषणवास्ते श्वेतांवरोंके माने आचारांगादि सूत्र रचे, यह कथन भी अज्ञानविजृंभितही है. क्योंकि, प्रथम तो देवर्षिगणिनामा श्वेतांबरोंका कोई साधुही नही हुआ है तो, रचना दूरही रही!! परंतु प्रथम सर्व पुस्तक ताडपत्रोपरि लिखने लिखानेवाले श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण पूर्वके ज्ञानके धारक हुए हैं, वे तो श्रीवीरनिर्वाणसें ९८० वर्ष पीछे हुए हैं, तो, क्या श्वेतांबरोका मत विनाही शास्त्रके ८१८ वर्षतक चलता रहा? लिखनेवालेकी कैसी अज्ञानता थी कि, विनाही शोचे विचारे असमंजस लेख लिख दीया !! तथा देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणजीने तो, शास्त्र पुस्तकारूढ करे हैं, परंतु रचे नहीं हैं. जैनश्वेतांबर आगमोंकी रचना तो, यूरोपीयन सर्व विद्वान मंडलने २२ सौ वर्षसें भी अधिक पुराणी सिद्ध करी है, * तो फिर किसी अज्ञने देवर्षिगणिके

* देखो सेक्रेडवुकके अंतर्गत आचारांगसूत्रके अंग्रेजी तरजूमेकी उपोद्घात (प्रस्तावना) में और वुल्हरकृत मथुराके शिलालेखोंके भाषणोंमें ॥

रचे लिखे हैं तो, क्या विद्वान् तिस अप्रमाणिक लेखको सत्य मान लेवेगें? कदापि नहीं.

और जो लिखा है कि, कितनेक विपरीत कथन किये. केवली कवल आहार करे १, स्त्रीकों मोक्ष २, स्त्री तीर्थंकर भया ३, परिग्रहसहितको मोक्ष होय ४, साधु वस्त्रपात्रादि चतुर्द्दश (१४) उपकरण राखे ५, तथा रोगग्लानादिपीडित साधु होय तो मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नहीं ६, इत्यादि लिखा, इनका उत्तर—प्रथम तीन बातें तो सत्य है. क्योंकि, केवलीका कवल आहार और स्त्रीको मोक्ष ये दोनों तो प्रमाणयुक्तीसेंही सिद्ध है, जो आगे लिखेंगे. परंतु दिगंबराचार्य लौकिकव्यवहारके भी अनभिज्ञ थे क्योंकि, लौकिकमतवालोंने अपने मतके आदिदेवते बुद्ध, ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, ईसादिकोंको सर्वज्ञ माने हैं, परंतु वे आहार नही करते थे ऐसा किसीने भी नही माना है, और सर्वज्ञ आहार करे तो दूषण है, ऐसा भी किसीने नही माना है. और जगत् व्यवहारमें भी यह वात मान्य नही है कि, देहधारी आहार न करे, और शरीरकी वृद्धि होवे. क्योंकि, विदेहक्षेत्रमें तथा यहां चतुर्थ आरेकी आदिमें नव वर्षके मुनिको केवलज्ञान होवे, तव तिसकी विना कवल आहारके किये पांचसौ धनुष्यकी अवगाहना कैसें वृद्धि होवे? इसवास्ते दिगंबरोंका कथन असमंजस है. और स्त्री तीर्थंकर हुआ यह तो श्वेतांबरही आश्चर्यभूत मानते हैं तो, इसमें तर्कही क्या है? । ३ ।

और परिग्रहधारीको जो मोक्ष लिखी है, सो तो मृषावादही है. क्योंकि, श्वेतांबर तो परीग्रहधारीमें साधुपणा भी नही मानते हैं तो, मुक्तिका होना तो कहां रहा? श्वेतांबरी तो, मूर्च्छाको परिग्रह मानते हैं, नतु धर्मोपकरणको.

यदुक्तं श्रीदशवैकालिकसूत्रे श्रीशय्यंभवसूरिपादैः ॥

जंपि वत्थं च पायं वा कंबलं पायपुच्छणं ॥
तंपि संजमलज्जट्ठा धारंति परिहंति य ॥
न सो परिग्गहो वुत्तो नायपुत्तेण ताइणा ॥
मुच्छा परिग्गहो वुत्तो इइ वुत्तं महेसिणा ॥

भाषार्थः—जो वस्त्र प्रच्छादकादि शीतनिवारणवास्ते और भिक्षा अन्न-जलादि लेनेवास्ते पात्र, और कंवल वर्षाकल्प पादपुंछन रजोहरणादि, ये सर्व उपकरण संयम और लज्जाकेवास्ते मुनि धारण करते हैं, और पहिरते हैं. अर्थात् संयसकेवास्ते पात्रादि धारण करते हैं, और लज्जाके वास्ते चोलपट्टकादि वस्त्र पहिरते हैं. इसवास्ते इसको षट्कायके जीवोंके रक्षक ज्ञातपुत्र अर्थात् श्रीमहावीर तीर्थंकरने परिग्रह नही कहा है, परंतु मूर्च्छाको परिग्रह कहा है. अर्थात् जिस वस्तु शरीरादि ऊपर मूर्च्छा ममत्व करना है, सोही परिग्रह कहा है, नतु धर्मसाधनके उपकरणोंको; महाऋषि गौतम सुधर्मादिकोंका ऐसा कथन है.

तथा दिगंबराचार्य शुभचंद्रकृत ज्ञानार्णवके षोडश (१६) प्रकरणमें भी लिखा है ।

यतः ॥

निःसंगोपि मुनिर्न स्यात् संमूर्च्छन् संगवर्जितः ॥
यतो मूर्च्छैव तत्त्वज्ञैः संगसूतिः प्रकीर्त्तिता ॥ ५ ॥

भाषार्थः—जो मुनि निःसंग होय, बाह्य परिग्रहरहित होय, और ममत्व करता होय तो, निःपरिग्रही न होय, जातै तत्त्वज्ञानिनने मूर्च्छा ममत्व परिणामहीकूं परिग्रहकी उत्पत्ति कही है ॥ ५ ॥ इसवास्ते धर्मोपकरण धर्मसाधनकेतांइ रखने, तिनऊपर मूर्च्छा नही करनी, इसवास्ते परिग्रह नही है. तिस धर्मोपकरणधारी मुनिको केवलज्ञान, और मुक्ति दोनोंही सिद्ध है.

दिगंबरः—जब धर्मोपकरण रखेगा, तब तो मूर्च्छा अवश्यमेवही होवेगी तो फिर, तिसको परिग्रहका त्यागी कैसें माना जावे ?

श्वेतांबरः—अहो देवानांप्रिय! तूं तो अपने मतके शास्त्रोंका भी जानने-वाला नही है, क्योंकि, ज्ञानार्णवके अष्टादश (१८) प्रकरणमें यह पाठ है।

तथाहि ॥

शय्यासनोपधानानि शास्त्रोपकरणानि च ॥
पूर्वं सम्यक् समालोक्य प्रतिलिख्य पुनः पुनः ॥१५॥

गृह्णतोस्य प्रयत्नेन क्षिपतो वा धरातले ॥
भवत्यविकला साधोरादानसमितिः स्फुटम् ॥१६॥

भाषार्थः—शय्या आसन उपधान शास्त्र उपकरण इनकूं पहिलै नीके देख अर फेरिफेरि प्रतिलेषण कर अर ग्रहण करै, ताकै अर बडा यत्न कर पृथ्वीतलमैं धरै, ताकै संपूर्ण आदाननिक्षेपणसमित प्रगट कही है. तथा योगेंद्रदेवकृत परमात्मप्रकाशकी टीकामें दिगंबरमुनिको तृणके अर्थात् घासके प्रावरण—प्रच्छादन रखने कहे हैं, और मोरपीछी कमंडल तो प्रसिद्धही है. जब दिगंबरमुनि शय्या १, आसन २, उपधान—गिंडुक तकिया ३, शास्त्र ४, शास्त्रके उपकरण पाटी ५, बंधन ६, दोरा ७, टिप्टिका ८, तृणके प्रावरण ९, पीछी १०, कमंडलु ११, इत्यादि उपकरण रखते थे, वा दिगंबर मुनिको रखनेकी आज्ञा है, तब तो वे भी तुम्हारे कहनेसें तिन ऊपर मूर्च्छा ममत्व करते होवेंगे; तब तो दिगंबर मुनियोंको परिग्रहधारी होनेसें कदापि साधुपणा, केवलज्ञान, मुक्ति न होवेगी, तब तो दिगंबरमत प्रेक्षावानोंको उपादेय नही होवेगा. इससें तो तुमने श्वेतांबरोकी हानि करते हुयोंने, अपनेही पगमें कुठार मारा सिद्ध होवेगा. । ४ ।

पांचमे अंकमें लिखा है साधु उपकरण चौदह राखे, सो सत्य है क्योंकि, उपकरणोंके विना राखे प्रायः संयमका पालना नही होता है. इसवास्तेही तो दिगंबर साधु सर्व व्यवच्छेद होगए. हां कल्पित साधु कहांतक रह सकते हैं !

दिगंबरः—हमारे मतके नग्नमुनि कर्णाटक आदि देशोमें जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोंमें अब भी हैं.

श्वेतांबरः—यह तुम्हारा कहना महामिथ्या है. क्योंकि, कर्णाटक देशके रहनेवाले नागराज नामा जैन ब्राह्मणको, तथा मारवाडी, कच्छी, गुजराती, श्वेतांबर तथा दिगंबर जे कर्णाटकादि देशोंके जैनबद्री मूलबद्री आदि नगरोमें यात्रा करके आए हैं, तिनसें हमनें अच्छीतरेसें पूछा है कि, तुमने यथोक्त मुनिवृत्तिका पालनेवाला दिगंबरमतका नग्न साधु, कोई देखा, वा सुना है ? तब तिन्होंने कहा कि, नग्न

दिगंबरमुनि हमने कोइ भी देखा, वा सुना नही है. परंतु भट्टारक परिग्रहधारी, और भट्टारककी आज्ञासें श्रावकोंके पाससें रूपइए उग्राह करके भट्टारकोंको ल्यादेनेवाले, ऐसे 'क्षुल्लक' नामसें प्रसिद्ध, वे तो हैं. † इसवास्ते यथोक्तवृत्ति पालनेवाला नग्न दिगंबरसाधु अद्यतनकालमें कोइ भी नहीं है. जेकर अंग्रेजी राज्यमें रेल तारके हुए भी, श्रावगीलोग (दिगंबरमतावलंबी) अपने सच्चे गुरुकी शोध नही करेंगे तो, कब करेंगे!!! सत्य तो यह है कि, ऐसे गुरु हैही नही. क्योंकि, ऐसी अनुचितवृत्ति तो कथन कर दीनी, परंतु तिसको पाले कोन ? इसवास्ते चउदह उपकरणधारी श्वेतांबरीही साधु है, अन्य नहीं.* । ५ ।

छट्ठे अंकका उत्तर—रोगी ग्लानी साधु मद्यमांससहितका आहार करे तो दोष नही, ऐसा पाठ श्वेतांबरके किसी भी आगममें नही है. । ६ ।

और जो लिखा है कि, तिनीकी साधक कल्पित कथा वणाय लिखी, एक साधुको मोदकका भोजन करताही आत्मनिंदा करी, तब केवलज्ञान उपज्या,

उत्तर यह लेख मिथ्या है श्वेतांबरशास्त्रमें ऐसा लेख नही है.

एक कन्याको उपाश्रयमें वुहारी देतेही केवलज्ञान उपज्या, यह लेख भी मिथ्या है, शास्त्रमें न होनेसें। गुरुचेलेकी बाबत लिखा है, सो भी मिथ्या है, ऐसा लेख न होनेसें. महावीरजीको गर्भसें बदला, यह अच्छेरा हुआ माना है. फिर इसमें तर्क क्या है? और जो गोसालेने श्रीमहावीरजीके ऊपर तेजोलेश्या फैंकी सो सत्य है. और तिस तेजोलेश्याकी गरमीसें भगवंतके शरीरमें पित्तज्वर और पेचसका रोग उत्पन्न हुआ, यह कथन तो सत्य है, परंतु यह तो सर्व श्वेतांबरोंके शास्त्रमें अच्छेराभूत माना है. और असातावेदनीयकर्मका

---

† फरुखनगरनिवासी चौधरी जियालालजीने जैनबद्री मूलबद्रीके वर्णनका पुस्तक प्रसिद्ध करा है, तिसमें मूलबद्रीमें ३० घर लिखे हैं, और जैनबद्रीमें १०० घर जैनीयोंके लिखे हैं, परंतु ऐसा कहीं नही लिखा है कि, हम यात्रा करते हुए फलाने नगरमें गए, और हमने मुनमहाराजके दर्शन पाए, पाप कटाए; दिगंबर जैनबद्री बंगलूरको कहते हैं, और मूलबद्री मूडबद्रीको कहते हैं. ॥

* चतुर्दश (१४) उपकरण औधिकउपधिकी अपेक्षा जाणने. क्योंकि, जैनमतके शास्त्रोंमें दो प्रकारकी उपधि कही है. औधिक और औपग्राहिक. ॥

उदय केवलीके दिगंबरोंने भी माना है. पार्श्वपुराण भूदरकृत भाषाग्रंथमें दिगंबरोंने भी कितनेक अच्छेरे माने हैं. तो फिर, अच्छेरेभूत कथनको नही मानना, यह क्या प्रेक्षावानोंका काम है ? नही कदापि नही. । तुम्हारे वडोंने तो, जब अपने ग्रंथ अलग रचे तब जो जो कथन उनको अच्छा न लगा, सो सो उन्होंने न लिखा. जैसें केवलीको कवल आहार १, स्त्री तीर्थंकर २, स्त्रीको मोक्ष ३, भगवान्का गर्भपरावर्त्तन ४, गोसालेका उपसर्ग ५, केवलीकोरोग ६, इत्यादि। और श्वेतांबराचार्य तो भवभीरु थे, इसवास्ते उन्होंने सिद्धांतोंका पाठ जैसा था, वैसाही रहने दीया. जेकर श्वेतांबराचार्य तिन वस्तुयोंको न मानते तो, तिनके मतकी कुछ भी हानि नही थी. और माननेसें कुच्छ मतकी पुष्टि भी नही है. परंतु अरिहंतका कथन अन्यथा करनेसें, वा माननेसें मिथ्यादृष्टिपणा, और अनंतसंसारीपणा होजाता है. इसवास्तेही तुम्हारीतरें आगमका कथन अन्यथा नही कर सके हैं. और तुम्हारे सर्वग्रंथोंकी रचनासें श्वेतांबरोंके आगम प्राचीन रचनाके हैं; ऐसी गवाही (साक्षी) सूत्ररचनाके कालके जाननेवाले सर्व यूरोपीयन विद्वानोंने दीनी है. इसवास्ते श्वेतांबरोंके आगमादिमें जो कथन है, सो सर्वज्ञ अरिहंतका कथन करा हुआ है; और तुम्हारे सर्व ग्रंथ पीछेसें रचे गये हैं, इसवास्ते तिनमें मनःकल्पित बातें भी बहुत लिखीं गई हैं.

और जो यह लिखा है कि, भगवान्ने साधाने कहा एक राजाकी राणी बिलाके निमित्त कूकडा कबूतर मारि भुतलस्या है, सो वै माहरें ताई ल्यावो, तब यहु रोग मिट जासी, तब एक साधु वह ल्याया, भगवान खाया, तब रोग मिट्या.

उत्तरः—यह लेख किसी अज्ञानीका लिखा मालुम होता है, क्योंकि, श्वेतांबरके शास्त्रोंमें ऐसा लेखही नहीं है.

और जो यह लिखा है कि, प्रथम चौरासी (८४) सूत्र रचे, पीछे तिनमें विरोध देखके कितनेकनें पैंतालीस माने, राखे, कितनेकनें बत्तीस माने, ऐसें परस्पर विरोध वध्या, तब अनेक गच्छ भए, सो अबतांइ प्रसिद्ध है. इनके आचार विचारका कछू ठिकाणा नाही.

उत्तरः—प्रथम तो यह लेखही मिथ्या है. क्योंकि, हमारे (श्वेतांवरोंके) शास्त्रमें ऐसा लेखही नही है कि, हमारे मतके चौरासी आगम हैं. परंतु श्रीनंदिसूत्रमें द्वादशांगोंसें पृथक् चौदह हजार (१४०००) प्रकीर्ण शास्त्र लिखे हैं. तिनमेंसें कालदोषकरके जितने व्यवच्छेद हो गए हैं, वे तो गए, जो बाकी शेष रहे हैं, तिन सर्वको हम मानते हैं. परंतु हमारे मतमें एवकार नही है कि, चौरासी, वा पैंतालीस, वा बत्तीसही मानने. जे मानते हैं, वे सर्व, मिथ्यादृष्टि, और जिनमतसें बाह्य हैं. और जो गच्छोंके भेदका दूषण दीया है, सो तो तुम्हारे मतमें भी समान है. तुम्हारे आचर्योंनेही दिगंबरमतसें अनेक गच्छोंके भेद लिखे हैं, जिनमेंसें कितनेक उपर लिख आए हैं. परंतु इतना विशेष है कि, श्वेतांवरोंसें जितने गच्छ, वा मत कहे जाते हैं, वे सर्व, स्त्रीको मोक्ष १, केवलीको कवलाहार २, स्त्री तीर्थंकर ३, गोसालेने तेजोलेश्या चलाई ४, केवलीको रोग ५, साधुको चतुर्दशादि उपकरण ६, इत्यादि सर्व वातें मानते हैं.

और यह जो सर्वार्थसिद्धिवालेनें लिखा है कि "तिनको (वर्द्धमान स्वामीको) केवल उपजे पीछे गोसालानाम गरूड्याकूं दिखा दइ" सो यह लेख भी, असत्य है. क्योंकि, गोसाला गरूड्या नही था, किंतु संखलीपुत्र था. तथा भगवानने तिसको दीक्षा नही दीनी थी, किंतु उसने आपही शिर मुंडन करवायके शिष्यबुद्धि धारण करी थी. वास्तविकमें वो शिष्य नही था. क्योंकि, श्वेतांवरोंके शास्त्रोंमें इसको शिष्याभास लिखा है. तथा यह वृत्तांत भगवान् जब छद्मस्थ अवस्थामें विचरते थे, तिस वखतका है; परंतु केवलज्ञान हुए पीछेका नही है.

और जो ढूंढियोंकी बावत लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, ढूंढकपंथ जैन श्वेतांवरमतसें नही है. यह तो, सन्मूर्च्छिमपंथ है. संवत् १७०९ में सुरतके वासी लवजीने निकाला है. जैसें दिगंवरोंमें तेरापंथी, गुमानपंथी, आदि. तथा कितनेक विना गुरुके नग्न दिगंवर मुन, भोले श्रावगीयोंसें धन लेनेकेवास्ते बने फिरते हैं, और क्षुल्लक बने फिरते हैं, ऐसेंही श्वेतांबर मतके नामको कलंकित करनेवाला, आचार विचारसें भ्रष्ट,

ढूंढकमत उत्पन्न हुआ है. इनका निंद्य आचरण, इनकोंही दुःखदायी होवेगा, न तु श्वेतांबरमतवालोंको. इसवास्ते इनकेसाथ हमारा कुछ भी संबंध नही है; वीसपंथी, तेरापंथी, गुमानपंथी आदिवत्. ॥

और तुम अपनी तर्फ नही देखते हो कि, हमारा पंथ नवीनही निकाला है, और सर्व शास्त्र नवीनही रचे हुए हैं. क्योंकि, प्रश्नचर्चा-समाधाननामाग्रंथके १३५ मे प्रश्नसें लिखा है कि, "महावीर भगवान्के नीर्वाणपीछे संवत् ६८३ वर्षे, धरसेन मुनि, गिरनारकी गुफामें बैठे थे, तिस कालमें ग्यारा अंग विच्छेद गए थे, धरसेन मुनि ज्ञानवान् रहे. कर्मप्राभृत दूसरे पूर्वकी कंठाग्र था, तिनके अपनी अल्पायु जान कर, ज्ञानके अव्यवच्छेद होनेके कारणतें, जिनयात्रा करने संघ आया था, तिनपास पत्री ब्रह्मचारीके हाथ भेज कर, तीक्ष्ण बुद्धिमान् भूतवलि १, पुष्पदंत २, नामे दो मुनि बुलवाये; तिनको ज्ञान सिखाया, तिनको विदा करा, आप मृतु हुइ. पीछे तिन दोनों मुनिओंने, ज्येष्ट शुदि ५ कूं तीन सिद्धांत वनाये. सित्तरहजार (७००००) श्लोकप्रमाण धवल १, साठहजार (६००००) श्लोकप्रमाण जयधवल २, चालीसहजार (४००००) श्लोकप्रमाण महाधवल ३, इनको पढे, सो सिद्धांती कहलाये. इन शास्त्रोंमेंसूं नेमिचंद्रसिद्धांतिने चामुंडरायकेवास्ते गोमट्टसार रचा." तथा आचार्य श्रीसकलकीर्त्तिविरचित प्रश्नोत्तरोपासकाचारके दूसरे अध्यायमें

श्रीसुधर्ममुनींद्रेण चोक्तं श्रीजंबुस्वामिना ॥
केवलज्ञाननेत्रेण ज्ञानं गार्हस्थ्यगोचरम् ॥ ३३ ॥
त्रिषादिमुनिभिः सर्वैर्द्वादशांगश्रुतांतगैः ॥
प्रणीतं भव्यसत्वानामुपकाराय तच्छ्रुतम् ॥ ३४ ॥
ततः कालादि दोषेण प्रायुर्मेधांगहानितः ॥
हीयते प्रांगपूर्वादिश्रुतं श्रीधर्मकारणम् ॥ ३५ ॥

ततः श्रीकुंदकुंदाचार्यादिमुख्या यतीश्वराः ॥
प्रकाशयंति सज्ज्ञानं सद्गृहाधिष्ठितात्मनाम् ॥ ३६ ॥
क्रमात्तद्धि समायातं परिज्ञाय महाश्रुतम् ॥
वक्ष्ये सद्धर्मबीजं हि ज्ञानं भव्यसुखप्रदम् ॥ ३७ ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी भाषाटीका सर्वार्थसिद्धिमें लिखा है " बहुरि भद्रबाहुस्वामीपीछे दिगंबरसंप्रदाय, केतेक वर्ष तौ अंगज्ञानकी व्युच्छित्ति भई, अर आचार यथावत् रहवोही कीयो. पीछे दिगंबरनिका आचार कठिन, सो कालदोषते तथावत् आचारी विरले रहि गए. तथापि, संप्रदायमें अन्यथा परूपणा तो न भई. तहां श्रीवर्द्धमान स्वामिकूं निर्वाण गये पीछे छहसैतियालीस (६४३) वर्ष पीछे दूसरे भद्रबाहु नामा आचार्य भये, तिनके पीछे केतेइक वर्षपीछे दिगंवरनिके गुरुके नाम धारक च्यार साखा भई. नंदि १, सेन २, देव ३, सिंह ४, ऐसें इनमें नंदिसंप्रदायमें श्रीकुंदकुंदमुनि, तथा उमास्वामीमुनि, तथा नेमिचंद्र, पूज्यपाद विद्यानंदि, वसुनंदि, आदि वडे वडे आचार्य भये. तिनने विचारी जो, सिथलाचारी श्वेतांवरनिका संप्रदाय तौ, वहुत वध्या, सो तौ कालदोष है; परंतु यथार्थ मोक्षमार्गकी प्ररूपणा चली जाय, ऐसे ग्रंथ रचीए तौ, केई निकटभव्य होय, ते यथार्थ समझि श्रद्धा करे. यथाशक्ति चारित्र ग्रहण करें तौ, यह वडा उपकार है, ऐसें विचारके ग्रंथ रचे. " इत्यादि लेखोंसें यह सिद्ध होता है कि, दिगंवरोंके मतके सर्व ग्रंथ नवीन रचे हुए हैं; प्राचीन पुस्तक कोइ नहीं. जेकर दिगंवरमत सच्चा होता तो, गणधरादि मुनियोंका रचा कोइ ग्रंथ, प्रकरण, अध्याय, वस्तु, प्राभृतादि अवश्य होता, सो है नहीं; इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, अपना मत चलानेवास्ते दिगंबरोने स्वकल्पनाके ग्रंथ नवीन रच लीने हैं. और दिगंवरमतके तत्त्वार्थादिग्रंथोंकी वार्तिकाटीकादिमें श्रीदशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि कितनेही पुस्तकोंके नाम लिखे हैं. इसमें हम यह पूछते हैं कि, अंग और पूर्वोंका प्रमाण तो, तुम्हारे मतमें वहुत वडा

लिखा है; इसवास्ते तुम उनका तो, व्यवच्छेद मानते हो; परंतु दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, कहां गए?

दिगंबरः—वे भी व्यवच्छेद होगए.

श्वेतांबरः—वडे आश्चर्यकी वात है कि, धरसेनमुनिके कंठाग्र समुद्रसमान दूसरे पूर्वका कर्मप्राभृत तो रह गया, और एकादशांग, और दशवैकालिक, उत्तराध्ययनादि, अल्पग्रंथवाले प्रकीर्णक ग्रंथ व्यवच्छेद हो गए!! ऐसा कथन प्रेक्षावान् तो, कदापि नही मानेंगे, परंतु मत कदाग्रहीही मानेंगे. तथा पूर्वोक्त लेखोंसे यह भी सिद्ध होता है कि, कुंदकुंदादिकोंने, श्वेतांवरमतकी वृद्धि देखके, श्वेतांबरकी महिमा घटानेवास्ते, स्पर्द्धासें, अनुचित कठिन व्रतिके कथन करनेवाले शास्त्र रचे हैं. रागद्वेषके वशीभूत हुआ जीव, क्या क्या उत्सूत्र नही रच सकता है? इन उत्सूत्ररूप ग्रंथोंके चलानेवास्तेही, पिछले अंग प्रकीर्णादि ग्रंथ छोड दीये सिद्ध होते हैं. क्योंकि, अकलंकदेवने राजवार्तिकमें पांचमे अंगव्याख्याप्रज्ञप्तिके कितनेक अधिकार लिखे हैं, वे सर्व, वर्त्तमान श्वेतांबरोंके माने व्याख्याप्रज्ञप्ति पांचमें अंगमें विद्यमान है; तो फिर, अकलंकदेवने किस व्याख्याप्रज्ञप्तिको देखके यह लेख लिखा? जेकर कहो कि, गुरुपरंपरायसें कंठ थे तो, व्याख्याप्रज्ञप्ति व्यवच्छेद कैसें हो गई?

तथा प्रश्नचर्चासमाधानके १६ मे प्रश्नमें ऐसें लिखा है "विद्यमान भरतक्षेत्रमें पंचमकालमें सम्यग्दृष्टी जीव केते पाइए—

समाधानः—जिनपंचलब्धिरूप परिणामकी परणतविषे सम्यक्त्व उपजे है, ते परिणाम इस कलिकालमें महादुर्लभ, तिसतें दोय, तथा तीन, अथवा चार कहे हैं; पांच छह तो दुर्लभ है. इस कथनकी साख स्वामी कार्तिकेय टीकाविषे है.

तथाहि ॥

विद्यंते कति नात्मबोधविमुखाः संदेहिनो देहिनः
प्राप्यंते कतिचित् कदाचन पुनर्जिज्ञासमानाः क्वचित् ॥
आत्मज्ञाः परमप्रमोदसुखिनः प्रोन्मीलदंतर्दृशो

द्वित्राः स्युर्बहवो यदि त्रिचतुरास्ते पंचषा दुर्लभाः ॥
ते संति द्वित्रा यदि इति कथनात् ज्ञानार्णवेप्युक्तम् ॥

इस कालमें घने जीव आपकूं सम्यग्दृष्टि माने हैं तो, मानो; परंतु शास्त्रविषे तीनचारही कहे हैं. और पंचलब्धिका स्वरूप भलीभांति जाना होइ तो, आपको सम्यग्दृष्टिका अनुमान भी न करै. कोई ऐसे भी कहे हैं, निश्चयकरी भगवान् जाने, अनुमानसों मेरे सम्यक्त है यह भी श्रद्धान, मिथ्या है. जाते सम्यक्त अनुमानका विषय नही. ॥ " इस लेखका समालोचन–जब भरतखंडमें दो तीन जघन्य, और उत्कृष्ट पांच, वा छह (६) सम्यक्त्वधारी जीव वर्तमानकालमें लाभे हैं, वे भी गृहस्थ हैं, वा साधु हैं, यह निश्चय नही. तव तो, सर्व भरतखंडमें दो, वा छ (६) तक वर्जके, जितने दिगंबर श्रावक, श्राविका, नग्नसाधु, भट्टारक, पांडे, और क्षुल्लक, ये सर्व मिथ्यादृष्टि सिद्ध होवेंगे. प्रथम तो, साधु, साध्वीके व्यवच्छेद हो जानेसें, श्रावक श्राविकारूप दोही संघ रह गए हैं. स्वामीकार्तिकेयादिने तो, दिगंबरोंको सम्यग्दृष्टि होनेकी भी, नहींही लिख दीनी. ग्रंथकारोंने भूल करके तो, नहीं दो तीन सम्यग्दृष्टि लिख दीए होवेंगे! क्योंकि, दो संघियोंमें तो, सम्यग्दर्शनका संभवही नही है.

प्रश्नः–दो संघिये कौन है ?

उत्तरः–प्रियवर ! संप्रतिकालमें, जो भरतखंडमें दिगंबरमत चलता है, सो दो संघिया है. क्योंकि, इनके मतमें साधु साध्वी तो हैही नहीं. श्रावक श्राविका नाममात्र दो संघ है, इसवास्ते ये दो संघिये हैं; और इसीवास्ते ये मिथ्यादृष्टि हैं. क्योंकि, तीर्थंकर भगवान्के शासनमें तो चतुर्विध संघ कहा है; इसवास्ते ये जिनराजके शासनमें नही मालुम होते हैं, दो संघिये होनेसें.

प्रश्नः–इनके दो संघ, किसवास्ते व्यवच्छेद होगए ?

उत्तरः–प्रथम तो श्रीवीरनिर्वाणसें ६०९ वर्षे, इनका मत चला था, तवसेंही इनके तीन संघ चले हैं. क्योंकि, पंचमहाव्रतधारणवाली साध्वी तो इनके मतमें होही नही सकती है, वस्त्र रखनेसें. तिसको तो ये

उत्कृष्टी श्राविकाही मानते हैं. शेष रहा नग्नमुनि, तिनके वास्ते जो अनुचित कठिन वृत्ति लिख दीनी है, सो तिसका पालना पंचमकालमें अशक्य है; और दिगंबरमत चलानेवाले इनके आचार्य भी दीर्घदर्शी नही थे. क्योंकि, जो कठिनवृत्ति, वज्रऋषभनाराचसंहननवालोंकेवास्ते थी, वोही वृत्ति सेवार्त्तसंहननवालेके वास्ते लिख मारी. क्या हाथिका वोझ, गर्दभ ऊठा सकता है ?

प्रथम तो दिगंबराचार्योंको पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंके स्वरूपहीका यथार्थ वोध नही मालुम होता है. क्योंकि, उनोंने राजवार्त्तिकादिग्रंथोंमें जैसा पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिस स्वरूपवाले वुक्कस १, प्रतिसेवना निर्ग्रंथ २, ये दोनों जे इस पंचमकालमें पाईये हैं, तैसें स्वरूपवाले इस भरतखंडमें दीख नही पडते हैं. जब प्रत्यक्षप्रमाणसेंही तुम्हारा (दिगंबर) मत वाधित है, तो फिर अन्यप्रमाणकी क्या आवश्यकता है? और श्वेतांवरमतके व्याख्याप्रज्ञप्ति, उत्तराध्ययननिर्युक्ति, पंचनिर्ग्रंथी संग्रहणी, उमास्वातिकृत तत्त्वार्थसूत्र, और तत्त्वार्थसूत्रकी भाष्य, तथा सिद्धसेनगणिकृत तत्त्वार्थभाष्यवृत्ति प्रमुख शास्त्रोंमें जो पांच निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमेंसें वुक्कस १, प्रतिसेवनानिर्ग्रंथ २, जैसें स्वरूपवाले लिखे हैं, तैसें स्वरूपवाले साधु, साध्वी, इस पंचमकालमें प्रत्यक्ष प्रमाणसें भी सिद्ध है. तो फिर श्वेतांवरमतही असली जैनमत, और दिगंबरमत पीछेसें निकला क्यों नही होवेगा? अपितु होवेहीगा.

एक वात याद रखनी चाहिये कि, जो जो कथन जिनेंद्रदेवके कथनानुसार दिगंबरमतके शास्त्रोंमें है, तिस कथनको हम वहुमान देते, और अनंतवार नमस्कार करते हैं; परंतु जो जो दिगंवरोंने स्वकपोलकल्पनासें रचना करी है; तिसकाही हम समालोचन करते हैं.

और जो दिगंबर कहते हैं कि, श्वेतांवरोंने केवलीको कवल आहार १, स्त्रीको तद्भवे मोक्ष २, साधुको चउदह (१४) उपकरण राखने, इत्यादि विरुद्ध कथन लिखे हैं.

उत्तरः—प्रथम तो श्रीमद्यशोविजयोपाध्यायजी, जो के स्याद्वादकल्पलता १, वैराग्यकल्पलता २, अध्यात्मोपनिषद् ३, अध्यात्मसार ४, अध्यात्मरहस्योपदेश ५, ज्ञानसार, ६, ज्ञानबिंदु ७, नयोपदेश ८, नयप्रदीप ९, अमृततरंगिणी १०, समाचारी ११, खंडखाद्य १२, धर्मपरीक्षा १३, अध्यात्ममतपरीक्षा १४, पातंजलचतुर्थपादवृत्ति १५, कर्मप्रकृतिवृत्ति १६, अनेकांतजैनमतव्यवस्था १७, देवतत्त्वनिर्णय १८, गुरुतत्त्वनिर्णय १९, धर्मतत्त्वनिर्णय २०, तर्कभाषा २१, द्वात्रिंशतद्वात्रिंशिका २२, अष्टक २३, षोडशकवृत्ति २४, इत्यादि शत (१००) ग्रंथके कर्त्ता, और षट्दर्शनतर्कके वेत्ता, तथा काशीमें सर्वपंडितोंने जिनको जयपताका, और न्यायविशारदकी पदवी दीनी थी, ऐसे श्रीयशोविजयोपाध्यायजी लिखते हैं कि, जितने दिगंबरोंके तर्कशास्त्र हैं, वे सर्व, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए, अर्थात् खंडन करे हुए हैं; तिनमेंसें नमूनामात्र यहां लिख दिखाते हैं.

अर्हं । केवलीको कवल आहारके हुए, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध होता है, ऐसे मानते हुए दिगंबरोंका खंडन करते हैं.

नच कवलाहारवत्वेन तस्यासर्वज्ञत्वम् ॥
कवलाहारसर्वज्ञत्वयोरविरोधात् ॥

व्याख्याः—केवलीको कवलाहारी होनेकरके, सर्वज्ञपणेकेसाथ विरोध नही है सोही दिखाते हैं. कवलाहार, और सर्वज्ञपणेका जो विरोध, दिगंबर मानते हैं सो साक्षात् मानते हैं, वा परंपराकरके मानते हैं? यदि आदि पक्ष दिगंबर मानेंगे, सो ठीक नहीं. क्योंकि, सर्वज्ञपणेके हुए केवलीको कवलाहार प्राप्ति नहीं होता है, यह बात नहीं है. और कवलाहार मिल तो सकता है, परंतु केवली खा नही सकता है, यह भी नही है. अथवा केवली खा तो सकता है, परंतु खानेसें केवलज्ञान दौड जायगा, इस शंकासें नही खा सकता है यह बात भी नहीं है; इन पूर्वोक्त तीनों बातोंमें हेतु कहते हैं; अंतराय कर्म, और केवलावरण कर्मोंका समूल नाश करनेसें, पूर्वोक्त तीनों बातें नही हो सकती है. जेकर दिगंबर दूसरे परंपराविरोधपक्षको अंगीकार करके विरोध कहे तो, सो भी बालकोंकी

क्रीडामात्र है. क्या ऐसें हुए, कवल आहारका, व्यापक १, कारण २, कार्य ३, सहचरादिका सर्वज्ञताके साथ विरोध है? और सो विरोध परस्पर परिहाररूप है, या सहानवस्थानरूप है? यदि प्रथम पक्ष मानोगे तब तो, तुम्हारे भी ज्ञानके साथ कवल आहारके व्यापकादिकोंका परस्पर परिहारस्वरूप विरोधके सद्भाव होनेसें, तुम (दिगंबरों) को भी कवल आहारका अभाव होवेगा. अहो तुमारा पुरुषकार!! जिसवास्ते अपने कहनेसेंही पराभवको प्राप्त हुए हों. और दूसरे पक्षको माने तब तो, कवल आहारका व्यापक, हानिको नहीं प्राप्त होता है. क्योंकि, कवल आहारका व्यापक तो, शक्तिविशेषके वससें उदरकंदरारूप कोनेमें प्रक्षेप करना है, सो तो, सर्वज्ञके हुए अतिशयकरके संभव करिये हैं. क्योंकि, वीर्यांतरायकर्म समूल उन्मूलन करनेसें; तहां तिस आहारके क्षेप करनेवाली शक्तिविशेषका संभव होनेसें.

और आहारका कारण भी बाह्यरूप, विरोधको प्राप्त होता है? वा अभ्यंतररूप कारण, विरोधको प्राप्त होता है? बाह्यरूपकारण भी खानेयोग्य वस्तु १, वा तिस वस्तुके उपहारहेतु पात्रादिक २, वा औदारिक शरीर ३? प्रथम तो नहीं. क्योंकि, जो, केवलज्ञान, खानेयोग्य पुद्गलोंके साथ विरोधि होवे, तब तो, अस्मदादिकोंका ज्ञान भी तैसाही होना चाहिये. ऐसा नहीं होता है कि, सूर्यकी किरणोंके साथ जो अंधकारका समूह, विरोधी है; सो, प्रदीपालोककेसाथ विरोधी न होवे. तैसें हुए, हमारे भी, खानेकी वस्तु हाथमें लेनेसें, तिसके ज्ञानके उत्पन्न होतेही, तिसका अभाव होना चाहिए. बहुत आश्चर्यकारि नूतनही तुम्हारा कोइ तत्त्वालोक कौशल है, अपने आपकोभी आहारकी अपेक्षा नहीं है!!

पात्रादिपक्ष भी ठीक नहीं है. अर्हंतभगवंतोंको पाणि (हस्त) पात्र होनेसें; और इतर केवलियोंको स्वरूपसेंही पात्रविरोध है? वा, ममताका कारण होनेसें है? तहां प्रथम पक्ष तो अनंतरपक्षके उत्तरसेंही खंडित हो गया. और दूसरा पक्ष भी है नहीं, केवलीको निर्मोह होने करके, तिनको (केवलीको) पात्रादिविषे ममकारके न होनेसें. ऐसें भी न कहना कि, पात्रादिकके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये. क्योंकि,

ऐसा अवश्यभाव है नही. जेकर इसीतरें मानोगे, तब तो, केवलीको शरीरके हुए, अवश्य ममकार होना चाहिये, सो है नही, इतर जनोंमें शरीरपात्रादिके होए भी ममकार देखनेसें.

और औदारिक शरीर भी, सर्वज्ञपणेके साथ विरोध नही धरता है. यदि विरोध धारण करे तो, केवलज्ञानकी उत्पत्तिके अनंतरही, औदारिक शरीरका अभाव होना चाहिये. और अभ्यंतर भी, आहारका विरोधि, कारण, शरीर है ? वा, कर्म है ? तिनमेंसें प्रथम कारण तो विरुद्ध नही है. क्योंकि, मुक्तिका हेतु, तैजसशरीरका सर्वज्ञकेसाथ रहना तुमने भी माना है. । दूसरे पक्षमें कर्म भी, घाति, वा अघाति ? घाति भी मोहरूप है, वा इतर है ? इतर भी ज्ञानदर्शनावरण है, वा, अंतराय है ? आदिके ज्ञानदर्शनावरण तो नही है. क्योंकि, तिनको तो ज्ञानदर्शनावरणमात्रसेंही चरितार्थ होनेसें, केवल आहारके कारणकी अनुपपत्ति है. । दूसरा पक्ष भी नही है. अंतरायके नाश होनेसेंही, आहारकी प्राप्ति होनेसें, और अंतरायकर्मका संपूर्ण नाश केवलीके तो तुमने भी माना है. । और मोह भी, खानेकी इच्छा लक्षण जो है, सो तिसका कारण है, वा सामान्य प्रकार करके कारण है ? प्रथम पक्ष (बुभुक्षालक्षण) में सर्व जगे खानेकी इच्छारूप मोह कारण है, वा अस्मदादिकोंविषे (हमारेतुम्हारेमें) ही है ? प्रथमपक्ष तो प्रमाणमुद्राकरके दरिद्र है, अर्थात् प्रथम पक्षको सिद्ध करनेवाला कोइ प्रमाण नही है.

दिगंबरः—हमारेपास प्रमाण है, सो यह है. जो चेतनक्रिया है, सो इच्छापूर्वकही है, जैसें अंगीकार करी हुई (क्रिया), तैसीही भुजिक्रिया है, सोही दिखाते हैं. प्रथम तो, प्रमाता, वस्तुको जानता है. तदपीछे तिसकी इच्छा करता है, पीछे उद्यम करता है, और तदपीछे करता है.

श्वेतांबरः—जैसें तुम कहते हो, तैसें नही है; सुप्तमत्तमूर्च्छितादिकोंकी क्रियाकरके व्यभिचार होनेसें.

दिगंबरः—हम, स्ववशचेतनक्रिया, ऐसा विशेषणवाला हेतु, अंगीकार करेंगे, तब पूर्वोक्त व्यभिचार न रहेगा.

श्वेतांबरः-ऐसें विशेषणवाला भी हेतु, केवलीगतगतिस्थितिनिपद्यादि क्रियायोंके साथ व्यभिचारी है. ।

दूसरे पक्षमें तो तुमने हमारे सिद्धकोंही साध्या है, केवलीविषे वेदनीयादिकारणोंकरके भुक्तिके सिद्ध होनेसें. और सामान्यप्रकारसें भी, मोह, कवल करनेका कारण नही है. जेकर होवे, तव तो, गतिस्थितिनिषद्यादिकोंका भी मोहही कारण सिद्ध होवेगा. जेकर तैसें होवेगा, तब तो केवलीमें मोहके अभाव हुए, केवलीको गतिस्थित्यादिकोंका भी अभाव होवेगा. तब तो, तीर्थकी प्रवृत्ति कदापि नही होवेगी. जेकर कहोगे, गति आदि कर्मही, तिन गत्यादिकोंका कारण है, परं मोह नही है. तब तो, वेदनीयादि कर्मही, कवल आहारका कारण है, परं मोह नही; एसें भी मान लेवो.

दिगंबरः-अघाति कर्म, तिस कवल आहारका कारण है.

श्वेतांबरः-अघातिकर्म तिस कवल आहारका कारण है तो, क्या आहारपर्याप्ति, नामकर्मका भेद, तिसका कारण है; वा वेदनीय कर्म? येह दोनोंही भिन्नभिन्न कारण नही है. क्योंकि, तथाविध आहारपर्याप्ति नामकर्मोदयके हुए, वेदनीयोदयकरके प्रबल ज्वलत् जठराग्निकरके उपतप्यमानही पुरुष, आहार करता है. ऐसें हुए, दोनोंही एकठे हुए, तिस कवल आहारके कारण होते हैं. किंतु सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. क्योंकि, सर्वज्ञविषे तुमने भी तो तिन दोनोंको माने हैं.

दिगंबरः—मोहकरके संयुक्तही, पूर्वोक्त दोनों कवलाहारके कारण हैं.

श्वेतांबरः—यह तुमारा कथन असंगत है. गतिस्थित्यादिकर्मोंकीतरें कवलाहारको भी, मोह साहायकरहितकोही, तिसके कारित्व होनेके अविरोधी होनेसें.

दिगंबरः-अशुभ कर्म प्रकृतियांही, मोहकी सहायताकी अपेक्षा करती है, नही अन्यगत्यादिक. और यह असातावेदनीय, अशुभप्रकृति है; इसवास्ते मोहकी सहायता चाहती है.

श्वेतांबरः-क्या यह परिभाषा, अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें कल्पना करते हो?

दिगंबरः–हां. ऐसेंही करते हैं.

श्वेतांबरः–शुभ प्रकृतियां भी, अस्मदादिकोंमें, मोहसहकृतही अपने कार्यको करती देखनेमें आती हैं. तब तो, केवलीकी गतिस्थितिआदि शुभ प्रकृतियां भी, मोहसहकृतही होनी चाहिये. इसवास्ते पूर्वोक्त दोनों प्रकृतियों-को मोहापेक्ष होकरके कवलाहारका कारणपणा नही है, किंतु स्वतंत्रकोंही कारणपणा है. सो कारण केवलीमें अविकल अर्थात् संपूर्ण विद्यमानही है, तिसवास्ते कवलाहारका कारण, केवलीकेसाथ विरोधी नहीं है. यदि कार्यका विरोध मानो तो जो कार्य केवलज्ञानके साथ विरोधी है सो कवलाहारका कार्य, केवलिमें मत उत्पन्न हो. परंतु अविकल कारणवाला उत्पद्यमान कवलाहार तो, अनिवार्य है; अर्थात् कवलाहारको कोइ निवा-रण नही कर सकता है.

एक अन्यबात है कि, सो कौनसा कार्य है? जो, केवलज्ञानकेसाथ विरोधी है. क्या रसनेंद्रियसें उत्पन्न हुआ मतिज्ञान? (१) ध्यानमें विघ्न? (२) परोपकार करनेमें अंतराय? (३) विसूचिकादि व्याधि? (४) ईर्यापथ? (५) पुरीषादि जुगप्सितकर्म? (६) धातुउपचयादिसें मैथुनेच्छा? (७) निद्रा? (८) आद्य पक्ष तो नही है. क्योंकि, रसनेंद्रियकेसाथ आहा-रका संबंध होनेमात्रसेंही जेकर मतिज्ञान उत्पन्न होता होवे तब तो, देवतायोंके समूहने जो करी है, महासुगंधित फूलोंकी निरंतर वर्षा, तिनकी सुगंधी नासिकामें आनेसें घ्राणेंद्रियजन्य मतिज्ञान भी होना चाहिये ॥ १ ॥ दूसरा पक्ष भी नही है. क्योंकि, केवलीका ध्यान शाश्वत है; अन्यथा तो, केवलीको चलते हुए भी, ध्यानका विघ्न होना चाहिये. ॥ २ ॥ तीसरा पक्ष भी नही है, क्योंकि, दिनकी तीसरी पौरुषीमें एक मुहूर्त्तमात्रमेंही भगवंतके आहार करनेका काल है, बाकी शेषकाल परोपकारकेवास्तेही है. ॥ ३ ॥ पक्ष भी नहीं है, जानकरके, हित मित आहार करनेसें. ॥ ४ ॥ भी नही. अन्यथा, गमनादि करनेसें भी ईर्यापथका प्रसंग होवेगा. ॥ छट्टा भी नही. पुरीषादि करते हुए, केवलीको आपही जुगुप्सा होती

वा, अन्यजनोंको ? तिनकों तो, नही होती है. क्योंकि, भगवंतको निर्मोह होनेसें, जुगुप्साका अभाव है. जेकर अन्य जनोंकों होती है, तो क्या, मनुष्य, अमर, इंद्र, इंद्राणि, इत्यादि सहस्र जनोंकरके सकुल सभाकेविषे, वस्त्ररहित भगवंतके बैठे हुए, तिनोंकों जुगुप्सा नही होती है ?

दिगंबरः—भगवंतको अतिशयवंत होनेसें, तिनका नग्नपणा नही दीखता है.

श्वेतांबरः—अतिशयके प्रभावसें भगवंतका निहार भी मांसचक्षुवालोंके अदृश्य होनेसें, दोष नही है. और सामान्यकेवलियोंने तो, विविक्तदेशमें मलोत्सर्ग करनेसें दोषका अभाव है. ॥ ६ ॥ सातमा और आठमा पक्ष भी ठीक नही है. मैथुनेच्छा, और निद्रा, इनको मोहनीकर्म और दर्शनावरणकर्मके कार्य होनेसें; और भगवंतमें ये दोनोंही कर्म, नही है. तिसवास्ते कवलाहारका कार्य भी केवलज्ञानके साथ विरोधि नही है. ॥७॥८॥ और सहचरादि भी विरुद्ध नही है. जिसवास्ते, सो सहचर, छद्मस्थपणा है, वा अन्य कोई ? आदि पक्ष तो नही है. क्योंकि, दोनोंही वादियोंने (श्वेतांबर दिगंबर दोनोंहीने) केवलीमें छद्मस्थपणा माना नही है. जेकर अस्मदादिकोंमें तैसें देखनेसें, छद्मस्थपणेके साहचर्यका नियम माना जावे, तब तो, गमनादिकोंको भी, छद्मस्थपणेके सहचर मानने पडेंगे. और अन्य, जो कर, मुख, चालनादि, तिसके सहचारी हैं, वे भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. ऐसेंही उत्तरचरादि भी केवलज्ञानके साथ विरोधी नही है. इसवास्ते यह सिद्ध हुआ कि, कवलाहार सर्वज्ञपणेके साथ विरोधी नही है. इससें केवलिके कवलाहारका करना सिद्ध हुआ. ॥ इति केवलीभुक्तिव्यवस्था ॥

दिगंबरः—स्त्रीको तद्भवमें मोक्ष नही होवे है. ।

तथा च प्रभाचंद्रः ॥

"॥ स्त्रीणां न मोक्षः पुरुषेभ्यो हीनत्वान्नपुंसकादिवदिति ॥"

भावार्थः—स्त्रियोंको मोक्ष नही है; पुरुषोंसेंही न होनेसें, नपुंसकादिवत्.।

श्वेतांबरः—यहां तुमने सामान्यकरके धर्मिपणे स्त्रियां ग्रहण करी हैं, वा विवादास्पदीभूत स्त्रियां ग्रहण करी हैं ? प्रथम पक्षमें पक्षके एकदेशमें

सिद्धसाध्यता है. क्योंकि, असंख्यात वर्षायुवाली दुषमादि कालमें उत्पन्न हुई तिर्यंचस्त्री, देवस्त्री, अभव्य स्त्री, इत्यादि बहुत स्त्रियोंको हम भी मोक्ष नही कहते हैं. । १ । और दूसरे पक्षमें पक्षकी न्यूनता है. विवादास्पदीभूता, ऐसे विशेषण विना, नियतस्त्री के लाभके अभाव होनेसें. । २ ।

दिगंबरः—विवादास्पदीभूता स्त्रीही, हमारा पक्ष है.

श्वेतांबरः—हेतुक्त पुरुषापकर्ष, पुरुषोंसें हीनपणा, स्त्रियोंमें किसतरें है? (१) सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावसें? (२) विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें? (३) पुरुषोंकरके अनभिवंद्य होनेसें? (४) स्मारणादि न करनेसें? महर्द्धिक न होनेसें? (६) मायादिप्रकर्ष होनेसें? प्रथम पक्षमें किसवास्ते स्त्रियोंको रत्नत्रयका अभाव है?

दिगंबरः—वस्त्ररूपपरिग्रहके होनेसें, चारित्रका अभाव है, इसवास्ते.

श्वेतांबरः—यह कहना ठीक नही है. परिग्रहरूपता, वस्त्रको, शरीरके संबंधमात्रसें है? वस्त्रके भोग करनेसें? मूर्च्छा हेतु होनेसें? वा जीव-संसक्तिहेतुत्वसें? प्रथम पक्षमें तो, भूमिआदिका सदा स्पर्श शरीरकेसाथ होनेसें, परिग्रहरहित, कोइ भी सिद्ध नही होवेगा; तव तो तीर्थंकरादिकोंको भी मोक्ष मिलना नही चाहिये. एतावता लाभ प्राप्त करते हुए तुमने तो, मूलकाही नाश करा! दूसरे पक्षमें वस्त्रका परिभोग, तिनको, अशक्य त्याग करके है, वा गुरुउपदेशसें है? प्रथम पक्ष तो ठीक नही. क्योंकि, प्राणोंसें अधिक और कुछ भी प्रिय नही है, तिनको भी धर्मआदिकेवास्ते स्त्रीयां त्यागती दीखती हैं. तो तिनको वस्त्र त्यागने क्या बडी बात है? दूसरा पक्ष भी ठीक नही. क्योंकि, विश्वदर्शी परमगुरु भगवंतने, मोक्षार्थी स्त्रियोंको, जो संयमका उपकारि है, सोही वस्त्रोपकरण, "नो कप्पदि निग्गंथीए अचेलाए होत्तए" निर्ग्रंथी (साध्वी) को नही कल्पे हैं, वस्त्ररहित होना. इत्यादि कथनसें, उपदिशा है, अर्थात् ऐसा उपदेश दिया है; प्रतिलेखन (मोरपीछी) कमंडलु इत्यादिवत्. इसवास्ते कैसें तिसके परिभोगसें परिग्रहरूपता होवे? अन्यथा प्रतिलेखन आदि धर्मोपकरणकों भी, परिग्रह होनेका प्रसंग होवेगा।

तथाचार्या ॥

यत्संयमोपकाराय वर्त्तते प्रोक्तमेतदुपकरणम् ॥
धर्मस्य हि तत्साधनमतोन्यदधिकरणमाहार्हन् ॥

अर्थः–जो संयमके उपकारकेतांइ वर्त्ते, सो उपकरण कहा है. और सो उपकरण धर्मकाही साधन है, 'उपकारकं हि करणमुपकरणमिति वचनात्' और इससें भिन्न सर्व अधिकरण* है, ऐसें अर्हन् भगवान् कहते हैं.

दिगंबरः–प्रतिलेखन कमंडलु तो, संयम पालनेअर्थे भगवंतने कहे हैं; परंतु वस्त्र किसवास्ते?

श्वेतांबरः–वस्त्र भी भगवंतने संयम पालनेवास्तेही कथन करे हैं. क्योंकि, प्रायः अल्पसत्व होनेकरके, उघाडे अंगोपांगके देखनेसें उत्पन्न हुआ है, चित्तभेद (विकार) जिनोंको, ऐसें पुरुषोंकरके स्त्रियां, अभिभवको प्राप्त होती हैं; जैसें उघाडी घोडीयां घोडायोंसें. इसवास्ते वस्त्र संयमके साधक है, परंतु बाधक नही है. तथा स्त्रियां अवला होती हैं, तिनोंका पुरुष बलात्कारसें भी उपभोग करते हैं, इसवास्ते तिनको वस्त्रविना संयमबाधाका संभव आता है. पुरुषोंको तैसें नही आता है, ऐसें कहो तो, सो ठीक है. परंतु, एतावता वस्त्रसें चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ; किंतु आहारादिकीतरें, वस्त्र भी चारित्रके उपकारक हुए.

दिगंबरः–जिन अल्पसत्ववाली स्त्रियोंको, प्राणीमात्र भी अभिभव कर सकते हैं तो, ऐसी स्त्रियां, महासत्ववानोंकरके साध्य जो मोक्षमार्ग, तिसको कैसें साध सकती हैं?

श्वेतांबरः–यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, यहां मोक्षसाधनमें, जिसके शरीरका सामर्थ्य अधिक होवे, सोही जीव मोक्ष साधनेके योग्य

* अधिक्रियंते घाताय प्राणिनोस्मिन्नित्यधिकरणमिति ॥

होना चाहिये, ऐसा नियम नही है. अन्यथा, पंगु, वामन, अत्यंत रोगी पुरुषोंको, स्त्रियांकरके अभिभव होते देखीए हैं, तब तो, वे भी, तुच्छ शरीरसत्ववाले पुरुष, कैसें मुक्तिके साधनेवाले सत्वके भागी होवेंगे? जैसें तिनके शरीरसामर्थ्यके न हुए भी, मोक्षसाधनसामर्थ्य अविरुद्ध है, तैसें स्त्रियांको भी जानना.

दिगंबरः—जेकर वस्त्रोंके हुए भी, मोक्ष मानते हो तो, गृहस्थको मोक्ष क्यों नही मानते हो ?

श्वेतांबरः—गृहस्थको ममत्व होनेसें, मोक्ष नही होवे है. क्योंकि, ऐसा नही हो सकता है कि, गृहस्थी वस्त्रमें ममत्व न करे. और जो ममत्व है, सोही परिग्रह है; ममत्वके हुए, नग्न भी परिग्रहवान् होता है; और शरीरमें भी ममत्वके होनेसें परिग्रहवान् होता है. और आर्यिका (साध्वी) को तो, ममत्वके अभावसें, उपसर्गादि सहनेकेवास्ते, वस्त्र परिग्रह नही है. यतिमुनिको भी ग्राम घर वनादिमें रहनेवालेको, ममत्वके अभावसें परिग्रह नही है. और जिन महात्मा स्त्रियोंने अपने आत्माको वश करा है, तिनको किसी वस्तुमें भी मूर्च्छा नही है. ।

यतः ॥

निर्वाणश्रीप्रभवपरमप्रीतितीव्रस्पृहाणां ।
मूर्च्छा तासां कथमिव भवेत् क्वापि संसारभागे ॥
भोगे रोगे रहसि सजने सज्जने दुर्जने वा ।
यासां स्वांतं किमपि भजते नैव वैषम्यमुद्राम् ॥ १ ॥

भावार्थः—निर्वाणरूप लक्ष्मीके उत्पन्न करनेमें परमप्रीतिकरके तीव्र उत्कट स्पृहा अभिलाषा है जिनोंकी, और जिनोंका स्वांत—अंतःकरण—मन भोगमें रोगमें एकांतमें समुदायमें सज्जनमें वा दुर्जनमें इत्यादि किसीभी संसारक भागमें वैषम्यमुद्रा—अशांतताविकारादिको नही भजता है, तैसी महात्मा स्त्रियोंको मूर्च्छा कैसें होवे? कदापि न होवे इत्यर्थः ॥

तथा चागमेप्युक्तम् ॥

"॥ अवि अप्पणोवि देहंमि नायरंति ममाइयम् ॥" इति ॥

महात्माजन अपनी देहमें भी ममत्व नही आचरण करते हैं. इस कहनेसें मूर्च्छा हेतु होनेसें, यह भी पक्ष, खंडित होगया. शरीरवत् वस्त्रको भी, किसीको मूर्च्छाहेतुत्वके अभाव होनेसें, परिग्रहरूपत्वका अभाव है.

अपिच । शरीर भी मूर्च्छाका हेतु है, वा नही ? नही, ऐसा तो, नही कह सकते हो. क्योंकि, शरीरके विना मूर्च्छा होतीही नही है. यदि हेतु है, तो वस्त्रकीतरें किसवास्ते त्याज्य नहीं है ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते ? वा मुक्तिका अंग है इसवास्ते ? दुस्त्याज्य है इसवास्ते, ऐसे कहो तो, सो सर्वपुरुषोंको, वा किसी किसीको ? सर्वको कहो तो ठीक नही. क्यों-कि, वहुत वन्हिप्रवेशादिकसें शरीर त्यागते हुए दीखते हैं. किसी किसीको कहो तो, सो ठीक है; जैसें किसीको शरीर दुस्त्याज्य है, तैसेंही वस्त्र भी हो. और मुक्तिअंग कहो तो, वस्त्र भी अशक्तको स्वाध्यायादि उपष्टंभरूप होकर, मुक्तिका अंग है, इसवास्ते त्याज्य नहीं है. यदि जीवसंसक्तिहेतुत्वसें कहो तो, शरीरको भी जीवसंसक्तिहेतुसें परिग्रहरूप मानना चाहिये. क्योंकि, कृमि गंडुक (गंडोये) आदिकी उत्पत्ति तिसमें भी प्रतिप्राणीको विदित है. यदि कहो कि, शरीरप्रति तो, परम यत्न होनेसें सो अदुष्ट है तो, यही न्याय वस्त्रको लगानेमें क्या वाध है? तिसवखत क्या तिस न्यायको वायस (काग) भक्षण कर गये हैं? वस्त्रका भी सीवन, क्षालन, इत्यादि यत्नसेंही होता है, इसवास्ते तिसमें भी जीवसंसक्तिका संभव कहां रहा? इसवास्ते वस्त्रसद्भावके हुए चारित्राभाव सिद्ध नही हुआ. तिसवास्ते सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयके अभावकरके स्त्रियोंको पुरुषोंसें हीनता नही है. ॥ १ ॥

और विशिष्टसामर्थ्यके न होनेसें स्त्रीको मोक्ष नही, यह भी कथन, ठीक नही हैं; क्या सप्तम नरकमें जानेके अभावसें विशिष्टसामर्थ्य नही है ? वादादिलब्धियोंसें रहित होनेसें ? अल्पश्रुतवाली होनेसें ?

वा अनुपस्थाप्यता, पारांचितकप्रायश्चित्तोंसें रहित होनेसें ? प्रथम पक्ष ठीक नही. जिसवास्ते यहां सप्तम पृथ्वीगमनाभाव, जिस जन्ममें स्त्रियोंको मुक्तिगामीपणा है, तिसही जन्ममें कहते हो, वा सामान्यतः कहते हो? प्रथम पक्षमें तो, चरमशरीरियोंके साथ अनेकांत है, अर्थात् यदि आद्य पक्ष मानो, तब तो पुरुषोंको भी, जिस जन्ममें मोक्ष मिलता है, तिसही जन्ममें सप्तम पृथ्वीगमनयोग्यत्व होता नही है, इसवास्ते तिनको भी मुक्तिके अभावका प्रसंग मानना पडेगा.

यदि दूसरा पक्ष कहते हो तो, तुमारा यह आशय होगा. सर्वोत्कृष्ट पदकी प्राप्ति, सो सर्वोत्कृष्ट अध्यवसायसें होवे. और सर्वोत्कृष्ट ऐसें दोही पद हैं. सर्वदुःखस्थानरूप सप्तमी नरकपृथ्वी, और सर्वसुखस्थान ऐसा मोक्ष. तब तो जैसें स्त्रियोंको तिसके गमन योग्य मनोवीर्याभावके हुए, सप्तम पृथ्वीगमन आगममें निषिद्ध है, तैसें मोक्ष भी, तथाविध शुभमनोवीर्याभावके हुए, नही होना चाहिये. प्रयोग भी इसतरें है. । मुक्तिका कारणरूप, ऐसा शुभमनोवीर्य परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें है नही, क्योंकि, सो प्रकर्ष है इसवास्ते, सप्तम पृथ्वीगमनकारणरूप, अशुभमनोवीर्य प्रकर्षकीतरें. । इति पूर्वपक्षः।

उत्तरपक्षः—यह सर्व अयुक्त है; क्योंकि, व्याप्तिही नही है. बहिर्व्याप्तिमात्रसें हेतुका गमकत्व नही हो सकता है, अंतर्व्याप्ति भी चाहिये; अन्यथा, तत्पुत्रत्वात् यह हेतु भी गमकत्व होगा. अंतर्व्याप्ति है सो प्रतिबंधबलसेंही सिद्ध होती है; और यहां तो प्रतिबंध है नही, इसवास्ते यह हेतु संदिग्धविपक्षव्यावृत्तिवाला है, सो चरम शरीरीसें निश्चित व्यभिचारवाला है, क्योंकि, तिनको सप्तम पृथ्वीगमनहेतुरूप मनोवीर्यप्रकर्षके अभाव हुए भी, मुक्ति हेतुरूप मनोवीर्यप्रकर्षका सद्भाव है. तैसेंही मत्स्य, इस उदाहरणमें भी व्यभिचार आवेगा; तिनको सप्तम पृथ्वीगमनहेतु मनोवीर्यप्रकर्षके हुए भी, मोक्षहेतु शुभमनोवीर्य प्रकर्ष नही होता है. तथा जिनको अधोगमनशक्ति थोडी है, तिनकों उर्ध्वगमनप्रति भी थोडीही शक्ति है, ऐसा नियम नही है. क्योंकि, भुजपरिसर्प्पादिमें व्यभिचार

आता है. देखो! भुजपरिसर्प नीचे दूसरी पृथ्वीतक जाता है, तिससें नीचे न ही जाता है; पक्षी तीसरीतक; चतुष्पद चतुर्थीतक; उरग पांचमीतक; और सर्व उत्कृष्टसें उर्ध्व सहस्त्रारपर्यंत जाते हैं. और यह भी नियम नही है कि, उत्कृष्ट अशुभ गति उपार्जन सामर्थ्याभावके हुए, उत्कृष्ट शुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही होना चाहिये; अन्यथा तो, प्रकृष्टशुभगति उपार्जनसामर्थ्याभावके हुए, प्रकृष्ट अशुभ गति उपार्जनसामर्थ्य भी नही है, ऐसें क्यों न होजावे? और तैसें हुए, अभव्य जीवोंको सप्तम नरकगमन नहीं होवेगा, इस वास्ते सप्तम पृथ्वीगमनायोग्यत्वको लेके, विशिष्टसामर्थ्यासत्त्व, स्त्रियोंको नही कह सकते हो.

अथ। वादादिलब्धिरहित होनेसें, स्त्रियोंको विशिष्टसामर्थ्याभाव हैं; जिसमें निश्चित इस लोकसंबंधी, वाद, विक्रिया, चारणादिलब्धियोंका भी हेतु, संयमविशेषरूप सामर्थ्य नही है, तिसमें मोक्षहेतु संयमविशेषरूप सामर्थ्य होवेगा, ऐसा कौन बुद्धिमान् मानेगा?

श्वेतांवरः—यह कहना शोभानिक नही है, व्यभिचार होनेसें; माषतुषादिमुनियोंको तिन लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्यकी उपलब्धि होनेसें. और लब्धियोंको संयमविशेषहेतुकत्व आगमिक नही है. क्योंकि, आगममें लब्धियोंका हेतु, कर्मका उदय, क्षय, क्षयोपशम, और उपशम कहा है. तथा चक्रवर्त्ति, बलदेव, वासुदेव, आदि लब्धियां, संयमहेतुक नही हैं. होवे संयमहेतुक लब्धियां, तो भी स्त्रियोंमें तिन सर्व लब्धियोंका अभाव कहते हो, वा कितनीक लब्धियोंका? आद्य पक्ष तो नही. क्योंकि, चक्रवर्त्यादि कितनीक लब्धियोंका तिनमें अभाव है; परंतु आमर्षौषध्यादि बहुतसी लब्धियां तो तिनमें है. और दूसरे पक्षमें व्यभिचार है; पुरुषोंको सर्व वादादि लब्धियोंके अभाव हुए भी, विशिष्टसामर्थ्य अंगीकार करनेसें, वासुदेवरहित, अतीर्थंकरचक्रवर्त्यादिकोंको भी मोक्षका संभव होनेसें.

और अल्पश्रुतपणा भी, मुक्तिकी प्राप्तिकरके, अनुमित विशिष्टसामर्थ्यवाले माषतुषादिकोंके साथ अनेकांत होनेसें, कहनेयोग्यही नही है.

अनुपस्थाप्यतापारांचितककरके शून्य होनेसें स्त्रियोंमें विशिष्टसामर्थ्याभाव है, यह भी कहना अयुक्त है. क्योंकि, तिनके निषेधसें विशिष्टसामर्थ्यका अभाव नही होता है. क्योंकि, योग्यताकी अपेक्षाहीसें शास्त्रोंमें नानाप्रकारका विशुद्धिका उपदेश है. ।

उक्तं च ॥

संवरनिर्जररूपो, बहुप्रकारस्तपोविधिः शास्त्रे ॥
रोगचिकित्साविधिरिव, कस्यापि कथंचिदुपकारी ॥

भावार्थः—जैसें रोग चिकित्साका विधि, किसीको किसीतरें, और किसीको किसीतरें, उपकारी होता है, तैसेंही शास्त्रमें कहा हुआ, संवरनिर्जरारूप, वहुप्रकारवाला तपका विधि उपकारी है. ॥ २ ॥

पुरुष वंदन नही करते हैं, इसकरके भी, स्त्रियोंमें हीनता सिद्ध नही होती है. क्योंकि, तैसा अनभिवंद्यत्व, सो भी सामान्यतः मानते हो, वा गुणाधिक पुरुषकी अपेक्षासें मानते हो? आद्यपक्ष असिद्ध है. क्योंकि, तीर्थंकरकी माता आदिको, पुरंदरादि इंद्रादि भी पूजते हैं, नमस्कार करते हैं तो, शेषपुरुषोंका तो कहनाही क्या है? और दूसरे पक्षमें आचार्य अपने शिष्योंको वंदना नहीं करते हैं, तव तो, आचार्यसें हीन होनेसें, शिष्योंको मुक्ति न होनी चाहिये; परंतु ऐसें है नहीं क्योंकि, चंद्ररुद्रादिके शिष्योंको मुक्ति हुइ शास्त्रोंमें सुननेमें आती है तथा गणधरोंको भी तीर्थंकर नमस्कार नही करते हैं; तव तो, तिनको भी हीन गिणने चाहिये, और तिनको मोक्ष न होना चाहिये! इसवास्ते मूल हेतु व्यभिचारी है. अपरं च । चतुर्वर्णसंघ, सो तीर्थंकरोंको वंद्य है; और स्त्रियों भी संघमेंही है, इसवास्ते जे संयमवती हैं, तिनको तीर्थंकरवंद्यत्व सिद्ध हुआ; तव तो, स्त्रियोंको हीनत्व कहां रहा! ॥ ३ ॥

स्मारणादिके न करनेसें. यह पक्ष अंगीकार करोगे, तव तो, केवल आचार्यकोंही मुक्ति होनी चाहिये; शिष्योंको नहीं. क्योंकि, वे स्मारणादि करते नही हैं.

दिगंबरः–पुरुषविषे स्मारणादि अकर्तृत्व यहां विवक्षित है, नतु स्मारणादि अकर्तृत्वमात्र; और नही, स्त्रियां कदापि पुरुषोंको स्मारणादि करती हैं.

श्वेतांबरः–तब तो 'पुरुषविषे' ऐसें कहना योग्य था. यदि ऐसें कहो, तो भी असिद्धता दोष है. क्योंकि, कितनीक सर्वज्ञके आगमके रहस्यकरके वासित है सप्तधातु जिनोंकी, ऐसी स्त्रियोंको किसी जगें तथाविध अवसरमें स्खलायमान वृत्तिवाले साधुको स्मारणादिका करना, विरोध नहीं है. ॥ ४ ॥

अथ अमहर्द्धिक होनेसें स्त्रियां पुरुषोंसें हीन हैं. यह पक्ष भी ठीक नही है. क्या आध्यात्मिक समृद्धिकी अपेक्षा अमहर्द्धिकत्व है, वा बाह्यसमृद्धिकी अपेक्षा? प्रथम पक्ष तो नही. क्योंकि, आध्यात्मिकसमृद्धि, सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है; तिसका तो, स्त्रियोंमें भी सद्भाव है. बाह्यसमृद्धिवाला पक्ष भी ठीक नही. क्योंकि, तीर्थंकरकी ऋद्धिकी अपेक्षा गणधरादि, और चक्रधरादिकी अपेक्षा अन्य क्षत्रियादि, सर्व अमहर्द्धिक हैं; तब तो, गणधरादिकोंको भी मोक्ष न होना चाहिये.

दिगंबरः–पुरुषवर्गकी तीर्थंकररूप जो महती समृद्धि है, सो स्त्रियोंमें नही है; इसवास्ते स्त्रियोंको अहमर्द्धिकपणेकी हम विवक्षा करते हैं.

श्वेतांबरः–इस तुह्मारे कथनमें भी असिद्धता दोष है. कितनीक परम पुण्यपात्रभूत स्त्रियोंको भी, तीर्थंकरत्वके आविरोधसें; तिसके विरोधसाधक किसी भी प्रमाणके अभावसें, तुम्हारे कहे अनुमानको अद्यापि विवादास्पद होनेसें, और अनुमानांतरके अभावसें. ॥ ५ ॥

मायादि प्रकर्षवत्त्वसें मोक्ष नही. यह भी कथन श्रेष्ठ नही है. मायादि प्रकर्षवत्त्वको, स्त्रीपुरुष दोनोंमें तुल्य देखनेसें, और आगममें सुननेसें; तथा नारदादि चरमशरीरीको भी मायादि प्रकर्षवत्त्व सुनते हैं. तिसवास्ते स्त्रियोंको, पुरुषोंसें हीनत्व होनेसें निर्वाण नही है, यह कहना अच्छा नही है. ॥ ६ ॥

दिगंबरः—निर्वाणकारण ज्ञानादि परम प्रकर्ष, स्त्रियोंमें नही है; परम प्रकर्ष होनेसें, सप्तम पृथ्वीगमनकारण पाप परमप्रकर्षवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना ठीक नही है. क्योंकि, "परम प्रकर्ष होनेसें" यह तुमारा हेतु व्यभिचारी है; स्त्रियोंमें मोहनीय स्थिति परम प्रकर्ष, और स्त्रीवेदादि परम प्रकर्षके बांधनेके अशुभ अध्यवसायके होनेसें.

दिगंबरः—स्त्रियोंको मोक्ष नही है, परिग्रहवत्त्व होनेसें, गृहस्थवत्.

श्वेतांबरः—यह कहना भी अच्छा नही है; वस्त्रादि धर्मोपकरणोंको अपरिग्रहपणे अच्छीतरेंसें सिद्ध करनेसें. ॥ इति स्त्रीनिर्वाणे संक्षेपेण बाधकोद्धारः ॥

और साधक प्रमाणोंका उपन्यास ऐसें है। कितनीक मनुष्यस्त्रिया निर्वाणवाली है, अविकलनिर्वाणके कारण होनेसें, पुरुषवत्. निर्वाणका अविकलसंपूर्णकारण तो सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रय है, वे तो स्त्रियांविषे हैही. और नपुंसकादिविपक्षसें अत्यंतव्यावृत्त होनेसें, यह हेतु, विरुद्ध अनेकांतिक भी नही है. तथा मनुष्यस्त्रीजाति, किसी व्यक्तिकरके मुक्तिके अविकल कारणवाली है, प्रव्रज्याकी अधिकारित्व होनेसें, पुरुषवत्. और यह असिद्धसाधन भी नही है. "गुव्विणी बालवच्छा य पव्वावेउं न कप्पइ" गुर्विणी—गर्भवंती, और बालकवाली स्त्री, प्रव्रज्या देनेको नही कल्पती है. इस सिद्धांतकरके तिनको अधिकारीपणा कथन करनेसें विशेष प्रतिषेध (निषेध) को शेष स्त्रियोंको अनुज्ञा होनेसें. ॥ इति स्त्रीमुक्तिव्यवस्था ॥

यह पूर्वोक्त कथन (केवलिभुक्ति, और स्त्रीमुक्ति) प्रमाणनय तत्त्वालोकालंकारसूत्रकी रत्नाकरावतारिका नामा लघुवृत्तिसें दिग्दर्शनमात्र करा है; और अन्यग्रंथोंमें तो, बहुत विस्तारसें खंडन लिखा हुआ है, सो भी काम पडेगा तो लिखेंगे. इसवास्ते दिगंबरोंके सर्व तर्कशास्त्र, श्वेतांबरोंके तर्कशास्त्रोंने दले हुए हैं; यदि कोई विनादली तर्क दिगंबरोंपास है तो, प्रकट करें; तिसको भी श्वेतांबर दलेंगे.

अथ कुछक दिगंबरश्वेतांबरके मतका स्वरूप, प्रश्नोत्तररूप करके लिखते हैं. क्योंकि, पूर्वोक्त कथन प्रायः चर्चाचंचूही समझ सकेंगे, और यह प्रश्नोत्तररूपकथन तो, थोडी समझवाले भी समझेंगे. ॥ "प्रश्न-दिगंबर" ॥ " उत्तर-श्वेतांबर " ॥

प्रश्नः-भगवान् तो भुवनतिलकरूप है, इसवास्ते तिनको तिलक नही करना चाहिये.

उत्तरः-यह कहना अनभिज्ञोंका है. क्योंकि, जैसें भगवान् तीन लोकके छत्ररूप है, तो भी, तिनके मस्तकोपरि छत्र धारण करनेमें आवे हैं; तैसेंही तिलक भी जाणना. तथा तुमारे संस्कृत हरिवंशपुराणमें भी, भगवंतको तिलक करना लिखा है.

तथाहि ॥

त्रैलोक्यतिलकस्यास्य ललाटे तिलकं महत् ॥
अचीकरन्मुदेंद्राणी शुभाचारप्रसिद्धये ॥ १ ॥

भावार्थः-तीन लोकके तिलक इस भगवंतके ललाटमें खुशी होके इंद्राणी शुभाचारकी प्रसिद्धिवास्ते तिलक करती हुई. । १ ।

प्रश्नः-लेपरहित, और रागद्वेषरहित, अरिहंतको विलेपन किसवास्ते करते हो?

उत्तरः-हरिवंशपुराणमेंही लिखा है.

यतः ॥

जिनेंद्रांगमथेंद्राणी दिव्यामोदिविलेपनैः ॥
अन्वलिप्यत भक्त्यासौ कर्म्मलेपविघातनम् ॥ १ ॥

भावार्थः-जिनेंद्रके अंगको अथ इंद्राणी प्रधान आनंद देनेवाले विलेपनोंकरके भक्तिसें लेपन करती हुई. कैसा विलेपन? कर्मलेपका घातक।१।

और पाहुडवृत्तिमें पंचामृतस्नात्र करना भी लिखा है. और जिनवर तो, त्रिभुवनके छत्र है तो, तुम तिनके ऊपर छत्र क्यों करते हो? जैसें भगवान् त्रिभुवनतिलक है, तैसेंही त्रिभुवनछत्र भी है; तब तिलक नही करना, और छत्र करना, यह कैसा अन्याय है!

प्रश्नः-भगवंतको तुम आभरण किसवास्ते चडाते हो?

उत्तरः—हमारे तो पूर्वधर श्रीसंघदासगणिक्षमाश्रमणजीने, व्यवहारसूत्रकी भाष्यमें कहा है कि, जिनराजके बिंबको बहुत आभरणोंसें शृंगार करना; जिसको देखके भव्यजनोंके चित्तमें बहुत आनंद उत्पन्न होवे. और तत्त्वार्थसूत्रादि पांचसौ (५००) ग्रंथके कर्त्ता श्रीउमास्वातिवाचकने, पूजापटलनामा ग्रंथमें २१ प्रकारकी जिनराजकी पूजा कही है; जिसमें भी आभरणपूजा कही है. तथा अन्य आगमोमें भी, आभरण चडानेका पाठ है. इसवास्ते चडाते हैं. परंतु तुमारे मतके घत्ताबंध हरिवंशपुराणमें ऐसा पाठ है. ।

यतः ॥

"॥ एण्हविऊण खीरसायरजलेण भूसिओ आहरणउज्जलेण ॥"

इत्यादि

भाषार्थः—क्षीरसागरके जलकरके स्नान करवाके देदीप्यमान आभरणोंकरके भूषित करा । इत्यादि—तो फिर तुम, प्रतिमाको आभरण क्यों नही पहिराते हो?

दिगंबरः—ऊपरके तीन उत्तरमें जो हमारे ग्रंथोंकी साक्षी दिनी है, सो तो ठीक है; परंतु हम तो ग्रंथोक्तवातें जन्मकल्याणककी अपेक्षा मानते हैं.

श्वेतांबरः—तुम जो भगवंतको नित्य स्नान कराते हो, और यात्रा करके शुद्ध जल ल्याके तिस यात्राजलसें स्नान कराते हो, सो किस कल्याणककी अपेक्षा कराते हो? जेकर कहोगे जन्मकल्याणककी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, साथही वस्त्राभरण कटक कुंडल मुकुटादि भी पहिराने चाहीये, ग्रंथोक्त होनेसें. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा कराते हैं, तब तो, पानीसें स्नान करानेसें तुम लोक अपराधी ठहरोगे. तथा जब तुम लोक भगवंतके बिंबको रथ, वा पालकी, वा तामझाममें आरोहण करते हो, तब कौनसी अवस्था मानते हो? जेकर कहोगे जन्मकल्याणक, वा, गृहस्थावस्था मानके करते हैं, तब तो, वस्त्राभरणकटककुंडलमुकुटादि भी पहिराने चाहिये. जेकर कहोगे, योगावस्थाकी अपेक्षा करते हैं, तब तो, बहुत अनुचित काम करते हो!! क्योंकि, भगवंत तो योग लीयां-

पीछे किसी भी सवारीमें नही चढे हैं; तो, तुम किसवास्ते लोकोंमें भगवंतको योग लीयांपीछे सवारीमें चढनेवाले सिद्ध करते हो?

दिगंबरः—यह तो हम, हमारी भक्तिसें करते हैं.

श्वेतांबरः—तब तो भक्तिसें कटककुंडलादि क्यों नही पहिराते हो?

दिगंबरः—कटककुंडलमुकुटादि पहिरानेसें जिनमुद्रा बिगड जाती है.

श्वेतांबरः—रथमें वा पालकीमें बैठे हुए भगवंतकी मुद्रा भी, बिगड जाती है. क्योंकि, चाहो नग्न होवे, चाहो वस्त्रादिसहित होवे; जब रथ, वा पालकीमें बैठा होवेगा, तब तिसको कोइ भी त्यागी, वा योगी, वा योगमुद्राका धारक, नही कहेगा. जैसें तुमारे मतके नग्न मुनिको रथमें, वा पालकीमें, वा हाथी, घोडे, ऊंट, ऊपर चढाके लिये फिरे तो, तिसको कोइ भी दिगंबरी वंदन नही करेगा; और न उसको मुनिअवस्था, वा योगमुद्रा, मानेगा. इसवास्ते हठ छोडके श्वेतांबरोंकीतरें पूजा भक्ति, चंदन, पुष्प, धूप, दीपाभरणारोहणसें करो, जिससें तुह्मारा कल्याण होवे. और श्वेतांबरमतमें तो, जिनप्रतिमाका अचिंत्य स्वरूप माना है; इसवास्ते सर्व अवस्था जिनप्रतिमामें विराजमान है. भक्तजन जैसी अवस्था कल्पन करे हैं, तैसीही अवस्था तिनको भान होती है. और भगवंतकी सर्व अवस्था सम्यग्दृष्टिको आनंदोत्पादक है. इसी हेतुसें जिनमतमें पंच-कल्याणक कहे हैं. और कल्याणक शब्दका यह अर्थ है कि, पांच वस्तु गर्भ १, जन्म, २, दीक्षा ३, केवल ४, और निर्वाण ५, में उत्सवभक्ति करनेसें, जो, भक्तजनोंको कल्याण अर्थात् मोक्षका हेतु होवे, सो कल्याणक. । हम दिगंबरोंको पूछते हैं कि, तुम जिन जन्मकल्याणककी भक्ति करते हो, सो धर्म मोक्षका मानके करते हो, वा पाप जानके? जेकर धर्म मोक्षका हेतु जानकर करते हो, तब तो, चिरंजीवी रहो; तुमारी भक्ति ठीक है, सदैव कर्त्तव्य है. जेकर पाप मानते हो, तब तो अल्पबुद्धि हो. क्योंकि, लाखों द्रव्य खरचके, पापोपार्जन करके, दुर्गति जाना, यह मूर्खोंहीका काम है; दोनों हानियें करनेसें, ढूंढकवत्. जैसें ढूंढकमतवाले दीक्षामहोत्सव करते हैं, साधुसाध्वीके दर्शनोंको जाते हैं, साधुसाध्वीयोंके

बिमार हुए दवाइ आदि करते हैं, पर्युषणादिकोंमें मोदकादिकी प्राभवना करते हैं, तपस्या करनेवालेको पारणा कराते हैं, इत्यादि अनेक कामोंमें हजारों द्रव्य खरचते हैं; और फिर कहते हैं कि, यह तो संसार खाता है. वाहरे वाह ! ! ! वछडेके भाइयोंने वहुतही ज्ञान संपादन करा !

प्रश्नः—भगवंतकी प्रतिमाके शरीरमें अन्यवस्तु कुछ भी जडनी न चाहिये, निःकेवल जिस दल, वा धातुकी प्रतिमा होवे, सोही होना चाहिये.

उत्तरः—तुम्हारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमेंही लिखा है कि, जिनप्रतिमाका उपगूहन (आलिंगन) जिनदासनामा श्रावकने करा. और पार्श्वनाथकी प्रतिमाको लगा हुआ रत्न, माया ब्रह्मचारीने अपहरण कराचुराया.

तथा च तत्पाठः ॥

"॥ मायाब्रह्मचारिणा पार्श्वभट्टारकप्रतिमालग्नरत्नहरणं कृतमिति ॥"

प्रश्नः—जिनप्रतिमाके किसी भी अंगमें चंदनादि सुगंधका लेपन, न करना चाहिये.

उत्तरः—तुह्मारे मतके भावसंग्रहमें जिनप्रतिमाके चरणोंमें चंदनका सुगंध लेपन करना लिखा है.

तथाहि । गाथा ॥

चंदणसुअंधलेओ जिणवरचलणेसु कुणइ जो भविओ ॥
लहइ तणु विक्किरियं सहावससुअंधयं विमलं ॥ १ ॥

भावार्थः—जिनवरके चरणोंमें जो भव्यजीव चंदनसुगंधका लेप करे, सो स्वाभाविक सुगंधसहित निर्मल वैक्रिय शरीर पामे, अर्थात् देवता होवे. ॥ तथा पद्मनंदिकृत अष्टकमें लिखा है.

यतः ॥

"॥ कर्पूरचंदनमितीव मयार्पितं सत्
त्वत्पादपंकजसमाश्रयणं करोतीत्यादि ॥"

भाषार्थः–मेरा अर्पण करा हुआ कर्पूरचंदन, हे जिनेंद्र! तुमारे चरण-कमलमें सम्यक् आश्रय करता है. इत्यादि* ॥

तथा त्रैलोक्यसारमें लिखा है. ।

यतः ॥

"॥ चंदणाहिसेयणच्चणसंगीयवलोयमंदिरेहिंजुदा
कीडणगुणणगिहहिअविसालवरपट्टसालाहिं ॥"

भाषार्थः–चंदनकरके अभिषेक नृत्य संगीत अवलोकन मंदिरमें युक्त क्रीडाकरण गुणणा गृहस्थोंने विशालप्रधान पट्टशालांकरके ॥

तथा तत्त्वार्थसूत्रकी राजवार्त्तिक नामा अकलंकदेवकृत टीकामें लिखा है कि, मंदिरका गंधमाल्य (पुष्पमाला) धूपादि जो चुरावे, सो अशुभ-नाम कर्म उपार्जन करे.

तथाहि ॥

"॥ मिथ्यादर्शनपिशुनतास्थिरचित्तस्वभावताकूटमानतुलाकरणसुवर्णमणिरत्नाद्यनुकृतिकुटिलसाक्षित्वांगोपांगच्यावनवर्णगंधरसस्पर्शान्यथाभावनयंत्रपंजरक्रियाद्रव्यांतरविषयसंबंधनिकृतिभूयिष्ठतापरनिंदात्मप्रशंसानृतवचनपरद्रव्यादानमहारंभपरिग्रहोज्ज्वलवेषरूपमदपरूषासत्यप्रलापाक्रोशमौखर्यसौभाग्योपयोगवशीकरणप्रयोगपरकुतूहलोत्पादनालंकारादरचैत्यप्रदेशगंधमाल्यधूपादिमोषणविलंबनोपहासेष्टकापाकदवाग्निप्रयोगप्रतिमायतनप्रतिश्रयारामोद्यानविनाशतीव्रक्रोधमानमायालोभपापकर्मोपजीवनादिलक्षणः स एष सर्वोऽशुभस्य नाम्नः ॥"

अब विचार करना चाहिये कि, गंध पुष्प मालादि चढावनेही नहीं; ऐसा होवे तो, मंदिरमें गंधमाल्यधूपादि कहांसें आवेंगे ? और तिनके वि-

* पूर्वोक्त काव्यकी टीकामें ऐसें लिखा है–अनेन वृत्तेन चंदनं प्रक्षिप्यते टीप्पकां च दीयते–इस वृत्तको पढके चंदनप्रक्षेप करिये और चरणोपरि टिपिका (तिलक) करिये. ॥

द्यमान न हुए, चुरावेगा क्या ? और अशुभनाम कर्मका आश्रव (आगमन) किसको होवेगा ? तब तो, स्वामी अकलंकदेवका लिखना तुमारी श्रद्धा मूजिब मिथ्या ठहरेगा ! इसवास्ते सिद्ध होता है कि, दिगंबरोंको अपने चलाये-माने मतका आग्रहही है, न तु न्यायबुद्धि. ॥

प्रश्नः-जिनवरकी प्रतिमाको लिंगका आकार करना चाहिये. क्योंकि, भगवान् तो, दिनरात्र वस्त्ररहितही होते हैं. इसवास्ते जिस जिनप्रतिमाको लिंगका आकार न होवे, सो जिनप्रतिमाही नही है. क्योंकि जिनवरके रूपसमानही जिनबिंब बनाना चाहिये; अन्यथा ध्यानमें विलंब होता है. इसवास्ते वस्त्रादिककी शोभा करे, स्थिर ध्यान नही हो सकता है.

उत्तरः-जिनेंद्रके तो अतिशयके प्रभावसें लिंगादि नही दीखते हैं, और प्रतिमाके तो अतिशय नही है, इसवास्ते तिसके लिंगादि दीख पडते हैं; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा माना जिनबिंब कैसे सिद्ध हुआ? अपितु नही सिद्ध हुआ. और तुमारे मतके खडे योगासन लिंगवाली प्रतिमाके देखनेसें, स्त्रियोंके मनमें विकृति (विकार) होनेका भी संभव है; जैसें सुंदर भग कुचादि आकारवाली स्त्रीकी मूर्त्ति देखनेसें पुरुषके मनमें विकृति होवे है. और लिंग देखनेसें जिनप्रतिमा, सुभग भी नही दीखती है. और उदयपुरके जिलेमें वागडदेशमें तुमारे मतके लिंगाकार प्रकट वाले नेमीश्वरादिके खडे योगके ऐसें बिंब हैं कि जिनके दर्शन करनेवास्ते सगे बहिनभाइ भी प्रायः साथ एककालमें नही जाते हैं. और अन्यमतवाले भी, ऐसे बिंबको देखके उपहास्य करते हैं. यद्यपि महादेवका केवल लिंगही अन्यमतवाले पूजते हैं, परंतु जिसने यह शिवजीका लिंग है, ऐसा नही सुना है, वो लिंगको प्रथमही देखनेसें नही जान सकता है कि, यह किसीका लिंग है. क्योंकि, उसमें लिंगकी पूरी पूरी आकृति नही है; किंतु केवल अव्यक्त एक पत्थरकी लंबीसी पिंडी दीखती है. तथापि, प्रायः संन्यासी लोक, नग्न होनेसें तिसके दर्शन नही करते हैं; ऐसा सुनते हैं.

और तुमने तो पुरुषाकार प्रतिमाके वृषणोंके ऊपर ऐसा लिंगाकार वनाया है कि, जिसको जो कोइ देखेगा, तिसकोही अच्छा नही लगेगा; तो फिर, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब किसतरें सिद्ध हुआ?

और जो तुम जिनसमान जिनका बिंब मानते हो, तब तो, जिनबिंबके भमूह (भाफण) श्याम करने चाहिये; आंखें खुणेसें लाल, डौले श्वेत, आना काला, कीकी अतिकाली, ऐसी बनानी चाहिये; दाडीमूंछ काली वनानी चाहिये; हाथपगके तले रक्त (लाल) करने चाहिये; जेकर ऐसें न करोगे, तब तो, जिनवरसमान तुमारा जिनबिंब कदापि सिद्ध नही होवेगा.

तथा जैसा समवसरणमें जिनेश्वरका आकार है, तैसाही आकार तुम प्रतिमाका मानते हो; तब तो, पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर करा हुआ धरणेंद्रका सर्प्पाकार छत्र क्यों बनाते, और मानते हो? क्योंकि, धरणेंद्रने तो छद्मस्थावस्थामें खडे पार्श्वनाथ भगवंतके शिरपर छत्र फणाकारका करा था, नतु समवसरणमें बैठोंके. और जिस जिनेंद्रको बैठें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तिसका बिंब खडे योग क्यों बनाते हो? और जिनवरका रूप तो, लक्षभूषणोंके आकारवाला देदीप्यमान था; और तुमारी प्रतिमाका तो, तैसा रूप है नही. तो फिर, जिनस्वरूपका स्मरण तुमको कैसें हो सकता है? और पार्श्वनाथ भगवंतका वर्ण तो, प्रियंगुवर्ण–मोरकी ग्रीवासमान था; और तुम तो श्याम, रक्त, पीत, श्वेतवर्णकी प्रतिमा वनाते हो. तो फिर, तदनुरूप कैसें सिद्ध हुई? इसवास्ते कटक कुंडल मुकुटादि आभरणोंसंयुक्त, और धूप दीप नैवेद्य पुष्प फलादिसें जिनराजका पूजन करना चाहिये. क्योंकि दिगंबराम्नायके शास्त्रोंमें भी ऐसेही पूजाविधान लिखा है; सो यत्किंचित् लिखते हैं.

श्रीउमास्वामीने श्रावकाचार किया है, तिसमें पूजा प्रकरणमें ऐसें लिखा है. ॥

स्नानैर्विलेपनविभूषितपुष्पवासदीपैः प्रधूपफलतंदुलपत्रपूगैः ॥
नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्रवादित्रगीतनृतस्वस्तिककोषदूर्वा॥ १॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा चान्यत्
प्रियं तदिह भाववशेन योज्यम् ॥

भावार्थः—स्नान १, विलेपन २, पुष्प ३, वास ४, दीप ५, धूप ६, फल ७, तंदुल ८, पत्र ९, सुपारी १०, नैवेद्य ११, जल १२, वस्त्र १३, चामर १४, छत्र १५, वादित्र १६, गीत १७, नाटक १८, स्वस्तिक १९, कोष (भंडार) २०, और दूर्वा २१, यह इकवीस प्रकारकी श्रीजिनराजकी पूजा जाणनी, तथा और भी, जो प्रिय होवे, सो शुद्ध भावोंसें पूजनमें योजन करना.

तथा भगवदेकसंधिविरचित श्रीजिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

नित्यपूजाविधाने तु त्रिजगत्स्वामिनः प्रभोः ॥
कलशेनैककेनापि स्नापनं न विगृह्यते ॥ १ ॥
विदध्यात्कलहमित्यादि—॥

भावार्थः—नित्यपूजाविधानमें त्रिजगत्स्वामी भगवान्को एक कलशसें भी स्नान जो नही कराते हैं, तिनको कलह कुलका नाश आदि प्राप्त होवे हैं, ऐसें जाणना.

तथा श्रीउमास्वामिविरचित श्रावकाचारमें ऐसें कहा है. ॥

प्रभाते घनसारस्य पूजा कुर्याज्जिनेशिनाम् ॥

तथा ॥

चंदनेन विना नैव पूजा कुर्यात्कदाचन ॥

भावार्थः—प्रभातके समय घनसार (बरास) सें श्रीजिनराजकी पूजा करनी. । तथा—चंदनके विना कदापि पूजा नही करनी.

तथा वसुनंदीजिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

अनर्चितपदद्वंद्वं कुंकुमादिविलेपनैः ॥
बिंबं पश्यति जैनेंद्रं ज्ञानहीनः स उच्यते ॥ १ ॥

भावार्थः—कुंकुम (केसर) आदि सुगंधित द्रव्योंके लेपसें रहित चरण है जिसके, ऐसे जिनबिंबका जो दर्शन करता है, तिसको ज्ञानहीन पुरुष कहिये हैं.

तथा आराधना कथाकोषमें ऐसें लिखा है.॥

अहिछत्रपुरे राजा वसुपालो विचक्षणः ॥
श्रीमज्जैनमते भक्तो वसुमत्यभिधा प्रिया ॥ १ ॥
तेन श्रीवसुपालेन कारितं भुवनोत्तमम् ॥
लसत्सहस्रकूटे श्रीजिनेंद्रभवने शुभे ॥ २ ॥
श्रीमत्पार्श्वजिनेंद्रस्य प्रतिमापापनाशिनी ॥
तत्रास्ति चैकदा तस्यां भूपतेर्वचनेन च ॥ ३ ॥
दिने लेपं दधत्युच्चैर्लेपकाराः कलान्विताः ॥
मांसादिसेवकास्ते तु ततो रात्रौ सलेपकः ॥ ४ ॥
पतत्येव क्षितौ शीघ्रं कदर्थ्यंते खिला भृशम् ॥
एवं च कतिचिद्वारैः खेदाखिन्ने नृपादिके ॥ ५ ॥
तदैकेन परिज्ञात्वा लेपकारेण धीमता ॥
देवताधिष्ठितां दिव्यां जिनेंद्रप्रतिमां हि ताम् ॥ ६ ॥
कार्यसिद्धिर्भवेद्यावत्तावत्कालं सुनिश्चलम् ॥
अवग्रहं समादाय मांसादेर्मुनिपार्श्वतः ॥ ७ ॥
तस्यां लेपः कृतस्तेन सलेपः संस्थितस्तदा ॥
कार्यसिद्धिर्भवत्येवं प्राणिनां व्रतशालिनाम् ॥ ८ ॥
तदासौ वसुपालेन भूभुजा परया मुदा ॥
नानावस्त्रसुवर्णाद्यैः पूजितो लेपकारकः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अहिछत्रपुरनामा नगरका राजा वसुपालनामा हुआ, जो विचक्षण और श्रीजैनधर्मका भक्त था, तिसकी राणीका नाम वसुमती था, तिस वसुपाल राजाने अपने बनवाये सहस्रकूट नामा श्रीपार्श्वनाथके मंदिरमें पापोंके नाश करनेवाली श्रीपार्श्वनाथकी प्रतिमा स्थापन करी; एकदा प्रस्तावे तिस राजाने लेपकारोंको श्रीपार्श्वनाथजीकी प्रतिमाके ऊपर लेप करनेकी आज्ञा करी, तब कलावान् लेपकार, दिनमें अतिशय

मेहनत करके लेप करते हैं, परंतु लेपकार मांसादिके सेवनेवाले होनेसें सो लेप रात्रिकेविषे जलदी भूमिऊपर गिर पडता है, जिससें लेपकारादि बहुत कदर्थनाको प्राप्त होते हैं. कितनेहीवार ऐसें करते रहें, परंतु लेप ठहरता नही है, और राजादि खेदको प्राप्त हुए; तब बुद्धिमान् एक लेपकारने तिस जिनेंद्रकी दिव्यप्रतिमाको देवताधिष्ठित जानके, जबतक कार्यसिद्धि न होवे, तबतक, अर्थात् तितने कालका मांसादि नही खानेका मुनिके पाससें नियम लेके, तिस प्रतिमाके ऊपर लेप करा; तब सो लेप ठहर गया. ऐसें व्रतशालि प्राणियोंको कार्यसिद्धि होवे हैं. तब वसुपाल राजाने परमहर्षसें अनेक प्रकारके वस्त्रसुवर्णादिकोंकरके तिस लेपकारका पूजन करा.

वसुनंदीकृत प्रतिष्ठापाठसें ऐसें लिखा है. ॥

कर्पूरैलालवंगादिद्रव्यमिश्रितचंदनैः ॥
सौगंधवासिताशेषदिङ्मुखैश्चर्चयेज्जिनम् ॥ १ ॥

भावार्थः—सुगंधकरके वासित करी है संपूर्ण दिशायें जिनोंने, ऐसें कर्पूर, एलाफल (इलायची), लवंग, आदि द्रव्योंकरके मिश्रित चंदनसें जिनको चर्चे अर्थात् लेप करें.

तथा धर्मकीर्त्तिकृत नंदीश्वरस्थ जिनबिंबकी पूजामें ऐसे लिखा है. ॥

कर्पूरकुंकुमरसेन सुचंदनेन
येजैनपादयुगलं परिलेपयंति ॥
तिष्ठंति ते भविजनाः सुसुगंधगंधा-
दिव्यांगनापरिवृताः सततं वसंति ॥ १ ॥

भावार्थः—जे भव्यप्राणि कर्पूरकुंकुमके रसकरी, और भले चंदनकरके, जिनपादयुगलको लेप करते हैं, वे भविजन सुसुगंध शरीरवाले होके, दिव्यरूपवाली देवांगनाओंके साथ परिवरे हुए निरंतर सागरोंतक बसते हैं.

तथा पूजासारनामा जिनसंहितामें ऐसें लिखा है. ॥

समृद्धिभक्तया परया विशुद्धा कर्पूरसंमिश्रितचंदनेन ॥
जिनस्य देवासुरपूजितस्य सुलेपनं चारु करोमि मुक्तयै ॥ १ ॥

भावार्थः—अपनी समृद्धिपूर्वक परमविशुद्ध भक्तिसें मिश्रितचंदनकरके देवअसुरादिकोंसें पूजित ऐसें जिनको मुक्तिकेवास्ते भला लेपन करता हूं.

तथा त्रिवर्णाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

जिनांघ्रिचंदनैः स्वस्य शरीरे लेपमाचरेत् ॥
यज्ञोपवीतसूत्रं च कटिमेखलया युतम् ॥ १ ॥
जिनांघ्रिस्पर्शितां मालां निर्मले कंठदेशके ॥
ललाटे तिलकं कार्यं तेनैव चंदनेन च ॥ २ ॥

भावार्थः—जिनमूर्त्तिके चरणकमलके चंदनसें अपने शरीरको लेप करे, और कटिमेखला (कंदोरा—तरागडी) संयुक्त यज्ञोपवीत अपने शरीर-ऊपर धारण करे; । तथा जिनमूर्त्तिके चरणोंको स्पर्शी हुई मालाको अपने कंठमें धारण करे, तथा अपने ललाटऊपर तिसही चंदनसें तिलक करे. ॥

तथा पूजासारसें ऐसें लिखा है. ॥

ब्रह्मघ्नोथवा गोघ्नो वा तस्करः सर्वपापकृत् ॥
जिनांघ्रिगंधसंपर्कान्मुक्तो भवति तत्क्षणम् ॥ १ ॥

भावार्थः—जो ब्रह्मघाती, तथा गोघाती, तथा तस्कर—चौर, तथा सर्व पापोंके करनेवाला पुरुष है, सो भी, जिनेंद्रके चरणोपरि लगे हुए गंधके स्पर्शसें, अर्थात् तिस गंधको भक्तिपूर्वक अपने शरीरको लगानेसें, तत्क्षण शीघ्रही पूर्वोक्त पापोंसें मुक्त होता है—छूट जाता है. ॥

तथा श्रीपालचरित्रमें ऐसें लिखा है.

दिवसाष्टकपर्यंतं प्रपूजय निरंतरम् ॥
पूजाद्रव्यैर्जगत्सारैरष्टभेदैर्जलादिकैः ॥ १ ॥

तच्चंदनसुगंध्यंबुस्रजोऽव्याधिहराः स्फुटम् ॥
प्रत्यहं त्वत्पतेर्भक्त्या प्रयच्छ रोगहानये ॥ २ ॥

भावार्थः-मदनसुंदरीको महामुनिने कहा कि, श्रीसिद्धचक्रका आठ दिनपर्यंत निरंतर जगत्में सारभूत ऐसें जलादि आठ प्रकारके पूजाके द्रव्यसें, अर्थात् अष्टद्रव्यसें पूजन कर; और निरंतर व्याधिको हरनेवाले, ऐसें सिद्धचक्रको स्पर्शे हुए, चंदन, सुगंध, जल, और माला, रोगके दूर करने वास्ते भक्तिसें अपने पतिको लगाव.

तथा निर्वाणकांडमें ऐसें लिखा है. ॥

गोमट्टदेवं वंदामि पंच सयंधणुहदेहउच्चंतं ॥
देवा कुणंति विट्ठिं केसरकुसुमाण तस्सउवरिम्मि ॥ १ ॥

भावार्थः-गोमट्टदेव (बाहुबल) को मैं वंदना करता हूं, कैसें हैं गोमट्टदेव? जिसका पांचसौ धनुष्य प्रमाण उच्चदेह है, और तिसके ऊपर देवता केसर और पुष्पोंकी वर्षा करते हैं.

तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालामें ऐसें लिखा है. ॥

इतीमं निश्चयं कृत्वा दिनानां सप्तकं सती ॥
श्रीजिनप्रतिबिंबानां स्नपनं समकारयत् ॥ १ ॥
चंदनागरुकर्पूरसुगंधैश्च विलेपनम् ॥
सा राज्ञी विदधे प्रीत्या जिनेंद्राणां त्रिसंध्यकम् ॥ २ ॥

भावार्थः-यह (पूर्वोक्त) निश्चय करके मदनावलीनामा राणी, श्रीजिनेंद्रप्रतिमाको सात दिन स्नान कराती भई; और प्रीतिसें त्रिसंध्यामें जिनेंद्रको चंदन अगरकर्पूरादि सुगंध द्रव्योंसें विलेपन करती भई.

तथा प्रतिष्ठापाठमें ऐसें लिखा है. ॥

जिनांघ्रिस्पर्शमात्रेण त्रैलोक्यानुग्रहक्षमाम् ॥
इमां स्वर्गरमादूतीं धारयामि वरस्रजम् ॥ १ ॥

भावार्थः-मैं प्रधानमालाको धारण करता हूं, कैसी माला? जिनेंद्रके चरणके स्पर्शमात्रसें तीनों लोकोंको अनुग्रह करनेमें समर्थ, और स्वर्गकी लक्ष्मीकी प्राप्तिसें दूतीसमान.

तथा आराधनाकथाकोषमें करकंडुके चरित्रमें ऐसें लिखा है. ॥

तदा गोपालकः सोपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः ॥
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्मं ग्रहाणेदमिति स्फुटम् ॥ १ ॥
उक्त्वा जिनेंद्रपादाब्जोपरि क्षिप्त्वाशु पंकजम् ॥
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्मशर्मदम् ॥ २ ॥

भावार्थः—तब सो गोपाल भी श्रीजिनमूर्त्तिके आगे स्थित होके, भो सर्वोत्कृष्ट! यह कमल ग्रहण कर, ऐसा कहके श्रीजिनेंद्रके चरणकमलोपरि कमलको शीघ्र क्षेपन करके, गया; इत्यादि.

तथा श्रीजिनयज्ञकल्पप्रतिष्ठाशास्त्रमें ऐसें लिखा है. ॥

"॥ श्रीजिनेश्वरचरणस्पर्शादनर्घ्या पूजा जाता सा माला महाभिषेकावसाने बहुधनेन ग्राह्या भव्यश्रावकेनेति ॥"

भावार्थः—श्रीजिनेश्वरके चरणस्पर्शसें अमूल्य पूजा हुई, सो महाभिषेक अंतमें भव्य श्रावकने बहुत धनकरके ग्रहण करनी.

तथा व्रतकथाकोषमें ऐसे लिखा है. ॥

तत्प्रश्नाच्छ्रेष्ठिपुत्रीति प्राह भद्रे शृणु ब्रुवे ॥
व्रतं ते दुर्लभं येनेहामुत्र प्राप्यते सुखम् ॥ १ ॥
शुक्लश्रावणमासस्य सप्तमीदिवसेर्हताम् ॥
स्नापनं पूजनं कृत्वा भक्त्याष्टविधमूर्जितम् ॥ २ ॥
ध्रीयते मुकुटं मूर्ध्नि रचितं कुसुमोत्करैः ॥
कंठे श्रीवृषभेशस्य पुष्पमाला च ध्रीयते ॥ ३ ॥

भावार्थः—तिसके प्रश्नसें आर्यिकाजी कहती भई, हे भद्रे श्रेष्ठिपुत्रि! सुण, मैं तुजको व्रत कहती हूं; जिस व्रतके प्रभावसें इसलोकमें, और परलोकमें दुर्लभ सुख प्राप्त करिये हैं;। सोही व्रत दिखावे हैं. शुक्लश्रावणमासकी सप्तमीके दिन अर्हन् भगवान्की मूर्त्तियोंको भक्तिसें स्नान करायके, अष्टद्रव्यकरके जिनेंद्रका पूजन करके, कुसुमोंके (पुष्पोंके) समूहसें रचे

७५

हुए मुकुटको जिनेंद्रके मस्तक ऊपर धारण करिये, और श्रीऋषभदेवके कंठमें पुष्पमाला धारण करिये. इत्यादि ॥

तथा श्रीपाल चरित्रमें ऐसें लिखा है. ॥

तत्र नंदीश्वराष्टम्यां सिद्धचक्रस्य पूजनम् ॥
चक्रे सा विधिना दिव्यैर्जलैः कर्पूरचंदनैः ॥ १ ॥
अक्षतैश्चंपकाद्यैश्च पक्वान्नैर्वरदीपकैः ॥
धूपैः सुगंधिभिर्भक्त्या नालिकेरादिसत्फलैः ॥ २ ॥
तद्विलेपनगंधांबुपुष्पाणि सा ददौ मुदा ॥
श्रीपालायांगरक्षेभ्यः पाणिभ्यां रुग्विहानये ॥ ३ ॥

भावार्थः—तब मदनसुंदरी, अष्टान्हिकाविषे सिद्धचक्रका विधिसें, दिव्य जल, कर्पूर, चंदन, अक्षत, चंपकादि पुष्प, पक्वान्न, दीपक, सुगंधिधूप, और नालिकेरादि सुंदर फल, इत्यादि विविध द्रव्योंकरके पूजन करती भई; और तिस पूजनके विलेपन गंधोदक पुष्पोंको (अर्थात् नैर्माल्यको) श्रीपालकेतांइ, तथा अंगरक्षकोंकेतांइ रोगहानिके वास्ते, अर्थात् रोगके दूर करनेवास्ते अपने हाथोंसें देती भई. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसा कवित्त कहा है ॥

जगतके जीव तिन्है, जीतिकै गुमानी भयो ।
ऐसो कामदेव एक, जोधा यो कहायो है ॥
ताके सर जानी यत, फूलनीके वृंद वहु ।
केतकी कमल कूंद, केवरा सुहायो है ॥
मालती महासुगंध, वेलकी अनेक जाती ।
चंपक गुलाब जिन, चरनन चढायो है ॥
तेरीही सरन जिन, जोर न वसाय याको ।
सुमनसुं पूजो तोही, मोहि ऐसो भायो है ॥ १ ॥

तथा योगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

"॥ दीवंदइ दिणइ जिणवरहं मोहहं होइ णट्ठाइ ॥"

भावार्थः-जो श्रीजिनेंद्रकी दीपकसें पूजा करता है, तिसका मोह अर्थात् अज्ञान नष्ट होता है. ॥

तथा जिनसंहिताविषे ऐसा लिखा है. ॥

ॐकैवल्यावबोधार्को द्योतयत्यखिलं जगत् ॥
यस्य तत्पादपीठाग्रे दीपान् प्रद्योतयाम्यहम् ॥ १ ॥

भावार्थः-जिसका केवलज्ञानरूपी सूर्य संपूर्ण जगत्को प्रकाश करता है, तिस जिनेंद्रके पादपीठके आगे मैं दीपकोंको प्रकाशता हूं. ॥

तथा भय्या भगवतीदासकृत ब्रह्मविलासमें ऐसें लिखा है. ॥

दीपक अनाये चहुं गतिमें न आवे कहुं ।
वर्त्तिके बनाये कर्मवर्त्ति न बनतु हैं ॥
आरती उतारतही आरत सब टर जाय ।
पाय ढिंग धरे पापपंकति हरतु हैं ॥
* * * * * * * * *
वीतराग देवजुकी कीजे दीपकसों चित्त लाय ।
दीपत प्रताप शिवगामी यों भनतु हैं ॥ १ ॥

तथा श्रीउमास्वामिविरचितश्रावकाचारमें ऐसें लिखा है. ॥

मध्याह्ने कुसुमैः पूजा संध्यायां दीपधूपयुक् ॥
वामांगे धूपदाहश्च दीपं कुर्याच्च सन्मुखम् ॥ १ ॥
अर्हतो दक्षिणे भागे दीपस्य च निवेशनम् ॥

भावार्थः-मध्यान्हमें कुसुम (फूलों) सें पूजा करनी, संध्यामें दीपधूपसंयुक्त पूजा करनी, भगवानके वामपासे धूपदाह करना, और सन्मुख दीपक करना, और अर्हन्के दक्षिण पासे दीपकको स्थापन करना. ॥

तथा बणारसीदासजीने कहा है. ॥

॥ दोहा. ॥ पावक दहे सुगंधकूं, धूप कहावत सोय ॥
खेवत धूप जिनेशकुं, अष्टकर्म क्षय होय ॥ १ ॥

तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें ऐसें लिखा है. ॥

एवं काऊण रओ खुहियसमुद्दोव गज्जमाणेहिं ॥
वरभेरीकरडकाहलजयघंटासंखणिवहेहिं ॥ १ ॥
गुलगुलंति तिविलेहिं कंसतालेहिं झमझमंतेहिं ॥
धुमंतफडहमद्दलहुडकमुखेहिं विविहेहिं ॥ २ ॥
चिट्ठेज्ज जिणगुणारोवणं कुणंतो जिणंदपडिबिंबे ॥
इट्ठविलग्गसुदएइ चंदणातिलयं तओ दिज्जइ ॥ १ ॥
सव्वावयवेसु पुणो मंत्तण्णासं कुणिज्ज पडिमाए ॥
विविहच्चणं च कुज्जा कुसुमेहिं बहुप्पयारेहिं ॥ २ ॥
वलिवत्तिएहिं जुवारेहिय सिद्धत्थपण्णरुक्खेहिं ॥
पुव्वुत्तवयरणेहि य रइज्ज पूयं सविहवेण ॥ १ ॥
गहिऊण सिसिरकरकिरणणियरधवलरयणभिंगारं ॥
मोत्तिपवालमरगयसुवण्णमणिखचियवरकंठं ॥ १ ॥
सुयवुत्तकुसुमकुवलयरजपिंजरसुराहिविमलजलभारियं ॥
जिणचलणकमलपुरओ खेविज्जउ तिण्णधाराओ ॥ २ ॥
कप्पूरकुंकुमायरुतरुक्कमिस्सेण चंदणरसेण ॥
वरबहुलपरिमलामोयवासियासासमूहेण ॥ ३ ॥
वासाणुमग्गसंपत्तामयमत्तालिरावमुहलेणं ॥
सुरमउडघडियचलणं भत्तिए समलहिज्ज जिणं ॥ ४ ॥
ससिकंतखंडविमलेहि विमलजलोहिं सित्तअइसुअंधेहिं ॥
जिणपडिमपइट्ठिए जिय विसुद्धपुण्णंकुरेहिं च ॥ ५ ॥
वरकलमसालितंदुलचाणिहसुछंडियदीहसयलेहिं ॥
मणुयसुरासुरमहियं पूजिज्ज जिणिंदपयजुयलं ॥ ६ ॥

मालियकयंबकणयारियंपयासोयबउलातिलएहिं ॥
मंदारणायचंपयपउमुप्पलसिंदुवारेहिं ॥ ७ ॥
कणवीरमल्लियाइं कचणारमयकुंदकिंकराएहिं ॥
सुरवणजजुहियापारिजास्सवणढगरेहिं ॥ ८ ॥
सोवण्णरूवमेहि य मुत्तादामेहि बहुवियप्पेहिं ॥
जिणपयसंकयजुयलं पूजिज्ज सुरिंदसयमहियं ॥ ९ ॥
दहिदुद्धसप्पिमिस्सेहि कमलमत्तएहिं बहुप्पयारेहिं ॥
तेवट्ठिवंजणेहि य बहुविहपक्कणभेएहिं ॥ १० ॥
रूप्पसुवण्णकंसाइथालणिहिएहिं विविहभरिएहिं ॥
पूयं वित्थारिज्जा भत्तिए जिणंदपयपुरओ ॥ ११ ॥
दीवेहि णियपहोहामियक्कतेएहिं धूमरहिएहि ॥
मंदमंदाणिलवसेण णच्चंतहिं अच्चणं कुज्जा ॥ १२ ॥
घणपडलकम्मणिचयव्व दूरमवसारियंधयारेहिं ॥
जिणचलणकमलपुरओ कुणिज्ज रयणं सुभत्तिए ॥ १३ ॥
कालायरुणहचंदणकप्पूरसिल्हारसाइदव्वेहि ॥
णिप्पण्णधूमवत्तिहि परिमलापंतियालीहिं ॥ १४ ॥
उग्गासिहादेसिएहि सग्गमोक्खमग्गहि बहुलधूमेहि ॥
धुविज्ज जिणिंदपायारविंदजुयलं सुरिंदणुयं ॥ १५ ॥
जंवीरमोयदाडिमकवित्थपणसूयनालिएरेहिं ॥
हिंतालतालखज्जुरबिंबणारंगचारेहिं ॥ १६ ॥
पुइफलतिंदुआमलयजंबूबिल्लाइसुरहिमिट्ठेहिं ॥
जिणपयपुरओ रयणं फलेहि कुज्जा सुपक्केहिं ॥ १७ ॥
अट्ठविहमंगलाणि य बहुविहपूजोवयरणदव्वाणि ॥
धूवदहणाइ तहा जिणपूयत्थं वितीरिज्जइ ॥ १८ ॥

भावार्थः—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार शब्द करी, कैसा शब्द ? क्षोभकों प्राप्त हुआ समुद्र तिसका जो गरजारव तिसकी उपमा योग्य श्रेष्ठ, भेरी १, करड २, काहल ३, जयघंटा ४, शंख ५, इन वाजित्रके समूहके शब्द-करी गुलगुल अर्थात् अव्यक्तशब्द होय है; तथा तिविल १, और कांसी, ताल, मंजीरे, आदि वाजित्रोंके झमझम शब्द होय है; तथा पटहढोल १, मृदंग २, आदि वाजित्रके शब्दोंकरी एकधूम मची रही है;। इत्यादि ॥ नाटक करनेका विधि है.

तथा—जिनेंद्रके गुणोंका आरोपण, जिनप्रतिमामें स्थापन करता हुआ बैठे; और इष्टलग्नोदयके हुए, जिनप्रतिमाको तिलक देवें। पीछे प्रतिमाके सर्व अवयवोंमें मंत्रन्यास करें; पीछे वहुप्रकारके कुसुम—पुष्पोंकरके अनेक प्रकारकी पूजा करें.

तथा—वारनाकरी, तथा जवारेके हरित अंकुरोंकरी, तथा सरसवपत्र, और वृक्षोंकरी, तथा पूर्वोक्त उपकरणोंकरी, अपने विभवानुसार जिन-प्रतिमाका पूजन करें. ॥

अथ पूजाविधिरुच्यते—अव आगे पूजाका विधि कहते हैं॥ चंद्रमाके किरणसमान उज्वल रत्नोंसें जडी हुई झारीको ग्रहण करी, जिनप्रतिमाके चरणकमलके आगे तीन धारा जलकी दीजे; (जिनप्रतिमाको न्हवण करानेका विधि प्रथमकी गाथायोंमें है—एवं चत्तारिदिणा—इत्यादि) कैसी है झारी ? मोती, प्रवाल, (गुलीयां), मर-कत, स्वर्ण, मणि, इनोंकरके खचित—जडा हुआ है कंठ, अर्थात् सुंदर मणिमोतीसुवर्ण आदिकोंसें जडी हुई प्रनालिका—जल नीकलनेकी टूटी है जिसकी, तथा सूत्रोक्त पुष्प और कमलादिकोंकी रजकरी पीत, और सुगंधित, ऐसा निर्मल जल भरा है जिसमें. ॥ इतिजलपूजा—॥

कर्पूर, केसर, अगर, मलयागिरमिश्रित चंदनरसकरके घसनेसें प्रचुर सुगंधकरके वासित करा है दिशासमूह जिसने, तथा सुगंध द्रव्यके अनुमार्गकरके प्राप्त हुए, भ्रमरोंकी जो मदोन्मत्त पंक्ति तिसकरके वाचालकृतअर्थात् जिस गंधके प्रचुर सुगंधसें चारों तर्फ भ्रमर फिर रहे हैं

तथा अव्यक्त ध्वन्युच्चार कर रहे हैं. ऐसी सुंदर सुगंधसें देवताके मुकुटकरके घाटित स्पर्शित चरणकमल है जिसके, ऐसें श्रीजिनेश्वरदेवको विलेपन करें. ॥ इतिगंधपूजा-॥

चंद्रमाकी चांदनीसमान अतिउज्वल अखंडित निर्मल अतिसुगंधित, तथा निर्मल जलकरके धोए हुए, ऐसें अक्षत (चावलों) करके जिन-प्रतिमाके प्रतिष्ठित हुए पूजन करना; कैसें पूर्वोक्त चावल ? मानुं पुण्यके अंकुर है; । अति मिष्ट कलमशाली और तंदुलके समूहको स्वच्छ करके तिन चावलोंकरके, मनुष्य सुरासुरकरके पूजित ऐसें श्रीजिनेंद्रके पदयुगलकों पूजें. ॥ इत्यक्षतपूजा-॥

मालती, कदंब, सूर्यसुखी, अशोक, बकुल, (बोलसिरी) तिलकवृक्षके पुष्प, मंदारनामा पुष्प, नागचंपेके पुष्प, उत्पल-कमल, निर्गुंडीके, कण-वीर (कंडीर) के, मल्लिकानामा, कचनारके, मचकुंदके, किंकर, कल्पवृ-क्षके, जूईके, पारिजातिकके, जासूसके पुष्प, डमरेके पत्र, सोनेके पुष्प, चांदीके पुष्प, इत्यादि अनेक प्रकारके पुष्पोंकरके, तथा मोतीकी माला आदि अनेक प्रकारकी मालायोंकरी, देवेंद्रादिकोंकरके पूजित ऐसे श्रीजिनेंद्रके चरणयुगलोंका पुजन करे. ॥ इतिपुष्पपूजा-॥

दहिदुग्धघृतकरी मिश्रित मिष्टतंदुलका भात करी, तथा नानाप्रकारके शाक आदि व्यंजन (तीमन) करी, तथा नानाप्रकारके पक्वान्नकरी सोना चांदी कांसी आदिके थालोंमें मोदकादि अनेकप्रकारके भक्ष्यको स्थापन करी, श्रीजिनवरके चरणकमलके आगे भक्तिसें पूजाका विस्तार करें. ॥ इतिनैवेद्यपूजा-॥

तथा भगवान्‌के चरणकमलके आगे भक्तिसें दीपककी रचना करें. कैसें दीपककी ? अपनी प्रभाके समूहकरके सूर्यके सदृश प्रताप धारण करा है जिनोंने, तथा धूमकरके रहित शिखा है जिनकी, तथा मंदमंद पवनके वशसें नृत्यकेसमान नृत्य करते संते, तथा अतिसघनकर्मके पटलके समूहके समान जो अंधकार तिसको अपने प्रकाशके अतिशय-

करके दूर करते संते, ऐसें दीपकोंकी रचना, भक्तिसें प्रभुके चरणकमलके आगे करनी. ॥ इति दीपकपूजा–॥

कालागुरु (अगर), अंबर, चंदन, कर्पूर, सिल्हारसादि सुगंध द्रव्योंकरके उपनी जो वर्त्तियां, तिनोंकरके सुरेंद्रकरके स्तवे हुए श्रीजिनेंद्रके चरणकमलको धूपित करे. कैसी वर्त्तियां? सुगंधकी पंक्ति, और धूमकी उग्र शिखा, तिनोंकरके दिखाया है स्वर्ग और मोक्षका मार्ग जिनोंने. ॥ इति धूपपूजा– ॥

जंवीरफल, कदलीफल (केला), दाडिम (अनार), कपित्थ (कौठ), पनस, तूत, नालिएर, हिंताल, ताल, खर्जूर, किंदूरी (गोल्हफल), नारंगी, सुपारी, तिंदुक, आमला, जांवू, विल्व, इत्यादि अनेक प्रकारके आगे सुगंधित, और मिष्ट पक्व हुए फलोंकरके जिनेंद्रके चरणकमलके आगे रचना करनी. ॥ इति फलपूजा– ॥

अष्टविध मंगल द्रव्य झारी १, कलश २, चामर ३, छत्र ४, ध्वजा ५, तालवींजना ६, स्वस्तिक ७, दर्प्पण ८, तथा वहुविध पूजाके उपकरण, तथा धूपदहन आदि, भगवानकी पूजाके अर्थे विस्तारना. ॥ इति पूजाविधानम्–॥

इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें, तथा और भी मुक्तावलिपूजा, नरेंद्रसेनभट्टारककृत प्रतिष्ठापाठ, प्रभाकरसेनकृत प्रतिष्ठापाठ, आशाधरकृत प्रतिष्ठापाठ, योगींद्रदेवकृत श्रावकाचार, भगवदेकसंधिकृतजिनसंहितादि शास्त्रोंमें नानाप्रकारका पूजाविधान कथन करा है. ॥ तथा भगवज्जिनसेनाचार्यकृत आदिपुराणमें लिखा है कि, उत्तमकुलके मनुष्यको जैसें गुरुजनकी माला, अपने शिरपर धारण करने योग्य है, तैसेंही जिनपदस्पर्शितपुष्पकी माला, अपने शिरऊपरि धारने योग्य है. । तथा श्रीअजितनाथ तीर्थंकरकी माता जयसेनाने वाल्यावस्थामें अष्टाइमहोत्सव करके, अर्हन्के शरीरको विलेपन करा, पुष्पमाला चढाई. पीछे जिनप्रतिमाके चरणकों स्पर्शी हुई तिस मालाको लेके अपने पिताको देई, पिताने भी खुशीसें लेके पुत्रीको पारणा करनेकों विदाय करी. इत्यादि कथन श्रीअजितनाथ पुराणमें है. तथा सुलोचनाने ऐसेंही गंधोदक, और पुष्पमाला, अपने पिता अकंपनामा राजाको दीनी.

जो कथन श्रीआदिपुराणमें है. तथा पद्मनंदिआचार्यने, पद्मनंदिपच्चीसीमें दीपकोंकी श्रेणिकरके प्रभुको आरती करनी कही है. । तथा जिनसंहितामें, कार्त्तिकमासमें कृत्तिकानक्षत्रके संध्यासमयमें श्रीजिनमंदिरमें कार्त्तिकोत्सव करनेका विधि लिखा है; जिसमें लिखा है कि, यथोक्त विधिकरके नानाप्रकारके नैवेद्य जिनाग्रे धारण करने, और पूजास्थानादि कितनेक स्थानोंमें घृत पूरित कर्पूरकी वत्ती आदिके दीपक करने, और मंडप, दरवाजा, परिवारगृह, प्राकारतट, तोरणादि ऊर्ध्व अधःस्थानोंमें तैलादि पूरित दीपक करने, इत्यादि. । तथा षट्कर्मोपदेशपरत्नमालामें, कर्पूरघृतादिकसें त्रिकाल दीपकपूजन लिखा है. इत्यादि अनेक शास्त्रोंमें पूजासंबंधि वर्णन है. इन सर्व लेखोंसें मालुम होता है कि, भगवान्की प्रतिमाको अंगीयांकी रचना नही करनी, यह केवल दिगंबर भाइयोंका हठही है; क्योंकि, चांदीकी, सुवर्णकी, मोतीकी, इत्यादि माला, और पुष्पका मुकुट, तथा सर्व शरीरकों विलेपन, इत्यादि करने तो ऊपर हम दिगंबरीय शास्त्रानुसारही लिख आए हैं. तो, श्वेतांबरकी अंगरचना, आभूषण पूजादिकोपरि क्यों संदेह करना चाहिये ? क्योंकि, जिसवास्ते श्वेतांवर पूर्वोक्त कार्य करते हैं, तिसहीवास्ते दिगंबरी भी करते हैं; सोही दिगंवरीय पुस्तकका पाठ थोडासा लिखते हैं. । तथाहि । " बहुरि सोनारूपाके पुष्प, तथा मोतीनिकी मालाका चढावना कह्या हैं, सो जिनमंदिरमें बहुद्रव्योपार्जनकै अर्थ, बहुरि अतिशोभाकै अर्थ, तथा प्रभावनाकी वृद्धिकै अर्थ, तथा उत्कर्षभावकी वृद्धिकै अर्थ, तथा बहुधनत्यागनेकै अर्थ, कृपणाई हरिवेकै अर्थ, तथा अतिउपमाकै अर्थ, इत्यादि. ॥ " परंतु मालाको चरणोपरि चढावनी, और गलेमें नही पहिरावनी, यह भी मनःकल्पित वृत्ति है. क्योंकि, माला गलेमेंही पहरी जाती है, सो आवालगोपालांगनामें प्रसिद्ध हैं. यदि गलेमें पहिरावनेसें आभरण हो जावे हैं, इसवास्ते नही पहिरावनी चाहिए, ऐसें कहो तो, मुकुट भी तो आभरणही है, और मुकुटको मस्तकोपरि स्थापन करना दिगंबरीय शास्त्रमेंही लिखा है; जो पाठ पूर्व लिख आए हैं.

दिगंबरीः—यह पूर्वोक्त पूजा विषयिक आपका श्रम, प्रायः व्यर्थ है. क्योंकि, हमारेही शास्त्रोंके पाठ हैं, और इन सर्वपाठोंको हम मानते हैं, और इन सर्वपाठानुसार हम करते भी हैं.

श्वेतांबरीः—यह आपका कथन सत्य है, परंतु हमारे पूर्वोक्त लेखोंमें कितनाक श्रम, वीसपंथी दिगंबरी आदि सर्व दिगंबराम्नायके वास्तेही हैं; जिसमें भी, पूजाविषयक श्रम तो, प्रायः तेरापंथी दिगंबरीयोंकेवास्ते हैं

तेरापंथी दिगंबरीः—पुष्पादिकसें पूजन करनाहि पाप है. क्योंकि, इसमें बडी हिंसा होती है. और धर्म तो, अहिंसामय है. अभिषेकमें और पुष्पादिके चढावनेमें बहुत सावद्यारंभ होता है, इसवास्ते हम पूर्वोक्त विधान नही करते हैं.

उत्तरः—वाहजी वाह !! आपको भी ढुंढकमतका स्पर्श हुआ मालुम होता है. क्योंकि, ऐसी जैनागमविरुद्ध श्रद्धा तो, अपठित ढुंढकमतावलंबीयोंकी है; परंतु दिगंबराम्नायकी तो ऐसी श्रद्धा नही है. बलकि, दिगंबराम्नायके श्रीयोगींद्रदेवकृत श्रावकाचारमें, तथा सारसंग्रहमें, तथा आराधनाकथाकोशादि शास्त्रोंमें लिखा है कि, श्रीजिनाभिषेकमें, पुष्पादिकसें जिनपूजा करनेमें, और तीर्थयात्रा, जिनबिंब, प्रतिष्ठा आदि कार्योंमें, जो आरंभ कहता है, और सावद्ययोग कहता है, तथा हिंसारंभ कथन करता है, सो मिथ्यादृष्टि है, दर्शनभ्रष्ट है, पापी है, सम्यग्दर्शनका घातक है, और श्रीजिनधर्मका द्रोही है.

तथाहि ॥

आरंभे जिणण्हावियए जो सावज्जं भणंति दंसणं तेण ॥
जिमइमालियो इच्छुण कांइओभंति ॥ १ ॥
जिनाभिषेके जिनबैप्रतिष्ठाजिनालये जैनसुयात्रयायां ॥
सावद्यलेशो वदते स पापी स निंदको दर्शनघातकश्च ॥ १ ॥
श्रीमज्जिनेंद्रचंद्राणां पूजा पापप्रणाशिनी ॥
स्वर्गमोक्षप्रदा प्रोक्ता प्रत्यक्षं परमागमे ॥ १ ॥

यः करोति सुधीर्भक्त्या पवित्रो धर्महेतवे ॥
स एकदर्शने शुद्धो महाभव्यो न संशयः ॥ २ ॥
यस्तस्या निंदकः पापी स निंद्यो जगति ध्रुवम् ॥
दुःखदारिद्र्यरोगादिदुर्गतिभाजनं भवेत् ॥ ३ ॥ इत्यादि.

भावार्थ ऊपरही कह दिया है. ॥ इसवास्ते शास्त्रोक्त श्रद्धान करके कर्त्तव्यता युक्त है. क्योंकि, पुष्पादिकोंकरके जिनोंने श्रीजिनराजका पूजन करा है, तिनोंने तिसका फल स्वर्गलोकादि यावत् क्रमसें मोक्ष पाया है; तिसका कथायुक्त पुण्याश्रव, तथा व्रतकथाकोश, तथा आराधनाकथाकोश, तथा षट्कर्मोपदेशरत्नमालादि अनेक दिगंबरीय शास्त्रोंमें विस्तारसें वर्णन करा है. परंतु, किसी भी जैनमतके शास्त्रमें, ऐसा नही लिखा है कि, फलाने पुरुषने, वा अमुक स्त्रीने पुष्पादिकोंसें श्रीजिनराजकी पूजा करी, और तिस पूजाके प्रभावसें नरक प्राप्त करी!!! और श्वेतांबरमतके श्रीराजप्रश्नीय (रायपसेणी) सूत्रमें तो, पूजाके पांच फल लिखे हैं:-

तथाहि ॥

"॥हियाए सुहाए खमाए निसेयसाए अणुगामित्ताए भविस्सइ॥"

भावार्थः-श्री जिनप्रातिमा पूजनेका फल पूजनेवालोंको हितकेवास्ते, सुखकेवास्ते, योग्यताके वास्ते, मोक्षके वास्ते, और जन्मांतरमें भी साथही आनेवाला है. ॥ इसवास्ते हठकदाग्रहको छोडके, शास्त्रोक्त-ही श्रद्धान करना योग्य है. यदि पूर्वोक्त फूल आदि द्रव्योंमें हिंसा मानके पूजन करना छोड देवोगे, तब तो, जिनप्रतिमा, जिनमंदिर, और गुलालवाडा, आदिका बनावना भी तुमकों छोड देना पडेगा, पूर्वोक्त कार्योंसें अधिकतर (तुमारी श्रद्धामुजिब) सावद्यारंभ होनेसें. तथा प्रतिष्ठा भी, नही करनी चाहियेगी, सावद्यारंभ होनेसें. वाहजी वाह!! दिगंबर नाम धरायके भी, दिगंबराचार्यकाही कथन यथार्थ नही मानते हो, तो औरोंके कथनका तो क्याहि कहना है?

और जिनप्रतिमा, जिनमंदिरके वनवानेका फल दिगंवराचार्योंनेही ऐसें कहा है.

तथाहि पूजाप्रकरणे ॥

कुंथुभरिदलमेत्ते जिणभवणे जो ठवेइ जिणपडिमं ॥
सरिसवमेत्तंपि लहइ सो णरो तित्थयरपुण्णं ॥ १ ॥
जो पुण जिणिंदभवणं समुण्णयं परिहितोरणसमग्गं ॥
णिम्मावइ तस्स फलं को सक्कइ वण्णिउं सयलं ॥ २ ॥

भावार्थः-कुंथुभरि (कुटुंवर) वृक्षके पत्रप्रमाण जिनभवनमें सरसवमात्र जिनप्रतिमाको जो स्थापन करे, सो भव्यप्राणी तीर्थंकर पुण्यप्रकृतिकों प्राप्त करे हैं. । और जो प्राणी भावोंसहित वडा ऊंचा शिखरवंध प्रदक्षिणा तोरणसहित जिनभवन वनवावे है, तिसके संपूर्ण फलका वर्णन करनेको कौन समर्थ है ? अपितु कोइ नही. ॥ तथा पूजाके फलका भी वर्णन पृथक् २ दिगंवराचार्योंने कहा है.

तथाहि षड्विधपूजाप्रकरणे ॥

जलधाराणिक्खवणे पावमलं सोहणं हवे णियमा ॥
चंदणलेवेण णरो जायइ सोहग्गसंपण्णो ॥ १ ॥
जायइ अक्खयणिहिरयणसामिओ अक्खएहि अक्खोहो ॥
अक्खीणलद्धिजुत्तो अक्खयसोक्खं च पावेइ ॥ २ ॥
कुसुमहिं कुसेसयवयणतरुणिजणणयणकुसुमवरमाला ॥
वलयेणच्चिय देहो जायइ कुसुमाउहो चेव ॥ ३ ॥
जायइ णिविज्जदाणेण सत्तिगो कंतितेयसंपण्णो ॥
लावण्णजलहिवेलातरंगसंपावीयसरीरो ॥ ४ ॥
दीवेहिं दीविया सेसजीवदव्वाइं तच्च सब्भावो ॥
सब्भावजणियकेवलपदीवतेएण होइ णरो ॥ ५ ॥

धूवेण सिसिरयरधवलकित्तिधवलीयजयत्तओपुरिसो ॥
जायइ फलेहिं संपत्तपरमणिव्वाणसोक्खफलो ॥ ६ ॥
घंटाहिं घंटसद्दाऊलेसु पवरच्छराणमज्झम्मि ॥
संकीडइ सुरसंघायसाहिओ वरविमाणेसु ॥ ७ ॥
छत्तेहि एस छत्तं भुंजइ पुहवीं च सत्तुपरिहीणो
चामरदाणेण तहा विज्जिज्जइ चमरणिवदेहिं ॥ ८ ॥
अहिसेयफलेण णरो अहिसिंचिज्जइ सुदंसणस्सुवरिं ॥
खीरोयजलेणसुरिंदपमुहदेवेहि भत्तीए ॥ ९ ॥
विजयपडाणहिं णरो संगाममुहेसु विजइओ होइ ॥
छक्खंडविजयणाहो णिप्पडिवक्खो जसस्सी य ॥ १० ॥
किं जंपिएण बहुणा तीसुवि लोयेसु किंपि जं ॥
सोक्खं पूजाफलेण सव्वं पाविज्जइ णत्थि संदेहो ॥ ११ ॥

भावार्थः—जो नर, जिनेंद्रदेवके आगे जलधारा निक्षेप करे है, तिसका निश्चयकरी तिस जलधाराके प्रभावकरके पापमलका शोधन होवे हैं; और जिनेंद्रको चंदनलेपन करनेसें नर, सौभाग्यसंयुक्त होता है.। जो प्राणी, भक्तिसें जिनेंद्रके अक्षतके पुंजकरी अक्षतपूजा करता है, सो अक्षय निधिवाला होता है, रत्नोंका स्वामी होता है, अर्थात् षट्खंडस्वामी-चक्रवर्त्ती होता है, क्षोभकरकेरहित होता है, अक्षीणलब्धियुक्त होता है, और यावत् अक्षय सुख मोक्षको प्राप्त होता है.। प्रभूकी पुष्पोंसें पूजा करनेसें कमलवदनी तरुणीजनके नेत्ररूप पुष्पोंकी वरमालाकरके आवृत देहका धारी होता है, और कामदेवसमान रूपवान् होता है.। प्रभुके आगे नैवेद्यप्रदान करनेसें पुरुष शक्तिमान् होता है, कांतिमान् होता है, तेजस्वी होता है, तथा लावण्यताके समुद्रकी वेला तरंगसमान शरीरको प्राप्त करता है.। दीपकपूजा करनेसें जैसें दीपक अंधकारको दूर करके वस्तुको प्रकाश करता है, तैसेंही तिस प्राणिको अज्ञानांधकार दूर होकर

केवलज्ञानरूप दीपकके तेजसें जीवाजीवादितत्त्वोंका प्रकाश होता है; अर्थात् वो प्राणी, भावांधकार अज्ञानको दूर करके स्वात्मप्रकाश केवलज्ञानको प्राप्त करता है, जिसके प्रभावसें सर्व तीनलोकके चराचर पदार्थोंको आपही देखता है. । प्रभुके आगे धूपको प्रज्वलीत करके जो प्राणी धूपपूजा करता है, सो प्राणी धूपपूजाके प्रभावसें चंद्रमासमान अति उज्ज्वल कीर्त्तिकरके धवलित करा है जगत्त्रय जिसने, ऐसा पुरुष होता है; और फलपूजाके प्रभावसें प्राणी मोक्षके सुखफलको प्राप्त होता है. । जो प्राणी प्रभुके मंदिरमें घंट देता है, सो प्राणी तिसके फलसें घंटोंके शब्दोंकरके व्याप्त ऐसें प्रधान देवविमानोंमें सुंदर अप्सरायोंके वृंदोंमें देवतायोंके समूहसहित क्रीडा करता है. । छत्रदानकरके अर्थात् भगवान्के ऊपरि छत्र चढावनेसें प्राणी शत्रुरहित एकछत्र पृथ्वीका राज्य प्राप्त करता है; और जो भगवान्को चामर करता है, तिसके प्रभावसें उस प्राणिको राजाआदि चामर करते हैं. यहां चामर चमरीगायके केशोंका जाणना, अन्य नही. क्योंकि, भगवज्जिनसेनाचार्यने श्रीआदिपुराणमें चमरीगायके केशोंकेही चामर लिखे हैं.

"॥स्वकीर्त्तिनिर्मलैर्वीज्यमानं चमरिजन्मभिः ॥" इतिवचनात् ॥

तथा श्रीजिनेंद्रको जलादिपंचामृतकरके अभिषेक करनेके फलसें प्राणी मेरुपर्वतके ऊपरि देवता, और इंद्रादिकोंकरके भक्तिपूर्वक क्षीरसागरके जलकरके करे हुए अभिषेकको प्राप्त करता है. । भगवान्के मंदिरके ऊपरि विजयपताका (ध्वजा) चढावनेसें प्राणी संग्रामादिकोंके विषे विजयकों प्राप्त करता है, षट्खंडस्वामी—चक्रवर्त्ती होता है, निःप्रतिपक्ष (शत्रुरहित) होता है, और यशस्वी होता है. । बहुता क्या कहना ? तीनों लोकोंमें जो जो सुख है, सो सर्व पूजाके फलसें प्राप्त होता है; इसमें संदेह नही है.॥ इतिपूजाफलम्— ॥

तेरापंथी दिगंबरीः—तुमने कहा सो तो सत्य है, परंतु शास्त्रोंमें जलपूजाविषे तो गंगाजल, अक्षतपूजामें मोतीके अक्षत, पुष्पपूजामें कल्पवृक्षके पुष्प, और दीपकपूजामें रत्नके दीपकादि लिखा है, सो यह

भी नही करनेसें आज्ञाका भंग होता है; इसवास्ते गंगाजलादि पूर्वोक्त द्रव्यविना और सामान्य जल, शालिके तंदुल आदि नही चढावने चाहिये.

उत्तरः-हे भ्रातः! शास्त्रोंमें तो सर्वही प्रकारकी वस्तु कही हैं, जो प्रथम लिखही आए हैं; इसवास्ते जिसको जैसी मिले, तैसी पवित्र सार वस्तुसें पूजादि करनी; और श्रद्धान सर्वहीका करना. क्योंकि, श्रीउमास्वामीने श्रद्धानवान्कोही उत्कृष्ट फल लिखा है.

तदुक्तम्॥

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्कई तं च सद्दहई॥
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं॥ १॥

भावार्थः-जो करशकीए तिसको करना, और जो न करशकीए तिसका श्रद्धान करना. क्योंकि, श्रद्धावान् जीव, अजरामरस्थानको प्राप्त करता है.। इसवास्ते शास्त्रोक्त आचरणही यथार्थ है, अन्य नही.।

तेरापंथी दिगंबरीः-तुमने प्रथम जो जो लेख लिखे हैं, वे सर्व प्रतिष्ठादिनकेवास्ते हैं, अन्य दिनोंकेवास्ते नही.

उत्तरः-यह तुमारा कथन ठीक नहीं है. क्योंकि, पूर्वोक्त पाठ प्रतिष्ठादिनाश्रित नही हैं; किंतु, कोइ मुकुटसप्तमी, कोइ मुक्तावलीतपोद्यापन, कोइ नवपदमाहिमा, कोइ नंदीश्वरपूजा इत्यादि आश्रित है. तथा षड्विधपूजाप्रकरणमें चार प्रकार पूजाका वर्णन करा है; तिसमें क्षेत्रपूजा, और कालपूजाका वर्णन करा है;

तथाहि॥

जिणजम्मण णिक्खवणं णाणुपत्ती य मोक्खसंपत्ती॥
णिसिहिसु खेत्तपूजा पुव्वविहाणेण कायव्वा॥ १॥
गब्भावयारजम्माहिसेयणिक्खवणणाणणिव्वाणं॥
जम्हि दिणे संजाइयं जिणण्हवणं तद्दिणे कुज्जा॥ २॥
इक्खुरससप्पिदहिखीरगंधजलपुण्णविविहकलसेहिं॥
णिसिजागरं च संगीयणाडयाइहिं कायव्वं॥ ३॥

णंदीसरअट्ठदिवसेसु तहा अण्णेसु उचियपव्वेसु ॥
जं कीरइ जिणमहिमा वण्णेया कालपूजा सा ॥ ४ ॥

भावार्थः—तीर्थंकरोकी जन्मभूमिकाकी, तीर्थंकरोंकी तपभूमिकाकी, केवलज्ञानप्राप्तिकी भूमिकाकी, और निर्वाणकल्याणकी भूमिकाकी, पूर्वोक्त विधानकरके जो पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. भावार्थ यह है कि, अयोध्यापुरी आदि चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी जन्मपुरी, तपोवन अर्थात् दीक्षाभूमी, ज्ञानोत्पत्तिक्षेत्र, तथा अष्टापद, सम्मेत शिखर, गिरनार, चंपापुरी, पावापुरी, आदि निर्वाणक्षेत्र, इन स्थानोंमें जायके जलादिद्रव्योंसें पूर्वोक्त विधिकरके तत्रस्थ चैत्यालयस्थ जिनप्रतिमाकी, वा जिनचरणयुगलकी पूजा करनी, सो क्षेत्रपूजा है. ॥ तीर्थंकरके गर्भावतारका दिन, जन्माभिषेकका दिन, दीक्षाका दिन, ज्ञानका दिन, और निर्वाणका दिन, अर्थात् जिनेंद्रके पांचकल्याणक, पूर्वे जिन दिनोंमें हुए, तिन दिनोंमें पूर्वोक्त विधिसें पूजा करनी; और विशेषतः इक्षुरस, घृत, दहि, दुग्ध, और सुगंध जलके भरे हुए पवित्र विविध प्रकारके कलशोंकरके जिनमूर्त्तिको अभिषेक करना; तथा रात्रिकेविषे संगीत, नाटक, जिनगुणगायनादिकोंकरके रात्रिजागरण करना; तथा नंदीश्वरादि अष्टादिनोंमें और अन्य भी षोडश कारण, दश लाक्षण, पुष्पांजलिसुगंध दशमी, अनंतव्रत, रत्नत्रय आदि धर्मोचित पर्वके दिनोंमें श्रीजिनमंदिरमें जिनपूजा प्रभावनादि कार्य करने; सो कालपूजा जाणनी. ॥ इत्यलमतिप्रपंचेन ॥

प्रश्नः—मुनिको पीछी कमंडलूविना अन्य कुछ भी रखना न चाहिये.

उत्तरः—यह तुमारा कथन अयोग्य, और स्वशास्त्रानभिज्ञताका सूचक है. क्योंकि, ब्रह्मचारिपांचाख्यकृत तत्त्वार्थसूत्रावचूरि, जो कि ब्रह्मचारिश्रुतसागरकृत तत्त्वार्थटीकासें उद्धार करी हुई है, तिसमें पांचसमितियोंके अधिकारमें आदाननिक्षेपसमितिका ऐसा स्वरूप लिखा है.
तथाहि ॥

"॥ पिच्छादिना धर्मोपकरणानि प्रतिलिख्य स्वीकरणं
विसर्ज्जनं सम्यगादाननिक्षेपसमितिः ॥"

भावार्थः–पिच्छादिकोंकरके धर्मोपकरणोंको प्रतिलेखके अंगीकार करने, और रखने, सो सम्यग् आदानसमिति है. । यहां पीछी आदि लिखा है, सो आदिशब्दसें क्या क्या ग्रहण करना ? और प्रतिलेखके ग्रहण करने, रखने वे धर्मोपकरण, कौनकौनसें हैं ?

तथा पूर्वोक्त तत्त्वार्थसूत्रावचूरिसेंही ॥

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८

"॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादप्रस्थानविकल्पतः साध्याः ॥"

इस सूत्रके अधिकारमें लिखा है. । तथाहि ॥

"॥ लिंगं द्विभेदं द्रव्यभावलिंगभेदात् तत्र भावलिंगिनः पंचप्रकारा अपि निर्ग्रंथा भवंति द्रव्यलिंगिनः असमर्था महर्षयः शीतकालादौ कंबलादिकं गृहीत्वा न प्रक्षालयंते न सीव्यंति न प्रयत्नादिकं कुर्वंति अपरकाले परिहरंतीति भगवत्याराधना प्रोक्ताभिप्रायेणोपकरणकुशीलापेक्षया वक्तव्यम् ॥"

भावार्थः–लिंग दो प्रकारके हैं, द्रव्यलिंग और भावलिंग; तिनमें भावलिंगी पांचप्रकारके निर्ग्रंथ होते हैं, और द्रव्यलिंगी असमर्थ महाऋषि हैं. जे शीतकालादिमें कंबलादिको ग्रहण करके धोवे नही हैं, सीवते नही हैं, प्रयत्नादि करते नही हैं, और शीतकालके दूर हुए त्याग करते हैं; इति। यह कथन, भगवत्याराधनामें कथन करे हुए अभिप्रायकरके उपकरण कुशीलकी अपेक्षा जाणना. ॥

तथा प्रवचनसारवृत्तिमें उपधिका भेद कहा है. । यतः ॥

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स ॥
समणो तेणिह वट्टदि दुक्कालं खेत्तं वियाणित्ता ॥

भावार्थः–जिसके करनेसें न होवे छेद, लेने और छोडनेमें, इसरीतिसें उपधि आहार निहार कारणे सेवना करतेको, तिस्सें तिसमें श्रमणपणा वर्त्ते हैं, दुषमकालको, और क्षेत्रको जानके. ॥

तथा प्रवचनसारकी वृत्तिमें जिनेश्वरके अधिकारमें साधुकी उपाधि धर्मध्वजकरके कही है. । तथाहि ॥

"॥ न विद्यते लिंगानां धर्मध्वजानां ग्रहणं यस्येति बहिरंगयतिलिंगाभावस्येति ॥"

भाषार्थः—नही है लिंग धर्मध्वजोंका ग्रहण जिस जिनेश्वरके, अर्थात् बहिरंगयतिलिंगका अभाव है. ॥

भावसंग्रहमें भी उपकरण विशेष कहे हैं। तथा च तत्पाठः ॥

उवयरणं तं गहियं जेण ण भंगो हवेइ चरियस्स॥
गहियं पुत्थयवाणं जोगं जं जस्स तं तेण ॥

भाषार्थः—उपकरण सो ग्रहण करिये हैं, जिसके ग्रहण करनेसें चारित्रका भंग नही होता है; और ग्रहण करा पुस्तक पाना पुस्तकोपकरणादिभी, चारित्रका भंग नही करे हैं. क्योंकि, जो जिसके योग्य उपकरण हैं, सो तिसकेवास्ते ग्रहण करना है. ॥

कुंदकुंदमुनिकृत मूलाचारमें साधुकी उपधि प्रकटपणे कथन करी है. । तथाहि ॥

णाणुवहिं संजमुवहिं तउवुवहिमण्णमविउवहिं वा ॥
पयदं गहणिक्खेवो समिद्दी आदाणनिक्खेवा ॥

भाषार्थः—ज्ञानोपधि, पुस्तकपट्टिकाबंधनादि; संयमोपधि, जिसके रखनेसें संयम पाल सकें; और तपोपधि, तथा अन्य प्रकारकी भी उपधि, इन पूर्वोक्त सर्व उपधियोंको प्रयत्नसें ग्रहण निक्षेप करना, तब संपूर्ण आदान निक्षेपसमिति होती है. ॥

और बोधपाहुडकी वृत्तिमें जिनमुद्राका कथन है. । यतः ॥

शिरःकूर्चश्मश्रुलोचोमयूरपिच्छधरः कमंडलूकरः ।
अधःकेशरक्षणं जिनमुद्रा सामान्यत इति ॥

भाषार्थः—मस्तक दाढी मूंछका तो लोच करा हुआ, मोर पीछी धारण करी हुई, और कमंडलू हाथमें, अधःकेशोंका रखना, यह जिनमुद्रा सामान्य प्रकारसें है. वाहरे! दिनमें राह भूलेहुये मेरे दिगंबर भाइयो! क्या तीर्थंकर भी शिरदाढीमूंछका लोच करते थे? और पीछी कमंडलू रखते थे, जिससें तुमने जिनमुद्राका ऐसा स्वरूप लिखा है? इससें यह सिद्ध होता है कि, तुम जिनमुद्राका स्वरूप भी यथार्थ नही जानते हो. तथा प्रवचनसारकी वृत्तिसें, और बोधपाहुडकी वृत्तिसें सिद्ध होता है कि, पीछी कमंडलूसें अन्य भी उपधि साधु रख लेवें. क्योंकि, बोधपाहुडवृत्तिमें पीछी कमंडलू रखना जिनमुद्रा कही है, और प्रवचनसारवृत्तिमें बहिरंगयतिलिंगका जिनेश्वरकों अभाव कहा है; तो, वो बहिरंगयतिलिंग कौनसा है, जो जिनेश्वरमें नही है? ॥

तथा योगेंद्रदेवविरचित परमात्मप्रकाशकी टीकामें भी साधुको उपकरण ग्रहण करने लिखे हैं.। तथा च तत्पाठो यथा ॥

"॥परमोपेक्षासंयमाभावे तु वीतरागशुद्धात्मानुभूतिभावसंयमरक्षणार्थं विशिष्टसंहननादिशक्त्यभावे सति यद्यपि तपःपर्यायशरीरसहकारिभूतमन्नपानसंयमशौचज्ञानोपकरणतृणमयप्रावरणादिकं किमपि गृह्णाति तथापि ममत्वं न करोतीति॥"

तथाचोक्तं ॥

रम्येषु वस्तुवनितादिषु वीतमोहो।
मुह्येद्वृथा किमिति संयमसाधनेषु॥
धीमान् किमामयभयात् परिहृत्य भुक्तिं।
पीत्वौषधं व्रजति जातुचिदप्यजीर्णम्॥ १॥

भाषार्थः—परमोपेक्षासंयमके अभाव हुए, वीतराग शुद्ध आत्माके अनुभव भाव संयमकी रक्षा करनेवास्ते, विशिष्टसंहननआदि शक्तिके अभाव हुए, यद्यपि तप, पर्याय, और शरीरके सहकारिभूत, अर्थात् साहाय्य देनेवाले,

अन्न, पाणी, और संयम, शौच, ज्ञान, इनके उपकरण, तथा तृणमय प्रावरण, घांसका उत्तरीय वस्त्र, इत्यादि कुछ भी ग्रहण करता है; तथापि तिनमें ममत्व नही करता है. इति । सोही कहा है. । रमणीय धनधान्यादि वस्तु, और वनिता—स्त्री, आदिशब्दसें माता, पिता, पुत्र, पुत्री, भाइ, वहिन, इत्यादिकोंमें जिसने मोह त्याग दिया है, सो निर्मोही, क्या, संयमके साधनोंमें वृथाही मोह करेगा? अपितु कभी भी नही. इसबातके दृढ करनेवास्ते दृष्टांत कहे हैं. बुद्धिमान् रोगके भयसें भोजनको त्यागके और औषधको पीके क्या कभी भी अजीर्णकों प्राप्त होता है ? कदापि नहीं. ऐसेंही जन्ममरणादिदुःखरूप रोगके भयसें संसारके मोहरूप भोजनको त्यागके, निःसंग होके, जिनवचनामृतरूप औषधको पीके, संयमके साधनोंमें अजीर्णरूप मोहकों प्राप्त नही होता है. ॥

तथा । राजवार्त्तिकमें भी उपकरणविषयक लेख है. । तथाहि ॥

"॥ अतिथिसंविभागश्चतुर्विधो भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात्॥ २८॥" अतिथिसंविभागश्चतुर्धाभिद्यते। कुतः । भिक्षोपकरणौषधप्रतिश्रयभेदात् । मोक्षार्थमभ्युत्थितायातिथये संयमपरायणाय शुद्धाय शुद्धचेतसा निरवद्या भिक्षा देया धर्मोपकरणानि च सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रोपबृंहणानि दातव्यानि औषधं प्रायोग्यमुपयोजनीयं प्रतिश्रयश्च परमधर्मश्रद्धया प्रतिपादयितव्यइति। च शब्दोवक्ष्यमाणगृहस्थधर्मसमुच्चयार्थः ॥

भाषार्थः—अतिथिसंविभागनामा वारमे (१२) व्रतके चार (४) भेद होते हैं; भिक्षा १, उपकरण २, औषध ३, और उपाश्रय ४; मोक्षकेवास्ते उद्यत संयममें तत्पर ऐसें शुद्ध अतिथि साधुकेतांइ शुद्धचित्तसें निरवद्य—दूषणरहित भिक्षा देनी १, और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, इनकी वृद्धि करनेवाले उपकरण देने २, योग्य औषध प्राप्त कर देना ३, और परम धर्म

श्रद्धाकरके उपाश्रय प्राप्त कर देना ४; च शब्द वक्ष्यमाण गृहस्थधर्मके समुच्चय वास्ते है. ॥

तथा। राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ धर्मोपकरणानां ग्रहणविसर्जनं प्रति यतनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥ ७ ॥" धर्माविरोधिनां परानुपरोधिनां द्रव्याणां ज्ञानादिसाधनानां ग्रहणे विसर्जने च निरीक्ष्य प्रपूज्य प्रवर्त्तनमादाननिक्षेपणासमितिः ॥

भाषार्थः-धर्मके अविरोधी, परके अनुपरोधी, ज्ञानादिके साधन, ऐसें द्रव्योंके ग्रहणमें और त्यागमें देखके और प्रमार्जन करके प्रवर्त्तना, सो आदाननिक्षेपणासमिति है. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही । यतः ॥

"॥ संसक्तान्नपानोपकरणादिविभजनं विवेकः ॥ " संसक्तानामन्नपानोपकरणादीनां विभजनं विवेक इत्युच्यते ॥

भाषार्थः-संसक्त जीवोत्पत्तिवाले अन्न, पाणी, उपकारणादिकोंका त्याग करना (परठना), सो विवेक कहिये हैं. ॥

तथा राजवार्त्तिकमेंही पांच प्रकारके निर्ग्रंथोंका स्वरूप लिखा है, तिनमें वकुशका स्वरूप ऐसें लिखा है. । यतः ॥

" ॥ बकुशो द्विविधः उपकरणबकुशः शरीरबकुशश्चेति ॥" तत्र उपकरणाभिष्वक्तचित्तो विविधविचित्रपरिग्रहयुक्तः बहुविशेषयुक्तोपकरणकांक्षी तत्संस्कारप्रतीकारसेवी भिक्षुरुपकरणबकुशो भवति शरीरसंस्कारसेवी शरीरबकुशः ॥

भाषार्थः-वकुश दोप्रकारका होता है, उपकरणवकुश १, और शरीरवकुश २; तिनमें जो उपकरणोंमें रक्त चित्तवाला नाना प्रकारके विचित्र परिग्रहयुक्त, बहुत सुंदर उपकरणोंका इच्छक, और तिन उपकरणोंका संस्कार प्रतिकार करनेवाला, भिक्षु साधु, सो उपकरणवकुश होता है; और शरीरका संस्कार करनेवाला, शरीरवकुश होता है. ॥

तथा बकुशनिर्ग्रंथमें सामायिक, और च्छेदोपस्थापन, यह दो संयम दिगंबराचार्योंने माने हैं. । तथाहि ॥

"॥पुलाकबकुशप्रतिसेवनाकुशीलाःद्वयोः संयमयोः सामायिकच्छेदोपस्थापनयोर्भवंति ॥" इतिराजवार्त्तिकटीकायाम् ॥

तथा ज्ञानार्णवमें शय्या, आसन, उपधान (तकीया) आदि, मुनिकी उपधि कही है; जो पाठ ऊपर लिख आए हैं. । इत्यादि कितनेही दिगंबरशास्त्रोंमें मुनिकी अनेक प्रकारकी उपधि कही है. ऐसें उपकरण रखनेसें दिगंबरमतका मुनि तो, परिग्रहधारी नही हुआ, और श्वेतांबरमतका मुनि, चतुर्दशादि उपकरण रक्खे, तिसको परिग्रहधारी मानना, यह मतांधपणा नही तो, अन्य क्या है ?

और दिगंबराचार्योंको द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अनभिज्ञता होनेसें, और अनुचित कठिन मुनिवृत्तिके कथन करनेसें, प्रथम तो मुनन्नी, अर्थात् साध्वी व्यवच्छेद होगई; पीछे साधु व्यवच्छेद होगए. आचार्योपाध्यायका तो कहनाही क्या है!!! और श्वेतांबरमतमें तो, श्रीमहावीरजीसें लेके आजतांइ अव्यवच्छिन्न चतुर्विध संघ चला आता है. और बकुशकुशील इस कालमें जे पाइये हैं, तिनका आचार, व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र) आदि शास्त्रोंमें कथन करा है, तैसें आचारके पालनेवाले साधु साध्वी सांप्रतिकालमें भी उपलब्ध होते हैं. इस हेतुसें दिगंबरशास्त्रोंकी असत्यता, और श्वेतांबरके शास्त्रोंकी सत्यता, प्रत्यक्ष प्रमाणसेंही देख लो; अन्यप्रमाणकी कुछ आवश्यकता नहीं है.

प्रश्नः—केवली कवलाहार नही करता है, और तुम केवलीको कवलाहार मानते हो, सो, किस प्रमाणसें मानते हो ?

उत्तरः—आगमप्रमाणसें मानते हैं. क्योंकि, श्रीतत्त्वार्थसूत्रमें परिषहोंका अधिकार चला है, तहां केवली—जिनके क्षुधापिपासादि इग्यारें परिषह कहे हैं, और तुमारे मतकी द्रव्यसंग्रहकी वृत्तिमें चारित्रके अधिकारमें कहा है कि, तीन योगोंका व्यापार जिन—

केवलीके चारित्रको मलिन करे हैं, जिसको प्रदेशोंका चंचलभाव है, तिसकोंही यह योगत्रयव्यापार है; और कर्मग्रंथोंमें बैतालीस (४२) कर्मप्रकृतियां उदयमें केवलीको कही है, वे, अपना अपना नाना-प्रकारका रस दिखाती हैं.। अवयवोंका जो प्रकर्षसें चलाना है, सो प्रवचनसारमें क्रियाविशेष कहनेकरके केवलीकों कहा है; समय-सारमें भी अंगसंचालन कहा है, भक्तामरस्तोत्रमें भगवंतको चरणोंसें चलना कहा है, एकीभावस्तवनमें जिनवरचरणोंका न्यास कहा है, भावपाहुडकी वृत्तिमें तीर्थंकरके चरणोंका न्यास कहा है, वीरनंदिकृत श्रीचंद्रप्रभचरित्रमें और हरिश्चंद्रकायस्थविरचित धर्मशर्माभ्युदयमें भी, भगवान्‌का विचरना लिखा है.

अव पूर्वोक्त शास्त्रोंके पाठ, अर्थसहित, अनुक्रमसें लिखते हैं.। तत्रादौ तत्त्वार्थसूत्रपाठो यथा ॥

"॥ सूक्ष्मसंपरायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दशएकादशजिने ॥"

भाषार्थः—सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागमें अर्थात् दशमे इग्यारमे वारमे (१०।११।१२।) गुणस्थानमें चौदह (१४) परीषह हैं; और जिन—के-वलीमें इग्यारह (११) परीषह हैं. तब तो, क्षुधापरीषहके हुए, केवलीको कवलाहार सिद्ध हुआ. परंतु कितनेक दिगंबरटीकाकारोंने, टीकामें नकार ग्रहण करा हैं, सो महाउत्सूत्र है. "एकादशजिने न संतीतिशेषः" ऐसी मिथ्याकल्पना सिद्ध करी है. क्योंकि, दिगंबरटीकाकार सूत्रशैलीके अनभिज्ञ मालुम होते हैं. जब सूत्रमें नकार कहाही नही है, तो टीका-कारने नकार कहांसें काढ मारा? जेकर नकार माना जावे, तब तो, संलग्न सर्वसूत्रके साथ 'न संति' क्रियाका संबंध मानना चाहिये. तब तो, ऐसा अर्थ होवेगा, सूक्ष्मसंपराय, और छद्मस्थ वीतरागके चतुर्दश परीषह नही है; परंतु मतांधपुरुष मिथ्यात्वके उदयसें क्या क्या झूठी कल्पना नही करसकता है? अपितु सर्व करसकता है. जब केवलीमें वेदनीय कर्मके उदयसें इग्यारह परीषह हैं, तो फिर, क्षुधाके लगनेमें

केवली कवलाहार क्यों नही करे? क्योंकि, औदारिकशरीरकी स्थिति कवलाहारविना नही हो सकती है. ॥ १ ॥

द्रव्यसंग्रहवृत्तिपाठो यथा ॥

" ॥ सयोगिकेवलिनो यथाख्यातं चारित्रं न तु परमयथाख्यातं चारित्रं चौराभावेपि चौरसंसर्गिवत् मोहोदयाभावेपि योगत्रयव्यापारश्चारित्रमलं जनयतीति ॥"

भाषार्थ.-सयोगिकेवलीके यथाख्यात चारित्र है, परंतु परमयथाख्यात चारित्र नही है. जैसें चोरके अभावसें भी, चोरकी संगतिवाला चोर है; तैसेंही मोहोदयके अभाव हुए भी, योगत्रयका व्यापार चारित्रमें मल उत्पन्न करता है. ॥ २ ॥

प्रवचनसारपाठो यथा ॥

ठाणनिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो अ णिअदवो तेसिं ॥
अरहंताणं काले मायाचारोव्व इत्थीणं ॥

भाषार्थः-स्थान, निषध्या, विहार, धर्मोपदेश, यह सर्व तिन अरिहंतोंको स्वाभाविक है. स्त्रियोंको मायाचारकीतरें. ॥ ३ ॥

उन्निद्रहेम-इत्यादि भक्तामरके काव्यसें भगवान् कमलोपरि पाद न्यास, स्थापन करते हैं.

"॥ पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र धत्तः ॥" ॥इति वचनात् ॥ ४ ॥

एकीभावस्तोत्रमें भी पादन्यास लिखा है. ॥

"॥पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीमित्यादि॥" ॥५॥

तीर्थंकरकमलऊपर पादन्यास करते हैं.॥

"॥तीर्थंकराःकमलोपरि पादौ न्यसंतीति" भावपाहुडवृत्तिवचनात्॥६॥

चंद्रप्रभचरित्रमें भगवान्‌का विहार लिखा है. ॥

"॥ इत्थं विहृत्य भगवान् सकलां धरित्रीमित्यादिवचनात् ॥" ॥ ७ ॥

धर्मनाथचरित्रमें भी भगवान्‌का विचरना लिखा है. ॥

अथ पुण्यैः समाकृष्टो भव्यानां निःस्पृहः प्रभुः ॥
देशे देशे तमश्छेत्तुं व्यचरद्भानुमानिव ॥

भाषार्थः—भव्यप्राणियोंके पुण्योंसें खिचा हुआ, निःस्पृह भी भगवान्, देशोदेशमें मिथ्यात्वरूप अंधकारको छेदनेवास्ते, सूर्यकीतरें विचरता भया. ॥ ८ ॥

तथा जिन, जो अंग न चलावे तो, शुभ विहायगति, और अशुभ विहायगतिका उदय किसतरें होवे? नही होवे. और जिनके सात योग, कैसें होवे? और जो कल्पनाकुयुक्तिसें कहते हैं कि, देवते तीर्थंकरको उठाते, विठलाते हैं, और चलाते हैं; सो कहना महा मिथ्या है. क्योंकि, प्राचीन दिगंबरमतके शास्त्रोंमें, ऐसा लेख किसी जगेमें नही है. तो फिर, केवलीको देवते, उठना, बैठना, चलना, कराते हैं; ऐसा कलंकरूपकथन, मिथ्यादृष्टिदीर्घसंसारीविना कौन कर सकता है?

और जो तीर्थंकरकेवलीके, परम औदारिक शरीर कहते हैं, सो भी इनके ग्रंथोंसें विरुद्ध है. क्योंकि, कायाबोधपाहुडमें औदारिकही कहा है.

सो पाठ यह है. ॥

एरिसगुणाहिं सहियं अइसयवंतं सुपरिमलामोअं॥
ओरालीयं च कायं णायव्वं अरुहपुरुसस्स ॥ १ ॥

भाषार्थः—इन पूर्वोक्त गुणसहित, अतिशयवंत, सुपरिमलआमोदसंयुक्त, औदारिककाया, अरिहंतपुरुषोंकी जाननी.

प्रश्नः—स्त्रीको सर्वचारित्र और मोक्ष नही है.

उत्तरः—तुमारे मतके शास्त्रोंमेंही, स्त्रीको चारित्र, और मोक्ष होना लिखा है.

यतः ॥

जइ दंसणेण सुद्धा उत्तामग्गेण सावि संजुत्ता ॥
घोरं चरियं चरित्ता—इत्यादि

भाषार्थः—यदि दर्शनसम्यक्त्व करके स्त्री, शुद्ध है, उक्तमार्गकरके सो भी, संयुक्त है, घोर दुरनुचरचारित्र आचरणकरके—इत्यादि ॥ और इस पाठकी वृत्तिमेंही महाव्रतका उच्चार कहा है; अन्यथा चतुर्विध संघ कैसें होवे?

और त्रैलोक्यसारमें स्त्रीको मोक्ष कहा है. । तथा च तत्पाठः ॥

वीस नपुंसकवेआ इत्थीवेया य हुंति चालीसा ॥
पुंवेआ अडयाला सिद्धा इक्कंमि समयंमि ॥ १ ॥

भाषार्थः—नपुंसकवेद वीस (२०) स्त्रीवेद चालीस (४०), पुरुषवेद अड्ठतालीस (४८), ये सर्व, एकसौ आठ (१०८) एक समयमें सिद्ध हुए हैं.

प्रश्नः—नग्न दिगंबरमुनिके चिन्हविना, किसीको भी केवल ज्ञान नही होता है.

उत्तरः—ब्रह्मदेवकृत समयपाहुडकी वृत्तिमें लिखा है कि, भरतराजाने भावसें परिग्रह छोडा है. । तथा प्राकृतबंध हरिवंशपुराणमें लिखा है कि, शिरमें कर-हाथ डालतेही भरतनृपतिने केवलज्ञान लह्या. । और द्रव्यालिंगरहित पांडवोंने, कर्मोंका अंत किया. ॥

"॥ जा चिहुरुप्पालण खिवइ हत्थु ता केवल उप्पण्णो पसत्थु॥"—इतिहरिवंशपुराणे ॥

प्रश्नः—आप प्रथम लिख आए हैं कि, वे सर्व लेख आगे चलके लिखेंगे तो, अब बतलाइए, वे लेख कौनसें हैं?

उत्तरः—वे लेख सर ए. कनिंगहाम (SIR A. CUNNINGHAM) के 'आर्चीओलोजिकल रीपोर्ट' (ARCHÆOLOGICAL REPORT) के तीसरे वोल्युममें (१३–१६५) छपाए हुए मथुराके प्रख्यात शिलालेख हैं; जिनकी नकल नीचें लिखते हैं

"॥ सिद्धंसं २० ग्रमा १ दि १०+५ को ट्टियतो गणतो वाणि-
यतो कुलतो वैरितो शाखातो शिरिकातो भत्तितो वाचकस्य
अर्यसंघसिंहस्य निर्वर्त्तनं दत्तिलस्य......वि....लस्य
कोठुंबिकिये जयवालस्य देवदासस्य नागदिनस्य च नाग-
दिनाये च मातुये श्राविकाये दिनाये दानं-इ (श्री) वर्द्ध-
मानप्रतिमा ॥"

भाषांतरः—"॥ जय!* संवत् २० का उष्णकालका मास पहिला (१) मिति १५, श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा, दत्तिलकी बेटी वि ..लकी स्त्री जयवाल जयपाल देवदास और नागदिन अर्थात् नागदिन्न वा नागदत्त और नागदिना अर्थात् नागदिन्ना वा नागदत्ताकी माता दिना अर्थात् दिन्ना वा दत्ता घरकी मालिकिणी गृहस्थ शिष्यणी श्राविका तिसने अर्पण करी—यह प्रतिमा—कौटिकगच्छमेंसें वाणिजनामा कुलमेंसें वैरीशाखाके भागके आर्य—संघ-सिंहकी निर्वर्त्तन है अर्थात् प्रतिष्ठित है॥" ॥ १ ॥

"॥ सिद्धं महाराजस्य कनिष्कस्य राज्ये संवत्सरे नवमे ९.
मासे प्रथ १ दिवसे ५ अस्यां पूर्वाये कोटियतो गणतो
वाणियतो कुलतो वैरितो शाखातो वाचकस्य नागनंदिस
निर्वरतनं ब्रह्मधूतुये भट्टिमितसकुटुंबिनिये विकटाये श्रीव-
र्द्धमानस्य प्रतिमा कारिता सर्वसत्वानं हितसुखाये ॥"

यह लेख श्री महावीरकी प्रतिमाऊपर है.

भावार्थः—जय! कनिष्कमहाराजाके राज्यमें नव (९) मे वर्षमें पहिले (१) महिनेमें मिति पांचमी (५)में—इसदिनमें सर्व प्राणियोंके कल्याण

* "सिद्धं" इस शब्दका 'जय' अर्थ यूरोपीयन पंडितोंने किया है, सो यथार्थ नही है. क्योंकि, जैन-मतमें प्रायः 'ॐ' 'अर्हं' 'सिद्धं' इत्यादि शब्द मंगलार्थ, और नमस्कारार्थ वाचक मानके, आदिमें लिखे जाते हैं. ॥

तथा सुखकेवास्ते भट्टिमित्रकी स्त्री और ब्रह्मकी विकटा नामा पुत्रीने श्रीवर्द्धमानकी प्रतिमा बनवाई है-यह प्रतिमा-कोटिगणके वाणिज कुलके और वइरी शाखाके आचार्य नागनंदिकी निर्वर्त्तन प्रतिष्ठित है. ॥२॥

"॥ संवत्सरे ९० व..... ....स्य कुटुंबनि. व. दानस्य वोधुय कोटियतो गणतो प्रश्नवाहनकतो कुलतो मज्झमातो शाखातो....सनिकायभतिगालाए थवानि........... ॥"

इस लेखकेवास्ते डा० बुल्हर कहते हैं कि, इस लेखकी ली हुइ नकल मेरे वसमें नही है, इसवास्ते इसका पूर्णरूप मैं स्थापन नही कर सकता हूं, परंतु पहिली पंक्तिके एक टुकडेके देखनेसें ऐसा अनुमान हो सकता है कि, यह प्रतिमा किसी स्त्रीने अर्पण करी है (वनवाई है) और सो स्त्री एक पुरुषकी मालकणी (कुटुंविनी) और दूसरे पुत्रकी स्त्री (वधु) थी, ऐसें लिखा है।-संघमें कोटियगच्छके प्रश्नवाहन कुलकी मध्यमशाखाके-इत्यादि-॥ ३ ॥

"॥ स० ४७ ग्र. २ दि २० एतस्या पूर्वाये चारणे गणेपेतिधमिककुलवाचकस्य रोहनंदिस्य शिसस्य सेनस्य निवंतनसावक-इत्यादि ॥ "

संवत् ४७ उष्णकालका महिना दूसरा (२) मिति २० इस मितिमें यह संसारी शिष्यका देवार्पण किया हुआ पाणी पीनेका एक ठाम है यह रोहनंदिका शिष्य चारणगणके प्रैतिधर्मिककुलका आचार्यसेन तिसका प्रतिष्ठित है. ॥ ४ ॥

"॥ सिद्धं नमो अरहतो महावीरस्य देवनाशस्य राज्ञा वासु-देवस्य संवत्सरे ९८ वर्ष मासे ४ दिवसे ११ एतस्या पूर्वाये

अर्य्यरोहनियतो गणतो परिहासककुलतो पोनपत्रिकातो शाखातो गणिस्य अर्य्यदेवदत्तस्य न........॥"

यह भी एक शिलालेखका उतारा है.

भाषांतरः—फतेह ! देवतायोंका नाशकर्त्ता ऐसें अरहतमहावीरको नमस्कार. वासुदेव राजाके संवत्के ९८ मे वर्षमें वर्षाऋतुके चौथे महिनेमें एकादशीके दिन इस मितिमें गणोंके मुख्य गणी अर्य्यदेवदत्त आर्यरोहणके स्थापे हुए, गणके परिहासककुलके पौर्णपत्रिकाशाखाके. ॥

अब इन ऊपर लिखे मथुराके पुराने शिलालेखोंके वांचनेसें दिगंवराम्नाय माननेवाले पक्षपातरहित सुज्ञजन प्रियबांधव दिगंवरलोकोंको विचार करना चाहिये कि, दिगंवरीय पट्टावलीयोंमें तथा दर्शनसारादि दिगंबरीय ग्रंथोंमें, जे लेख श्वेतांबरमतकी वावत लिखे हैं, वे सत्य है, वा नही है ? और येह शिलालेख श्वेतांबरोंके कथनको सिद्ध करते हैं, वा, दिगंबरोंकेकथनको ? क्योंकि, श्वेतांबरमतके दशाश्रुतस्कंधसूत्रके आठमे कल्पाध्ययनमें लिखा है कि, श्रीमहावीर स्वामीके आठ (८)मे पाटपर श्रीवीरात् संवत् २१५ में श्रीस्थूलभद्र स्वामी स्वर्गवासी हुए, उनके पाटपर ९ में पट्टधर श्रीसुहस्तिसूरि हुए, उनके षट् (६) शिष्योंसें षट् (६) गच्छ उत्पन्न हुए.

तथाहि ॥

"। स्थविर आर्यरोहणसें उद्देह गण, जिसकी चार शाखायें हुइ, और छ कुल हुए. । स्थविर भद्रयशसें ऋतुवाटिका गच्छ, तिसकी चार शाखा, और तीन कुल हुए. । स्थविर कामर्द्धिसें वेसवाडियागण, (गच्छ) तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर सुप्रतिबुद्धसें कौटिकगण, तिसकी चार शाखा और चार कुल. । स्थविर ऋषिगुप्तसें माणवकगण, तिसकी चार शाखा, और चार कुल. । स्थविर श्रीगुप्तसें चारण गच्छ, तिसकी चार शाखा, और सात कुल. ।"

ये गच्छ, शाखा, कुलके नामका कोठा इसमाफक है.

गच्छ.	शाखा.	कुल.	
॥ १ ॥ उद्देहगण. गच्छ.	१ इंद्रवज्रिका, ॥ २ मासपूरिका, ॥ ३ मतिपत्रिका, ॥ ४ पूर्णपत्रिका, ॥	१ नागभूत, ॥ २ सोमभूत, ॥ ३ उल्लगच्छ, ॥ ४ हत्थलिज्ज, ॥	५ नंदिज्ज, ॥ ६ पारिहासक,
॥ २ ॥ ऋतुवाटिका गच्छ.	१ चंपिज्झिया, ॥ २ भाद्रिका, ॥ ३ काकंदिया, ॥ ४ मेहलिज्जिया, ॥	१ भद्दजसियं, ॥ २ भद्दगुत्तियं, ॥ ३ यशोभाद्रिकं, ॥	
॥ ३ ॥ वेसवाटिका गच्छ.	१ सावत्थिया, ॥ २ रज्जपालिया, ॥ ३ अंतरिज्जिया, ॥ ४ खेमलिज्जिया, ॥	१ गणियं, ॥ २ महियं, ॥ ३ कामड्ढियं, ॥ ४ इंदपुरगं, ॥	
॥ ४ ॥ कौटिक गच्छ.	१ उच्चनागरी, ॥ २ विद्याधरी, ॥ ३ वयरी, ॥ ४ मज्झिमिल्ला, ॥	१ बंभलिज्ज, ॥ २ वत्थलिज्ज, ॥ ३ वाणिज्ज, ॥ ४ पण्हवाहणयं, ॥	
॥ ५ ॥ माणवक गच्छ.	१ कासवज्जिया, ॥ २ गोयमज्जिया, ॥ ३ वासट्ठिया, ॥ ४ सोरट्ठिया, ॥	१ ऋषिगुप्तक, ॥ २ ऋषिदत्तक, ॥ ३ अभिजयंत, ॥	
॥ ६ ॥ चारण गच्छ.	१ हारियमालागारी, २ संकासिया, ॥ ३ गवेद्धुआ, ॥ ४ विज्जनागरी, ॥	१ वत्थलिज्जं, ॥ २ पीइधम्मियं, ॥ ३ हालिज्जं, ॥ ४ पुप्फमित्तिज्जं, ॥	५ मालिज्जं, ॥ ६ अज्जवेडियं, ॥ ७ कण्हसहं, ॥

इन पूर्वोक्त षट् (६) गणोंमेंसें १। ४। ६ गणोंके, उनके कुलोंके, और उनकी शाखायोंके नाम, मथुराके शिलालेखोंमें लिखे हैं. और देवसेन भट्टारक अपने रचे दर्शनसारग्रंथमें लिखते हैं कि, विक्रमराजाके मरण-पीछे एक सौ छत्तीस वर्ष गए सोरठदेशके वल्लभी नगरमें श्वेतांवर संघ उत्पन्न हुआ; तथा मूलसंघ, नंद्याम्नाय, सरस्वतिगच्छ, बलात्कारगण, इन चारों नामोंकी मथुराके शिलालेखोंमें गंध भी नही है; जेकर श्वेतांवरीय शास्त्रोंके पूर्वोक्त गणोंके लेख कल्पित मानें, तो भूमिमेंसें वे लेख कैसें निकलते ? इसवास्ते श्वेतांबरीय शास्त्रोंके लेख सत्य सिद्ध होते हैं. और दिगंवरोंके लेख मिथ्या सिद्ध होते हैं. क्योंकि, श्वेतांवर बावत देवसेनके लेखसें मथुराके शिलालेख प्राचीनतर है; इसवास्ते श्वेतांवरीय शास्त्रोंमें जे जे गण कुल शाखाके नाम लिखे हैं, वे सत्य हैं. और जे जे दिगंबरोंने मूलसंघ १, नंद्याम्नाय २, सरस्वतिगच्छ ३, बलात्कारगण ४, लिखे हैं, वे नवीन कल्पित सिद्ध होते हैं. जब श्वेतांबरमतकी सत्यताकी गवाही भूमिके शिलालेखही देते हैं, तब तो, प्रेक्षावान्को तिसकोही सत्यकरके मानना चाहिये. ॥

॥ इति प्रसंगतः संक्षेपतो दिगंबरमतसमालोचनं समासम् ॥

॥ इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे जैनमतस्य प्राचीनताबौद्धमतान्यतावर्णनो नाम त्रयस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३३ ॥

॥ अथचतुस्त्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

तेतीसमे स्तंभमें जैनमतकी प्राचीनताका, और बौद्धमतसें पृथक्ताका वर्णन कीया; अब इस चौतीसमे स्तंभमें जैनमतकी कितनी बातेंपर आधुनिक कितनेक पंडिताभिमानी शंका करते हैं, उनके उत्तर लिखते हैं.

प्रश्नः—जैनमतमें ऋषभदेव अरिहंतकी जो पांचसौ (५००,) धनुषप्रमाण अवगाहना लिखि है, और चौरासी लक्ष (८४०००००) पूर्वकी आयु

लिखी है, ऐसें लेखको वांचके कितनेक लोक, जो अंग्रेजी फारसी पढे हुए हैं, वे उपहास्य करते हैं; सो ऐसी अवगाहना, और आयुको जैनमतवाले क्योंकर सत्य मानते हैं ?

उत्तरः—हे भव्य! जबतक पक्षपात छोडके सूक्ष्मबुद्धिसें विचार नही करते हैं, तबतक वस्तुके तत्त्वकों नही प्राप्त होते हैं. क्योंकि, पृथिवीमें अधिक रस होनेसें तिस पृथिवीकी वनस्पतिमें भी अधिक रसवीर्य होता है, और तिस वनस्पतिके खानेवाले पुरुषादिकोंमें अधिक वल होता है, और तिनके शरीरमें वीर्य—धातु भी अधिक होता है, और जिसका वीर्य अधिक होता है, तिसका संतान भी कदावर (बडी अवगाहनावाला) होता है, हाथीवत्.। तथा पंजावकी भूमिसें गुजरात देशकी भूमि रसमें न्यून है, इसवास्ते पंजावकी वनस्पति खानेवाले पंजावीयोंका शरीर गुजरातीयोंकी अपेक्षा कदावर और वलवान् है; और पंजावसें कावुलकी भूमि अधिक रसवीर्यवाली है, इसवास्ते वहांकी मेवादि वनस्पति हिंदुस्थानकी अपेक्षा बहुत रसवीर्यवाली होनेसें, वहांके पुरुष भी कदावर, और अधिक बलवान् है. इस लिखनेका यह प्रयोजन है कि, जैनमतके सिद्धांतानुसार वर्त्तमानकाल 'अवसर्प्पिणी' चलता है, अर्थात् जिस कालमें समय समय भूमि आदि पदार्थोंका अच्छा वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, घटता जावे तिसको अवसर्प्पिणी काल कहते हैं.

यदुक्तं पंचकल्पभाष्ये ॥

भणियं च दुसमाए गामा होहिंति ऊमसाणसमा ॥
इय खेत्तगुणा हाणी कालेवि उ होहि इमा हाणि ॥ १ ॥
समये २ णंता परिहायंते उ वण्णमाईया ॥
दव्वाई पज्जाया होरत्तं तत्तियं चेव ॥ २ ॥
दूसमअणुभावेणं साहूजोग्गा उ दुल्लहा खेत्ता ॥
कालेवि य दुप्भिक्खा अभिक्खणं हुंति डमरा य ॥ ३ ॥

दूसमअणुभावेण य परिहाणी होहि ओसहिबलाणं ॥
तेणं मणुयाणंपि उ आउगमेहादिपरिहाणी ॥ ४ ॥ इत्यादि ॥

भाषार्थः—कहा है दूसमनामा अवसर्पिणीकालके पांचमे आरे (हिस्से)-में गाम प्रायः मसाणसरिखे होवेंगे, येह क्षेत्रके गुणोंकी हानी जाननी. और कालमें भी यह वक्ष्यमाण हानी होवेगी, सोही वतावे हैं. समय समयमें अनंते अनंते द्रव्यपर्यायोंके वर्ण आदिशब्दसें रस, गंध, स्पर्श, जे जे शुभ शुभतर हैं उनोंकी हानी होवेगी, परंतु अहोरात्र तावन्मात्रही रहेगा, दूसमकालके प्रभावसें साधुयोंके योग्य क्षेत्र प्रायः दुर्लभ होवेंगे, और सुकालमें भी साधुयोंके योग्य भिक्षा दुर्लभ होवेगी, दुर्भिक्ष और राज्यादि उपद्रव वारंवार होवेंगे, तथा दूसमकालके प्रभावसें औषधि अन्नादिकोंके बलकी तथा रसादिककी हानी होवेगी, और तिसकरके मनुष्योंके आयु बुद्धि, आदिशब्दसें अवगाहना वलपराक्रमादिकोंकी भी हानी होवेगी, इत्यादि अवसर्पिणीका वर्णन किया है; सो अवसर्पिणीकाल प्रथम आरेसें प्रारंभ हुआ है, तवसें भूमिआदि पदार्थोंके रस—वीर्य घटनेसें पुरुषादिकोंकी अवगाहना आयु भी घटने लगी; सो अवतक, तथा आगे कितनेक कालतांइ घटती जायगी. क्रमसें घटते घटते हमारे समयतक असंख्य वर्ष गुजर चुके हैं; लाखों करोडों वर्षोंके व्यतीत होनेसें थोडी २ घटते २ हमारे समयमें थोडी अवगाहना आयु-रह गइ है; इसवास्ते असंख्य काल पहिले बडी अवगाहनाका होना संभवे है. इस कालमें जो नही मानते हैं, वे क्या, असंख्य काल असंख्य वर्ष अतीतकालका पूरा पूरा स्वरूप देख आए हैं, जो नही मानते हैं?

अब अतीतकालमें पुरुषादिकोंके शरीर वडे २ कद्दावर थे, इस कथन ऊपर हम थोडासा प्रमाण भी लिखते हैं. । सन १८५० ई० में मारुआं नजदीक, भूमिमें खोदते हुए, राक्षसी कदके मनुष्यके हाड भूमिमेंसें निकलेथे; उनमें जबाडेका हाड, आदमीके पगजितना लंवा था, और एक बुशल अर्थात् चौवीस (२४) सेर पक्के गेहूं तिसकी खोपरीमें समा सक्तेथे, एक २ दांतका वजन पउणा आंउस (कुछक न्यून दो तोले)

प्रमाण था. । और कीनटोलोकस नामका राक्षस पंदरा (१५) फुट ६ ईंच ऊंचाथा, उसके खंभेकी चौडाइ १० फुटकी थी; और सारलामेनके वखतमें मालुम हुआ फरटीग्स नामका सखस २८ फुट ऊंचा था; यह कथन गुजरातमित्रके ३० मे पुस्तकके तारीख १८ सपटेंबर सन १८९२ के अंकमें लिखा है.

तथा तारीख १२ नवेंबरसन १८९३ के बुंबईका गुजराती पत्रमें लिखा है कि, हंगरीमें राक्षसीकदके एक मेंडक (दुर्दर–देडका) का हाडपिंजर मिला है; इस मेंडकको 'लेब्रीरीनथोडोन' के नामसें पिछाननेमें आते हैं. प्राचीन शोधोंके करनेसें मालुम होता है कि, ऐसी जातके मेंडक तिस अतीतकालमें बहुत अस्ति धराते थे, परंतु आजकालमें ऐसे मेंडककी अस्ति है नही. इस मेंडककी खोपरी इतनी वडी है कि, उसकी दोनों आंखोंके खाडोंके बीचमें १८ ईंचका अंतर है; इस खोपरीका वजन ३१२ रतल प्रमाण है, और सर्व हाडोंके पिंजरका वजन १८६० रतल प्रमाण, अर्थात् लगभग एक टन प्रमाण होता है. तथा प्रोफेसर थीओडोर कुक अपने वनाए भूस्तर विद्याके ग्रंथमें लिखते हैं कि, पूर्वकालमें उडते गिरोली (छपकली–किरली) जातके प्राणी ऐसें बडे थे, जिसकी पांख २७ फुट लंबी थी. जव ऐसें प्राणी पूर्व कालमें इतने बडे थे, तो फिर मनुष्योंकी अवगाहना वहुत वडी होवे तो, इसमें क्या आश्चर्य है ? ये पूर्वोक्त सर्व शोधें अंग्रेजोंने करी है. अव जो कोइ कहे कि, इतने वडे शरीरवाले मनुष्य, मेंडक, गिरोलीको हम नही मानते हैं, तो फिर हम उनको क्या प्रमाण देवे ? क्योंकि, ऐसें अकलके पुतलों (बारदानों)-को तो सर्वज्ञ भी नही समझा सकते हैं. और जो कोइ भूस्तर विद्याकी शोधको सत्यकरके मानते हैं, उनकेवास्ते तो पूर्वोक्त प्रमाण बहुत वलवत् है कि, पिछले जमानेमें मनुष्योंके शरीर बहुत बडे कद्दावर थे; इससें वहुत प्राचीनतर कालमें जो अवगाहना जैन सिद्धांतमें लिखी है, सो भी सत्य सिद्ध होसकती है. । तथा मनुस्मृतिकी टीकामें श्रीरामचंद्रजीकी आयु दशसहस्र (१००००) वर्षकी लिखी है. । तथा महाभार-

तके षोडश (१६) अध्यायमें ब्रह्माकी बेटी कश्यपकी स्त्री कद्रूके अंडेको पकनेका काल पांचसौ (५००) वर्ष लिखा है, और वनिताके अंडेको पकनेका काल एक सहस्र (१०००) वर्ष लिखा है.। तथा महाभारतके एकोनविंश (१९) अध्यायमें राहुका शिर, पर्वतके शिखर जितना बडा लिखा है.। तथा एकोनत्रिंश (२९) अध्यायमें षट् (६) योजन ऊंचा, और बारां योजन लंबा, हाथी लिखा है.* तथा तीन योजन ऊंचा, और दश योजनका परिघ (घेरा), ऐसा कुर्म (कच्छु–काचबा) लिखा है.। तथा तौरेतग्रंथमें नुह आदि कितनेक मनुष्योंकी ९००, वा ८००, सौ वर्षकी आयु लिखी है. इससें मालुम होता है कि इस्सें पहिले प्राचीनतर जमानेमें मनुष्योंमें बहुत बडी आयुवाले मनुष्य थे. इस समयमें भी हिंदुस्थानकी अपेक्षा कितनेक देशोंमें अधिक आयुवाले मनुष्य विद्यमान है; तो फिर, असंख्यकालके पहिले मनुष्योंकी सर्व देशोंमें शत (१००) वर्ष प्रमाणही आयु माननी, यह बुद्धिमानोंको उचित है? नहीं. इसवास्ते सर्वज्ञोक्त पुस्तकोंमें जो जो लेख है, सो सर्व सत्यही है. परंतु जो तुमारी समझमें नही आता है, सो तुमारी बुद्धिकी दुर्बलता है. क्योंकि, जो कोइ इससमयमें किसी नवीन पुस्तकमें लिखजावे कि, एक पुरुष सौ (१००) मण बोजा उठा सकता है, और एक पुरुष २७ मणकी लोहमयी मूंगली (मुद्गर-मोगरी) उठा सकता है, तो क्या तिस लेखको आजसें ५० वर्ष पीछे तुच्छबुद्धिवाले मान सकते हैं? नहीं. परंतु यह वार्त्ता हमारे प्रत्यक्ष है. पंजाब देशके लाहोर जिलेमें वलटोहे गामका रहनेवाला, फत्तेसिंह नामका एक सिख ४०, वा, ५०, वा १००, मणके बोजेवाले अरहट (रेंट) को उठा लेता है; और पूर्वोक्त जिलेमें चग्रांवाला गामका रहनेवाला, हीरासिंह नामका एक पुरुष २७ मण लोहेकी मूंगली (मुद्गर–मोगरी) उठाता है, यह हमारे प्रत्यक्ष देखनेमें आया है. इसीतरें सर्वज्ञके कथन किये प्राचीन लेख, कालांतरमें अल्पबुद्धिवालोंकी समझमें आने कठिन है.

* बाबु शिवप्रसाद सितारे हिंद (स्टार आफ इंडिया) ने लिखा है कि, बडे कदके आदमीको चढनेकेवास्ते इतना बडा घोडा कहांसे मिलता होगा? सो इसका उत्तर भी जाणना कि, यदि इतना बडा हस्ती उस जमानेमें होता था, तो क्या घोडे नही होते होंगे !!!

प्रश्नः—कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें पृथिवी स्थिर, और सूर्य चलता है, ऐसा लेख है; और विद्यमान कालमें तो, कितनेक पाश्चात्यादि विद्वान् कहते हैं कि, पृथिवी चलती है, और सूर्य स्थिर है; और कितनेक कहते हैं कि, पृथिवी भी चलती है, और सूर्य भी अपनी मध्यरेखापर चलता है; यह क्यों कर है ?

उत्तरः—प्रथम तो हे भव्य! जैनमतके चौदहपूर्व, एकादशांग, उपांग, प्रकीर्णक, निर्युक्ति, वार्त्तिक, भाष्य, चूर्णी, आदि जैसें सुधर्म स्वामी गणधर आदिकोंने रचे थे, और जैसें वज्रस्वामी दशपूर्वधारीने उनका उद्धार करके नवीन रचना करी, सो ज्ञान प्रायः सर्व, स्कंदिलाचार्यके समयमें व्यवच्छेद हो गया है; उनमेंसें जो शेष किंचित्मात्र रहा, सो नाममात्र रह गया. फिर उस ज्ञानको स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने नाममात्र आचारांगादिको एकत्र करके रचना करी, परंतु स्कंदिलादि आचार्य साधुयोंने स्वमतिकल्पनासें कुच्छ भी नही रचा है; जो शेष रह गया था, उसकोही तिस तिस अध्ययन उद्देशेमें स्थापन किया. फिर देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणआदिकोंने ताडपत्रोंपर मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, वृत्ति, आदि और अन्यप्रकरणप्रमुख एक कोटि (१०००००००,) पुस्तक लिखें. वे पुस्तक भी, जैनोकी गफलत, मतोंके झगडे, मुसलमानोंके जुलमसें, और गुर्जर देशमें अग्नि आदिके उपद्रवसें, वहुतसें नष्ट होगए; और कितनेक भंडारोंमें वंद रहनेसें गल गए; जैसें पाटणमें फोफलियावाडेके भंडारमें एक कोठडीमें ताडपत्रोंके पुस्तकोंका चूर्ण हुआ भुसकीतरें पडा है. और जैसलमेरमें तो, प्राचीन पुस्तकोंका भंडार कहां है, सो स्थानही श्रावकलोक भूल गए हैं. तो भी, डॉक्टर बुह्लर साहिबने, मुंबई हातेमें डेढ लाख (१५००००) जैनमतके पुस्तकोंका पता लगाया है; और उनका सूचीपत्र भी अंग्रेजीमें छपवाया है, ऐसा हमने सुना है. जब इतने पुस्तक जैनमतके नष्ट होगए हैं तो, हम लोक क्यों कर जैनमतके पुस्तकोंके लेखानुसार सर्व प्रश्नोंका समाधान कर सके कि, इस अभिप्रायसें यह कथन किया है!

और इस कालमें जो बुद्धिमानोंने पृथिवी सूर्य आदिके चलनेका स्वरूप प्रकट किया है, सो अनुमान बांधके प्रकट करा है; परंतु सर्वस्वरूप किसीने आंखोंसें नही देखा है. क्योंकि, दक्षिण उत्तर ध्रुव बतलाते हैं, और उनका स्वरूप लिखते हैं, और यह भी कहते हैं कि, दक्षिण उत्तर ध्रुवोंतक कोइ भी पुरुष नही जा सकता है. और ध्रुवकी तरफ जानेका प्रयत्न करनेवाली कई मंडलिओंका पता भी बरफके पहाडोंमें लगा नहीं है. जब ऐसें है, तो फिर, उनके लिखे कल्पित-आनुमानिक स्वरूपकी सत्यता कैसें मानी जावे? क्योंकि, पृथिवीके कितनेही हिस्से ऐसें हैं कि, वे अभितक जाननेमें नही आये हैं. थोडे अरसेकी बात है, एक अखबार (न्युसपेपर) में हमने बांचा है कि, अमेरिकन शोधकोंने यह विचार किया कि, यह धूमस (धूवां) कहांसे आती है? तलाश करते हुए उनको एसा मालुम हुआ कि, दूर फांसलेपर एक शहर तीसहजार (३००००) घर, वा मनुष्योंकी वस्तीवाला दीख पडा; उस विषयमें वे लिखते हैं कि, हम नही जानते है कि, इस शहरका क्या नाम, और किस बादशाहकी हकुमत इसपर है? ऐसेंही पृथिवीके अनेक विभाग, विना जाने पडे हैं. तो फिर, हम कैसें सर्व कल्पित-आनुमानिक बातोंको सत्यकरके मान लेवें? तथा मि० वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए. के पास एक अमेरिकन विद्वानका बनाया हुआ 'अर्थ नॉट ए ग्लोब' (EARTH NOT A GLOBE) नामका पुस्तक हमने देखा, जिसमें ऐसा लिखा सुणा है, कि पृथिवी गोल नही, किंतु चपटी (सपाट) है, और पृथिवी फिरती नही है, किंतु सूर्य फिरता है, ऐसें सिद्ध किया है. तथा आकाशमें ऐसें तारे हैं, उनको देख हम ऐसा अनुमान करसकते हैं कि, पृथिवी स्थिर है, और सूर्य चलता है, और जो कोइ हमारे पास आके यह बात देखना चाहे तो, उसको हम दिखला सकते भी हैं. तथा वेदोंमें भी सूर्य चलता है, ऐसें लिखा है.

तथाहि प्रथम ऋग्वेदे ॥

तरणिर्विश्वदर्शतोज्योतिष्कृदसिसूर्य ॥ विश्वमाभासिरोचनं ॥४॥

ऋ० अ० १ अ० ४ व० ७।

भाष्यका भाषार्थः—हे सूर्य! तूं तरणि—तरिता है, अन्य कोइ न जासके ऐसे वडे अध्व मार्गमें जानेवाला है;॥

तथा च स्मर्यते॥

योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने॥
एकेन निमिषार्द्धेन क्रममाण नमोस्तु ते॥ १॥ इति॥

भाषार्थः— दो सहस्र दो सौ और दो (२२०२), इतने योजन सूर्य आंख मीचके खोले तिसकालसें आधे कालमें चलता है, इत्यादि—। तथा ऋग्वेद अ० १ अ० ३ व० ६ में लिखा है कि, सुवर्णमय रथमें वैठके जगत्को प्रकाश करता हुआ, और देखता हुआ, सूर्य आजाता है.। तथा देव दीपता हुआ सूर्य, प्रवणवत मार्गकरके जाता है, तथा उर्ध्वदेशयुक्त मार्गकरके जाता है, उदयानंतर आमध्यान्हतांइ उर्ध्व मार्ग है, तिसके उपरांत आसायंकाल प्रवणमार्ग है, यह भेद है; और यजन करनेके देशमें सूर्य श्वेतवर्णके अश्वोंकरके जाता है, और दूर आकाश देशसें यहां आता है.।

तथा ऋ० अ० २ अ० १ व० ५ में लिखा है.। यथा॥

"॥ सूर्योहि प्रतिदिनं एकोनषष्ट्याधिकपंचसहस्रयोजनानिमेरुं प्रादक्षिण्येन परिभ्राम्यतीत्यादि॥"

भाषार्थः—सूर्य प्रतिदिन ५०५९ योजन मेरुको प्रदक्षिणा करके परिभ्रमण करता है. इत्यादि.।

तथा ऋ० अ० २ अ० ५ व० २ में लिखा है.। यथा॥

"॥ अचरंती अविचले द्वे एवैते द्यावापृथिव्यौ॥" इत्यादि.।

अविचल अचल अर्थात् स्थिर दोही है स्वर्ग १, और पृथिवी २, इत्यादि ऋचायोंसें सूर्यका चलना, और पृथिवीका स्थिर रहना कथन किया है. ऐसेंही यजुर्वेदादिसंहिता, और ब्राह्मणभागोंमें सूर्यके चलनेका कथन है. वैवलके हिस्से तौरेतमें भी लिखा है कि यहसुया जव लडा-

इमें लडता था, तव सूर्य कितनेक घंटेतक चलनेमें थम गया था; इत्यादि सर्व धर्मपुस्ककोंमें प्रायः सूर्यका चलनाही लिखा है.

प्रश्नः–कितनेक कहते हैं कि, जैनमतमें जो भरतखंडकी लंबाई, और चौडाइ, कही है, सो बहुत है; और देखनेमें हिंदुस्तान थोडासा है, इसका क्या सबब है?

उत्तरः–जैनमतमें हिंदुस्तानका नाम कुच्छ भरतखंड नही लिखा है; किंतु आर्य, अनार्य, सर्व देश मिलाके ३२००० देश जिसमें वसते थे, उसका नाम जैनमतमें भरतखंड लिखा है. वे अनार्य, आर्य देश जौनसें है, उनके नाम श्रीप्रज्ञापना उपांग सूत्रसें लिखते हैं. । प्रथम अनार्य देशोंके नाम लिखते हैं. । शक १, यवन २, चिलात ३, शवर ४, वर्व्वर ५, काय ६, मुरुंड ७, ओड्ड ८, भडग ९, तीर्णणक १०, पक्कण ११, नीक १२, कुलक्ष, १३, गोंड १४, सीहल १५, पारस १६, गोध १७, अंध्र १८, दामिल १९, चिल्लल २०, पुलिंद २१, हारोस २२, दोव २३, वोक्कण २४, गंधहार २५, बहलि २६, अर्जल २७, रोम २८, पास २९, वकुश ३०, मलका ३१, बंधकाय (चूंचुका) ३२, सूकलि (चूलिक) ३३, कुंकण ३४, मेद ३५, पल्हव ३६, मालव ३७, मग्गर (महुर) ३८, आभासिक ३९, कण (अणक) ४०, वीरण (चीन) ४१, ल्हासिक ४२, खस ४३, खासिक ४४, नेदूर ४५, मढ ४६, डोंबिलग ४७, लकुस ४८, खकुस ४९, केकेय ५०, अरव ५१, हूणक ५२, रोमक ५३, भमरु ५४, इत्यादि. । और शक १, यवन २, शबर ३, बर्ब्बर ४, काय ५, मरुंड ६, उड्ड ७, भंडड ८, भित्तिक ९, पक्काणिक १०, कुलाक्ष ११, गोंड १२, सिंहल १३, पारस १४, क्रौंच १५, अंध्र १६, द्रविड १७, चिल्वल १८, पुलिंद्र १९, आरोषा २०, डोवा २१, पोक्काणा २२, गंधहारका २३, बहलीका २४, जल्ला २५, रोसा २६, माषा २७, वकुशा २८, मलया २९, चूंचुका ३०, चूलिका ३१, कोंकणगा ३२, मेदा ३३, पल्हवा ३४, मालवा ३५, महुरा ३६, आभाषिका ३७, अणका ३८, चीना ३९, लासिका ४०, खसा ४१, खासिका ४२, नेहरा ४३, महाराष्ट्र ४४, मुढा ४५, मौष्ट्रिका ४६, आरब ४७, डोंबिकल ४८, कु-

हुणा ४९, केकया ५०, हूणा ५१, रोमका ५२, रुक्खा ५३, मरुका ५४, इत्यादि अनार्यदेशके वासी मनुष्योंके नाम, प्रश्नव्याकरण सूत्रमें लिखे हैं. । और शक १, यवन २, शबर ३, बब्बर ४, काय ५, मुरुंड ६, दुगोण ७, पक्कण ८, अक्खाग ९, हूण १०, रोमस ११, पारस १२, खस १३, खासिक १४, दुविल १५, यल १६, वोस १७, बोक्कस १८, भिलिंद १९, पुलिंद २०, क्रौंच २१, भ्रमर २२, रूका २३, क्रौंचाक २४, चीन २५, चंचूक २६, मालंग २७, दमिल २८, कुलक्षय २९, केकय ३०, किरात ३१, हयमुख ३२, खरमुख ३३, तुरगमुख ३४, मेंढकमुख ३५, हयकर्ण ३६, गजकर्ण ३७, इत्यादि अनार्यदेशोंके नाम, सूत्रकृतांगकी निर्युक्तिमें कहे हैं. । इत्यादि एकतीस सहस्र नवसौ साढेचुहत्तर (३१९७४॥) अनार्य देश जिसमें वसते हैं. और साढे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं, उनके नाम प्रज्ञापना सूत्रसें लिखते हैं. । राजगृहनगर–मगधजनपद १, अंगदेश–चंपानगरी २, वंगदेश–ताम्रलिप्तीनगरी ३, कलिंगदेश–कांचनपुरनगर ४, काशीदेश–वाणारसीनगरी ५, कोशलदेश–साकेतपुर अपर नाम अयोध्यानगर ६, कुरुदेश–गजपुर (हस्तिनापुर) नगर ७, कुशावर्त्तदेश–सौरिकपुरनगर ८, पंचालदेश–कांपिलपुरनगर ९, जंगलदेश–अहिछत्तानगरी १०, सुराष्ट्रदेश–द्वारावती (द्वारिका) नगरी ११, विदेहदेश–मिथिलानगरी १२, वत्सदेश–कौशांबीनगरी १३, शांडिल्यदेश–नंदिपुरनगर १४, मलयदेश–भद्दिलपुरनगर १५, वच्छदेश–वैराटनगर १६, वरणदेश–अच्छापुरीनगरी १७, दशार्णदेश–मृत्तिकावतीनगरी १८, चेदिदेश–शौक्तिकावतीनगरी १९, सिंधुदेश–वीतभयनगर २०, सौवीरदेश–मथुरानगरी २१, सूरसेनदेश–पापानगरी २२, भंगदेश–मासपुरिवट्टानगरी २३, कुणालदेश–श्रावस्तीनगरी २४, लाढदेश–कोटिवर्षनगर २५, श्वेतंविकानगरी केकय आधा (०॥) देश, येह साढे पच्चीस (२५॥) आर्यदेश हैं. क्योंकि, इन देशोंमेंही जिन–तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, बलदेव, वासुदेवादि आर्य–श्रेष्ठ पुरुषोंका जन्म होता है, इसवास्ते इनको आर्यदेश कहते हैं. येह सर्व आर्यदेश विंध्याचल, और हिमालयके बीचमें हैं. हैम, अमरा-

दिकोशोंमें भी ऐसेंही आर्यदेश कहा है. ऐसे अनार्य आर्य सर्व देश मिलाके बत्तीस हजार (३२०००) देश जिसमें वास करते हैं, तिसको जैनमतमें भरतखंड कहा है; नतु हिंदुस्तानमात्रको. । ऐसे पूर्वोक्त भरतखंडकी भूमिपर बहुत जगोंपर समुद्रका पाणी फिरनेसें खुली भूमि थोडी रह गइ है; यह बात जैन ग्रंथोंसें, और परमतके ग्रंथोंसें भी सिद्ध होती है. और अनुमानसें भी कितनेक बुद्धिमान सिद्ध करते हैं. जैसें सन १८९२ सपटेंबर मास तारीख ५ को 'नवमी ओरीएंटल कांग्रेस' (NINTH ORIENTAL CONGRESS) जो लंडनशहरमें भरी थी, तिसमें पंडित मोक्षमुल्लरने अपने भाषणमें ऐसा सिद्ध करा है कि, एसीयासें लेके अमेरिकातांइ किसीसमयमें समुद्रका पानी बीचमें नही था; किंतु केवल एकही भूमिका सपाट थी. पीछे समुद्रके जलके आजानेसें बीचमें देशोंके टापु बन गए हैं. और ईसा (इसु खीस्तसें) पहिले १५०००, तथा २००००, वर्षके लगभग सामान्य भाषाके बोलनेवाले प्राचीन लोक, पृथिवीके किसी भागमें बसते थे.* तथा डॉक्टर बुल्हर साहिबने अपने भाषणमें जैन लोकोंके संबंधमें एक निबंध बांचके सुनाया था कि, जैनलोकोंकी शिल्प विद्या कितनेक दरजे (कितनीक बाबतोंमें) बुद्ध लोकोंकी शिल्पविद्याके साथ मिलती आती हैं, तो भी, जैन लोकोंने, वे सर्व बुद्धलोकोंके पाससें नही ली है; किंतु वो विद्या, जैन लोकोंके घरकीही है, ऐसा सबूत कर दीया था.—यह समाचार, गुजराती पत्रके १३ मे पुस्तकके अकटोबर सन १८९२ के ४० मे और ४१ मे अंकमें है. यह यहां प्रसंगसें लिखा है. इसवास्ते चीन, रूस, अमेरिकादि सर्व भरतखंडमेंही जानने. ॥ पूर्वोक्त साढेपच्चीस आर्यदेशोंको, जैनमतमें क्षेत्र आर्य कहते हैं.

प्रश्नः—यदि क्षेत्रकी अपेक्षा येह २५॥ देश आर्य है, और शेष ३१९७४॥ देश अनार्य है तो, क्या आर्य अन्य तरेंके भी हैं, जिसवास्ते इनको क्षेत्रापेक्षा आर्य कहते हो ?

* इस कथनसें जो इसाइ लोक मानते हैं कि, इस पृथिवीके रचेको, वा मनुष्य रचेको छ सहस्र (६०००) वर्ष हुए हैं, सो मिथ्या ठहरता है.

उत्तरः-हां. अन्यतरेंके भी आर्य है, जैनमतके प्रज्ञापना सूत्रमें नव-प्रकारके आर्य कहे हैं. । तथाहि ॥ क्षेत्रार्य १, जाति आर्य २, कुलार्य ३, कर्मार्य ४, शिल्पार्य ५, भाषार्य ६, ज्ञानार्य ७, दर्शनार्य ८, चारित्रार्य ९. ।

अब प्रथम आर्य पदका अर्थ लिखते हैं. ।

"॥तत्रारात् हेयधर्मेभ्यो याताः प्राप्ता उपादेयधर्मैरित्यार्याः पृषोदरादयइति रूपनिष्पत्तिः ॥"

तहां आरात् त्यागने योग्य धर्मोंसें जाते रहे हैं,और प्राप्त है अंगीकार करने योग्य धर्मोंकरके वे कहिये, आर्य. ॥

१. क्षेत्रार्य-क्षेत्रार्यका स्वरूप तो, ऊपर लिख आए हैं. ॥ १ ॥

२. जातिआर्य-अम्बष्ठ १, कलिंद २, वैदेह ३, वेदंग ४, हरित ५, चुञ्चुण ६, रूप ये इभ्यजातियां प्रसिद्ध हैं, तिसवास्ते इन जातियोंकरके जे संयुक्त है, वे जातिके आर्य है, शेष नही. यद्यपि शास्त्रांतरोंमें अनेक जातियें कथन करी है, तो भी, लोकोंमें येही जातियें पूजने योग्य प्रसिद्ध है. ॥ २ ॥

३. कुलार्य-उग्रकुल १, भोगकुल २, राजन्यकुल ३, इक्ष्वाकुकुल ४, ज्ञातकुल ५, कौरवकुल ६. । जिनको श्रीऋषभदेवजीने कोतवालका पद दिया था, उनका जो वंश चला, तिसका नाम उग्रकुल १, जिनको श्रीऋषभदेवजीने पूज्य बडाकरके माना, उनका वंश भोगकुल २, जो श्रीऋषभदेवके मित्रस्थानीये थे, उनका वंश राजन्यकुल ३, जो श्रीमहावीरजीका वंश, सो ज्ञात (न्यात) कुल ४, जो श्रीऋषभदेवजीका वंश, सो ईक्ष्वाकुकुल ५, जो श्रीऋषभदेवजीके कुरुनामा पुत्रसें वंश चला, सो कौरव-वंश ६. चंद्रवंश, और सूर्यवंश, जो श्रीऋषभदेवके पोते चंद्रयश, और सूर्ययशके नामसें प्रसिद्ध हुए हैं, इक्ष्वाकुवंशके अंतरभूतही गिने हैं, न्यारे नही. ॥ ३ ॥

४. कर्मार्य-इनके अनेक भेद हैं । दोसिका जातिविशेष १, सौत्तिका २, कर्प्पासिका ३, सुक्तिवैतालिका जातिविशेष ४, भंडवेतालुका जाति-

विशेष ५, कोलादिक ६, नरवाहीनिका ७, इत्यादि अनेक प्रकारके हैं. ॥ ४ ॥

५. शिल्पार्य–इनके भी अनेक प्रकार हैं.। दरजीका काम करनेवाले१, तंतुवायाकुविंदा २, पट्टकारा पट्टकूलकुविंदा ३, दृतिकारा ४, विच्छिका ५, जण्विका ६, कठादिकारा ७, काष्टपादुकाकारा ८, छत्रकारा ९, वभारा १०, पप्भारा ११, पोत्थारा १२, लेप्पारा १३, चित्तारा १४, संखारा १५, दंतारा १६, भंडारा १७, जिप्भागारा १८, सेल्लारा १९, कोडिगारा २०, इत्यादि अनेक प्रकारके शिल्पार्य जानने ॥ ५ ॥

६. भाषार्य–जहां अर्द्धमागधी भाषाकरी बोलते हैं, और जहां ब्राह्मी लिपिके अठारह (१८) भेद प्रवर्त्ते हैं, अर्थात् लिखते हैं, सो भाषार्य.। ब्राह्मी लिपिके भेद ऊपर लिख आए हैं, और अठारह देशकी भाषा एकत्र मिली हुइ वोली जाती है, सो अर्द्धमागधी भाषा, ऐसें निशीथ चूर्णिमें लिखा है. ॥ ६ ॥

७. ज्ञानार्य–इनके पांच भेद हैं. मतिज्ञानार्य १, श्रुतज्ञानार्य २, अवधिज्ञानार्य ३, मनःपर्यवज्ञानार्य ४, केवलज्ञानार्य ५. इन पांचों ज्ञानोंमेंसें जिसको ज्ञान होवे, सो ज्ञानार्य. इन पांचों ज्ञानोंका स्वरूप नंदिसूत्रसें जान लेना. ॥ ७ ॥

८. दर्शनार्य–इनके दो भेद हैं. सरागदर्शनार्य १, वीतरागदर्शनार्य २; सरागदर्शनार्य, कारणभेद होनेसें कार्यभेद नयके मतसें दश प्रकारके हैं.। निसर्गरुचि १, उपदेशरुचि २, आज्ञारुचि ३, सूत्ररुचि ४, वीजरुचि ५, अभिगमरुचि ६, विस्ताररुचि ७, क्रियारुचि ८, संक्षेपरुचि ९, धर्मरुचि १०.। इनका स्वरूप ऐसें है.। भूतार्थत्वेन सद्भूता सच्चे हैं येह पदार्थ, ऐसें रूपसें जिसने जीव १, अजीव २, पुण्य ३, पाप ४, आश्रव ५, संवर ६, वंध ७, निर्जरा ८, मोक्षरूप ९, नव पदार्थ* जाने हैं; कैसें जाने

* श्रीमेघविजयजी उपाध्यायविरचित "तत्त्वगीता" में जीवका प्रतिपक्षी अजीव, पुण्यका पाप, आश्रवका संवर, वंधका मोक्ष, और निर्जराकी प्रतिपक्षिणी वेदना, ऐसें दश पदार्थ लिखे हैं; और श्री भगवती सूत्रमें भी नवपदार्थोंका वर्णन करके अनंतरही वेदनाका वर्णन किया है. ॥

हैं ? परोपदेशविना, जातिस्मरणप्रतिभारूप अपनी मतिकरके जाने हैं, और उनके सत्य होनेकी रुचि आत्माके साथ तत्त्वरूपकरके परिणाम जो करता है, तिसको निसर्गरुचि जाननी. इस कथनकोही स्पष्टतर कहते हैं. जो पुरुष जिनेंद्र देवके देखे हुए पदार्थोंको द्रव्य १, क्षेत्र २, काल ३, भाव ४ सें, वा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, भाव ४ भेदसें, चार प्रकारसें स्वयमेव आपही परके उपदेशविना जाने, और श्रद्धे; किस उल्लेखकरके ? ऐसेंही है, येह जीवादिपदार्थ, जैसें जिनेंद्र देवोंने देखे हैं, अन्यथा नही है, यह निसर्गरुचि है. । १ । इनही जीवादि नव पदार्थोंको, जो, छद्मस्थके उपदेशसें, वा जिन–तीर्थंकर–सर्वज्ञके उपदेशसें श्रद्धे, उसको उपदेशरुचि जाननी. । २ । जो हेतु विवक्षितार्थगमककों नही जानता है, केवल जो प्रवचनकी आज्ञा है, तिसको सत्यकरके मानता है, जो प्रवचनोक्त है, सोही सत्य है, अन्य नही, यह आज्ञारुचि जाननी. । ३ । जो अंगप्रविष्ट, वा अंगबाह्य सूत्रको पढता हुआ, तिस श्रुतकरकेही सम्यक्त्वको अवगाहन करे, सो सूत्ररुचि जाननी. । ४ । जीवादि किसी एक पदकरके जीवादि अनेकपदोंमें सम्यक्त्ववान् आत्मा पसरेही है; कैसें पसरे है ? जैसें पानीके एकदेशगत तैलका बिंदु समस्त जलको आक्रमण करता है, तैसें एकदेशउत्पन्नरुचि भी, तथाविध क्षयोपशम भावसें शेषतत्त्वोंमें भी रुचिमान् होता है; ऐसें बीजरुचि जाननी. । ५ । जिसने आचारादि एकादश (११) अंग, उत्तराध्ययनादि प्रकीर्णक, दृष्टिवाद बारमा अंग, और उपांगरूप श्रुतज्ञान, अर्थसें देखा है, और तत्त्वरुचि प्राप्त करी है, तिसको अभिगमरुचि कहते हैं. । ६ । धर्मास्तिकायादि सर्व द्रव्योंके भाव (पर्यायों) को यथायोग्य प्रत्यक्षादि सर्व प्रमाणोंकरके, और सर्व नैगमादि नयोंके भेदोंकरके जिसने जाना है, सो विस्ताररुचि जाननी; सर्व वस्तुपर्याय प्रपंचके जाननेकरके तिस रुचिको अतिविमल होनेसें. । ७ । ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तपसें विनय, तथा ईर्यादि सर्व समितियोंविषे, और मनोगुप्तिप्रमुख सर्व गुप्तियोंविषे, जो क्रियाभावरुचि, अर्थात् जिसको भावसें ज्ञानादि आचारोंसें अनुष्ठान

करनेकी रुचि है, उसका नाम क्रियारुचि है, ।८। जिसने कुदृष्टि मिथ्यामत ग्रहण नही करा है, और जो जिनप्रवचनमें कुशल नही है, और जिसने कपिलादि मत उपादेयकरके ग्रहण नही करे हैं, तथा जिसको परदर्शनमात्रका भी ज्ञान नही है, ऐसें संक्षेपरुचिवाला जानना. ।९। जो जीव धर्मास्तिकायादिके धर्म, गत्युपष्टंभकादि स्वभावको और श्रीजिनेंद्रके कहे श्रुतधर्म और चारित्रधर्मको श्रद्धे, सो धर्मरुचिवाला जानना. ।१०। ऐसें निसर्गादि दशप्रकारका रुचिरूप दर्शन कहा.॥ अब जिनलिंगचिन्होंकरके, सम्यग्दर्शन उत्पन्न हुआ जानीये, निश्चय करीए, वे लिंगचिन्ह दिखाते हैं. ॥ वहुमानपुरस्सर जीवादि पदार्थोंके जाननेवास्ते अभ्यास करना; जिनोंने जीवादि पदार्थोंका स्वरूप अच्छीतरेंसें जाना है, उनकी सेवा करनी, अर्थात् यथाशक्ति उनकी वैयावृत करनी; जिनकी जैनेंद्र मार्गकी श्रद्धा भ्रष्ट हो गइ है, ऐसे जो निन्हवादि, और कुदर्शन मिथ्या श्रद्धावाले शाक्यादिक, उनको वर्जना, अर्थात् उनोंका संग परिचय न करना; इन लिंगोंकरके सम्यक्त्व है, ऐसा श्रद्धीये. ॥ इस दर्शनके आठ आचार है, वे सम्यक्प्रकारसें पालने योग्य है. यदि उनका उल्लंघन करे तो, दर्शन (सम्यक्त्व)का भी अतिक्रम उल्लंघन होवे हैं; वे आठ आचार येह है. । निःशंकित शंकारहित होवे. शंका दो तरेंकी है; एक देशशंका, और दुसरी सर्वशंका; देशशंका जैसें सर्व जीवके समान जीवत्वके हुए भी, फिर कैसें एक भव्य है, और दूसरा अभव्य है? और सर्व शंका, प्राकृतनिबद्ध होनेसें सकलही यह प्रवचनकल्पित होवेगा. । यह देश और सर्वशंका करनी उचित्त नही है; जिस कारणसें यहां शास्त्रोंमें दो प्रकारके पदार्थ कहे हैं. एक हेतुसें ग्रहण होते हैं, और दूसरे विनाहेतुके ग्रहण होते हैं. जीवास्तित्वादि जे हैं, उनके सिद्ध करनेवाले प्रमाणके सद्भाव होनेसें, वे हेतुग्राह्य हैं. और अभव्यत्वादि अहेतुग्राह्य हैं, अस्मदादिकोंकी अपेक्षाकरके उनके साधक हेतुयोंके अभाव होनेसें, उनके हेतु प्रकृष्ट ज्ञानगोचर होनेसें; और प्राकृतसें जो प्रवचनका निबंध है, सो बालादिकोंके अनुग्रहार्थे हैं. ॥

उक्तंच ॥

बालस्त्रीमूढमुर्खाणां नृणां चारित्रकांक्षिणाम् ॥
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञैः सिद्धांतः प्राकृतः कृतः ॥ १ ॥

एक अन्यबात भी है कि, प्राकृतमें भी प्रवचनका निबंध दृष्टेष्ट अविरोधी है, तो फिर, कैसें अवांतर परिकल्पनाकी शंका उत्पन्न होवे ? क्योंकि, सर्वज्ञके विना अन्य कोइ भी दृष्टेष्ट अविरोधवचन, नही कह सकता है. यह निःशंकित नामा प्रथम आचार है. । १ । निःकांक्षित, वांछा करनेका नाम कांक्षा है, सो कांक्षा जिसथकी नीकल गइ है, सो कहिये निःकांक्षित, अर्थात् देश, सर्व कांक्षारहित होवे; तहां देशकांक्षा, एक दिगंबरादि दर्शनकी वांछा करे; और सर्वकांक्षा, सर्वही दर्शन अच्छे हैं, ऐसें चिंतन करना; येह दोनों प्रकारकी कांक्षा करनी ठीक नही है. क्योंकि, शेष दर्शनोंमें षट् जीवनिकायपीडासें, और असत् प्ररूपणाके होनेसें; इति निःकांक्षितनामा दूसरा आचार. । २ । विचिकित्सा, मतिभ्रम फलप्रति संशय करना, जिनशासनतो अच्छा है, किंतु प्रवृत्त हुए मुझको इस कर्त्तव्यसें फल होवेगा, वा नही ? क्योंकि, कृषीकर्मादिक्रियामें दोनोंही देखनेमें आते हैं, इत्यादि विकल्परहित होवे. क्योंकि, नही अविकल उपायके हुए उपेयकी प्राप्ति नही होती है, अपितु होवेही है; ऐसा निश्चय जो होना, सो निर्विचिकित्स नामा तीसरा आचार जानना. । ३ । अमूढदृष्टि, बाल तपस्वीके तप, विद्या, अतिशयको देखनेसें मूढस्वभावसें चलचित्त न होवे; सुलसा श्राविकावत्, सो अमूढदृष्टिनामा चौथा आचार. । ४ । समानधार्मिक जनोंके गुणोंकी प्रशंसा करके उनकी वृद्धि करनी, सो उपबृंहणानामा पांचमा आचार. । ५ । धर्मसें सीदाते (डोलतेहूए) को फिर धर्ममेंही स्थापन करना, सो स्थिरीकरणनामा छट्ठा आचार. । ६ । समानधार्मिक जनोंको अन्नपाणी वस्त्रादिकोंसें उपकार करना, सो वात्सल्यतानामा सातमा आचार. । ७ । प्रभावना, धर्मकथा, धर्ममहोत्सवादिकोंकरके तीर्थका प्रकाश करना, उन्नति करनी, सो प्रभावना नामा आठमा आचार. । ८ । इन आठों आचारोंसहित सम्यग्दर्शनसंयुक्त जो होवे सो दर्शनार्य. ॥ ८ ॥

९. चारित्रार्य–इनके भेद श्रीप्रज्ञापनासूत्रमें अनेक प्रकारके करे हैं. परंतु सामान्य प्रकारसें जो अहिंसा १, अनृत २, अस्तेय ३, ब्रह्मचर्य ४, अकिंचिन्य ५, इन पांचों महाव्रतोंका पालक होवे, सो चारित्रार्य जानना.॥९॥

येह नवभेद आर्योंके हैं. यह आर्यपद जैनमतके शास्त्रोंमें हजारों जगे उच्चारनेमें आताहै.

जैसें ॥

"॥ अज्जसुहम्मे अज्जजंबू अज्जपप्भव इत्यादि ॥"

एक कल्पाध्ययनमेंही सैंकडों जगे उच्चार हैं. और जैनमतकी साध्वीयोंका नाम भी, आर्या हैं; इसवास्ते यह आर्य शब्द श्रेष्ठताका वाचक है. सांप्रतिकालमें दयानंदिये (दयानंदमतानुयायी) भी, अपने आपको आर्य समाजी कहलाते हैं. परंतु जो अर्थ, आर्यपदका हम ऊपर लिख आए हैं, सो जिसमें घटे सोही आर्यपदवाच्य है, अन्य नही है. । इति संक्षेपतः कतिपय शंकानिराकरणं समाप्तम् ॥

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे चतुस्त्रिंशः स्तम्भः ॥ ३४ ॥

॥ अथ पंचत्रिंशस्तम्भारम्भः ॥

विदित होवे कि, व्यास सूत्रोंमें जैनमतके कहे तत्त्वोंका तीन सूत्रोंमें खंडन किया है, उन सूत्रोंपर शंकरस्वामीने भाष्य रचके तिसमें विस्तारसें पूर्वोक्त तत्त्वोंका खंडन लिखा है. बहुतसें जैनमती यह भी नही जानते हैं कि, शंकरस्वामी कौन थे? कब हुए हैं? और उनोंने हमारे मतका किस रीतिसें खंडन किया है? और बहुत ब्राह्मण लोक शंकरस्वामीने जैनीयोंके बेडे जहाज भरवाके डुबवा दिये थे, इत्यादि अनेक मिथ्या बातें कर रहे हैं, वे सर्व मालुम हो जावेंगी. इसवास्ते इस पंचत्रिंश (३५) स्तंभमें हम शंकरस्वामीकी उत्पत्ति, शंकरस्वामीके शिष्य अनंतानंदगिरिकृत शंकरविजय, और माधवाचार्यकृत दूसरी शंकरविजय ग्रंथानुसार लिखते हैं. और जिन जैनमतके तत्त्वोंका खंडन जिस-

तरें व्यासजी, शंकरस्वामी आदिकोंने लिखा है, वैसाही खंडनपूर्वक, छत्तीस (३६) मे स्तंभमें लिखेंगे.

केरलदेशके एक नगरमें सर्वज्ञनामा ब्राह्मण, और कामाक्षी नामा तिसकी भार्या रहते थे; उनोंकी एक विशिष्टानामा पुत्री, जब आठवर्षकी हुई, तब तिसके पिताने विश्वजित्नामा ब्राह्मणके पुत्रको विवाह दी. विशिष्टा, शिवके आराधनमें तत्पर, और विवेकवाली थी. ऐसी विशिष्टाको त्यागके तिसका पति विश्वजित्, अरण्यमें तप करनेकेवास्ते निश्चय करता हुआ; तबसें विशिष्टा अकेली रहगई. और महादेवको पूजाभक्तिसें अतिप्रसन्न करती भई. तब महादेव सर्वव्यापी है, तो भी, उसके वदनकमलमें प्रवेश करके उसके उदरमें पुत्ररूप गर्भपणे उत्पन्न हुआ. गर्भकालसें पीछे जन्म हुआ, पुत्रका नाम शंकर रक्खा. ॥ इतिशंकरस्वामीजन्मवर्णनम् ॥

बाल्यावस्थामेंही शकरने गुरुमुखसें सर्व विद्या पढली. पीछे शंकरस्वामी माताकी आज्ञा लेके नर्मदा नदीके किनारेपर वनमें जाकर गोविंदनाथ संन्यासीके शिष्य हुए; तहांसें चलके शंकरस्वामीने काशीमें आके कितनेक दिन निवास किया, और अपनी ब्रह्मविद्याका, सुननेवालोंको उपदेश करते रहे; तहां उनके कितनेही शिष्य होते भये. तहांसें चलके हिमालयपर्वतके बदरीआश्रममें जा रहे; तहां वेदांत, उपनिषद्, गीतादिका भाष्य रचते हुए, और शिष्योंको अपने रचे हुए भाष्यका पठन कराते हुए. तदपीछे शारीरिकसूत्रोंका भाष्य रचा, तदपीछे कुमारिलभट्टपाससें वार्त्तिक करवानेकी इच्छा उत्पन्न भई, तब हिमालयसें दक्षिण दिशाको चले. प्रथम कुमारिलभट्टके जीतनेवास्ते प्रयाग आये, तहां त्रिवेणीस्नान करके शिष्योंसहित किनारेपर बैठे. तब लोकोंके मुखसें ऐसी वार्त्ता सुनी, "जिसने पर्वतसें छलांक (फलांग) मारके वेदवाणीको प्रामाण्य सिद्ध करी, सो यह कुमारिल, सर्व वेदार्थोंका जाननेवाला, अपना दोष दूरकरनेकेवास्ते तुषाग्निकरके दग्ध होता है. सर्व शरीर तो जलगया है, एक मुख शेष रहता है."—यह सुनके संकरस्वामी तुरत वहां गए, और तुषराशिमें बैठे, कुमारिल

को देखा, और प्रभाकरादि शिष्यवर्ग रुदन कर रहे हैं. कुमारिलने अदृष्ट, अश्रुतपूर्व, शंकरस्वामीको देखके बडा आनंद पाया. तब शंकरस्वामीने उसको अपना भाष्य दिखलाया, तब कुमारिलने कहा तुमारा भाष्य तो ठीक है, परंतु इस भाष्यके प्रथमाध्यायमें अष्टसहस्र (८०००) वार्त्तिका चाहिये. जेकर मैंने दीक्षा नही लि होती तो, मैं इसकी वार्त्तिका करता; परंतु प्रथम तो मैं, बौद्धोंसें वादमें हारा, और उनकाही शरण मैंनें लिया; तब मैं उनका सिद्धांत सुनता रहा. कुशाग्रीयबुद्धिवाले बौद्धोंने वैदिकमत खंडन करा, तब मेरी आंखोंसें आंसु गिरे, और पासवालोंने मुझे देखा. तबसें उनोनें मेरेपरसें विश्वास छोड दीया कि, यह अपने मतके माननेवाला नही है, हमने विरोधीमतवाले ब्राह्मणको पढाया, और इसने हमारे मतका तत्त्व जान लिया, इसवास्ते इसको उपद्रव करना चाहिये. ऐसी सलाह करके बौद्धोंने मुझको उच्चप्रासादसें नीचे गिराया, तब मैं ऊपर चढ आया, और मुखसें कहा कि, यदि श्रुतियां सत्य है तो, मैं, गिरता हुआ भी, जीता रहूं. मेरे जीते रहनेसें श्रुतियां सत्य हो गई, परंतु गिरनेसें मेरी एक आंख फुट गई, सो तो, विधिकी कल्पना है. एक अक्षरका प्रदाता गुरु होता है, शास्त्र पढानेवालेका तो क्याही कहना है? मैंने सर्वज्ञ बुद्धगुरुपाससें शास्त्र पढके उसकाही बुरा किया, उसके कुलकाही प्रथम नाश किया, और जैमनिमत माननेसें मैंने ईश्वरका खंडन किया, अर्थात् ईश्वर जगत्कर्त्ता सर्वज्ञ नही है, ऐसा सिद्ध किया. इन दोनों दूषणोंके वास्ते, यह प्रायश्चित्त मैंने किया है, परंतु, तूं, मेरे बहनोइ, माहिष्मतिनगरनिवासी, मंडनमिश्रको जीत लेवेगा तो, तेरा मत सर्वजगे प्रचलित होवेगा. इतना कहकर भट्ट मृत्युको प्राप्त हुआ.*

---

* आनंदगिरिकृत शंकरविजयके ५५ प्रकरणमें लिखा है। तब परमगुरु, भट्टाचार्यको देखके कहता हुआ, हे द्विज! तूने अज्ञानकरके यह अवस्था प्राप्त करी है, हे मूढ! तूं गूढ अर्थवाले व्याख्यानोंको नही जानता है. यतः।

हंताचेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम्॥
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते॥

इतिश्रुतेः। मारनेवालेको जो हंता–हिंसक मानता है, और हतको मरा मानता है, वे दोनोंही अज्ञ हैं.

शंकरस्वामीने माहिष्मति नगरीमें जाके मंडनमिश्रको पराजय करा, तब उसकी भार्याने शंकरस्वामीको कामशास्त्रकी बातें पूछी, शंकरस्वामीको उनका उत्तर नही आया. तब शंकरस्वामी वहांसें चले गये, किसी देशमें अमरक नामा राजेका मुरदा देखा, तब एक पर्वतकी गुफामें जाके अपने शिष्योंको कहा कि, जबतक मैं पीछा इस शरीरमें न आऊं तबतक तुमने इसकी रक्षा करनी; ऐसा कहकर योग महात्मसें शंकरके शरीरको छोडके शंकरका जीव, उस राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया; तब राजाका शरीर धीरे धीरे अंग हिलाके जीता होगया. तब सर्व राणीयां मंत्री आदि आनंदित हुए, बडे उत्सवसें राजमंदिरमें लेगए; मंत्रियोंने परस्पर विचार किया कि, यह किसी योगीका जीव राजाके शरीरमें प्रवेश कर गया है, नही तो, राज्य करनेकी ऐसी कुशलता कहांसें होवे? यह गुण समुद्र, फिर तिस शरीरमें न चला जावे, इसवास्ते, जो मृतक शरीर होवें, वे सर्व, जला दो, ऐसी अपने नोकरोंको आज्ञा दे दी.*

इधर परम निपुण शंकरस्वामी, अपने मंत्रियोंको राज्य चलाना सोंपके, आप, राजाकी राणीयोंसें भोग करने लगे. कैसें भोग? जो अन्य राजाओंको मिलने दुर्लभ हैं; बहुत सुंदर महेलोंमें राणीयोंके साथ पासाओंकरी द्यूतक्रीडा करते हुए, अधरदशन, बाहुउद्वहन, कमलसें ताडना, रतिविपर्यय ग्लहपण करते हुए, अधरसें उत्पन्न हुआ सुधा-अमृतके श्लेषसें मनोहर मुखके पवनके संबंधसें सुगंधी कांता—स्त्रियोंके हाथसें प्राप्त हुआ इसवास्तेही अतिप्रिय मदका करनेहारा, ऐसा मदिरा

क्योंकि, न यह किसीको मारता है, और न किसीसें मरता है. ऐसे कहा हुआ भट्टाचार्य, परम गुरुको कहता हुआ; जाग्रतकालानागत नूतन बौद्धतर, किसवास्ते यहां आकरके, तूं, मुझको तपाता है? तब गुरुने कहा, मैं, बौद्ध नही हूं; किंतु, शंकराचार्य, शुद्धाद्वैतमार्गदाता, प्रसंगार्थे यहां आया हूं. यह वचन सुनके अदग्धशेषशरीर भट्टाचार्यने कहा, मेरी बहिनका पति, मंडनमिश्र, सर्वज्ञसदृश, सकलविद्यामें पितामहसमान है, इसके साथ, तूं, वाद करनेकी खाजकी निवृत्तिपर्यंत, प्रसंग कर. इत्यादि ॥

* आनंदगिरीकृत शंकरदिग्विजयमें राणीने शरीर जला देनेकी आज्ञा नोकरोंको दी इत्यादि लिखा है, तद्विषयिक वर्णन हमारे बनाए " जैनतत्त्वादर्श " सें जान लेना.

(शराब) यथा इच्छासें आप पीपीकर, कांतायोंको भी पिलाते हुए; मंदाक्षर थोडेसें पसीनेयुक्त मनोहर भाषण है जिसमें, निभृतरोमांचित सीत्कारयुक्त कमलकीतरें सुगंधित प्रसरणशील मन्मथ है जहां, ऐसे कांतामुखको पीके शंकर राजा, कृत्यकृत्य होते हुये; आवरणरहित जघन है जिसमें, दश्या है तले (नीचे)का होठ जिसमें, अतिशयकरके मर्दन करे हैं स्तनयुगल जिसमें, रतिकूजितशब्द है जिसमें, पाया है उत्साह जिसमें, पाया है क्रियाभेद संवेशन वा जिसमें, नृत्य कर रहे हैं गात्र जिसमें, गइ है इतरकी भावना जिसमें, ऐसा वचनके अगोचर, अतिशायिक सुख, उत्पन्न हुआ है; वहां भी, ब्रह्मानंदही, अनुभव करते रहें, सोही दिखाते हैं. श्रद्धा प्रीति रति धृति कीर्ति कामसें उत्पन्न हुइ विमलामोदिनी घोरा मदनोत्पादिनी मदामोहिनी दीपनी वशकरी रंजनी इतनी कामकी कला स्त्रीके अंगोंमें सर्व है, और स्त्रीके अंगोंमें अमुक २ तिथिमें मदन वास करता है, ऐसी कामकी कलामें जानकार मनोज्ञ है चेष्टा जिसकी, सकल विषयोंमें व्यापारयुक्त इंद्रियां है जिसकी, सदा प्रमदा उत्तम करी है जो कुचलक्षणगुरुकी उपासना तिसकरके अत्यंत भला निर्वृत है अंतःकरण जिसका, सो निरर्गल निराबाध निधुवन मैथुन तिसमें जो प्रधान ब्रह्मानंद तिसको भोगते हुए. सो शंकररूप राजा पूर्वकीतरें राणीयोंके साथ भोगोंको भोगता हुआ, जैसें वात्स्यायनने कामशास्त्रमें मैथुन सेवनेकी विधि लिखी है, तैसें शंकरस्वामी मैथुन सेवते हुए. सो कामशास्त्र स्वयमेव साक्षात् देखते हुये, वात्स्यायनके कहे सूत्र, और उनकी भाष्यको सम्यग् देखके, एक अभिनवार्थ गर्भित निबंध कामशास्त्र, नृपवेशधारी शंकरस्वामीने रचा. शंकरस्वामी तो, विलासिनीयोंसें उक्त रीतिसें भोग करते रहे.

इधर शंकरस्वामीके शिष्य, आपसमें कहने लगे कि, गुरुजीने एक मासकी अवधि कीथी, सो भी पांच छ दिन अधिक हो गये है. तो भी, गुरु अपने शरीरमें आकर हमारी अनुकंपा नही करते हैं. हम क्या करे? कहां ढूंढें? कहां जावें? ऐसी चिंता करके किसी एकको शरीरका रक्षक

ठहराके, आप सर्व ढूंढनेको गये; वे पर्वतादि देखते हुए अमरकनृपके देशमें आए. उनोंने वहां श्रवण किया कि, यहांका राजा मरके फिर जी उठा है. तब शिष्योंको धैर्यता आइ, और जाना कि, यही हमारा गुरु है. और जाना कि, यह राजा गीतका लोभी, और स्त्रीयोंमें आसक्त है, तब उनोंने गानेवालोंका वेष किया, तब नगरमें उनके गानेकी प्रसिद्धि हुइ, तब राजाने उनको गान सुननेकेवास्ते बुलवाये, तब उनोंने गानमें "तत्त्वमसि" का उपदेश किया, जो आनंदगिरिकृत विजयमें, और माधवकृत विजयमें प्रकट है. उनका उपदेश सुनके शंकरस्वामी होशमें आये, और राजाका शरीरको छोडकर अपने शरीरमें प्रवेश करगये. परंतु तिस अवसरमें राजाके चाकर, शंकरस्वामीके शरीरको अग्निसें दाह कर रहेथे, तब शरीरमें प्रवेश करके शंकरस्वामीने अग्निको शांत करनेकेवास्ते नरसिंहका स्तोत्र पढा, जो टीकामें लिखा है. अग्नि शांत हुआ, तब शंकरस्वामी वहांसें चलके शिष्योंके साथ जा मिले. वहांसें मंडनमिश्रके घरमें आये, और तिसकी भार्याके प्रश्नोंके उत्तर देके उनको जीते. मंडनको अपना शिष्य किया, वहांसें दक्षिण दिशाको चले, महाराष्ट्रादि देशोंमें अपने रचे ग्रंथोंका प्रचार करते हुए; और अपने शिष्योंसें पाशुपत, वैष्णव, वीर, शैव, माहेश्वरादि मतोंकों खंडन करवाते हुए; अनेक तीर्थोंकी यात्रा की, अपनी मातासें मिलने गये, तिसका अंत्यसंस्कार किया, पीछे दक्षिणादि देशोंमें फिरे, वहांसे चलके विदर्भ देशके सुधन्वा नामा राजाको अपना शिष्य किया; सुधन्वाने मना भी किया तो भी, शंकरस्वामीने कर्णादिदेशोंमें कापालियोंका पराजय किया; वहांसें विचरते हुए, उज्जयनी नगरीमें आये. सर्व जगे दिग्विजय करके जिन २ मतवालोंको जीते, तिन सर्वके नाम आनंदगिरिने अपने रचे शंकरविजयमें लिखा है. जैनमतका खंडन शंकरने जैसा किया है, सो आनंदगिरिने ऐसा लिखा है.

तिस लेखकी भाषाः—तदपीछे शंकरस्वामीके पास 'जैन' आया. कैसा है जैन? कौपीनमात्रधारी है, मलकरके जिसका अंग भरा

है, सदा 'अर्हन्' ऐसा वारवार उच्चारन करता हुआ, शून्यांकशून्यपुंड्र धृतविंदु पुंड्र, शिष्योंसहित पिशाचवत्, सर्व जनको भयंकर, आकरके सकल लोकगुरु शंकरस्वामीको यह कहता हुआ; भो स्वामिन्! मेरा मत अत्यंत सुगम है, तुम श्रवण करो. जिनदेव सर्वज्ञ सर्वका मुक्तिदाता है; 'जि' इस पदके वाच्य 'जीव' को 'न' इति पदकरके 'पुनर्भव' ऐसा, सोही दिव्यत इति 'देव' है. सर्व प्राणियोंके हृदयकमलोंमें जीवरूपसें व्यवस्थित है ऐसें ज्ञानमात्रसें, देहके पात होनेसें अनंतर मुक्ति है, जीवको नित्य मुक्तिरूप होनेसें, तिससें करचरणादि साधनद्वारा जो जो कर्म किया हैं, सो सत्य है, तिसको तिसके आधीन होनेसें. इसवास्ते जीव शुद्ध है, और देह मलपिंड है, स्नानादिकरके तिसकी शुद्धिका अभाव होनेसें वृथा प्रयोजन है, इसवास्ते स्नानादि कर्म करने योग्य नही हैं. ऐसें प्राप्त हुआ सिद्ध हुआ.। इति जैनमतपूर्वपक्षः॥

श्रीपरमगुरु कहते हैं, भो जैन! तूने अति मूढने क्या कहा? जीवकी जो देहकी निवृत्ति सोही मुक्ति है? और निःप्रयोजन होनेसें स्नानादिकर्म करना योग्य नही, यह तेरा कथन अयुक्त है. क्योंकि, जीवके तीन तरेंके देह हैं. स्थूल १, सूक्ष्म २, कारण ३, भेदसें. और स्थूलका लक्षण, पंचीकृतपंचमहाभूतस्वरूप है, सो, चौवीस (२४) तत्त्वात्मक है.।१। सूक्ष्मका सतारें (१७) तत्त्वात्मक लक्षण है, एकादश (११) इंद्रिय, पंचमहाभूत ५, और वुद्धि १, एवं सप्तदश (१७).।२। और कारण अज्ञानमात्र है.।३। और स्थूलका सूक्ष्ममें, सूक्ष्मका कारणमें, कारणका सगुणमें, सगुणका निर्गुणपरमात्मामें, तिस तिस अधिपतिविशिष्ट देहोंका ऐसें लय हुए, सत्चिदानंदलक्षणलक्षित परमात्माही, जीव होता है. और जीव है, सोही, परमात्मा है. तैसें भेदभ्रमकी निवृत्ति हुए, मुक्ति है, ऐसें निरवद्य है.

पूर्वपक्षः—प्रत्यक्ष देखे शरीरसें शरीरांतर कल्पना निरर्थक है, तिसके होनेमें प्रमाणका अभाव होनेसें. यदि है तो, जीवका तीनो शरीरोंमें संचार कथन करना चाहिये, मनःकल्पित स्वप्नमें मैंने गंगा देखी है, हिमवान् देखा है, ऐसा ज्ञान तो है. क्योंकि, देहसें आत्माके निर्गमनको युक्त होनेसें, कारण शरीरत्वके हुये मनके कल्पित जीवका भी निर्गम

नही कहना चाहिये, जीवके निर्गमके हुये फिर प्राप्तिके अभावसें स्वप्नांतरमेंही मरण प्रसक्ति है, चौवीस तत्त्वोंमेंही लिंगशरीका अंतर्भाव होनेसें उसकी कल्पना व्यर्थ है. भूतजाति इंद्रियोंको तद्रूप होनेसें. इसवास्ते इस क्लिष्ट कल्पनाके करनेसें कोइ प्रयोजन नही है, तिसवास्ते एकही देह भिन्न २ जीवोंके है, तिसके पातानंतर जीवकी मुक्ति है.

उत्तरः–तब शंकरस्वामीने कहा. हे जैन! तूं मूढतर है, तूने तत्त्व नही सूना है, पंचीकृतभूतोंकरके पच्चीस (२५) संख्या हुइ है, तिसकरके चौवीस (२४) तत्त्व हुए हैं, पंचविंशति (२५) संख्याको ज्ञानरूप होनेसें, चौवीसी (२४) करकेही देह सिद्धि होवेगी, ऐसें नही है. अपंचीकृतपंचभूतके अभावसें, इस कारणसें, पंचीकृत और अपंचीकृत भूतोंकरके देहकी सिद्धि कहनी चाहिये, इसवास्ते स्थूल अपेक्षाकरके लिंगशरीर अंगीकार किया है. स्थूलशरीरके पातानंतर, जीव, सूक्ष्मशरीर आसक्त हुआ, परलोक गमनारंभ होता है, और अरूढ पुरुषके लिंगशरीरके नाश हुए, सर्व मनमेंही अध्यस्त होवे है. और सो शुद्ध मन तो जाग्रदादि अवस्था स्वामीयोंसें विश्व तैजस प्राज्ञोंसें भी ऊपरि विराजमान, अंगुष्ठमात्र सर्व जगत् प्रभु मनोन्माख्यको प्राप्त होता है, सोही कारण शरीरका लय है, ऐसा प्रसिद्ध है. ऐसें तीनो शरीरोंके नष्ट हुए, सगुण, निर्गुण, उभयात्मक, मनोन्मनपरमात्मामें लीन होता है; सोही मोक्ष है. ऐसें सर्व अतींतेंद्रिय ज्ञानवानोंने कहा है. ऐसा अत्यंत दुःसाध्य मोक्षकी प्राप्ति देहपातके अनंतर नही संभव होती है, ऐसा सिद्धांत है; ऐसा शंकरस्वामीने कहा हुआ, जैन, शिष्योंके साथ स्ववेषभाषासें रहित होया हुआ शंकरस्वामीका दिनप्रति चावलादि वस्तु आकर्षणशील वणिग्जन (मोदी) होता भया. ॥ इत्यनंतानंदगिरिकृतौ जैनमत निवर्हणं नाम सप्तविंशं प्रकरणम् ॥

और जो माधवने द्वादश (१२) श्लोकोंमें जैनमतके सप्ततत्त्व, और सप्तभंगीका खंडन, अपने रचे विजयमें लिखा है, सो व्यासकृत सूत्रकी शंकररचित भाष्यके अनुसारे लिखा है, तिसका उत्तर आगे चलके स्व-

स्थानमें लिखेंगे, वहांसें जानलेना. तदनंतर नैमिश, दरद, भरत, सूरसेन, कुरु, पंचालादि देशोंको जीतता हुआ, गुरु भट्ट उदयनादिसें अजीत, ऐसे खंडनकार श्री हर्षको शंकरस्वामीने जीता. पीछे कामरूप देशविशेषोंमें जाके शंकरस्वामी शाक्तभाष्यके कर्त्ता, अभिनवगुप्तको जीतते हुये. तब अभिनवगुप्तने शंकरको कार्मण करनेका विचार किया तब शिष्योंसहित शंकरस्वामीके साथ शिष्यकीतरें वर्त्तने लगा, और शंकरके वध करनेका उद्यम करने लगा, सो अभिनवगुप्त, शंकरस्वामीको अभिचारिक कर्म करता हुआ. कैसा अभिचारिक कर्म? जिसकी वैद्य भी चिकित्सा न कर सके, ऐसा. तिससें भगंदरनामा रोग उत्पन्न हुआ, तिस रोगसें झरते हुए लोहीके कीचडसें शंकरकी धोती भीज गइ. अजुगुप्सपरिशोधनादिरूप सेवा, तोटकाचार्यनामा शंकरस्वामीका शिष्य करता हुआ.* शंकरस्वामीको रोगकी उपेक्षा करते देखके शिष्योंने बहुत

---

* शंकरस्वामीका मृत्यु भी इसी रोगसें हुआ है, तथापि सन् १८८४ के सत्यार्थप्रकाशके २८७ पृष्ठोपरि स्वामिदयानंदसरस्वतिजीने लिखा है. "जब वेदमतका स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करनेका विचार करतेही थे इतनेमें दो जैन ऊपरसें कथनमात्रवेदमत और भीतरसें कट्टरजैन अर्थात् कपटमुनि थे, शंकराचार्य उनपर अति प्रसन्न थे, उन दोनोंने अवसर पाकर शंकराचार्यको ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मंद होगई, पश्चात् शरीरमें फोडे, फुन्सी होकर छ महीनेके भीतर शरीर छूट गया." इस लेखसें सिद्ध होता है कि, स्वामिजीने स्वमतकी प्रसिद्धिकेवास्ते असत्य २ लेख लिखके और निंदा करके भोले लोकोंको फसानेकेवास्ते जाल खडा किया है. तथा दयानंदसरस्वतिको जैनमतका ज्ञातपणा भी नही था, यदि होता तो, पूर्वोक्त पुस्तकमेंही ४४७ पत्रोपरि ऐसें क्यों लिखते? कि "दिगंबरोंका श्वेतांबरोंके साथ इतनाही भेद है कि दिगंबरलोग स्त्रीका संसर्ग नहीं करते और श्वेतांबर करते हैं." अफसोस स्वामिजीके लिखनेपर कि जिसको इतना भी ज्ञात नही! जब जैनमतका यथार्थ ज्ञातपणाही नही था तो, उसका करा खंडन किसको प्रमाण होगा? किसीको भी नही. जगत्में कहलावत भी है 'आहारसदृशोद्गारः' जैसा आहार भोजन होवे वैसाही उद्गार (डकार) आता है. सो स्वामिजीके चित्तमें तो, एक स्त्रीको कइ पति करने ऐसा निश्चय वसा था, तो फिर, ब्रह्मचर्यके तरफ ख्याल कहांसें होवे? अथवा स्वामिजीने जानबूझकेही जैनीयोंकी निंदा करनेकेवास्ते ऐसा गपोडा ठोक दिया होगा! क्योंकि, स्वामिजीके लेखसेंही सिद्ध होता है कि, झूठ लिखके किसीका मत खंडन होवे तो, अच्छा है. देखो सत्यार्थप्रकाश पत्र २८७ पंक्ति २९. "अब इसमें विचारना चाहिये कि जो जीवब्रह्मकी एकता जगत् मिथ्या शंकराचार्यका निजमत था तो वह अच्छामत नहीं और जो जैनियोंके खंडनके लिये उस मतका स्वीकार किया हो तो कुछ अच्छा है." वाहजी वाह! क्या सुंदर श्रद्धान है! यह कपट नही तो अन्य क्या है? यह तो ऐसे हुआ कि, दूसरेको अपशकुन करनेकेवास्ते अपना नाक कटवाना!!!

समझाया कि, तुम रोगकी चिकित्सा करो. तव शंकरस्वामीने कहा कि, रोग, जन्मांतरके पापोंसें होता है, सो भोगनेसेंही नाश होता है, इसवास्ते भोगनेसेंही नाश करने योग्य है. जेकर न भोगा जावे तो, जन्मांतरमें भोगना पडता है, यह शास्त्रका कहना है. शिष्योंके अतिआग्रहसें शंकरस्वामीने चिकित्सा करानी मान्य की, तव शिष्योंने हजारों वैद्योंसें चिकित्सा करवाइ, परंतु भगंदर तो वढ गया. तव सर्व वैद्य, अपने २ घरोंको चले गए. तव शंकरस्वामीने महादेवका स्मरण किया, तव अश्विनीकुमार वैद्यको ब्राह्मणके वेषमें महादेवने भेजे, अश्विनीकुमार भी हाथमें पुस्तक लेके शंकरस्वामीके पास आके वैठ गये, और कहने लगे कि, भो यतिवर! यह तेरा रोग, दूर नही हो सकता है. क्योंकि, अभिचारकरके यह उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहके वे निजस्थानमें जाते रहे. तव शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने क्रोधमें आके ऐसा मंत्र जपा, जिससें अभिनवगुप्त मर गया. शंकरस्वामी पीछे काश्मीरमें गये, वहां सरस्वतिका मंदिर चतुर्द्वारवाला, जिसके मध्यमें सर्वज्ञपीठ नामा चौंतरा है, तिसपर जो चढे, सो सज्जनोंमें सर्वज्ञ होता है, और सोही उस मंदिरमें प्रवेश करनेमें समर्थ होता है, अन्य नही. शंकरस्वामी उस मंदिरके दाक्षिण दरवाजेको खोलनेवास्ते वहां आये, और दाक्षिणका दरवाजा खोला, अनेक वादीयोंके प्रश्नोंके उत्तर दीए, जब अभ्यंतर (अंदर) जानेको उत्सुक हुए, तव सरस्वतिने कहा कि, केवल इस पीठिका ऊपर चढनेवालाही सर्वज्ञ नही होता है, परंतु चढनेवालेमें शुद्धता भी होनी चाहिये. सो शुद्धता तुमारेमें है, वा नही? क्योंकि, यतिधर्ममें निष्ठ ऐसे तुमने सम्यक्प्रकारसें स्त्री भोगी है. और कामकलारहस्यप्रवीणताके तुम पात्र हुए हो. इसवास्ते ऐसे पदपर चढनेकी तुमारेमें किसी प्रकारसें भी, योग्यता नही है.

यह सुनकर शंकरस्वामीने कहा, हे अंबे! जो तूने कहा कि, अंगना (स्त्री) भोगी, सो इसका उत्तर यह है कि, जिस देहांतरमें कर्म किया है, तिससें यह देह अन्य है; इसवास्ते इस देहको पाप नही लगता है. यह

सुनकर सरस्वतिने शंकरस्वामीका पूजन करा. शंकरस्वामीने भी शारदापीठमें कितनेक काल वास किया, वहांसें केदार गये, और मृत्युको प्राप्त हुए. ॥ इति संक्षेपतः शंकरविजयानुसारिशंकरस्वामिस्वरूपकथनम् ॥

अब हमको जो कछुक कहना है, सो लिखते हैं. जो ब्राह्मणादि लोक कहते हैं कि, शंकरस्वामीने जैन बौद्धोंके बेडे भरके डुबवा दीए थे, सो कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब भगंदर हुआ पीछे शारदामठमें वास किया है, और मरनेके थोडेसें दिन बाकी (शेष) थे, तब तो, 'जैन' 'बौद्ध' 'पतंजलि' आदि वादी, विद्यमान लिखे हैं. और शंकरविजयोंमें भी, पूर्वोक्त लेख नही है. इसवास्ते पूर्वोक्त ब्राह्मणादिकोंका कहना, महामिथ्या है. निःकेवल मिथ्यामतको मिथ्या बोलके सच्चा करा चाहते हैं, स्वामी दयानंदसरस्वतिवत्.

और पतिकेसंगमविना, आनंदगिरिने शंकरस्वामीकी माताजीके गर्भमें शंकरस्वामीकी उत्पत्ति लिखी है, सो प्रमाण बाधित है. क्योंकि पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, कदापि गर्भकी उत्पत्ति नही होती है; यह कहना प्रमाणसिद्ध है. इस कालमें पाश्चात्य विद्वानोंने सायन्स (SCIENCE) विद्याके बलसें अनेक वस्तुयोंके संयोगसें अनेक कार्यकी उत्पत्ति कर दिखलाइ है, परंतु किसी भी पदार्थोंके मिलापसें मनवाले मनुष्यकी उत्पत्ति, स्त्री पुरुषके संयोग, वा पुरुषवीर्यको स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, नही कर सकते हैं. ऐसा तो किसी कालमें भी नही हो सकता है कि, स्त्री पुरुषके संगमविना, वा पुरुषवीर्य स्त्रीकी योनिमें प्रवेश करेविना, स्त्रीको गर्भकी उत्पत्ति होवे. परंतु मतानुरागी पुरुष, अपने मताध्यक्षपुरुषको, विना पिताके वीर्यसें उत्पन्न होना लिखते हैं, सो, मूढोंको आश्चर्य करनेकेवास्ते, वा व्यभिचार छिपानेकेवास्ते, और अपने मताध्यक्षकी अन्य मनुष्योंसें उत्तमता जनानेकेवास्ते, और ईश्वरकी अत्यद्भुत शक्ति प्रसिद्ध करनेकेवास्ते, लिखते हैं. परंतु यह नही जानते थे कि, ऐसें अप्रमाणिक लेखको प्रेक्षावान् कदापि नही मानेंगे, और ऐसें लेखसें उनकी मातुश्रीको

व्यभिचारका कलंक उत्पन्न होवेगा. क्योंकि, जब ईश्वरीय शक्तिसें उनका उत्पन्न होना मानते हैं तो, क्या ईश्वर स्त्रीके गर्भविना अपने आपको मनुष्यरूप नही बना सकता था ? इसवास्ते प्रत्यक्ष अनुमान आप्तागमसें विरुद्ध ऐसा लेख, प्रेक्षावान् तो कोई भी नही लिख सकता है. यद्यपि परमाप्तागममें ऐसा लेख है कि, पांच कारणोंसें, स्त्री, पुरुषके संगमविना भी, गर्भ धारण कर सकती है. वे कारण यह हैं. ॥

"॥ पंचहिं ठाणेहिं इत्थी पुरिसेण सद्धिं असंवसमाणीवि गप्भं धरेज्जा तंजहा दुव्वियडा दुन्निसन्ना सुक्कपोग्गले अहिट्ठेज्जा ॥ १ ॥ सुक्कपोग्गलसंसिट्ठे से वत्थे अंतो जोणीए अणुपविसेज्जा ॥ २ ॥ सयं वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ३ ॥ परो वा से सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ४ ॥ सीओदगवियडेण वा से आयममाणीए सुक्कपोग्गले अणुपविसेज्जा ॥ ५ ॥

भाषार्थः—वस्त्ररहित विरूपताकरके गुह्यप्रदेशकरके कथंचित् पुरुषनिसृष्ट शुक्र (वीर्य) पुद्गलवाले भूमिपट्टादिक आसनको आक्रमण करके बैठी हुइ, तिस आसनपर स्थित हुए पुरुषनिसृष्ट शुक्रपुद्गलोंको कथंचित् योनिसें आकर्षण करके ग्रहण करे. ॥१॥ तथा शुक्रपुद्गलसें लिवडा (भीजा) हुआ वस्त्र, उपलक्षणसें तथाविध और भी केशादि, स्त्रिकी योनिमें प्रवेश करे, अथवा अनजानपने तथाविध वस्त्रको पहिना हुआ योनिमें प्रवेश करे, और शुक्रपुद्गलको ग्रहण करे. ॥ २ ॥ तथा आपही पुत्रार्थिनी होनेसें और शीतलरक्षकत्व होनेसें शुक्रपुद्गलोंको योनिमें प्रवेश करवावे. ॥ ३ ॥ तथा पर, सासुआदि पुत्रकेवास्ते वहुके गुह्यप्रदेशमें वीर्यपुद्गलोंको प्रवेश करवावे. ॥ ४ ॥ पल्वल द्रहप्रमुखगत जो शीतल जल, तिसमें स्नान करती हुइ स्त्रीकी योनिमें कथंचित् पूर्वपतित उदकमध्यवर्त्ती शुक्रपुद्गल प्रवेश करे. ॥ ५ ॥ इन पांच कारणोंसें स्त्री पुरुषसंगमविना भी गर्भधारण कर सकती है.

इन पूर्वोक्त पांचों कारणोमें भी, स्त्रीकी योनिमें पुरुषवीर्यके प्रवेश होनेसेंही, गर्भोत्पत्ति कही है. इसीतरें अन्य किसी स्त्रीकी योनिमें पूर्वोक्त पांच कारणोंसें वीर्य प्रवेश करजावे, और तिससें उसके गर्भोत्पन्न हो जावे तो, विरुद्ध नही. परंतु इन पूर्वोक्त पांचो कारणोंविना, और अपने पतिकेसंगमविना, जेकर गर्भोत्पत्ति हो जावे तो, अवश्यमेव तिस स्त्रीने व्यभिचारसें गर्भ धारण किया, ऐसा सिद्ध होवेगा. इसवास्ते पुरुषका वीर्य, जबतक योनिद्वारा स्त्रीके गर्भाशयमें नही जावेगा, तवतक कदापि गर्भोत्पत्ति नही होवेगी. इसवास्ते आनंदगिरिका लेख, युक्तिप्रमाणसें बाधित है.

और जो शंकरस्वामीको महादेवका अवतार, और सर्वज्ञ लिखा है, सो भी मिथ्या है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी मंडनमिश्रकेसाथ वाद करनेको गए हैं, तब मंडनमिश्रकी दासीको मंडनमिश्रका घर पूछा! क्या सर्वज्ञ ऐसेको कहते हैं कि, जिसको मंडनमिश्रके घरकी भी खबर नही थी कि, कहां है? मंडनकी भार्याके पूछे प्रश्नोंका उत्तर नही आया, क्या सर्वज्ञसें भी कोई बात छीपी है? मंडनमिश्रके घरमें व्यासजी, और जैमनीने श्राद्धका भोजन करा, क्या वेदांतीयोंके मतका यही पर्यवसान फल है, कि मरे पीछे, वा वेदांतीयोंकी मुक्ति हुए पीछे, वा ब्रह्म हुए पीछे भी, लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरते हैं? क्या सर्व वेदांती भी, इसीतरें लोकोंके घरमें श्राद्ध जीमते फिरेंगे? जब व्यासजीही भूखे, और भोजन जीमते फिरते हैं तो, यह जगत्‌ही सबके काममें आता है, फिर जगत्‌को मिथ्या कहते हैं तो, क्या मिथ्या कहनेवालेही मिथ्यावादी नही है? बलहारि है वेदांतियों! तुमारे सिद्धांतका कैसा रहस्य है कि, मरे पीछे भी वेदांती, लोकोंके घरमें रोटीयां खाते फिरते हैं!!!

पूर्वपक्षः—मंडनकी भार्याके प्रश्नोंका उत्तर शंकरस्वामीने यह विचारके नही दिया कि, मेरे उत्तर देनेसें मेरे यतिधर्मका क्षय हो जावेगा.

उत्तरपक्षः—जब राजाके मृतक शरीरमें प्रवेश करके मदिरापान किया, सैंकडों राणीयोंसें वात्स्यायनोक्त चौरासी (८४) आसनोंसें मैथुन सेवन

किया, और एकमाससें अधिक कालपर्यंत उन राणीयोंके मुखके थूक-लालाको अमृतसमान मनोहर मानके चूसा-चाटा, और कामशास्त्र सीखा, तिस थूक चाटनेमें भी ब्रह्मानंदही भोगा! क्या ऐसा काम करनेसें तो यतिधर्म क्षय नही हुआ, और कामप्रश्नोंके उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय होता था? हा! इसके उपरांत अन्य वडा आश्चर्य कौनसा है? और शंकर तो 'ऊर्द्धरेतः' था, राणीयोंकेसाथ भोग करनेसें 'अधोरेतः' किसतरें हो गया?

पूर्वपक्षः—शंकरस्वामीके शरीरमें यह व्यवस्था थी, परंतु देहांतरमें यह नही. इसीवास्ते तो शंकरस्वामीने काश्मीरवासिनी सरस्वतीके प्रश्नोत्तरमें कहा है कि, देहांतरका किया पाप, इस देहको नही लगता है.

उत्तरपक्षः—हमारी समझमूजव तो, तुमारी मानी सरस्वती, तुमारे कहनेसेंही अज्ञानिनी सिद्ध होती है. क्योंकि, पहिले तो उसने शंकरस्वामीको परस्त्रीयोंसें भोग करनेवाले जानके निर्दोष पुरुष नही जाने, और फिर शंकरस्वामीका उत्तर सुनके चुपकी होके शंकरस्वामीकी पूजा करने लग गई!! अब हम यहां यह प्रश्न पूछते हैं कि, पाप करने और पापके फल भोगनेवाला वोही देह है, वा अन्यदेह? जेकर वोही देह है, तव तो जन्मांतरमें पापका फल भोगनेवाला देह नही है, तो फिर शंकरस्वामीकी देहने जन्मांतरके देहके किये पापसें भगंदरका भारी दुःख क्योंकर भोगा? और जब देहही पापका करने और भोगनेवाला है, तव तो, जीव, सदा मुक्त होना चाहिये, पुण्यपापसें रहित होनेसें, और देहके साथ संबंध न होनेसें. जेकर कहोगे, जीवही पुण्यपापका कर्त्ता, और भोक्ता है, तब तो, शंकरस्वामीही परस्त्रीगमनरूप पापके कर्त्ता और भोक्ता, सिद्ध होवेंगे; और कामशास्त्र पढनेसें असर्वज्ञ सिद्ध होवेंगे. तथा देहांतरमें प्रवेश करनेसें जैसें उनकी ब्रह्मविद्या जाती रही, तैसेंही सर्व वेदांतीयोंके मरे पीछे, ब्रह्मविद्या नष्ट हो जावेगी. क्योंकि, वेदांतीयोंके कहने मूजब ब्रह्मविद्या, देहके साथही संबंधवाली है; नही तो, देह छोडनेसें शंकरस्वामीकी ब्रह्मविद्या, नष्ट क्यों होती? जेकर शंकरस्वामीकी

ब्रह्मविद्या नष्ट न होती तो, उनके शिष्य उनको 'तत्त्वमसि' का उपदेश क्यों करते? और शंकरस्वामी यदि सर्वज्ञ होते तो, अपनी करी मासकी अवधिको क्यों भूल जाते? और देहांतरमें कामशास्त्र सीखनेको क्यों जाते? क्या सर्वज्ञसें कोई शास्त्र छीपा है? और उत्तर देनेसें मेरा यतिधर्म क्षय हो जायगा ऐसा विचार क्यों करते? क्योंकि, फिर भी तो उसीही शरीरमें प्रवेश करके मंडनमिश्रकी भार्याको उत्तर दिये; क्या उस वखत उत्तर देनेसें यतिधर्म क्षय न हुआ? और शंकरस्वामीको साक्षात् महादेव माने हैं तो, क्या पार्वतीजीसें भोग करनेसें तृप्त न हुए? जिससें मृतक शरीरमें प्रवेश करके परस्त्रीयोंसें भोग करके उनके ओष्टपुटोंकों चूसके ब्रह्मानंदका स्वाद लिया!!! और महादेवको तो, तुमने सर्वव्यापी माना है तो, राजाके मृतक शरीरमें अन्य कौन प्रवेश कर गया? और कौन निकल आया? क्योंकि, शंकर तो, आगेही सर्व जगे व्यापक है. और शंकरस्वामीको जो भगंदरका रोग हुआ, सो पूर्व जन्मांतरके पापोंके फलसें लिखा है तो, क्या पूर्वजन्मांतरोंमें शंकरस्वामीने पाप करे मानते हो? तथा तुम तो, पुण्यपापके फलका प्रदाता, ईश्वरको मानते हो तो, फिर क्या शंकरने अपने किये पापके फल भोगनेवास्ते, आपही अपनी गुदामें भगंदररूप फोडा करलिया? और अभिनवगुप्तने, जो अभिचारक कर्म करके शंकरको भगंदर फोडा किया तो, क्या अभिनवगुप्त शंकरसें अधिक सामर्थ्यवान् था? वा, शंकर अपने वदलेके मंत्रसें उसको दूर नही कर सकता था? क्योंकि, शंकरको तो, तुम सर्वशक्तिमान् मानते हो.

और शंकरस्वामीके शिष्य पद्मपादने नरसिंहरूप करके, और मंत्रजाप करके, भैरव, कपाली, और अभिनवगुप्तको मार डाला. क्या पद्मपाद अज्ञानी, रागी, द्वेषी था, जो ऐसा काम किया? क्या ब्रह्मवित् नही था? यदि था तो, शंकरकीतरें समभाव क्यों नही किया? इसवास्ते यही सिद्ध होता है कि, शंकर, और शंकरके शिष्योंमेंसें कोइ भी, रागद्वेष अज्ञान मोहसें रहित, और सर्वज्ञ, नही था. और जो जो कल्पना करके,

आनंदगिरि, और माधवने अपने २ रचे विजयोंमें शंकरकी बाबत अधिक बडाइ लिखी है, सो अपने गुरु, और अपने मतके आचार्यके अनुरागसें लिखी है. जैसें दयानंदसरस्वतिके शिष्योंने इस कालमें "दयानंददिग्विजयार्क" रचा है. परंतु जैसी दयानंदसरस्वतिने मतोंकी विजय करीहै, और जैसी उसके मतकी धूल अन्यमतोंवाले लोक उडा रहे हैं, सो हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं. संवत १९४७ में सरकारी गिनती मुजब चालीस हजार (४००००) के लगभग दयानंदसरस्वतिके मतके माननेवाले आर्यसमाजी गिने गए हैं, उनमें भी प्रायः वडा भाग पंजाबीयोंका है. ऐसीही शंकरविजय होवेगी. क्योंकि, थोडेसेंही वर्ष हुए हैं, पंजाबदेशमें उदासी और निर्मले साधुयोंने, वृत्तिप्रभाकर, विचारसागर, निश्चलदासकृत भाषावेदांतके पुस्तक, और उपनिषदादिकोंके अनुसारे, वेदांतमत, प्रचलित किया है. और वेदांतमत माननेवाले जितने पंजाबी हैं, इतने अन्य लोक नही मालुम होते हैं, और दक्षिणमें प्रायः रामानुजके मतवालोंने, मध्वर्क, निंवार्क आदि वैष्णवमतवालोंने, और तुकारामादि भक्तिमार्गवालोंने, शंकरस्वामीके चलाये शुद्धाद्वैतमतकी बहुत हानि करी. और गुजरात, कच्छ, मालवा, मेदपाट, हडौती, ढुंढाड (जयपुर), अजमेर, मारवाड, दिल्ली मंडलादि देशोंमें प्रायः शंकरस्वामीका मत, प्रचलित नही हुआ मालुम होता है, क्योंकि, पूर्वोक्त देशोंमें प्रायः जैनमतकाही प्रबल बहुत था. और शंकरस्वामीके मतके असली रहस्य, अंतमें नास्तिकोंके समान महा अज्ञान, और मिथ्यात्व मोहसें उन्मत्तता, और प्रायः सत्कर्मोंसें भ्रष्टता, आदि कुचलन देखनेमें आते हैं.

और जो शंकरस्वामीका शिष्य आनंदगिरि, जिसने शंकरविजय पुस्तक रचा है, उसको तो, जैनमतकी किंचित् भी, खबर नही थी. क्योंकि उसने लिखा है कि, कौपीन (लंगोटी) मात्रधारी, मस्तकमें बिंदु—तिलकका धरनेवाला, मलदिग्ध अंग, ऐसा जैनमती, शंकरस्वामीके पास शिष्योंसहित आया. यह लेख तो, आनंदगिरिने अवश्यमेव किसी भंगा-

दिके नशे चढेमें लिखा मालुम होता है. क्योंकि, ऐसे वेषका धारक तो श्वेतांबर, दिगंवर, दोनों मतोंमें नही लिखा है. श्वेतांवरमतमें तो, रजोहरण, मुखवस्त्रिका, चौलपट्टक, आदि चतुर्दश (१४) औघिक उपकरण, और कितनेही औपग्राहिक उपकरणधारी मुनि लिखा है. और दिगंवरमतमें पीछी कमंडलू आदिका धारी मुनि लिखा है. परंतु मस्तकमें बिंदु–तिलक करना, दोनों जगे, मुनिको निषेध है. इसवास्ते जैनमतका साधु तो, शंकरके पास गया, कोइ भी सिद्ध नही होता है. और श्रावक भी, नही. क्योंकि, जैन–श्रावक तो, नित्य त्रिकाल जिनेंद्रकी स्नानपूर्वक पूजा करनेवाला, स्फटिकरत्नसमान, अभ्यंतर वाहिरसें निर्मल लिखा है. उसके शरीरमें तो, मलका होना, कौपीनमात्र धारन करना, संभवही नही है. और शिष्योंका होना असंभव है. और दिगंवरमतका क्षुल्लक भी, नही था. क्योंकि, उसका भी वेष उक्त प्रकारका नही है. और सांप्रतिकालमें (आजकल) जे स्नानरहित, मलदिग्धांग, परमेश्वरकी पूजारहित, ढुंढकमतके माननेवाले प्रसिद्ध हैं, वे तो शंकरस्वामीके समयमें थेही नही, तो फिर, आनंदगिरिका लिखना भंगादिके नशेके वशसें नही तो, अन्य क्या है ?

और जो आनंदगिरिने, ' जिनदेव ' शब्दकी व्युत्पत्ति आदि पूर्वपक्ष लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित महामिथ्या लिखा है. क्योंकि, वैसा पक्ष जैनीयोंको सम्मतही नही है. और शंकरस्वामीने उसका खंडन किया लिखा है, सो ऐसा है, जैसा वंध्यासुतका शृंगार वर्णन करना. इस हेतुसें शंकरविजयोंमें जो कथन जैन वौद्धमतकी वावत लिखा है, सो सर्व, स्वकपोलकल्पित होनेसें मिथ्या है.

वाचकवर्ग ! ऐसें न समझें कि, यह ग्रंथ लिखनेवालेने द्वेष वुद्धिसें शंकरस्वामीविषयक, और दोनों शंकरविजयोंविषयक लेख, लिखे हैं. परंतु जव तुम सर्व मतोंका पक्षपात छोडके मध्यस्थ होके विचारोगे, तव तुमको ग्रंथकारका लेख सत्य २ प्रतीत होजावेगा.

और कुमारिलभट्ट, और शंकरस्वामीकी वावत, हिंदुस्थानका संक्षिप्त इतिहास लिखनेवाले डॉक्टर हंटर, सि, आई, इ; एल एल, डी,

(Dr. SIR WILLIAM HUNTER, C. I. E., LL. D.) ने लिखा है; उसका तरजूमा गुजराती भाषामें सरकारकी तरफसें हुआ है. उसके सन १८८६ के छपे पुस्तकके पृष्ठ १०९ में लिखा है कि, ईसवी सन ८०० में विहारका वासी कुमारिल ब्राह्मण हुआ, और उक्त सन ९०० में, शंकरस्वामी हुआ लिखा है. और पृष्ठ १०३ में लिखा है कि, ईसवी सनके ८०० में सैकेमें कुमारिलने उपदेश करनेका प्रारंभ किया, वेदानुसार पुराना मत यह है कि, सगुणस्रष्टा, और ईश्वर है. ऐसे मतका उसने बोध किया. बौद्धधर्ममें सगुण ईश्वर नही था; पीछेकी एक कथामें ऐसा लिखा है कि, कुमारिलने बौद्धमतके विरुद्ध उपदेश किया, इतनाही नही, बलकि, उनके ऊपर बहुत जुलम करनेके वास्ते किसी दक्षिण हिंदके राजाके मनमें ऐसा निश्चय करवाया कि, उस राजाने अपने सेवकोंको आज्ञा दी कि, बौद्धमत माननेवाले वृद्ध, और बालकपर्यंत, सेतुबंधरामेश्वरसें लेके हिमालयपर्यंत, जहां होवे, तहां सर्वको मार दो, और जो न मारे, उसको भी मार दो. तथापि, हिमालयसें लेके कन्याकुमारीतक, जुलम करनेकी सत्ता जिसके हाथमें होवे, सो उक्त काम कर सके; परंतु ऐसा भारी राजा, उसकालमें हिंदमें नही था. हां, दक्षिणहिंदके बहुतसें राजाओंमेंसें किसीएक राजाने अपने राज्यमें ऐसा जुलम गुजारा होवे तो, होवे. परंतु यह तो, एक छोटीसी बातको बडी करके दिखलाइ है.

तथा प्रो० मणिलाल नभुभाई द्विवेदी, अपने बनाये सिद्धांतसारमें ऐसें लिखते हैं—सातमे आठमे सैकेमें शंकराचार्य कुमारिल विगेरेने, इस (बौद्ध) धर्मके सामने बहुत प्रयत्न किया है. कदापि किसी स्थलमें लडाई झगडा भी हुआ होगा, तो भी बौद्धधर्मको ब्राह्मणोंने, राजाओंके पास निकलवा दिये और बौद्धधर्मके अनुयायी (माननेवालों) को कतल करवा दिये यह बात तो, केवल पुराणकल्पनाही लगती है. [स्वर्गवासी पंडित भगवानलालजीका भी यही मत था.] तो बौद्धधर्म हिंदुस्थानमेंसें कैसें लोप हो गया ? तिसवास्ते उस धर्मका बंधारणही जवाबदार है. प्रथमसेंही इस धर्मकी नीति बहुत सखत थी, इसमें साधु होके रहना बहुत मुश्किल था;

और सर्वोपरि यह कसर (खामी) थी कि, यह धर्म, केवल अभावरूप था. तिससें सामान्य लोकोंको एकवार इसपर जो रुचि हुइ थी, तिसको कायम रखनेके साधन–अच्छे ग्रंथ–सामान्य लोकोंको, और विद्वान लोकोंको रुचे, ऐसें संग्रह इत्यादि–इस धर्मसें नही थे. इसवास्ते कालांतरमें लोकोंने वेदांतादि धर्मका सार, शंकरद्वारा स्पष्ट होनेसें, इसको (बौद्धधर्मको) छोड दीया; आपही इस धर्मका नाश हो गया.

तथा सन १८९५ अकटोबर तारिख १३ मीके छपे गुजराती पत्रमें "प्राचीन गुजरातका एक चित्र (२१)" इस विषयसें लिखा है कि, ब्राह्मणोऊपरांत अन्नसत्रके निर्वाहवास्ते, देवालयके निर्वाहवास्ते, टूटे फूटेके बनानेवास्ते, मठोंके निर्वाहवास्ते, इत्यादि भी दानपत्र मिलते हैं, उससें वल्लभीके वखतसें बौद्धविहारको दान दीयेका भी प्रमाण मिलता है, ताम्रपत्रोंके दान बहुतकरके स्मार्त्तधर्मके प्रवर्त्तनवास्ते मालुम होते हैं, परंतु बौद्धधर्म चलता था, उसका ऊपर लिखा प्रमाण मिलता है. इसके सिवाय हीवेनथ्संगके पुस्तकोंसें भी भरुच, खेडा, वल्लभी, सुराष्ट्र, मालवादिकोंमें बौद्धधर्मका प्रचार देखनेमें आता है. प्राचीन समयमें उसका जो राजकीय, और दूसरा प्राबल्य था, सो देखनेमें नही आता है. और वो शनैः शनैः (धीमे धीमे) निर्बल होगया होना चाहिये. तो भी, धारवाड जिल्लेके डंबलगाममें एक शिलालेख, इ. स. १०९५ का है. उसमें बुद्धके विहारको, और आर्यतारादेवीके विहारको दान दीये हैं. जिससें देखनेमें आता है कि, कर्नाटकतरफ, बौद्धधर्म, यावत् इग्यार (११) मे सैकेतक चलता था, और उसको दानादिकोंसें आश्रय मिलता था. कन्हेरीकी गुफामें शक ७७५, और ७९९, के लेख हैं. येह राष्ट्रकूट राजा अमोघवर्षके खंडणी (मातहत) कोंकणके शिलारराजा कपर्दीके वखतके हैं. तिसमें भी, बौद्धगुफाको दान कियेका लेख मिलता है. अर्थात् पौराणिक, स्मार्त्तधर्म, और कापालिकमतका शैवधर्म, बहुत प्रबल था; तथापि, बौद्धमत, यावत् बारमे (१२) सैकेतक चालु–विद्यमान रहनेके प्रमाण मिलते हैं.

इन पूर्वोक्त लेखोंसें माधवरचित शंकरविजयका जो यह लेख है.।

आसेतुरातुसाद्रिश्च बौद्धानां वृद्धबालकं ।
न हंति यः स हंतव्यो भृत्यानित्यवदन्नृपाः ॥

भावार्थः—सेतुबंधरामश्वरसें लेकर, हिमालयतक, बौद्धोंके वृद्धसें लेकर बालकपर्यंतको, जो न हणे, (न मारे) उसको मार देना; ऐसें अपने नोकरोंप्रति राजे लोक कथन करते हुए. सो मिथ्या सिद्ध होता है.

और माधवने जहां बौद्ध लिखा है, वहां भी, आनंदगिरीने जैन लिखा है. माधवकृत विजयके सर्ग ७ के पृष्ट ११–१२ में, और आनंदगिरिकृत विजयके पृष्ट २३६ में देखो. क्या जाने, आनंदगिरिको जैनीयोंने वहुत सताया होगा, इसवास्ते, बौद्धोंकी जगे भी, जैनमतीही लिख दिये!!! परंतु हमारी समझमूजब तो, आनंदगिरिको जैन और बौद्धमतके पृथक् २ जाननेकी भी, बुद्धि नही थी. और शंकरने, जैनमतोपरि कुमारिलवत्, जुलम गुजारा, ऐसा तो, दोनोंही विजयग्रंथोंमें नही लिखा है.

ऐसे पूर्वोक्त स्वरूपवाले शंकरस्वामीने, वेदांतमतके व्याससूत्रोपरि, भाष्य रचा है. उसमें व्यासजीके कथनानुसार, जैनमतका खंडन, लिखा है. सो खंडन खंडनपूर्वक, आगेके स्तंभमें लिखेंगे.। इत्यलम्।

इत्याचार्यश्रीमद्विजयानंदसूरिविरचिते तत्त्वनिर्णयप्रासादे
शंकरस्वामिस्वरूपवर्णनोनामपंचत्रिंशःस्तम्भः॥ ३५॥

॥ अथ षट्त्रिंशस्तम्भारम्भः॥

पंचत्रिंश (३५) स्तम्भमें शंकरस्वामीका स्वरूप कथन किया, अथ इस छत्तीस (३६) मे स्तम्भमें शंकरस्वामीने जैसें जैनमतकी सप्तभंगीका खंडन किया है सो, और उसके खंडनका खंडन लिखते हैं. तहां प्रथम जैनमतवाले जैसा सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, तैसा भाषामें लिखते हैं, जिससें वाचकवर्गको मालुम हो जायगा कि, शंकरस्वामीने,

जो सप्तभंगीका खंडन लिखा है, सो, जैनमतानुसार है, वा अन्यथा है? और शंकरस्वामीको जैनमतकी सप्तभंगीका बोध, यथार्थ था, वा अयथार्थ था?

जैनमत माननेवालोंको प्रथम सप्तभंगीका स्वरूप जानना चाहिये. क्योंकि, सप्तभंगीही, जैनीयोंके प्रमाणकी भूमिकाको रचती है. दुर्दम जो परवादीयोंके वादरूप हाथी है, उनके पकडने अर्थात् पराजय करनेवास्ते, और अपने सिद्धांतके रहस्य जाननेवास्ते, श्रेष्ठ जे वादी है, वे सम्यक् प्रकारसें सप्तभंगीका अभ्यास करते हैं. ।

यदुक्तं ॥

या प्रश्नाद्विधिपर्युदासभिदया बाधच्युता सप्तधा ।
धर्मं धर्ममपेक्ष्य वाक्यरचना नैकात्मके वस्तुनि ॥
निर्दोषा निरदेशि देव भवता सा सप्तभंगी यया ।
जल्पन् जल्परणांगणे विजयते वादी विपक्षं क्षणात् ॥१॥

भावार्थः–प्रश्नवशसें विधि, और पर्युदास, भेदकरके अनेकात्मक वस्तुमें, एक एक धर्मकी अपेक्षा, सातप्रकारकी सर्वप्रमाणोंसें अवाधित, और निर्दोष, जो वचनकी रचना है, सो सप्तभंगी है. हे अर्हन्! देव! ईश्वर! ऐसी सप्तभंगी, तुमने कथन करी है, जिस सप्तभंगीकरके, वादरूपी ये संग्राममें, वादी, प्रतिवादीयोंको एकक्षणमें जीत लेते हैं. ॥ १ ॥ तथा यह जो शब्द है, सो यत् किंचित् सदंश, असदंश, भंगकरके अपने अर्थको प्रतिपादन करता हुआ, सप्तभंगहीको प्राप्त होता है. सर्वजगे यह ध्वनि विधिनिषेधकरके अपने अर्थको कहता हुआ, सप्तभंगीको प्राप्त होता है; यह तात्पर्यार्थ है. सो सप्तभंगी, कैसे स्वरूपवाली है? उसका लक्षण कहते हैं.

"॥ एकत्र वस्तुनि एकैकधर्मपर्यनुयोगवशात् अविरोधेन व्यस्तयोः समस्तयोश्च विधिनिषेधयोः कल्पनया स्यात्कारांकितः सप्तधा वाक्प्रयोगः सप्तभंगीति ॥"

अर्थः—जीव, अजीव आदि एक पदार्थकेविषे, एक एक धर्ममें प्रश्नके करनेसें, सकल प्रमाणोंसें अबाधित, भिन्न भिन्न विधि प्रतिषेध और अभिन्न विधि प्रतिषेधके विभागकरके, कहा हुआ, 'स्यात्' शब्दकरके लांछित, जो सातप्रकारके वचनका उपन्यास, सो सप्तभंगी जाननी. 'विधिःसदंशः' विधि जो है, सो सत्अंश है. 'प्रतिषेधो सदंशः' और प्रतिषेध, निषेध जो है, सो, असत् अंश है. पदार्थसमूहके सदंश असदंश धर्मादि अनेक प्रकारके विभाग करनेसें अनंतभंगीका प्रसंग होता है; जिसके दूर करनेकेवास्ते सूत्रकारने एकपद (एकत्र) का ग्रहण किया है. अनंतधर्मसंयुक्त जीव अजीवादि एक एक वस्तुसें भी विधि निषेधकरके, अनंतधर्मके परिप्रश्नकालमें अनंतभंगका संभव है; उसकी व्यावृत्तिकेवास्ते एक एक धर्मसें पर्यनुयोग ऐसे पदका ग्रहण करा है. इस कहनेसें अनंतधर्मसंयुक्त अनंत पदार्थोंके हुए भी, प्रतिपदार्थके प्रतिधर्मके परिप्रश्नकालमें एक एक धर्ममें एक एकही सप्तभंगी होती है, यह नियम कथन किया है. और अनंतधर्मकी विवक्षाकरके सप्तभंगीयोंका भी, नाना कल्पना करना हमको अभीष्टही है. यह बात सूत्रकारनेही कही है. ।

तथाहि ॥

"॥ विधिनिषेधप्रकारापेक्षया प्रतिपर्यायं वस्तुन्यनंतानामपि सप्तभंगीनां संभवात् प्रतिपर्यायं प्रतिपाद्यपर्यनुयोगानां सप्तानामेव संभवादिति ॥"

भावार्थः—विधिनिषेधप्रकारकी अपेक्षाकरके वस्तुके प्रतिपर्यायसें सातही भंगोंका संभव है, किंतु अनंतोंका नही. क्योंकि, एक एक पर्यायप्राति, शिष्यके सातही प्रश्न होनेसें. ऐसे हुए, अनंत पर्यायात्मक पूर्ण वस्तुमें, अनंत सप्तभंगीयोंका भी संभव होनेसें, अनंतसप्तभंगी हो सकती है; किंतु अनंतभंगी नही.

अथ सप्तभंगी स्वरूपसें दिखाते हैं. ।

तथाहि ॥

"॥ स्यादस्त्येव सर्वमिति सदंश कल्पनाविभजनेन प्रथमो भंगः ॥ १ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव सर्वमिति पर्युदासकल्पना विभजनेन द्वितीयो भंगः ॥ २ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति क्रमेण सदंशासदंशकल्पनाविभजनेन तृतीयो भंगः ॥ ३ ॥"

"॥ स्यादवक्तव्यमेवेति समसमये विधिनिषेधयोरनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया चतुर्थो भंगः ॥ ४ ॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति विधिप्राधान्येन युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजनया पंचमो भंगः ॥ ५ ॥"

"॥ स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तमेवेति निषेधप्राधान्येन युगपन्निषेधविध्यनिर्वचनीयकल्पनाविभजनया षष्ठो भंगः ॥६॥"

"॥ स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमेवेति क्रमात् सदंशासदंशप्राधान्यकल्पनया युगपद्विधिनिषेधानिर्वचनीयख्यापनाकल्पनाविभजया च सप्तमो भंगः ॥७॥"

अथ अर्थसें प्रथमभंग प्रगट करते हैं:-प्रथमभंग विधिकी प्रधानतामें है. 'स्यात्' ऐसा अनेकांतका द्योतक, अर्थात् अनेकांतका प्रकाशक, अव्यय है. स्यात् इस कहनेकरके कथंचित् किसीप्रकारसें अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप चतुष्टयकरके घटादिवस्तु, अस्तिरूपही है; और अन्यवस्तुसंबंधी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव चतुष्टयरूपकरके घटादिवस्तु, नास्तिरूपही है.-तथाहि-घट जो है, सो, द्रव्यसें पृथिवीरूपकरके तो है, जलादिरूपकरके नहीं; क्षेत्रसें पाटलिपुत्रके क्षेत्रसें है, कान्यकुब्जके क्षेत्रसें नहीं; कालसें शिशरऋतुका बना हुआ है, वसंतऋतुका नहीं; भावसें रक्तरंगसें है, पीतरंगसें नहीं. ऐसेंही अन्यपदार्थ भी जानने. कथंचित् अर्थात् अपने द्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, विद्यमान होनेसें, कथंचित् अस्तिरुप, घट है, और परद्रव्यादिचारोंकी अपेक्षाकरके, अविद्यमान होनेसें कथंचित् नास्तिरूप, घट है, ऐ-

सा उल्लेख अर्थात् स्वरूप है, जेकर अन्यपदार्थको अन्यपदार्थके रूपकी प्राप्ति होवे तो, पदार्थके स्वरूपकी हानिकी प्रसक्ति होवे. एवकारके पठन करनेसें ऐसे स्वरूपवाला भंग है, ऐसा एवकारसें अवधारण होता है. और अवधारण तो, अवश्य करना चाहिये. नही तो, किसीजगे कथन करा हुआ भी नाकथनसरीखा होवेगा. तथा जेकर 'अस्त्येव कुंभः' इतनाही कथन करीये तवतो, कुंभको स्तंभादिकपणे अस्तित्वकी प्राप्ति होनेसें प्रतिनियत स्वरूपकी अनुपपत्ति होवेगी, इसवास्ते उसके प्रतिनियत स्वरूपकी प्रतिपत्तिके वास्ते 'स्यात्' ऐसा अव्यय, जोडा जाता है. कथंचित् रूपकरके स्वद्रव्यादिचतुष्ट यकी अपेक्षा अस्ति, और परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्ति है; ऐसे प्रयोगकी प्रतिपत्तिकेवास्ते तथा तिस 'स्यात्' अव्ययको व्यवच्छेदफल 'एवकार' कीतरें जहांकहीं शास्त्रमें 'स्यात्' पद प्रकट नही भी कहा है, वहां भी, 'स्यात्' पद अवश्यमेव जानना.

तदुक्तम् ॥

सोप्यप्रयुक्तो वा तज्ज्ञैः सर्वत्रार्थात् प्रतीयते ।
यथैवकारो योगादिव्यवच्छेदप्रयोजनः ॥ १ ॥

अर्थः—जिसजगे 'स्यात्' पद, नही कहा है, तहां भी, तिस स्यात् अव्ययके जानने वालोंनेअर्थसें जान लेना; अयोगव्यवच्छेदादि प्रयोजनवाले एवकारवत्. तिसवास्ये एवकार, और स्यात्कार ये दोनों सातोंही भंगमें ग्रहण करना. विधिप्रधान होनेसें विधिरूपही प्रथम भंग है. ॥ १ ॥

अथ अर्थसें दूसरा भंग दिखाते हैः—स्यान्नास्त्येवेति निषेधप्रधानकल्पनयायं भंगः॥ कथंचित् यह नही है, ऐसे निषेधप्रधानकल्पनाकरके यह दूसरा भंग है. जो नियमकरके साध्यके सद्भावसें अस्तित्व है, सोही साध्यके अभावमें नास्तित्व कथन करीये हैं; जैसें, घट, स्वद्रव्यचतुष्टयकरके अस्तिरूप सिद्ध है, तैसें मुद्गरादिके संयोगसें नष्ट हुआ थका, वोही घट, नास्तिस्वरूपकरके सिद्ध होता है; अस्तित्वको नास्तित्वके अविनाभावि होनेसें; तथाच क्षणविनश्वरभावोंकी उत्पत्तिही, विनाशमें कारण मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

उत्पत्तिरेव भावानां विनाशे हेतुरिष्यते ॥
यो जातश्च न च ध्वस्तो नश्येत् पश्चात् स केन च ॥१॥

अर्थः—उत्पत्तिही, भावोंके विनाशमें हेतु है, जो उत्पन्न हुआ और नाश नही हुआ, सो पीछे किसकरके नाश होवेगा? उत्पत्ति अस्तित्वकी सिद्धिको करती है, सोही उत्पत्ति, विनाश अपरपर्याय नास्तित्वका मूलकारण होनेसें अविनाभाव सिद्ध करती है.

पूर्वपक्षः—जिस स्वरूपसें अस्ति है, जेकर तिसही स्वरूपसें नास्ति है, तव अस्तिनास्ति दोनोंको एकजगे होनेसें भाव, अभाव, दोनोंकी एकतापत्तिरूप अनिष्टका प्रसंग होवेगा.

उत्तरपक्षः—अस्तिनास्ति दोनोंकी भिन्नभिन्न समयमें प्ररूपणा होनेसें पूर्वोक्त दूषण नही, पदार्थोंका प्रतिसमय नाश होनेसें. तथा हम ऐसें नही मानते हैं कि, जिस समयमें जिसका उत्पाद है, तिसही समयमें उसका विनाश है; तिसवास्ते अस्तित्वके अविनाभावि नास्तित्व सिद्ध हुआ. ऐसें सर्ववस्तु, स्वपरद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिनास्तिरूपसें सिद्ध है. अस्तित्वकी प्रधानदशामें प्रथमभंग है और निषेधदशामें दूसरा भंग है. ॥ २ ॥

अथ अर्थसें तीसरा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येवेति ॥ सर्ववस्तु, क्रमकरकेही, स्वपरद्रव्यादि चतुष्टयके आधार अनाधारकी विवक्षासें, प्राप्त अप्राप्त पूर्वअपर भावोंकरके, विधि और प्रतिषेधप्रधानकरके विशेषित तीसरे भंगको भजनेवाला होता है, घटवत्. जैसें, घट, अपने द्रव्यादिचारकी अपेक्षा कथंचित् अस्तिरूपही है, और कथंचित् परद्रव्यादिचारकी अपेक्षा नास्तिरूपही है. विधिप्रतिषेध दोनोंकी प्रधानता कथन करनेवाला, यह तीसरा भंग है. ॥ ३ ॥

अथ अर्थसें चौथा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादवक्तव्यं युगपद्विधिनिषेधकल्पनया चतुर्थ इति ॥ सदंश असदंश इन दोनोंका समकाल प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है.

तथाहि ॥ विधिप्रतिषेधं युगपत् प्रधानभूत दोनों धर्मोंको एक पदार्थमें युगपत् विधिनिषेध दोनोंकी प्रधानविवक्षामें तैसें शब्दको अनिर्वचनीय होनेसें घटादिवस्तु अवक्तव्य है, विधिप्रतिषेध दोनों धर्मोंकरके आक्रांत भी तिस पदार्थको युगपत् दो धर्मोंको अवक्तव्यरूप होनेसें, युगपत् विरुद्ध दो धर्मका प्रयोग नही हो सकता है; शीतउष्णकीतरें, सुखदुःखकीतरें. क्रमकरकेही शब्दसें अर्थ कथन करनेका सामर्थ्य होनेसें, युगपत् एककालमें नहीं. क्तक्तवतुकरके संकेतित निष्ठाशब्दवत्, अथवा पुष्पदंत शब्दकरके संकेतित सूर्यचंद्रवत्. निष्ठाशब्दकरके, वा, पुष्पदंतशब्दकरके क्रमसेंही क्तक्तवतुका, और सूर्यचंद्रका अर्थ प्रत्यय होता है, अर्थात् निश्चय होता है. तिसकरके द्वंद्वादिपदोंका भी, युगपत् अर्थप्रत्यायकपणा, खंडन किया. 'धवखदिरौ स्त इति' यहां भी क्रमकरकेही ज्ञान होता है, युगपत् नहीं. क्योंकि, तैसेंही ज्ञान प्रत्यय होनेसें, और समकालमें शब्दको अवाचकपणा होनेसें, अवक्तव्य है. जीवादिवस्तु, युगपत् विधिप्रतिषेध विकल्पनाकरके संक्रांतही स्थित होता है; यद्यपि वस्तु, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके संयुक्त भी है, तो भी, अस्तित्वनास्तित्वधर्मोंकरके एककालमें कहा नही जाता है, इसवास्ते अवक्तव्य, अर्थात् अनिर्वचनीय घट है. ऐसें फलितार्थ चतुर्थ भंग हुआ. ॥ ४ ॥

अथ अर्थसें पांचमा भंग लिखते हैः—स्यादस्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ सदंशपूर्वक युगपत् सदंश असदंशकरके अनिर्वचनीय कल्पनाप्रधानरूप यह भंग है. अपने २ द्रव्यादिचतुष्टयकरके विद्यमान हुआ भी, सदंश असदंशकरके प्ररूपणा इस भंगमें करनेकी सामर्थ्यता नही है, जीवादि सर्ववस्तु स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके है, परंतु विधिप्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'अस्त्यत्र प्रदेशे घटः' है, इस प्रदेशमें, घट सत्रूप असत्रूप दोनोंकरके एककालमें उन दोनोंका स्वरूप कथन करनेकी सामर्थ्यता न होनेसें, विधिरूप हुआ भी, अवक्तव्य है. एसें फलितार्थ पांचमा भंग हुआ. ॥ ५ ॥

अथ अर्थसें छठा भंग प्रकट करते हैः—स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ निषेधपूर्वक युगपत् विधिनिषेधकरके अनिर्वचनीय प्रधान यह

भंग है. परद्रव्यादिचतुष्टयके अविद्यमानत्वके हुए भी, सदंश असदंश ऐसी प्ररूपणा करनेको यह भंग असमर्थ है. इस भंगमें सर्ववस्तु जीवादि, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके नास्ति भी है, तो भी विधि-प्रतिषेधरूपोंकरके कहनेको अनिर्वचनीय है. 'नास्त्यत्र प्रदेशे घटः' नही है, इस प्रदेशमें, घट, सत्रूप असत्रूपकरके युगपत्स्वरूपके कथन करनेमें असामर्थ्य होनेसें नास्तित्वके हुए भी, अवक्तव्य है. इतिफलितार्थः षष्ठो भंगः ॥ ६ ॥

अथ अर्थसें सातमा भंग प्रकट करते हैंः—स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यमिति ॥ अनुक्रमकरके अस्तित्वनास्तित्वपूर्वक युगपत् विधि-निषेध प्ररूपणानिषेधप्रधान यह भंग है. इति शब्द सप्तभंगीकी समाप्तिमें है; स्वद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षाकरके अस्तित्वके हुए भी, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तित्वके हुए भी, विधि वा प्रतिषेध कथन करनेको असमर्थ है. इस भंगमें सर्वजीवादिवस्तु, स्वद्रव्यादि अपेक्षा अस्ति है, परद्रव्यादि अपेक्षा नास्ति है, तो भी, एककालमें विधिनिषेध-रूपोंके साथ युगपत् प्रतिपादन करनेको असमर्थ है. जैसें स्वद्रव्यादि अपेक्षासें है, इसप्रदेशमें, घट, परद्रव्यादि अपेक्षासें, नही है; यहां घट, विधिप्रतिषेधरूपोंकरके युगपत्स्वरूप कथन करनेको असमर्थ होनेसें अवक्तव्य है. इति प्रकटार्थ है. इसवास्ते स्यादस्त्येव स्यान्नास्त्येव स्यादवक्तव्यं कथंचित् है, कथंचित् नही, और कथंचित् अवक्तव्य, इसभंगकरके दिखलाया है. इतिसप्तमभंगः ॥ ७ ॥

तथा यह जो सप्तभंगी है, सो सकलादेश, विकलादेश, दोतरेंके भंगवाली है.

तदुक्तं प्रमाणनयतत्वालोकालंकारे. ॥

"॥ इयं सप्तभंगी प्रतिभंगं सकलादेशस्वभावा विकलादेशस्वभावा च ॥ ४३ ॥ प्रमाणप्रतिपन्नानंतधर्मात्मकवस्तुनः कालादिभिरभेदवृत्तिप्राधान्यादभेदोपचाराद्वा यौगपद्येन प्रतिपादकं वचः सकलादेशः ॥ ४४ ॥ तद्विपरीतस्तु विकलादेशः ॥ ४५ ॥ इतिचतुर्थपरिच्छेदे. ॥

अर्थः-यह सप्तभंगी, प्रतिभंगसकलादेशस्वभाववाली, और विकलादेशस्वभाववाली है. तिनमें प्रमाणकरके अंगीकार करा, जो अनंतधर्मात्मक वस्तु, उसको कालादि आठोंकरके अभेदकी प्राधान्यतासें अर्थात् धर्मधर्मीके अभेदकी मुख्यतासें, अथवा कालादि अष्टकरके भिन्नाभिन्न स्वरूपवाले भी, धर्मधर्मी है, तो भी, अभेदके उपचारसें, एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य, सो सकलादेश है. और इसीका नाम प्रमाणवाक्य है. भावार्थ यह है कि, युगपत् अर्थात् एकहीवार संपूर्ण धर्मोंकरके युक्त वस्तुको कालादि अष्टकरके अभेदकी मुख्यता, अथवा अभेदके उपचारकरके प्रतिपादन करता है, सो सकलादेश प्रमाणके आधीन होनेसें है; और सकलादेशसें जो विपरीत है, सो विकलादेश है; अर्थात् क्रमकरके भेदके उपचारसें, अथवा भेदकी मुख्यतासें भेदहीको कहे, सो नयके आधीन होनेसें विकलादेश है.

प्रश्नः-क्रम क्या है? और युगपत् क्या है?

उत्तरः-जब अस्तित्वादि धर्मोंकी, कालादि अष्टकरके भेदसें कथन करनेकी इच्छा होवे, तब एक शब्दको अनेक अर्थके बोधन करानेकी शक्ति न होनेसें क्रम होता है; और जब तिनही धर्मोंका कालादि अष्टकरके अभेदस्वरूप माने, तब एकही शब्दकरके एक धर्मके बोधन करानेद्वारा तिस धर्मसें अभेदरूप संपूर्णधर्मस्वरूप वस्तुका प्रतिपादन होनेसें, यौगपद्य होता है.

अथ कालादि अष्ट येह हैं. काल १, आत्मरूप २, अर्थ ३, संबंध ४, उपकार ५, गुणिदेश ६, संसर्ग ७, और शब्द ८।

तदुक्तम् ॥

कालात्मरूपसंबंधाः संसर्गोपक्रिये तथा ॥
गुणिदेशार्थशब्दाश्चेत्यष्टौ कालादयः स्मृताः ॥ १ ॥

इसका अर्थ उपर लिख आये हैं:-तत्र स्याज्जीवादिवस्त्वस्त्येवेति-कथंचित् जीवादिवस्तु अस्तिरूपही है. यहां जिस कालमें अस्तित्व है, तिसही कालमें

अपर अनंत धर्म भी वस्तुमें है, इसवास्ते उन धर्मोंकी कालकरके अभेदवृत्ति है. ॥ १ ॥ जौनसा अस्तित्वको वस्तुका गुण होना यह आत्मरूप है, वोही अन्य अनंत गुणोंका भी है, इति आत्मरूपकरके अभेदवृत्ति. ॥ २ ॥ जो अर्थ (द्रव्याख्य), अस्तित्वका आधार आश्रय है, वोही अर्थ द्रव्य, अन्य धर्मोंका आधार है, इत्यर्थकरके अभेदवृत्ति. ॥ ३ ॥ जो अविष्वग्भाव अर्थात् कथंचित् वस्तुरूपसंबंध अस्तित्वका है, वोही अपर धर्मोंका है इतिसंबंधकरके अभेदवृत्ति. ॥ ४ ॥ जो उपकार स्वानुरक्तकरण अपनाकरके खचित करना अस्तित्वको करते हैं, वोही उपकार अपर संपूर्णधर्मोंको करा जाता है, इति उपकारके अभेदवृत्ति. ॥ ५ ॥ जो गुणिके संबंधी क्षेत्ररूप देश अस्तित्वका है, वोही गुणिदेश अपर धर्मोंका है, इतिगुणिदेशकरके अभेदवृत्ति. ॥ ६ ॥ जो एकवस्तुरूपकरके अस्तित्वका संसर्ग है, वोही संसर्ग अशेष धर्मोंका है, इति संसर्गकरके अभेदवृत्ति. ॥

प्रश्नः—पीछे कहे संबंधसें संसर्गका क्या विशेष है ?

उत्तरः—अभेदकी मुख्यता और भेदकी गौणताकरके पीछे संबंध कहा, भेदकी मुख्यता और अभेदकी गौणताकरके यह संसर्ग कहा. इति. ॥७॥ जो अस्तिशब्द अस्तित्व धर्मवाले वस्तुका वाचक है, वोही अस्तिशब्द शेष अनंत धर्मात्मक वस्तुका वाचक है, इतिशब्दकरके अभेदवृत्ति. ॥ ८ ॥

पर्यायार्थिक नयके गौण हुए, और द्रव्यार्थिकके प्राधान्य हुए, अभेद होता है. द्रव्यार्थिकके गौण हुए, और पर्यायार्थिकके प्राधान्य हुए, एककालमें एकवस्तुमें नाना गुण न होनेसें गुणोंका अभेद नही होता है, यदि होवें भी तो, उसके आश्रय भिन्नभिन्न होजावेंगे. ॥ १ ॥ नानी गुणसंबंधी आत्मरूपको भिन्न २ होनेसें; यदि आत्मरूपका अभेद होवे, तो, उनका भेद विरुद्ध होजावेगा. ॥ २ ॥ अपने अपने धर्मके आश्रयभूत अर्थको भी नाना होनेसें; यदि नाना, न होवे तो, नाना गुणोंका आश्रय होना विरुद्ध है. ॥ ३ ॥ संबंधका भी संबंधियोंके भेदसें भेद देखनेसें; नानासंबंधियोंने एकवस्तुमें एकसंबंध नही रचनेसें. ॥ ४ ॥ नानासंबंधियोंने करा जो भिन्न २ स्वरूपवाला उपकार तिसको नाना होनेसें; अनेक

उपकारियोंने एक उपकार करना विरोध है. ॥ ५ ॥ गुणिके देशको एक एक गुणप्रति, भिन्नभिन्न होनेसें; यदि गुणिदेश भिन्नभिन्न, न होवे तो, पृथक् २ (जूदे २) अर्थोंके गुणोंका भी गुणिदेश एक होना चाहिये. ॥६॥ संसर्गको भी एक एक संसर्गवाले साथ जूदाजूदा होनेसें; यदि संसर्ग एक होवे तो, संसर्गवालोंका भेद न होना चाहिये. ॥ ७ ॥ शब्दको भी विषयविषयप्रति भिन्नभिन्न होनेसें; यदि सर्वगुण एकशब्दके वाच्य होवे तो, सर्व अर्थोंको एकशब्दके वाच्य होने चाहिये. और अन्य सर्वशब्द निष्फल होने चाहिये. ॥ ८ ॥ वास्तवसें अस्तित्वादिधर्मोंका एक वस्तुमें इस पूर्वोक्त रीतिसें अभेद न होनेसें कालादिकोंकरके भिन्न २ स्वरूपवाले धर्मोंका अभेदोपचार होवे है. सो पूर्वोक्त अभेद अथवा अभेदोपचार, इन दोनोंकरके प्रमाणसिद्ध अनंतधर्मात्मक वस्तुको एककालमें कथन करे, ऐसा जो वाक्य सो सकलादेश है. प्रमाणवाक्य यह इसीका दूसरा नाम है. ॥ इतिसप्तभंगीस्वरूपवर्णनम् ॥

अथ इस पूर्वोक्त सप्तभंगीका खंडन, चार वेदके संग्रहकर्त्ता व्यासजीने, अपने रचे व्याससूत्रके दूसरे अध्यायके दूसरे पादके ३३।३४।३५। ३६। मे सूत्रोंमें जैनमतका खंडन किया है, तिनमें तेतीसमे सूत्रमें "सप्तभंगी" का खंडन लिखा है, सो दिखाते हैं.

तथाहि सूत्रम् ॥ " ॥ नैकस्मिन्नसंभवात् ॥ ३३ ॥ "

अर्थः—एकवस्तुमें सप्तभंग नही हो सकते हैं, असंभव होनेसें. ॥ इस व्याससूत्रका भाष्य शंकरस्वामीने किया है, तिसका खुलासा भाषामें लिखते हैं.

शंकरस्वामी लिखते हैंः—जैनी सात पदार्थ मानते हैं; जीव १, अजीव २, आस्रव ३, संवर ४, निर्जरा ५, बंध ६, मोक्ष ७, और संक्षेपसें, जैनी, दोही पदार्थ मानते हैं. जीव १, अजीव २. पूर्वोक्त सातों पदार्थोंको इन जीव अजीव दोनोंहीके अंतर्भाव मानते हैं. और पूर्वोक्त दोनोंका प्रपंच पंचास्तिकायनाम मानते हैं; जीवास्तिकाय १, पुद्गलास्तिकाय २, धर्मा-

स्तिकाय ३, अधर्मास्तिकाय ४, आकाशास्तिकाय ५. और इनके मतिकल्पनासें अनेक भेद कहते हैं. और सर्व पदार्थोंमें इस सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्ति, स्यान्नास्ति २, स्यादस्ति च नास्ति ३, स्यादवक्तव्यः ४, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च ४, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च ६, स्यादस्तिच नास्तिचावक्तव्यश्च ७. ऐसेंही एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी सप्तभंगी जोड लेनी.

शंकरस्वामीः—यह पूर्वोक्त जैनीयोंका मानना ठीक नही है. क्योंकि, एक धर्मिमें युगपत् अर्थात् समकालमें सत् असत् आदि विरुद्ध धर्मोंका समावेश नही हो सकता है, शीतउष्णकीतरें. और जो येह सात पदार्थ निश्चित करे हैं, येह इतनेही हैं, और ऐसेंही स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तब तो, अनिश्चयरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुआ.

पूर्वपक्षी जैनीः—अनेकात्मक जो वस्तु है, सो निश्चितरूपही है; और उत्पद्यमानज्ञान, संशयज्ञानवत् अप्रमाणिक भी नही होसकता है.

उत्तरपक्षी शंकरस्वामीः—पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, निरंकुशही अनेकांतपणे सर्व वस्तु माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें वाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति स्यात् नास्ति इत्यादि विकल्पोंके होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा. पक्षसें अस्ति और पक्षसें नास्ति होजावेगी. जब ऐसें हुआ, तब, कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थंकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमिति विषय उपदेशक होसकता है? और कैसें तीर्थंकरके अभिप्रायानुसारी पुरुष तिसके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे? क्योंकि, एकांतिक फलके निश्चित होनेसेंही तिसके साधनोंके अनुष्ठानोंमें सर्व लोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही. इसवास्ते अनिश्चितार्थ शास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही है. तथा पंचास्तिकायका संख्यारूप पंचत्व है, वा नहीं? एकपक्षमें है, दूसरेमें नहीं; तब तो, संख्या भी हीन वा, अधिक हो जावेगी. तथा पूर्वोक्त पदार्थ अवक्तव्य नहीं; जेकर अवक्तव्य होवे तब तो, कहने न चाहिये, परंतु कहते हैं.

तब अवक्तव्य कैसें हुए? और कहता थका तिसही तरें अवधारते हैं, वा नही भी अवधारते हैं? तथा तिनके अवधारणका फल सम्यग्दर्शन, है, वा नही? ऐसेंही उससें विपरीत असम्यग्दर्शन भी है, वा नही? ऐसें कहता हुआ मत्तोन्मत्तपक्षकीतरें होवेगा, परंतु प्रवृत्तियोग्य नही होवेगा. स्वर्गमोक्षपक्षमें भी भावपक्षमें अभाव, नित्यपक्षमें अनित्य, ऐसें अनवधारित वस्तुयोंमें प्रवृत्ति नही हो सकती है. अनादिसिद्ध जीवादिपदार्थोंके निश्चितरूपोंको अनिश्चितरूपका प्रसंग है. ऐसें जीवादिपदार्थोंमें एकधर्मीमें सत्व असत्व विरुद्ध धर्मोंका संभव नही. क्योंकि, जेकर असत् है तो, सत् नही होवेंगे. इसवास्ते आर्हत्मत ठीक नही. इस कहनेसें एक अनेक, नित्य अनित्य,व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि अनेकांतका खंडन जानना.

॥ इतिव्यासाभिप्रायानुसारिशंकरकृतसप्तभंगीखंडनम् ॥

अथ व्यासजी, और शंकरस्वामीके खंडनका खंडन लिखते हैं:—व्यासजी, और शंकरस्वामी, जैनमतके तत्त्वके जाननेवाले नही थे; नही तो, ऐसे अयौक्तिक असमंजस वचनोंसें सप्तभंगीअनेकांतवादका खंडन कदापि नही लिखते; इनोंके पूर्वोक्त खंडनको देखके, सर्व विद्वान् जैनी, उपहास्य करते हैं, और करेंगे. क्योंकि, जिसतरें जैनी पदार्थोंका स्वरूप स्याद्वाद सप्तभंगीसें मानते हैं, उनके माननेमुजब जेकर खंडन करते, तब तो, जैनीयोंके मनमें भी चमत्कार उत्पन्न होता; परंतु व्यासजी, और शंकरस्वामीने तो, भैंसकी जगे, भैंसे (झोटे—पाडे)को दोह गेरा! इस खंडनसें तो, जैनीयोंका मत किंचित्मात्र भी खंडन नही होता है. क्योंकि, जिसतरें जैनी सप्तभंगीका स्वरूप मानते हैं, सो उपर लिख आये हैं उससें जानना.

अथ भव्य जीवोंके बोधवास्ते किंचित्मात्र,शंकरस्वामीकी उन्मत्तता,प्रकट करते हैं. शंकरस्वामी लिखते हैं कि, "जैनी जीवादि सात पदार्थ मानते हैं. तथा संक्षेपसें जीव, और अजीव, दो पदार्थ मानते हैं. और पूर्वोक्त सात पदार्थोंको जीवाजीवके अंतर्भूत मानते हैं. और पूर्वोक्त जीव अजीवकाही

प्रपंचरूप पंचास्तिकाय मानते हैं, इन पांचोंके अनेक भेद मानते हैं; और सर्व पदार्थोंमें सप्तभंगीका समवतार करते हैं. स्यादस्तिइत्यादि सप्तभंगी एकत्वनित्यत्वादिकोंमें भी जोडलेनी." यहां तक तो शंकरस्वामीका कहना ठीक है. क्योंकि, जैनी भी इसीतरें मानते हैं. परंतु जो शंकर कहता है, कि एकधर्मीमें युगपत् सत् असत् आदिधर्मोंका समावेश नही हो सकता है, सो कहना महामिथ्यात्वके उदयसें झूठ है. क्योंकि, जैसें जैनी मानते हैं, तैसें तो सत्य है. यथा घट, अपने मृत्तिकाद्रव्यका १, क्षेत्रसें पाटलिपुत्रक क्षेत्रका २, कालसें वसंतऋतुका बना हुआ ३, और भावसें जलधारणजलहरणक्रियाका करनेवाला ४, इन अपने स्वचतुष्टयकी अपेक्षा, घट, 'अस्ति' और 'सत्रूप' है. और पटके द्रव्यक्षेत्रकालभावकी अपेक्षा, घट, 'नास्ति' और 'असत्रूप' है. पटके स्वरूपकी नास्तिरूप घट है, और घटके स्वरूपकी नास्तिरूप पट है. सर्व पदार्थ अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. जेकर सर्व पदार्थ स्वपरस्वरूपकरके अस्तिरूप होवें, तब तो, सर्व जगत् एकरूप हो जावेगा. तव तो, विद्या, अविद्या, जड, चैतन्य, द्वैत, सत्, असत्, एक, अनेक, नित्य, अनित्य, समल, विमल, साध्य, साधन, प्रमाण, प्रमेय, प्रमुख सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे. यह तो, महाप्रत्यक्षरूपविरोधकरके ग्रस्त है. क्योंकि, जब शंकरस्वामी ब्रह्मको 'सत्रूप' मानेगा, तव तो, ब्रह्मको पररूपकरके 'असत्' माननाही पडेगा. जेकर पररूपकरके ब्रह्मको असत् नही मानेंगे. तब तो पर जो अविद्या माया तिसके स्वरूपकी ब्रह्मको प्राप्ति हुई, तव तो ब्रह्महीके स्वरूपका नाश हो जावेगा. वाह रे शंकरस्वामी! आपने तो अपनीही आंखमें कंकर मारा!!!

तथा शंकरस्वामी लिखते है, 'जो येह सातपदार्थ निश्चित करे हैं, ये इतनेही हैं, और ऐसें स्वरूपवाले हैं, वे पदार्थ तथा अतथारूपकरके होने चाहिये. तव तो, अनिश्चितरूप ज्ञानके होनेसें संशयज्ञानवत् अप्रमाणरूप हुए.'

इसका उत्तरः—सातों पदार्थ स्वस्वरूपकरके तथा रूपवाले है, और परस्वरूपकरके अतथारूप हैं. जेकर ऐसें न माने, तव तो, ब्रह्म स्वस्वरूपकरके तथारूप है, सो परमायारूपकरके जेकर अतथारूप न माने, तव तो, ब्रह्म मायारूपकरके भी तथारूप सिद्ध हुआ; तव तो, वेदांतकी जडही सड गई. परंतु बिचारे शंकरस्वामीको ऐसा स्वमतका नाश होना कहांसे दीख पडे? अतत्त्ववित् होनेसें. इसवास्ते जैनीयोंका माननाही ठीक है. इसीवास्ते संशय ज्ञानकीतरें अप्रमाणिक ज्ञान भी, नही होता है.

पुनः शंकरस्वामी लिखते हैं, 'निरंकुश अनेकांतपणे सर्व वस्तुके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी वस्तुसें वाहिर न होनेसें अनिर्धारितरूपही होजावेगा. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारण करनेका फल भी होजावेगा; पक्षसें अस्ति, और पक्षसें नास्ति होजावेगा. जव ऐसें हुआ तब कैसें प्रमाणभूत वो तीर्थंकर अनिर्धारित प्रमाण प्रमेय प्रमाता प्रमितिविषय उपदेशक होसकता है? और कैसें तिस तीर्थंकरके अभिप्रायानुसारि पुरुषके कहे अनिश्चितरूप अर्थमें प्रवर्त्तमान होवे? क्योंकि, ऐकांतिक फलके निश्चित होनेसें तिसके साधन अनुष्ठानोंमें सर्वलोक अनाकुल प्रवर्त्तते हैं, अन्यथा नही. इसवास्ते अनिश्चितार्थशास्त्रका कहना उन्मत्तके वचनकीतरें उपादेय नही.

इसका उत्तरः—हमने जो निश्चय किया है, सो, अनिर्धारितरूप नही है. क्योंकि, हमने (जैनीयोंने) जो वस्तु माना है, सो, स्वस्वरूपकरके सत् हे, और परस्वरूपकरके असत् है; और यह जो हमने निश्चय किया है, सो निश्चय भी, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके नही है; तथा निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणका फल भी, अपने स्वरूपपक्षमें अस्तिरूपही है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूपही है. जैसें ब्रह्म, स्वस्वरूपकरके अस्तिरूप है, और परस्वरूपकरके नास्तिरूप है; जेकर ऐसा न माने, तव तो, ब्रह्मको स्वस्वरूप परस्वरूपदोनोंही करके अस्तिरूपही होनेसें, सत् असत् ज्ञान अज्ञानादि सर्व एकरूपही होजावेंगे, तव तो, ब्रह्मके स्वरूपकाही नाश होजावेगा. इसवास्ते उपर लिखेमूजब

माननेसें अर्हन् तीर्थंकर, यथार्थ वक्ता सिद्ध हुआ. उनके कथनमें पुरुषोंको निःशंक प्रवर्त्तना चाहिये. उनके साधन अनुष्ठानोंमें भी अनाकुल प्रवृत्ति सिद्ध होगई. इसवास्ते तीर्थंकरोंका कहनाही, सत्य और उपादेय है, नतु अन्योंका, अयौक्तिक होनेसें.

पुनरपि शंकरस्वामी लिखते हैं, " पंचास्तिकायके संख्यारूप पंचत्व है वा नही ? इत्यादि समाप्तिपर्यंत."

इसका उत्तरः—पचत्वसंख्या पंचत्वरूपकरके अस्तिरूप है, और अन्य संख्यायोंके स्वरूपकरके नास्तिरूप है; इसवास्ते संख्या, हीनाधिकरूपवाली नही है. तथा पूर्वोक्त सात पदार्थ एकांत अवक्तव्यरूप नही है, किंतु कथंचित् अवक्तव्यरूप है. युगपत् उच्चारणकी अपेक्षा-अवक्तव्य है, परंतु क्रमकी अपेक्षा अवक्तव्य नहीं है. इसवास्ते पूर्वोक्त लिखना शंकरस्वामीकी बेसमझीसें है. तथा जो पदार्थ स्वचतुष्टय और परचतुष्टयकी अपेक्षा जैसा है, तिसको वैसाही अस्तिनास्तिरूपसें कथन करना, और मानना, उसका नाम सम्यगदर्शन है; और इससें विपरीत असम्यगदर्शन है. सम्यगदर्शन, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है; मिथ्यारूपकरके नही. और असम्यगदर्शन भी, अपने स्वरूपकरके अस्तिरूप है, परस्वरूपकरके नही. स्वर्ग मोक्ष भी, अपने २ स्वरूपकरके अस्तिरूप है, और नरकादिरूपकी अपेक्षा नास्तिरूप है. तथा नित्य जो है, सो द्रव्यकी अपेक्षा है; और अनित्य जो है, सो पर्यायरूपकी अपेक्षा है. इसवास्ते हमारे जैनमतमें अवधारितही वस्तु है, इसवास्ते प्रवृत्ति है. अनादिसिद्धजीवादिपदार्थ भी अपने २ स्वचतुष्टयकी अपेक्षा अस्तिरूप है, और परचतुष्टयकी अपेक्षा नास्तिरूप है. इसवास्ते अनिश्चितरूपका प्रसंग नही है, ऐसेंही एकधर्मीमें स्वरूप अपेक्षा सत्, पररूप अपेक्षा असत् धर्मोंका संभव है. स्वरूपकरके वस्तुमात्र सत् है, और पररूपकरके असत् है. इसवास्ते आर्हतमत ठीक सत्य है. इसकहनेकरके एक अनेक, नित्य अनित्य, व्यतिरिक्त अव्यतिरिक्तादि धर्मधर्मीमें द्रव्यपर्याय भेदाभेदनयमतसें सर्व सत्य है. परंतु शंकरस्वामीने जो कुछ जैनमतके खंडनवास्ते खंडन

लिखा है, तिससें जैनमत तो खंडन नही होता है, परंतु वेदांतमत खंडन होता है, सोही दिखाते हैं.

शंकरस्वामी कहते हैं, "तुमने (जैनोने) जे सात पदार्थ माने हैं, वे अनेकांत माननेसें निश्चित अनिश्चित होजावेंगे."

इसका उत्तरः—तुमने वेदांतीयोंने जो ब्रह्म माना है, सो एकांतनिश्चित है, वा अनिश्चित है? जेकर एकांतनिश्चित है तो, जैसें सत्‌रूपकरके निश्चित है, तैसें असत्‌रूपकरके भी, निश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वप्रकारसें निश्चित होनेसें. जेकर अनिश्चित है, तो जैसें असत्‌रूपकरके अनिश्चित है, वैसेंही सत्‌रूपकरके भी, अनिश्चित होना चाहिये; तिसको सर्वथाप्रकार अनिश्चित होनेसें. जब ऐसें हुआ, तब तो, ब्रह्मका नियतरूप न रहा, सत् असत्‌का संकर होनेसें. जेकर कहोगे सत्‌करके निश्चित है, और असत्‌करके अनिश्चित है, तब तो, तुमने अपनेही हाथसें अपने शिरमें प्रहार दीया, अनेकांतवादके सिद्ध होनेसें. तथा जैसें ब्रह्म सत्‌रूपकरके निश्चित है, और असत्‌रूपकरके अनिश्चित है, ऐसेंही सात पदार्थ, अपने स्वरूपकरके निश्चित है, और परस्वरूपकरके अनिश्चित है.

पुनः शंकरस्वामी कहते हैं, "निरंकुश अनेकांतके माननेसें जो निश्चय करना है, सो भी, वस्तुसें बाहिर न होनेसें स्यात् अस्ति, नास्ति, होना चाहिये. इत्यादि."

इसका उत्तरः—निश्चयस्वरूपकरके अस्ति है, संशय विपर्ययरूपकरके नास्ति है. जेकर एकांत अस्ति होवे, तब तो संशय विपर्ययरूपकरके भी, अस्ति होना चाहिये; जेकर एकांत नास्ति होवे, तब निश्चयरूपकरके भी नास्ति होना चाहिये; इससें सिद्ध हुआ कि, कोई भी वस्तु एकांत नही है. ऐसेंही निर्धारण करनेवाला, और निर्धारणके फलको भी, स्वपर-रूपकरके अस्तिनास्तिरूप जानना. जेकर स्वपररूपकरके अस्तिनास्तिरूप वस्तु न मानीये, तब वस्तुके नियतरूपके नाश होनेसें सर्व जगत् सर्वरूप होजावेगा. तब तो, ब्रह्मका भी, नियतरूप नही रहेगा. वाहरे! शंकरस्वामी! अच्छा अनेकांतका खंडन किया, अनेकांत तो खंडन नही हुआ, परंतु ब्रह्मके स्वरूपका नाश कर दिया!!! इतिशंकरकृतखंडनस्य खंडनम् ॥

अथ प्रसंगसें व्याससूत्रके ३४ मे सूत्रके भाष्यका खंडन लिखते हैं.॥

तथाहि सूत्रम् ॥ "॥ एवञ्चात्माऽकात्स्न्र्यम् ॥ ३४ ॥"

शंकरभाष्यकी भाषाः—जैसें एकधर्मिविषे, विरुद्धधर्मका असंभवरूप दोष, स्याद्वादमें प्राप्त है, ऐसें आत्माको भी अर्थात् जीवको असर्वव्यापी मानना, यह अपर दोषका प्रसंग है. कैसें? शरीरपरिमाणही जीव है, ऐसें आर्हतमतके माननेवाले मानते हैं. और शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्मा, अकृत्स्न असर्वगत है; जब मध्यमपरिमाणवाला आत्मा हुआ, तब घटादिवत्, अनित्यता आत्माको प्राप्त होवेगी; और शरीरोंको अनवस्थित-परिमाणवाले होनेसें मनुष्यजीव मनुष्यशरीरपरिमाण होके फिर किसी कर्मविपाक करके हाथीका जन्म प्राप्त हुए, संपूर्णहस्तिके शरीरमें व्याप्त नही होवेगा; और सूक्ष्म मक्खीका जन्म प्राप्त हुए संपूर्ण सूक्ष्म मक्खीके शरीरमें मावेगा नही. जेकर समानही यह जीव है, तब तो एकही जन्मविषे कुमारयौवनवृद्धअवस्थाओंविषे दोष होवेगा; शरीरकी सर्व अवस्थाओंमें शरीर व्यापक नही होवेगा, यह दोष होवेगा. जेकर कहोगे अनंत अवयव जीवके हैं, तिसके वेही अवयव अल्पशरीरमें संकुचित होजाते हैं, और महान् शरीरमें विकाश होजाते हैं.

उत्तरः—उन अनंतजीवअवयवोंका समानदेशत्व प्रतिहन्यत है, वा नही? जेकर प्रतिघात है, तब तो परिच्छिन्नदेशमें अनंतअवयव नही मावेंगे; जेकर अप्रतिघात है, तब तो अप्रतिघातके हुए एकअवयवदे-शत्वकी उपपत्तिसें, सर्वअवयव विस्तारवाले न होनेसें, जीवको अणु-मात्रका प्रसंग होवेगा. अपिच शरीरपरिच्छिन्न जीवके अनंत अवयवोंकी अनंतता भी, नही होसकती है. इति ॥ ३४ ॥

इस पूर्वोक्त व्याससूत्रकी भाष्यका उत्तर लिखते हैं. ॥

तथाहि सूत्रम् ॥

"॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता साक्षाद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

श्रीवादिदेवसूरिकृत प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारे ॥

इस सूत्रके 'स्वदेहपरिमाणः' इस पदकी और 'प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' इस पदकी टीकाकी भाषामें व्याख्या लिखते हैं। स्वदेहपरिमाण, इसकरके, आत्माका नैयायिकादि परिकल्पित सर्वगतपणा, निषेध करते हैं. आत्माको सर्वगत मानिये, तब तो, जीवतत्त्वके प्रभेद, जे प्रत्यक्ष दिखलाइ देते हैं, उनकी प्रसिद्धि न होनेका प्रसंग आवेगा; सर्वगत एकही आत्माविषे नानात्मकार्योंकी समाप्ति होनेसें. एककालमें नाना मनोका संयोग जो है, सो नानात्मकार्य है. सो नानात्मकार्य एक आत्मामें भी होसकता है. आकाशमें नानाघटादिसंयोगवत्. इसकरके युगपत्, नानाशरीर इंद्रियोंका संयोग कथन किया.

पूर्वपक्षः—युगपत् नानाशरीरोंविषे, आत्मसमवायिसुखदुःखादिकोंकी उपपत्ति नही होवेगी, विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना ठीक नही है. क्योंकि, युगपत् नाना भेरीआदिकोंविषे, आकाशसमवायि विततादिशब्दोंकी अनुपपत्ति होनेके प्रसंगसें; पूर्वोक्त विरोधको अविशेष होनेसें.

पूर्वपक्षः—तथाविध शब्दोंके कारणभेद होनेसें, विततादि नानाशब्दोंकी अनुपपत्ति नही है.

उत्तरपक्षः—सुखादिकारणभेदसें, उस सुखादिकी अनुपपत्ति भी, एक आत्माविषे न होनी चाहिये, विशेषके अभाव होनेसें.

पूर्वपक्षः—विरुद्धधर्मके अध्याससें, आत्माका नानात्व है.

उत्तरपक्षः—तिस विरुद्धधर्मके अध्याससेंही, आकाशका भी नानात्व होवे.

पूर्वपक्षः—उपचारसें आकाशके प्रदेशोंका भेद माननेसें पूर्वोक्त दोष नही है.

उत्तरपक्षः—प्रदेशभेद उपचारसेंही, आत्माविषे भी, दोष नही है. और जन्ममरणादि प्रतिनियम भी सर्वगत आत्मवादीयोंके मतमें आत्मबहुत्वको नही साधेगा; एक आत्मामें भी, जन्ममरणादिकी उपपत्ति होनेसें. घटाकाशादिके उत्पत्ति विनाशादिवत्. नही घटाकाशकी

उत्पत्तिके हुए, पटादि आकाशकी उत्पत्तिही है, तिस समयमें विनाशके भी देखनेसें. और ऐसा भी नही है कि, विनाशके हुए, विनाशही है, उत्पत्तिका भी तिस समयमें उपलंभ होनेसें. और स्थितिके हुए, स्थितिही है, ऐसा भी नही है, विनाश, उत्पाद, दोनोंको भी तिस कालमें देखनेसें.

पूर्वपक्षः—बंधके हुए मोक्ष नही, और मोक्षके हुए बंध नही होवेगा, एक आत्मामें बंध मोक्ष दोनोंका विरोध होनेसें.

उत्तरपक्षः—ऐसा मानना ठीक नही है. क्योंकि, आकाशमें भी एक घटके संबंध हुए, घटांतरके मोक्षके अभावका प्रसंग होनेसें. और एक घटके विश्लेष हुए, घंटातरके विश्लेषका प्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—प्रदेशभेदउपचारसें, पूर्वोक्त प्रसंग नही है.

उत्तरपक्षः—तब तो आत्मामें भी तिसका प्रसंग नही है. आकाशके प्रदेशभेद माने हुए, एक जीवका भी प्रदेशभेद होवो; ऐसें कहांसें जीव-तत्त्व प्रदेशभेद व्यवस्था, जिससें आत्मा व्यापक होवे?

पूर्वपक्षः—आत्माके व्यापकत्वके अभाव हुए, दिग्देशांतरवर्त्ति परमाणुओंके साथ युगपत्संयोगके अभावसें, आद्यकर्मका अभाव है; तिसके अभावसें अंत्यसंयोगका अभाव है, तिस निमित्तक शरीरका अभाव और तिसकरके उसके संबंधका अभाव है. तब तो विनाही उपायके सिद्ध हुआ, सर्वदा सर्व जीवोंको मोक्ष होवे. अथवा होवे जैसें तैसेंकरी शरीरकी उत्पत्ति, तो भी, सावयव शरीरके प्रतिअवयवमें प्रवेश करता हुआ आत्मा, सावयव होवेगा; तैसें हुए इस आत्माको पटादिवत् कार्यत्वका प्रसंग है. और कार्यत्वके हुए, इस आत्माके विजातिकारण आरंभक है, वा सजातिकारण आरंभक है? पूर्वपक्ष तो नही. क्योंकि, विजातियोंको अनारंभक होनेसें. दूसरा पक्ष भी नही. जिसवास्ते सजातिपणा, उनको आत्मत्वअभिसंबंधसेंही होवे हैं, तैसें हुए एक आत्माके अनेक आत्मा, आरंभक ऐसें सिद्ध हुआ, यह तो, अयुक्त है. क्योंकि, एक शरीरमें आत्माके आरंभक, अनेक आत्माका असंभव होनेसें. और संभवके हुए भी स्मरणकी अनुपपत्ति है. क्योंकि, नही अन्यने देखा हुआ,

अन्य स्मरण करनेको समर्थ होता है, अतिप्रसंग होनेसें. तिसकरके आरभ्यत्वके हुए, इस आत्माका, घटवत्, अवयवक्रियासें विभाग होनेसें संयोगविनाशसें विनाश होवेगा. और शरीरपरिमाणत्व आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होनेसें आत्माका शरीरसें प्रवेश नही होवेगा, मूर्त्तमें मूर्त्तके प्रवेशका विरोध होनेसें. तब तो, निरात्मकही, संपूर्ण शरीर, होवेगा. अथवा आत्माको शरीरपरिमाणत्वके हुए, बालशरीरपरिमाणवाले आत्माको, युवशरीरपरिमाण अंगीकार कैसें होवे? बालपरिमाणको त्यागके, वा न त्यागके? जेकर त्यागके, तब तो, शरीरवत्, आत्माको अनित्यत्वका प्रसंग होनेसें, परलोकादिकके अभावका प्रसंग होवेगा. जेकर विनाही त्यागनेसें, तब तो, पूर्वपरिमाणके न त्यागनेसें, शरीरवत्, आत्माको उत्तरपरिमाणकी उपपत्ति नही होवेगी. तथा हे जैन! तू आत्माको शरीरपरिमाण कहता है, तब तो, शरीरके खंडन करनेसें, तिस आत्माका खंडन, क्यों नही होता है? सो कहो.

उत्तरपक्षः—हे वादिन्! जो तूने कहा कि, आत्माके सर्वव्यापीके अभावसें इत्यादि—सो असत्य है. क्योंकि, जो जिसकरके संयुक्त है, सोही तिसप्रति उपसर्पण करता है, ऐसा नियम नही है. चमकपाषाणकरके, लोहा संयुक्त नही भी है, तो भी तिसके आकर्षण करनेकी उपलब्धिसें.

पूर्वपक्षः—जेकर असंयुक्तका भी आकर्षण होवे, तब तो, तिसके शरीरारंभप्रति, एकमुखी हुए, त्रिभुवन उदरविवरवर्त्ति परमाणुओंका उपसर्पण प्रसंग होनेसें, न जाने कितने परिमाणवाला तिसका शरीर होवेगा?

उत्तरपक्षः—संयुक्तके भी, आकर्षणमें यही दोष, क्यों नही होवेगा? आत्माको व्यापक होनेकरके, सकलपरमाणुओंका तिस आत्माके साथ संयोग होनेसें.

पूर्वपक्षः—संयोगके अविशेषसें, अदृष्टके वशसें विवक्षितशरीरके उत्पादन करनेमें, योग्य नियतही परमाणु, उपसर्पण करते हैं.

उत्तरपक्षः—तब तो हमारे पक्षमें भी तुल्य है.। और जो कहा कि, सावयवशरीरके, प्रतिअवयवमें, प्रवेश करता आत्मा इत्यादि. सो भी,

कथनमात्रही है. क्योंकि, सावयवपणा, और कार्यपणा, कथंचित् आत्माविषे हम मानतेही हैं. परंतु ऐसें माननेसें, घटादिवत्, पहिले प्रसिद्ध समानजातीयअवयवोंकरके आरभ्यत्वकी प्रसक्ति नही है. क्योंकि, नही निश्चयसें, घटादिकोंविषे भी, कार्यसें प्रथम प्रसिद्ध समानजातीय कपालसंयोगकरके आरभ्यत्व देखा है. कुंभकारादि व्यापारसंयुक्त माटीके पिंडसें, प्रथमही, घटके पृथुबुध्नोदरादि आकारकी उत्पत्ति प्रतीत होनेसें. द्रव्यकाही, पूर्वाकार परित्यागनेसें, उत्तराकार परिणाम होना, सोही, कार्यत्व है. सो कार्यत्व, बाहिरकीतरें अभ्यंतर भी अनुभूतही है. और पटादिकोंविषे स्वअवयवसंयोगपूर्वक कार्यत्वके देखनेसें सर्वजगे तैसें होना चाहिये, यह युक्त नही है. क्योंकि, नही तो, काष्ठविषे लोहलेख्यत्वके उपलंभ होनेसें, वज्रमें भी लोहलेख्यत्वका प्रसंग होवेगा. और प्रमाणबाधन तो दोनोंजगे तुल्य है. और उक्तलक्षणकार्यत्व अंगीकार करें भी, आत्माको, अनित्यत्वके प्रसंगसें, प्रतिसंधान (स्मरण)के अभावकी प्राप्ति नही होती है. क्योंकि, कथंचित् अनित्यत्वके हुएही, इस संधानको, उपपद्यमान होनेसें. और जो यह कहा कि, शरीरपरिमाण आत्माके हुए, आत्माको मूर्त्तत्वकी प्राप्ति होवेगी इत्यादि—तहां मूर्त्तत्व किसको कहते हो ? असर्वगतद्रव्यपरिमाणको, वा रूपादिमत्वको ? तिनमें आद्य पक्ष तो, दोषपोषकेतांइ नही है, संमत होनेसें. और दूसरा पक्ष तो, अयुक्त है, व्याप्तिके अभावसें. क्योंकि, जो असर्वगत है, सो नियमकरके रूपादिमत् है, ऐसा अविनाभाव नही है. क्योंकि, मनको असर्वगत होनेसें भी, रूपादिमत्वके अभावसें. इसवास्ते आत्माकी, शरीरविषे अनुप्रवेशकी अनुपपत्ति नही है, जिसवास्ते शरीर निरात्मक होजावे. असर्वगत द्रव्यपरिमाणलक्षणमूर्त्तत्वको, मनोवत् प्रवेशका अप्रतिबंधक होनेसें, रूपादिमत्वलक्षण मूर्त्तत्वसहित जलादिकोंका भी, भस्मादिविषे अनुप्रवेश नही निषेधीये हैं; और मूर्त्तत्वसें रहित भी आत्माका प्रवेश शरीरमें प्रतिषेध करते हो तो, इससें अधिक और कौनसा आश्चर्य है ?

और जो यह कहा कि, देहपरिमाणत्वके हुए, आत्माको बालशरीर-परिमाण त्यागके, इत्यादि–सो भी, अयुक्त है. क्योंकि, युवशरीरपरिमाण-अवस्थाके विषे, आत्माको बालशरीरपरिमाणके परित्यागे हुए, आत्माका सर्वथा विनाशके असंभव होनेसें; विफण अवस्थाके उत्पाद हुए सर्पवत्. तब तो, कैसें परलोकके अभावका अनुषंग होवे? पर्यायसें आत्माके अनित्यत्वके हुए भी, द्रव्यसें नित्यत्व होनेसें. । और जो यह कहा कि, यदि आत्माको शरीरपरिमाणता है, तब तो शरीरके खंडन करनेसें इत्यादि–सो भी, ठीक नही है. क्योंकि, शरीरके खंडनेसें कथंचित् आत्माका खंडन भी इष्ट होनेसें. शरीरसंबद्ध आत्मप्रदेशोंसेंही, कितनेक आत्मप्रदेशोंका खंडितशरीरप्रदेशविषे अवस्थान है, सोही, आत्माका किसी प्रकारसें खंडन है; नतु सर्व प्रकारसें. सो यहां विद्यमानही है. अन्यथा तो, शरीरसें पृथग्भूत अवयवके कंपनकी उपलब्धि नही होवेगी. और यह भी नही है कि, खंडित अवयव प्रविष्टआत्मप्रदेशको पृथग् आत्मतत्वका प्रसंग है; उन आत्मप्रदेशोंका खंडित अवयवसें निकलके पुनः तिसही शरीरमें प्रवेश होनेसें. और यह भी नही है कि, एकत्र संतानविषे अनेकात्माका प्रसंग होवेगा. क्योंकि, अनेकार्थप्रतिभासि ज्ञानोंका एक प्रमाताके आधारकरके प्रतिभासके अभावका प्रसंग होनेसें, शरीरांतर रहे हुए, अनेक ज्ञानावसेय अर्थ संवित्तिवत्.

पूर्वपक्षः–किसतरें खंडिताखंडित अवयवोंका पीछेसें फिर संघट्टन होवे है?

उत्तरपक्षः–एकांत सर्वथाछेदके अनंगीकारसें, पद्मनालतंतुवत्, कथंचित् अच्छेदके भी स्वीकारसें. और तथाविध अदृष्टके वशसें उनका संघट्टन भी फिर अविरुद्धही है. इसवास्ते शरीरपरिमाणही आत्मा अंगीकार करनेयोग्य है, नतु सर्वव्यापक. प्रयोग ऐसें है. आत्मा व्यापक नही है, चेतनत्व होनेसें, जो सर्वव्यापक है, सो चेतन नही है, जैसें आकाश, और आत्मा चेतन है, तिसवास्ते व्यापक नही. आत्माके अव्या-

पकत्वका होना, आत्माके गुणोंका शरीरमेंही उपलभ्यमान होनेसें सिद्ध हुआ, आत्माका शरीरपरिमाणपणा.*

तथा शंकरभाष्यमें और टीकामें जो लिखा है कि, देहपरिमाण परिच्छिन्न आत्माके माने, आत्मा अनित्य सिद्ध होता है,

तथाचानुमानं—"॥देहपरिमाणपरिछिन्न आत्मा अनित्यः मध्यमपरिमाणवत्त्वात् घटवत् ॥"

देहपरिमाणपरिछिन्न आत्मा अनित्य है, मध्यमपरिमाणवाला होनेसें, घटकीतरें. और जो नित्य है, सो, मध्यमपरिमाणवाला भी नही; यथा आकाश, वा अणुपरिमाणवाला परमाणु. इसवास्ते आत्मा, देहपरिमाणव्यापक नही, किंतु सर्वव्यापक है. इत्यादि–यह पूर्वोक्त कहना ठीक नही है. क्योंकि, पूर्वोक्त अनुमान तो, नैयायिकोंका है, परंतु वेदांतियोंका नही है. वेदांतियोंके मतमें तो, ऐसे अनुमानका उत्थानही नही होता है. क्योंकि, वेदांतियोंने सर्वसें अणुप्रमाणवाले परमाणु, और सर्वसें महाप्रमाणवाला आकाश, यह दोनों मानेही नहीं है, द्वैतापत्ति होनेसें. तो फिर पूर्वोक्त अनुमान, उनके मतमें कैसें संभवे ? अपितु नही संभवे. जब कल्पितवस्तु अनुमानका विषयही नही है, तो फिर, ऐसा अनुमान, वेदांती आत्माकी अनित्यता सिद्ध करनेवास्ते कैसें कह सकते हैं ? इसवास्ते व्यासजी, और शंकरस्वामीका जो कथन है, सो स्वमतविरुद्ध, और प्रमाणयुक्तिसें वाधित है. तथा पूर्वोक्त अनुमान भी, व्यभिचारि है.

यथा ॥

"॥ वल्मीकं कुंभकारकर्तृजन्यं मृद्विकारत्वात् घटवत् ॥"

जैसें यह अनुमान व्यभिचारि है, जो जो मृद्विकार है, सो सर्व कुंभकारकर्तृजन्य, न होनेसें. ऐसेंही 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह भी हेतु असिद्ध है. क्योंकि, मध्यमपरिमाणवाले चंद्रसूर्यादि, कथंचित् नित्य हैं; और 'मध्यमपरिमाणवत्त्वात्' यह हेतु, प्रतिवादिजैनोंके मतमें सम्मत

* तैत्तिरीय आरण्यकके दशमे प्रपाठकके अडतीसमे अनुवाकमें भी, 'आपादमस्तकव्यापी' पैरसें लेके मस्तकपर्यंत व्यापी जीव लिखा है.

नही है. और तो हेतु, वादीप्रतिवादी दोनोंको सम्मत होना चाहिये, सो तो, हैही नही. इसवास्ते व्यासजी और शंकरस्वामीका कहना, असमंजस है.

और जो शंकरस्वामी लिखते हैं कि, शरीरोंको अनवस्थितपरिमाणवाले इत्यादि.

तिसका उत्तरः—जीवमें संकोच विकाश होनेकी शक्ति है; कर्मोदयसें जब जीव, स्थूलशरीरको छोडके सूक्ष्मशरीरको धारण करता है, तब जीवके असंख्य प्रदेश संकुचित होके सूक्ष्मशरीरमें समा जाते हैं; जैसें एक कोठेमेंसें प्रकाशक दीपकको लेके एक प्यालेके नीचे रख दिया जावे तो, उस दीपकका प्रकाश उस प्यालेमेंही प्रकाश करेगा; ऐसेंही सूक्ष्मशरीर छोडके महान् शरीरमें जान लेना. और जो शंकरस्वामीने लिखा है, जीवके अनंत अवयव, सो लेख, मिथ्या है. अनंत अवयव नही, किंतु, असंख्य प्रदेश हैं. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका निरंश अंश होवे; और आत्माके, वे सर्वप्रदेश एकसरीखे हैं; इसवास्ते आत्माकाही संकोच विकाश होता है, प्रदेशोंका नही. जैसें वस्त्रकी तह लगानेसें वस्त्रकाही संकोच है, परंतु तिसके तंतुयोंमें न्युनाधिक्यता नही है. इसवास्ते आत्माही, संकोच विकाश धर्मके होनेसें सुक्ष्मसें स्थूल, और स्थूलसें सूक्ष्मशरीरमें व्यापक होता है. इसवास्ते शंकरस्वामीकी कल्पनामें शंकरस्वामीकी जैनमतकी अनभिज्ञताही, कारण है. इति।

अथ प्रसंगमें 'प्रतिक्षेत्रं भिन्नः' सूत्रके इस अवयवरूप विशेषणकरके आत्मअद्वैतवाद खंडन किया, सो ऐसें है.

वेदांती कहते हैं कि, हम तो एकही परमब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हैं.

उत्तरपक्षः—जेकर एकही परमब्रह्म सद्रूप है, तो फिर, यह जो सरल रसाल प्रियाल हंताल ताल तमाल प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामिपणेकरके प्रतीत होते हैं, वे, क्योंकर सत्स्वरूप नही हैं?

पूर्वपक्षः—येह पूर्वोक्त जे पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है. तथाचानुमानं—'प्रपंचोमिथ्या' प्रपंच मिथ्या है, प्रतीयमान होनेसें, जो ऐसा है, सो ऐसा है, यथा सीपके टुकडेमें, चांदी. तैसाही यह प्रपंच है,

तिसवास्ते मिथ्या है. इस अनुमानसें प्रपंचमिथ्यारूप है, और एक ब्रह्म-ही, पारमामर्थिक सद्रूप है.

उत्तरपक्षः–हे पूर्वपक्षिन्! इस अनुमानके कहनेसें तुमारा तर्कवितर्क-कार्कश्यसूचन नही होता है। तथाहि। यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है, सो मिथ्या, तीन तरेंका होता है. अत्यंत असद्रूप (१) है तो, कुच्छ और और प्रतीत होवे और तरें (२) और तीसरा अनिर्वाच्य (३) इन तीनोंमेंसें कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचको माना है?

पूर्वपक्षः–इन पूर्वोक्त तीनों पक्षोंमेंसें प्रथमके दो पक्ष तो हमको स्वीकारही नही है, इसवास्ते हम तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानते हैं, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः–प्रथम तो तुम यह कहो कि, अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? एतावता तुम अनिर्वाच्य किसको कहते हो? क्या वस्तुका कहनेवाला शब्द नही है? वा शब्दका निमित्त नही है? वा निःस्वभावत्व है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाकरनेयोग्यही नही है. क्योंकि, यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो, शब्दका निमित्तज्ञान नही है? वा पदार्थ नही है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नही है, सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान प्राणीप्राणी प्रति प्रतीत होनेसें, देखनेवाले सर्व जीव जानते हैं; जो सरल रसाल ताल तमाल प्रमुखका ज्ञान हमको है. अथ दूसरा पक्ष तो, पदार्थ, भावरूप नही है? वा अभावरूप नही है? प्रथम कल्पनामें तो, असत्ख्याति अभ्युपगमप्रसंग है, अर्थात् जेकर कहोगे पदार्थ भावरूप नही है, और प्रतीत होता है तो, तुमको असत्ख्याति माननी पडी; और अद्वैतवादीयोंके मतमें असत्ख्याति माननी महादूषण है. अथ दूसरा पक्ष, जो पदार्थ, अभावरूप नही तो भावरूप सिद्ध हुआ. तब तो, सत्ख्याति माननी पडी. और जब अद्वैतवादमत अंगीकार कीया, और सत्ख्याति माननी पडी, तब तो सत्ख्यातिके माननेसें अद्वैतमतकी जडको कूहाडेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नही सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—भावरूप, तथा अभावरूप, येह दोनोंही प्रकारें वस्तु नही.

उत्तरपक्षः—हम तुमको पूछते हैं कि, भाव, और अभाव, इन दोनोंका अर्थ, जो लौकिकमें प्रसिद्ध है, वोही, तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरेंका माना है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तो, जहां भावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव अभाव कहना पडेगा; और जहां अभावका निषेध करोगे तहां अवश्यमेव भाव कहना पडेगा. जो परस्पर विरोधी है, उनमें एकका निषेध करोगे तो, दूसरेका विधि, अवश्य कहनाही पडेगा. अथ दूसरा पक्ष मानोगे, तब तो हमारी कुच्छ हानी नही है. क्योंकि, अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द, और शब्दका निमित्त, जेकर नष्ट होजावेगा तो, लौकिकशब्द, और लौकिशब्दका निमित्त, कदापि नष्ट नही होगा; तो फिर, अनिर्वाच्य प्रपंच किसतरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्यही सिद्ध नही होगा तो, प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध होगा? और एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध होवेगा? निःस्वभावत्वपक्षमें भी, निस् शब्दको निषेधार्थके हुए, और स्वभावशब्दको भी भाव अभाव दोनोंमेंसें अन्यतर किसी एक अर्थके अर्थात् भावके, वा अभावके वाचक हुए, पूर्ववत् प्रसंग होवेगा.

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसको निःस्वभावत्व कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें विरोध आता है; जेकर प्रपंच प्रतीत नही होता तो, तुमने अपने प्रथम अनुमानमें प्रपंचको प्रतीयमान हेतुस्वरूपपणे क्योंकर ग्रहण किया? और प्रपंचको अनुमान करनेके समय धर्मीपणे क्योंकर ग्रहण किया? तथा धर्मीपणे ग्रहण करे हुए, वो कैसें प्रतीत नही होता है?

पूर्वपक्षः—जैसा प्रतीत होता है, तैसा है नही.

उत्तरपक्षः—तब तो यह, विपरीतख्याति, तुमने अंगीकार करी सिद्ध होवेगी. तथा हम तुमको पूछते हैं कि, यह जो तुम इस प्रपंचको अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्षप्रमाणसें मानते हो? वा अनुमानप्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्षप्रमाण तो, इस प्रपंचको सत्स्वरूपही सिद्ध करता है.

जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होनेसें. और प्रपंच जो है, सो परस्पर, न्यारी न्यारी, जो वस्तु है, सो अपने अपने स्वरूपमें भावरूप है; और दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षा अभावरूप है. इस इतरेतरविविक्त वस्तुयोंकोही प्रपंचरूप माना है. तो फिर, प्रत्यक्षप्रमाण, प्रपंचको अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्षः—यह प्रत्यक्ष, हमारे पक्षको प्रतिक्षेप नही कर सकता है. क्योंकि, प्रत्यक्ष तो विधायकही है, तैसें तैसें प्रत्यक्ष ब्रह्मकोही कथन करता है, न कि, प्रपंच सत्यताको कथन करता है; प्रपंच सत्यता तो, तव कथन करी सिद्ध होवे, जेकर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुयोंके स्वरूपका निषेध करे; परंतु प्रत्यक्षप्रमाण तो ऐसा है नही, प्रत्यक्षको निषेध करनेमें कुंठ होनेसें.

उत्तरपक्षः—प्रथम तुम विधायक किसको कहते हो?

पूर्वपक्षः—यह ऐसे वस्तुस्वरूपको ग्रहण करे, और अन्यस्वरूपको निषेध न करे, ऐसा प्रत्यक्षही विधायक है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहना असत्य है. अन्यवस्तुके स्वरूपके विना निषेध्यां, वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होनेसें; पीतादिक वर्णोंकरी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होवेगा, अन्यथा नही. तथा जब प्रत्यक्षप्रमाणकरके यथार्थ वस्तुस्वरूप ग्रहण किया जायगा, तव तो अवश्य अपर वस्तुका निषेध भी तहां जाना जायगा. जेकर प्रत्यक्ष, अन्यवस्तुमें अन्यवस्तुके निषेधको नही जानेगा तो, तिसवस्तुके इदमिति यह ऐसे विधिस्वरूपको भी जान सकेगा. क्योंकि, केवल जो वस्तुके स्वरूपको ग्रहण करना है, सोही अन्यवस्तुके स्वरूपका निषेध करना है. जब प्रत्यक्षप्रमाणविधि, और निषेध, दोनोंहीको ग्रहण करता है, तब तो, प्रपंच, मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा. जब प्रत्यक्षप्रमाणसें प्रपंचही मिथ्यारूप सिद्ध न हुआ तो, परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध होगा? तथा जो तुम प्रत्यक्षको नियमकरके विधायकही मानोगे, तव तो, विद्यावत् अविद्याका भी विधान तुमको मानना पडेगा; सो यह ब्रह्म, अविद्यारहित होनेकरके सन्मात्र

है, प्रत्यक्ष प्रमाणसें ऐसे जानते हुए भी, फिर, प्रत्यक्ष, निषेधक नही है; ऐसे कथन करनेवालेको क्यों नही उन्मत्त कहने चाहिये? इति सिद्ध हुआ प्रत्यक्षबाधित तुमारा पक्ष. । और अनुमानकरके बाधित, ऐसें है. प्रपंच मिथ्या नही है, असत्सें विलक्षण होनेसें; जो असत्सें विलक्षण है, सो, मिथ्या नही है. यथा आत्मा. तैसाही यह प्रपंच है, तिसवास्ते, प्रपंच, मिथ्या नही. । तथा प्रतीयमान जो तुमारा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, क्योंकि, ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नही है. जेकर कहोगे ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है, तब तो, ब्रह्मात्मा वचनोंका गोचर न होगा; जब वचनगोचर नही, तबतो, तुमको गुंगे बननाही ठीक है. क्योंकि, ब्रह्मविना अपर तो कुच्छ हैही नही, और जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नही है; तो फिर तुमको हम गुंगेके विना और क्या कहें? और प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दिया, सो साध्य विकल है. क्योंकि, जो सीप है, सो भी प्रपंचके अंतर्गतही है; और तुम तो, प्रपंचको मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो! यह कदापि नही हो सकता है कि, जो साध्य होवे, सोही, दृष्टांतमें कहा जावे. जब सीपकाही अबतक सत्असत्पणा सिद्ध नहीं तो, उसको दृष्टांतमें कैसें ग्रहण किया?

तथा प्रथम जो तुमने प्रपंचको मिथ्या सिद्ध करनेवास्ते अनुमान किया था, सो अनुमान, इस प्रपंचसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जेकर कहोगे भिन्न है, तो फिर सत्य है? वा असत्य है? जेकर कहोगे सत्य है तो, तिस सत्य अनुमानकीतरें प्रपंचको भी सत्यपणा होवे. जेकर कहोगे असत्य है, तो फिर क्या शून्य है? वा अन्यथा ख्यात है? वा अनिर्वचनीय है? प्रथम दोनों पक्ष तो, कदापि साध्यके साधक नही है. मनुष्यके शृंगकीतरें (१) तथा सीपके रूपेकीतरें (२) और तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है, सो भी, असमर्थ है; अर्थात् साध्यको साध नही सक्ता है. अनिर्वचनीयको असंभविपणेकरके कथन करनेसें.

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहारसत्य है; इसवास्ते असत्यत्वके अभावसें अपने साध्यका साधकही है !

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते हैं कि, यह 'व्यवहारसत्य' क्या है ? व्यवहृतिर्व्यवहारः तब तो, ज्ञानकाही नाम व्यवहार ठहरा. जेकर तिस ज्ञानरूप व्यवहारकरके सत्य है, तब तो, सो अनुमान, पारमार्थिकही है. यदि व्यवहारसत्यकरके अनुमान सत्य है, तब तो व्यवहारसत्यकरके प्रपंच भी सत्य होवे. ऐसे इस पक्षमें सत्ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ, जव प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो, एकही परमब्रह्म सद्रूप अद्वैततत्त्व किसीतरह भी सिद्ध नही हो सकता है. जेकर कहोगे, व्यवहार नाम शब्दका है, तिसकरके जो सत्य, सो व्यहार सत्य है; तो, हम पूछते हैं कि शब्द सत्यस्वरूप है ? वा असत्य है ? जेकर कहोगे, शब्द सत्यस्वरूप है, तव तिसकरके जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है. तब तो, अनुमाकीतरें प्रपंच भी सत्य सिद्ध हुआ. जेकर कहोगे शब्द असत्यस्वरूप है, तो तिस शब्दसें अनुमानको सत्यपणा कैसें होवेगा ? तथा शब्दसें कहे हुए ब्रह्मादि कैसें सतस्वरूप हो सकेंगे ? क्योंकि, जो आपही असत्यस्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करने, वा कहनेका हेतु कदापि नही हो सकता है, अतिप्रसंग होनेसें.

पूर्वपक्षः—जैसें खोटा रूप्यक, सत्यरूप्यकके क्रयविक्रयादिक व्यवहारका जनक होनेसें सत्यरूप्यक माना जाता है, तैसेंही हमारा अनुमान, यद्यपिं असत्यस्वरूप है, तोभी जगतमें सत्व्यवहारकरके प्रवर्तक होनेसें, व्यवहार सत्य है; इसवास्ते अपने साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो, तुमारा अनुमान, असत्यस्वरूपही सिद्ध हुआ. तव तो, जो दूषण, असत्य पक्षमें कथन करे, सो सर्व, यहां पडेंगे. इसवास्ते प्रपंचसें भिन्न, अनुमान, उपपत्ति पदवीको नही प्राप्त होता है. जेकर कहोगे कि, हम अनुमानको प्रपंचसें अभेद मानते हैं, तव तो, प्रपंचकीतरें अनुमान भी, मिथ्यारूप ठहरा. तव तो, अपने साध्यको कैसें साध सकेगा ? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु

आत्माकीतरें सद्रूप है; तो फिर, एकही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है, यह तुमारा कहना क्योंकर सत्य हो सकता है? कदापि नही हो सकता है.

पूर्वपक्षः—हमारी उपनिषदोंमें, तथा शंकरस्वामिके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखा है कि, "परमात्मा जगदुपादानकारणमिति" परमात्माही, इस सर्व जगत्का उपादान कारण है. उपादान कारण उसको कहते हैं कि, जो कारण होवे, सोही कार्यरूप होजावे. इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ कि, जो कुच्छ जगत्में है, सो सर्व, परमात्माही आप बन गया है; इसवास्ते जगत् परमात्मारूपही है.

उत्तरपक्षः—वाहरे नास्तिकशिरोमणे! तुम अपने वचनको कभी शोच विचार कर कहते हो, वा नही? क्योंकि, इस तुमारे कहनेसें तो, पूर्ण नास्तिकपणा, तुमारे मतमें सिद्ध होता है. यथा, जब सर्व कुच्छ जगत्स्वरूप परमात्मारूपही है, तब तो, न कोई पापी है, न कोई धर्म्मी है, न कोई ज्ञानी है, न कोई अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, न कोई साधु है, न कोई चोर है, सत् शास्त्र भी नही, असत् शास्त्र भी नही, तथा जैसा गोमांसभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी, जैसा स्वभार्यासें कामभोग सेवन किया, तैसाही माता बाहिन बेटीसें किया, जैसा ब्रह्मचारी, तैसा कामी, जैसा चंडाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा गर्दभ, तैसा संन्यासी; क्योंकि, जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एकस्वरूप है, दूसरा तो कोई हैही नही.

पूर्वपक्षः—हम एक ब्रह्म मानते हैं, और एक माया मानते हैं, सो, तुमने जो ऊपर बहुतसें आलजंजाल लिखे हैं, सो सर्व, मायाजन्य है, ब्रह्म तो, सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्षः—हे अद्वैतवादिन्! यह जो तुमने पक्ष माना है, सो बहुत असमीचीन है. यथा—माया जो है, सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो, जड है, वा चेतन है? जेकर जड है तो फिर, नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तब तो, अद्वैतमतके मूलहीको

दाह करती है. क्योंकि, जब माया, ब्रह्मसें भेदरूप हुई, और जडरूप भई, और नित्य हुई, फिर तो, तुमने आपही अपने कहनेसें द्वैतपंथ सिद्ध करा; और अद्वैतपंथको जड मूलसें काट गेरा. जेकर कहोगे, माया, ब्रह्मसें भेद, जडरूप, और अनित्य है, तो भी, द्वैतता तो कदापि दूर नही होवेगी. क्योंकि, जो नाश होनेवाला है, सो कार्यरूप है; और जो कार्य है, सो कारणजन्य है. तो फिर, उस मायाका उपादानकारण कौन है? सो कहना चाहिये. जेकर कहोगे, अपरमाया, तब तो अनवस्थादूषण है; और अद्वैत तीनों कालोंमें कदापि सिद्ध नहीं होगा. जेकर ब्रह्महीको उपादानकारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्वकुछ बन गया; तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जेकर मायाको चैतन्य मानोगे, तो भी, यही पूर्वोक्त दूषण होगा. जेकर कहोगे, माया ब्रह्मसें अभेद है. तब तो ब्रह्मही कहना चाहिये, माया नही कहनी चाहिये.

पूर्वपक्षः—हम तो मायाको अनिर्वचनीय मानते हैं.

उत्तरपक्षः—इस अनिर्वचनीय पक्षको ऊपर खंडन कर आये हैं, इसवास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो, दंभी पुरुषोंने छलरूप रचा प्रतीत होता है; तो भी, द्वैतही सिद्ध होता है, अद्वैत नही.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैतमत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी हैं, जिनोंने सर्व मतोंको खंडन करके अद्वैतमत सिद्ध किया है; तो फिर ऐसे शंकरस्वामी, साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उनोंके अद्वैत मतको खंडनेवाला कौन है?

उत्तरपक्षः—हे वल्लभमित्र? तुमारी समझमूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही हैं; परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिकृत शंकरदिग्विजयमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो ऐसा प्रतीत होता है कि, शंकरस्वामी असर्वज्ञ, कामी, अज्ञानी, और असमर्थ थे. तथा तिस वृत्तांतसें ऐसा भी प्रतीत होता है कि, वेदांतियोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान, जबतक यह स्थूल शरीर रहेगा, तबतकही रहेगा; परंतु इस शरीरके पात हुए पीछे वेदांतियोंका ब्रह्मज्ञान, नही रहेगा. जो कि,

पैंतीसमें स्तंभमें संक्षेपसें हम लिखही आये हैं. इसवास्ते हे भव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फिर, उनके कहे हुए मतको सयौक्तिक कौन समझ सकता है?

पूर्वपक्षः—"पुरुषएवेदं" इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह भी तुमारा कहना असत् है. क्योंकि, जो पुरुषमात्ररूप अद्वैततत्त्व होवे, तब तो, यह जो दिखलाइ देता है, कोई सुखी, कोई दुःखी, इत्यादि सर्व परमार्थसें असत् होजावेंगे; जव ऐसे होगा, तब तो, यह जो कहना है,

"॥ प्रमाणतोधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि ॥"

इसका अर्थ संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जानकर तिस संसारसें विमुखबुद्धि होकरके तिस संसारके उच्छेदवास्ते प्रवृत्ति करे इत्यादि—सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्णन करनेसरीखा है. क्योंकि, जव अद्वैतरूपही तत्त्व है, तब नरकतिर्यंचादिभवभ्रमणरूप संसार कहां रहा? जिस संसारको निर्गुण जानकर तिसके उच्छेद करनेकी प्रवृत्ति होवे!

पूर्वपक्षः—तत्त्वसें पुरुष अद्वैतमात्रही है, और यह जो संसार निर्गुण वर्णन किया है, और पदार्थोंके भेदका दर्शन, सदा सर्व जीवोंका जो प्रतिभासन हो रहा है सो, सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्चनीचकीतरें, भ्रांतिरूप है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहना है, सो असत् है. क्योंकि, इस बातमें कोई यथार्थ प्रमाण नही है. तद्यथा—जेकर अद्वैत सिद्ध करनेवास्ते कोई पृथग्भूत प्रमाण मानोगे, तव तो, द्वैतापत्ति होवेगी; और प्रमाणके विना किसीका भी मत सिद्ध नही हो सकता है. यदि प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोगे, तब तो, सर्ववादी अपने अपने अभिमतको सिद्ध कर लेवेंगे. तथा भ्रांति भी, तुमको प्रमाणभूत अद्वैतसें भिन्नही माननी चाहिये; अन्यथा तो, प्रमाणभूत अद्वैतही अप्रमाण होजावेगा. जब भ्रांति अद्वैतकाही रूप हुई, तब तो,

पुरुषकाही रूप हुई. जब भ्रांतिस्वरूपवाला पुरुषही है, तब तो तत्त्व-व्यवस्था कुछ भी सिद्ध न हुई. जेकर भ्रांति भिन्न मानोगे, तब तो द्वैतापत्ति हो जावेगी; और अद्वैतमतकी हानी होजावेगी. तथा जो यह स्तंभ, इभ कुंभ, अंभोरुह आदि पदार्थोंका भेद दिखता है, सो भ्रांत है; ऐसे कहो तो, नियमसें सोही पदार्थभेददर्शन, किसी जगे सत्य मानना चाहिये, अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नही आनेसें. पूर्वे जिसने सच्चा सर्प नही देखा है, तिसको रज्जुमें सर्पकी भ्रांति कदापि नही होवेगी.

तदुक्तम् ॥

नादृष्टपूर्वसर्पस्य रज्ज्वां सर्पमतिः क्वचित् ॥
ततः पूर्वानुसारित्वाद् भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥

इस कहनेसें भी, भेद सिद्ध होगया. तथा पुरुष अद्वैतरूपतत्त्व, अवश्यकरके दूसरेको निवेदन करने योग्य है, अपने आपको नही, अपनेमें व्यामोहना होनेसें. जेकर कहनेवालेमें व्यामोह होवे, तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कभी भी नही होवेगी.

पूर्वपक्षः—जिसवास्ते अपने आपको व्यामोह है, इसीवास्ते तिस व्यामोहकी निवृत्तिवास्ते, अपने आपको, अद्वैतकी प्रतिपत्ति, करने योग्य है.

उत्तरपक्षः—यह कहना अयुक्त है. क्योंकि, ऐसे हुए, अद्वैतकी प्रतिपत्ति होनेकरके, अपने आपके व्यामोहके दूर होयाहुआ, अवश्यमेव पूर्वरूपका त्याग, और अमूढतालक्षण उत्तररूपकी उत्पत्ति कहनी पडेगी. तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होजावेगी. तथा जब अद्वैततत्त्वका उपदेशक पुरुष परको उपदेश करेगा, तब तो, परका अवश्य मानेगा; फिर अद्वैततत्त्वपरको निवेदन करना, और अद्वैततत्त्व मानना, यह तो ऐसें हुआ जैसें मेरा पिता, कुमारब्रह्मचारी है. इसवचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है; जेकर अपनेको और परको, इन दोनोंको मानेगा, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति होवेगी; इसवास्ते जो अद्वैत मानना है, सो युक्तिविकल है.

पूर्वपक्षः—परब्रह्मरूपकी सिद्धिही, सकलभेदज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबनपणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—यह कथन भी तुमारा ठीक नही है, परम ब्रह्महीकी सिद्धि न होनेसें; जेकर है तो, स्वतःसिद्धि है, वा परतःसिद्धि है? तहां स्वतःसिद्धि तो है नही, जेकर होवे, तब तो, किसीका भी विवाद न रहे; जेकर कहोगे परतःसिद्धि है तो, क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है? जेकर कहोगे, अनुमानसें है तो, वो अनुमान कौनसा है?

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है. विवादरूप जो अर्थ है, सो प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, अर्थात् ब्रह्मभासके अंदर है, प्रतिभासमान होनेसें; जो जो प्रतिभासमान है, सो सो प्रतिभासांतःप्रविष्टही देखा है. जैसें ब्रह्म प्रतिभास स्वरूप प्रतिभाससान है, सकल अर्थ सचेतनअचेतन विवादरूप, तिसकारणसें प्रतिभासांतःप्रविष्ट है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा अनुमान, सम्यक् नही है. (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिभासांतःप्रविष्ट होनेसें, साध्यरूपही हुए. तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके न होनेसें, अनुमानही नही बनसकता है. जेकर कहोगे कि (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, येह तीनों, प्रतिभासांतःप्रविष्ट नही है; तब तो इनोंहीके साथ हेतु व्यभिचारी होगा.

पूर्वपक्षः—अनादि अविद्यावासनाके बलसें, हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिभासके बाहिरकीतरें निश्चय करते हैं; जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सभा, सभापतिजनकीतरें. तिस कारणसें अनुमान भी, होसकता है; और जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर होजावेगा, तब तो प्रतिभासांतःप्रविष्टही, प्रतिभास होगा; विवाद भी न रहेगा. प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, साध्य, साधन भाव भी नही रहेगा, तब तो अनुमान करनेका भी कुछ फल नही. आपही अनुभवमान परमब्रह्मके होते हुए, देशकाल अव्यवाच्छिन्न स्वरूपके हुएथके, निर्व्यभिचार सकल अवस्था व्यापकपणेवालेमें, अनुमानका कुछ प्रयोग भी नही चाहिये हैं.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या, प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, तव तो विद्याही होगई; तव तो असद्रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, आदिक भेद, कैसें दिखा सके? जेकर कहोगे, प्रतिभासके बाहिरभूत है, तव तो अविद्या प्रतिभासमान है, वा अप्रतिभासमान है? तिस अविद्याको प्रतिभासमानरूप होनेसें, अप्रतिभासमान तो नहीं; जेकर कहोगे, प्रतिभासमान है तो, तिसहीके साथ हेतु व्यभिचारी है. तथा प्रतिभासके वाहिरभूत होनेसें, तिसके प्रतिभासमान होनेसें जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवे कि, अविद्या जो है, सो न तो प्रतिभासमान है, न अप्रतिभासमान है, न प्रतिभासके वाहिर है, न प्रतिभासांतःप्रविष्ट है, न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यभिचारिणी है, न अव्यभिचारीणी है, सर्वथा विचारके योग्य नही, सकल विचारांतर अतिक्रांतस्वरूप है, रूपांतरके अभावसें, अविद्या, जो है, सो निरूपतालक्षण है. यह भी तुमारी वडी अज्ञानताका विस्तार है. तैसी निरूपतास्वभाववालीको यह अविद्या है, यह अप्रतिभासमान है, ऐसें कथन करनेको कौन समर्थ है? जेकर कहोगे, यह अविद्या प्रतिभासमान है, तो फिर, क्योंकर अविद्या, नीरूप सिद्ध होगी? क्योंकि, जो वस्तु जिस स्वरूपकरके प्रतिभासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है. तथा अविद्या जो है, सो विचारगोचर है, वा विचारगोचररहित है? जेकर कहोगे, विचारगोचर है, तव तो नीरूप नही; जेकर विचारगोचर नही, तव तो तिसके माननेवाले महामूर्ख सिद्ध होवेंगे. जव विद्या, अविद्या, दोनोंही सिद्ध है, तव तो, एक परमब्रह्म, अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहनेसें जो उपनिषद्में एकब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है, सो भी खंडन होगई. तथा "सर्वं वै खल्विदं ब्रह्मेत्यादि" वचनको परमात्मासें अर्थांतर होनेसें, द्वैतापत्ति होजावेगी. जेकर कहोगे, अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता है, तव तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा; तिसवास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्याके पुत्रकी शोभावत् है. इस कारणसें 'अद्वैतमत, युक्तिविकल है; इसवास्ते सुज्ञजनोंको अनुपादेय है.। इत्यद्वैतमतखंडनम् ॥

तथा (३५) और (३६) इन सूत्रोंमें, और भाष्यमें, जो पक्ष जैनीयोंके तर्फसें किया है, तैसें जैनी मानते नही है, इसवास्ते, अनभ्युपगमसेंही निरस्त हैं. ॥ ३३॥३४॥३५॥३६॥

इति वेदव्यासशंकरस्वामिकृत जैनमतखंडनस्य खंडनं अद्वैतमतखंडनं जैनमतमंडनं च समाप्तं तत्समाप्तौ च समाप्तेयं वेदव्यासशंकरस्वामिलीला ॥ ॐसत् ॥

अथ इससें आगे जैनमतका संक्षेपसें किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं. प्रथम तो आत्माका स्वरूप जानना चाहिये; यह जो आत्मा है, सोही जीव है, यह आत्मा स्वयंभू है, परंतु किसीका रचा हुआ नही, अनादि अनंत है, (५) वर्ण, (५) रस, (२) गंध, (८) स्पर्श, इनकरके रहित है, अरूपी है, आकाशवत्, असंख्यप्रदेशी है. प्रदेश उसको कहते हैं, जो, आत्माका अत्यंत सूक्ष्म अंश, जिसका फिर अन्य अंश न होवे, ऐसे असंख्य अंश कथंचित् भेदाभेदरूपकरके एकस्वरूपमें रहे हैं, तिसका नाम आत्मा है. सर्व आत्मप्रदेश ज्ञानस्वरूप है, परंतु आत्माके एकएक प्रदेशऊपर (१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) सुखदुःखरूपवेदनीय, (४) मोहनीय (५) आयु, (६) नाम, (७) गोत्र, (८) अंतराय, इन आठ कर्मकी अनंत अनंत कर्मवर्गणा आच्छादित है, जैसें दर्प्पणकेऊपर छाया आजाती है. जब ज्ञानावरणादि कर्मोंका क्षयोपशम होता है, तब इंद्रिय, और मनोद्वारा आत्माको शब्द, रूप, गंध, रस, स्पर्शका ज्ञान, और मानसिक ज्ञान उत्पन्न होता है. कर्मोंका क्षय, और क्षयोपशमका स्वरूप देखना होवे तो, कर्मग्रंथ, कर्मप्रकृति, और नंदिकी बृहट्टीकादिसें देखलेना. इस आत्माके एकएक प्रदेशमें अनंत अनंत शक्तियां है, कोई ज्ञानरूप, कोई दर्शनरूप, कोई अव्याबाधरूप, कोई चारित्ररूप, कोई स्थिररूप, कोई अटलअवगाहनारूप, कोई अनंतशक्तिसामर्थ्यरूप, परंतु कर्मके आवरणसें सर्व शक्तियां लुप्त होरही है; जब सर्व कर्म, आत्माके साधनद्वारा दूर होते हैं, तब यही आत्मा, परमात्मा, सर्वज्ञ, सिद्ध, बुद्ध, ईश, निरंजन, परमब्रह्मादिरूप होजाता है; तिसहीका नाम मुक्ति है. और जो कुछ

आत्मामें नर, नारक, तिर्यग्, अमर, सुभग, दुर्भग, सुस्वर, दुःस्वर, ऊंच, नीच, रंक, राजा, धनी, निर्धन, दुःखी, सुखी, इत्यादि जो जो अवस्था संसारमें जीवोंकी पीछे हुइ है, जो अब होरही है, और आगेको होवेगी, सो सर्व, मुख्यकरके कर्मोंके निमित्तसें है; वास्तवमें शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें तो आत्मामें लोक तीन, थापना, उच्छेद, पाप, पुण्य, क्रिया, करणीय, राग, द्वेष, बंध, मोक्ष, स्वामी, दास, पृथिवीरूप, अप्कायरूप, तेजस्कायरूप, वायुकायरूप, वनस्पतिकायरूप, द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय, कुलधर्मकी रीति, शिष्य, गुरु, हार, जीत, सेव्य, सेवक, इत्यादि उपाधी नही हैं; परंतु इस कथनको एकांत वेदांतियोंकीतरें माननेसें पुरुष अतिपरिणामी होके सत्स्वरूपसें भ्रष्ट होकर मिथ्यादृष्टि होजाता है, इसवास्ते पुरुषको चाहिये, अंतरंग वृत्तिमें तो शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतको मानें, और व्यवहारमें जो साधन, अष्टादश दूषणवर्जित परमेश्वरने कर्मोपाधि दूर करनेवास्ते कहे हैं, तिनमे प्रवर्त्ते. यही स्याद्वादमतका सार है.

तथा यह जो आत्मा है, सो शरीरमात्रव्यापक है; और गिणतीमें आत्मा भिन्न भिन्न अनंत है, परंतु स्वरूपमें सर्व चैतन्यस्वरूपादिककरके एकसदृश है; परंतु एकही आत्मा नही तथा सर्वव्यापी भी नही. जो आत्माको सर्वव्यापी, और एक मानते हैं, वे प्रमाणके अनभिज्ञ हैं. क्योंकि, ऐसे आत्माके माननेसें बंध मोक्ष क्रियादिकोंका अभाव सिद्ध होता है, जो, प्रथम लिखही आये हैं, और जैनमतवाले तो, आत्माका लक्षण ऐसें मानते हैं.

तदुक्तम् ॥

यः कर्त्ता कर्मभेदानां भोक्ता कर्मफलस्य च ॥
संसर्त्ता परिनिर्वाता सह्याऽऽत्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥

अर्थः—जो शुभाशुभ कर्मभेदोंका कर्त्ता है, जो करे कर्मका फल भोगनेवाला है, जो कर्माधिन होके नानागतिमें भ्रमण करनेवाला है, और जो साधनद्वारा सर्व उपाधियां दग्धकरके निर्वाण मोक्षको प्राप्त होता है, सोही

आत्मा है; अन्यलक्षणवाला नही. यदि इन पूर्वोक्त वातोंमेंसें एक बात भी, माने तो, सर्व शास्त्र, झूठे ठहरेंगे, और शास्त्रोंके कथन करनेवाले अनी सिद्ध होवेंगे. तथा पूर्वोक्त आत्मा पुण्यपापकेसाथ प्रवाहसें अनादिसंबंधवाला है, जेकर आत्माकेसाथ पुण्यपापका प्रवाहसें अनादिसंबंध न माने, तव तो, बहुत दूषण मतधारीयोंके मतमें आते हैं; वे येह हैं. जेकर आत्माको पहिला माने, और पुण्यपापकी उत्पत्ति आत्मामें पीछे माने, तव तो, पुण्यपापसें रहित निर्मल आत्मा प्रथम सिद्ध हुआ. (१) निर्मल आत्मा संसारमें उत्पन्न नही होसकता है. (२) विनाकरे पुण्यपापका फल भोगना असंभव है. (३) जेकर विनाकरे पुण्यपापका फल भोगनेमें आवे, तव तो, सिद्ध मुक्तरूप परमात्मा भी पुण्यपापका फल भोगेंगे. (४) करेका नाश, और विनाकरेका आगमन, यह दूषण होवेगा. (५) निर्मल आत्माके शरीर उत्पन्न नही होवेगा. (६) जेकर विनापुण्यपापके करे ईश्वर जीवको अच्छी बुरी शरीरादिककी सामग्री देवेगा, तव तो, ईश्वर अज्ञानी, अन्यायी, पूर्वापरविचाररहित, निर्दयी, पक्षपाती, इत्यादि दूषणोंसहित सिद्ध होवेगा; तव ईश्वर काहेका? (७) इत्यादि अनेक दूषणोंके होनेसें प्रथम पक्ष असिद्ध है. ॥ १ ॥

अथ दूसरा पक्षः—कर्म पहिले उत्पन्न हुए, और जीव पीछे वना, यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, प्रथम तो जीवका उपादानकारण कोई नही. (१) अरूपी वस्तुके वनानेमें कर्त्ताका व्यापार नही. (२) जीवने कर्म करे नही, इसवास्ते जीवको फल न होना चाहिये. (३) जीवकर्त्ताके विना कर्म उत्पन्न नही होसकते हैं (४) जेकर कर्म ईश्वरने करे हैं, तव तो, उनका फल भी ईश्वरको भोगना चाहिये (५) जब कर्मका फल भोगेगा, तव ईश्वर नही (६) जेकर ईश्वर कर्मकरके अन्य जीवोंको लगावेगा तव तो ईश्वर निर्दयी, अन्यायी, पक्षपाती, अज्ञानी, इत्यादि दूषणयुक्त सिद्ध होवेगा (७) तथाहि—जब बुरे कर्म जीवके विनाकरे जीवको लगाए, तव जो जो नरकगतिके दुःख, तिर्यंचगतिके दुःख, दुर्भग, दुःस्वर, अयशः, अकीर्त्ति, अनादेय, दुःख, रोग, सोग, धनहीन, भूख, प्यास, शीत, उष्णा-

दि नानाप्रकारके दुःख जीवने भोगे हैं, वे सर्व, ईश्वरकी निर्दयतासें हुए. (१) विना अपराधके दुःख देनेसें अन्यायी, (२) एकको सुखी, एकको दुःखी करनेसें पक्षपाती, (३) पीछे, पुण्यपापके दूर करनेका उपदेश देनेसें अज्ञानी, (४). इत्यादि अनेक दूषण होनेसें दूसरा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ २ ॥

अथ तीसरा पक्षः—जीव, और कर्म, एकही कालमें उत्पन्न हुए; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, जो वस्तु साथ उत्पन्न होती है, उनमें कर्त्ता कर्म नही होते हैं. (१) उस कर्मका फल जीवको न होना चाहिये. (२) जीव और कर्मोंका, उपादानकारण नही. (३) जेकर एक ईश्वरही, जीव और कर्मका उपादानकारण मानीये तो, असिद्ध है. क्योंकि, एक ईश्वर जड चेतनका उपादानकारण नहीं होसकता है. (४) ईश्वरको जगत् रचनेसें कुछ लाभ नही. (५) न रचनेसें कुछ हानि नही. (६) जब जीव, और जड, नही थे तब ईश्वर किसका था? (७) जीव कर्म स्वयमेव उत्पन्न नही होसकते हैं. (८) इसवास्ते तीसरा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ३ ॥

अथ चौथा पक्षः—जीवही सच्चिदानंदरूप अकेला है, पुण्यपाप नही; यह भी पक्ष मिथ्या है. क्योंकि, विनापुण्यपापके जगत्की विचित्रता कदापि सिद्ध नही होवेगी. इसवास्ते चौथा पक्ष भी मिथ्या है. ॥ ४ ॥

अथ पांचमा पक्षः—जीव, और पुण्य पाप, येह हैही नही; यह भी कहना मिथ्या है. क्योंकि, जब जीवही नहीं है, तब यह ज्ञान किसको हुआ? कि कुछ हैही नही! इसवास्ते पांचमा पक्ष भी असिद्ध है. ॥ ५ ॥

इन पूर्वोक्त पांचों पक्षोंके असिद्ध होनेसें, छट्ठा यही पक्ष सिद्ध हुआ कि, जीव और कर्मोंका संयोगसंबंध, प्रवाहसें अनादि है. तथा यह आत्मा कर्मोंके संबंधसें त्रसथावररूप होरहा है. थावरके पांच भेद हैं. पृथिवी (१), जल (२), अग्नि (३), पवन (४), और वनस्पति (५). इन पांचों थावरोंको एकेंद्रिय जीव कहते हैं. त्रसके चार भेद हैं. द्वींद्रिय (१), त्रींद्रिय (२), चतुरिंद्रिय (३), पंचेंद्रिय (४), तथा नारक,

तिर्यंच, मनुष्य, देवता; उनमें नरकवासीयोंके (१४) भेद, तिर्यंचगतिके (४८) भेद, मनुष्यगतिके (३०३) भेद, और देवगतिके (१९८) भेद हैं. येह सर्व मिलाके जीवोंके (५६३) भेद हैं.

तथा यह आत्मा कथंचित् रूपी, और कथंचित् अरूपी है. जबतक संसारी आत्मा कर्मकर संयुक्त है, तबतक कथंचित् रूपी है; और कर्मरहित शुद्ध आत्माकी विवक्षा करीये, तब कथंचित् अरूपी है. जेकर आत्माको एकांत रूपी मानीये, तब तो, आत्मा जडरूप सिद्ध होवेगा, और काटनेसें कट जावेगा; और जेकर आत्माको एकांत अरूपी मानीये, तब तो, आत्मा, क्रियारहित सिद्ध होवेगा; तब तो बंध मोक्ष दोनोंका अभाव होवेगा; जब बंध मोक्षका अभाव होवेगा, तब शास्त्र, और शास्त्रके वक्ता झूठे ठहरेंगे; और दीक्षा दानादि सर्व निष्फल होवेंगे. इसवास्ते आत्मा कथंचित् रूपी, कथंचित् अरूपी है. ।

तथा प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारसूत्रमें आत्माका स्वरूप ऐसा लिखा है. ।

" ॥ चैतन्यस्वरूपः परिणामी कर्त्ता भोक्ताद्भोक्ता स्वदेहपरिमाणः । प्रतिक्षेत्रं भिन्नः पौद्गलिकादृष्टवांश्चायमिति ॥ "

भावार्थः—साकार निराकार उपयोगस्वरूप है जिसका, सो चैतन्यस्वरूप (१). समयसमयप्रति, पर अपर पर्यायोंमें गमन करना, अर्थात् प्राप्त होना, सो परिणाम, सो नित्य है इसके, सो परिणामी (२). इन दोनों विशेषणोंकरके आत्माको जडस्वरूप कूटस्थ नित्य माननेवाले नैयायिकादिकोंका खंडन किया, सो देखना होवे तो, प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकारकी लघुवृत्ति स्याद्वादरत्नाकरावतारिकासें देख लेना. कर्त्ता, अदृष्टादिकका (३). साक्षात् उपचाररहित, सुखादिकका भोक्ता, सो साक्षाद्भोक्ता (४). इन दोनों विशेषणोंकरके कापिलमतका निराकरण किया, सो भी, पूर्वोक्त ग्रंथसें जानलेना. स्वदेहपरिमाण, अपने ग्रहण करे शरीरमात्रमें व्यापक (५). इस विशेषणकरके नैयायिकादि परिकल्पित आत्माका सर्वव्यापिपणा निषेध किया, जो पूर्वसंक्षेपसें लिख आये हैं. शरीरशरीरप्रति भिन्न

भिन्न (६). इस विशेषणकरके आत्माद्वैतवाद परास्त किया, सो भी संक्षेपसें पूर्वे लिख आये हैं. और अलग अलग अपने अपने करे कर्मोंके अधीन (७). इस विशेषणकरके नास्तिकमतका पराजय किया, सो पूर्वोक्त ग्रंथसें जान लेना. इन पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट यह आत्मा है. तथा यह आत्मा, संख्यामें अनंतानंत है. जितने तीनकालके समय, तथा आकाशके सर्व प्रदेश हैं, उतने हैं. इसवास्ते मुक्ति होनेसें संसार, सर्वथा कदापि खाली नही होवेगा. जैसें आकाशके मापनेसें कदापि अंत नही आवेगा. तथा येह अनंतानंत आत्मा, जिस लोकमें रहते हैं, सो लोक, असंख्यासंख्य कोडाकोडी योजनप्रमाण लंबा चौडा उंचा नीचा है.

तथा इन आत्माके तीन भेद हैं. बहिरात्मा (१), अंतरात्मा (२), और परमात्मा (३). तहां जो जीव, मिथ्यात्वके उदयसें तनु, धन, स्त्री, पुत्र, पुत्र्यादि परिवार, मंदिर (महलगृहादि), नगर, देश, शत्रु, मित्रादि इष्ट अनिष्ट वस्तुयोंमें रागद्वेषरूप बुद्धि धारण करता है, सो बहिरात्मा है; अर्थात् वो पुरुष भवाभिनंदी है. सांसारिक वस्तुयोंमेंही आनंद मानता है. तथा स्त्री, धन, यौवन, विषयभोगादि जो असार वस्तु है, उन सर्वको सार पदार्थ समझता है; तबतकही पंडिताईसें वैराग्यरस घोंटता है, और परमब्रह्मका स्वरूप बताता है, और संत महंत योगी ऋषि बना फिरता है, जबतक सुंदर उद्भटयौवनवंती स्त्री नही मिलती है, और धन नही मिलता है. जब येह दोनों मिले, तत्काल अद्वैतब्रह्मका द्वैतब्रह्म बन जाता है, और अन्य लोकोंको कहने लगजाता है कि, भइया! हम जो स्त्री भोग्ते हैं, इंद्रियोंके रसमें मगन रहते हैं, धन रखते हैं, डेरा बांधते हैं, इत्यादि काम करते हैं, वे सर्व मायाका प्रपंच है; हम तो सदाही अलिप्त हैं. ऐसे २ ब्रह्मज्ञानीयोंका मुंह काला करके, गर्दभपर चढाके देशनिकाला करदेना चाहिये!!! क्योंकि, ऐसे ऐसे भ्रष्टाचारी ब्रह्मज्ञानी, कितनेक मूर्ख लोकोंको ऐसे भ्रष्ट करते हैं कि, उनका चित्त कदापि सन्मार्गमें नही लगसकता है. और कितनीक कुलवंती स्त्रियोंको ऐसे बिगाडते हैं कि, वे कुलमर्यादाको भी लोप कर, इन भंगीजंगी फकीरोंकेसाथ दुराचार

करती हैं. और येह जो विषयके भिखारी, धनके लोभी, संतमहंत भंगी-जंगी ब्रह्मज्ञानी बने रहते हैं, वे सर्व, दुर्गतिके अधिकारी होते हैं. क्योंकि, इनके मनमें स्त्री, धन, कामभोग, सुंदरशय्या, आसन, स्नान, पानादि-पर अत्यंत राग रहता है; और दुःखके आये हीनदीन होके विलाप करते हैं; जैसें कंगाल बनीया धनवानोंको देखके झूरता है, तैसें येह पंडित संतमहंत भंगीजंगी लोकोंकी सुंदर स्त्रियोंको और धनादिसाम-ग्रीको देखकर झूरते हैं; मनमें चाहते हैं, येह हमको मिले तो ठीक है. इस बातमें इनोंका मनही साक्षीदाता है. इसवास्ते जो जीव बाह्यवस्तु-कोही तत्त्व समझता है, और तिसहीके भोगविलासमें आनंद मानता है, सो प्रथम गुणस्थानवाला जीव, बाह्यदृष्टि होनेसें बहिरात्मा कहा-जाता है. ॥ १ ॥

अथ जो पुरुष, तत्त्वश्रद्धानकरके संयुक्त होता है, और कर्मोंके बंधन होनेका हेतु अच्छितरें जानता है; जिसवास्ते यह जो जीव इस संसारा-वस्थामें है, सो जीव, मिथ्यात्व (१), अविरति (२), कषाय (३), प्रमाद (४), और योग (५), इन पांचों कर्मबंधके हेतुयोंकरके निरंतर कर्मोंको बांधता है; जब वे कर्मउदयमें आते हैं, तब यह जीव, स्वयमेवही भोगता है; अन्य जन कोई भी तिसमें साहाय्य नही करसकता है. इत्यादि जो जानता है, तथा किंचित् किसी द्रव्यादिवस्तुके नष्ट हुए मनमें ऐसें विचारता है कि, इस परवस्तुके साथ मेरा संबंध नष्ट होगया है, परंतु मेरा द्रव्य तो, आत्मप्रदेशमें अविष्वग्भावसंबंधकरके समवेत, ज्ञानादिलक्षण है, सो तो कहीं भी नही जासकता है. तथा किंचित् द्रव्यादि वस्तुके लाभ होनेसें ऐसें मानता है कि, मेरा इस पौद्गलिकवस्तुकेसाथ संबंध हुआ है, इससें मुझको इसपर क्या प्रमोद करना चाहिये! और वेदनीय कर्मके उदयसें जब कष्ट प्राप्त होवे, तब समभाव धारण करे, आत्माको परभावोंसें भिन्न मानके उनके त्यागनेका उपाय करे, चित्तमें परमात्माके स्वरूपका ध्यान करे, आवश्यकादि धर्मकृत्योंमें विशेष उद्यम करे, सो चौथे गुणस्थानसें लेके बारमे गुणस्थानपर्यंतवर्त्ती जीव, अंतर्दृष्टिमान् होनेसें अंतरात्मा कहे जाते हैं. ॥ २ ॥

अथ पुनः, जे शुद्धात्मस्वभावके प्रतिबंधक कर्मशत्रुयोंको हणके निरुपमोत्तम केवलज्ञानादि स्वसंपद् पाकरके करतलामलकवत् समस्त वस्तुके समूहको विशेष जानते, और देखते हैं, और परमानंदसंदोह-संपन्न होते हैं, वे तेरमे चौदमे गुणस्थानवर्ती जीव, और सिद्धात्मा, शुद्ध स्वरूपमें रहनेसें परमात्मा कहे जाते हैं. ॥ ३ ॥

अथ बहिरात्मपणा छोडके अंतरात्माके होनेवास्ते तत्त्वज्ञान करना चाहिये; वे तत्त्व जीवाजीवादि नवतत्त्वोंके हैं. अथवा देव, गुरु, और धर्म येह तीन तत्त्व हैं. इनका स्वरूप जैनतत्त्वादर्शमें लिखा है, इसवास्ते यहां नही लिखते हैं. * अथवा धर्मास्तिकाय (१), अधर्मास्तिकाय (२), आकाशास्तिकाय (३), काल (४), पुद्गलास्तिकाय (५), और जीवास्तिकाय (६), येह षट् द्रव्यतत्त्व है. इन छहोंही द्रव्योंको जैनमतमें द्रव्य कहते हैं. जेजे अवस्था द्रव्यकी पीछे होगइ है, जेजे वर्त्तमानमें होरही है, और जेजे आगेकों होवेगी, उनहीको जैनमतमें द्रव्यत्वशक्ति कहते हैं. यह द्रव्यत्वशक्ति, द्रव्यसें कथंचित् भेदाभेदरूप है. जैसें सुवर्णमें कटक कुंडलादि हैं. इस द्रव्यत्वशक्तिहीको, लोकोंने ईश्वर, जगत्स्रष्टा, कल्पन किया है; इसवास्ते भव्यजीवोंके बोधार्थ, किंचिन्मात्र, द्रव्यगुण-पर्यायका स्वरूप, लिखते हैं. इस कथनमें जो आवेगी, सोही द्रव्यत्वशक्ति जान लेनी.

तहां प्रथम द्रव्यका स्वरूप लिखते हैं.।

"॥ सद्द्रव्यलक्षणम् ॥" 'सत्' जो है, सोही द्रव्यका लक्षण है. 'सत्' किसको कहते हैं? "॥ सीदति स्वकीयान् गुणपर्यायान् व्याप्नोतीति सत् ॥" अपने गुणपर्यायको, जो व्याप्तहोवे, सो 'सत्' है. अथवा "॥ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् ॥" जो उत्पति, विनाश, और स्थिरता, इन तीनोंकरी संयुक्त होवे, सो 'सत्' है. अथवा "॥ अर्थक्रियाकारि सत् ॥" जो अर्थक्रिया करनेवाला है, सो 'सत्' है.

* देखो जैनतत्त्वादर्शके १।३।५। मे परिच्छेदमें.

तदुक्तम् ॥

यदेवार्थक्रियाकारि तदेव परमार्थसत् ॥
यच्च नार्थक्रियाकारि तदेव परतोप्यसत् ॥ १ ॥

भावार्थः-जो अर्थक्रियाकारि है, सोही, परमार्थसें सत् हैं; और जो अर्थक्रियाकारि नही है, सो परतः भी असत् है. इति. ॥

अथवा अन्यप्रकारसें द्रव्यका लक्षण कहते हैं. ।

"॥ निज निज प्रदेशसमूहैरखंडवृत्त्या । स्वभावविभावपर्यायान् द्रवति द्रोष्यति अदुद्रुवादितिद्रव्यम् ॥ "

भावार्थः-अपने अपने प्रदेशसमूहोंकरके अखंडवृत्तिसें स्वभावविभावपर्यायोंको प्राप्त होता है, होगा, और पीछे हुआ, सो द्रव्य है.

अथवा "॥ गुणपर्यायवद् द्रव्यम् ॥" गुणपर्यायवाला द्रव्य होता है.

यदुक्तं विशेषावश्यकवृत्तौ ॥

दवए दुयए दोरवयवो विगारो गुणाण संदावो ॥
दव्वं भव्वं भावस्स भूयभावं च जं जोग्गं ॥ १ ॥

व्याख्याः-तिनतिन पर्यायोंको प्राप्त होता है, वा छोडता है; अथवा अपने पर्यायोंकरकेही प्राप्त होवे, वा छूटे, अथवा द्रुसत्ता तिसकाही अवयव, वा विकार, सो द्रव्य; अवांतरसत्तारूपद्रव्य, महासत्ताके अवयव, वा विकारही होते हैं. अथवा रूपरसादि गुण तिनोंका संद्रावसमूह, घटादिरूप, सो द्रव्य. तथा भाविपर्यायके योग्य जो होनेवाला, सो भी, द्रव्य; राज्यपर्याययोग्य कुमारवत्. तथा पश्चात्कृतभावपर्याय जिसका, सो भी, द्रव्य; अनुभूतघृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. च शब्दसें भूतभाविष्यत्पर्याय द्रव्य, भूतभाविष्यत् घृताधारत्वपर्यायरहित घृतघटवत्. भूतभावके, भाविभावके, और भूतभविष्यत् भावोंके, इस समय न हुए भी, उन भावोंके जो योग्य है, सोही, द्रव्य है, अन्य नही. अन्यथा तो, सर्वपर्यायोंको भी, अनुभूतत्व होनेसें, और अनुभविष्यमाणत्व होनेसें, पुद्गलादि सर्वको भी द्रव्यत्वका प्रसंग होवेगा. इति गाथार्थः । इतिद्रव्याधिकारः ॥

अथ प्रसंगप्राप्त स्वभावविभावपर्याय, कथन करते हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्यके जे विकार हैं, वे स्वभावपर्याय हैं; उससें विपरीत, अर्थात् स्वभावसें अन्यथा होनेवाले, विभाव हैं. तहां अगुरुलघुद्रव्य स्थिर है, यथा सिद्धिक्षेत्रं, जो कहा है समवायांगवृत्तिमें. गुरुलघुद्रव्य सो है, जो तिर्यग्गामि, तिरछा चलनेवाला है, यथा वायु आदि. अगुरुलघु सो है, जो स्थिर है; यथा सिद्धिक्षेत्र, तथा घंटाकारव्यवस्थित ज्योतिष्कविमानादि. गुणके जे विकार हैं, वे पर्याय हैं; और वे बारां प्रकारके हैं. अनंतभागवृद्धि (१), असंख्यातभागवृद्धि (२), संख्यातभागवृद्धि (३), अनंतगुणवृद्धि (४), असंख्यातगुणवृद्धि (५), संख्यातगुणवृद्धि (६), अनंतभागहानि (७), असंख्यातभागहानि (८), संख्यातभागहानि (९), अनंतगुणहानि (१०), असंख्यातगुणहानि (११), संख्यातगुणहानि (१२), इति.। नरनारकादि चतुर्गतिरूप, अथवा चौराशी लक्ष (८४०००००) योनिरूप, विभावपर्याय है. इति. ॥

अथ गुण लिखते हैं. अस्तित्व (१), वस्तुत्व (२), द्रव्यत्व (३), प्रमेयत्व (४), अगुरुलघुत्व (५), प्रदेशत्व (६), चेतनत्व (७), अचेतनत्व (८), मूर्त्तत्व (९), अमूर्त्तत्व (१०). येह द्रव्योंके सामान्य गुण हैं. प्रत्येक द्रव्यमें आठ आठ गुण, पाते हैं. अब इनका अर्थ लिखते हैं. अस्तित्व, सद्रूपपणा, नित्यत्वादिउत्तरसामान्योंका, और विशेषस्वभावोंका आधारभूत. ।१। वस्तुत्व, सामान्यविशेषात्मकपणा. ।२। द्रव्यत्व, द्रव्याधिकारोक्त 'सत्' और सत् द्रव्यका लक्षण है. ।३। प्रमाणकरके, जो मापनेयोग्य है, सो प्रमेय है. ।४। अगुरुलघुत्व, जो सूक्ष्म, और वचनके अगोचर है; और प्रतिसमय षट्षट्गुणी हानि, और वृद्धि, जो द्रव्यमें होरही है, जो केवल आगमप्रमाणसेंही ग्राह्य है, सो अगुरुलघुगुण है.।

यतः ॥

सूक्ष्मं जिनोदितं तत्त्वं हेतुभिर्नैव हन्यते ॥
आज्ञासिद्धं तु तद् ग्राह्यं नान्यथावादिनो जिनाः ॥ १ ॥

भावार्थः—सूक्ष्म, जिनोक्त तत्त्व, जो हेतुयोंसें खंडित नही होता है,

सो तो जिनाज्ञासेंही माननेयोग्य है. क्योंकि, जे रागद्वेषसें रहित हैं, वे जिन, भगवान्, सर्वज्ञ, अन्यथा नही कहते हैं. । ५ । प्रदेशत्व, क्षेत्रपणा, जो अविभागीपरमाणुपुद्गल जितना है. । ६ । चेतनत्व, जिससें वस्तुका अनुभव होता है. ।

यतः ॥

चैतन्यमनुभूतिः स्यात् सत्क्रियारूपमेव च ॥
क्रिया मनोवचःकायेष्वन्विता वर्त्तते ध्रुवम् ॥ १ ॥

भावार्थः—चैतन्य जो है, सो अनुभूति है, और सत्क्रियारूप है, और क्रिया निश्चयकरके मनवचनकायामें अन्वित होके वर्त्ते है. । ७ । अचेतनत्व, ज्ञानरहितवस्तु. । ८ । मूर्त्तत्व, रूपरसगंधस्पर्शवाला. । ९ । अमूर्त्तत्व, रूपादिरहित. । १० ।

अथ द्रव्योंके विशेष गुण लिखते हैं. ज्ञान (१), दर्शन (२), सुख (३), वीर्य (४), स्पर्श (५), रस (६), गंध (७), वर्ण (८), गतिहेतुत्व (९), स्थितिहेतुत्व (१०), अवगाहनहेतुत्व (११), वर्त्तनाहेतुत्व (१२), चेतनत्व (१३), अचेतनत्व (१४), मूर्त्तत्व (१५), अमूर्त्तत्व (१६). येह सोलां विशेष गुण हैं. इनमेंसें जीवके १ । २ । ३ । ४ । १३ । १६ । येह ६ गुण है. पुद्गलके ५ । ६ । ७ । ८ । १४ । १५ । येह ६ गुण है. धर्मास्तिकायके ९ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. अधर्मास्थिकायके १० । १४ । १६ । येह ३ गुण है. आकाशास्तिकायके ११ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. कालके १२ । १४ । १६ । येह ३ गुण है. अंतके जे चार गुण है, वे स्वजातिकी अपेक्षा तो सामान्य गुण है, और विजातिकी अपेक्षा विशेष गुण हैं. इनका अर्थ प्रकट है, इसवास्ते नही लिखा है.

अथ प्रसंगसें जीवादि द्रव्योंके स्वभाव लिखते हैं. अस्तिस्वभाव (१), नास्तिस्वभाव (२), नित्यस्वभाव (३), अनित्यस्वभाव (४), एकस्वभाव (५), अनेकस्वभाव (६), भेदस्वभाव (७), अभेदस्वभाव (८), भव्यस्वभाव (९), अभव्यस्वभाव (१०), परमस्वभाव (११), यह इग्यारें

(११) द्रव्योंके सामान्य स्वभाव है. तथा चेतनस्वभाव (१), अचेतनस्वभाव (२), मूर्त्तस्वभाव (३), अमूर्त्तस्वभाव (४), एकप्रदेशस्वभाव (५), अनेकप्रदेशस्वभाव (६), विभावस्वभाव (७), शुद्धस्वभाव (८), अशुद्ध स्वभाव (९), उपचरितस्वभाव (१०), येह दश द्रव्योंके विशेषस्वभाव है. एतावता दोनों मिलाके एकवीस (२१) स्वभाव हुए. तिनमें जीवपुद्गलके एकवीस (२१) स्वभाव; धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, इन तीनोंके चेतनस्वभाव १, मूर्त्तस्वभाव २, विभावस्वभाव ३, अशुद्धस्वभाव ४, उपचरितस्वभाव [प्रत्यंतरमें–एकप्रदेशस्वभाव–द्रव्यगुणपर्यायके रासमें शुद्धस्वभाव] ५, इन पांचोंको वर्जके सोला स्वभाव. कालके पूर्वोक्त पांच, और बहुप्रदेशस्वभाव, एवं छ (६) स्वभावको वर्जके पंचदश (१५), स्वभाव जानने.

तदुक्तम् ॥

एकविंशति भावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः ॥
धर्मादीनां षोडश स्युः काले पञ्चदश स्मृताः ॥ १ ॥

इति स्वभाव भी, गुणपर्यायके अंतर्भूतही जानने; पृथक् नहीं. परंतु इतना विशेष है कि, 'गुण' तो गुणीमेंही रहता है, और 'स्वभाव' गुण गुणी दोनोंमें रहता है. क्योंकि, गुण गुणी अपनी अपनी परिणतिको परिणमता है; और जो परिणति है, सो ही, स्वभाव है.

अथ स्वभावोंके अर्थ लिखते हैं. अस्तिस्वभाव, स्वभावलाभसें कदापि दूर न होना. । १ । नास्तिस्वभाव, पररूपकरके न होना. । २ । अपने अपने क्रमभावी नानाप्रकारके पर्याय, श्यामत्वरक्तत्वादिक, वे, भेदक हैं; उनके हुए भी, यह द्रव्य, वोही है, जो पूर्व अनुभव किया था; ऐसा ज्ञान जिससें होता है, सो नित्यस्वभाव. । ३ । द्रव्यका जो पर्याय परिणामीपणा, सो अनित्यस्वभाव. अर्थात् जिस रूपसें उत्पादव्यय है, तिस रूपसें अनित्यस्वभाव है. । ४ । सहभावीस्वभावोंका जो एकरूपकरके आधार होवे, सो एकस्वभाव. जैसें रूपरसगंधस्पर्शका एक आधार, घट है, तैसें नानाप्रकारके धर्माधारत्वकरके एकस्वभावता. । ५ ।

एकमें जो अनेक स्वभाव उपलंभ होवे, सो अनेकस्वभाव. अर्थात् मृदादिद्रव्यका स्थास कोस कुशूलादिक अनेक द्रव्य प्रवाह है, तिससें अनेकस्वभाव कहीये; पर्यायपणे आदिष्ट द्रव्य करिये, तब आकाशादिक द्रव्यमें भी, घटाकाशादिक भेदकरके यह स्वभाव दुर्लभ नहीं है. ।६। गुणगुणी, पर्यायपर्यायी, आदिका संज्ञासंख्यालक्षणादिक भेदकरके सातमा भेदस्वभाव जानना. ।७। संज्ञा संख्या लक्षण प्रयोजन गुणगुणीआदिका एक स्वभाव होनेसें, अभेदवृत्तिद्वारा अभेदस्वभाव. । ८। अनेक कार्यकारणशक्तिक जो अवस्थित द्रव्य है, तिसको क्रमिकाविशेषता आविर्भावकरके अतिव्यंग्य होना, अर्थात् आगामिकालमें परस्वरूपाकार होना, सो भव्यस्वभाव. । ९। तीनों कालमें परद्रव्यमें मिले हुए भी, परस्वरूपाकार न होना, सो अभव्यस्वभाव. ॥

यदुक्तम् ॥

अन्नोन्नं पविसंता देंता ओगासमण्णमण्णस्स ॥

मेलंताविय णिच्चं सगसगभावं णविजहंति ॥१॥ इति. ॥१०॥

स्वलक्षणीभूत परिणामिक भावप्रधानताकरके परम भावस्वभाव कहिये; तात्पर्य यह है कि, जिस जिस द्रव्यमें जो जो परिणामिकभाव प्रधान है, सो सो, परमभावस्वभाव है. यथा ज्ञानस्वरूप आत्मा. । ११। यह सामान्यस्वभावोंका संक्षेपार्थ है. विशेषार्थ देखना होवे तो, बृहत्नयचक्रसें देखलेना.

जिससें चेतनपणाका व्यवहार होवे, सो चेतनस्वभाव. । १ । चेतनस्वभावसें उलटा, अचेतनस्वभाव. । २ । रूपरसगंधस्पर्शादिक जिससें धारण करिये, सो मूर्त्तस्वभाव. । ३ । मूर्त्तस्वभावसें उलटा, अमूर्त्तस्वभाव. । ४ । एकत्वपरिणति अखंडाकारसन्निवेशका जो भाजनपणा, सो एकप्रदेशस्वभाव. । ५ । जो भिन्नप्रदेशयोगकरके तथा भिन्नप्रदेशकल्पनाकरके अनेकप्रदेशव्यवहारयोग्यपणा होवे, सो अनेकप्रदेशस्वभाव. । ६ । स्वभावसें अन्यथा जो होवे, सो विभावस्वभाव. । ७ । जो केवल शुद्ध होवे, अर्थात् उपाधिभावरहित अंतर्भावपरिणमन, सो शुद्धस्वभाव. । ८ ।

इससें विपरीत, अर्थात् उपाधिजनित बहिर्भावपरिणमन योग्यता, सो अशुद्धस्वभाव. । ९ । नियमितस्वभावका जो अन्यत्र अपरस्थानमें उपचार करना सो, उपचरितस्वभाव. । १० । उपचरितस्वभाव दो प्रकारका है; एक कर्मजन्य, और दूसरा स्वाभाविक. तहां पुद्गलसंबंधसें जीवको मूर्त्तपणा, और अचेतनपणा, जो कहते हैं, सो 'गौर्वाहीकः' इसतरें उपचार है, सो कर्मजनित है; इसवास्ते कर्म, सोही उपचरितस्वभाव है. और दूसरा जैसें सिद्धात्माको परज्ञातृत्व, परदर्शकत्व, मानना.

अब जो कोई वादी इन पूर्वोक्त स्वभावोंको न माने, तिसके मतमें जो दूषण आवे है सो, लिखते हैं. जेकर एकांत अस्तिस्वभावही माने, तब तो, नास्तिस्वभाव, न मानेगा, तब तो, सर्वपदार्थकी भिन्नभिन्न नियत स्वरूपावस्था नही होवेगी; तब संकरादि दूषण होवेंगे; जगत् एकरूप होजायगा. और सो तो, सर्वशास्त्रव्यवहारविरुद्ध है. इसवास्ते परपदार्थकी अपेक्षा, नास्तिस्वभाव भी, माननाही पडेगा; । १ ।

जेकर एकांत नास्तिस्वभाव माने, तब सर्व जगत् शून्य सिद्ध होवेगा. । २ ।

जेकर एकांत नित्यही मानेगा, तब नित्यको एकरूप होनेसें अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाकारित्वके अभावसें द्रव्यकाही अभाव होवेगा. । ३ ।

जेकर एकांत अनित्य मानेगा, तब द्रव्य निरन्वय नाश होवेगा; तब तो, पूर्वोक्तही दूषण होगा. । ४ ।

जेकर एकांत एक स्वभाव माने, तब विशेषका अभाव होवेगा; जब विशेषका अभाव होवेगा, तब अनेकस्वभावविना मूलसत्तारूप सामान्यका भी अभाव होवेगा.

तदुक्तं ॥

निर्विशेषं सामान्यं भवेत् खरविषाणवत् ॥
सामान्यरहितत्वाच्च विशेषस्तद्वदेवहि ॥ १ ॥

भाषार्थः—विशेषविना सामान्य गर्दभके सींगसमान असद्रूप है, और सामान्यविना विशेष भी असद्रूप है, खरशृंगवत्. ॥ ५ ॥ जेकर एकांत

अनेकरूप माने, तब द्रव्यका अभाव होवेगा, निराधार होनेसें; और आधाराधेयके अभावसें वस्तुकाही अभाव होवेगा. । ६ ।

जेकर एकांत भेदही माने, तब विशेषोंके निराधार होनेसें, निःकेवल गुणपर्यायका बोध न होना चाहिये. क्योंकि, आधाराधेयके अभेदविना दूसरा संबंध, घटही नही सकता है; एसे हुए अर्थक्रियाकारित्वका अभाव होवेगा, और तिसके अभावसें द्रव्यका भी अभाव होवेगा. । ७ ।

जेकर एकांत अभेदपक्ष माने, तब सर्व पदार्थ एकरूप होजावेंगे; तिसकरके 'इदं द्रव्यं' यह द्रव्य 'अयं गुणः' यह गुण 'अयं पर्यायः' यह पर्याय, इत्यादि व्यवहारका विरोध होवेगा; और अर्थक्रियाका अभाव होवेगा, अर्थक्रियाके अभावसें द्रव्यकाभी अभाव होवेगा. । ८ ।

जेकर एकांत भव्यस्वभावही माने, तब सर्वद्रव्य परिणामी होके द्रव्यांतरके रूपको प्राप्त होवेंगे, तब संकरादि दूषण होवेंगे. संकरादि दूषण येह हैं. संकर (१), व्यतिकर (२), विरोध (३), वैयधिकरण (४), अनवस्था (५), संशय (६), अप्रतिपत्ति (७), अभाव (८).

इनका अर्थः—सर्ववस्तुकी एकवस्तु होजावे, तब संकरदूषण होवें. १. जिस वतुस्की किसीप्रकारसें भी स्थिति न होवे, सो व्यतिकरदूषण. २. जडका स्वभाव चेतन होवे, और चेतनका स्वभाव जड होवे, सो विरोधदूषण. ३. जो अनेकवस्तुकी एकके विषे विषमताकरके स्थिति होवे, सो वैयधिकरणदूषण ४. एकसें दूसरा उत्पन्न होगा, दूसरेंसें तीसरा, तीसरेसें चौथा उत्पन्न होगा, इसतरें जडसें चेतन, चेतनसें जड, सो अनवस्थादूषण. ५. इसको चेतन कहें कि, जड कहें ? ऐसा जो संदेह, सो संशयदूषण. ६. जिसका किसही कालमें निश्चय न होवे कि, यह जड है कि चेतन है सो अप्रतिपत्तिदूषण. ७. सर्वथा वस्तुका नाशही होवे, सो अभावदूषण. ८. इसवास्ते इन पूर्वोक्त दूषणोंके दूर करनेवास्ते, कथंचित् अभव्यपक्ष भी माननाही योग्य है. । ९ ।

जेकर एकांत अभव्यस्वभावही माने, तब सर्वथा शून्यताकाही प्रसंग होवेगा. । १० ।

यदि परमभावस्वभाव न माने तो, द्रव्यमें प्रसिद्धरूप कैसें दिया जाय? क्योंकि, अनंतधर्मात्मक वस्तुको एकधर्मपुरुषकारकरके बुलाना कथन करना, सोही परमभावस्वभावका लक्षण है. । ११ ।

जेकर एकांतचैतन्यस्वभाव माने तो, सर्व वस्तु चैतन्यरूप होजावेगी; तब ध्यान, ध्येय, ज्ञान, ज्ञेय, गुरु, शिष्यादिकका अभाव होवेगा. क्योंकि, जब जीवको सर्वथा चेतनस्वभावही कहें, अचेतनस्वभाव न कहें तो, अचेतनकर्मका जो कर्मद्रव्योपश्लेष तिसकरके जनित चेतनके विकार विना, जीवको शुद्ध सिद्धसदृशपणा होगा; तब तो, ध्यान ध्येय गुरु शिष्य इनकी क्या जरूर है? ऐसें तो सर्वशास्त्रव्यवहार निष्फल होजायगा. शुद्धको अविद्यानिवृत्तिपणे, क्या उपकार होवे? इसवास्ते 'अलवणा यवागूः' इस वचनवत्, अचेतन आत्मा, ऐसा भी कथंचित् कहना योग्य है. । १२ ।

जेकर एकांत अचेतनस्वभाव माने, तब सकलचैतन्यका उच्छेद होवेगा. । १३ ।

जेकर एकांत मूर्त्त माने, तब आत्माकी मुक्तिकेसाथ व्याप्ति न होवेगी. । १४ ।

जेकर एकांत अमूर्त्त माने, तब आत्मा संसारी कदापि न होवेगा. । १५ ।

जेकर एकांत एकप्रदेशस्वभाव माने, तब अखंड परिपूर्ण आत्माको अनेककार्यकारित्वकी हानि होवेगी. जैसें घटादिक अवयवी, देशसें सकंप, और देशसें निष्कंप देखते हैं; सो द्रव्यको अनेकप्रदेशी न माननेसें कैसें सिद्ध होवेगा? यदि अवयव कंपते हुए भी, अवयवी निष्कंप है, ऐसे कहो तो 'चलती' यह प्रयोग कैसें सिद्ध होगा? प्रदेशवृत्तिकंपका जैसें परंपरासंबंध है, तैसें देशवृत्तिकंपाभावका भी परंपरासंबंध है, तिसवास्ते देशसें चलता है, और देशसें नही चलता है, इस अस्खलित व्यवहारमें अनेक प्रदेश मानना; तथा अनेक प्रदेश स्वभाव न मानीये तो, आकाशादि द्रव्यमें परमाणुसंयोग कैसें घट सके? क्योंकि, एकवृत्ति तो देशसें है, जैसें कुंडल इंद्रको, यहां

कुंडल तो कानमें प्रसृत है, और कान इंद्रका एक देश है, तो भी, इंद्र कहके बुलाया जाता है. और दूसरी वृत्ति सर्वसें है, जैसें सामान्य वस्त्र-द्वयकी, अर्थात् जामा अंगरखा सर्वअंगमें पहिरा है, सो देवदत्त, यह सर्वसें वृत्ति जाननी. तिहां प्रत्येकमें दूषण, सम्मति वृत्तिमें कहे हैं. यथा—परमाणुकी आकाशादिकके साथ देशसें वृत्ति माने तो, आकाशादिकके प्रदेश नही इच्छते भी मानने पडेंगे; और सर्वसें वृत्ति माने तो, परमाणु, आकाशादि प्रमाण होजायगा; और उभयाभाव माने तो, परमाणुको अवृत्तिपणा होजायगा; इसवास्ते द्रव्यको कथंचित् अनेक प्रदेशस्वभाव भी मानना ठीक है. । १६ ।

जेकर एकांत अनेक प्रदेशस्वभाव माने तो, अर्थ क्रियाकारित्वाभाव, और स्वस्वभावशून्यताका प्रसंग होवेगा. । १७ ।

जेकर एकांत विभावस्वभाव माने, तो मुक्तिका अभाव होजावेगा. । १८ ।

जेकर एकांत शुद्धस्वभाव माने, तब तो, आत्माको कर्मलेप न लगेगा और संसारकी विचित्रताका अभाव होवेगा. । १९ ।

जेकर एकांत अशुद्धस्वभाव माने तो, आत्मा कदापि शुद्ध न होवेगा. । २० ।

जेकर एकांत उपचरितस्वभाव माने, तब आत्मा कदापि ज्ञाता नही होवेगा. जेकर एकांतअनुपचरित माने तो, स्वपरव्यवसायीज्ञानवंत आत्मा नही होसकेगा. क्योंकि, ज्ञानको स्वविषयत्व तो अनुपचरित है, परंतु परविषयत्व परापेक्षासें प्रतीयमानपणे, तथा परनिरूपित संबंधपणे उपचरित है. । २१ ।

इसवास्ते स्याद्वादमतकरके सर्वही स्वभाव, कथंचित् द्रव्यमें मानने चाहियें.

उक्तंच ॥

नानास्वभावसंयुक्तं द्रव्यं ज्ञात्वा प्रमाणतः ॥
तच्च सापेक्षसिद्ध्यर्थं स्यान्नयैर्मिश्रितं कुरु ॥ १ ॥

भाषार्थः—नानास्वभावसंयुक्त द्रव्यको प्रमाणसें जानके, तिस द्रव्यको सापेक्ष स्वद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा अस्तिरूप, परद्रव्यादिचतुष्टयापेक्षा नास्तिरूप, इत्यादि सिद्धिकेवास्ते 'स्यात्' शब्द और 'नय' इनसें मिश्रित करो. ॥

इसवास्ते नयके मतद्वारा स्वभावोंका अधिगम संक्षेपमात्रसें द्रव्योंमें दिखाते हैं.

द्रव्यका जो अस्तिस्वभाव है, सो, स्वद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, जानना. । १ ।

परद्रव्यादिचतुष्टयके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिक नयके मतसें, नास्तिस्वभाव है. । २ ।

उक्तंच ॥

"॥ सर्वमस्तिस्वरूपेण पररूपेण नास्ति च ॥"

उत्पादव्ययकी गौणताकरके सत्तामात्रके ग्रहणसें, द्रव्यार्थिकनयके मतसें, नित्यस्वभाव है. । ३ ।

उत्पादव्ययकी मुख्यतासें, और सत्ताकी गौणतासें, ऐसें पर्यायार्थिक नयके मतसें अनित्यस्वभाव है. । ४ ।

भेदकल्पनाकी निरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, एक स्वभाव है. । ५ ।

अन्वयद्रव्यार्थिकसें, अनेकस्वभाव है. कालान्वयमें सत्ताग्राहक, और देशान्वयमें अन्वयग्राहक नय, प्रवर्त्तता है. । ६ ।

सद्भुतव्यवहारनयसें, गुणगुणी, पर्यायपर्यायीका भेदस्वभाव है. । ७ ।

गुणगुण्यादिभेदनिरपेक्षतासें, शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अभेदस्वभाव है. । ८ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें, भव्य, अभव्य, स्वभाव जानने, भव्यता, सो स्वभावनिरूपित है; और अभव्यता, सो उत्पन्नस्वभावकी तथा परभावकी साधारण है; इसवास्ते यहां अस्तिनास्तिस्वभावकीतरें स्वपरद्रव्यादिग्राहकनयोंकी प्रवृत्ति, नही होसकती है. । ९ । १० ।

परिणामिक प्राधान्यतासें, परमस्वभाव, द्रव्योंमें है. परिणामका स्वरूप ऐसा है.

सर्वथा न गमो यस्मात् सर्वथा न च आगमः ॥
परिणामः प्रमासिद्ध इष्टश्च खलु पंडितैः ॥ १ ॥

भाषार्थः—सर्वथा जिससें जाना न होवे, और सर्वथा आगमन, न होवे, सो परिणाम, प्रमाणसिद्ध है; ऐसा पंडितोंको इष्ट है. जैसें सुवर्णके कटक कुंडल कंकणादि. । ११ ।

शुद्धाशुद्धपरमभावग्राहक नयके मतस, चेतनस्वभाव जीवको; और असद्भूतव्यवहारनयसें, ज्ञानावरणादि कर्म, तथा नोकर्म मनवचनकायापणा, इनको चेतन कहिये. चेतनसंयोगकृतपर्याय वहां है, इसवास्ते 'इदं शरीरमावश्यकं जानाति' यह शरीर आवश्यक जानता है, इत्यादि व्यवहार इसीवास्ते होता है. घृतं दहतीतिवत्. । १२ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको, अचेतनस्वभाव; यथा घृत अनुष्णस्वभाव. और असद्भूतव्यवहारनयसें जीवको भी, अचेतनस्वभाव. इसीवास्ते 'जडोयमचेतनोयम्' इत्यादि व्यवहार है. । १३ ।

परमभावग्राहकनयके मतसें कर्म नोकर्मको मूर्त्तस्वभाव असद्भूतव्यवहारनयसें जीवको भी मूर्त्तस्वभाव; इसीवास्ते 'अयमात्मा दृश्यते' यह आत्मा दिखता है, 'अमुमात्मानं पश्यामि' इस आत्माको मैं देखता हूं, इत्यादि व्यवहार है. तथा 'रक्तौ च पद्मप्रभवासुपूज्यौ' इत्यादि वचन भी इसी स्वभावसें है. । १४ ।

परमभावग्राहकनयसें, पुद्गलवर्जके अन्योंको अमूर्त्त स्वभाव; और पुद्गलको उपचारसें भी, अमूर्त्तस्वभाव नही, तो एकवीसमा भाव नही होगा; तब तो, 'एकविंशतिभावाः स्युर्जीवपुद्गलयोर्मताः' इस वचनके व्याघातसें अपसिद्धांत होवेगा, तिसको दूर करनेवास्ते, असद्भूतव्यवहारनयसें परोक्ष, पुद्गलपरमाणु है, तिसको अमूर्त्त कहिये. व्यवहारिकप्रत्यक्षके अगोचरपणा, सोही, परमाणुका अमूर्त्तपणा, अंगिकार करिये हैं.

तदुक्तम् ॥

"॥ व्यावहारिकप्रत्यक्षागोचरत्वममूर्त्तत्वं परमाणोर्भाक्तं स्वीक्रियतइत्यर्थः ॥" ।१५।

कालाणु, और पुद्गलाणुको परमभावग्राहकनयके मतसें, एकप्रदेशस्वभाव; और भेदकल्पनानिरपेक्षतासें शुद्धद्रव्यार्थिकनयसें एकप्रदेशस्वभाव, कालपुद्गलसें इतर धर्माधर्माकाशजीवोंको भी, अखंड होनेसें है.।१६।

भेदकल्पनासापेक्षसें शुद्ध द्रव्यार्थिकनयसें, एक छूटे परमाणुविना सर्वद्रव्यको अनेकप्रदेशस्वभाव; और पुद्गलपरमाणुको भी अनेकप्रदेश होनेकी योग्यता है, तिसवास्ते उपचारसें तिसको भी अनेकप्रदेशस्वभाव कहिये. और कालाणुमें सो उपचार कारण नही है, तिसवास्ते तिसको सर्वथा यह स्वभाव नही है. ।१७।

शुद्धाशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, विभावस्वभाव है. ।१८।

शुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, शुद्धस्वभाव है. ।१९।

अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें, अशुद्धस्वभाव है. ।२०।

असद्भूतव्यवहारनयके मतसें, उपचरितस्वभाव है. ।२१।

येह नयोंके मतसें स्वभावोंका वर्णन कथन किया. अथ किंचिन्मात्र नयका स्वरूप लिखते हैं.

"॥ नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्त्यैकस्मिन् स्वभावे वस्तुनयनं नयः ॥"

भावार्थः—नाना स्वभावसें हटाके, वस्तुको एक स्वभावमें प्राप्त करना, सो नय है.

अथवा । "॥ प्रमाणेन संगृहीतार्थैकांशो नयः ॥"

भावार्थः—प्रमाणकरके जो संगृहीतार्थ है, तिसका जो एक अंश, सो नय.

अथवा। "॥ ज्ञातुरभिप्रायः श्रुतविकल्पो वा इत्येके ॥"

भावार्थः—ज्ञाताका जो अभिप्राय, वा श्रुतविकल्प, सो नय. ।

अथवा। "॥ सर्वत्रानंतधर्माध्यासिते वस्तुनि एकांशग्राहको बोधो नयः ॥"

भावार्थः—सर्वत्र अनंतधर्माध्यासितवस्तुमें एक अंशका ग्राहक जो बोध है, सो नय है.—इत्यनुयोगद्वारवृत्तौ. ॥

अथवा। "॥ अनंतधर्मात्मके वस्तुन्येकधर्मोन्नयनं ज्ञानं नयः ॥" इति नयचक्रसारे ॥

भावार्थः—अनंतधर्मात्मक जो वस्तु अर्थात् जीवादिक एक पदार्थमें अनंतधर्म है, उसका जो एक धर्म ग्रहण करना, और दूसरे अनंतधर्म उसमें रहे है, उनका उच्छेद नही, और ग्रहण भी नही, केवल किसी-एक धर्मकी मुख्यता करनी, सो नय कहिये.

अथवा। "॥ नीयते येन श्रुताख्यप्रमाणविषयीकृतस्यार्थस्यांशस्तदितरांशौदासीन्यतः सप्रतिपत्तुरभिप्रायविशेषो नयः ॥"

अर्थः—यह सूत्र स्याद्वादरत्नाकरका है। प्रत्यक्षादि प्रमाणसें निश्चित किया जो अर्थ, तिसके अंशको, अंशोंको, वा ग्रहण करें, और इतर अंशोमें औदासीन रहै, अर्थात् इतर अंशोंका निषेध न करे, सो नय, कहिये हैं. यदि मानें अंशके सिवाय तदितर दूसरे अंशोंका निषेध करे तो, नयाभास हो जावे. जैनमतमें जो कथन है, सो नयविना नही है.

यदुक्तं विशेषावश्यके ॥

णत्थि णएहिं विहुणं सुत्तं अत्थो य जिणमए किंचि ॥
आसज्जउ सोआरं नए नयविसारओ बूआ ॥ १ ॥

अर्थः—जिनमतमें नयविना कोई भी सूत्र, और अर्थ, नही है; इसवास्ते नयविशारद, नयका जानकार गुरु, योग्य श्रोताको प्राप्त होकर, विविध नय कथन करे. इति. ॥

अथ प्रसंगसें नयाभासका लक्षण कहते हैं.

"॥ स्वाभिप्रेतादंशादितरांशापलापी नयाभासः ॥"

भावार्थः—अपने इच्छित अंशसें पदार्थके अन्य अंशको जो निषेध करे, और नयकीतरें भासन होवे, सो नयाभास है; परंतु नय नही. जैसें अन्य-

तीर्थीयोंके मतमें एकांत नित्यअनित्यादिके कथन करनेवाले वाक्य है. इति. ॥

वे नय, विस्तारविवक्षामें अनेक प्रकारके हैं. क्योंकि, नानावस्तुमें अनंत अंशोंके एकएक अंशको कथन करनेवाले जे वक्ताके उपन्यास है, वे सर्व, नय हैं. ।

यदुक्तं सम्मतौ अनुयोगद्वारवृत्तौ च ॥

जावइया वयणपहा तावइया चेव हुंति नयवाया ॥
जावइया नयवाया तावइया चेव परसमया ॥ १ ॥

अर्थः—जितने वचनके पथ—रस्ते हैं, उतनेही नयोंके वचन हैं, और जितने नयोंके वचन है, उतनेही परमत हैं, एकांत माननेसें. इसवास्ते विस्तारसें सर्व नयोंके स्वरूप लिख नही सकते हैं, संक्षेपसें लिखते हैं.

सो, पूर्वोक्तस्वरूप नय, दो तरेंके हैं. द्रव्यार्थिकनय (१), और पर्यायार्थिकनय (२).

यदुक्तं ॥

णिच्छयववहारणया मूलिमभेदा णयाण सव्वाणं ॥
णिच्छयसाहणहेऊ दव्व पज्जात्थिया मुणह ॥ १ ॥

अर्थः—निश्चयनय, और व्यवहारनय, येह सर्व नयोंके मूल भेद हैं. और निश्चयनयके साधनहेतु, द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, जानो. इति. ॥

इनमें पूर्वोक्त द्रव्यही अर्थ प्रयोजन है, जिसका, सो द्रव्यार्थिक. उसके युक्तिकल्पनासें दश भेद हैं.

तथाहि ॥

अन्वयद्रव्यार्थिक—जो एकस्वभाव कहिये; जैसें एकही द्रव्य गुणपर्यायस्वभाव कहिये, अर्थात् गुणपर्यायके विषे द्रव्यका अन्वय है, जैसें द्रव्यके जाननेसें द्रव्यार्थादेशसें तदनुगत सर्वगुणपर्याय जाने कहिये; जैसें सामान्यप्रत्यासत्ति परवादीकी सर्वव्यक्ति जानी कहै, तैसें यहां जानना. यह अन्वयद्रव्यार्थिकः । १ ।

स्वद्रव्यादिग्राहक–जैसें अर्थ, जो घटादिकद्रव्य सो स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव, इन चारोंकी अपेक्षा सत् है, स्वद्रव्य मृत्तिका, स्वक्षेत्र पाटलिपुरादि, स्वकाल विवक्षितहेमंतादि, स्वभाव रक्तादि, इनोंसें जो घटादिककी सत्ता, सो प्रमाण है; सिद्ध है. इति स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकः। २।

परद्रव्यादिग्राहक–जैसें अर्थ जो घटादिक, सो, परद्रव्यादिचतुष्टयकी अपेक्षा सत् नहीं है; यथा परद्रव्य तंतुप्रमुख, परक्षेत्र काशीप्रमुख, परकाल अतीत अनागतादि, परभाव श्यामतादि, इन चारोंकी अपेक्षा, घट, असत् है, इति परद्रव्यादिग्राहकद्रव्यार्थिकः। ३।

परमभावग्राहक–जिस नयानुसार आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं; यद्यपि दर्शन, चारित्र, वीर्य, लेश्यादिक आत्माके अनंत गुण है, तो भी, सर्वमें ज्ञानस्वभाव सार उत्कृष्ट है. क्योंकि, अन्य द्रव्यसें आत्माका भेद ज्ञानस्वभाव दिखाता है, तिसवास्ते शीघ्रोपस्थितिकपणे आत्माका ज्ञानही परमभाव है, इसवास्ते 'ज्ञानमय आत्मा' यहां अनेक स्वभावोंके बीचसें ज्ञानाख्यपरमभाव ग्रहण किया. ऐसें दूसरे द्रव्योंके भी परमभाव, असाधारण गुण लेने. इति परमभावग्राहकद्रव्यार्थिकः। ४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक–जैसें सर्वसंसारी प्राणीमात्रको सिद्धसमान शुद्धात्मा गिणीयें कहियें, अर्थात् सहजभाव जो शुद्धात्मस्वरूप उसको अग्रगामी करिये, और भवपर्याय जो संसारके भाव उनको गिणिये नही, अर्थात् उनकी विवक्षा न करिये. इति.।

यदुक्तं द्रव्यसंग्रहे ॥

मग्गणगुणठाणेहिं चउदसहिं हवंति तह असु द्धणया ॥
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया ॥ १ ॥

चतुर्दशमार्गणा. औरगुणस्थानकरके अशुद्ध नय होते हैं, ऐसे जानना, और सर्वसंसारी, शुद्धनयापेक्षा शुद्ध है, ऐसे जानना. इति कर्मोपाधिनिरपेक्षशुद्धद्रव्यार्थिकः। ५।

उत्पादव्ययकी गौणतासें, और सत्ताकी मुख्यतासें, शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें द्रव्य नित्य है, यहां तीनोंही कालमें अविचलितरूपसत्ताका मुख्यपणे ग्रहण करनेसें, यह भाव संभव होता है. क्योंकि, यद्यपि पर्याय, प्रतिक्षण परिणामी है, तो भी, जीवपुद्गलादिकद्रव्यसत्ता कदापि चलती नही है. इति उत्पादव्ययगौणत्वे सत्ताग्राहकः शुद्धद्रव्यार्थिकः । ६ ।

भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें निजगुणपर्यायस्वभावसें, द्रव्य, अभिन्न है. । ७ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें क्रोधादिकर्मभावमय आत्मा, जिस समय जो द्रव्य जिस भावे परिणमे, तिस समय सो द्रव्य तन्मय जानना; यथा लोहपिंड अग्निपणे परिणत हुआ तिस कालमें अग्निरूप जानना, ऐसेंही क्रोधमोहादि कर्मोदयकेसमय क्रोधादिभाव परिणत आत्मा क्रोधादिरूप जानना. इसी वास्ते आत्माके आठ भेद सिद्धांतमें प्रसिद्ध है. इति । ८ ।

उत्पादव्ययसापेक्ष सत्ताग्राहक अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें एकसमयमें द्रव्य को उत्पादव्ययध्रुवयुक्त कहना, यथा जो कटकादिका उत्पादसमय, सोही केयूरादिका विनाशसमय, और कनकसत्ता तो, अवर्जनीयही है. इति । ९ ।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिक-जैसें ज्ञानदर्शनादिक शुद्ध गुण आत्माके हैं. यहां षष्ठी विभक्ति, भेद कथन करती है. 'भिक्षोः पात्रमितिवत्' भिक्षुसाधुका पात्र; यहां साधु, और पात्रका भेद है. इसीतरें आत्मा, और गुणका भेद षष्ठी विभक्ति कहती है; और गुणगुणीका भेद है नही, तो भी, भेदकल्पनाकी अपेक्षासें अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके मतसें ऐसें कथन करनेमें आता है. इति । १० ।

येह द्रव्यार्थिकके दश भेद हुए. ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके भेद लिखते हैंः-पर्यायनाम, जो उत्पत्ति, और विनाशको प्राप्त होवे.

यदुक्तम् ॥

अनादिनिधने द्रव्ये स्वपर्यायाः प्रतिक्षणम् ॥
उन्मज्जंति निमज्जंति जलकल्लोलवज्जले ॥ १ ॥

भावार्थः—अनादि अनंतद्रव्यमें स्वपर्याय समयसमयमें उत्पन्न होते हैं, और विनाश होते हैं, जैसें जलमें जलकल्लोल, तरंग इत्यर्थः ।

पूर्वोक्त षट् २ हानिवृद्धिरूप, और नरनारकादिरूप, यहां पर्यायशब्दकरके ग्रहण करिये हैं. पर्याय दो प्रकारके हैं, सहभावी पर्याय (१) क्रमभावी पर्याय (२). जो सहभावीपर्याय है, तिसको गुण कहते हैं. पर्यायशब्दसें पर्यायसामान्य स्वव्यक्तिव्यापीको कथन करनेसें दोष नही. तहां सहभावीपर्यायोंको गुण कहते हैं; जैसें आत्माका विज्ञान व्यक्तिशक्तिआदिक. और क्रमभावीको पर्याय कहते हैं; जैसें आत्माके सुख दुःख शोकहर्षादि.

पर्याय भी, स्वभाव (१) विभाव (२) और द्रव्य (१) गुण (२) करके चार प्रकारके हैं. । तथाहि—स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय, यथा चरमशरीरसें किंचित् न्यूनसिद्धपर्याय. । १ । स्वभावगुणव्यंजनपर्याय, यथा जीवके अनंतज्ञानदर्शन सुखवीर्य आदि गुण. । २ । विभावद्रव्यंजनपर्याय, यथा चौरासीलाख योनि आदि भेद. । ३ । विभावगुणाव्यंजनपर्याय, यथा मतिआदि. । ४ । पुद्गलके भी द्व्यणुकादि विभावद्रव्यव्यंजन पर्याय है. । ५ । रससें रसांतर, गंधसें गधांतर, इत्यादिकका होना, सो पुद्गलके विभावगुणव्यंजनपर्याय है. । ६ । अविभागी पुद्गलपरमाणु जे हैं, वे स्वभावद्रव्यव्यंजनपर्याय है. । ७ । एकएक वर्ण गंध रस और अविरुद्ध दो स्पर्श येह स्वभाव गुणव्यंजनपर्याय है. । ८ । ऐसें एकत्वपृथक्त्वादि भी पर्याय है.

उक्तंच ॥

एगत्तं च पहुत्तं च संखा संठाणमेवय ॥
संजोगो य विभागो य पज्जयाणं तु लक्खणं ॥ १ ॥

भावार्थः—एकका जो भाव, सो एकत्व; भिन्न भी परमाणुआदिकमें जैसें यह घट है, ऐसी प्रतीतिका हेतु, सो एकत्व. पृथक्त्व यह इससें पृथक् (अलग) है, ऐसे ज्ञानका हेतु. संख्या, संस्थान, संयोग, विभाग, च शब्दसें नव पुराणादि, येह सर्व पर्यायके लक्षण है.

पूर्वोक्तस्वरूप, पर्यायही है, अर्थ प्रयोजन जिसका, सो पर्यायार्थिकनय. सो छ (६) प्रकारका है.

तद्यथा ॥

अनादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें पुद्गलपर्याय मेरुप्रमुख प्रवाहसें अनादि, और नित्य है. असंख्याते कालमें अन्योन्य पुद्गलसंक्रम हुए भी, संस्थान वोही है, ऐसेंही रत्नप्रभादिक पृथिवीपर्याय जानने. ।१।

सादि नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें सिद्धके पर्यायकी आदि है. क्योंकि, सर्व कर्म क्षय हुए, तब सिद्धपर्याय उत्पन्न हुआ, तिससें आदि हुइ; परंतु तिसका नाश अंत नही है, इसवास्ते नित्य है. एतावता सिद्धपर्याय सादिनित्य सिद्ध हुआ. । २ ।

सत्ताकी गौणतासें, उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें समयसमयमें पर्याय विनाशी है. यहां विनाशी कहनेसें विनाशका प्रतिपक्षी उत्पाद भी, आगया; परंतु ध्रुवताको गौणकरके दिखाइ नही.।३।

सत्तासापेक्ष नित्यअशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें एकसमयमें, पर्याय, उत्पाद व्यय ध्रुव तीनोंकरके रुद्ध है, ऐसा कहना. परंतु पर्यायका शुद्ध रूप तो, तिसकोही कहिये, जो सत्ता न दिखलानी. परंतु यहां तो, मूलसत्ता भी दिखाइ, इसवास्ते अशुद्ध भेद हुआ. । ४।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष नित्य शुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारीजीवके पर्याय, सिद्धके जीवसदृश है. यद्यपि कर्मोपाधि है, तथापि तिसकी विवक्षा न करिये; और ज्ञानदर्शनचारित्रादिक शुद्धपर्यायकीही विवक्षा करिये, तवही पूर्वोक्त कहना बनसकता है. । ५ ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिक—जैसें संसारवासी जीवोंको जन्ममरणका व्याधि है. यहां जन्मादिक जीवके जे पर्याय कर्मसंयोगसें है, वे अनित्य और अशुद्ध है, तिसवास्तेही जन्मादिपर्यायके नाश करनेके वास्ते, मोक्षार्थी जीव, प्रवृत्तमान होता है. । ६ ।

येह पर्यायार्थिकके षट् (६) भेद कथन किये. ॥

अथ इन पूर्वोक्त दोनों नयोंके स्थानप्रधान कहते हैं:—

द्रव्यार्थिक जो नय है, सो, नित्यही स्थानको कहता है; द्रव्यको नित्य, और सकल कालमें होनेसें. पर्यायार्थिक जो नय है, सो, अनित्यही स्थानको कहता है, प्रायः पर्यायोंको अनित्य होनेसें.

तदुक्तं राजप्रश्नीयवृत्तौ ॥

" ॥ द्रव्यार्थिकनये नित्यं पर्यायार्थिकनयेत्वनित्यं द्रव्यार्थिकनयो द्रव्यमेव तात्त्विकमभिमन्यते नतु पर्यायान् द्रव्यं चान्वयि परिणामित्वात् सकलकालभावि भवति ॥ "

भावार्थः—द्रव्यार्थिकनयसें नित्य और पर्यायार्थिकनयसें अनित्य वस्तु है. द्रव्यार्थिकनय द्रव्यहीको तात्त्विक वस्तु माने हैं, परंतु पर्यायोंको नही. क्योंकि, द्रव्य अन्वयि है, परिणामी होनेसें, तीनों कालमें सद्रूप है.

पूर्वपक्षः—गुणप्रधान, तीसरा गुणार्थिक नय, क्यों नही कहा ?

उत्तरपक्षः—पर्यायोंके ग्रहण करनेसें साथ गुणका भी ग्रहण हो गया, इसवास्ते गुणार्थिक नय, पृथक् नही कहा.

प्रश्नः—पर्याय तो द्रव्यहीके हैं, तब द्रव्यार्थिक, और पर्यायार्थिक, येह दो नय कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—द्रव्य और पर्यायके स्वरूपकी विवक्षासें कुछक विशेष है. तथाहि—पर्याय, द्रव्यसें भी सूक्ष्म है. एक द्रव्यमें अनंत पर्यायोंके संभव होनेसें. द्रव्यकी वृद्धिके हुए, पर्यायोंकी निश्चयही वृद्धि होती है. प्रतिद्रव्यमें संख्याते असंख्याते पर्याय, अवधिज्ञानसें परिच्छेद होनेसें. और पर्यायोंकी वृद्धि हुए, द्रव्यवृद्धिकी भजना.

तदुक्तं ॥

भयणाए खेत्तकाला परिवढ्ढंतेसु दव्वभावेसु ॥
दव्वे वट्टइ भावो भावे दव्वं तु भयणिज्जं ॥ १ ॥

भावार्थः—द्रव्यभावकी वृद्धिमें क्षेत्रकालकी वृद्धिकी भजना है, द्रव्यकी वृद्धि हुए भावकी वृद्धि अवश्यमेव होती है, और भावकी वृद्धिमें द्रव्यवृद्धिकी भजना है. तथा क्षेत्रसें द्रव्य अनंतगुणे हैं, और द्रव्यसें अवधिज्ञानके विषयभूत पर्याय, संखेयगुणे असंखेयगुणे हैं.

तदुक्तं ॥

खित्तविसेसेहिंतो दव्वमणंतगुणियं पएसेहिं ॥
दव्वेहिंतो भावो संखगुणो असंखगुणिओ वा ॥ १ ॥

भावार्थः—क्षेत्रप्रदेशोंसें द्रव्य अनंतगुणा है, द्रव्यसें भाव संख्यातगुणा, वा, असंख्यातगुणा है; इत्यादि नंदिटीकामें विस्तारसहित कहा है. इसवास्ते द्रव्यपर्यायोंका स्वरूपविवक्षासें भिन्न होनेसें, नय भी दो तरेके है. यद्यपि दोनों नय, परस्पर मिलते भी है, तो भी, पृथक्भावको नही त्यागते हैं. इनका स्वभावभेद आगे कहेंगे.

प्रश्नः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्य विशेष है, तो फिर, सामान्यार्थिक, और विशेषार्थिक, नय क्यों नही ?

उत्तरः—द्रव्यपर्यायसें व्यतिरिक्त सामान्यविशेष है नही, इसवास्ते सामान्यार्थिक विशेषार्थिक नय नही कहे.

तद्यथा। तहां प्रसंगसें सामान्यका स्वरूप लिखते हैं. सामान्य दो प्रकारके हैं. तिर्यक्सामान्य (१) और ऊर्द्धतासामान्य (२).

प्रथमका लक्षण कहते हैं.।

"॥ प्रतिव्यक्तितुल्यापरिणतिः तिर्यक्सामान्यं यथा शबलशावलेयपिंडेषु गोत्वमिति ॥"

गवादिकमें गोत्वादिस्वरूप तुल्यपरिणतिरूप तिर्यक्सामान्य है; उदाहरण जैसें, तिसही जातिवाला यह गोपिंड है, अथवा गोसदृश गवय है.॥ १ ॥

दूसरे सामान्यका लक्षण.।

"॥ पूर्वापरपरिणामसाधारणद्रव्यमूर्द्धतासामान्यम् यथा कटककंकणाद्यनुगामिकांचनमिति ॥"

उर्द्धतासामान्य सो है, जो, पूर्वापरविवर्त्तव्यापि मृदादिद्रव्य यह त्रिकालगामि है.

तदुक्तं ॥

"॥ पूर्वापरपर्याययोरनुगतमेकं द्रवति तांस्तान् पर्यायान् गच्छतीति व्युत्पत्त्या त्रिकालानुयायी यो वस्त्वंशस्तदूर्द्धतासामान्यमित्यभिधीयते ॥"

पूर्वापरपर्यायों एक अनुगत उन उन पर्यायोंको प्राप्त होवे, इस व्युत्पत्तिसें त्रिकालानुयायी, जो वस्त्वंश है, सो उर्द्धतासामान्य कहा जाता है. उदाहरण जैसें कटककंकनमें सोही सोना है. अथवा सोही यह जिनदत्त है. तहां तिर्यक्सामान्य तो, प्रतिव्यक्तिमें सादृश्यपरिणति-लक्षण व्यंजनपर्यायही है. क्योंकि, व्यंजनपर्याय, स्थूल है, कालांतर स्थायी है, शब्दोंके संकेतके विषय है, ऐसें प्रावचनिकोंमें अर्थात् जैनाचार्योंमें प्रसिद्ध होनेसें. और उर्द्धतासामान्य तो, द्रव्यहीको विवक्षासें कहता है. और विशेष भी, सामान्यसें विसदृश विवर्त्तलक्षण व्यक्तिरूप पर्यायोंके अंतर्भूतही कहे हैं. इसवास्ते द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिक नयोंसें, अधिक नयोंका अवकाश नहीं है.

अथ सात नयकी संख्या कहते हैः—द्रव्यार्थिकनयके तीन भेद हैं. नैगम (१) संग्रह (२) व्यवहार (३). पर्यायार्थिकनयके चार भेद हैं. ऋजुसूत्र (१) शब्द (२) समभिरूढ (३) एवंभूत (४). येह सर्व सात नय हुए. पांच भी नयभेद होते हैं, षट् भेद भी हैं, चार भेद भी हैं; यह कथन प्रवचनसारोद्धारवृत्तिमें विस्तारसहित है, सो आगें कहेंगे.

यदुक्तमनुयोगतद्वृत्त्यादिषु ॥

णेगेहिं माणेहिं मिणइ इति णेगमस्स य निरुत्ती सेसाणंपि णयाणं लक्खणमिणं सुणह वोच्छं ॥ १ ॥

संगहियपिंडियत्थं संगहवयणं समासओ बिंति वच्चइ विणि-च्छियत्थं ववहारो सव्वदव्वेसु ॥ २ ॥

पच्चुपन्नग्गाही उज्जुसुओ णयविही मुणेयव्वो इच्छइ विसेसि-यतरं पच्चुपन्ननओ सद्दो ॥ ३ ॥

वत्थूओ संकमणं होइ अवत्थू णए समभिरूढे वंजणअत्थत-दुभए एवंभूओ विसेसेत्ति ॥ ४ ॥

णायंमि गिण्हियव्वे अगिण्हियव्वे य इत्थ अत्थंमि जइयव्वमेव इइ जो उवएसो सो नओ नाम ॥ ५ ॥

अर्थः—जो एक मान महासत्ता सामान्यविशेषादि ज्ञानोंकरके वस्तु, न मापे, न परिच्छेद करे, किंतु सामान्यविशेषादि अनेक रूपसें वस्तुको माने, सो नैगम; यह नैगमकी निरुक्ति व्युत्पत्ति है. अथवा निगम, लोकमें वसता हूं, तिर्यग्लोकमें वसता हूं, इत्यादि जो सिद्धांतोक्तही बहुत परिच्छेदरूपही निगम है, उनमें जो होवे, सो नैगम. । १ ।

सम्यक्प्रकारसें जो ग्रहण करा है पिंडित एक जातिको प्राप्त हुआ अर्थविषय जिसने, सो गृहितपिंडितार्थ संग्रहका वचन, संक्षेपसें तीर्थंकर गणधर कहते हैं. यह नय, सामान्यही मानता है, विशेष नही. इसवास्ते इसका वचन सामान्यार्थही है. और सामान्यरूपकरके सर्ववस्तुको क्रोडी-करता है, अर्थात् सामान्यज्ञान विषय करता है. । २ ।

वच्चइइत्यादि—'चयनं चयः' पिंडरूप होना, सो चय है. 'निराधिक्येन' अधिक जो चय सो कहिये निश्चय. ऐसा सामान्य है. सो, सामान्य, गया है जिससें, सो विनिश्चय, अर्थात् सामान्याभाव, तिसके अर्थे जो सदा प्रवर्त्ते, सो व्यवहारनय है. यह व्यवहार, सर्वद्रव्यमें प्रवर्त्ते है. क्योंकि, जगत्में घट स्तंभ कमलप्रमुख विशेषही प्रायः जलहरणादि क्रियामें काम आते हैं, परंतु तिससें अतिरिक्त सामान्य नही; इसवास्ते यह नय सामान्य नही मानता है. इसवास्तेही लोकव्यवहारप्रधान जो नय, सो व्यवहारनय. अथवा विशेषकरके जो निश्चय, विनिश्चय, गोपालस्त्रीबालकादि भी जिस अर्थको जा-नते हैं, तिस अर्थमें जो प्रवर्त्ते, सो व्यवहारनय है. यद्यपि निश्चयसें घटादिवस्तु-योंमें पांच (५) वर्ण, दो (२) गंध, पांच (५) रस, आठ (८) स्पर्श, हैं; तो भी, गोपालांगनादि जिसमें जिस वर्णादिककी अधिकता देखते हैं, तिसही नी-लादि वर्णवाली वस्तु कहते हैं; शेष नही मानते हैं. इतिव्यवहारनय. । ३ ।

वर्त्तमान कालमें जो वस्तु होवे, तिसको ग्रहण करनेका शील है जिसका, सो प्रत्युत्पन्नग्राही ऋजुसूत्रनय है. सो, अतीत अनागतको कुटिल जानके त्याग देता है, और ऋजु सरल वर्त्तमानकालभावीवस्तुको जो माने, सो ऋजुसूत्रनय, अतीत अनागत दोनों, नष्ट अनुत्पन्न होनेसें असत् है. और असत्का जो मानना है, सोही कुटिलता है, इस-

वास्ते नही मानता है. अथवा ऋजु अवक्र श्रुत है इसका, सो ऋजुश्रुत, शेष ज्ञानोंमें मुख्य होनेसें. तथाविध परोपकार साधनसें, श्रुतज्ञानहीको ज्ञान मानता है. परकी वस्तुसें अपना कार्य सिद्ध नही होता, इसवास्ते परकी जो वस्तु है, सो वस्तु नही. तथा भिन्नलिंग भिन्नवचनवाले शब्दोंकरके एकही वस्तु कहता है, 'तटः तटी तटं' इत्यादि; 'गुरुः गुरू गुरवः' इत्यादि. तथा इंद्रादिके नामस्थापनादि जे निक्षेप भेद है, उनको पृथक् २ मानता है. आगे जे नय कहेंगे, सो अतिशुद्ध होनेसें लिंगवचनके भेदसें वस्तुका भेद मानते हैं, और नाम स्थापना द्रव्य इन तीनों निक्षेपोंको नही मानते हैं. इति ऋजुसूत्र. । ४ ।

अर्थको गौणपणे, और शब्दको मुख्यपणे जो माने, सो नय भी, उपचारसें शब्दनय कहा जाता है. यह नय, वर्त्तमान वस्तुको ऋजुसूत्रसें विशेषतर मानता है. तथाहि । 'तटः तटी तटं' इत्यादि शब्दोंके भिन्नही वाच्य मानता है, भिन्नलिंगवृत्ति होनेसें, स्त्रीपुरुष नपुंसक शब्दवत्. ऐसें यह नय मानता है. तथा 'गुरुः गुरू गुरवः' यहां भी अभिधेयका भेद है, वचनका भेद होनेसें 'पुरुषः पुरुषौ पुरुषाः' इत्यादिवत्. तथा नाम १, स्थापना २, द्रव्य ३, निक्षेप नही मानता है, कार्यसाधक न होनेसें; आकाशपुष्पवत्. पिछले नयसें विशुद्ध होनेसें इसका मानना विशेषतर है, समानलिंगवचनवाले बहुतसें शब्दोंका एक अभिधेय शब्दनय मानता है, जैसें इंद्र शक्र पुरंदरइत्यादि. इति शब्दनय. । ५ ।

वत्थूइत्यादि—वस्तु, इंद्रादि, तिसका संक्रमण अन्यत्र शक्रादिमें जब होवे, तब अवस्तु होवे; समभिरूढनयके मतमें. यह नय, वाचकशब्दके भेद हुए, वाच्यार्थका भी भेद मानता है. शब्दनय तो, इंद्रशक्रपुरंदरादि शब्दोंका वाच्यार्थ एकही मानता है, परंतु यह समभिरूढनय, वाचकके भेदसें वाच्यका भी भेद मानता है. 'इंदतीति इंद्रः, शक्नोतीति शक्रः, पुरं दारयतीति पुरंदरः'. परमैश्वर्यादिक भिन्नही यहां प्रवृत्तिके निमित्त है. जेकर एकार्थिक मानीये तो, अतिप्रसंगदूषण होता है. घटपटादि शब्दोंको भी एकार्थिताका प्रसंग होवेगा. ऐसे हुए, जब इंद्रशब्द शक्रशब्दके साथ

एकार्थी हुआ, तब वस्तु परमैश्वर्यका, शकनलक्षणवस्तुमें संक्रमण करा, तब वे दोनोंको एकरूप कर दीया, तिसका संभव है नही. क्योंकि, जो परमैश्वर्यरूप पर्याय है, सोही, शकनपर्याय नही हो सकता है. जेकर होवे तो, सर्व पर्यायोंको संकरताकी आपत्ति होनेसें अतिप्रसंगदूषण होवे. इति समभिरूढनयः। ६।

वंजणइत्यादि–जो पदार्थ, क्रियाविशिष्टपदसें कहा जाता है, तिसही क्रियाको करता हुआ, वस्तु, एवंभूत कहा जाता है. एवंशब्दकरके, चेष्टा क्रियादिकप्रकार कहते हैं; तिस 'एवं' को 'भूतं' अर्थात् प्राप्त होवे जो वस्तु, तिसको 'एवंभूत' कहते हैं. तिस एवंभूत वस्तुका प्रतिपादक नय भी, उपचारसें एवंभूत कहा जाता है. अथवा 'एवं' शब्दसें कहिये, चेष्टा-क्रियादिकप्रकार; तद्विशिष्टही वस्तुको स्वीकार करनेसें, तिस 'एवं' को, 'भूतं' प्राप्त हुआ जो नय, सो एवंभूत. उपचारविना भी ऐसें एवंभूत-नयका व्याख्यान है. प्रकट करिये अर्थ इसकरके, सो व्यंजन अर्थात् शब्द. अर्थ जो है, सो शब्दका अभिधेयवस्तुरूप है. व्यंजन, अर्थ, और व्यंजन अर्थ दोनोंको, जो नैयत्यसें स्थापन करे. तात्पर्य यह है कि, शब्द-को अर्थकरके और अर्थको शब्दकरके जो, स्थापन करे. जैसें 'घटचेष्टायां घटते' स्त्रीके मस्तकादिऊपर आरूढ हुआ चेष्टा करे, सो घट; जो चेष्टा न करे, सो घटपदका वाच्य नही. चेष्टारहित घटपदका वाचक शब्द भी, नही. इति एवंभूत. । ७ ।

जब यह सातोंही नय, सावधारण होवे, तब दुर्नय है; और अवधार-णरहित, सुनय है. जब सर्व सुनय मिलें, तब स्याद्वाद जैनमत है. इन सर्व नयोंका संग्रह करिये तो, द्रव्यार्थिक (१) पर्यायार्थिक (२) येह दो नय होते हैं. तथा ज्ञाननय (१) क्रियानय (२) होते हैं. तथा निश्चयनय (१) व्यवहारनय (२) होते हैं. क्योंकि, सप्तशतारनामा नय-चक्राध्ययन पूर्वकालमें था, तिसमें एक एक नयके सौ सौ (१००) भेद कथन करे थे; सो तो व्यवच्छेद गया, परंतु इस कालमें द्वादशारनय-चक्र है, तिसमें एक एक नयके द्वादश (१२) भेद कथन करे हैं. यदि किसीको विस्तारसें देखना होवे तो, पूर्वोक्त पुस्तक देख लेना. जिसकी श्लोकसंख्या

अनुमान अष्टादशसहस्र (१८०००) प्रमाण है. यहां तो, विस्तारके भयसें ज्ञाननय क्रियानयका किंचिन्मात्र स्वरूप लिखते हैं.

नायंमिइत्यादिव्याख्या—सम्यक्प्रकारसें उपादेय हेयके स्वरूपको जानके पीछे, इस लोकमें उपादेय, फूलमाला स्त्री चंदनादि; हेय त्यागने-योग्य, सर्प विष कंटकादि; और उपेक्षा करनेयोग्य, तृणादि; परलोकमें ग्रहण करनेयोग्य, सम्यग्दर्शन चारित्रादि; नहीं ग्रहण करनेयोग्य, मिथ्यात्वादि; उपेक्षणीय, स्वर्गलक्ष्म्यादि; ऐसे अर्थमें यत्न करना, अर्थात् ज्ञानसें इन वस्तुयोंको यथार्थ जानना, ऐसा जो उपदेश, सो ज्ञाननय जानना. इत्यक्षरार्थः॥

भावार्थ यह है कि ज्ञाननय, ज्ञानको प्रधान करनेवास्ते कहता है. इस-लोक परलोकमें जिसको फलकी इच्छा होवे, तिसको प्रथम सम्यग्ज्ञान हुएही अर्थमें प्रवर्त्तना चाहिये, अन्यथा प्रवृत्ति करे फलमें विसंवाद होनेसें, अयुक्त है.

यदुक्तमागमे ॥

"॥ पढमं नाणं तओ दया इत्यादि ॥" प्रथम ज्ञान पीछे दया. ।

तथा । "॥ जंअन्नाणीत्यादि ॥"—जितने कर्म, अज्ञानी क्रोडों वर्षोंमें जपतपादिकसें क्षय करता है, उतने कर्म, ज्ञानवान्, त्रिगुप्त हुआ, एक उत्स्वासमें क्षय करता है.

तथा ॥

पावाओ विणिउत्ति पवत्तणा तहय कुसलपक्खंमि ॥
विणयस्स य पडिवत्ती तिन्निवि नाणे विसप्पंति ॥ १ ॥

भावार्थः—पापसें निवर्त्तना—हटजाना, कुशलकाममें प्रवृत्त होना, विन-यकी प्रतिपत्ति, येह तीनोंही ज्ञानके आधीन है. ।

अन्योंने भी कहा है. ।

विज्ञप्तिः फलदा पुंसां न क्रिया फलदा मता ॥
मिथ्याज्ञानप्रवृत्तस्य फलासंवाददर्शनात् ॥ १ ॥

भावार्थः–पुरुषोंको ज्ञानही फल देता है, क्रिया फल नही देती है. क्योंकि, विनाज्ञानके क्रिया करे तो, यथार्थ फल नही होता है. इसवास्ते ज्ञानहीको प्राधान्यता है. तीर्थंकर गणधरोंने भी, एकले अगीतार्थको विहार करना निषेध करा है.

तथाच तद्वचनम् ॥

गीयत्थो य विहारो बीओ गीयत्थमीसिओ भणिओ ॥
इत्तो तइओ विहारो नाणुन्नाओ जिणवरिंदेहिं ॥ १ ॥

भावार्थः–गीतार्थ विहार करे, वा गीतार्थके साथ विहार करे, इन दोनों विहारोंके विना, अन्य तीसरा विहार, तीर्थंकरोंका अननुज्ञात है, अर्थात् तीसरे विहारकी तीर्थंकरोंने आज्ञा नही दीनी है. अंधा अंधेको रस्ता नही बता सक्ता है, इति. यह तो क्षायोपशम ज्ञानकी अपेक्षा कथन है. क्षायिकज्ञानकी अपेक्षासें भी, विशिष्टफलका साधन ज्ञानही है. क्योंकि, अर्हन्भगवान्को भवसमुद्रके कांठे रहे दीक्षा लेके उत्कृष्ट तप चारित्रवान् होनेसें भी, मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है, जबतक केवलज्ञान नही होता है. इसवास्ते ज्ञानही, पुरुषार्थका हेतु होनेसें, प्रधान है. । इति ज्ञाननयमतम् ॥

अथ क्रियानय । नायम्मीत्यादि–यहां ज्ञान ग्रहण करने योग्य अर्थमें, और न ग्रहण करने योग्य अर्थमें, सर्व पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते यत्न करना. यहां प्रवृत्तिनिवृत्तिलक्षण क्रियाहीकी मुख्यता है. और ज्ञान, क्रियाका उपकरण होनेसें गौण है. इसवास्ते सकल पुरुषार्थकी सिद्धिवास्ते क्रियाही, प्रधान कारण है. ऐसा जो उपदेश, सो क्रियानय जानना. यह नय भी, अपने मतकी सिद्धिवास्ते युक्ति कहता है. क्रियाही, प्रधान पुरुषार्थकी सिद्धिमें कारण है. क्योंकि, आगममें तीर्थंकर गणधरोंने क्रिया रहितोंका ज्ञान भी, निष्फल कहा है.

तदुक्तम् ॥

सुबहुंपि सुयमहीयं किं काही चरणविप्पमुक्कस ॥
अंधस्स जह पलित्ता दीवसयसहस्सकोडीवि ॥

भावार्थः—चारित्ररहितको बहुत पढया भी ज्ञान क्या करेगा? जैसें अंधेको लाख क्रोड दीवे भी प्रकाश नही कर सकते हैं. तथा कोई पुरुष रस्ता तो जानता है, परंतु चलता नही तो, क्या वो मजलसिर इच्छित ग्राम वा नगरको पहुंचेगा? कदापि नही. तथा जो, तरना जानता है, परंतु नदीमें हाथ पग नही हिलाता है तो, क्या वो पार हो जायगा? नहीं डूब जायगा? ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानी, जानना. ॥

तथा ॥ "जहा खरो चंदनभारवाही इत्यादि"—जैसें गदहे ऊपर चंदन लादा, परंतु गर्दभको चंदनका सुख नही, ऐसेंही क्रियाहीन ज्ञानवान्को सुगति नही. अन्योंने भी कहा है. ॥

क्रियैव फलदा पुंसां न ज्ञानं फलदं मतं ॥
यतः स्त्रीभक्षभोगज्ञो न ज्ञानात् सुखितो भवेत् ॥ १ ॥

भावार्थः—क्रियाही पुरुषोंको फलदात्री है, ज्ञान नही. क्योंकि, स्त्री और मोदकादिके ज्ञानसें कामी और भूखे, तृप्त नही होते हैं.

यह तो क्षायोपशम चारित्रक्रियाकी अपेक्षा प्राधान्यपणा कहा. अब क्षायिकी क्रियापेक्षा कहते हैं. अर्हन् भगवान्को केवलज्ञान भी होगया है, तो भी, जबतक सर्वसंवररूप पूर्णचारित्र चतुर्दशगुणस्थान नही आता है, तबतक मुक्तिकी प्राप्ति नही होती है. इस वास्ते क्रियाही प्रधान है.। इति क्रियानयमतम् ॥

इन पूर्वोक्त दोनों नयोंको पृथक् २ एकांत माने तो, मिथ्यात्व है; और स्याद्वादसंयुक्त माने तो, सम्यग्दृष्ट है. ऐसेंही सर्वनयभेदमें निष्कर्ष जानना.

अब द्रव्यार्थिक पर्यायार्थिकका थोडासा विस्तार लिखते हैं. उनमें नैगमद्रव्यार्थिकनय, धर्मधर्मी द्रव्यपर्यायादि प्रधानअप्रधानादि गोचर-करके ग्रहण करी वस्तुके समूहार्थको कहता है. । १ ।

संग्रहद्रव्यार्थिकनय, अभेदरूपकरके वस्तुजातको एकीभावकरके ग्रहण करता है. । २ ।

व्यवहारद्रव्यार्थिकनय, संग्रहने ग्रहण किया जो अर्थ, तिसके भेदरूप-करके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहार द्रव्यार्थिकनय है. । ३ ।

नैगम, और व्यवहार, अशुद्ध द्रव्यार्थिक है. और संग्रह शुद्ध द्रव्यको कहता है, इसवास्ते, शुद्धद्रव्यार्थिकनय है.

तदुक्तमनुयोगवृत्तौ ॥

"॥ नैगमव्यवहाररूपोऽविशुद्धः कथं यतो नैगमव्यवहारौ अनंतद्व्यणुकाद्यनेकव्यक्तात्मकंकृश्नाद्यनेकगुणाधारं त्रिकालविषयं चाविशुद्धं द्रव्यमिच्छतःसंग्रहश्च परमाण्वादिसामान्यादेकं तिरोभूतगुणकलापमविद्यमानपूर्वापरविभागं नित्यं सामान्यमेव द्रव्यमिच्छत्येव तच्च किलानेकताभ्युपगमकलंकेनाकलंकितत्वात् शुद्धं ततः शुद्धद्रव्याभ्युपगमपरत्वात् शुध्धमेवायमिति ॥"

भाषार्थः—नैगमव्यवहाररूपनय, अविशुद्ध है. क्योंकि, नैगमव्यवहार, अनंतद्व्यणुकादि, अनेकव्यक्तात्मक. कृश्नादि अनेक गुणोंका आधार, त्रिकालविषय, ऐसें अशुद्ध द्रव्यको द्रव्य मानते हैं. और संग्रहनय, परमाणुआदि सामान्यसें एक तिरोभूत गुणसमूह अविद्यमान पूर्वापरविभाग नित्यसामान्यही द्रव्य मानता है. सो संग्रहनय, अनेकता माननेरूप कलंकसें अकलंकित होनेसें और शुद्ध द्रव्य माननेसें शुद्धद्रव्यार्थिक है.

अथ नैगमनयकी प्ररूपणा करते हैंः—नही है एक गम, बोधमार्ग, जिसका, सो नैगमनय है. पृषोदरादि होनेसें ककारका लोप जानना. तिस नैगमनयके तीन भेद हैं. धर्मद्वयगोचर (१) धर्मिद्वयगोचर (२) धर्मधर्मिगोचर (३). यहां धर्मीधर्म शब्दकरके, द्रव्य और व्यंजनपर्यायोंको कहते हैं. अथ प्रथमभेदमें उदाहरण कहते हैं. "। सच्चैतन्यमात्मनि इति।" आत्मामें सत् चैतन्य धर्म है, यहां चैतन्य नाम व्यंजनपर्यायको, विशेष्य होनेसें, तिसकी मुख्यताकरके विवक्षा करी; और सत्ताख्यव्यंजनपर्यायको, विशेषण होनेसें, तिसकी अमुख्यता, गौणताकरके, विवक्षा करी है.। इतिधर्मद्वयगोचरोनैगमः प्रथमः।१।

अथ दूसरे नैगमका उदाहरण कहते हैंः—"। वस्तु पर्यायवद्द्रव्यम्।" पर्यायवाला द्रव्य, वस्तु है. यहां पर्यायवाले द्रव्याख्यधर्मिको. विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है; और वस्तुनामक धर्मिको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है. अथवा 'किं वस्तु' वस्तु क्या है? 'पर्यायवद् द्रव्यम्' पर्यायवाला द्रव्य. ऐसी विवक्षामें, वस्तुको, विशेष्य होनेसें प्रधानपणा है. और पर्यायवद् द्रव्यको, विशेषण होनेसें, गौणपणा है. इतिधर्मिद्वयगोचरोनैगमो द्वितीयः। २।

अथ तीसरे भेदका उदाहरण कहते हैंः—। "। क्षणमेकं सुखी विषयासक्तजीव इति।" एक क्षणमात्र सुखी विषयासक्त जीव है. यहां विषयासक्त जीव द्रव्यको, विशेष्य होनेसें, प्रधानपणा है; और सुखलक्षणपर्यायको, विशेषण होनेसें, अप्रधानपणा है. इति धर्मिधर्मालंवनोनैगमः तृतीयः। ३।

अथवा निगम, विकल्प, तिसमें जो होवे, सो नैगम. तिसके तीन भेद हैं. भूत (१) भविष्यत् (२) वर्त्तमान (३). जिसमें अतीत वस्तुको वर्त्तमानवत् कथन करना, सो भूतनैगम. यथा। आज सोही दीपोत्सव (दीवाली) पर्व है, जिसमें श्रीवर्द्धमानस्वामी मुक्ति गये.।१। भाविनि अर्थात् होनहारमें, होगईकीतरें उपचार करना, सो भविष्यत्नैगम. जैसें अर्हत सिद्धपणेको प्राप्तही होगये हैं।२। करनेका आरंभ करा, वा थोडासा निष्पन्न हुआ, तिसको हुआ वस्तु, जिसमें कहना, सो वर्त्तमाननैगम. जैसें, 'ओदनः पच्यते.'।३।

अथ नैगमाभासका स्वरूप कहते हैंः—दो आदिधर्मोंको एकांत पृथक् २ जो माने, सो नैगमाभास, इति. आदिपदकरके दो द्रव्य, और द्रव्यपर्यायों दोनोंका ग्रहण है. उदाहरण जैसें, आत्मामें सत्, और चैतन्य, परस्पर अत्यंत पृथग्भूत है, इत्यादि. आदिशब्दसें वस्तुपर्यायवाले द्रव्य दोका, और क्षणएक सुखी, इति सुखजीवलक्षण द्रव्यपर्याय दोनोंका ग्रहण है. इन दोनोंकी सर्वथा भिन्नरूपप्ररूपणा करनेसें नैगमाभास दुर्नय है. नैयायिक, वैशेषिक, येह दोनों मत नैगमाभाससें उत्पन्न हुए हैं, इति.॥

अथ द्रव्यार्थिकनयका दूसरा भेद संग्रह नामा, तिसका वर्णन करते हैं:—"सामान्यमात्रग्राही परामर्शः संग्रहः" सामान्यमात्रग्राही जो ज्ञान, सो संग्रह 'मात्रं कार्त्स्न्येऽवधारणे च' मात्रशब्द संपूर्णका और अवधारणका वाचक है, 'सामान्यमशेषविशेषरहितं' सामान्य संपूर्णविशेषरहित सत्त्व द्रव्यत्वादिक ग्रहण करनेका शील है 'सं' एकीभावकरके पिंडीभूत विशेष राशिको ग्रहण करे, सो संग्रह. तात्पर्य यह है "स्वजातेर्दृष्टेष्टाभ्यामविरोधेन विशेषाणामेकरूपतया यद्ग्रहणं स संग्रहः इति" स्वजातिके दृष्टेष्टकरके अविरोध विशेषोंको एकरूपकरके जो ग्रहण करे, सो संग्रह, अर्थात् विशेषरहित पिंडीभूत सामान्यविशेषवाले वस्तुको शुद्ध अनुभव करनेवाला ज्ञान विशेष, संग्रहकरके कहा जाता है. सो संग्रह दो प्रकारका है. परसंग्रह (१) अपरसंग्रह (२). संपूर्ण विशेषोंमें उदासीनता भजता हुआ, शुद्धद्रव्यसन्मात्रको, जो माने, सो परसंग्रह है. जैसें विश्व एक है, सत्सें अविशेष होनेसें.

अथ परसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैं:—सत्ता अद्वैतको स्वीकार करता हुआ, सकलविशेषोंका निषेध करे, सो परसंग्रहाभास. जैसें उदाहरण, सत्ताही तत्त्व है, तिससें पृथग्भूत विशेषोंके न देखनेसें, इति. अद्वैतवादियोंके जितने मत हैं, वे सर्व, परसंग्रहाभासकरके जानने; और सांख्यदर्शन भी ऐसेंही जानना.

अथ दूसरे अपरसंग्रहका लक्षण कहते हैं:—द्रव्यत्वादि अवांतरसामान्योंको मानता हुआ, और तिसके भेदोंमें उदासीनताको अवलंबन करता हुआ, अपरसंग्रह है. जैसें धर्म अधर्म आकाश काल पुद्गल जीवद्रव्योंको द्रव्यत्वके अभेदसें एक मानना. यहां द्रव्यसामान्यज्ञानकरके अभेदरूप छहोंही द्रव्योंको एकपणे ग्रहण करना, और धर्मादि विशेष भेदोंमें गजनिमिलिकावत् उपेक्षा करनी. ऐसेंही चैतन्याचैतन्य पर्यायोंका एकपणा मानना, पर्यायसाधर्म्यतासें.

प्रश्नः—चैतन्यज्ञान, और तद्विपरीत अचैतन्य, येह दोनों एक कैसें होसकते हैं?

उत्तरः—चैतन्याचैतन्यकी विशेष विवक्षा न करनेसें, और द्रव्यत्वकरके अभेदबुद्धि माननेसें.

अथ अपरसंग्रहाभासका लक्षण कहते हैंः—द्रव्यत्वको एकांत तत्त्व जो मानता है, और तिसके विशेषोंको निषेध करता है, सो अपरसंग्रहाभास है. जैसें द्रव्यत्वही तत्त्व है, और धर्मादि द्रव्य नही है. यथा वस्तु है, परंतु सामान्यविशेषत्व कहां वर्ते हैं? ऐसेंही सामान्यविशेषात्मक वस्तुको जानना.

अथवा संग्रहनय दो प्रकारका है. सामान्यसंग्रह (१) विशेषसंग्रह (२). सामान्यसंग्रहका उदाहरण जैसें, सर्वद्रव्य आपसमें अविरोधी है. । १ । विशेषसंग्रहका उदाहरण जैसें, जीव आपसमें अविरोधी है. । इतिसंग्रहद्रव्यार्थिकनयः । २ ।

अथ व्यवहारद्रव्यार्थिक नयका स्वरूप लिखते हैंः—

"॥ संग्रहेण गृहीतानां गोचरीकृतानामर्थानां विधिपूर्वकमवहरणं येनाभिसंधिना क्रियते सव्यवहारइति ॥"

भावार्थः—संग्रहने ग्रहण किया जो सत्त्वादि अर्थ, तिसका, विधिसें जो विवेचन करे, सो अभिप्राय विशेष, व्यवहारनामा नय है. उदाहरण जैसें, जो सत् है, सो द्रव्य है, अथवा पर्याय है. आदिशब्दसें अपरसंग्रहगृहीतार्थ व्यवहारका भी उदाहरण जानना. जैसें जो द्रव्य है, सो जीवादि षड्विध है, इति. पर्यायके दो भेद है. क्रमभावी (१) और सहभावी (२), इति. ऐसें जीव भी मुक्त (१) और संसारी (२). जे क्रमभावी पर्याय है, वे दो प्रकारके हैं. क्रियारूप (१) और अक्रियारूप (२), इति. ॥

अथ व्यवहाराभास कहते हैंः—जो अपारमार्थिक द्रव्यपर्यायविभागको मानता है, सो व्यवहाराभास है. जैसें चार्वाकमत. क्योंकि, नास्तिक जीवद्रव्यादि नही मानता है. स्थूलदृष्टिसें चारभूत यावत् जितना दृष्टिगोचर आवे, उतनाही लोक मानता है. ऐसें स्वकल्पित होनेकरके झूठ होनेसें चार्वाकमत व्यवहाराभास है.

तथा अन्यग्रंथसें व्यवहारनयका कितनाक स्वरूप लिखते हैं:—भेदोपचारकरके जो वस्तुका व्यवहार करे, सो व्यवहारनय. गुणगुणिका (१) द्रव्यपर्यायका (२) संज्ञासंज्ञिका (३) स्वभावस्वभाववालेका (४) कारककारकवालेका (५) क्रियाक्रियावालेका (६) भेदसें जो भेद करे, सो सद्भूतव्यवहार. । १ ।

शुद्धगुणगुणिका, और शुद्धपर्यायद्रव्यका भेद कथन करना, सो शुद्धसद्भूतव्यवहार. । २ ।

उपचरित सद्भूतव्यवहार. तहां सोपाधिक अर्थात् उपाधिसहित गुणगुणिका जो भेदविषय, सो उपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें जीवके मतिज्ञानादिक गुण है. । ३ ।

निरुपाधिक गुणगुणिकाभेदक, अनुपचरितसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवके केवलज्ञानादि गुण है. । ४ ।

अशुद्ध गुणगुणिका, और अशुद्ध द्रव्यपर्यायका भेद कहना, सो अशुद्धसद्भूतव्यवहार. । ५ ।

स्वजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, परमाणुको बहुप्रदेशी कथन करना. ।६।

विजातिअसद्भूतव्यवहार. जैसें, मतिज्ञान मूर्त्तिवाला है, मूर्त्तिद्रव्यसें उत्पन्न होनेसें. । ७ ।

उभयअसद्भूतव्यवहार. जैसें, जीव अजीव ज्ञेयमें ज्ञान है, जीव अजीवको ज्ञानके विषय होनेसें. । ८ ।

स्वजातिउपचरितासद्भूतव्हवयार. जैसें, पुत्र भार्यादि मेरे हैं. । ९ ।

विजातिउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, वस्त्र भूषण हेम रत्नादि मेरे हैं. । १० ।

तदुभयउपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देश राज्य कीर्ति गढादि मेरे हैं. । ११ ।

अन्यत्र प्रसिद्ध धर्मका अन्यत्र समारोप करना, सो असद्भूतव्यवहार. । १२ ।

असद्भूत व्यवहारही उपचार है, जो उपचारसें भी उपचार करे, सो उपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, देवदत्तका धन. यहां संश्लेषरहित वस्तुसंबंध विषय है. । १३ ।

संश्लेषसहित वस्तुसंबंधविषय, अनुपचरित असद्भूतव्यवहार. जैसें, जीवका शरीर. । १४ ।

उपचार भी नव प्रकारका है. द्रव्यमें द्रव्यका उपचार (१) गुणमें गुणका उपचार (२) पर्यायमें पर्यायका उपचार (३) द्रव्यमें गुणका उपचार (४) द्रव्यमें पर्यायका उपचार (५) गुणमें द्रव्यका उपचार (६) गुणमें पर्यायका उपचार (७) पर्यायमें द्रव्यका उपचार (८) पर्यायमें गुणका उपचार (९). यह सर्व भी, असद्भूतव्यवहारका अर्थ जानना. इसीवास्ते उपचारनय, पृथक् नही है, इति. ।

मुख्याभावके हुए, प्रयोजन, और निमित्तमें उपचार वर्त्तता है; सो भी संबंधके विना नही होता है. संबंध चार प्रकारका है. संश्लेषसंश्लेषीसंबंध (१) परिणामपरिणामिसंबंध (२) श्रद्धाश्रद्धेयसंबंध (३) ज्ञानज्ञेयसंबंध (४). उपचरित असद्भूतव्यवहारके तीन भेद है. सत्यार्थ (१) असत्यार्थ (२) सत्यासत्यार्थ (३) इति. येह १४ भेद व्यवहारनयके जानने. यही व्यवहारनयका अर्थ है. व्यवहारनय भेदविषय है. ॥ इतिद्रव्यार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ पर्यायार्थिकनयके चार भेद लिखते हैं. उनमें प्रथम ऋजुसूत्रका स्वरूप लिखते हैं:—

" ॥ ऋजुवर्त्तमानक्षणस्थायिपर्यायमात्रप्राधान्यतः सूत्रयन्नभिप्रायऋजुसूत्रनय इति ॥ "

अर्थः—भूतभविष्यत्क्षणलवविशिष्ट कुटिलतासें विमुक्त होनेसें, ऋजु सरलही, द्रव्यकी अप्रधानताकरके, और क्षणक्षयीपर्यायोंकी प्रधानताकरके, जो कथन करे, सो ऋजुसूत्रनय है. उदाहरण जैसें, संप्रति सुख विवर्त्त है. इस वचनसें क्षणिक सुखनामा पर्यायमात्रको मुख्यताकरके कहता है, परंतु तदधिकरण जीव द्रव्यको गौणत्वकरके नही मानता है, इति.

अथ ऋजुसूत्राभास कहते हैं:—सर्वथा द्रव्यका जो निषेध करता है, सो ऋजुसूत्राभास है. उदाहरण जैसें, तथागतमत. क्योंकि; बौद्ध क्षणक्षयिपर्यायोंकोही प्रधानतासें कथन करते हैं, और तत्तत्आधारभूत द्रव्योंको नही मानते हैं; इसवास्ते बौद्धमत, ऋजुसूत्राभासकरके जानना.

ऋजुसूत्रके दो भेद हैं. सूक्ष्मऋजुसूत्र, जैसें पर्याय एकसमयमात्र रहनेवाला है (१) स्थूलऋजुसूत्र, जैसें मनुष्यादिपर्याय, अपने २ आयुःप्रमाणकालतक रहते हैं. । इतिपर्यायार्थिकस्य प्रथमोभेदः ॥ १ ॥

अथ दूसरा भेद लिखते हैं:—

"॥ कालादिभेदेन ध्वनेरर्थभेदं प्रतिपद्यमानः शब्दइति ॥"

अर्थः—व्याकरणके संकेतसें प्रकृतिप्रत्ययके समुदायकरके सिद्ध हुआ काल कारक लिंग संख्या पुरुष उपसर्गके भेदकरके ध्वनिके अर्थ भेदको जो कथन करे, सो शब्दनय है. कालभेदमें उदाहरण जैसें, 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुरिति' हुआ, है, होवेगा, सुमेरु. यहां कालत्रयके भेदसें सुमेरुका भी भेद, शब्दनयकरके प्रतिपादन करीये हैं. द्रव्यत्वकरके तो, अभेद इसके मतमें उपेक्षा करीये हैं. । कारकभेदमें उदाहरण जैसें, 'करोति क्रियते कुंभ इति.'। लिंगभेदमें 'तटस्तटीतटमिति'। संख्याभेदमें 'दाराः कलत्रं'। पुरुषभेदमें 'एहि मन्ये रथेन यास्यसि नहि यास्यति यातस्ते पिताइत्यादि'। उपसर्गभेदमें 'संतिष्ठते अवतिष्ठते.'। इति ।

अथ शब्दनयाभास लिखते हैं:—कालादिभेदकरके विभिन्नशब्दके अर्थको भी, भिन्न मानता हुआ, शब्दाभास होता है. उदाहरण जैसें, 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इत्यादिक भिन्नकालके शब्द, तिनका भिन्नही अर्थ कहता है, भिन्नकालशब्द होनेसें. तैसें सिद्ध अन्यशब्दवत्, इति. । 'बभूव भवति भविष्यति सुमेरुः' इसवचनकरके शब्दभेदसें अर्थका एकांत भेद मानना, शब्दाभास है. ॥ इतिपर्यायार्थिकस्य द्वितीयोभेदः ॥ २ ॥

अथ पर्यायार्थिकका तीसरा भेद समभिरूढनयका स्वरूप लिखते हैं:—

"॥ पर्यायशब्देषु निरुक्तिभेदेन भिन्नमर्थं समभिरोहन् समभिरूढइति ॥"

अर्थः—शब्दनय, शब्दपर्यायके भिन्न भी हुए, द्रव्यार्थका अभेद मानता है. और समभिरूढनय, शब्दपर्यायके भेद हुए, द्रव्यार्थका भी, भेद मानता है. पर्यायशब्दोंके अर्थतः एकत्वकी उपेक्षा करता है. उदाहरण जैसें, 'इंदनादिंद्रः, शकनात् शक्रः, पूर्दारणात् पुरंदरइत्यादिः' इस वाक्य-करके इंद्र शक्र पुरंदर इत्यादि एकार्थ पर्यायशब्दमें भी, व्युत्पत्तिभेदसें इसके अर्थका भी, भेद मानता है. शब्दके भेदसें, अर्थका भेद, यह नय मानता है. इतितात्पर्यार्थः । ऐसेंही अन्यत्र कलश घट कुट कुंभादिकोंमें जानना.

अथ समभिरूढाभास कहते हैंः—पर्यायध्वनियोंके अभिधेयको एकांत नानाही मानना, सो समभिरूढाभास है. उदाहरण जैसें, इंद्रशक्रपुरंदर इत्यादि शब्दोंके भिन्नही अभिधेय हैं, भिन्नशब्द होनेसें. करिकुरंग तुरंग करभशब्दवत्. यहां इंद्रशक्रपुरंदर नाम एक भी है, तो भी भिन्नशब्द होनेसें वाच्यार्थ भी, भिन्न है. जैसें हाथी हिरण घोडा ऊंट आदि भिन्नवाच्य है, तैसें यह भी है. यह समभिरूढाभास है। इतिपर्यायार्थिकस्य तृतीयोभेदः ॥ ३ ॥

अथ चौथा भेद लिखते हैंः—

॥ "शब्दानां स्वप्रवृत्तिनिमित्तभूताक्रियाविशिष्टमर्थं वाच्यत्वेनाभ्युपगच्छन्नेवंभूतइति ॥"

अर्थः—समभिरूढनयसें इंदनादि क्रियाविशिष्ट इंद्रका पिंड होवे, अथवा न होवे, परंतु इंद्रादिकका व्यपदेश लोकमें, तथा व्याकरणमें, तैसेंही रूढी होनेसें, समभिरूढ. तथाच रूढशब्दोंकी व्युत्पत्ति शोभामात्रही है. 'व्युत्पत्तिरहिता शब्दा रूढा इति वचनात्' एवंभूतनय, जिस समयमें इंदनादिक्रियाविशिष्ट अर्थको देखता है, तिसकालमेंही इंद्रशब्दका वाच्य मानता है; परंतु तिससें रहित कालमें नही मानता है. इस नयके मतमें तो सर्वक्रिया शब्दही है. यद्यपि भाष्यादिकमें जाति (१) गुण (२) क्रिया (३) संबंध (४) यदृच्छा (५) लक्षण पांचप्रकारकी शब्दप्रवृत्ति कही है, सो

व्यवहारमात्रसें जाननी; परंतु निश्चयसें नही. ऐसें यह नय, स्वीकार करता है. जातिशब्द जे हैं, वे क्रियाशब्दही हैं. 'गच्छतीति गौः' जो गमन करे सो गौ. 'आशुगामित्वादश्वः' आशु—शीघ्रगामी होनेसें अश्व. गुणशब्द जैसें 'शुचिर्भवतीति शुक्लः' शुचि होवे, सो शुक्ल. 'नीलभवन्नान्नीलः' नील होनेसें नील.। यदृच्छाशब्द जैसें 'देव एनं देयात् यज्ञ एनं देयात्'। संयोगी समवायीशब्द जैसें 'दंडोस्यास्तीति दंडी, विषाणमस्यास्तीति विषाणी' अस्ति क्रियाको प्रधान होनेसें अस्तिअर्थमें प्रत्यय है. येह सर्व क्रियाशब्दही हैं. अस्ति भू इत्यादि क्रियासामान्यको सर्वव्यापी होनेसें. उदाहरण जैसें, इंदनके अनुभवनसें इंद्र, शकनक्रियापरिणत शक्र, पूर्दारणप्रवृत्तको पुरंदर कहते हैं, इति.

अथ एवंभूताभास कहते हैं:—अपनी क्रियारहित, सो वस्तु भी, शब्दका वाच्य नही. तत्शब्दवाच्य यह नही है, ऐसा एवंभूताभास है. उदाहरण जैसें, विशिष्टचेष्टाशून्य घटनामक वस्तु, घटशब्दका वाच्य नहीं. घटशब्दप्रवृत्तिनिमित्तभूत क्रियासें शून्य होनेसें, पटवत्. इस वाक्यसें अपनी क्रियारहित घटादिवस्तुको घटादिशब्दवाच्यताका निषेध करना प्रमाणबाधित है. ऐसें एवंभूताभास कहा है, इति.

इन सातों नयोंमेंसें आदिके चार नय, अर्थ निरूपणेमें प्रवीण होनेसें, अर्थनय हैं. अगले तीन नय, शब्दवाच्यार्थगोचर होनेसें, शब्दनय हैं.

अथ इन पूर्वोक्त नयोंके कितने भेद हैं, सो लिखते हैं:—

गाथा ॥

इक्केक्को य सयविहो सत्त नयसया हवंति एमेव ॥
अन्नो वि य आएसो पंचेव सया नयाणं तु ॥ १ ॥

अर्थः—नैगमादि सातों नयोंके एकैकके प्रभेदसें सौ सौ भेद हैं, सर्व मिलाके सातसौ (७००) भेद होते हैं. प्रकारांतरसें पांचही नय होते हैं. सो यदा शब्दादि तीनोंको एकही शब्दनय, विवक्षा करीये, और एकैकके सौ सौ भेद करीये, तब पांचसौ भेद नयोंके होते हैं. ऐसेंही

छसौ, चारसौ, दोसौ भी, भेद नयोंके होते हैं. तथाहि—जब सामान्यग्राही नैगमकी संग्रहके अंतर्भूत, और विशेषग्राही नैगमकी व्यवहारके अंतर्भूत विवक्षा करीये, तब मूल नय छ होते हैं. एक एकके सौ सौ भेद होनेसें, छसौ भेद होते हैं. । जब नैगम १ संग्रह २ व्यवहार ३, तीन तो अर्थनय और एक शब्दनय, ऐसी विवक्षा करीये, तब चार ४ नय; एकैकके सौ सौ भेद होनेसें चारसौ भेद होते हैं. । और द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इन दोनोंके सौ सौ भेद होनेसें, दोसौ भेद होते हैं. यदि उत्कृष्ट भेद गिणीये तो, असंख्य भेद होते हैं.

यदुक्तम् ॥

जावंतो वयणपहा तावंतो वा नया वि सद्दाओ ॥
ते चेव परसमया सम्मत्तं समुदिआ सव्वे ॥ १॥

व्याख्याः—जितने वचनके प्रकार है शब्दात्मक ग्रहण किया हैं सावधारणपणा जिनोंने, वे सर्व नय, परसमय अन्य तीर्थियोंके मत हैं. और जो अवधारणरहित 'स्यात्' पदकरी लांछित है, वे सर्व नय, इकठे करें, सम्यक्त्व जैनमत है.

प्रश्नः—सर्वनय प्रत्येक अवस्थामें मिथ्यात्वका हेतु है तो, सर्व एकठे मिले महामिथ्यात्वका हेतु क्यों नही होवेंगे? जैसें कण कणमात्र विष एकठा करे तो, बृहद्विष हो जावे है.

उत्तरः—परस्पर विरुद्ध भी सर्व नय, एकत्र हुए, सम्यक्त्व होते हैं, एक जैनमतके साधुके वशवर्त्ति होनेसें. जैसें नाना अभिप्रायवाले राजाके नौकर, आपसमें धन धान्य भूमि आदिकके वास्ते लढते भी हैं, तो भी, सम्यग् न्यायाधीशके पास जावें, तब पक्षपातरहित न्यायाधीश, युक्तिसें झगडा मिटायके मेल कराय देता है, तैसेंही यहां परस्पर विरोधी नय, स्याद्वादन्यायाधीशके वश होके परस्पर एकत्र मिलजाते हैं. तथा बहुते जहरके टुकडे बडे मंत्रवादीके प्रयोगसें निर्विष हुए कुष्ठादिरोगीको दीए अमृतरूप होके परिणमते हैं, तैसें नयस्वरूप भी जानलेना.

तदुक्तम् ॥

सत्थे समिति सम्मं वेगवसाओ नया विरुद्धावि ॥
णिच्चववहरिणो इव राओ दासाण वसवत्ती ॥ १ ॥

इति. ॥

पूर्वोक्त नयोंमें पूर्व पूर्व नय बहुविषयवाले हैं, और उत्तर उत्तर नय अल्पविषयवाले हैं. यह नयका स्वरूप, नयप्रदीपादिकसें किंचिन्मात्र लिखा है. विशेष देखनेकी इच्छा होवे तो, शब्दांभोनिधिगंधहस्तिमहाभाष्यवृत्ति, (विशेषावश्यक), द्वादशारनयचक्रादि शास्त्रोंसें देख लेना.

इति नयस्वरूपवर्णनम् ॥

तत्समाप्तौ च समाप्तोयं षट्त्रिंशः स्तंभः ॥ ३६ ॥

दृष्टिदोषान्मतेर्मांद्यादनाभोगात्प्रमादतः ॥
यज्जिनाज्ञाविरुद्धं तच्छोधनीयं मनीषिभिः ॥ १ ॥

यदशुद्धमिह निरूपितमार्यैस्तत्क्षम्यतां प्रसादं मे ॥
कृत्वा विशोध्यतां यत् को न स्खलति प्रमादविवशो हि ॥ २ ॥

यद्यपि बहुभिः पूर्वा—चार्यैरचितानि विविधशास्त्राणि ॥
प्राकृतसंस्कृतभाषा-मयानि नयतर्कयुक्तानि ॥ ३ ॥
तदपि मयेदं शास्त्रं, पूर्वमुनेः पद्धतिं समाश्रित्य ॥
भव्यजनबोधनार्थं, रचितं सम्यक् स्वदेशगिरा ॥ ४ ॥

युग्मम् ॥

श्रीमन्मोहनपार्श्वनाथविमले पट्टीपुरे प्रस्तुतः ॥
श्रीचिंतामणिपार्श्वनाथनिरघे जीरेतिनाम्ना पुरे ॥
ग्रंथोऽयं परिपूर्णतां च गमितश्चंद्रेषुनंदैणभृ-
द्वर्षे (१९५१) भाद्रपदे च शुक्लदशमीघस्रे गभस्तौ शुभे ॥५॥

सुनक्षत्रपुरे रम्ये धर्मनाथप्रतिष्ठिते ॥
घस्रेंजनशलाकायाः पादोनद्विशतार्हताम् ॥ ६ ॥
शिखिबाणांकचंद्राब्दे (१९५३) वल्लभेन मुमुक्षुणा ॥
राकायां प्रथमादर्शोऽलेखि माधवमासके ॥ ७ ॥

युग्मम् ॥

सूर्याचंद्रमसौ यावद् यावच्छ्रीवीरशासनम् ॥
ग्रंथोऽयं नंदतात्तावत् परोपकृतिहेतवे ॥ ८ ॥
कियानप्यस्य शास्त्रस्य श्राद्धैः पट्टीनिवासिभिः ॥
पंडितामृतचंद्राद्यैर्भागोऽस्ति परिशोधितः ॥ ९ ॥

॥ इति शुभं भूयात् ॥

॥ इतिश्रीमद्बुद्धिविजयगणिशिष्यश्रीमद्विजयानंद-
सूरिविरचिततत्त्वनिर्णयप्रासादग्रंथः समाप्तः ॥

यह ग्रंथ मरुदेशवासी (हाल मुंबई निवासी) ओसवाल वालफेना (बाफणा) परमार गोत्रीय जैन (श्वेतांबरी–तपगच्छीय) अमरचंद पी० (पन्नाजी) परमारने स्वमत्यनुसार पदच्छेद प्रूफ आदि शोधन करके प्रसिद्ध किया. याचना है कि पाठक वर्ग दृष्टिदोषकी क्षमा करे.

श्रेयांसि सन्ति बहुविघ्नहतानि लोके ।
कस्येदमस्त्यविदितं भुवि मानवस्य ॥
श्रेयस्तरोऽयमिति यः समयात्ययोऽभूत् ।
तं क्षन्तु मर्हति सदा विदुषां समूहः ॥ १ ॥

अर्थः–किसको विदित नही है कि “अच्छे कार्योंसें बहुत विघ्न होते हैं.” यह ग्रंथ एक बडा सत्कार्य है, जिससें (कीतनीक आफत–मुश्केलीके सबबसें) प्रसिद्ध करनेसें विलंब हुवा जिसकी सुज्ञ साक्षरवर्ग क्षमा करेंगे.

अंतर्लापिका अगम धरमचंद्र दनपत दन मान जीन ।
पकर क्षमाधरम सुपरद तन तलीन ॥

॥ शुभम् ॥

अथ प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	१०-१४	पाणिनी	पाणिनि
,,	१२	न्योर्लेघु	न्योर्लेवु
४	२	श्चंद्रकाश	श्चंद्र:काश
,,	२३	श्वद्रकाश	श्चंद्र:काश
,,	,,	शकटायन:	शाकटायन:
,,	,,	न्यगर जैनें.	न्यगरजैनें.
५	१९	श्रेष्ठोत्तम	श्रेष्ठोत्तम
६	२२	सत्यनिष्ट	सत्यनिष्ट
,,	२७	सम्यकवो.	सम्यक्त्वो
७	३५	सुक्ष्म	सूक्ष्म
८	१०	ग्रंथोसें	ग्रंथोंसें
,,	१२	सद्ग्रंथोके	सद्ग्रंथोंके
,,	२२	महाम्त	माहात्म्य
,,	३३	निष्ठावान	निष्ठावान्
९	९	अग्रेजी	अंग्रेजी
१०	१४	ऋग	ऋग्
,,	,,	यजुस्	यजुस्,
,,	२६	वौधकी	वौद्धकी
,,	३१	विनयत्रीपी	विनयत्रयीपी
११	२	ऐक	एक
,,	२१-२५	ऋषभ	ऋषभ
१२	३	ऋपि	ऋपि
१३	२	(तीर्थोंकी स्थापन करने वाले है)	(तीर्थों) की स्थापना करनेवाले हैं
,,	९	प्रमाण	प्रणाम
,,	१०	स्वस्तिन:	स्वस्तिन
,,	,,	वृद्धश्रवा	वृद्धश्रवा:
,,	११	स्ताक्षों	स्ताक्ष्यों
,,	१२	वलायु	वलायु
,,	१३	वामदेव सांत्यर्थम	वामदेवशांत्यर्थम
,,	,,	सोऽस्माक अरि	सोऽस्माकमरि
,,	,,	पुरुहुत	पुरुहूत
,,	२७	शिष्टान्नपि	शिष्टानपि
,,	२८	महामुनीना	महामुनीनां
१४	३	उनक	उनके
,,	२९	होनसे	होनेसे
१५	११	ऋषिक्त	ऋषिक्त
,,	१६	वेस भी	वे सभी
,,	३०	कुण्डसना	कुण्डासना
,,	३१	जिनेद्रा	जिनेंद्रा
१६	२	सरस्वती हंस,	सरस्वती, हंस
,,	९	तत्त्व:	तत्वत:
,,	१२	विप्रै: य	विप्रैर्य
,,	१४	व्राह्माणोंको	व्राह्मणोंको
,,	१९	मरूदेवी	मरुदेवी
,,	,,	भरते:	भरत:
,,	२०	मरूदेव्या	मरुदेव्यां
२०	१७	मूल	मूलक
,,	१८	मूलके	मूलकके
,,	२३	धर्मकी	धर्मको
,,	२७	पंडितोमें	पंडितोंमें
२२	२१	कचा	काचा
,,	२४	जीज्ञासु	जिज्ञासु
२३	१	है	हैं
,,	२	कीसी	किसी

इति प्रस्तावना शुद्धिपत्रम्

अथ तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	१२	जीन	जिन
,,	२२	समकित	सम्यक्त्व
२	१	पारंगामी	पारगामी
,,	३	ऋपभदेव	ऋपभदेव
,,	१९	जीन	जिस
,,	,,	देवप्रधान	देवार्य
,,	१	चिन्ताचिताः	चिन्तांचिताः
३	९	रुपमद	रूपमद
,,	२०	मुद्रामुत्रिको	मुद्रा मूर्त्तिको
,,	२३	देवकी	देवीकी
४	१०	ससारिक	सांसारिक
५	२५	भद्रबाहू	भद्रबाहु
६	१५	और जो	और
,,	१९	प्रमख	प्रमुख
,,	२०	अनपांगादि	अंग उपांगादि
१	८	कोठे कीतने	कोठेकी तर्रे
९	६	कालमें आचारादि	कालमें आचारादि'
,,	२७	उपासक	उपाशक
१०	१०	पाणिनी	पाणिनि
१२	२५	लिखत	लिखते
,,	२८	कोई अजाण	केई अनजान
१४	६	ऋचार्चे	ऋचार्मे
,,	२४	शुनःशेषादि	शुनःशेपादि
,,	,,	रक्तस्रावर्मे	रक्तस्रावर्मे
५	१०	तदन	तदनु
,,	,,	ऋचार्मे	ऋचार्मे
,,	१२	ऋत्विजो	ऋत्विजो
१६	२०	दुत	दूत
२४	५	जैमिनीयाः पनः	जैमनीयाः पुनः
,,	६	मानं	मान्यं
,,	१९	जर्से	जैसें
,,	२२	जनमतवाले	जैनमतवाले
२५	९	कोइ लोक	केइ लोक
,,	२१	सर्वे	सर्व
२७	७	पृछकके	पृच्छकके
,,	१२	एक्रानिष्ट	एकनिष्ठ
,,	१९	परवादियेंकों	परवादियोंको
,,	२३	प्तहां	तहां
२८	७	मास	भास
,,	१०	अंधकारक	अंधकारका
,,	१८	अनिवडा	अनिद्या
,,	१९	द्रव्य	द्रव्य
२९	४	स्वमात्रसें	स्वभावसें
,,	५	के	०
३२	४	कयीये	करीये
३५	४	जीवनमोक्षावस्थामें	०
३६	२	द्रव्यार्थक	द्रव्यार्थिक
३९	७	ओर	और
४०	४	कारण	क्रियाकारण
४१	१	ब्रह्म	ब्रह्मा
,,	२३-२५	सम्यक्तं	सम्यक्त्वं
,,	२६	गुणमयी / अर्हनकी	गुणमय / अर्हन्का
४२	२१	परन्तप	परन्तपः
४३	१०	सृष्ट्यार्थे	सृष्ट्यर्थे
,,	२१	यावदष्टशतं	यावदष्टशतं
४४	२८	अध्याय	०
४७	६	सवासां	सर्वासां
,,-४८	२१-१५	स्त्रियाओंके-को	स्त्रियोंके-को
५०	१९	भ्रुकुटी	भृकुटी
५७	१०	मृत्यं	मृत्युं
६१	१९	पुरपा	परुषा
६२	१	मुखातटः	मुखावटः
,,	१९	चाभद्दीता	चाभवद्दीता
६६	१६	पिङ्गला	पिंगला
६७	२१	योजम्	योजनम्
६९	१९	प्रमाण	प्रणाम
७१	१५-१७	अद्भुत	अद्भुत
७३	३	प्रसन्नान्	प्रपन्नान्

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	१६	ओर	और
,,	२४	कहे	कह
७४	२६	अतीष्ट	अभीष्ट
७५	२५	- दाकाशः	--दाकाश
७७	१३-२७	देवष्भुणि	देवङ्घुणि
७९	१३	श्रीमहादेब	श्रीमहादेव
,,	२२	विबुधाचित	विबुधार्चित
८०	७	जगन्नीतयस्य	जगन्नितयस्य
,,	१७	पुरुषेत्तम	पुरुषोत्तमः
८३	२३	अयोग्य-योग्य	अयोग-योग
८५	१	'सात्यतगमने	'सातत्यगमने'
८६	१७	समीचा नही	समीचीनही
८७	५	अर्थवालीया	अर्थवालीयां
८८	२५	उपदेशकपणे	उपदेशकपणेका काव्य व छेद व्यवच्छेद
८९	२०	धर्मास्तिकाय आ-	धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आ-
९०	१९	पर्यायोंकी	पर्यायोंकी
९०-९१	२४-२५ २-९	श्रृंग	शृंग
९१	२	प्रवत्तन	प्रवर्त्तन
,,	१२	पांच ज्ञानेंद्रिय, (पांच-	(पांच ज्ञानेंद्रिय, पांच-
९२	५	योग्य .	योग
,,	१९	(भवस्तु)	(भवत्सु)
,,	२१	अथात्	अर्थात्
,,	२५	प्रवर्त्ते	प्रवृत्त
९३	१७	मसूयान्धा	मसूययान्धा
,,	१८	करको	करके
९५	२७	(स्वादौ अत्यंत)	(स्वादौ) अत्यंत
१००	१७	नही क्या? खद्योत	नहीं. क्या खद्योत
१०२	११	ऐसें	सूत्र
१०५	१५	करता है.	कराता है.
१०७	१९	--स्वामी फेर अयोग्य	--स्वामीमें फेर अयोग्य
१०९	११	[illegible] निरयोगीनाथ	[illegible] जितनाचिर योगीनाथ
,,	१९	तितना चिरयोगी जनोंकों	तितनाचिर योगीजनोंकों
११०	९	शंक	शंख,
१११	२	वा सना	कुवासना
,,	४	सम्यक्त	सम्यक्त्व
,,	१२	सर्वकृजाना;	सर्वकुच्छ जाना;
,,	१६-१८	परीक्षमाणा	परीक्ष्यमाणा
,,	२०	(तव)	(तत्र)
११२	२	--षण्णैर्वि--	--षण्णैर्वि--
,,	१७	--बंधः	- बंधाः
११६	१५	हरभ द्रसूरीपादैः	हरिभद्रसूरिपादैः
,,	२४	चन्द्राशु	चन्द्रांशु
,,	२१	(तमस्पृशाम्)	(तमःस्पृशाम्)
११८	१	राग	रागसें
११९	१	जिनोत्तमरूप	जिनोत्तमरूप
,,	२३	मुद्रशेलवत्	मुद्रशैलवत्
१२४	१	येवै नेया	ये वैनेया
,,	८-९-१०-१७	सुर्वण	सुवर्ण
,,	१३	बाह्य	ग्राह्य
१२६	२४	ऋषमदेव	ऋषभदेव
१२७	६	समुद्धत--	समुद्यत--
,,	७	--पाली	--माली
,,	१८	पूर्वोक्क	पूर्वोक्त
,,	२५	श्रीमवीर	श्रीमहावीर
१३०	१८	त्राछगया	त्राछागया
१३८	५	गौतमऋषिने	गोतमऋषिने
१३९	१०	निरच्छयमवच्छयं	निरत्ययमवत्ययं
,,	१५	अच्छावत्ती	अत्यावत्ती
,,	१६	पदच्छ	पदत्य
,,	२५	डिच्छादिवत्	डित्थादिवत्
१४३	१८	चन्द्रास्तेप्यागरी	चन्द्रास्तेप्यामरी
१४५	१	एकात	एकांत
१४७	१६	जगन्मनुष्यायम्	जगन्मनूत्पायम्
१४९	२७	आपके	आपको
१५१	१९	कालकृत्	कालकृत
१५२	९	एको	एकोहं
१५४	५	छंदासि	छंदांसि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५६	१२	स्थलरूप	स्थूलरूप
१५८	१३	न्नाणीयोइ	त्राणीयोइ
,,	,,	कश्चिद्‌दृक्ष	कश्चिद्दक्ष
,,	१४	स्तव्धोदिवि	स्तब्धोदिवि
१६०	३	अमरणभत्र	अमरणभाव
१६२	१७	विचित्रितां	विचित्रतां
१६३	९	क्षरका	०
१६६	१८	श्रीहरी	श्रीहरि
१७१	१४	नही है. ?	नहीं है.
१७६	,,	अश्वत्रिमः	अकृत्रिमः
,,	,,	शास्वत	शाश्वतः
१७७	१	निर्मितनैका	निर्मितानेका
,,	१२	अरे !	अरे,
,,	२३	दिले	दले
१८५	१२	वह्मादि	ब्रह्मादि
१८६	१२	वतलाउं	बतलाओ
१९१	१८	तदानीमम्	तदानीम्
१९५	१	तौ	तो
१९७	२१	द्विर-	द्विरा-
२००	५	यद	यह
२००	१८	जायान्	ज्यायान्
२०४	१८	साम्येद	सौम्येद
२०५	१७	अनित्यं	अनित्य
२०८	५	वा अभावका	या अभावका
,,	९	वा असत्	या असत्
,,	१२	सो–जो	जो–सो
,,	१७	एकात	एकांत
२०९	९	पंचरूप	प्रपंच
२१०	१	जाळ	जाला
२१२	८	जीवों करके	जीवोंके करे
,,	,,	पचं	पंच
	२५	अप्समार, क्षयी	अपस्मार, क्षय
२१३	१४	सपादन	उपादान
,,	२१	विचारोंकेही	विकारोंकेही
,,	२६	जिसमें	जिससें
२१५	४	आपना	अपना
,,	१४	करेनेसें	करनेसें
२१७	१	सीन्नोसीत्-	सीन्नोसदासीत्
,,	२	ठहरेगी	ठहरेगा
२१८	२	होवेंगी;	न होवेंगी;
२२३	१५	इत्यदि	इत्यादि
,,	१८	चक्खु	चक्षु
२२४	११	शूद्रणी	शूद्री
,,	१५	ब्राम्हणी	ब्राह्मणी
२२५	७	कौंकीं	कौंकी
२२९	४	अधार	आधार
,,	९	तदएडम	तदण्डम
२२९–२३०		सर्वांश्च न्युष्टीः	सर्वांश्च व्युष्टीः
२३२	९	ऋगूवेग	ऋगूवेद
,,	१५	भाषानुसार	भाष्यानुसार
२३४	१७	हुआ, था,	हुआथा,
२३५	२३	इसमें	इससें
२३८	६	हैं	है
२३८	१७	भस्मथन्नाग्नि	भस्मच्छन्नाग्नि
२३९	२२	सर्वशक्तिमान	सर्वशक्तिमान्
२४१	२१	विवस्वान	विवस्वान्
२४३	६	स्कम्मन्तम्	स्कम्भन्तम्
२४४	९–१२	उत्स्वास	निःश्वास
२४५	१२	(आजायत)	(अजायत)
२४६	४	करता	कराता
२४७	१	दुसरा	दूसरा
,,	१७	ऋग्वेदं	ऋग्वेदं
२५७	८	श्रृ	शृ
२५८	१७	पठण	पठन
२५९	७	प्रणित	प्रणीत
२६०	१०	वसिष्ठके	वसिष्ठके
२६५	१	उद्देश्यके	उद्दिश्यके
,,	८	इसमें	इससें
२६६	२२	खैंचके	खैंचके
२६७	१	वर्गमें	वर्ग १में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७०	१४	सर्वोंकी	सर्पोंकी
२७० } २७१	२९-१	नमस्कारहै?	नमस्कार करताहै?
२७२	१९	मेऽअस्तु	मेऽस्तु
२७५	२६	सुरांत् 'पिवेइति' श्रुतिः	सुरां पिवेत् 'इति' श्रुतिः
२७९	१४	रचे	रच
२८१	१	(ॐम्)	(ॐम्)
,,	८	भूर्भवः	भूर्भुवः
,,	२३	उवभाया	उवज्झाया
,,	,,	पंचरवर्क	पंचक्खं
,,	,,	परमेष्ठी	परमिट्ठी
२८४	९	ब्रह्माका भी ब्रह्मा	कामी
२८६	९	इंद्रिया	इंद्रियां
२८७	१७	समर्त्त	समूर्त्त
२९२	२७	साक्षाद्द्राष्टा	साक्षाद्द्रष्टा
२९३	१९	ताइ	तांई
,,	२४	किंविष्टे	किंविशिष्टे
२९४	१६	प्रर्यायमेंही	पर्यायमेंही
२९४	२७	जिसवेद	जिस वेदमें
२९६	१९	वह	वह
३००	२	वेदांश्छंदासि	वेदांश्छंदांसि
३०४	१०-१२	करैं	करें
,,	१९	१८८९	१८८४
३०७	२५	धर्महीहै.	ही धर्म है.
३१२	११	तमसा	तपसा
,,	१९	॥४२॥	॥१४२॥
३१३	२७	हिंसको	हिंसाके
३१८	१४	चौंसट	चौसठ
३२०	१	स्वच्छ	सव्वत्थ
,,	११	सावज्झ	सावज्ज
,,	,,	वज्झणाओ	वज्जणाओ
,,	१८	परकपहो	पक्खपहो
,,	२५	गिहच्छ	गिहत्थ
,,	२६	सविग्न	संविग्न
३२१	८	खद्योय	खज्जोय
,,	९	गिहच्छ	गिहत्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	२९	व्यवहारो	ववहारो
,,	,,	छनुमच्छं	छउमत्थं
३२३	३	विंयंयं	विज्जयं
,,	४	वियां	विज्जा
३२४	६	श्लोकः	श्लोक
३२५	१८	स्वति	स्वस्ति
३२८	७	श्रीमदिजिन	श्रीमदादिजिन
३२८	१९	करता	कराता
३२९	४	विस्सुऊ	विस्सुओ
,,	९-६	च्छ—च्छे	त्थ—त्थे
,,	१५	कौसुंभसुत्र	कौसुंभसूत्र
३३२	१९	यशःच	यशः सुखंच
,,	२५	शुक्रःसूर्यसतो	शुक्रःसूर्यसुतो
३३३	७	द्दा	द्धा
,,	१०	वृद्धे	वृद्ध्यै
३३७	१५	सौष्टवं । वर्द्धतां	सौष्ठवं वर्द्धतां ।
३३८	२	स्तभमें	स्तंभमें
३४०	२१	ददता	ददतां
३४२	१३	पर्यन्त	पर्यन्तं
३४३	२०	जातकर्म	नामकर्म
३४५	२	वस्त्रस्त	वस्त्रहस्त
,,	६	वासरकेवंकरेह	वासरक्खेवंकरेह
,,	१९	ऽष्ट	ऽष्टम
३,४६	१७	पट्विक्रयोंको त्याग करे	पट्विकातियोंको एकत्र करे
३४८	२७	भयात्	भूयात्
३४९	१६	बुध,	बुध, गुरु,
३५०	१४	ध्रवं	ध्रुवं
३५१	७	सवच्छ	सव्वत्थ
३५१	७	साद्गाणं	सद्दाणं
,,	१३	उम्मग्रेण	उम्मग्गेण
,,	,,	जणवऊल्व	जणवओव्व
,,	२१	भिरकाग	भिक्खाग
३५२	१	उग्रकुलेसु	उग्गकुलेसु
,,	२	ईरकाग	इक्खाग
,,	४	ईति	इंति
,,	,,	अच्छि	अत्थि

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
		लोगच्छेय	लोगच्छेरय
,,	,,	उसप्पिणि	ओसप्पिणि
,,	५	समुपद्यइ	समुप्पजइ
,,	,,	अरकीणस्स	अक्खीणस्स
,,	६	अणिघिणस्स उदण्णं	अणिजिण्णस्स, उदएणं
,,	,,		
	८	भिरकाग	भिक्खाग
,,		आयाइंसुं वा	आयाइंसु वा
,,	,,	निरकमणेणं	निक्खमणेणं
,,	९	निरकमिसु	निक्खमिसु
,,	,,	कुल	कुले
,,	१२	उग्र	उग्ग
,,	१३	इरकाग	इक्खाग
,,	,,		
३५४	६	श्रूद्रोंको	शूद्रोंको
३५७	२४	पितृतिथि	पित्रतिथि
३५९	१८	स्वकरकारणा	स्वकरणकारणा
३६०	१५	अरकरेसु	अक्खरेसु
,,	१६	ह्रिउ	ह्रिओ
,,	१७	चिंतियमत्तोइ	चिंतियमित्तोवि
३६१	१४	सापाने मंत्रे	सोपानं मंत्रं
३६२	१	मंत्रत्रत्यागे	मंत्रत्यागे
,,	१०	वेद	वेदी
३६३	१९	समादिष्ठं	समादिष्टं
,,	२७	भगवत्	भगवन्
३६४	१२	साभायिक	सामायिक
३६५	१६	परमेष्ठि	परमेष्ठि
३७३	२-२०	दश	एकादश
३७७	१९	पर्णानुज्ञा	पूर्णानुज्ञा
३७८	१	वेदिकरण	वेदीकरण
३७९		चतुावश	चतुर्विंश
३७९	१४	त्याग न	त्यागन
३८७	३	ताइ	तांइ
३८८	२८	पाणिग्रंहत्रय	पाणिग्रहत्रयं
३९०	२	स्सक्कञ्ज- ल्पन्ति	स्सक्कज्ज- ल्पन्ति
,,	३	राजाओं	राजे
,,	१३	वृद्धने	वृद्ध
३९१	२०	पूर्ववत्	पूर्ववत्
३९५	९	पीपकी	पीपलकी
३९६	१०	स्नातकयोप	स्नातकायोप
४००	१२	निविडा	निविडो
४०१	१४	निविड	निविड
४०४	५	निमिडेन	निविडेन
४०७	१४	विवेयस हिया	विवेयसहिय
४०८	२	समच्छो	समत्थो
,,	६	संग्रहसीलो अभिग्रह	संगहसीलो अभिग्गह
,,	७	अविकच्छणो	अविकत्थणो
४१०	३ ४- ५-६	उ; ह्रो; च्छो; दहं; त्रू; वट्टाच्छ	ओ; ढो; त्थो; हदं; ण्णु वुड्ढा; त्थ
४११	३	गर्तिते	गर्हिते
४१२	१९	क्षमाश्रवण	क्षमाश्रमण
४१३	१७	स्वधर्मे	स्वरवर्से
४१२	२५	वायणच्छं	वायगत्थं
४१३	२४	टइयाइं	ठइयाइं
,,	२५	मुरख	मुक्ख
४१४	९	मच्छएण	मत्थएण
,,	१६	सम्स	सम्म
,,	१७	वंदात्रहे	वंदाविह
,,	२१-२२	वत्तियाण	वत्तियाए
४१५	७ २०	अन्नच्छ	अन्नत्थ
,,	१४	खवउ	खवेउ
४१६	८-१६	अन्नच्छ	अन्नत्थ
,,	१३	युक्तानां	युतानां
,,	२०	शासने	शासनं
४१७	१०	निद्दड्ढ	निद्दड्ढ
४१९	१९	निद्याविअ	विद्याविय
४२०	८	महच्छ पुव्वच्छ परमच्छो	महत्थ पुव्वत्थ परमत्थो
,,	१९	अनच्छ	अनत्थ
४२१	२-१९	अहणं	अहण्णं
,,	५	अद्य	अज्ज
,,	६	च्छि	त्थि
,,	१०	च्छ	त्थ

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
,,	११	गहेणं	गहेणं
४२२	६	,,	,,
,,	१९	स माइयं	सामाइयं
,,	२१	वंदित्तु	वंदित्ता
,,	२२	तुम्झेहिं	तुब्मेहिं
,,	२३	च्छे	त्थे
,,	२४	निच्छा	नित्था
४२३	१	पएवेमि	पवेएमि
,,	७	च्छं; च्छ	त्थ; त्थ
,,	१२	च विगईअणाय	चउ विगईअण्णाय
,,	२३	पस्तकांतरमें	पुस्तकांतरमें
४२४	३	जिणपणत्तं	जिणपण्णत्तं
,,	२६	पचम	पंचम
४२६	१३	देवके	देवके विषे
४२८	९	वह	यह
,,	१२	जिवोंको	जीवोंको
४२९	२२	देवके	अदेवके
४३२	१८	यहि	यदि
४३४	१२	सम्यक्त्वों	सम्यक्त्वकों
४३५	१२	मासायिक	सामायिक
४३५	७	अहणं	अहण्णं
,,	२१	उरालिय	ओरालिय
४३६	,,	अहणं	अहण्णं
४३९	१५	मत्ताण	मित्ताण
४४०	२४	तित्थि	तिथि
४४१	७	वुरु	गुरु
४४५	४	|४९|	|४७|
४४५	१८	जोग	जोगं
,,	१४	च्छम्मासं	छम्मासं
४४६	३	सम्यक्त्वारो	सामायिकारो
४४७	१०	अहणं	अहण्णं
,,	१२	उत्थिए	उत्थिए
,,	२२	गहेणं	गहेणं
४४८	२६	रोपणधि	रोपणविधि
४४९	६	सुधारोपण	श्रुतारोपण
४५३	१९	देसियाणं	दसयाणं
,,	२४	विअइच्छउमाणं	विअइछउमाणं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४५५	१६	विहुरयमला	विहूयरयमला
४५६	१०	देवदाणव	देवदाणव
४५७		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१०	सक्कच्छंयंमि	सक्कत्थयंमि
,,	२३	एगेए	एगेण
४५८	८	गिएहओ उवहाणं होओ गिण्ह उ उवहाणं होऊ	
,,	१४	अगिएहमाणोण	अगिण्हमाणाण
४५९		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१	मुहुत्तनरकत्त	मुहुत्तनक्खत्त
,,	७	मललंकेणं	मलकलंकेणं
४६१-४६३		एकोत्रिंश	एकोनत्रिंश
,,	१४	निविण	निव्विण्ण
४६५	१५	इंधनकी	इंधनको
४६६	२३	पुव्वएहे	पुव्वण्हे
४६६	२६	वादंऊण निअमेण	वंदिऊण निअमेण
४६८	३	अयकनी	अयसनी
,,	५	भोवओ	पभावओ
,,	६	रूवाग्ग	रूवारुग्ग
,,	१२	अभिरमेउं	अभिरमेउं
,,	१३	उत्तम	उत्तम
,,	,,	सुद्रा	सुंदरा
,,	१६	निविण	निव्विण्ण
४६९	१३	श्रुवि	शुचि
४७०	१४ १५	भुयासं	भूयासं
,,	१६	निःपापा भूयासुः॥ निःपापा भूयासुः	निरुपद्रवा भूयासुः॥
,,	२४	वंतुः ॥	वंतु ॥
,,	२०	पृथिव्यप्	पृथिव्यप
४७१	४	सुखीत्रवंतु	सुखीभवंतु
४७२	६	सर्वोपिचारे	सर्वोपचारैः
,,	११	भिषेक	अभिषेक
४७२	१३	वृहणं	वृंहणं
४७३	१९	धुपोस्तु	धूपोस्तु
४७४	१४	धुपोस्तु	धूपोस्तु
४७५	२४	शातं	शात
४७७	७	सतभीतितिविवाताहं	सतभीतिविवाताहं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४७८	२९	धान	ध्यान
४८०	६	क्षितिर्न	क्षतिर्न
"	१२	श्रेयकां संनिधानं	श्रेयसां संनिधानं
"	१९	जगत्रयगुरोस्सौभाग्य	जगत्त्रयगुरोस्सौभाग्य-
४८१	६	दूसरी वेर छपी हैं.	
"	१७	ढया	ब्या
४८४	७	जगत्रय	जगत्त्रय
४८५	६	विध्न	विघ्न
४८६	६	इह०	इह०
"	२३	विध्न	विघ्न
४८७	१	दिकपाल	दिक्पाल
"	१९	जगत्रयस्य	जगत्त्रयस्य
४८८	२२	जगत्रयी	जगत्त्रयी
४८९	२४	शक्रस्तव	शक्रस्तव
४९०	४	जगत्रय	जगत्त्रय
"	९	पूष्पां	पुष्पां
"	११	पूष्पादि	पुष्पादि
४९१	२०	पडावश्यक	षडावश्यक
४९१	२३	परमेष्टि	परमेष्ठि
४९१	२३	लोहेण लोहेण वा	पंचिदिअट्टेण पंचिंदिअट्टेण
४९४	१३	भय	भव
४९५	७	रिअवसु	रिअसुव
"	२१	गिरिहामि	गरिहामि
४९७	१६	परमेष्टि	परमेष्ठि
"	२४	वसट्टेणं	वसट्टेणं
४९८	१९	किंचि जंजं ॥	किंचि ॥ जंजं
४९९	९	दसणं	दंसण
५०१	२१	पुष्प	पुष्प
"	२९	यात्राणां	त्रयाणां
५०२	१०	चंद्राद्वे	चंद्राब्दे
५०३	२०	प्रियकर	प्रियवर
५०४	१२	कृत	कृद्
५०६	११	व्यवच्छद	व्यवच्छेद
५०७	१२	वध्यते	बध्यते

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२०	६	इति	ईति
५२१	४	धारासामान	धारासमान
५२२	२३	(स्तैत्येवैनमेतत्)	(स्तौत्येवैनमेतत्)
५२६	११	श्रीन्मु	श्रीमन्मु
३१	२२	स्खंडके	खंडके
५३३	१४	तिनको	तिनकें
"	१६	समाचारी	सामाचारी
५३४	२०	२१ के	२१ वें
५३५	७	वौधमपर्से	बौद्धमतसें
"	९	Jocabi,	Jacobi,
"	२४	करमें	करनेमें
५३५	२९	तिस विषयतक हकीकातसें	तिस विषयक-तहकीकातसें
५४१	१६	मोरको	मोक्खो
५४१	१७	केवला	केवल
५४२	१४	सिद्वि	सिद्धि
५४४	९	उपाधि	उपधि
५४५	२	श्रीजिनभद्रणि	श्रीजिनभद्रगणि
"	२३	जैनभासा:	जैनाभासा:
"	२२	मत्यानु—	मत्यनु
५४९	१३	अठ	अट्ठ
५६३	१०	व्रतिके	वृत्तिके
५६५	१०	सैवना	सेवना
५६८	८	मुक्तिका	भुक्तिका
"	१२	केवल	कवल
५७१	३	सकुल	संकुल
"	२१	केवली	केवलि
५७२	१०	करनेसें?	करनेसें? (५)
५७४	२४	संसोरक	सांसारिक
५८०	१४	अनेकांतिक	अनैकांतिक
५८२	१०	एण्हविऊग	ण्हविऊण
५८३	२२	मोक्षका मानके	मोक्षका हेतु मानके
५८४	१०	ब्रह्माचारी	ब्रह्मचारी
५९३	१२-१३	सो महाभिषेक	सो माला महाभिषेकके
५९९	१६	पुजन	पूजन
"	२१	नैवेद्य	नैवेद्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६००	८	कपिय्य	कपित्थ
६०१	८	देशपरत्न	देशरत्न
६०७	२६	इरखु	इक्खु
६०८	२	वण्णेया	विण्णेया
६१३	३	यताः	यतः
,,	२५	साध	साधु
६१६	१४	निषव्या	निषद्या
६२७	२२	चम्रांवाला	चाठियांवाला
६२९	२४	दिसला	दिखला
६३०	७	सहस्र	सहस्र
,,	१२	उपरात	उपरांत
६३१	१	चलनेमें	चलनेसें
६३८	२	चारिकांक्षिणाम्	चारित्रकांक्षिणाम्
६५०	२१	शीतल	शील
६५८	४	रामश्वर	रामेश्वर
६६१	१०	वक्तमें	वक्तव्यमें
,,	१४	विभजया	विभजनया
६६२	१८	वास्ये	वास्ते
६६७	९	उपकारके	उपकार करके
,,	२१	नानी	नाना
६७५	२५	–मितिः ॥"	–मिति ॥"
६७७	९	घंटातरके	घटांतरके
,,	१५	संयोंगके	संयोगके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६८२	१	तो हेतु	हेतु तो
,,	१९	प्रसंगमें	प्रसंगसें
६८५	२१	जान सकेगा	न जान सकेगा
६८७	१२	अनुमा-	अनुमान
६९०	१७	जीवोंका	जीवोंको
६९१	२३	परका	परको
६९८	१५	मोक्षाद्	साक्षाद्
७०५	१३	जवि	जीव
,,	१५	इति	०
७०७	२४	निर्विशेषं	निर्विशेषं हि
७०८	१६	वतुस्की	वस्तुकी
७०९	१	यादि	यदि
,,	२२	'चलती'	'चलति'
७१२	८	मतस	मतसे
७१८	२२	विभावद्रव्यंजन	विभावद्रव्यव्यंजन
,,	१३	गुणा	गुण
,,	१५	गधांतर	गंधांतर
७२८	६	नहीं डूब जायगा?	नहीं, डूबजायगा.
७३०	४२	तेृताय:	तृतीयः
७३३	२०	व्हवयार	व्यवहार
७३५	३	दृव्योंकों	द्रव्योंको
७३६	३	मेद	भेद

इति तत्त्वनिर्णयप्रासादस्य शुद्धिपत्रम् ।

रा. रा. शेठ वीरचंद दीपचंद सी. आई. इ., जे. पी.

(गोधावी–अहमदाबाद–बंबई).

शेठ वीरचंद दीपचंद सी. आई. इ. जिनका शांत फोटो सामने दृष्टी गोचर हो रहाहै, असलमें अहमदाबाद जिलेमें गोधावी ग्रामके रहनेवाले वीसा श्रीमाली ज्ञातिके हैं, परंतु वहुत कालसे अहमदाबादके निवासी हो गये हैं. इनका जन्म सन १८३२ में हुवाहै. गुजराती, और कुच्छ अंग्रेजीका अभ्यास करके सतरह वर्षकी उमरमें यह म्युनीसीपालिटीमें रु.२४ की छोटी नोकरीपर रहे; सं. १९१४ में अहमदाबादमें नगरशेठ प्रेमाभाई हेमाभाईके संयोगसें बंबईमें इन शेठकी नोकरीमें प्रथम दाखल हुवे. कार्यकुशलता दिखाकर आपने दुकानका कार्य साफल्यतासे चलाया. सन १८६२ में मी. स्टर्नकी तरफसे इनको गुप्त खवर मिली कि अमेरिकामें भारी लडाई होगी जिसपरसे आपने सर रुस्तमजी जीजीभाई, शेठ मयाभाई वगैरहके हिस्सेमें भारी व्यापार करके, वहुत धन प्राप्त किआ. खंडी एकका रुईका भाव, उस समय रु. ७५० तक वढ गया था, इसलिये वह समय ऐतिहासिक कहलाया. और मी. झवेरीलाल उमीया शंकरको मदद देकर उनके नामसे एक कुंपनी जारी की जिसको मेसर्स लुप कुंपनीकी एजन्सी मिलीथी. इसके सिवाय करसनदास माधवदासकी कुंपनीमें भी इनका साजा था.

सन १८६३ के वर्षसें यह ओरियंटल मिल, बॉन्डेड वेरहाउस, कुं० ली०, माणेकजी पीटीट मिल, बेंक ऑफ इंडिया, ब्रोच कोटन मिल आदिके डायरेक्टर नियत हुवे थे.

तदनंतर सन १८७४ में मुंबईके भाटिया ज्ञातिके प्रसिद्ध शेठ मोरारजी गोकलदासने इनकी योग्यतासे प्रसन्न होकर इनको अपने काममें शामिल कर लिया, केवल इतनाही नही वरन अपना भागीदार बनाकर अपने सब कामका बोझा इनपर डाल दिया. इन्होंने भी सब कामोंमें सफलता प्राप्त की और वडा नाम पाया.

सन १८७५ में सोलापुरमें एक मिल शेठ वीरचंदजीने शेठ मोरारजी गोकलदास कुं० की एजन्सीमें स्थापित कर वडी सफलता प्राप्त की. मोरारजी मिल और महालक्ष्मी मिलकी एजन्सीका भी कारभार ये लक्ष देकर करतेथे और शेठ मोरारजीने अपने विलमें आपको एक एक्झीक्यूटर नियत कियेथे, जिस लिये दोनोंही कार्य इनको करने पडते थे.

स्वर्गवासी शेठ मोरारजीके कुटुंबकी खवर रखनेमें, उचित सलाह देनेमें, सुप्रबंध रखनेमें और उत्तम व्यवस्था करनेमें शेठ वीरचंदजीने अच्छी कुशलता दिखाई, और मेसर्स मोरारजी गोकलदास कंपनीकी साफल्यता वहुधा इन्हींके कारणसें हुई है.

उक्त शेठ मोरारजी मिल, सोलापुर मिल, शेठ लालभाई दलपतभाईवाली सरसपुर मिल, झवेरी मिल, धी ओ० नसरवानजी वाडियावाली सेंच्युरी मिल और ग्लोब मिलके डायरेक्टर हैं. और वहुधा मिलवाले इनका अनुभव देखके उनकी सलाहपर चलते हैं.

इन्होंने वहुत अच्छा धन संपादन करके, उसका सदुपयोग भी किआ है. सन १८७६–७७ में सोलापुरके दुर्भिक्षमें इन्होनें लोगोंको वडी भारी मदद दीथी और गवर्नमेंटने इनके कार्यकी कदर ता. १ जनवरी सन१८७७ को एक सरटीफिकेट और ता. १४ डीसंबरको

सरकारी गेजीटमें लेखद्वारा* की है, जिसमें इनकी अमूल्य सेवाकी स्तुति करके धन्यवाद दिया है. संवत १९५६ के दुर्भिक्षके समय सोलापुर, गुजरात आदि स्थानोंमें सस्ते भावपर अन्न वेचनेकी दुकानें खोलकर गरीबोंको मदद देनेमें और जानवरोंको बचानेमें इन्होंने बहुत कुच्छ परिश्रम उठायाथा. गुप्तदान करनेमें इनकी अच्छी प्रतिष्ठा है.

शेठ वीरचंदजी विद्याके उपासक हैं, और विद्याके, साक्षरके, पुस्तक प्रसिद्धकर्त्ता आदिके सदा सहायक बनते हैं. जैनधर्म कार्यमें आप सदा अगुआ रह कर काम करते हैं. "धी जैन एसोसिएशन ऑफ इंडिया," "धी वीरचंद करमचंद जैन युनीयन रीडिंगरूम ऍंड लायब्रेरी" और "मेवाड जैन मंदिर जीर्णोद्धार सभा" के ये अध्यक्ष हैं. मुंबईमें श्रीलालबागके ट्रस्टी और श्री शांतिनाथजीके मंदिरके ये मेनेजिंग ट्रस्टी हैं और वहांका प्रबंध बहुत उत्तम प्रकारसें चलाते हैं. यद्यपि अब ७० वर्षके वृद्ध होगये हैं तथापि ऐसी कोई जैन सभा नहीं होगी, जहां शेठ वीरचंदजी हाजर न होते हों. मक्षीजी तीर्थके, पालीताणेके और कई धर्मके मुकद्दमोंमें इन्होंने मदद दी है. कई पाठशाला और साधुओंको पढानेके लिये पंडितोंको महावार मदद देते हैं. गोघावीमें कन्याशाला, और अंग्रेजी स्कूल, अहमदावादमें खानगी लायब्रेरी और अभ्यासवर्ग आदि चलाकर विद्याकी उन्नतिपर वडा लक्ष देते हैं.

शेठ वीरचंदजी मुंबईके "जस्टिस ऑफ धी पीस" हैं. सोलापुर म्युनीसीपालिटीके कमीशनर और एसेसर थे, और मुंबईकी हायकोर्टके खास ज्यूरर हैं. दुष्कालके समय इनकी सेवासें राजी होकर मान्यवर ब्रिटिश सरकारने महाराणी विक्टोरियाके दस्तखती सनद § वख्शके इनको सन १८९८ में सी. आई. इ. (कंपेनियन आफ धी आर्डर ऑफ धी इंडियन एम्पायर) की प्रतिष्ठित उपाधि प्रदान की, जो पहिले किसी जैनको मिली नहीं है.

ता. २ मार्च सन १८९८ को फेमिन कमिशनको आपने सोलापुरके दुष्काल संबंधी अपने अनुभवका रिपोर्ट दिया था जो कमीशनने वहाल रखा था.

---

† सर्टीफिकेट—By Command of His Excellency the Viceroy and Governor General, this Certificate is presented in the name of Her Most Gracious Majesty Victoria, Empress of India, to Veerchand Dipchand in recognition of his valuable aid in relieving distress, caused by the failure of the monsoon of 1876.

January 1st, 1877. (Sd.) P. WODHOUSE, Governor.

---

* लेख—Extract from para 65 of a minute by the Governor, Bombay, dated 24th December 1877 on the Famine of 1876-77 in the Bombay Presidency, is forwarded to Mr. Veerchand Dipchand.

(Sd.) C. J. Merriman, Col. R. E.
Ag. Secretary to Government.

The following gentlemen have deserved the gratitude for charitable munificence or for benevolent exertion personally during this trial.

\+ + + + +

Mr. Veerchand Deepchand, SHOLAPUR.

(Sd.) VICTORIA.

§ सनद—Victoria by the Grace of the United Kingdom of Great Britain and Ireland, Queen, Defender of the Faith, Empress of India and Sovereign of the Most Eminent Order of the Indian Empire.

सन १८९९ में इनके ऊपर एक वडी भारी सांसारिक आपत्ति आई कि इनके ज्येष्ट पुत्र मी० वाडीलाल जो एक वडे बुद्धिमान और दृढ पुरुष थे, ४२ वर्षकी उमरमें काल कर गये.

शेठ वीरचंदजीका भारी संवंध सरकारी आफिसरोंमें और वडे व्यापारीओंमें है, इतनाही नहीं, परंतु महीसूर आदि राज्योंके साथ दोस्ताना हक है. जूनागढ, कच्छ, वडोदा आदि राज्योंमें भी उनका वडा वसीला है. सलाह मसलत करने और इनके अनुभवसे लाभ उठानेको बहुत बडे आदमी पसंद करते हैं. पुरानी और नई दोनों प्रणालिका आपको पूरा अनुभव होनेसें प्रत्येक कार्यमें सफलता प्राप्त करते हैं.

सन १९०३ में ब्रिटिश सरकारकी ओरसे इनको विशेषरूपपर आमंत्रण होनेपर आप दिल्ली दरबारमें पधारे थे, और अच्छा मान पाया था.

शेठ वीरचंदजीके वडा कुटुंब है और अब उनको एक पुत्री रुक्षमणी (दो काल करगई) मी. भोगीलाल और साराभाई दो पुत्र तथा दलसुख और कांतिलाल दो पौत्र और समर्थ एक पौत्री है, जिनके भी संतान विद्यमान है. इनके विद्याभ्यासके लिये ये पूरा परिश्रम करते हैं और मी. भोगीलाल इनके धंधेमें प्रवृत्त रहे हैं.

स्वर्गवासी मि० वीरचंद राघवजी गांधीको विद्याभ्यास करानेमें, उनको अमेरिका भेजनेमें, उनको व्यारिस्टर वनानेमें और वहांसे पीछा आनेपर अपने मकानपर रखकर इन्होंने द्रव्यसे वडी मदद दीथी और उनकी विमारीमें भी औषध आदि करानेमें पूरा परिश्रम उठाया था परंतु खेद है कि ये वीरपुरुष न जिये, नहीं तो इन वृद्धात्माको वडा आनंद प्राप्त होता.

धर्मसंवंधी ज्ञातिसंवंधी अथवा आपसमें कोई वखेडा खडा होनेपर यदि शेठ वीरचंदजी वीचमें पडते हैं, तो दोनों पक्षको राजी करके झगडा आगे वढने नहीं देते हैं, ये इनकी खूबी है. इनकी वदौलत इनके कुटुंबीही नहीं, वरन वहुतसे जैन और दूसरे लोग भी अपनी रोटी कमा रहे हैं, और उनको धन्यवाद देते हैं.

जैनोंकी धार्मिक, सामाजिक और औद्योगिक स्तिथिकी उन्नतीका प्रयास करनेवाली वंवईकी दूसरी जैन (श्वेतांवर) कॉन्फरन्सकी रीसेपशन (स्वागत) कमिटीके ये अध्यक्ष चुने गये थे.

ये महाशय स्वभावके अति नम्र, दयावान, श्रद्धालु, शीलवान, प्रत्येकको प्रेमदृष्टीसें देखनेवाले, निराभिमानी, स्वदेश-धर्म-जातिके उत्तेजक, आनंदी, कुनेहसे काम करनेवाले, उद्योगी, विनयी आदि अनेक गुणसंपन्न हैं.

जैनभाईयोंकी ओरसें इनकी धर्मसेवाका वहुमान्य होना अवश्य है. हम इनकी दीर्घायु चाहते हैं और आशा करतेहैं कि ये सदा धर्मकार्यमें प्रवृत्त होकर उन्नति करते रहैंगे. !!!

To Veerchand Deepchand of Ahmedabad in the Bombay Presidency Esq.

Greeting, Whereas we have thought fit to nominate and appoint you to be a Companion of our said most Eminent Order of the Indian Empire, we do by these Presents grant unto you this dignity of a Companion of our said Order and hereby authorise you to have, hold and enjoy the said dignity and rank as a Companion of our aforesaid Order to-gether with all and singular the perivileges there unto belonging or appertaining.

Given at our Court at Osborne, under our Sign, Manual and the Seal of our said Order, this first day of January 1898, in the Sixty First year of our Reign.

By the Sovereign's Command.
(Sd.) GEORGE HAMILTON.

तत्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथके सहायक महाशयोंके संक्षिप्त जीवन वृत्तांत और चित्र (तस्वीरें).

जबसे यह ग्रंथ मुझको सर्वाधिकारके साथ श्रीमद्विजयानंदसूरीश्वरजी (आत्मारामजी) महाराजकी ओरसे मिला था तबहीसे मैं इस उद्योगमें था कि पुस्तकको ऐसे ढंगसे प्रकाशित किया जाय कि इसके उत्तम और सस्ते होनेके कारण सब लोग इससे लाभ उठासकें.

इस पुस्तकमें शेठ वीरचंद दीपचंद सी. आई. ई. जे. पी., रावबहादुर शेठ माणेकचंद कपूरचंद और स्व० शेठ मगनभाई कपूरचंद, रावसाहेब शेठ वसनजी त्रीकमजी जे. पी., तथा स्वर्गवासी शेठ तलकचंद माणेकचंद (कोल पूर्ण नही हुवा) से जो २ सहायता मिली है उसकेलिये मैं उन महाशयोंको हार्दिक धन्यवाद देता हूं.

पहिले इस पुस्तकको रु० ५) मूल्य रखकर साधारण रीतपर छपवानेका मेरा विचार था परंतु उक्त महाशयोंकी सहायतासे चिकने पुष्ट कागज, सुंदर सुनहरी जिल्द, बडे अक्षर, ८८० पृष्ठके आकार, २२ अति उत्तम चित्र, रंगीन वंशवृक्ष तथा जीवन चरित्र आदिसे पुस्तकको सर्वांग सुंदर बनानेमें त्रुटि नहीं की गई है, ऐसी दशामें इसका मूल्य यदि रु० ७) भी रक्खा जाता तो अधिक नहीं था, परंतु उक्त महाशयोंकी सहायतासे इसकी न्योछावर सर्व साधारणके सुभीतेके लिये केवल रु० ४) ही कर दीगई है. केवल इतनाही नहीं वरन साधुमुनिराज, और भंडार आदिमें बहुत प्रति विना मूल्य भेट की गई हैं. इनामके लिये खरीदनेवालेको और गरीव जैनोंको खास कम भावसे दी जातीहै.

साधु मुनिराजोंके फोटोके उपरांत उपरियुक्त जिन महाशयोंसे इस कार्यमें सहायता मिली है उनके और स्व० मी० वीरचंद राघवजी गांधीका संक्षिप्त जीवन चरित्र और चित्र अमेरिका आदिसे बडे व्ययसे प्राप्तकर उक्त महाशयोंकी इच्छा न रहनेपर भी उनसे मिली हुई सहायताके उपलक्ष्यमें दिये गये हैं, जिनसे हम लोगोंको उनका अनुकरण करनेकी शिक्षा प्राप्त हो.

अमरचंद पी० परमार, प्रसिद्धकर्त्ता.

चित्रोंकी अनुक्रमणिका.

रा. ब. शेठ माणेकचंद कपूरचंद और स्व. शेठ मगनभाई कपूरचंद.

ये दोनों भाई जिनका गंभीर, संयुक्त फोटो सामने दृष्टिगोचर हो रहा है, वीसा ओसवाल जैन ज्ञातिके हैं, और पूना तथा मुंबईमें निवास करते हैं. असलमें ये अहमदावादके हैं, और इनके पूर्वजोंमेंसें शेठ दीपचंदके पुत्र, शेठ कीकाचंदको लालभाई और वजेचंद दो पुत्र थे. लालभाईका वंश अहमदावादमें है, और लगभग सो वर्ष पहिले शेठ वजेचंद पूनामें जाकर आवाद हुवे. जवाहरातके धंधेमें अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त करके ये पेश्वा सरकारके जवहरी नियत किये गये; और उन्हींकी सहायतासें एक बडा मकान शनिवार पेठमें वनवाया.

पूनामें सवाई माधवराव पेश्वाके समयमें जब किलेका काम आरंभ हुवा, तब नाना फडनवीसकी ईच्छानुसार इन्होंने किलेके बाहर जवहरीवाडा वसाकर व्यापारकी वडी उन्नति की. ये प्रत्येक जैनकार्यमें अग्रणी बनते थे, और बहुतसें जैन मंदिर वनवानेमें इन्होंने सहाय दीथी. संवत १९०१ में ८८ वर्षकी वयमें इन्होंने स्वर्गवास किया. इसी समयसें यह दूकान शा. वजेचंद कीकाचंदके नामसें आजपर्यंत चल रही है. वह दूकान कई वार मरहठाओंसें लूटी गई थी.

उक्त शेठ वजेचंदको कपूरचंद, वमलचंद उपनाम वापूभाई और उत्तमभाई तीन पुत्र थे. शेठ कपूरचंद बहुतही शांत प्रकृतिके महाशय थे. वे सांसारिक कार्यसें बहुधा विरक्त रहते थे; उनको एकांतवास वहुत पसंद था और वे धर्ममें दृढ श्रद्धावान थे.

शेठ वापुभाईने व्यापारादि भली प्रकार चलाकर अच्छा धन और प्रतिष्ठा प्राप्त किया. पूनाकी पींजरापोल पहलेही बनानेमें और उसके निर्वाहके लिये अच्छा प्रबंध करानेमें इन्होंने बहुतही परिश्रम उठाया था, और अंत समयतक उसके ट्रस्टी थे.

उक्त शेठ कपूरचंदके वडे पुत्र शेठ मगनभाईका जन्म संवत १८९३ में हुवाथा. वह पूनाहीमें रहकर सराफी और जवहरातका काम करते थे. मंदिरोंका कारबार जो पहलेसें इनके घरानेमें है, वह अच्छी तरह चल रहा है, और वह पींजरापोलके ट्रस्टी थे. इनके छोटे भाई शेठ माणेकचंदका जन्म संवत १८९८ में हुआ था. संवत १९१६ में इनकी दूकान वंबईमें भी स्थापित हुई और दूसरेही वर्ष शेठ माणेकचंद अपनी दूकानपर किह्लीदारीका काम करने लगे. शेठ वापुभाईकी शिक्षासें इस छोटीही अवस्थासें इन्होंने वडे होसलेके साथ धन और मान प्राप्त करना प्रारंभ किया.

सन १८७६ में सोलापुरके दुष्कालके समयमें हजारों जानवरोंकी प्राण-रक्षा करनेमें इन्होंने बहुत परिश्रम कर सब कार्यका भार अपने हाथमें लेकर बहुतही अच्छा प्रबंध किया. वणिकबुद्धि, कार्यकुशलता और दीर्घदृष्टीसें जो काम ये हाथमें लेते हैं, उसे आप अच्छी तरह पूरा करनेमें कभी कमी नहीं रखते हैं.

ये दावुद सासुन मिल और पायोनीयर मिलकी एजंसी, आढत, जवाहरात, सराफी, इस्टेट, रुई आदिका धंधा सफलतासें करते आये हैं. अपनी मीठी जवान, उद्योग और बुद्धिबलसें इन्होंने अनेक मित्र करलिये. किसीके बीचमें टंटा बखेडा पडता है तो ये मिटा देते हैं.

संवत १९४८ में बंबईके श्री गोडीजी पार्श्वनाथजीके जैनमंदिरमें ये मेनेजींग ट्रस्टी हुवे. ये मंदिर अव्वल गिना जाता है और वह देवसूर-तप गच्छकी मालकीका है. यहांसें बाहरगांवके बहुतसें मंदिरोंको सहायता पहुंचती रहती है. आप वहांका कार्य बहुत भली प्रकार चला रहे हैं और जातिश्रम करके मंदिरका देवद्रव्य और इस्टेटकी अच्छी उन्नति करते हैं. इन्हींके समयमें भगवानके मुकुट आदि आभूषण सुंदर बनवाये गये; मंदिरका हिसाब छपाकर प्रसिद्ध करनेका सुधारा अवश्य ये शेठ अंगीकार करेंगे ऐसी आशा है.

सं० १९५२ में जब मुंबईमें प्लेगकी बीमारी हुई तब अगुआ होकर इन्होंने एक चंदा करके पहलेही पहले जैन हॉस्पीटल स्थापन किया और सेक्रेटरी मी० अमरचंद पी० परमारकी स्तुतिपात्र सहायतासें सेग्रेगेशन, हास्पीटल आदिका अच्छा प्रबंध प्लेग कमीटीको भी जोर शोर दे कराकर लोकोंकी नासभाग, छिपछिपी, धर्मभ्रष्ट होने आदिकी आपत्ति दूर करा दिया. इनको इस सेवाके उपलक्षमें ता. २१ जुलाई सन १८९७ को जैनबंधु और कपोलकोमकी ओरसें प्लेगकमीटीके चेअरमेन जनरल डबल्यु गेटेकरके हाथसें माधवबागमें एक महती सभामें मानपत्र दिया गया. मान्यवर गवर्नमेन्टने भी आपको दिसंबर सन १८९८ में रावबहादूरकी उपाधि प्रदान की. सं. १९५६ के भीषण दुकालमें जब प्रतिष्ठावाले घरानेके जैन लोग भी अन्नको तरसते थे तो आपने उनकी सहायता अमेरिकन कौंसल मि. विलियम टी. फीके उद्योगसें प्राप्त तथा यहांपर फंडद्वारा तथा निजके धनसें बहुत अच्छी तरह की थी.

शेठ बापुभाईका स्वर्गवास संवत १९३६ में हुवा. उनको एक पुत्र और एक पुत्री है. पुत्र मी. अंबालालका जन्म सं. १९३३ में, शेठ माणेकचंदके पुत्र मी० नेमकचंदका सं० १९३२ में, और शेठ मगनभाईके पुत्र बाबुभाईका सं० १९५६ में हुवा. शेठमगनभाईको दो पुत्री भी हैं. शेठ मगनभाईका स्वर्गवास पूनामें सं. १९५९ के श्रावण सुदि १४ को हुवा.

आशा की जाती है कि भविष्यत्में मी० अंबालाल एक अच्छे अर्थशास्त्री और मी० नेमचंद एक नामी जवहरी होंगे. मी. अंबालाल जैन कॉन्फरन्सकी इंटेलीजंस, हेल्थ और वॉलंटीयर कमिटीके अध्यक्ष नियत किये गये थे जो कार्य उन्होंने कुशलतासे किया.

यद्यपि ये पूनानिवासी हो गये हैं, तो भी राह रसम अहमदाबादकी रखकर अपनी पुत्रियोंका विवाह वहांही करते हैं. सात पीढीतक इनकी प्रतिष्ठा एक समान चली आई है.

जैनोंके मुकद्दमें आदि धर्मकार्यमें ये अच्छा लक्ष देते हैं. गुप्त द्रव्यद्वारा गरीब जैन कुटुंबोंको और पुस्तकद्वारा मुनिराज और विद्यालयोंको सदा सहायता करते रहते हैं.

अहमदाबादमें इनके पूर्वजोंका बनाया हुआ जैनमंदिर है. उसके जीर्णोद्धारके लिये आप तयारी कर रहे हैं; और इनके पूना तथा बंबईके दोनों निवासस्थानमें शोभनीय घर देरासर हैं.

दूसरी जैन (स्वेतांबर) कॉन्फ़रन्सकी "मंडप कमिटी" के आप अध्यक्ष नियत किये गये थे. और मंडपके और स्थायी फंडके कार्यमें इन्होंने स्तुतिपात्र मदद दी थी.

शेठ माणेकचंद स्वभावके बडे नम्र, विचारशील, निराभिमानी, कुटुंबप्रेमी, श्रद्धालु, वचनके पूरे, विनयी और शीलवान हैं, और मित्रोंको सहायता करने, दीनोंकी रक्षा तथा परोपकारमें सदा तत्पर रहते हैं.

हम इस कुटुंबकी सदा वृद्धि और दीर्घायु चाहते हैं !!

रावसाहेब शेठ वसनजी त्रीकमजी मूलजी, जे. पी. मुंबई.

अगले पृष्ठके उपर सुंदर चित्र उन महाशयका है कि जिन्होंने बहुत छोटी उहरसेंही ज्ञानवृद्धि और परोपकार वृत्तीमें अपना दिल लगाना आरंभ किया है.

शेठ वसनजी कच्छके दशा ओसवाल ज्ञातिके जैन गृहस्थ हैं. कच्छमें सूंथरी ग्राम इनकी जन्मभूमि है; परंतु बहुत कालसें ये मुंबईके रहनेवाले हो गये हैं. इनका जन्म विक्रम संवत १९२२ के द्वीतीय ज्येष्ट वदि ११ के दिन हुवाथा. भाग्यवान पुत्रके उत्पन्न होनेसें पिताका व्यापार बहुत बढ गया. अंतराय कर्मके उदयसें माता इनको चार दिनका छोडके कालका ग्रास बन गई. इनके पिता और पितामह (दादा) शेठ मूलजी देवजीने बडी होशिआरीके साथ इनका पालन किया. जन्मसेंही पिताके प्रेममें पूर्ण रीतिसें रहनेसें माताका वियोग मालूम न हुआ. दुर्भाग्यसें ८ वर्षकी उमरमें इनके पिता भी स्वर्गवासी हो गये. वृद्ध पितामहके ऊपर पौत्रकी लालन पालनकी चिंता आपडी. पितामहका इनपर प्यार बढत गया. अभाग्यवश पितामह भी संवत १९३२ में इनको १० वर्षका छोडके देवलोकको प्राप्त हो गये, परंतु जन्मसेंही इष्ट वियोगका दुःख सहन करनेका अभ्यास होनेसें दुःखको इन्होंने वश कर लिया. इनका धंधा सत्यवादी, निमकहलाल, और अनुभवी मुनीम शा. लखमसी गोविंदजीके हाथमें होनेसें बहुत अच्छी तरह चलता रहा. शेठ वसनजीने जैनशालामें गुजराती भाषाका और कुछ अंग्रेजीका भी अभ्यास कर लिया. कई श्रीमंतके लडके लाडसें और मातापिताके अभावसें अभिमानी, स्वेच्छाचारी, उद्धत और दुर्व्यसनी वन जाते हैं, वैसा हाल इनके मुनीमके पूर्ण अंकुशसें और निजकी बुद्धिसें न होने पाया, वरन वालक सोदागर वने रहे.

संवत १९३४ की सालमें ज्ञातिनायक शेठ नरसी नाथाके कुलकी कन्या खेतवाईसें इनका लग्न हुवा, और प्रेमावाई और लीलवाई दो पुत्री उत्पन्न हुई. इनकी प्रथम स्त्रीके कालवश होनेसें उक्त नरसी शेठकी पौत्री रतनवाईसें संवत १९४६ में इनका दूसरा विवाह हुवा. और संवत १९५१ में मेघजी उपनाम काकुभाई नामक पुत्र उत्पन्न हुवा.

शेठ वसनजी अपने रोजगारमें पूरी उन्नति करते रहें. इनके चेहरे और वर्तावसें नम्रता, सादापन, विनय, गुण, शांति, धर्मप्रेम, निराभिमान, सत्यता, शुद्धांतःकरण और नीति स्पष्ट प्रकट होती है. इन गुणोंसें अलंकृत होकर इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा अपनी ज्ञातिमेंही नहीं वरन मुंबईके नामी सोदागरोंमें बहुत बढा ली है. हुवली, वारसी, अहमदनगर, खंडवा, धुलीया, आकोला, खानगाम, आकोट, वढवाण आदि नगरोंमें इनकी दुकाने हैं; और सेंकडों मनुष्य इनकी वदौलत उदरपोषण कर रहे हैं. इनके मुनीम गोविंदजी शामजीकी नेकी प्रसंशनीय होनेसें भी शेठ वसनजीको वडा सुविधा रहा. वह मुनीम अब कालवश हो गये.

यह महाशय वडे उदार हैं, और इस छोटी उमरमें भी आजपर्यंत अनुमान रु. चार लाख सुकृत और धर्मकार्यमें लगा चुके हैं, और आगेके लिये भी धर्मकार्यमें कटिवद्ध हैं. धर्ममें ऐसें दृढ हैं कि, हुवलीके जैन मंदिरका प्रबंध स्वयं करते हैं, और इनके सुप्रबंधसें बहुत रुपैया भंडारमें जमा होगया है. संवत १९३४ में इनके पिताने सायेरा—कच्छमें जो जैन

मंदिर बनवाया था, उसका प्रतिष्ठा महोत्सव आपने मुंबईसें संघ ले जाकर बडी धूमधामसें कियाथा. और रु. १२ हजार खरच कर दक्षिणमें बारसी नगरमें एक जैन मंदिर बनवाया है.

संवत १९४९ में ब्राह्मणोंको भोजन कराने न करानेके विषयमें इनकी ज्ञातिमें दो पक्ष पडगयेथे, उस समय शेठ वसनजी पुरानी रीति भांति और प्रणाली अच्छी समझकर ज्ञाति शेठ नरसीनाथाके पक्षमें रहे थे. दोनों पक्षके इसमें लाखों रुपये व्यय हो गये. इस बातको वहुत बुरी समझके इस रगडेको मिटानेके लिये आप ऐसा उद्यम करने लगे कि दूसरे पक्षके समझदार पुरुष भी इनकी प्रशंसा कर रहे हैं. अब झगडा मिट गया.

संवत १९५२ में अपनी ज्येष्ट पुत्रीका लग्न इन्होने बडी धुमधामसें किया. उसी सालमें इतनी छोटी उमरमें इनके शुभ गुणों और परोपकार वृत्तीको देखकर ब्रिटिश सरकारने इनको जस्टीस आफ धी पीस (J. P.) की सुप्रतिष्टित उपाधि दी. इनकी सादगीकी जितनी प्रशंसा की जाय इतनी थोडी है. यात्रासें वापस आनेपर मानपत्र देनेकी तयारी देखकर इन्होंने यही कहा कि, जो पैसा आप इस कार्यमें लगावें, वो कोई अच्छा कार्यमें लगावें तो उचित है. जनहितमें सुवृत्तिको प्रवर्त करना मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है.

अपने ज्ञातिभाईओंका श्रेय करनेके लिये यह सदा तत्पर रहते हैं. सुना जाता है कि, इनका विचार एक जैन सेनिटेरियम (आरोग्य भवन) बनानेका है.

संवत १९५२ में जब हिंदुस्थानभरमें दुर्भिक्ष पडा था, तब इन परोपकारी शेठने दुकालके चंदोंमें अच्छी सहायता दी, इतनाही नहीं वरन गरीबोंको सस्ते भावसें अनाज वेचनेके लिये, आपने दुकानें खोल दी; और खरीद भावसें भी वहुत कम दामोंमें अनाज विकवाते रहे. इसी सालमें जब बंबईमें प्लेगका प्रकोप भयंकर रुपसें फैला हुआ था, लोगोंमें भागाभूगी तथा धरपकड हो रही थी और सरकारी "प्लेग कमिटी" बीमारोंको सरकारी होस्पीटलमें लेजा रहीथी, उस समय आपने ज्ञातिबंधुओंको ऐसी दुःखी हालतमें देखकर अपने खरचसें ता. २७ मारच १८९७ को एक "कच्छी दशा ओसवाल जैन हास्पीटल" स्थापन की जिससें रोगी सरकारी होस्पीटलमें जानेके बदले अपनी ज्ञाति होस्पीटलमें जाने लगे जहांपर बहुतसें आरोग्य होगये, और शेठ वसनजीको धन्यवाद देने लगे. धनका सदुपयोग ऐसेंही सत्कार्यमें करना उचित है. होस्पीटलका प्रबंध ऐसा उमदा रहा कि, प्लेग कमिटी और समाचार पत्रोंने बडी प्रशंसा की थी. अनुमान ६००० रुपये इन्होंने निजके खरच किये. कच्छ मांडवीकी प्लेगमें और सैंकडों फंडोमें आपने अच्छा चंदा दिया और प्रत्येक अच्छे कार्यमें सहायक होना आप अपना कर्त्तव्य समझते हैं.

विद्यावृद्धिके प्रत्येक कार्यमें शेठ वसनजी मदद देते ह. "साक्षर साहायक-प्रजाबोधक मंडली" के यह पेट्रोन है. और गरीब विद्यार्थीयोंको, स्कुल फी व दूसरी मदद देते रहते हैं. शेठ वसनजी "शेठ तापीदास वरजदास मिल" के डीरेक्टर है और हरेक सार्वजनिक कार्यमें आप प्रसन्नतासें शामिल होते हैं. इनकी उदार वृत्तीसें प्रसन्न होकर ब्रिटिश सरकारने इनको रावसाहेबकी उपाधि प्रदान की.

सहायताके सिवाय इस ग्रंथकी १२९ प्रति इन्होंने मुनिराज और पुस्तकालय आदिको भेट देनेके लिये खरीदी हैं.

हम शेठ वसनजीकी दीर्घ आयु चाहते हैं और देशहित, धर्महित और ज्ञातिहितके और भी अच्छे कार्य आप सदा करते रहैं, यही हमारी अभिलाषा है. तथास्तु !!

स्वर्गवासी शेठ तलकचंद माणेकचंद, जे. पी. मुंबई.

शेठ तलकचंद जिनकी सुंदर तस्वीर अगले पृष्टपर है, असलमें सूरतके रहनेवाले थ. डच, फ्रेंच, फिरंगी, इंग्रेज आदिने प्रथम सूरत बंदरमेंही आकर अपनी कोठीएं की थी.

इनके पूर्वज शेठ नानाभाई गलालचंद डचोंके सराफ थे. उक्त नानाभाईके पौत्र शेठ माणेकचंदके ये पुत्र थे. इनकी माता बाई विजयकुंवर वडीही धर्मात्मा थी. इनका जन्म सं १८९९ के वैशाख सुदि १३ को हुवा था. उनके चार भाई और तीन वहनोंमेंसें दो भाई और दो वहन विद्यमान हैं, सो भी अच्छे सुखी हैं.

छोटी उमरसेंही इनको विद्यापर भारी प्रिति थी, और उस समयमें भी इंग्रेजी आपने पढ लिया था. इनका प्रथम विवाह सं० १९१५ में बाई जीवकोरके साथ हुवाथा. बारह वर्ष पीछे वह कालको प्राप्त हो गई. उनसें एक पुत्र मि० सोभागचंद और एक पुत्री हुई. इनका दूसरा विवाह सं. १९२८ में चंदनबाईके साथ हुवा था.

शेठ तलकचंद मुंबईमें आतेही रुई, जवाहरात, शेर और बेंककी हुंडीकी दलाली आदिमें अच्छा धन और मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करने लगे. मेसर्स तलकचंद शापुरजीके नामसें धंधा करके इन्होंने लाखों रुपये पैदा किया. मि० शापुरजी एक लायक पारसी महाशय हैं.

पालीताणाके जुलम केसमें, मक्षीजी आदि केसोंमें इन्होंने अपने समय और धनका भोग देके जैन धर्मकी अच्छी सेवा कीथी.

बंबईकी " धी जैन एसोसिएशन आफ इंडिया " के ये सेक्रेटरी, वाइस प्रेसिडंट और अध्यक्ष भी थे. महुवा रीलीफ फंड, गुजरात फीवर रिलीफ फंड आदिके भी ये अध्यक्ष थे, और बंबईकी प्रत्येक कमेटीमें ये मेम्बर नियत किये जाते थे. जैन पंचायत फंडका बीज भी इनहीके उद्योगसें रुपाया; और कई जैन मंदिरके ये ट्रस्टी भी थे.

शेठ तलकचंदने वडी वीरतासें Society for the Prevention of Cruelty towards Animals (प्राणि रक्षक मंडली) की स्थापना करवाके उसके खरचेके लिये लागे लगाकर अच्छा प्रबंध करवाया. "लेडी साकरबाई दीनशा पीटीट हॉस्पिटल" के यह ट्रस्टी थे. वहुतसी कंपनीओंके ये डीरेक्टर थे और मरकंटाईल प्रेस, कुकावाव प्रेस आदिके एजंट थे. बेंक संबंधी कार्यमें इनका अनुभव वहुत ठीक था और अच्छे मनुष्य इनकी सलाहसें चलते थे.

इन्होंने लगभग एक लाख रुपैया धर्मकार्यमें व्यय किया होगा. जैन निराश्रित फंडमें रु. पांच हजार दिए थे और सूरतमें अपनी वाडीमें एक जैनमंदिर बनवाया. श्री पालीताणामें एक जैन लायब्रेरी और मुंबईमें अपनी धर्मपत्नीके नामसें " चंदनबाई कन्याशाला " स्थापन की; जैन विद्यार्थीओंको स्कॉलरशीप देते थे और कुलीन गरीब जैन कुटुंबोकी गुप्त सहायता भी करते थे. ये मुंबईके जस्टीस आफ धी पीस थे. लगभग पचीस लाख रुपैया इन्होंने प्राप्त किया और धर्मकार्यमें अच्छा धन व्यय करनेके कांक्षी थे. परंतु दैवकी गति विचित्र है. नया विल करते करतेही आप ता. १२ फरवरी सन १८९७ को प्लेगसें चोपाटीके अपने बंगलेमें स्वर्गवासी हो गये. मरण समय इनका वय ५६ वर्षका था. इनको दूसरी स्त्रीसें नानाभाई और रतनचंद २ पुत्र और ३ पुत्री हुई. मी. शापुरजीकी संभालमें ये पुत्र अच्छा विद्याभ्यास कर रहेहैं, और मी. नानाभाई इस छोटी उमरसें भी धर्मकार्यमें अच्छा लक्ष देने लगे हैं.

ऐसे धर्मात्मा पुरुषको धन्य है, इनकी आत्माको शांति हो ! यह हमारी प्रार्थना है !!!

स्व० मी. वीरचंद राघवजी गांधी, बी. ए., एम. आर. ए. एस.

इन वीर पुरुषका जन्म महुवा–काठीआवाडमें ता. २५ अगस्त सन १८६४ ई. को हुवा था. इनके पिता बडे धर्मात्मा थे. इन्होंने भावनगरमें सन १८८० में पहेले नंबर "मेट्रीक्युलेशन" में पास होकर सर जसवंतसिंहजी स्कालरशिप प्राप्त की; ये एलिफन्स्टन कॉलेजसें बी. ए. पास करके सरकारी स्कालरशीपके भी भागी बने.

सन १८८५ में जैन एसोसिएशन ऑफ इंडियाके ये सेक्रेटरी हुवे. सरकारी सोलीसीटरके वहां ये आरटीकल्ड कलार्क हुवे. इन्होंने पालीताणा जुलम केसमें और मखसीजी केसमें भी अच्छी मदद दी थी.

सन १८९१ में समतसीखरके तीर्थपर चरबीके कारखानेके मुकद्दमेंकी अपीलमें युक्तिके साथ रायबहादूर बद्रीदासजीको सहायता देकर जीत लिया.

सन १८९३ में चीकागो–अमेरिकामें जब विश्व प्रदर्शनी हुइथी और वहांकी धर्मसमाज (World's Parliament of Religeons) में श्रीमद् आत्मारामजीको निमंत्रण आया तब जैन धर्मके प्रतिनीधि होकर आप चिकागो गये और अध्यक्ष डा० बॅरोझ आदिकी ओरसें अच्छा मान पाया. धर्मसमाजमें जैनधर्मपर एक सार गर्भित व्याख्यान दिया. अमेरिकामें दो वर्ष रहकर बोस्टन, वॉशींगटन, न्युयोर्क, रोचेस्टर, क्लीवलेंड, केसाडेगा, बटेवीया, आदि नगरोंमें फिरकर आपने ५३५ भाषण दिये. किसी २ भाषणमें दस २ हजार मनुष्य एकत्र हो जातेथे. कई जगह जैन धर्मके अभ्यासके लिये क्लास खोले गये. चिकागो और केसाडेगासमाजकी ओरसें इनको पदक दिये गये थे. वॉशींगटनमें "गांधी फीलोसोफीकल सोसायटी" इन्होंने स्थापित की, जिसके अध्यक्ष वहांके पोस्टमास्तर जनरल मी. जोसफ स्टुअर्ट हुए. इनके उपदेशसें हजारों मनुष्य मांसाहार त्यागी (वेजीटेरीयन) हो गये, कई लोग ब्रह्मचर्यव्रत पालने और नवकार मंत्रका ध्यान धरने लगे.

सन १८९५ में साऊथ प्लेस चापल और रोयल एशिएटिक सोसायटीमें इन्होंने लंडनमें लॉर्ड रेके अध्यक्षपणेमें भाषण दिये, और ये सोसायटीके मेंबर नियत हुवे. फ्रांस, जर्मनी होते हुए, आप जुलाइ मासमें मुंबई आये. विलायतादि विदेशमें ये शुद्ध आहार लेते रहे हजारों विद्वानोंके साथ परिचय करके बडा अनुभव लियाथा. बंबईमें पीछा आनेपर एक बडे वीर पुरुषके समान इनका आदर हुआ. जैनोंकी ओरसें शेठ प्रेमचंद रायचंदके सभापतित्वमें एक भारी सभामें ता. २०–७–९६ को एक "मानपत्र" दिया गया था.

यहां आनेपर इन्होंने सोलीसीटरका अभ्यास पीछा आरंभ किया था. परंतु अमेरिकनोंने इनको वापस बुलाया तो जैनभाईयोंकी ओरसें अच्छा सत्कार और विदाई पाकर ये अपनी स्त्री और पुत्र मोहनको साथ लेकर गये. पंडित फतेहचंद लालन भी इनको लंडनमें जा मिले.

अगस्त सन १८९८ में ये वापस आये. स्व० मी. जस्टीस महादेव गोविंद रानाडेके सभापतित्वमें ता. २३ सीतंबरको इनको मानपत्र दिया गया. दूसरेही दिन आप अमेरिकाको प्रयाण कर गये. हिंदुस्तानके दुर्भिक्ष पीडित लोकोंके फोटो पेश करके वहांके लोकोंको प्रेरणा करके आपने मकईकी स्टीमरें हिंदुस्तानको भिजवाई थी. हिंदकी स्त्रियोंको शिक्षा दिलानेकी ओर भी इन्होंने वहांके लोकोंका ध्यान आकर्षित किया था. आपने कई पुस्तक भी बनवाये हैं.

आप बारीष्टरकी परिक्षा पास करके सन १९०१ में मुंबई पधारे. आतेही बीमार हो गये और वृद्ध अंधी माता, स्त्री, पुत्रादि कुटुंबको और समग्र जैन समुदायको शोकसागरमें डूबा गये. हाय ! धन्य है ये वीररत्नको ! एसे पुरुष सदा अमर है ! !

मी० अमरचंद पी० परमार. (सिरोही—सूरत—मुंबई.)

इनका जन्म सं. १९२० के महा सुदी ८ को हुवा था. ये मूल इलाके सिरोहीके झाडोली ग्रामके रहनेवाले हैं. इनके पूर्वज उदेपुरसे आये थे और ये दसा ओसवाल बालफेना (वाफणा) परमार गोत्रके हैं. सर्पके फनसे बालकका रक्षण हुवाजिससे वाफणा कहलाये. कि इस गोत्रमें सर्पके काटनेसें कोई नही मरा.

मी. अमरचंदके परदादा शा. वजाजी राजाजीको चार पुत्र शा. पन्नाजी, ठाकरसी, दुर्लभजी ,रणछोडजी और देवजी हुए. शा. पन्नाजी और रणछोडजीका परिवार सूरतजिल्लेमें है और ठाकरसीका नाणा, मारवाडमें है. शा. दुर्लभजीके पांच पुत्र शा. डाह्याभाई, परागजी, पदमाजी, गोविंदजी और हीराचंद थे. उनमेंसे तीन भाईयोंके कुटुंबमें हरजी, पानाचंद, रामचंद, भगवान, उमेदचंद, पुनमचंद, माणेकचंद, मगन, दलीचंद आदि विद्यमान है.

पदमाजीको झवेरचंद, नरसई, मूलचंद, अमरचंद, गुलाबचंद ये पुत्र और रामकोर और कंकुबाई नामक पुत्री हुई थी. उनमेंसे झवेरचंद, अमरचंद और बाई रामकोर विद्यमान है. झवेरचंदके तीन पुत्र धनराज, रायचंद और तलकचंद तथा तीन पुत्री हैं.

मी. अमरचंदके दादाने मारवाडसे आकर सूरतके पास बडोद, भेस्तान आदि ग्राममें निवास करके अच्छा धन प्राप्त किया था. इनके पिता बहुतही भोले स्वभावके थे इसलिये उनके दूसरे भाईओंने उनको घरसें कुछ भी दिये विना निकाल दिये थे, और उनको फेरी आदिसे अपना निर्वाह करना पडाथा. एकवार ऐसा भी कठिन समय इनपर आ पडा था कि एक पुत्रके जन्मके समय खर्चके रुपयेके लिये उनको घर घर फिरना पडाथा. परंतु ईश्वर कृपासें फिर उनकी स्थिति अच्छी होगई थी. उनके भाई झवेरचंदने पिताको अच्छी मदद देकर उनके धंधेको ठीक जमा दिया था और लघुभाईको पिताकी इच्छानुसार सूरतमें जाकर पढाना आरंभ किया था. फडोद—गुजरातके रहनेवाले स्व० दलपतराम नथुराम व्यास इनके बालस्नेही थे, दोनों एकही साथ पढते थे. दोनोंमें ऐसी गाढी मित्रता थी कि साधारणतः ऐसा स्नेह देखनेमें आताही नहीं हैं. वह मित्ररत्न सन १८९९ में इन्हीके मकानपर कालवश हुए, जिसका इनको पूरा रंज रहा.

इनकी बहन रामकोर छोटी अवस्थाहीसे विधवा होगई थी, परंतु उसी समयसे उन्होंने धर्मविद्याका अभ्यास कर धर्मकार्यमें रुचि लगाई और समय २ पर भीड पडनेके समय अपने भाईयोंको अभीतक मदद करती रही. मी. अमरचंद दस वर्षकी अवस्थामें प्रथम गोपीपुरा ब्रांच स्कूलमें भरती हुए और चढते नंबर पास होकर पारितोषिक और मास्टरोंकी कृपा संपादन करते रहें. पढनेमें इनका ऐसा अनुराग था कि एक समय इनके भाई किसी संबंधीके विवाहमें जानेके लिये छुट्टी लेनेको मास्टरके पास जाने लगे परंतु इस बातकी इनको खबर मिलतेही इन्होंने अपने मास्टरसे खानगीमें कह दिया कि मेरी छुट्टी स्वीकार मत करना. हुनरका इनको बहुत अनुराग था, इसलिये इसी छोटी वयमें पुस्तकोंकी जिल्द बांधनी, साईन बोर्ड लिखना, ऊन और रेशमके बढिया फूल—वृक्ष बनाना, एनग्रेविंग, ड्राइंग, प्लास्टर, घडी बनाना आदि कई काम देख २ कर सीखलिये थे; और स्कूलके साथी इनको बहुत चाहते थे. ये गरीबी और बहुत सादगीसे पढते रहे; यहांतक कि पढनेकी पुस्तकें भी उधार लेकर अपना काम चलाते थे. थोडा विद्याभ्यास होजानेपर इन्होंने एक रात्रिशाला खोली और दूसरे लडकोंको खानगीमें पढाकर अपने खरचेका बोझा पितापर नहीं पडने दिया. इनके मातापिताको सुख भोगनेका समय नहीं आया. सोला वरसकी उमरमें इनकी माताका स्वर्गवास होगया और बादमें इनके पिता भी इस संसारको छोड गये.

सन १८८२ में सूरत हायस्कूलसें इन्होंने मट्रीक्युलेशनकी परिक्षा पास की. मेसर्स पाठक, मोदक, वाडीआ आदि मास्टरोंकी पूरी प्रीति संपादान की थी. स्कूलमें कृषिशास्त्रका भी अभ्यास करलिया. छोटी उमरसें इनको हिंदुस्तानी कवित्त याद करने और नये बनानेका बडा भारी प्रेम था. स्कूलके प्राईज-एक्झीबिशनमे सारा हॉल गुंजा देते थे; इन्होंनें सूरतके डीस्ट्रीक्ट जज (बादमें होईकोर्टके जज और कौंसलर) ऑन० डा. वर्डवुडकी और मुंबईके ना. गवर्नर सर जेम्स फरग्युसनकी शीघ्र कवितासे विशेष कृपा प्राप्त की थी.

केवल इनके विद्याभ्याससें प्रसन्न होकर सर्चानक एक सुज्ञगृहस्थ शेठ मानाजीने कईयोंके विरोध करनेपर भी अपनी पुत्री केसरबाईका विवाह सं. १९३४ में इनसे करदिया. तदनंतर ये बडोदा कालजमें भरती हुए. वहांसे प्रीवीयसकी परीक्षा देकर इनको अपने भाईकी आज्ञानुसार उनके दूसरे विवाहका यत्न करनेके लिये पढना छोडकर सिरोही जाना पडा ये प्रथम रु० ४ महावारके नोकर हुवे. अपने बुद्धिवल और कार्यकुशलतासें इन्होंने सिरोही दरबारकी पूरी कृपा प्राप्त की. महकमे महालमें नोकरी करके पो० एजंट करनल पाऊलेट साहबके पास ये सिरोहीके एजंसी वकील मुकर्रर हुवे. जोधपुर, आबू, जेसलमेर आदिके दौरेमें इन्होंने एजंट, दरबार आदिकी अच्छी कृपा संपादन की. सन १८८५ में उक्त कर्नल पाऊलेट साहबने इनको घाणेरावके ठाकुरके ट्यूटर मुकर्रर किये. इन्होंने मेओ कॉलेजमें कर्नल लोक साहबसें अच्छी कृपा पाई और राजकुमारोंसे दोस्ताना पैदा किया. इसके बाद जोधपुरके महाराजाधिराज कर्नल सर प्रतापसिंहजीके पास रहकर इन्होंने अच्छा यश पाया और उनकी पूरी कृपा प्राप्त की. उनके और श्री जोधपुर दरबारके विलायतसे आनेपर मुंबईमें उनके सन्मानार्थ बडी सभाका प्रबंध करके मानपत्र दिये थे. रायबहादुर मुनशी हरदयालसिंहजी इनको एक सच्चा प्रेमपात्र गिनते थे. वे जोधपुरमें कई वार इनको अच्छा पद भी देने लगे थे. परंतु घाणेरावके नगरशेठ चेनाजी नरसीगजी उनके साझेमें इन्होंनें सन १८८९ में "धी इंडीयन एंड फारिन एजंसी कुंपनी" खोली जो विलायती माल और रजवाडोंका काम करके अच्छी तरह चल निकली.

बाद इनके उद्योगसे "धी रीपन प्रींटींग प्रेस कुं० ली०" स्थापित हुई. बहुतसे शेर अपने मित्रवर्गमेंही दिये, परंतु देखरेखकी कमी, और एजंट डीरेक्टरोंके कुसंपसे वह टूटगई, जिससे इनको बडा खेद हुआ और नुकसानभी पूरा रहा.

मुंबईमें आनेके बाद ये धर्मसेवा और सभा आदि कामोंमें लक्ष्य देने लगे. और हरेक धर्मसभामें अगुआ बनते हैं. इनकी वक्तृत्व और शीघ्र कविता बनानेकी शक्ति प्रसिद्ध है. नेशनल कॉंग्रेसमें, प्रोवीन्स्यल कॉनफरन्स आदि सभाओंमें ये बहुधा हिंदी कविता सुनाते हैं. जैन युनीयन क्लब, हेमचंद्राचार्य अभ्यास वर्ग, मेवाड मंदीर जीर्णोद्धार सभा, मुंबईकी जैन प्लेग होस्पीटल, एन्टीवीवीसेक्शन सोसायटी और कई कमीटीके ये सेक्रेटरी, और जैन तथा दूसरी सभाके मेंबर रहे हैं, और सन १९०२ में "गुजरात फीवर रिलीफ फंड" का प्रबंध सेक्रेटरी बनके इन्होंनें बहुत सफलतासे चलाके सुवर्णपदक (चांद) प्राप्त किया है. जैन सांग्रेगेशन और हास्पीटलके संवर्धा इनोंने बहुत परिश्रम उठाया था. गुल अफशान पत्रके ये एडीटर थे. और परमारथ्यनीके रमुजी लेखको याद करते हैं. मुंबई समाचार और जैन पत्रोंके ये लेखक हैं, तथा ओत्सव, आत्मारामजी चरित्र, अमरकाव्य, जैन तीर्थावली, नियमावली आदि कई पुस्तक भी इन्होंने लिखी है. मी. वीरचंद गांधीके साथ अमेरिका जानेकी इनकी भी तयारी हुई थी, परंतु सांसारिक विघ्नसे रुक गये.

सन १८९९ में इनकी धर्मपत्नि जो पढी लिखी और धर्मिष्ट थी कालवश होगई, जिससे इनको दो पुत्र और दो पुत्री हुवे थे, परंतु अभी एकही पुत्री हीरावती है. इनका दूसरा विवाह सिरोहीमें हुवा.

इन्होंने मद्रास, कर्नाटक, दक्षिण, दिल्ली, आगरा, उत्तर हिंदुस्तान, पंजाब, काश्मीर, कांगडा, हिमालय, राजपूताना आदि प्रदेशोंमें बहुत मुसाफरी की है. और स्वपराक्रम तथा बुद्धिवलसें हजारोंही मित्र इनके होगये हैं.

इनपर कई तरहकी आपदाए आनेसे तत्वनिर्णयप्रासाद ग्रंथ देरसे प्रसिद्ध हो सका. परंतु इस ग्रंथको अद्वितीय बनानेमें इन्होंने पूरा परिश्रम किया हैं, और ग्रंथकी एक अच्छी प्रस्तावना लिखी है.

इनमें यह एक बडी बात है और इनका अनुभव हरेक लाइनमें इतना बढा हुआ है, कि कैसाही कठिन काम हो परंतु यह उसको पूरा करही देते हैं. परंतु प्रारब्ध इनकी तरफ कुछ टेढी नजरसे देख रहा है.

सन १९०३ के सितंबरमें मुंबईमें दूसरी जैन (श्वेतांबर) कॉन्फरन्स जो भरी गई, उसकी इन्टेलिजंस, हेल्थ, एंड वोलन्टीयर कमिटीके ये सेक्रेटरी मुकर्रर हुवे थे. कॉन्फरन्सका काम बहुतही अच्छी तरह इन्होंने बजाया, जो इनकी पेश की हुई लंबी रिपोर्टसें जाहर होता है. प्रेसिडंट आदिके पूरे प्रेमपात्री बने. वहां हानिकारक रीवाजोंके उपर उमदा भाषण भी दियाथा. और २०० वॉलंटीयरकी फोजने अपने कार्य, ड्रेस, और दमामसे सबको चकित कर दिये थे. इनको दीर्घायु चहाते हैं कि ये धर्मकार्यमें सदा कटिबद्ध रहें.

लेखक—**भगु फतेहचंद कारभारी (एडिटर, जैनपत्र.)— एक सच्चा प्रिय मित्र.**

तत्वनिर्णयप्रासादग्रंथके प्रथम सहायक ग्राहकोंके नाम.

गुजरांवाला—पंजाब

लाला नानकचंद दोलतराम ... ५
लाला रामेशाह चेतराम ४
लाला करमचंद मथुरादास ... २
लाला भवानीयामल ठाकरदास ... २
लाला गणामल जगन्नाथ... ... २
लाला मेलुमल भागुमल १
लाला जयदयाल लभुराम ... १
लाला हुकमचंद फगुमल... ... १
लाला कहानचंद हरीचंद ... १
लाला इश्वरदास दीवानचंद ... १
श्री मुनि आत्मारामजी जैनगायनसभा
हा. लाला कहानचंद प्रभयामाल १
लाला बेलीराम चुनीलाल ... १
लाला मुलराज कालुमल १
लाला गणेशदास जवींदामल ... १
लाला गंडामल माणेकचंद ... १
लाला गंडामल तीर्थराम १

रामनगर-पंजाव.

लाला अर्जुनमल भीमामल ... २
लाला हेमराज हरदयाल २

रावलपींडी—पंजाव.

श्री जैनधर्म भास्कर सभा हा.
लाला उत्तमचंद पींडीदास ... ५
भावु हरभगवानदास १

जंबु—पंजाव.

लाला देशराज हेमराज १
लाला रामचंद जमीतराय ... १
लाला हेसराज जीवणमल... ... १
लाला वधावामल बोधामल ... १

हुशीआरपुर—पंजाव.

लाला गुज्जरमल मेहरचंद वेंलामल ४
भक्तजी नथ्थुमल फतुमल सुंदरदास २
लाला गोकलमल हवारमल मेहरचंद २
लाला मामामल सुंदरदास ... १
लाला मथ्थुमल कालामल... ... १
लाला छज्जुमल गुजरमल ... १
लाला बिल्लुमल हुकमचंद... ... १
लाला वसंतामल मेहरचंद ... १
लाला श्रावणमल गोरामल ... १
लाला पालामल अमरनाथ ... १
लाला जसवंतराय फेरुमल, टांडा १
लाला रुपलाल भावडा-गडदीवाला १
लाला रामचंद खरायतीराम,
मीआंणी १

जीरा—पंजाव.

लाला राधामल इश्वरदास ... २
लाला लालुमल मेलामल १
लाला जयदयाल लभुराम... ... १
लाला दयाराम प्रभुदयाल ... १
लाला वशाखिमल हरदयाल ... १
लाला टेकचंद दीनानाथ... ... १
लाला सुंदरमल देवीदीयाल ... १
लाला कीरपाराम माधीराम ... १
लाला मतावमल शिब्बुमल ... १
लाला कीरपाराम खुशीराम ... १
लाला मामराज गणपतराम ... १
लाला गुलाबमल गंडामल ... १
लाला मिलखीराम वशंबरदास ... १

शहर अंवाला—पंजाव.

लाला नानकचंद गोंदामल ... २
लाला गंगाराम बनारशीदास ... २
लाला वसंतामल उत्तमचंद ... २
लाला वजीरमल भक्त १
लाला पन्नालाल घीढोरेवाला ... १
लाला शिब्बुमल भावडा १
लाला जकतुमल सदारांम ... १
लाला जातिमल खूबामल अग्रवाल १

अमृतसर—पंजाव.

लाला फगुमल महाराजमल ... ५
लाला राधाकिसन पन्नालाल ... ५
लाला मूलचंद मोतीराम १
लाला दित्तामल चुनीलाल ... १

लुधीआना-पंजाब.

लाला घोलुमल गोपीमल ४
लाला शिब्बुमल सादीराम हुकमचंद २
लाला प्रभदियाल संभुमल ... २
लाला नंदलाल मिलखीमल ... १
लाला श्रावनमल गोपीमल ... १
लाला राधामल गणपतमल ... १
लाला रामदितामल क्षत्री १
लाला विहारीमल माधीराम ... १

नारोवाल—पंजाब.

लाला रुलदुमल जगन्नाथ... ... ४
जीवणमामा फग्गुहजारी १
लाला ठाकरदास खरायतीमल ... १
लाला मथुरदास गुरादत्ता उत्तमचंद १
लाला पालामल पंजुमल १

जंडीआला—पंजाव.

श्री संघ जंडीआला ज्ञानखाता ...१५

शनखतरा—पंजाव.

लाला गोपीनाथ अनंतराम ... १
लाला प्रेमचंद नीकोदरीयामल ... २
लाला ताराचंद बेलीराम २
लाला नहालचंद रामलाल टांडेवाले १

मालेर कोटला-पंजाव.

श्री भंडारजी १
लाला वस्तीराम शिवचंद... ... १
लाला गेंडिराय भगवानदास ... १
लाला देवीचंद रामप्रसाद ... १
लाला मंगतराय दिलाराम ... १
लाला मुनसीराम पन्नालाल ... १
पूज्य मोहनरिषजी १
लाला भगतराम मुनसीमल ... १
लाला अनंतराम उमरावचंद ... १
लाला फाग्हमल पूरनचंद... ... १
लाला सरनामल कैंयलीमल ... १
लाला प्रद्युमन मेहेरचंद १

मुतफरकात—पंजाब.

लाला हीरालाल फगुमल, लाहोर २
लाला रामरतन हरनाममल, शंकर
जिल्हा जलंदर... ... ... १

पुज्यजी बक्तावर ऋषि केशर ऋषि,
जलंधर १
लाला बखसीराम बंशीलाल, नामा १

खंभात-गुजरात.

श्री खंभात जैनशाला ४
शा. अमरचंद प्रेमचंद ४
शा. पोपटचंद मुलचंद दीपचंद ... १
शा. दीपचंद पानाचंद १
शा. साराभाइ सेमचंद १
शा. सुखलाल खुबचंद १
गांधी गुलाबचंद कालीदास ... १
शा. बापुलाल खुबचंद १

पालणपुर-गुजरात.

रा. रा. मेताजी मंगलजी इश्वरभाइ २
पारीख अमुलखभाइ खुबचंद ... २
रा. रा. मेता माणेकचंद जवेरचंद १
रा. रा. मेता वाहाल लवजी ... १
शा. जीवाभाई कचरा १
पारीख मासुखलाल पानाचंद ... १
शेठ गांधी नहालचंद रायचंद ... १

सुरत-गुजरात.

शेठ मगनलाल मलुकचंद ५
शा. कपुरचंद लालभाइ १

शा. फुलचंद शीवचंद १
शा. प्रेमचंद अभेचंद १
शेठ नानचंद रायचंद १

मुंबई.

शेठ तलकचंद माणेकचंद ... ५१
बाबु पनालाल पुरनचंद १५
शेठ देवजी वरसंग १५
शेठ चापसी परवत १०
शेठ फकीरचंद प्रेमचंद १०
झवेरी धर्मचंद उदयचंद ... ५
शेठ जमनाभाई भगुभाइ... ... ५
शेठ मनसुखभाई भगुभाइ... ... ५
शेठ त्रीभोवनदास पुरुषोत्तम ... १
शा. मोतीचंद नथमल १
शा. वीरचंद डायाचंद १
शा. मनरुपलाल मंछाचंद... ... १
शा. हरगोवनदास पुनमचंद ... १
शा. चेनमलजी नरसींगजी ... १
शा. जेठाभाई कल्याणजी ... १

माणसा—गुजरात.

शा. हाथीभाइ मुलचंद शराफ ... ५

सांडल—गुजरात.

वोरा भायचंद शोभागचंद ... १
शा. जीवराज डामरसी १

मुजफरकात.

शेठ वल्लभजी हीरजी, कलकत्ता ... ४
श्री हरजी जैनशाला—जामनगर... २
शेठ नगीनदास वर्धमानदास-इडर ४
शेठ मनोरदास सुंदरजी-एडन ... २
लाला शुबदयाल शामलाल—सीरसा २
लाला जवाहीरलाल ओसवाल—सीकं-
दराबाद २
मी. वाडीलाल मगनलाल वजीफदार-
सीतापुर १
शेठ शीवलाल बादरचंद, रांधनपुर १
मेता हीराचंद फुलचंद—वला ... १
जवेरी बालाभाइ छोटालाल—पादरा १
महेता शांतिलाल जेसंगभाइ—साणंद १
शा. हीरालाल त्रीभोवनदास—रंगुन १
शा. गोरधनदास पीतांबरदास-
जंबुसर १
शा. फुलचंद रामाजी—जबलपुर १
मुनिराज अमरविजयजी मुनिश्री
विजयजी पाठशाला—पुस्तकालय
हा. शास्त्री खुशाल तीलोकचंद १
मुनि महाराज वृद्धिचंदजी पुस्तका-
लय, हा. शा. गुलाबचंद
जीवाभाई महेता-वला ... १

प्रथम ग्राहकोंके नाम.

मुंबई.

शेठ मोतीचंद देवचंद १०
शेठ शोभागचंद तलकचंद ... ५
शेठ तलकचंद जेठा २
शेठ चतुर्भुज गोवरधन २
श्री गोडीजी जैन पाठशाळा ... २
शेठ दीपचंद माणेकचंद २
शेठ मोहनलाल पुंजाभाइ... ... १
शेठ तुलसीदास मोहनजी... ... १
शेठ केशवजी भीमजी १
शेठ विकमसी केशवजी १
शेठ भारसी अमुलख १

शेठ धनजी चतुरभुज १
शेठ झवेरचंद गुमानचंद... ... १
शेठ रायचंद केसरीचंद १
झवेरी बालचंद काशीराम ... १
शेठ रायचंद नानाचंद १
शेठ रतनलाल मगनलाल ... १
शेठ झवेरचंद कलाणजी... ... १
शेठ रावजी साकलचंद १
शेठ हीरजी शेषकरण १
शेठ छोटालाल प्रेमजी १
शेठ झवेरचंद इंदरजी १
शेठ मदनजी जेचंद १

शेठ हीरजी हंशराज १
मुनीम मणीलाल छगनलाल ... १
शा. ललुभाई गुलाबचंद... ... १
जवेरी भोगीलाल लालजीभाइ ... १
जवेरी छोटालाल ललुभाइ... ... १
मास्तर केशवलाल वाडीलाल ... १
शेठ रुपचंद रंगीलदास १
मी० डाह्याभाई मूलचंद १
मी. हेमचंद अमरचंद १
शेठ जवेरचंद गुमानचंद... ... १

अमदावाद—गुजरात.

शेठ जयसंगभाइ चुनीलाल... ... ५

शेठ वालाभाइ मुलचंद वखतचंद... ४
शेठ केशवलाल चुनीलाल ... १
डाक्टर जमनादास प्रेमचंद ... १
शेठ केशवलाल परशोत्तम... ... १
मी. मोहनलाल मगनलाल... ... १
शा. प्रेमचंद परशोत्तमदास... ... १
सोदागर फुलचंद हेमचंद... ... १
शा. हरजचंद रायचंद. १
मी. मोतीलाल दोलतराम... ... १
शा. परशोत्तमदास जेठाभाइ ... १
शा. गीरधरलाल हीराभाइ... ... १
शा. शाकलचंद १
शा. त्रिकमभाइ आलमचंद ... १
शा. मनसुखराम नाहानचंद ... १
शा. हीराचंद कक्कलभाइ १

सुरत—गुजरात.

सुरत जैन विद्याशाला... ... ... २
झवेरी मोतीचंद रुपचंद १
श्री नेमीश्वर पुस्तकालय... ... १
शा. गेलाभाइ वखतचंद १

भरुच—गुजरात.

शा. अनुपचंद मलुकचंद... ... १
शा. दलपत दुलभ... ... ... १
शा. धोलदास लालजी १
शा. मगनलाल मेलापचंद... ... १
शा. माणेकचंद परभुदास १
शा. लखमीचंद मेलापचंद... ... १
शा. नगीनदास वमलचंद १
शा. नगीनदास ऊदेचंद १
शा. वापुभाइ अमरचंद १
शा. गुलाबचंद हरीभाइ १
शा. लखमीचंद मोहनलाल... ... १
शा. मोहनलाल नेमचंद १
शा. मगनलाल वमलचंद १
शा. गुलाबचंद केशवजी १
शा. अमरचंद देवचंद १
शा. रुपचंद झवेरचंद १
शा. रतनचंद मगनलाल १
शा. खुबचंद कशालचंद १
शा. चुनीलाल परशोत्तम १
शा. माथा वखतचंद १

पादरा-वडोदा-गुजरात.

आचार्य श्री आत्मारामजी जैनशाला १
शा. ललुभाइ शीवजी... ... ... १

शा. देवचंद मगनभाइ १
शा. तलकदास खीमचंद १
शा. वापुभाइ हीमचंद १
शा. दीपचंद पीतांबरदास... ... १
शा. छगनलाल हीमचंद १
शा. मोहनलाल हीमचंद १
शा. अमरतलाल वनमालीदास ... १
शा. अमरलाल भाइचंद १
शा. हरगोवनदास भाइचंद ... १
शा. त्रीभोवनदास वापुभाइ... ... १
शा. ललुभाइ वीरचंद १
शा. ललुभाइ शाकरचंद १
शा. वरजलाल शाकरचंद... ... १
शा. कालीदास खुबचंद १
शा. कालीदास मुळचंद... ... १
शा. पानाचंद नानचंद १
शा. शिवलाल सोभागयचंद... ... १
शा. मुलचंद जयचंद... ... ... १
शा. छोटालाल नाहालचंद... ... १
शा. जेयचंद पुंजाभाइ १
शा. गीरधरभाइ वीरचंद १
डाक्टर सैयद आदम १
वकील नंदलाल ललुभाइ १
तपशीजी उत्तमचंद धनजी... ... १
शा. हीराचंद नथुभाइ १

पालणपूर—गुजरात.

पारीख नगीनदास ललुभाई ... २
दोशी गगल ऊमेदचंद १
रा. रा. कोठारी शोभागचंद वेलचंद १
रा. मेता चेला हीराचंद... ... १
रा. मेता गोदड परथीराज... ... १
पारीख मोकमभाइ लवजीभाइ ... १

राधनपुर—गुजरात.

शा. कुंवरजी धनजी १
शा. भुदर वछराज १
शा. कमलशी गुलाबचंद (खास) १

एडन—अरेबीआ.

शेठ मेगजी चांपशी भणशाली ... १
,, प्रेमजी हरजीवन महेता ... १
,, प्रागजी सुंदरजी १
,, ठाकरशी प्रेमजी भणशाली... १
,, माणेकचंद लालजी महेता ... १

पुना—दक्षिण.

शेठ गगलभाइ हाथीभाइ ५

शा. माणेकचंद नानचंद १
श्री जैन पाठशाला—तलेगाम ... १
शा. शामचंद केवलचंद—तलेगाम... १

अहमदनगर—दक्षिण.

शा. पुनमचंद नवलमल १
शा. अभेचंद रायचंद १
शा. वहालचंद अमुलख १

भावनगर—काठिआवाड.

जैनधर्मप्रसारक सभा १००
मेसर्स. आर. एम. पी. की कुंपनी १
रा. रा. माधवजी पदमशी १
भावशार देवकरण नथुभाइ ... १
भावनगर जैनसभा १

वलशाड—गुजरात.

शा. पुनमचंद केसुरजी २
शेट रायचंद मोटाजी १

साणंद—गुजरात.

श्री जैन बोध बुद्धि प्रकाश सभा ... १
महेता देवकरणभाइ अदेकरण ... १
महेता चुनीलाल कालीदास ... १

माणसा—गुजरात.

श्री माणसा ज्ञानखाता हा. शा.
हाथीभाई मुलचंद १
शा. वीरचंद कृष्णाजी १
शा. नथुभाइ वहेचरदास १

पेथापुर—गुजरात.

वकील डाह्याभाई हकमचंद ... १
शा. नहालचंद नागरदास ... १

मांडल—गुजरात.

शा. मगनलाल परशोत्तम ... १

शादरा—गुजरात.

वकील छोटालाल ललुभाइ ... १
मी. रणछोडलाल छगनलाल ... १
वकील फतेहचंद रामचंद ... १

जलालपोर—गुजरात.

शा. पेमा लालाजी १
शा. नाथाजी कशमाजी—माढ ... १

कलकत्ता.

राय बद्रीदास बहादूर माला कोल-
कादासजी १०
शा. जेठाभाई जेचंद १

आग्रा—हिंदुस्तान.

लाला रामलाल छोटनलाल जौहरी ६
शेठ चुनीलालजी खजानची ... ६

धुलीआ-दक्षिण-खानदेश.

शा. शखाराम दुलभदास ... २
शा. शीवजी नेणशी १

खेडा—गुजरात.

शा. सोमचंद पानाचंद २
शेठ रतनशी हरगोवंददास ... १

गाअज—गुजरात.

शा. शीवलाल रणछोड १
शा. हरगोवंददास अमथाभाइ ... १

दिल्ली.

लाला केसरीचंद बालमुकुंद ... २
शा. न्हुवचंद तुलशीराम जवेरी ... १
शा. जमनादास शवचंद १

जीयागंज.

महाराज बाहादुर सिंघराय धनपतसिंघजी बाहादुर ५
बाबु इंद्रचंद नहाता १

पेटलाद—गुजरात.

श्री जैन विद्याशाला १
शा. मोतीचंद फुलचंद १
शा. चुनीलाल फतेचंद १

मुतफरकात.

शा. नथमलजी धनराज, अजमेर ५
शा. लवजीभाइ दीपचंद, कोथ ५
श्री जैन पाठशाला, उदेपुर ... ४
मी. लखमीचंद गुलाबचंद ढढा, जेपुर ४
पा. वेहेचरभाइ शीवदास, आजोल २
शा. मोतीचंद मानचंद, मोरवाड २
श्री शायला भंडार, वढवाण ... २
शेठजी नवलचंदजी श्रप्रतचंदजी, पाली २
सराफ भवानीराम रत्नलालजी सिकंदराबाद २
दोशी जवेर हीराचंद जैनविद्याशाला, घोलेरा २
शेठ मंगन चतुर, सीधपुर १
शा. मोती पदमाजी, डेगाम ... १
शा. मोती अरनाथजी, गोढमा ... १
शा. हीराजी मनरुपजी, अंबाच १
शा. पराग धनजी, वाव, कामरेज १
शा. केशुरजी पानाजी, परीआ ... १
शा. प्रेमचंद कलाणचंद, उमरगाम १
. केशरीचंद भाणाभाइ, चीलीमोरा
शा. पेमचंद अमेचंद, गणदेवी ...
शा. मोटा वधाजी, नवसारी ......
शा. मोतीजीजेचंदजी, राता—वापी
शा. परागजी जेताजी, कोपली—वापी
शेठ शखाराम दुलभदास जैनलाइब्रेरी महुवा... ... ...
श्री चाकणा जैन शाला, चाकणा
शा. बालचंद्र इंद्रशा, एवला, नासीक
बाइ रतन उरफे नवी शा. मुलचंद जादवजीकी बीवबा, कटोसण
शा. पानाचंद कीशोरदास, इयाशान
शा. जेचंद कल्याणजी, सावी ...
शा. व्रजलाल रंगजी, वलण ...
शा. इश्वर पानाचंद, दरापरा ...
श्री संघ दरापरा... ... ...
श्री जैन विद्याशाला, आकलाव ...
शा. केशवजी कल्याणजी, चोहडा
शा. नेणशी वि. फुलचंद संघवी, लस्कर ... ...
पा. वेचरभाइ अमथाभाइ, तरसाली
शा. मुलतानमल मेगराज, व्यावर



इन सब महाशयोंका मैं पूरा धन्यवाद मानता हुं.

अमरचंद पी० परमार.